CONTENTS

[ENGLISH SECTION]

हिन्दी-विभाग

श्री हीरालालजी खन्ना (६० वर्ष की अवस्था)

Khannaji (standing second from the left) as a student of M.Sc. Class (1913)

डा० मैथिलीशरणजी की अमर वाणी

श्री हीरालालजी खन्ना के अभिनंदन में हिन्दी के अद्वितीय कवि डाक्टर मैथिलीशरणजी गुप्त क्या कहते हैं—

तुमको लेने के लिए,
झुके न किसका भाल?
रत्न एक भी बहुत है,
तुम दो—हीरा—लाल!

चिरगाँव,
३०-६-२००६

प्रिय अवस्थीजी, प्रणाम।

कृपापत्र मिला। धन्यवाद! इधर बहुत दिनो से मैं अस्वस्थ रहता हूँ। फिर भी आपके साथ खन्नाजी का अभिनन्दन करता हूँ।

तुमको लेने के लिए झुके न किसका भाल?
रत्न एक भी बहुत है, तुम दो—हीरा—लाल!

मैं उनके निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य नही प्राप्त कर सका, फिर भी मेरे मन पर उनका यह प्रभाव है कि वे कृती और कुशल पुरुष हैं। शिक्षक होने के साथ-साथ चतुर निरीक्षक भी हैं।

उनकी साहित्यिकता का यही बोध मेरे लिए कम नही है कि मुझ पर आरम्भ से ही उनकी कृपा रही है। आप सानन्द होंगे।

आपका
मैथिलीशरण

जीवन की झाँकी

इस ग्रन्थ में स्थान स्थान पर आए हुए संस्मरणों के आधार पर संकलित

श्रीयुत पं० श्रीनारायण अग्निहोत्री, एम० ए०

[इस 'जीवन की झांकी' के लेखक श्रीयुत प० श्रीनारायणजी अग्निहोत्री एम० ए०, बी० एन० एस० डी० कालेज के अँगरेजी विभाग क अध्यक्ष हैं। खन्नाजी के सुपुत्र श्री नन्दलाल खन्ना के सहपाठी होने के नाते उन पर खन्नाजी का प्रेम पितावत है। अग्निहोत्रीजी भी खन्नाजी के साथ पुत्रवत व्यवहार करते हैं। उनके द्वारा सकलित यह लेख पाठकों को रोचक लगेगा, ऐसी आशा है।]

साहस, स्वावलम्बन और स्वाभिमान इन तीन शब्दो मे हम प्रिन्सिपल हीरालाल खन्ना के प्रारम्भिक जीवन का स्वरूप प्राप्त कर सकते हैं। इनका जन्म १८८९ ई० के नवम्बर महीने में एक असहाय माँ के घर में रीवाँ में हुआ था। इनकी माँ बडी विपन्न दशा में थी। लखनऊ आकर वह कसीदा काढकर अपना और अपने छोटे लडके का पालन-पोषण करती थी।

बालक खन्ना बडा 'शरीर' था। बडे इमामबाडे के फाटकवाले प्राइमरी स्कूल में पढता था। प्राय माँ द्वारा पेट काटकर जमा किए गए पैसे फीस में न जमा करके चौक में कचालू उडा जाता था।

उन्ही दिनो खन्ना के एक मामाजी की शादी थी। उसमें बालक खन्ना भी अपनी माँ के साथ गया। माँ के जिम्मे चूल्हे-चौके का काम था। एक दिन वर के चाचा (खन्ना के नानाजी) भोजन कर रहे थे। (वह रीवाँ में स्टेट इजीनियर थे) इतने ही मे बालक खन्ना की शिकायत आई कि उसने एक लडके को मारा है। बालक खन्ना के आने पर माँ ने डाँटकर पूछा —'तुमने इसे क्यो मारा ?'

उत्तर मिला, 'इसने मुझे गाली दी तो मैंने इसको मारा। इसको मना कर दीजिये कि मुझे गाली न दे, नही तो अभी मै इसे फिर मारूँगा।' माँ ने क्रोध में आकर कहा, 'तुम इसे मारोगे तो मै तुम्हे पीटूगी।" बालक खन्ना ने बिना डरे हुए फिर कहा, 'यह मुझे गाली देगा तो मै इसे जरूर मारूँगा।'

उन्होने कहा, 'तुम मारोगे ?'

बालक खन्ना ने उसी प्रकार बल देकर कहा, 'मुझे गाली देगा तो मैं जरूर मारूँगा।' बालक खन्ना पर चूल्हे के आगे की लकडी की मार पडते-पडते बच गई। माँ ने इजीनियर साहब से अपने ऊधमी बालक की और भी शिकायत की। उन्होने उसे रीवाँ ले चलना सोचा।

नौ दस वर्ष की अवस्था में बालक खन्ना रीवाँ पहुँचा। बालक खन्ना के नए अभिभावक का जीवन प्राय अवकाश-प्राप्त व्यक्ति का सा था। उनके दो लडके थे। छोटा लडका, बालक खन्ना का समवयस्क था। इजीनियर साहब के साले भी उनके साथ रहते थे। उनके भी दो बच्चे थे और वह बालक खन्ना के साथ पढते थे।

गृहिणी स्वभावत अपने बच्चो का पक्ष लेती थी। बालक खन्ना की असहाय माँ पर ताने कसती थी। स्वाभिमान, बालक खन्ना का प्रारम्भिक साथी था। वह इन कटूक्तियो से बहुत डरता था और इसी कारण

वह कभी-कभी कई दिन अन्दर भोजन के लिए न जाता था। कगलो को जो चने सदावर्त में बँटते थे उन्ही से दो-तीन दिन तक काम चलाता था।

इस लाग-डांट का एक अच्छा परिणाम हुआ। बालक खन्ना का ध्यान पढने की ओर गया। स्कूल में और खेल के मैदान में वह अपने साथियो से बहुत आगे बढ गया। घर में दुलारे बच्चे इससे खेल के मैदान की हार का बदला लेते थे और स्कूल तथा खेल के मैदान में बालक खन्ना अपन साथियो द्वारा इनसे बदला लेता था।

वहाँ पर एक अध्यापक जीतनसिह थे। वह गणित मे बडे कुशल थे। बालक खन्ना उनका प्रिय शिष्य था। आगे चलकर इन्होने नवयुवक खन्ना की बडी सहायता की।

खन्ना के नानाजी का प्रभाव उनके लडको पर नही था। वह एक विलासी वातावरण म रहत थ। बडे लडके जयन्तीप्रसाद की एक वेश्या थी। वह कभी-कभी घर पर भी आती थी। एक दिन उसकी दृष्टि बालक खन्ना पर पड गई। वह बालक खन्ना से अकारण ही स्नेह करने लगी। बालक खन्ना को उसके पास जो शान्ति मिलती थी, उसे वह और कही न पाता था। उसकी एक छोटी बहन (मेहताब जान) थी। उसी के साथ बालक खन्ना खेला करता था।

९वें दर्जे में पहुँचते-पहुँचते नानाजी की मृत्यु हो जाने से बालक खन्ना का घर मे रहना अब और भी कठिन हो गया। उसी समय जापान रूस का युद्ध हो चुका था। हिन्दुस्तानी युवको में जापान की धूम थी। एक दिन सवेरे बिना किसी से कुछ कहे सुने बालक खन्ना बम्बई चल पडा। जापानी जहाज मे नौकरी करके जापान जाने का इरादा था। बम्बई पहुँचकर खन्ना ने डाक पर कोयला ढोने की नौकरी कर ली।

घरवालो को कुछ पता नही था। अचानक बीमारी ने आ घरा। एक पजाबी सज्जन का ध्यान खन्ना की ओर आकर्षित हुआ। उन्हें उसकी डायरी से खन्ना के बडे भाई साहब मोहनलाल का धूलकोट का पता लग गया। भाई साहब धूलकोट में असिस्टेंट स्टेशन मास्टर थे। वह पजाबी सज्जन खन्ना को धूलकोट पहुँचा गए। वहाँ पहुँचने पर माँ आदि को बडी प्रसन्नता हुई क्योकि लोग प्राय निराश हो गए थे।

धूलकोट में भाई मोहनलाल ने अपन नवयुवक भाई को तार सिखाना प्रारम्भ कर दिया। वह उसे तार बाबू बनाना चाहते थे।

रीवाँ के एक साथी मे खन्ना को पता चला कि मास्टर जीतनसिह दरबार हाईस्कूल रीवाँ स बदलकर वेंकट हाईस्कूल सतना में हेडमास्टर हो गए हैं। खन्ना ने उन्हे पत्र लिखा कि यदि वह उसका फार्म भिजवा दें तो हाईस्कूल की परीक्षा में अपनी भाग्य परीक्षा कर ले। मास्टर जीतनसिह ने खन्ना को अपने पास बुलाया। खन्ना ने आर्थिक कारणा से अपनी असमर्थता प्रकट की। मास्टर जीतनसिह जी न ५०) भेजा। सम्भवत यह धन उन्होने अपने पास से भजा था, पर दिखाया यही था कि दरबार से इतनी मदद मिल गई है।

जब मनीआर्डर पहुँचा तब भाई साहब को पता चला। उनकी आज्ञा लेकर खन्ना हडमास्टर साहब के घर पर पहुँचा। फार्म भरने के सिलसिले में पन्द्रह बीस दिन तक युवक खन्ना हेडमास्टर साहब के घर पर रहा। कट्टरपन के कारण अपने हाथ से बनाकर सुबह खिचडी और शाम को पूडियाँ खाता था।

खन्ना फार्म भरकर फिर भाई मोहनलाल के पास लौट आया। अब वह धूलकोट से बदलकर झींसव आ गए थे। उनके एक मुसलमान दोस्त (हिफाजतअली) थे। वह फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। खन्ना ने उनसे फारसी पढना प्रारम्भ किया। प्लेग के कारण परीक्षा की तिथि और एक महीना आगे को टल गई और खन्ना को पढने के लिए समय मिल गया।

सतना के विद्यार्थियों की परीक्षा उन दिनों प्रयाग में होती थी। वहीं खन्ना को सर्वप्रथम महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी के दर्शन हिन्दू बोर्डिंग हाउस में हुए। आगे चलकर उसके जीवन पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। वह वहीं हिन्दू बोर्डिंग हाउस में ठहरा था।

परीक्षा में सफलता मिली और कानपुर के लाला छगामल ने १०) माह की छात्रवृत्ति खन्ना को आगे पढने के लिए दी। इसी सहायता के भरोसे खन्ना प्रयाग में हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रह कर कायस्थ पाठशाला कालेज में पढने लगा।

१९०७-८ में लाला लाजपतराय जेल से छूटे। उसी समय अकाल पीडितों की सहायता के लिए एक संस्था बनी। उसके सभापति महामना पंडित मदनमोहनजी मालवीय थे और मन्त्री माननीय राजर्षि टंडनजी थे। खन्ना बाँदा जिले में काम करने के लिए भेजा गया। मालवीयजी युवक खन्ना के काम से अत्यधिक प्रभावित हुए। उनकी सिफारिश से सेंट्रल खत्री एज्युकेशन कमेटी बनारस से ६) मासिक छात्रवृत्ति और मिलने लगी।

कायस्थ पाठशाला में होनेवाली कायस्थ कान्फरेंस में स्वयंसेवक के रूप में काम करने के उपलक्ष में कालेज में पूरी फीस माफ हो गई।

इसी विद्यार्थी जीवन में कुछ प्रमुख व्यक्तियों से खन्नाजी की आजीवन मैत्री का सूत्रपात हुआ। श्रीयुत भोलानाथ अखौरी इनमें मुख्य थे। यह श्री सच्चिदानन्द सिनहा के भानजे थे। उन्हीं के साथ खन्ना जी ने सर्वप्रथम सिनहा साहब के दर्शन किए। उनके सिलसिले से 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में दो आना पृष्ठ की दर से प्रूफ पढने का काम मिल गया। इससे खन्नाजी को दस बारह रुपये प्रतिमास मिल जाते थे।

इसी समय इंडियन प्रेस के व्यवस्थापक श्रीयुत चिन्तामणि घोष द्वारा प्रूफ पास करने का काम मिल गया। साथ ही 'मद्रास स्टैण्डर्ड', 'बिहार हेरारड', 'बिहारी', और लखनऊ के 'एडवोकेट' में भी खन्नाजी ने काम किया? 'लीडर' प्रेस में भी प्रूफ पास करने का काम मिल गया और वहीं पर स्वर्गीय चिन्तामणि से सम्पर्क स्थापित हुआ।

मऊ (आजमगढ) में गल्ता बनता है। वहाँ पर मुसलमान जुलाहे काम करते थे, अत सदैव हिन्दू-मुस्लिम समस्या बनी रहती थी। १८८९-९० में वहाँ गौरक्षिणी सभा की स्थापना हुई। इसके सदस्यों ने एक रात में ५ से ६ हजार मुसलमान मार डाले। प० विष्णुनारायण दर की प्रसिद्धि यहीं के हिन्दू मुजरिमों की पैरवी करने से हुई थी। अब हिन्दुओं में जुलाहे का काम करने की प्रेरणा की आवश्यकता थी। भोलानाथ जी ने इसी काम को सिखाने के लिए एक कालेज खोला। एफ० ए० के बाद की गर्मी की छुट्टी खन्ना जी ने यहीं बिनने का काम सीखने में बिताई। (वह प्राय हर गर्मी की छुट्टी में एक नया काम सीखते थे) इतना अभ्यास हो गया था कि ८ घंटे काम करके १) पैदा कर लेते थे।

एफ० ए० पास होने पर लाला छगामल ने अपनी सहायता बढाकर १५) माहवार कर दी, परन्तु एक घटना हो जाने से इस सहायता के लेने का अवसर ही न पड़ा। ऊपर के कामों से ही खन्नाजी को विद्यार्थी जीवन में ही ६०) से ७०) तक मिल जाते थे। यह स्वावलम्बन का पाठ था।

बी० एस-सी० मे एक साल खन्नाजी फेल हो गए। हिन्दू बोर्डिंग हाउस के जीवन में आचार्य नरेन्द्रदेव, घनश्यामसिंहजी गुप्त (स्पीकर सी० पी० एसेम्बली) दुर्गाशंकर मेहता, सर गिरजाशंकर वाजपेयी, सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव, श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव, आदि प्रमुख व्यक्तियो से ससर्ग हुआ।

जब खन्ना जी बी० एस-सी० में पढते थे उस समय की एक घटना अपना विशेष महत्त्व रखती है। इटर होस्टेल टूर्नामेंट के सिलसिले में हिन्दू होस्टेल और ऐंग्लो इडियन खिलाडियो मे मैच था। खेल में मारपीट की नौबत आ गई। मुट्ठी भर गोरो के आतक से हिन्दू लोग भागने लगे। खन्नाजी ने बीच में घुसकर एक खिलाडी की 'स्टिक' लेकर ऐंग्लो इडियन लोगो को खूब मारा। उन पर भी चारो ओर से लकडियाँ पडी पर उनकी पगडी ने उनकी रक्षा की।

बी० एस-सी० पास करके श्रीयुत बलदेवराम दवे की कृपा से खन्नाजी ने साइंस-टीचर के रूप में प्रयाग के सी० ए० वी० हाईस्कूल में कार्य आरम्भ किया। वही पढाते-पढाते खन्नाजी ने एम० एस-सी० पास किया।

सी० ए० वी० स्कूल से खन्नाजी फिजिक्स और मैथेमेटिक्स के असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर सेंट जान्स कालेज आगरा गए। एक यूरोपियन प्रोफेसर की नियुक्ति से स्वाभिमान पर धक्का लगने के कारण मिस्टर बोनहाट के लडाई पर चले जाने के बाद वहाँ से १९१९ ई० मे मैथेमेटिक्स के प्रोफेसर होकर डी० ए० वी० कालेज कानपुर आ गए। यही से १९२७ ई० में बी० एन० एस० डी० कालेज के प्रिन्सिपल पद पर उनकी नियुक्ति हुई।

यू० पी० बोर्ड के जन्म से ही खन्नाजी का उससे सम्बन्ध रहा। प्रयाग विश्वविद्यालय, साहित्य सम्मेलन, बनारस यूनीवर्सिटी और आगरा यूनीवर्सिटी से आदि से ही खन्नाजी का सम्बन्ध है। खन्नाजी अनेक सस्थाओ के प्रवर्तक और जन्मदाता है। बी० एन० एस० डी० कालेज और कानपुर हाईस्कूल उनके सदप्रयत्नो के मूर्तिमान स्वरूप है। इनमे इनकी कीर्ति स्थायी रहेगी।
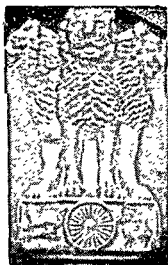
अभिनंदन-प्रशस्तिः

रचयिता—विश्वनाथ गौड़, एम० ए०, शास्त्री, सा० र०, सनातन धर्म कालेज कानपुर

[श्री विश्वनाथजी गौड़ एम० ए० शास्त्री, साहित्यरत्न स्थानीय विक्रमाजीत सनातन धर्म कालेज में संस्कृत के अध्यापक हैं। आप बी० एन० एस० डी० कालेज के पूर्व-छात्र हैं। यह पद्यबद्ध प्रशस्ति आपने श्री हीरालालजी खन्ना के सम्मान में उनके अभिनंदन-ग्रंथ के लिए लिखी है। इसमें खन्नाजी के गुणों की चर्चा तो है ही, संस्था की भी प्रशंसा है। श्लोक बड़े परिश्रम से लिखे गये हैं।]

भागीरथी-कल निनाद-पुनीत धाम
लक्ष्मीपदं नगरमस्ति समृद्धपौरम्।
व्यापारशिक्षणसमुद्यमसुप्रवृत्तं
नानाजनैः सबहुमानमधिष्ठितं च ॥ १ ॥

पण्यार्थिनारघनहाटकश्लक्ष्णमार्गैः
सौधैः सुकेल्युपवनैर्नयनाभिरामैः।
प्रेक्षागृहैः कलगृहैः श्रमिभिः सुशोभि
कर्णाभिधं पुरवरं लुलितेन्द्रधाम ॥ २ ॥

विद्यार्थिनां हितकरी खलु पाठशाला
'बी० एन० एस० डी०' इति प्रथिताऽस्ति तत्र।
शिक्षापरीक्षणविधिं खलु मध्यमायाः
श्रेण्या भवत्यधिकृता जनराज्यमान्य ॥ ३ ॥

विज्ञान-ज्ञान-सुकला-बहुशास्त्र भाषा-
साहित्य-सूक्ष्मवणिक्विषयेषु यस्याम्।
व्यायाम-सैनिकविधौ च सता सुवृत्ते
ज्ञानं लभन्ते बहु छात्रगणाः प्रयत्नैः ॥ ४ ॥

अध्यापकैः सुचतुरैर्बहुभिः समृद्धा
विद्यार्थिसार्थघनसंकुलसर्वकक्षा।
कीर्तिं परां समधियाति दिने दिने सा
प्रान्ते च ना वरतमा धुरि ख्यातनाम्नी ॥ ५ ॥

जग्राह जन्मशरदां दशवेदपूर्वं
संपात्पंछानगणपूरितस्वल्पकक्षा।

खण्डन्दुवत्प्रतिदिन कलिताङ्गशोभा
आभाति पुष्टविविधाङ्गसमूढसारा ॥ ६ ॥

विद्यार्थिनोऽत्र गुरुतः समवाप्य ज्ञानम्।
नानापरीक्षणविधौ धुरमावहन्तः।
कीर्ति व्रजन्ति सफलाश्च भवन्ति लोके
अस्याश्च शुभ्रयशस. पटमावयन्ति ॥ ७ ॥

अस्या सर्गविधौ प्रजापतिरभूत् 'खन्ना हिरालाल जी
अध्यक्ष प्रथम सुधी सुनिपुण शिक्षाप्रबन्धादिषु।
तेनेयं तनयासमा प्रियतमा सपालिता लालिता।
पुष्टिं चात्मनिवेदनेन गमिता कीर्तिं समारोपिता ॥ ८ ॥

तैस्तैरात्मगुणैरिमा स कृतवान् किं दुष्कर तद्गुणैः
तस्यैषा कृतिनः कृतिः सुमहती सत्कीर्तिविस्तारिणी।
शिक्षाकार्यसुदक्षपण्डितजनेष्वाख्यातनामा व्रती
मान्य. सद्गुणमण्डितश्च विदुषा सग्राहको मानद ॥ ९ ॥

वाग्मी धैर्यदयाक्षमादमयुत. सच्छुल्कनिष्पादकः
साध्वी चास्य वयस्य वृत्तिरमिता भव्य सुहृन्मण्डलम् ॥
ईदृग्गुणगणमण्डितेन विदुषा शुभ्रं यशस्तन्वता।
'कालेज' प्रतिपाल्य तेन विधिवन्निर्गम्यते वार्धके ॥ १० ॥

महोत्सवेऽस्मिन् खलु तस्य निर्गतौ कृते व्यथाभिन्नसुखैस्तदीयकैः।
शुभे जयन्तीसमये समागते वदामि ताभ्यामभिनदन मुदा ॥ ११ ॥

'खन्ना जी' इह तिष्ठतात् बहुसमा हृद्यं सुहृद्भिर्वृत।
नित्य धाम्नि हरेश्च कीर्तनपर. प्राप्नोतु शान्ति पराम्।
मस्या जीवतु ज्ञानयज्ञततिभिर्वर्षान् बहून् भास्वती।
एतद्देशसमृद्धिहेतुचरितैर्वृद्धि व्रजत्वात्मजैः ॥ १२ ॥

कुलपते !
भवते स्वस्ति.
वर्धते
भवता कुलम्।
सत्ये !
जीव, जयं प्राप,
अस्माभि·
प्रार्थ्यते प्रभुः ॥
॥ इति शम् ॥

प्रथम भारतीय वाङ्मय

श्री राय कृष्णदास

[प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अन्तर्गत पुराणों का कितना अधिक महत्त्व है, और वे अपने आदिरूप में कितने प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक तथ्य-सम्पन्न थे—इसी की खोजपूर्ण विवेचना प्रस्तुत लेख में सुप्रसिद्ध साहित्यिक विद्वान्, मनीषी एवं कलाकार श्री राय कृष्णदास ने की है। प्रमाण देते हुए आपने यह सर्वथा सिद्ध कर दिया है कि (क) पुराण-साहित्य बहुत पुराना है, (ख) वह मूलतः ऐतिहासिक साहित्य है, (ग) उसके विधायक सूत-मागध समाज में बहुत माने जाते थे और (घ) उनकी उपजाति न थी। बाद में पुराणों का रूप कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण धार्मिक एवं साम्प्रदायिक हो गया। परन्तु जिन लोगों ने पुराणों को यह रूप दिया, वे "ऐतिहासिक मसाले को अद्यतन नहीं बनाये रहे तो उन्होंने उसे प्रायः छुआ-छेड़ा भी नहीं। फलतः वह सारी निधि पुराणों की धार्मिक, साम्प्रदायिक इत्यादि सामग्री के भारी अटावर में पड़ गई। इसके कारण जहाँ एक ओर वह दब गई, वहाँ दूसरी ओर दबी-दबाई पड़ी भी रह गई।" इसी सामग्री का उद्धार करके हम अपने पुराने इतिहास की प्रामाणिकता को समझ सकते हैं।]

वेद के ब्राह्मण भाग में विधान है कि अश्वमेध-यज्ञ में एक वर्ष तक, जब तक अश्व छूटा-घूमता है, निरन्तर आख्यान होते रहें एवं जो राजा यजमान हो, उसकी दान-प्रशस्ति की तथा शौर्य-प्रशस्ति की गाथाएँ, यथाक्रम एक ब्राह्मण और एक क्षत्रिय स्वयं रचना करके, वीणा पर गाता रहे।[१] सीमन्तोन्नयन-संस्कार में भी वीणा पर ऐसे गान होते थे। इस विधान से उपपन्न होता है कि पुराणों का बीज, कम-से-कम, अश्वमेध जितना पुराना है।

स्वतन्त्र वाङ्मय के रूप में पुराण का अस्तित्व अथर्व-काल (१३।१४वीं शताब्दी ई० पू०) में तो असंदिग्ध रूप से जान पड़ता है। अथर्व० ११।७।२४ में चारों वेदों के साथ पुराण का उल्लेख है। इस उल्लेख से यह भी स्पष्ट है कि उस समय पुराण वेद का समकक्ष माना जाता था। अथर्व० ५।१९।९ में नारद के प्रति जो श्लोक कहा गया है, वह पुराण के किसी संवाद से उद्धृत जान पड़ता है।

शतपथ ब्राह्मण (१३।४।३।१२-१३) में भी इतिहास एवं पुराण को वेद कहा है और उनके नित्यपाठ का विधान किया है (११।५।६।८)। छांदोग्य (३।४।१) में भी पुराण का आदरपूर्वक उल्लेख है।

---

(१) इससे पता चलता है कि गाथा गानेवालों की कोई अलग जाति न थी अर्थात् सूत का एक पेशा था, जाति नहीं। देखिए आगे पृ० ८३

यह उल्लेख महत्त्व रखता है कि गाथा गाने का भार एक ब्राह्मण और एक क्षत्रिय के समवाय पर रहता था। ब्राह्मणी और क्षत्रिय से उत्पन्न होनेवाली जाति का सूत करार दिया जाना संभवतः इसी परम्परा पर समाश्रित है।

इन अवतरणो से पुराण-साहित्य की वैदिक काल से सत्ता ही नही सिद्ध होती, बल्कि यह भी प्रकट होता है कि उसका कितना समादर था। किसी नए साहित्य का यह पद नही हो सकता, अतः इन प्रमाणो से उसकी पुराणता भी व्यक्त होती है।

पाँचवी शती ई० पू० के आपस्तब धर्मसूत्र में तो "पुराण" तथा "भविष्यत् पुराण" के अवतरण तक मिलते है। उनमें के प्राय.-सभी किसी न किसी रूप में वर्तमान पुराणो में भी पाए जाते है। (पाजिटर, पृ० ४३-४९)। इन अवतरणों में से एक भविष्यत् पुराण का है—यह एक मार्के की बात है। *"भविष्यत् और पुराण ये परस्पर विरोधी शब्द है। पुराण का विशेषण भविष्यत् होने से सूचित है कि* पुराण शब्द....तब (ई० पू० पाँचवी शती में) रूढ़ होकर एक विशेष प्रकार के वाङ्मय के लिए प्रचलित हो चुका था" (भारतीय वाङ्मय, पृ० ११)। यह शब्द रूढ तभी बना होगा जब यह ग्रथ-विशेष के लिए लगातार प्रयुक्त हुआ होगा और इस प्रकार अपनी व्यंजना-शक्ति खो बैठा होगा जैसा कि सभी रूढ शब्दो के संबध में हुआ करता है। इसके लिए काफी समय की भी जरूरत है, अर्थात् (१) आपस्तब के बहुत पहले पुराण नामक साहित्य-विशेष का अस्तित्व था। और (२) उस साहित्य का नाम-रूप स्थिर होने के बाद किसी, 'भविष्यत्' काल-विशेष की जो बातें उसी प्रकार के साहित्य मे गुफित की गईं, उसका भी योग-रूढ नाम—'भविष्यत् पुराण' पड चुका था।

वास्तव में बात भी ऐसी ही जान पडती है—वर्तमान पुराणो के अनुसार वेदो का सकलन और विभाजन कर लेने पर महर्षि वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पजोक्ति[१] का *सकलन करके पुराण सहिता तैयार की। इस प्रसग में वे पुराणार्थविशारद कहे गए है।* इससे प्रकट होता है कि जिन मूतो के पास ये खजाने थे वे इनका तात्पर्य और उपयोग भूल रहे थे—केवल लीक पीटते हुए तोतारटन्त करते थे, जो दशा आजकल के अधिकाश भाटों की है। किन्तु महर्षि उन बातों का अर्थ समझते थे, वे उनके कोविद थे। उनका क्या महत्त्व और उपयोग था, यह भी उन्हे मालूम था और इन्ही दृष्टियो से उनका सकलन एव संपादन उन्होने किया था। पुन उस सहिता को उन्होंने सूत लोम-हर्षण को—जो पात्र रहे होंगे—सौपा।

लोमहर्षण ने उस सहिता की पुनरावृत्ति की और उसे अपने छ. शिष्यों—आत्रेय सुमति, काश्यप अकृतव्रण, भारद्वाज अग्निवर्चस्, वासिष्ठ मित्रायु, सावर्णि सोमदत्ति और सुश्रमण शाशपायन[२]—को पढाया। इनमें से तीन काश्यप, सावर्णि तथा शाशपायन ने सहिता के प्रतिसस्करण किए। लोमहर्षण की तथा ये तीनो वाचनाएँ मूलसहिता कही जाती है।

ये पुनरावृत्तियाँ वा प्रतिसस्करण, जिन विषयो पर उक्त आचार्यों का मतपार्थक्य वा भिन्न निष्कर्ष रहा होगा उनके कारण किए गए होंगे। जिन मसालो से पुराण सहिता का सकलन हुआ था, उनके जो अन्य पाठ वा परपराएँ उपलब्ध थी उनमें से कोई किसी को मान्य हुई होगी, कोई किसी को। क्रम में भी उन्होने हेर-फेर किए होंगे। हमारे इस अनुमान का पक्का सबूत यह है कि वर्तमान पुराणो

(१) यह बात लक्ष्य करने की है कि ये सभी ऐतिहासिक मसाले है।

(२) ये नाम बिलकुल उसी तरह के है जैसे पिछली वैदिक सहिताओ और ब्राह्मणों में आते है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि ये उस समय के वास्तविक व्यक्ति है।

मे ऐक्ष्वाक वशावली की, जो पौराणिक वशावलियो में सबसे प्रामाणिक और समग्र है, चार परम्पराएँ वा वाचनाएँ मिलती हैं—उनमें ऐसे भेद है कि वे असदिग्ध रूप से चार भिन्न मूलो पर अवलम्बित हैं। मूल सहिताओ की सख्या भी चार ही है, अत निश्चित रूप से जान पडता है कि ये चार वाचनाएँ उन्ही चारो से आई हैं।

साथ ही हमारे उक्त अनुमान की पुष्टि इस बात से भी होती है कि वेदो के शाखाभेद होने के सबध मे भी कुछ ऐसा ही वर्णन मिलता है, अर्थात् दृष्टि विभ्रम (वर्तमान भाषा में दृष्टिकोण की भिन्नता) के कारण ऋषियो ने, वेदव्यास के वेद-विभाजन के पश्चात्, मत्रो के क्रम मे उलट-फेर किया तथा स्वर और वर्ण भी हटाया-बढाया (पार्जिटर, पृ० ३३२)। अस्तु। लोमहर्षण तथा उनके उक्त तीन शिष्यो की सहिताएँ पुराण की मूल सहिता थी, उनमे प्रत्येक में ४,००० श्लोक थे तथा वे चार पादो मे विभाजित थी।

उपलब्ध पुराणो में से वायु, ब्रह्माड तथा मत्स्य (जो साप्रत पुराणो में सबसे पुराने भी है) अपने को पाण्डव से छठी पीढी मे उत्पन्न, अधिसीम कृष्ण के समय में कथित बतलाते है। लगभग यही समय वेदव्यास के प्रशिष्यो का भी होना चाहिए, जिनके हाथो पुराण की मूलसहिता ने (जो दुर्भाग्य, जाने कब से अनुपलब्ध है) अपने अन्तिम रूप पाए। वायु, ब्रह्माड में जो एक ही ग्रथ के दो भिन्न सस्करण है वे पिछले मूलसहिताकार—सावर्णि, काश्यपेय एव शाशपायन, तीनो ही—प्रष्टा वा वक्ता के रूप में आते है, तथा मूलसहिता की शैली पर ये चार पादो में विभक्त भी है, और मत्स्य अपने को 'पुराण सहिता' कहता है। अर्थात् ये वायु, ब्रह्माड और मत्स्य मूलसहिताओ के मुख्य प्रतिनिधि, वा पल्लवित प्रति सस्करण है।

इन तीनो पुराणो में अधिसीम कृष्ण के पहिले के राजाओ के लिए भूतकालिक तथा अधिसीम कृष्ण एव उनके तुल्यकालीन राजाओ के लिए वर्तमान-कालिक क्रिया का प्रयोग हुआ है। इन सब बातो का निचोड यही हुआ कि पुराण सहिता वा मूलसहिता का अन्तिम रूप अधिसीम कृष्ण के समय में स्थिर हुआ। दूसरे शब्दो में वेदव्यास ने जिस योजना का श्रीगणेश किया था, उसकी परिपूर्णता उनके शासन-काल में हुई। मूल सहिताओ में वेदव्यास की सहिता की परिगणना न होने से अवगत होता है कि उन्होने उसे आरजी (टेन्टेटिव) रूप में ही तैयार किया था। लोमहर्षण ने उसे तैयारी का रूप दिया और उनके शिष्यो ने उसे अपनी विवेचना से और सुसस्कृत तथा उन्नत किया, तब जाकर महर्षि का छेडा काम पूरा हुआ—अपनी काष्ठा को पहुँचा। अतएव जिस प्रकार व्यासदेव के बाद के जो वेद-मत्र बने उन्हे (व्याससपादित) वेदो में रखना अयुक्त समझा गया और वे परिशिष्ट में रक्खे गए, उसी से मिलते-जुलते सिद्धान्त का पालन पौराणिक साहित्य के सम्बन्ध में भी किया गया अर्थात् अधिसीम कृष्ण के बाद जो राजा हुए, उनकी चर्चा के लिए पौराणिको ने पुराण सहिता खुली न रक्खी, प्रत्युत उनका वर्णन उन्होंने भविष्यकालीन क्रियाओ द्वारा किया। इस प्रकार जो साहित्य बनता गया वह भविष्य वा भविष्यत् पुराण कहलाया।

उस समय 'पुराण' शब्द काफी पुराना हो चुका था। वेदव्यास-युग में पुराण सहिता (सकलित) मात्र हुआ था। उसके पहिले जिन भिन्न-भिन्न अशो के सकलन से वह सहिता बनी उनमें से अनेक पुराण कहे जाते थे, ऐसे कुछ नमूने अब भी प्राप्त हैं। भारत, वनपर्व के 'मत्स्यपुराण' नामक अश से, जिसमें जलप्रलय की कथा है, भारत, १२ पर्व के ३४२ अध्याय से, जिसमें सर्ग का गद्यमय वृत्तान्त है एव

जिसे पुराण कहा है, पुराणो के वंशपुराण[१] से तथा मत्स्यपुराण में आदिपुराण की चर्चा से उनका आभास प्राप्त होता है। यह सब कहने का तात्पर्य यह कि जब भविष्य का निर्माण प्रारम्भ हुआ, 'पुराण' साहित्य उस समय के जाने कितने पहिले से चला आता था। ऐसी अवस्था मे उस साहित्य के लिए पुराण शब्द रूढ हो जाना लाजिमी था। 'भविष्य' भी उसी प्रकार का साहित्य था—उसी का अंग था अतएव वही संज्ञा उसके संग भी जोड़ दी गई। वायु, ब्रह्माड तथा मत्स्य ने 'भविष्य' राजाओ की सूची इसी भविष्य पुराण से उदधृत करके दी है। उन्होने स्पष्ट लिखा कि ये सूचियाँ भविष्य (पुराण) में "कथित" पठित वा 'प्रसंख्यात' है।[२]

इस प्रकार प्राचीन पुराण-साहित्य के मुख्य दो विभाग हुए—एक पुराणसंहिता, दूसरा भविष्य-पुराण। इन दोनों के सम्बन्ध में वर्तमान पुराणो में जो वर्णन मिलता है, उसका साराश और विवेचन ऊपर किया गया है, जिससे प्रकट होगा कि वह वर्णन, आपस्तंब में प्राचीन पुराण वाङ्मय के दोनो ही अश—पुराण (पुराणसंहिता) तथा भविष्यत् (भविष्य) पुराण का उल्लेख मिलने के कारण सर्वथा सिद्ध और ग्राह्य है।

हमने ऊपर कहा है कि पुराणो के जो उद्धरण आपस्तव में आए है, वे किसी-न-किसी रूप में वर्तमान पुराणो में प्राप्त है। किसी-न-किसी रूप से यह तात्पर्य है कि आपस्तब में वे गद्य में है और वर्तमान पुराणो में वे पद्य में मिलते है। गद्य तथा पद्य के अन्तर के सिवा दोनो की शब्दावली भी भिन्न है—एकता दोनो में तात्पर्य की है। इस सम्बन्ध में आचार्य पार्जिटर की यह उत्पत्ति जँचती है कि आपस्तंब ने पुराणो के उन अशो का साराश गद्य में दिया है। अतएव बहुत सम्भव है कि वर्तमान पुराणो में प्राप्त पद्यरूप ही उनका प्रकृत रूप हो। यद्यपि मूल पुराणो में गद्यभाग होना भी संभावित है (भारत, विष्णु तथा भागवत के गद्य अश इस बात के द्योतक है), किन्तु पुराणो के पद्यभाग का अनेक अश मूल पुराणो ही का है। ई० पू० ८वी शती के बृहद्देवता में जो कथाएँ अनुष्टुप मे दी है, उनकी भाषा, शैली तथा विषय-विन्यास पुराणों से बहुत मिलता-जुलता है। फलत. पुराणों के प्रामाणिक

१—पुराणो में वंशावलियो को वशपुराण कहा है।
२—ब्योरे के लिए देखिए कलि० प्रस्तावना ७-८।

(१) उदाहरणार्थ—

प्रजापति-सर्ग—

प्राजापत्यो मरीचिर्हि मरीचे· कश्यपोऽभवत्।
तस्य देव्योऽभवन् जाया दाक्षायण्यस्त्रयोदश॥
अदितिर्दितिर्दनुष्ठीला दनायु: सिंहिकाविगी।
गोधा वृधा वरिष्ठा च सुरभिर्विनता तथा॥
कद्रूश्चैवेति दुहितृ: कश्यपाय ददौ स च।
तासु देवासुराः सिद्धाः गन्धर्वोरगराक्षसाः॥
वयासि च पिशाचाश्च जज्ञिरेऽन्याश्च जातय.।
तत्रैका त्वदितिर्नामा द्वादशाजनयत् सुतान्॥

अश, विषय व मसले वे ही लिहाज से पुराने नहीं है, वे सम्भवत बहुत कुछ उसी रूप में भी चले आते हैं, जिसमें वे संहित हुए थे।

मित्रश्चैवार्यमाशश्च भगो वरुण एव च।
धाता चैव विधाता च विवस्वाश्च महाद्युति ॥
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते।
द्वन्द्व तस्यास्तु जज्ञाथ मित्रश्च वरुणश्च ह॥
तयोरादित्ययो सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम्
रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भ न्यपतद् वासतीवरे॥
तेनैव तु मूहूर्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी सम्बभूवतु ॥
बहुधा पतिते शुक्र कलशेऽथ जले स्थले।
स्थले वसिष्ठश्च ऋषि सम्बभूवर्षिसत्तम ॥
कुभे त्वगस्त्य सम्भूतो जले मत्से महाद्युति ।
उदियाय ततोऽगस्त्यो शम्यामात्रो महातपा ॥
मानेन सम्मितो यस्मात् तस्मान्मान्य इहोच्यते।
यद्वा कुम्भादृषिर्जात कुम्भेनापि हि मीयते॥
कुभ इत्यभिधान तु परिमाणस्य लक्ष्यते।
ततोऽप्सु गृह्यमाणासु वसिष्ठ पुष्करे स्थित ॥
सर्वत पुष्कर तच्च विश्वेदेवा अधारयन्।
उत्थाय सलिलात्तस्मात् तेपेऽथ सुमहत्तप ॥
नामास्य गुणतो जज्ञ वसते श्रेष्ठ्यकर्मण ।
अदृश्यमृषिभिर्हीन्द्रम् सोऽपश्यत्तपसा पुरा॥
सोमभागानथो तस्मै प्रोवाच हरिवाहन।
ऋषयो वा इन्द्रमिति ब्राह्मणतद्धि दृश्यते।
वसिष्ठश्च वसिष्ठाश्च ब्राह्मणा ब्रह्मकर्मणि।
सर्वकर्मसु यज्ञषु दक्षिणीयतमास्तथा॥
तस्माद्यद्यापि वासिष्ठा सदस्या स्युस्तु कर्हिचित्।
अर्हयद्दक्षिणाभिस्तान् भाल्लवेयी श्रुतिस्त्वियम्॥

—बृहद्देवता (५।१४३—१५९)

पणि असुर—

असुरा पणयो नाम रसापारनिवासिन।
गास्तेऽपजह्रुरिन्द्रस्य न्यगूहश्च प्रयत्नत ॥
बृहस्पतिस्तथा पश्यद् दृष्ट्वेन्द्राय शशस च।
प्राहिणोत्तत्र दूत्येऽथ सरमा पाकशासन ॥

मूल पुराण धार्मिक किंवा साम्प्रदायिक ग्रथ न थे। ये विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रथ थे। पुराणो मे जिस प्रकार उन मसाला की चर्चा है (जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है), जिनके सकलन से

किमित्यत्रायुजाभिस्ता पप्रच्छु पणयोऽसुरा ।
श्रुत कस्यासि कल्याणि किं वा कार्यमिहास्ति ते ।।
अथाब्रवीतान्सरमा दूत्यैन्द्री विचराम्यहम् ।
युष्मान्व्रज चान्विष्यन्ती गाश्चैवेन्द्रस्य पृच्छत ।।
विदित्वेन्द्रस्य दूती तामसुरा पापचेतस ।
ऊचुर्मा सरमे गास्त्वम् इहास्माक स्वसा भव ।।
विभजामो गवा भाग माहिता ह तत पुन ।
सूक्तस्यास्यन्त्यया चर्चा युग्माभिस्त्वेव सर्वश ।।
सा ब्रवीन्नाहमिच्छामि स्वसृत्व वा धनानि वा ।।
पिबेय तु पयस्तासा गवा यास्ता निगूह्थ ।
असुरास्ता तथेत्युक्त्वा तदा जह्रु पयस्तत ।।
सा स्वभावाच्च लौल्याच्च पीत्वा तत्पय आसुरम् ।
पर सवनन हृद्य बलपुष्टिकर तत ।।
शतयोजनविस्तारामतरत्ता रसा पुन ।
यस्या पारे परे तेषा पुरमासीत्सुदुर्जयम् ।।
पप्रच्छेन्द्रश्च सरमा कच्चिद्गा दृष्टवत्यसि ।
सा नेति प्रत्युवाचेन्द्र प्रभावादसुरस्य तु ।।
ता जघान पदा क्रुद्ध उद्गिरन्ती पयस्तत ।
जगाम सा भयोद्विग्ना पुनरेव पणीन् प्रति ।।
पदानुसारिपद्धत्या रथन हरिवाहन ।
गत्वा जघान च पणीन् गाश्च ता पुनराहरत् ।।
—बृहद्देवता (अ० ८, श्लो० २४-३६)

उर्वशी—

पुरूरवसि राजर्षावप्सरा उर्वशी पुरा ।
न्यवसत्समय कृत्वा तस्मिन् धर्म चचार ह ।।
तया तस्य च सवासमनिच्छन्पाकशासन ।
पैतामह चानुराग इन्द्रवज्राापि तस्य तु ।।
स तयोर्विप्रयोगार्थं पार्श्वस्य वज्रमब्रवीत् ।
प्रीति भिन्द्धि तयोर्वज्र मम चेदिच्छसि प्रियम् ।।
तथेत्युक्त्वा तयोर्वज्र प्रीति विभेद मायया ।
ततस्तया विहीन स चचारोन्मत्तवन्नृप ।।

मूलसंहिता बनी थी, उसी प्रकार पुराणो में उन पाँच विषयो का भी निर्देश है, जिनके समवाय को पुराण कहते हैं। यह लक्षण बहुत प्रसिद्ध है, यहाँ तक कि इसके कारण 'पचलक्षण' शब्द पुराण का एक पर्याय हो गया है। अस्तु वह लक्षण इस प्रकार है—

मान सरसि सोऽपश्यदभिरूपामयोर्वशीम्।
सखीभिश्चारुरूपाभि वृता चतसृभिस्तत ॥
तामुपाह्वयत प्रीत्या दुःखात् सा त्वब्रवीन्नृपम्।
अप्राप्याह त्वयाद्येह स्वर्गे प्राप्स्यसि मां नृप ॥
—बृहद्देवता (७।१४७-१५२)

दीर्घतमा—

जीर्णं तु दीर्घतमस खिन्नास्तत्परिचारका
दासा बद्ध्वा नदीतोये दृष्टिहीनमवादधु ॥
तत्रैकस्त्रैतनो नाम शस्त्रेणैनमपाहनत्।
शिरश्चासावुरश्चैव स्वयमेव न्यकृन्तत ॥
हत्वा दीर्घतमास्तन्तु पापेन महता वृतम्।
अगराजसमीपे तु त नद्य समुदक्षिपन् ॥
आत्मागान्यनुदर्च्चैव तत्रोदोन्मोहितो भृशम्।
अगराजगृहे दासीमुशिज पुत्रकाम्यया ॥
राज्ञा च प्रहिता ज्ञात्वा शुद्रा कृत्वारमन्मुनि ।
जनयामास चोत्थाय कक्षीवत्प्रमुखानृषीन् ॥
—बृहद्देवता (४।२१-२५)

शंतनु—

आर्ष्टिषेणस्तु देवापि कौरव्यश्चैव शन्तनु ।
भ्रातरौ कुरुषु ह्येतौ राजपुत्रौ बभूवतु ॥
ज्येष्ठस्तयोस्तु देवापि कनीयाश्चैव शन्तनु ।
त्वग्दोषी राजपुत्रस्तु ऋष्टिषेण सुतोऽभवत् ॥
राज्येन छन्दयामासु प्रजा स्वर्गं गते गुरौ।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रजास्ता प्रत्यभाषत ॥
न राज्यमहमर्हामि नृपतिर्वोऽस्तु शन्तनु ।
(तथेत्युक्त्वाभ्यषिञ्चस्ता प्रजा राज्याय शन्तनुम् ॥
ततोऽभिषिक्ते कौरव्ये वन देवापिराविशत्।)
न ववर्षाऽथ पर्जन्यो राज्ये द्वादश वै समा ॥
ततोऽभ्यगच्छद्देवापि प्रजाभि सह शन्तनु ।
प्रसादयामास चैन तस्मिन् धर्मव्यतिक्रमे ॥

सामने घूमने लगें—टटकी हो जाय, अर्थात् यहाँ पुराण का पारिभाषिक अर्थ विवक्षित है, अन्यथा 'पुराण' शब्द का अर्थ पुराना मात्र है।[1] यह यास्कवाला अर्थ एक जगह पुराण में भी दुहराया गया है, यथा—

> पुरा परपरा वक्ति
> पुराण तेन वै स्मृतम्।
> निरुक्तिमस्य यो वेद
> सर्वपापै प्रमुच्यते।।
> —पद्मपुराणम् ।२।५३

बौद्ध-जैना के प्रारंभिक साहित्य में पुराण-तुल्य वाङ्मय नहीं है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस समय ये सम्प्रदाय चले और इनके आरंभिक साहित्य का निर्माण हुआ, उस समय तक पुराण सर्वत्र ऐतिहासिक वाङ्मय था और उसका किसी मत से सम्बन्ध न था, अर्थात् वह ब्राह्मण-श्रमण की समान सम्पत्ति थी। अतएव श्रमणा (बौद्ध-जैना) को इस प्रकार के किसी निजी साहित्य की आवश्यकता ही न थी।

वायु, ब्रह्माड में एक स्थान पर पुराणो को इतिहास कहा है। इधर भारत ने कई जगह अपने को पुराण कहा है। अर्थात् पुराण और इतिहास ये दोना शब्द समानार्थ थे। यह बात या भी प्रतिपादित होती है कि गौतम धर्मसूत्र में—जो धर्मसूत्रा में सबसे पुराना है[2]—वेद, धर्मसूत्र, वेदाग तथा पुराण एक साथ (प्रमाण-ग्रथ के रूप में) गिनाए गए हैं, उधर सुत्तनिपात ३, ७ (सेल सुत्त) में वेदत्रयी तथा वेदाग के सग इतिहास पचम कहा गया है। इन दोना नामावलियो में इतना साम्य है कि अनायास मानना पडता है कि इनम के पुराण और इतिहास शब्द एक ही वाङ्मय के दो नाम है।

अर्थशास्त्र म (जैसा कि राज्यशास्त्र का ग्रथ होने के कारण, उससे आशा करनी चाहिए) इस सम्बन्ध में अधिक ब्योरे मिलते हैं। चाणक्य के मतानुसार साम्, ऋक् और यजुस् ये तीनों वेद 'त्रयी' हैं। अथर्ववेद तथा इतिहास वेद भी वेद हैं। इतिहास शब्द का व्यवहार उन्होने व्यापक अर्थ में किया है। आज-कल के पाश्चात्य विद्या विभाजन के अनुसार शास्त्र के जिस सदर्भ को 'सोशियालॉजी' कहते हैं, उसी से मिलते जुलते एक सन्दर्भ को उन्होन इतिहास कहा है और उसके अग इस प्रकार गिनाए हैं—पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र—ये इतिहास हैं।

इससे बढकर और कौन प्रमाण हो सकता है कि मौर्य-काल तक पुराण (उस समय के दृष्टिकोण के अनुसार) विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ थे[3] और उनका प्रयोग राजनैतिक था। इसी कारण कौटिल्य ने विधान किया है कि राजा दिन का उत्तरार्ध इतिहास सुनने में बिताव। वे लिखते हैं कि ऐसा करने से राजा में राज-काज की प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इसी दृष्टि से उन्होने यह भी लिखा है कि अर्थशास्त्रज्ञ मन्त्री विपथगामी

---

१ कवि पुराण अनुशासितारम्—गीता
पुराणमित्येव न साधु सर्वम्—कालिदास

२ सभवत ४५वीं० शती ई० पू०, देखो विण्टर नित्जा

३ इसी से कुछ न अपने शिष्यो को आख्यान सुनने की मनाही की थी अर्थात् विषय ऐहिक (=राजनैतिक) था।

सामने घूमने लगें—टटकी हो जाय, अर्थात् यहाँ पुराण का पारिभाषिक अर्थ विवक्षित है, अन्यथा 'पुराण' शब्द का अर्थ पुराना मात्र है।[1] यह यास्कवाला अर्थ एक जगह पुराण में भी दुहराया गया है, यथा—

पुरा परपरा वक्ति
पुराण तेन वै स्मृतम्।
निरुक्तिमस्य यो वेद
सर्वपापै प्रमुच्यते॥
—पद्मपुराणम् ।२।१३

बौद्ध-जैनो के प्रारभिक साहित्य में पुराण-तुल्य वाड्मय नही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस समय ये सम्प्रदाय चले और इनके आरभिक साहित्य का निर्माण हुआ, उस समय तक पुराण सर्वत्र ऐतिहासिक वाड्मय था और उसका किसी मत से सम्बन्ध न था, अर्थात् वह ब्राह्मण-श्रमण की समान सम्पत्ति थी। अतएव श्रमणो (बौद्ध-जैनो) को इस प्रकार के किसी निजी साहित्य की आवश्यकता ही न थी।

वायु, ब्रह्माड म एक स्थान पर पुराणो को इतिहास कहा है। इधर भारत ने कई जगह अपने को पुराण कहा है। अर्थात् पुराण और इतिहास ये दोनो शब्द समानार्थ थे। यह बात या भी प्रतिपादित होती है कि गौतम धर्मसूत्र मे—जो धर्म-सूत्रो में सबसे पुराना है[2]—वेद, धर्मसूत्र, वेदाग तथा पुराण एक साथ (प्रमाण-ग्रथ के रूप में) गिनाए गए है, उधर सुत्तनिपात ३, ७ (सेल सुत्त) में वेदत्रयी तथा वेदाग के सग इतिहास पचम कहा गया है। इन दोनो नामावलियो में इतना साम्य है कि अनायास मानना पडता है कि इनमे के पुराण और इतिहास शब्द एक ही वाड्मय के दो नाम है।

अर्थशास्त्र में (जैसा कि राज्यशास्त्र का ग्रथ होने के कारण, उससे आशा करनी चाहिए) इस सम्बन्ध में अधिक ब्योरे मिलते है। चाणक्य के मतानुसार साम्, ऋक् और यजुस् ये तीनो वेद 'त्रयी' है। अथर्ववेद तथा इतिहास वेद भी वेद है। इतिहास शब्द का व्यवहार उन्होने व्यापक अर्थ में किया है। आज-कल के पाश्चात्य विद्या-विभाजन के अनुसार शास्त्र के जिस सदर्भ को 'सोशियालॉजी' कहते है, उसी से मिलते-जुलते एक सन्दर्भ को उन्होने इतिहास कहा है और उसके अग इस प्रकार गिनाए है—पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र—ये इतिहास है।

इससे बढकर और कौन प्रमाण हो सकता है कि मौर्य-काल तक पुराण (उस समय के दृष्टिकोण के अनुसार) विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ थे[3] और उनका प्रयोग राजनैतिक था। इसी कारण कौटिल्य ने विधान किया है कि राजा दिन का उत्तरार्ध इतिहास सुनने में बितावे। वे लिखते है कि ऐसा करने से राजा में राज-काज की प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इसी दृष्टि से उन्होने यह भी लिखा है कि अर्थशास्त्रज्ञ मन्त्री विपथगामी

---

१ कवि पुराण अनुशासितारम्—गीता
पुराणमित्येव न साधु सर्वम्—कालिदास

२ सभवत ४-५वी० शती ई० पू०, देखो विण्टर नित्जा

३. इसी से बुद्ध न अपने शिष्यो को आख्यान सुनने की मनाही की थी अर्थात् विषय एहिक (=राजनैतिक) था।

राजा को इतिवृत्त एव पुराण द्वारा बोध करावे। ऐसा करने के लिए पौराणिक रहता था[1]। वह भी एक राजपदाधिकारी था (अर्थशास्त्र, ५, ३ पृ० २४७)। चाणक्य ने अन्य राजपदाधिकारियो के साथ साथ पौराणिक सूत और मागध के वेतन (भरणीय) की व्यवस्था की है। अन्यत्र कहा है कि शत्रु के नाश के लिए उसके राष्ट्र म पौराणिको द्वारा उसके विरुद्ध प्रचार कराया जाय।

उसी में एक और उल्लेख बड़े महत्त्व का है। प्रतिलोम वर्णो के विवरण में यह बताकर कि वैश्य पिता और ब्राह्मणी माता से मागध तथा क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से सूत होता है, चाणक्य कहते है कि पौराणिक सूत और मागध दूसरे हैं, वे तो ब्राह्मण क्षत्रिय से भी बढकर होते है।

वस्तुत है भी ऐसा ही। अनुलोम तथा प्रतिलोम प्रजा के जो वर्ण निर्धारित किए गए है, वे तो आरोपित वर्ण है। अर्थात् उन नामो की जातियो का प्रकृत अस्तित्व भी था। अनुलोम प्रतिलोम जातियो, वर्गीकरण के निमित्त, उन प्रकृत जातियो के तुल्य मान ली गई। इस प्रकार के मिश्र वर्णो के लगभग पचहत्तर भेद मिलते हैं। इनमें निषाध, पारशव, आभीर, काम्प, यवन, रौनक एव वैदेहक के नाम भी परिगणित है। इन जातियो का असदिग्ध रूप से स्वतन्त्र अस्तित्व था। इनमें से कई तो विदेशी थी। ऐसी अवस्था म, अनुलोम प्रतिलोम जातियो में इनकी परिगणना का तात्पर्य यही हुआ कि वे मिश्र जातियो इनके तत्सम मानी गई। फलत मिश्र जातियो म सूत एव मागधो की गिनती का यह अर्थ हुआ कि तत्प्रकारक साकय प्रकृत सूत मागधो के तुल्य था। वस्तुत पहिले तो सूत मागध की जाति भी नही बनी थी, उनका पेशा ही था। शुक्ल यजुर्वेद म ऐसे सूत मागधो की चर्चा है कि जो शूद्र वा ब्राह्मण नही। इसका असदिग्ध तात्पर्य यह हुआ कि सूत मागध सभी जाति के होते थे। इसी प्रकार पुराणो के सौतिनाम म भी यही लक्षण है, अन्यथा जातिगत सूत का पुत्र तो सूत ही होगा।

यहा तक जो कुछ कहा गया है, उसका साराश यह हुआ कि (क) पुराण साहित्य बहुत पुराना है, (ख) वह मूलत ऐतिहासिक साहित्य है, (ग) उसके निधायक सूत मागध समाज म बहुत माने जाते थे और (घ) उनकी उपजाति न थी।

अब यह प्रश्न रह जाता है कि पुराणो ने कब से अपना ऐतिहासिक रूप खोकर वर्तमान साप्रदायिक रूप ग्रहण करना आरभ किया। हमने ऊपर देखा है कि चाणक्य के समय तक वह ऐतिहासिक वाङ्मय था किन्तु ईसवी सन् की प्रारभिक शतियो के कई महायान बौद्ध ग्रन्थ वर्तमान पुराणो के अनुकरण पर है। यथा ललितविस्तर अपने को पुराण ही नही कहता, बल्कि उसम पुराणो के बहुतर विषय भी ज्यो के त्यो विद्यमान है। सद्धर्म पुडरीक और कारडव्यूह-जैसे ग्रन्थो की साप्रदायिक पुराणो से समानता है। यही नही, महावस्तु तक के कुछ अश इसी ढग के है।[2]

---

१ पुराण पद्धति की चर्चा आरभिक बौद्ध साहित्य म भी है।

२ Another point which would seem to bear out the theory that the earlier Puranas had come into being, with, to all intents and purposes, their present form as early as in the first centuries (प्रारम्भिक शतियो म) of the Christian era, is the striking resemblance between the Buddhist Mahayana texts of the first centuries of the Christian era and the Puranas The ललित विस्तर not only calls itself a "Purana but really has much in common

इमस यह निरूपण हुआ कि पुराणो का वतमान रूप चाणक्य और ई० सन की प्रारभिक शतियो क बीच का ह जिसका सीधा तात्पय यह हुआ कि गुप्तकाल से जो ब्राह्मण पुनरुत्थान एक अश्वमध युग के रूप म प्रारभ हुआ था उसी म इन पुराणो का प्रति सस्करण भी चला। उस युग म अश्वमध की लगातार लडी क कारण पुराण पाठ का सिलसिला चला करता था अत वह ब्राह्मण प्रचार का एक बडा सुगम और सामयिक माग था। फलत उसका लाभ उठाया गया और पुराणो को यह रूप दिया गया।

किन्तु जिन लोगो न पुराणो का यह रूप दिया उन्ह उनके ऐतिहासिक अश से विशप सबध न था। वस्तुत ऐतिहासिक अश तो उस समय तक ही नही उसस कई शती इधर तक सुरक्षित और अद्यतन बनाए रख गए। फलत पुराणो म ई० दूसरी शती तक के महत्त्वपूण ऐतिहासिक मसाले निहित ह। किन्तु इसक बाद ऐतिहासिक उपयोग के लिए पुराणो का बस्ता बाध दिया जाता ह और वह एस लोगो के हाथ म पड जाता ह जिनकी धार्मिक एव साम्प्रदायिक सूझ बडी सूक्ष्म तथा उडान बहुत ऊची थी परन्तु जो ऐतिहासिक विषयो म निरे कोरे तथा सवथा उदासीन थ। इसका परिणाम यह हुआ कि यदि व ऐतिहासिक मसालो को अद्यतन नही बनाए रहे तो उन्होने उस प्राय छुआ छेडा भी नही।[1] फलत वह सारी निधि पुराणो की धार्मिक साम्प्रदायिक इत्यादि इत्यादि सामग्री के भारी अटाबर म पड गई। इसके कारण जहा एक ओर यह दब गई वहा दूसरी ओर दबी दबाई पडी भी रह गई। और इस प्रकार विगत पद्रह सोलह सौ वर्षो की गर्मी-सर्दी और उत्थान पतन से बची रह गई। फलत उस सामग्री का उद्धार करक अपना पुराना इतिहास प्रामाणिकता से कहा जा सकता ह।

---

with the Puranas Texts like सधमपुडरीक कारडव्यूह and even some passages of महावस्तु remind us of the sectarian Puranas

—विण्टर पृ० ५२५

दिगम्बर जनो न सातवी शती स पुराण रचना आरभ की—The Digambar Jains too composed Puranas from 7th century onwards

—विण्टर पृ० ५२५

[1] गुप्त काल म ऊपर उल्लिखित पौराणिको न ऐतिहासिक प्रकरणो म जो पवन्द लगाए था वे का शाखा या धार्मिक और अयुक्तिक भावना क कारण अलग दाग पडत ह।

वे मेरे मन के बहुत निकट हैं

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

[पं० माखनलालजी चतुर्वेदी की लेखनी की नोक और उनकी वाणी का भेदने का गुण एक दूसरे से होड करते हुए प्रतीत होते है। लेखनी उनकी अँगुलियों में अणुशक्ति के एकत्रित प्रभाव का अकन करती है और वाणी साहित्यिकता के अवगुण्ठन में वैज्ञानिकता का तीखापन लिये रहती है। व्यक्तित्व का सम्मान वे अवश्य करते है पर 'स्व' को दबाकर नही। वह जो कहना चाहते है वही कहन है। खन्नाजी का व्यक्तित्व उनके शब्दो में 'फोटोग्राफ' की भाँति स्पष्ट उभरकर भी साहित्यिकता के पुट से खाली नही।

चतुर्वेदीजी खन्नाजी की छोटी छोटी बातो पर ध्यान देने की प्रवृत्ति को अपने आकर्षण का प्रथम कारण बतलाते है। साथ ही 'कटाक्ष' के प्रयोग म उनके भाषा के व्यावहारिक ज्ञान के अभाव की ओर सकेत करने में भी वे नही चूकते।

चतुर्वेदीजी एक कुशल खिलाडी की भाँति खन्नाजी की चुटकियों, आलोचनाओ और नाराजगियो का सामना करते हैं, क्योंकि उन्हे वे अपने प्रति रहनेवाली खन्नाजी की स्नेह-भावना के पैनेपन को मान पर चढाये रखने के लिए आवश्यक समझते है। चतुर्वेदीजी खन्नाजी को अपने सात प्रमुख सहायको में स्थान देते है। शिक्षक की पाँच कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए चतुर्वेदीजी एक स्थल पर कहते है, "ज्ञानजीवी होने की सीखेपन की यह भावनाएँ जब देश के किसी नागरिक का अपने शिक्षण द्वारा निर्माण करती है, तो देश की आवश्यकता का तरुण निर्माण करने की अपेक्षा, वे अपने जैसा एक आदमी गढने लगती है जिससे कि शिक्षण की अदूरदर्शिता से देश मे उचित पीढी का निर्माण नही होने पाता। मैं अत्यन्त विश्वास से कह सकता हूँ कि खन्नाजी के शिक्षक म मैं उक्त दोष प्राय नही पाता, वे अपने तरुणो का जीवन-निर्माण करते समय अत्यन्त सजग दृष्टि से देखनेवाली तथा अपने विद्यार्थी को उच्च शिखर पर देखकर गर्वित होनेवाली शिक्षकों की परम्परा में आते है।"

चतुर्वेदीजी के शब्दों में खन्नाजी के पास "पिता की ममता, मित्र की सहृदयता, रक्षक की सहायता, योद्धा की ललकार, शास्त्री का चिन्तन, मजदूर का श्रम, श्रम की प्रतिष्ठा और परीक्षा का श्रेष्ठ परिणाम विद्यार्थी को मिल सकता है।" उनके अनुसार, "प्रत्येक स्थान का स्थानीयत्व विश्व म व्यक्तियो के मूल्याकन म जो बाधाएँ उपस्थित किया करता है, उन समस्त बाधाओ से परे मेरे विचार से खन्नाजी अपने विद्यार्थियो, अपनी सस्था और अपने मित्रो में स्नेह, और आदर का श्रेष्ठ स्थान रक्खेंगे।"]

भाई हीरालालजी खन्ना से परिचय हुए बीस वर्ष हो गये। वे उस समय डी० एन० एम० डी० कॉलेज के प्रिंसिपल कदाचित् हुए ही थे और इस वर्ष सन् १९५० में वे अपने कधो का बोझ उतारकर कालेज की सेवा से मुक्त हो गये है। उन्होंने और कालेज कमेटी ने बी० एन० एम० डी० कालेज का प्रिंसिपल-पद प्रोफेसर सद्गुरुशरणजी अवस्थी को सौपा है।

खन्नाजी जब प्रथम मिले तब परिचय हुआ सद्गुरुशरणजी के द्वारा। किन्तु खन्नाजी का व्यक्तित्व इतना सजग और स्नेहमय है कि मैं पहिली ही बार मिलकर उनसे बहुत प्रभावित हुआ, और

श्री सद्गुरुजी के साथ होने के कारण हमारे मिलन मे शिष्टाचार के सम्बन्ध का प्रश्न ही पैदा नही हुआ। उस समय वे भरतपुर-सम्मेलन में गये हुए थे, वही भेंट हुई। जब मै सन् १९३१ मे स्वर्गीय भाई गणेशशकरजी विद्यार्थी के बलिदान के पश्चात् कानपुर गया तब पूज्यवर पडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी भी कानपुर पधारे थे। चर्चा मे मैने यह इच्छा प्रकट की कि मै उस घटना-स्थल को देखना चाहूँगा जहाँ गणेशजी का बलिदान हुआ। मुझे ऐसा लगा कि शायद ठीक स्थान का उस समय तक किसी को पता नही था। सध्या को मैने भाई हीरालालजी खन्ना से कहा और दूसरे दिन उन्होने घटना की पूरी जानकारी देते हुए वे सब स्थान मुझे बतलाय, जिनके बीच बलिदान के पहले गणशजी खतरा से खेलकर जन-सेवा करते थे। उस समय स्थानो को दिखाते हुए हीरालालजी का गद्गद हो उठना और कष्ट से उनकी आँखो का भर आना मानो वे स्नेहबिन्दु थे जिन्हे देखकर और उनकी आँखो को पाकर मैने खन्नाजी की सहृदयता का एक मूल्य सदा के लिए अपने जीवन पर निश्चित कर लिया। खन्नाजी जब मिलते है, तब दो-चार चुटकियाँ, दो-चार आलोचनाएँ, दो-चार नाराजगियाँ मेरे लिए तैयार रखते है। मेरे प्रति रहनेवाली उनकी स्नेह भावना के पैनेपन को सान पर चढाये रखने के लिए मानो उनकी चुटकियाँ उनकी परम आवश्यकताएँ है। किन्तु कभी-कभी खन्नाजी की सावधानी खन्नाजी पर ही बडी उलटी पडती है। एक बार की बात है—यानी भरतपुर-सम्मेलन की कि एक हिन्दी प्रेमी अन्य भाषा-भाषी बहन ने बडा तेजस्वी भाषण दिया। उन्होने कहा, "हम तो अपने हाथो मे चूडियाँ पहनकर केवल अपने पति के ही अधिकार मे रहती है, किन्तु पाँव में चूडीदार पायजामा पहनकर राजा लोग सैकडो अफसरो और अँगरेजो को अपना पति बनाये घूमते है। भारत की नारी एक राजा की पराधीनता से कही श्रेष्ठ स्थान पर है। नारी अपने गृह-जीवन में अपने परिवार, अपने कुटुम्ब और गृह की व्यवस्था स्वय करती है। किन्तु राजा वह, जो कहा राजा जाय, किन्तु अपनी कोई व्यवस्था न कर सके।" भाषण लम्बा था, खन्ना जी बाग बाग[1] हो गये।

'कटाक्ष' शब्द हिन्दी में ताने के लिए काम मे आता है, किन्तु भाषणकर्ता देवीजी की मातृ-भाषा में उस शब्द के अर्थ होते है—'शृगार भरे नैनो से दृष्टिपात करना।' ज्यो ही सम्मेलन का वह अधिवेशन समाप्त हुआ, खन्नाजी अपने श्रेष्ठ स्वभाव के अनुसार उपरोक्त वक्ता बहन को उनके सुन्दर भाषण पर धन्यवाद देने पहुँचे। मै वही खडा था, साथ सद्गुरुशरणजी भी थे। खन्नाजी बोले—"आज आपने जो-जो कटाक्ष किये है वे बहुत ही अच्छे थे, ऐसे ऐसे कटाक्ष तो कोई नही कर सकता।" बहन मुझसे कहने लगी, चलिए माखनलालजी घर चलें, यहाँ क्यो खडे है? जब मुकाम पर पहुँचकर मैने खन्नाजी से कहा—"आपके कटाक्ष शब्द का अर्थ आप जानते है?" उसके पश्चात् तो चि० श्रीनिवास, आयुष्मान सद्गुरुशरण और सब लडको ने खन्नाजी को घेर लिया। आज भी जब कभी हीरालालजी अपने निर्मल आदर्श-कथन के आनन्द भरे आसमान पर होते है, मै धीरे से कह दिया करता हूँ—"कभी-कभी कटाक्ष भी किया कीजिए।" और जो चौकडी उनके और मेरे आसपास बैठी रहा करती है, वह खन्नाजी के मुखमडल पर खिचनेवाली तसवीरो और टूटनेवाले शब्दो का आनन्द लिया करती है।

राष्ट्रीय-क्षेत्र मे साहित्य, कला, काग्रेस, अध्ययन और पुरुषार्थ सबके परे मेरा सम्बन्ध क्रान्तिवादी मित्रो से भी रहता रहा है। मै ऐसे मित्रो का अनन्य स्नेहपात्र रहना चाहता, जो कृपापूर्वक मेरे इस कठोर युद्ध में शामिल होते और अपने गौरव और अपने आर्थिक साधनो को मेरी दिशा मे बाजी पर चढा देते।

[1] अत्यन्त प्रसन्न।

इस दिशा में देश में जिन सात व्यक्तियों को मैं सदास्त्र शान्ति की सहायता के अपने जीवन की यादों में मूल्यवान् मानता हूँ, उनमें भाई खन्नाजी के घर और साधनों का उपयोग मेरे जीवन की एक श्रेष्ठ और उल्लेख योग्य घटना है।

शिक्षण-विभाग के व्यक्ति के साथ मुझे पाँच कठिनाइयाँ दीखा करती हैं। एक तो छोटी उम्र के बच्चों को शिक्षण देते-देते शिक्षण-विभाग का व्यक्ति जिस स्वर और जिस लहजे में क्लास-रूम के बच्चों से बातचीत किया करता है, उसी स्वर और उसी लहजे में भोलेपन से वह संघर्ष और समस्याओं से भरी दुनिया में भी बातें करने लगता है। दूसरी यह कि शिक्षण-संस्था और उसकी कुर्सी के सम्मान की भावना ज्ञान की भयंकर परिमितता में भी शिक्षण विभाग के व्यक्ति में लोगों से सम्मान वसूल करने की आदत पैदा कर देती है। तीसरी, बैठक और कुर्सी की आदत पुरुषार्थों और प्रयत्नों की क्षमता कम कर देती है। चौथे पाठ्य-पुस्तकों के घेरे में अपने को ज्ञान का अधिकारी मानकर स्कूली वातावरण का व्यक्ति विश्व के विस्तृत ज्ञान और सम्पर्क से अपने को वंचित बना लेता है। और पाँचवें कम जानकारी और अधिक बोलने के व्यवसाय के नाते शिक्षण के वातावरण द्वारा शिक्षक के अंतःकरण को समष्टि रूप से एक धक्का लगता है। और गौण रूप से मैं यह भी मानता हूँ कि शिक्षक में यह कमी बेजाने आ जाती है कि अपनी बात समझाते समय वह अपने सुननेवाले में अपने प्रति अटूट विश्वास जाग्रत करने की अपेक्षा अपने अज्ञान या कम ज्ञान रखनेवाले श्रोता को निरुत्तर करने की कला में अधिक प्रवीण हो जाता है। निरुत्तर होकर श्रोता वक्ता की बात में विश्वास नहीं करता। श्रोता विद्यार्थी केवल इस बात की तलाश में रहता है कि वह कब और किस तरह अपने निरुत्तर करनेवाले शिक्षक के प्रति असंतोष और विद्रोह व्यक्त कर सके। मैं भी स्वयं शिक्षक के नाते जीवन प्रारंभ करनेवाले व्यक्तियों में से हूँ। अतः उपरोक्त अधिकांश कठिनाइयाँ और कमजोरियाँ स्वयं मैंने अपने में पायी हैं, और अनुभव किया है कि यह मेरे शिक्षकत्व से पाये हुए वरदान हैं। ज्ञानजीवी होने की सीधेपन की यह भावनाएँ जब देश के किसी नागरिक का—अपने शिक्षण द्वारा—निर्माण करती हैं, तो देश की आवश्यकता का तरुण निर्माण करने की अपेक्षा, वे अपने जैसा एक आदमी गढ़ने लगती हैं जिससे कि शिक्षण की अदूरदर्शिता से देश में उचित पीढ़ी का निर्माण नहीं हो पाता। साथ ही गलत आदर्शवाद और आज्ञाकारिता की सहज-सुलभ धारणाओं के कारण, वे ही विद्यार्थी शिक्षकों द्वारा अधिक आदर पाते हैं जो शिक्षक-समूह की अधिक सेवा कर सकें। और वे विद्यार्थी कठिनाइयाँ उठाते हैं जो अपनी प्रतिभा, अपने श्रम तथा अपनी लगन के द्वारा आत्म-परिवर्तन और युग-परिवर्तन के लिए मूल्यवान् हुआ करते हैं!

मैं अत्यन्त विश्वास से कह सकता हूँ कि खन्नाजी के शिक्षक में मैं उक्त दोष प्रायः नहीं पाता। वे अपने तरुणों का जीवन-निर्माण करते समय अत्यन्त सजग दृष्टि से देखनेवाली तथा अपने विद्यार्थी को उच्च शिखर पर देखकर गर्वित होनेवाली शिक्षकों की अन्यतम श्रेणी में आते हैं। मैंने जब अपने छोटे भाई को उच्च शिक्षण के लिए खन्नाजी के पास भेजा तब इस निश्चिन्तता के साथ कि पिता की ममता, मित्र की सहृदयता, रक्षक की सहायता, योद्धा की तलवार, शास्त्री का चिन्तन, मजदूर का श्रम, श्रम की प्रतिष्ठा और परीक्षा का श्रेष्ठ परिणाम विद्यार्थी को वहाँ मिल सकेगा।

एक बार की बात है कि एक विद्यार्थी पेचिश से बीमार हुआ। यों नित्य खन्नाजी ९ और १० बजे के बीच सो जाते हैं। किन्तु उस विद्यार्थी के घर जाने के बाद मैंने उन्हें रात भर उस विद्यार्थी का मैला साफ करते देखा है। उन दिनों मैं अज्ञातवास जैसी अवस्था में उनके पास रह रहा था।

लोग जानते है कि सन् बयालीस में खन्नाजी के सिर पर प्रहार किया गया। उनका सिर फट गया, खून बहने लगा। सन् बयालीस का युग! अफसरों की कृपा, खन्नाजी पर टूट पडी। ज्वाँइट डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से लगाकर पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा अन्य लोगो ने उनका घर घेर लिया। खन्नाजी से पूछा जाने लगा कि वे इस घटना में किन किन शक्तियो का हाथ देखते है। खन्नाजी अपने किसी विद्यार्थी का सकट म पडना नही सह सकते थे। उन्होने स्पष्ट कहा कि इस घटना मे किसी भी विद्यार्थी का कोई हाथ नही। मुझमे उन्होने कहा कि वे अपने प्राणो के मोह मे अपने किसी विद्यार्थी पर कभी सकट आने द, यह नही हो सकता।

एक बार उनका एक विद्यार्थी क्रातिवादी हो गया। महात्माजी और नेहरुजी की गिरफ्तारी तथा देश में काग्रेस के आन्दोलन में कुछ विद्यार्थी ज्वाला में कूद पडे। यह विद्यार्थी उन्ही में से एक था। सकटो से बाहर निकलने के लिए जब उसके वेश परिवर्त्तन की आवश्यकता हुई तो उसने खन्नाजी के वस्त्र पहने और खन्नाजी का ही फटा बाँधा जब वह जाने को प्रस्तुत हुआ तो तखत पर लेटे-लेटे मेरे मुँह से अचानक निकल गया—"कहा कहो छवि आज की भले बने हो नाथ।" विद्यार्थी ने प्रणाम किया और वह स्वच्छ निकल गया। विद्यार्थी गोरखपुर जिले का था और बाबा राघवदास के आशीर्वादो से अभिषिक्त।

मेरे मन को सतोष होता था जब मै देखता था कि खन्नाजी किसी लाइब्रेरी से आनेवाले पत्रो की बडी राशि लेकर बैठते जिनमें समस्त प्रातो के पत्र होते और प्रात काल पढे जाने के पश्चात् वे समस्त दैनिक, साप्ताहिक आदि नियमपूर्वक उनके घर से लौटा दिये जाते।

प्रतिभा और श्रम में कमजोर विद्यार्थियो को तैयार करने में महीनो पहले से पीछा करने और सहानुभूति-पूर्वक विद्यार्थी का साहस न गिरने देने के शिक्षक धर्म में खन्नाजी अधिक सफल और श्रेष्ठ रहे है। उनका विस्तृत दृष्टिकोण ऐसा रहा है कि वे समस्त राजनैतिक दलो के नेताओ के भाषण अपनी शिक्षण-सस्था में होने देने और समस्त दृष्टिकोणो को विद्यार्थियो के सम्मुख रखने में श्रेष्ठता अनुभव करते।

मुझे बी० एन० एस० डी० कालेज का वातावरण खन्नाजी के समय मे पारिवारिक वातावरण सा मालूम होता था, और मै जब कभी सस्था के शासन सबधी कार्यो की अपनी क्रिया से आलोचना भी करता तब मै देखता कि सस्था का तोल नही बिगडता।

एक बार सस्था में कोई समारोह हुआ, शायद वार्षिक स्नेह सम्मेलन था। उसी के बीच एक दिन कवि-सम्मेलन था। यो मै कवि सम्मेलनो का अध्यक्ष होने से अरुचि रखता हूँ तो भी भाई खन्ना जी की आज्ञा, मै अध्यक्ष हो गया। खन्नाजी ने मुझसे कहा था कि आप मेरे विद्यार्थियो में सम्पूर्ण अनुशासन देखेंगे। अधिकाश अवसरो पर मैने सचमुच उनके विद्यार्थियो में श्रेष्ठ अनुशासन देखा है। किन्तु उस दिन, कहते है, कुछ बाहर के विद्यार्थी आ गये और जरा सा हल्ला हो गया। मेरे मन को अच्छा नहीं लगा। अनुशासन की कठोरता मेरी बहुत पुरानी कमजोरी है। सभा के अध्यक्ष ने कहा, यानी मैने कहा, 'विद्यार्थियो की इस गडबड का एक ही पुरस्कार दिया जाता है—माखनलाल चतुर्वेदी अपनी पुस्तकें नहीं पढ़ेगा।" विद्यार्थियो और आचार्यो, सबने, इस बात में कष्ट अनुभव किया। उन्हे लगा जैसे अध्यक्ष ने उन्हें अकारण दडित किया है। पर मेरा निश्चय न बदला। किन्तु वातावरण इतना निर्मल रहा कि मै खन्नाजी की सस्था को अपना परिवार ही मानता रहा हूँ। मुझे अत्यधिक प्रसन्नता उस

समय हुई जब मैंने देखा कि विद्यार्थी स्वय खन्नाजी द्वारा अपनी श्रेष्ठ पढाई पर सम्मानित किये जाते है और उनकी आर्थिक सहायता की व्यवस्था की जाती है।

सघर्पमय जीवन में खन्नाजी सघर्ष प्रिय है, किन्तु उनके जीवन की कोमलता और उच्चता को जो मित्र जानते है, उनके निकट हीरालालजी सघर्षो की अपेक्षा अटूट विश्वास और अत्यधिक सहृदयता की मूर्ति है।

मैं चिरजीव नन्दोजी तथा सौभाग्यशील्ा पुष्पाजी को अपने ही बेटे बेटी मानता हूँ, और यह अनुभव करता हूँ कि अपने अज्ञातवास और जीवन की कठिनाइयो के अनेक कठोर क्षणो में मैंने भाई खन्नाजी को बधु की तरह पाया है।

क्राति और साहित्य दोनो ही युगो में प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा और अर्थ के क्षेत्र म उन पर बोझ ही डालता रहा हूँ। प्रत्येक स्थान का स्थानीयत्व विश्व में व्यक्तियो के मूल्याकन में जो बाधाएँ उपस्थित किया करता है, उन समस्त बाधाओ मे परे मेरे विचार से खन्नाजी अपने विद्यार्थियो, अपनी सस्था और अपने मित्रो में स्नेह और आदर का श्रेष्ठ स्थान रखेंगे।

यह मैं 'जो कुछ लिखना चाहता था' वह नही है, मेरे स्वास्थ्य की वर्तमान अवस्था में 'जो लिखा जा सका वह है।

भाई खन्नाजी से अभी तो बहुत कहना है। उनकी बहुत सुनना है। वे मेरे मन के बहुत निकट है।

अँगरेजी वैज्ञानिक शब्दावली

डा० रघुवीर, एम० ए०, पी-एच० डी० (लन्दन), डी० लिट् एट फिल (हालैंड)
सदस्य, भारतीय संविधान सभा, नागपुर

[हिन्दी-जगत् डाक्टर रघुवीर से सुपरिचित है। हिंदी के राष्ट्रभाषा हो जाने पर हिंदी कोष- निर्माण में जो उन्होंने अद्वितीय सहायता दी है और दे रहे है, उसका हिंदी समाज चिर ऋणी रहेगा। कोष के निर्माण के लिए वे सब प्रकार से योग्य और अधिकारी है। श्री हीरालाल खन्ना ने साहित्य सम्मेलन के एक अधिवेशन में विज्ञान-परिषद् के सभापति के मंच से अपने भाषण में अँगरेजी पारिभाषिक शब्दो को अपनाने का परामर्श दिया था। डाक्टर रघुवीर का मत ठीक उनके विपरीत है। उनके ये वाक्य बडे महत्त्व के है—"हमें अपनी भावी पीढियो और उन ८० प्रतिशत भारतीयों के दृष्टिकोण से सोचना चाहिए जो अँगरेजी नहीं जानते।"]

हमारी शिक्षा का माध्यम भारतीय होना चाहिए, इसे सभी मनुष्य मानते है, पर कुछ मनुष्य यह चाहते हैं कि हमारी भाषाओ को अँगरेजी की वैज्ञानिक शब्दावली अपना लेना चाहिए। वे समझते है कि आंग्ल वैज्ञानिक शब्दावली अवश्य ही अंताराष्ट्रीय है और उसे अपनाने से हमें समस्त ससार के विज्ञान को समझने में सुगमता होगी। वे मनुष्य भ्रांति मे है। अँगरेजी की वैज्ञानिक शब्दावली अताराष्ट्रीय नही है। यदि शब्द चयन में विभिन्न शब्दों को हम अताराष्ट्रीयता की कसौटी पर कसें तो हमे ससार की समस्त भाषाओ के शब्दकोषों में प्रत्येक शब्द देखना पड़ेगा, यदि वह सब कोषों में आता है, तो हम भी उसे रखेंगे अन्यथा नही। यह बड़ी हास्यास्पद कसौटी होगी। अपनी भाषा का निर्माण करते समय, किसी भी देश ने अन्ताराष्ट्रीयता के दृष्टिकोण को नहीं अपनाया। उन्होंने केवल अनुकरण ही नहीं किया, अपितु अपनी भाषा की प्रतिभा के अनुसार उसे विकसित किया है।

हम अनुवाद क्यो करते है? अनुवाद करने से हम विविध भाषाओं के साहित्य को सरलता-पूर्वक समझ सकते है, उन भाषाओं के सीखने का श्रम बच जाता है और समय नष्ट नही होता। विदेशी भाषाओं का अध्ययन देश के सब मनुष्य नही कर सकते। जनसाधारण में ज्ञान-विज्ञान फैलाने के लिए अनुवाद आवश्यक ही है। विदेशी भाषाओं के माध्यम से सीखने से हमारे मस्तिष्क के विकसित

होने में बाधा होती है और हम अपनी बपौती को सर्वथा भूल जाते है, उसकी उपेक्षा करने लगते है। अनुवाद करने से हमारी भाषाएँ भली भाँति विकसित होगी, हममें स्वावलवन का भाव जागृत होगा, विदेशी भाषाओं के बन्धन से मुक्त होकर हमारे मस्तिष्क स्वच्छदतापूर्वक विकसित हो सकेगे।

हमारी भाषा में आग्ल शब्दावली का मिश्रण करना बहुत हानिकारक होगा। हमें आग्ल शब्दावली अर्थहीन होगी और उस पर आश्रित होने के कारण हमारी भाषा दास भाषा कहलायेगी, वह कदापि उन्नति न कर सकेगी।

हमारी भाषाएँ समृद्धिशाली है और वे अल्पकाल में ही पूर्णत विकसित होने की क्षमता रखती है। यदि हम अपनी शब्दावली का प्रयोग करे तो हमारी भाषाएँ विकसित होगी। अपनी वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग करने में हमारा ध्येय आग्ल शब्दावली को नष्ट कर देना नही है। हम उस शब्दावली का प्रयोग भले ही न करे, पर हमसे असबद्ध का अस्तित्व और विकास तो होता ही रहेगा। अभी हम उस दिवस की कल्पना नही कर रहे है जब हमारे शब्द सारे ससार मे प्रयोग किये जायेगे और उन्हे हटा देंगे। हमारी भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली बनने के पश्चात् भी, हमारे अन्वेषक अँग्रेजी और अन्य भाषाएँ सीखेंगे, पर उन्हे जनसाधारण क्यो सीखें? श्रम, समय और धन का दुरुपयोग क्यो करें? पाठको को सुनकर आश्चर्य होगा कि भारतीय शब्दो का ज्ञान होने से हम उनके पर्यायवाची यूरोपीय शब्दो को सरलतापूर्वक समझ सकेंगे। अताराष्ट्रीय के मोह मे पडे यदि हमने इस तथाकथित अताराष्ट्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम रखा, तो भारतीय विद्यार्थियो के ज्ञान के विकास मे एक महान बाधा उपस्थित हो जावेगी।

हमें शब्द निर्माण करने मे झिझकना नही चाहिए। इसमें सकोच अथवा लज्जा की कोई बात नही है। अन्य देशो में प्रतिदिन सैकडो शब्द बनाये जाते है। प्रत्येक नयें आविष्कार के साथ ही कई नये शब्द आते है। यदि हमारी भाषाओ मे शब्दो की आवश्यकता है तो हमे नवीनता से न घबडाकर नये शब्द बना लेना चाहिए।

हम अभी तक आग्ल माध्यम से शिक्षित होते आये है और अधिकाश अँगरेजी शब्द हमे अर्थहीन प्रतीत हुए हैं, इस कारण हम यह सोचते भी नही कि शब्दो का अर्थमय होना कितना आवश्यक है। जब हम अपने शब्द प्रयोग करेंगे और उनकी अर्थमयता का बोध होगा तब हमें भारतीय शब्दो का महत्व मालूम होगा। शब्द, केवल वर्णो के सग्रहमात्र नही होते है। अँगरेजी शब्द हमारे लिए अर्थहीन होते है, इस कारण ज्ञान का द्वार हमारे लिए बन्द ही रहा है, पर भारतीय शब्द हमें स्वच्छन्दतापूर्वक ज्ञानभाडार में प्रवेश करने देंगे।

कुछ मनुष्यो का मत है कि यदि कुछ आग्ल शब्द हमारी भाषा में आ जावें तो कोई हानि नही होगी। कुछ ही शब्द होते तो समस्या कठिन न थी। प्रयोग में कुछ ही शब्द अधिक हो जाते है। एक आग्ल शब्द अपने साथ सैकडो शब्द लाता है, जिनमें बहुत से ऐसे होते है, जो अवाछनीय होते हुए भी हमें रखने पडेगे।

हमारी अपनी शब्दावली होने से एक लाभ यह होगा कि हमारे साहित्य और विज्ञान की भाषा एक ही होगी—अँगरेजी की भाँति भिन्न न होगी। दूसरा लाभ यह होगा कि हम अपने व्यापार और विज्ञान के गोपनीय विषयो को गुप्त रख सकेंगे। रूसी, जर्मन और जापानी अपनी भाषा के कारण ही इस बात में सफल हो सके है और बिना किसी के ज्ञात हुए विभिन्न क्षेत्र में उन्नति कर सके है।

भविष्य में भारतीय विद्यार्थी को पाश्चात्य विद्यार्थी के समीप पहुँचना है। उन्हे अब, १५ वर्ष अँगरेजी सीखने में नष्ट नही करना चाहिए। शिक्षा के ध्येय में परिवर्तन करना होगा। आज शिक्षा का ध्येय अँगरेजी सिखाना समझा जाता है, भविष्य में इसका मुख्य ध्येय विज्ञान सिखाना होगा। भाषा की दृष्टि से विज्ञान सीखने के लिए अँगरेजी उपयुक्त माध्यम नही है।

हमें अपनी भावी पीढियो और उन ८० प्रतिशत भारतीयो के दृष्टिकोण से सोचना चाहिए जो अँगरेजी नही जानते। यदि हम अपनी दृष्टि को व्यापक बनाकर इस प्रश्न पर सोचेंगे तो हमे आग्ल भाषा के साथ लगे रहने की निरर्थकता का पता लग जायगा और हम आलस्य त्यागकर भारतीय वैज्ञानिक शब्द ही अपनायेंगे।

श्री हीरालाल खन्ना

श्री रघुपतिसहाय 'फिराक़', प्रयाग विश्वविद्यालय

[श्री रघुपतिसहाय 'फिराक' प्रयाग विश्वविद्यालय में अंगरेजी के विख्यात अध्यापक हैं। आपने अपना अध्यापन-काल-प्रारम्भ खन्नाजी के कालेज में किया है। आप विद्यार्थी-जीवन में ही खन्नाजी की ओर आकृष्ट हुए थे। तभी से आपका खन्नाजी से घनिष्ठ परिचय है। आपके उद्‌गार इस लेख के रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत हैं।]

और थोडे दिनो के बाद हम एक दूसरे को भूल जाते। वह पहले भूल जाते, मैं उन्हे बाद मे भूल जाता। लेकिन मुझमे एक बात यह थी कि अपने से ऊँचे दर्जे में पढनेवाले छात्रो से मिलने का मुझ बडा शौक था। होस्टल में खन्नाजी का कमरा मुझे अब तक बहुत अच्छी तरह याद है। होस्टल की दूसरी मंजिल पर उत्तर की दिशा में इनका कमरा था। और उसी से मिला हुआ कमरा था आचार्य नरेन्द्रदेव का। खन्नाजी और नरेन्द्रदेव दोनो पोस्ट ग्रेजुएट विद्यार्थी थे और आपस में गहरे दोस्त थे। मैं भी हिम्मत करता करता शामो को कभी कभी नरेन्द्रदेव जी के कमरे में आ जाता था। दो चार और सीनियर विद्यार्थी वहाँ बैठे होते थे और अच्छी अच्छी बातें वहाँ होती थी। नरेन्द्रदेवजी के लिए मशहूर था कि वह संस्कृत और पाली के जबरदस्त पंडित है और वे बहुत चमत्कारपूर्ण विद्यार्थी थे। खन्नाजी भी उनके कमरे में अकसर होते और इस तरह उनसे मेरी कुछ जान-पहचान बढ गई।

खन्नाजी चमत्कारपूर्ण विद्यार्थी की हैसियत से हम लोगो में मशहूर न थे। लेकिन पूरा होस्टल उनकी इज्जत करता था, उनके चरित्र के कारण, उनके स्वावलम्बन के कारण और उनके व्यक्तित्व की गभीरता के कारण। वह बडे नरम दिल के आदमी थे और मुझसे बहुत अच्छा व्यवहार करते थे। लेकिन मुझे उनसे बराबर कुछ डर सा लगता था। एक तो उनके हाथ में, जब भी वह कही बाहर निकलते, एक बडा मोटा सोटा रहता था। दूसरे उनके तेवर यह कहते थे कि मेरे साथ गुस्ताखी या बदतमीजी नही की जा सकती। एक खास बात उनके स्वर या उनकी आवाज मे थी, स्पष्टता, बे-लग्गा-लिपटापन और एक डपट का प्रभाव, यद्यपि उनका स्वर कर्कश न था। नरेन्द्रदेवजी से मै नही डरता था, मगर खन्नाजी से मै क्या, पूरा होस्टल डरता था। वह क्रोधी या बिगडैल आदमी न थे। उनके व्यवहार में कोई कडापन न था। फिर भी हम सब लोग उनसे कुछ न कुछ दबते या डरते जरूर थे।

दिसम्बर का महीना था। कालेज में खेल हो रहे थे। एक मैच में हम सब एक दर्शक की हैसियत से शरीक थे। अगली पंक्ति में खडे खन्नाजी भी मैच देख रहे थे कि इतने मे म्योर कालेज के एक अँगरेज प्रोफेसर श्री कावस ने भीड को पीछे ढकेलना शुरू कर दिया, क्योकि उनकी राय में भीड कुछ फील्ड के अन्दर तक बढ आई थी। उसने खन्नाजी की छाती पर हाथ रखके उन्हे पीछे हटाना चाहा ही था कि आग हो गये खन्नाजी, और करीब था कि वे अपने सोटे से प्रोफेसर कावस की हड्डियाँ तोड देते। कावस साहब भागकर आगे बढ गये और कोई दुर्घटना नही हुई। लेकिन मैच के कई हजार दर्शको मे खन्ना जी का साहस देखकर सनसनी फैल गई और एक जोश फैल गया। तमाम हिन्दुस्तानियो में खन्ना जी का प्रभाव पल भर में कई गुना बढ गया। यह वह जमाना था जब बडो बडो को चार रुपया महीना पानेवाला कान्सटेबिल भीडो और मेलो-ठेलो में बेलाग धक्के दे दिया करता था।

मेरे बी० ए० पास करते करते खन्नाजी ने एम० एस-सी० पास करके कालेज और होस्टल दोनो छोड दिये। मुझ पर भी दुनिया भर की मुसीबतें आ पडी थी। पिताजी का मर जाना, मेरे स्वास्थ्य का संग्रहणी रोग से बिल्कुल बिगड जाना और घर की गृहस्थी का बोझ मेरे सर आ जाना। ऐसे नाजुक समय में मै आइ० सी० एस० और पी० सी० एस० की पदवियो से इस्तीफा देकर असहयोग-आन्दोलन में शरीक हो गया। इधर-उधर मारा मारा फिरता रहा। डेढ बरस तक जेल में रहा। खन्नाजी के व्यक्तित्व की गहरी छाप मेरे दिल पर पड चुकी थी। लेकिन १९१९ से सन् १९२८ तक मेरा और खन्नाजी का कोई सम्पर्क नही रहा। उडती खबरें मिलती रही कि खन्नाजी सेण्ट जॉन्स कालेज आगरा में गणित के अध्यापक हो गये है ? और ऐसे ही एसे कभी कभी कुछ खबरें मिल जाती थी।

जून सन् १९२७ तक मैं कांग्रेस का अण्डर सेक्रेटरी रहा। इसके बाद हालत एसी पैदा हो गई कि मैं कांग्रेस छोडकर क्रिश्चियन कालेज लखनऊ मे अध्यापक हो गया। वहाँ से साल भर बाद मैंने चाहा कि बी० एन० एस० डी० कालेज कानपुर मे मुझे जगह मिल जाय। मेरी गिनती सही या गलत तौर पर बहुत उच्च कोटि के विद्यार्थियो में होती थी। यह तो मैं कही चुका हूँ कि मैं, खन्नाजी से शुरू ही से डरता था, बावजूद उनके शुभ व्यवहार के। डर बडी बुरी चीज होती है। दूसरे लोगो ने मशहूर कर रक्खा था कि बी० एन० एस० डी० कानपुर मे प्रिंसिपल और करता-धरता खन्नाजी किसी सुयोग्य आदमी को अपने यहाँ प्रोफेसरी नही देते। उन्ही लोगो को रखते है जो दबैल हो और मामूली लोग हो। इसलिए मैने डी० ए० वी० कालेज कानपुर के प्रिंसिपल दीवानचन्द की सेवा मे भी प्रोफेसरी की अर्जी भेज दी थी। बात बिलकुल उल्टी निकली। मै भूल नही सकता कि किस मुस्तैदी, और किस स्नेह से, किस सहृदयता से और किस प्रेमपूर्ण डपट के साथ खन्नाजी ने पल भर मे वादा कर लिया कि वह मुझे प्रोफेसरी दे देंगे। बल्कि मेरी सच्ची सुयोग्यता का हाल सुनकर और उसका अनुभव करके अगर कोई बिदका तो वह प्रिंसिपल दीवानचंद।

असहयोग-आन्दोलन में पड जाने के कारण मै अभी एम० ए० नही पास कर सका था। दूसरे यह कि मैं हिन्दू था और जगह थी उर्दू के प्रोफेसर की। बी० ए० मे मैंने फारसी भी नहीं ली थी। कायदे कानून के मुताबिक मेरे निर्वाचन की राह मे कई अडचने थी। क्या आप विश्वास करेंगे कि खन्नाजी ने इधर तो अपने कालेज में मुझे उर्दू और अँगरेजी का अध्यापक बना दिया, उधर प्रांत के कई विद्वानों और आचार्यो से इस आशय के पत्र प्राप्त कर लिये कि रघुपतिसहाय फिराक उर्दू मे असाधारण क्षमता रखते है और अध्यापक की पदवी के लिए उपयुक्त है। कौन करता है किसी के लिए इस जमाने में। इण्टर-मीडिएट बोर्ड और सरिश्ते तालीम से लड-भिडकर खन्नाजी ने मामले को हमवार कर लिया। मुझे उँगली भी न हिलानी पडी। खन्नाजी बी० एन० एस० डी० कालेज के केवल प्रिंसिपल ही नही थे, वह बहुत बडी हद तक उसके संस्थापक और कर्णधार थे। यह कालिज उन्ही का कालिज था। कहा जा सकता है कि उसकी एक एक ईंट खन्नाजी की यादगार है। खन्नाजी कैसे प्रिंसिपल थे यह तो मै अभी बतलाऊँगा। पहले यह बता दू कि जब मैं भी उनका सहकारी बन गया तो मुझ पर क्या असर हुआ। मैं कह चुका हूँ कि खन्नाजी के सद्व्यवहार के बावजूद पहले मै उनसे डरा करता था। लेकिन जिस ममतापूर्ण प्रेम से उन्होने मुझे अपने यहाँ अध्यापक रखा, उसने मुझे हमेशा के लिए उनके प्रति निडर बना दिया। मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि खन्नाजी से कभी भी किसी को डरने या झिझकने की जरूरत ही नही। पहले मै उनकी आन-बान का कायल था, अब उनकी अनन्त सज्जनता और शराफत का कायल होना पडा। अब मै उनकी खिदमत में गुस्ताख हो गया। इसलिए कि अब मेरे दिल मे उनकी इज्जत और भी बढ गई थी। मेरी बेतकल्लुफी और गुस्ताखी इसी इज्जत और सम्मान के फलस्वरूप थी। एक बार अपने को किसी से छोटा समझने के बाद फिर अपने आपको उसके बराबर समझना बडा कठिन होता है। लेकिन खन्नाजी ने मेरे लिए यह मुसीबत पैदा कर दी कि वे मेरी इज्जत करने लगे और मुझसे इस तरह पेश आने लगे कि गोया मै ही उनसे बडा हूँ या उनका बुजुर्ग हूँ। वह निहायत सच्चे दिल से मेरा आदर करके मुझे काँटो में घसीटते थे। न जाने क्या ऐसा करते थे। और भी अध्यापको से उनका व्यवहार ऐसा था कि किसी को यह महसूस नही होता था कि उसे मातहत समझा जा रहा है। हुक्म देना तो खन्नाजी जानते ही न थे। वह कोशिश करके भी किसी के साथ दुर्व्यवहार कर ही नहीं सकते थे। वह हर टीचर के

कट्टर शुभचिन्तक थे। और कइयो को अपने प्रयत्नो से और अपने असर से और अपने कालेज से तरक्की दिलाकर दूसरी बडी बडी जगहे दिलवा दी। कुछ अध्यापक ऐसे थे जिन्हे खन्नाजी से कभी कभी कुछ शिकायत भी हो जाती थी। मगर बोल-चाल या व्यवहार की शिकायत नही, बल्कि किसी इन्तजामी मामले के सम्बन्ध में थोडी बहुत शिकायत हो जाती थी।

कुछ लोग खन्नाजी को बडा तिकडमी आदमी बताते थे। यह बिलकुल झूठ बात है। खन्नाजी नासमझ या बेवकूफ नही है। उन्हे बेवकूफ नही बनाया जा सकता। उन्हें धोखा नही दिया जा सकता। उन पर गलत प्रभाव नही डाला जा सकता। लेकिन जो आदमी बेवकूफ न बन सके वह हरगिज तिकडमबाज नही बल्कि सच्चा और समझदार आदमी है। न तो उन्होने किसी की बदख्वाही की, न किसी को नुकसान पहुँचाने के लिए या अपने लिए कोई फायदा हासिल करने के लिए कभी भी चालबाजी या हथकडे से काम लिया। इण्टरमीडिएट बोर्ड या बी० एन० एस० डी० कालेज की कमेटी या आगरा यूनिवर्सिटी का सिनट, या चेम्बर आफ कामर्स या किसी भी सस्था म जिसके वह मदस्य थे, उन्होने किसी मामले में छल-कपट से काम नही किया। उनके विरोधी जब हार जाते थे तो यह कहकर अपना जी खुश कर लेते थे कि खन्नाजी तिकडमबाज आदमी हैं।

हालाँकि इन तमाम सभाओं और कमेटियो में खन्नाजी की विजय, उनकी साफदिली और सच्चाई की वजह से होती थी और उनकी न्यायप्रियता के कारण होती थी। वह दो टूक बात कहते थे। और मन म कोई खोट नही रखते थे। वह खुशामद के कायल नही है, प्रेम के कायल है। किसी के साथ अन्याय करके, किसी का हक मार के, वह अपने बडे से बडे दोस्त की भी मदद नही करते। लेकिन यदि ऐसा किये बगैर वह किसी की मदद कर सकते हों तो छोटे बडे किसी आदमी को खन्नाजी सा सच्चा सहायक नही मिलेगा।

विद्यार्थियो के वह अनन्य प्रेमी और शुभचिंतक थे। शायद ही किसी विद्यार्थी को उन्होने कभी डाँटा हो और अगर डाँटा होगा तो इस डाट म प्रेम ही प्रेम होगा। हर दर्जे में अच्छी से अच्छी पढाई हो और सच्ची से सच्ची पढाई हो इसकी जितनी लगन मैने खन्नाजी के दिल मे देखी वैसी लगन बहुत कम प्रिंसिपलो में देखी। उन्हे इसकी बडी फिक्र रहती थी कि उनके सब विद्यार्थी समझ-बूझकर जी लगाकर पढ़े। इसका उचित फल भी उन्हे मिला। स्थापित होने के छ ही सात वर्ष बाद स ही बी० एन० एस० डी० कालेज का नाम पूरे प्रान्त में चमक उठा। इस कालज के रिजल्ट को देखकर लोगो की आँखें चकाचौध हो जाती थी। लोगो को भ्रम होने लगा कि इस कालेज मे कही पेपर तो नही आउट कर दिये जाते। लेकिन लोग कई बातें भूल जाते है। एक तो हर विषय में कालेज का रिजल्ट अच्छा नही रहता। दूसरे हाईस्कूल की परीक्षा जिसमें इस कालेज का रिजल्ट सबसे ऊँचा रहता है बी० एन० एस० डी० कालेज में नही होती। दूसरे सेण्टर पर जाकर यहाँ के विद्यार्थी परीक्षा देते है। इस बात को अच्छी तरह जानते हुए कि पेपर वेपर वहाँ आउट कभी नही किया गया, मैं कभी कभी खन्नाजी को जरूर छेड देता हूँ। और हम दोनो खूब हँसते हैं। अपने कालेज के विद्यार्थियो की उन्नति और शुहरत देखकर मैने खन्नाजी को जितना खुश होते देखा, उतना मैने किसी प्रिंसिपल को नही देखा।

एक बडा ऐब खन्नाजी में यह है या था कि वह स्वय गणित के अध्यापक है और गणित को गलती से बडा सरल विषय समझते है। वह बहुत से विद्यार्थियो को बढावा देकर गणित का विषय दिला

देते हैं। कई विद्यार्थियों को यह आगे चलकर मुसीबत में डाल देता है। शायद अब खन्नाजी ऐसा न करते हों।

मैं दो ढाई बरस वहाँ काम करके प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापक होकर चला आया। लेकिन मेरी जिन्दगी की सबसे खुशगवार याद खन्नाजी का सहकारी होना है।

भारतवर्ष में काना-फूसी बहुत चलती है। मेरे कानों में कभी कभी यह भनक पड़ती थी कि खन्नाजी ने कार-बार से या और तिकड़मों से बहुत सा धन पैदा किया है। एक बार मैंने उन्हें छेड़ा और पूछा कि आपने तो शायद लाखों रुपये जमा कर रखे होंगे। खन्नाजी ने, जैसे कोई बड़ा भेद बता रहे हों, उस स्वर में कहा कि ऐसी बातें सुना कीजिए। मेरी धाक जरूर है लेकिन फिराक साहब, इज्जत से रह लेने के सिवा और एक छोटी सी आमदनी के सिवा मेरे पास कुछ नहीं है। उनका स्वर गवाही दे रहा था कि वह बिल्कुल सच कह रहे हैं। लोग यह भी नहीं जानते कि खन्नाजी अगर चाहते तो गणित के कई ग्रन्थ बनाकर, उन्हें कोर्स में कराकर, हजारों नहीं लाखों रुपया घर में पाट लेते। ऐसा मौका पाकर बड़े बड़े लोगों के मुह में भी पानी भर आता है और बहुतों ने तो इसी तरह अपना घर बना भी लिया है। लेकिन खन्नाजी ने इस सुनहरे अवसर से कभी कोई फायदा नहीं उठाया है।

खन्नाजी के कारण बी० एन० एस० डी० कालेज का नाम मेरे लिए वशीकरण मन्त्र का हुकुम रखता है। और मेरे ऐसे हजारों ऐसे लोग होंगे जो कभी बी० एन० एस० डी० कालेज में पढ चुके हैं और जिनके लिए इस कालेज का नाम जादू का असर रखता है। कोई मामूली प्रिंसिपल यह प्रभाव नहीं पैदा कर सकता।

खन्नाजी हिन्दी के प्रेमी हैं। लेकिन उनका हिन्दी-प्रेम कभी भी उर्दू-विरोध या अँगरेजी-विरोध का रूप नहीं ले सका। वह उर्दू और हिन्दी में परस्पर विरोध नहीं मानते। वह इसलिए हिन्दी-प्रेमी हैं कि अधिक से अधिक संख्या में जनता को उच्च और सजीव विचार मिलें। उनका हिन्दी प्रेम सचमुच जनता प्रेम है। तअासुब या साम्प्रदायिकता या संकीर्णता उन्हें छू तक नहीं गई। उनके कालेज के मुसलमान विद्यार्थी उन पर जान देते हैं। मुसलमानों में खन्नाजी का असाधारण मान है। खन्नाजी किसी राजनैतिक पार्टी या दल के आदमी नहीं हैं। मगर उनका देश-प्रेम असाधारण है। हर पार्टी के लोग उनका सम्मान करते हैं।

यह जमाना राजनैतिक धूम-धाम का है लेकिन यह न भूलना चाहिए कि हमें लाखों ऐसे लोगों की जरूरत है जो अराजनैतिक होते हुए देश की ऊँची से ऊँची सेवा करें। ऐसे लोग राष्ट्र व समाज की रीढ की हड्डी हैं, इन्हीं के सहारे हमारा जीवन आगे बढता है। इन अनमोल देश-सेवकों में खन्ना जी का स्थान इतना ऊँचा है कि लाखों उच्च कोटि का काम करनेवालों के दिल में ईर्षा पैदा हो जावे, अगर वह यह जान सकें कि खन्नाजी की सेवाएँ इतनी बहुमूल्य और इतनी उच्च कोटि की हैं। खन्ना जी ऐसे लोग अगर देश में न हों तो जितना टीम-टाम नजर आता है, उसके समेत देश का दिवाला निकल जावे।

श्री हीरालाल खन्ना महोदयस्य

परिचयसंस्मरणम्

श्री डा० उमेश मिश्र, महामहोपाध्याय, एम० ए०, डी० लिट्

[इस प्रान्त की ही नहीं, इस देश की विद्वन्मंडली में महामहोपाध्याय डाक्टर श्री उमेश मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्, प्राध्यापक संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, का नाम सुप्रसिद्ध है। आपका श्री हीरालाल खन्ना का बहुत पुराना साथ है। आप दोनों में गहरी मैत्री है। खन्ना जी के कतिपय गुणों का परिचय महामहोपाध्याय जी ने अपनी सुललित शैली संस्कृत में दिया है। अपनी शुभकामना भी आपने अर्पित की है।]

अस्ति कश्चिदाङ्ग्लशिक्षासम्पन्नोऽपि निरभिमानो लोकोपकारको भारतीयवेषधरः श्री हीरालालो नाम विद्वानिति बहुशः कर्णाभ्यामेव श्रुतम्। तदनु त्रयोविंशत्युत्तरैकोनविंशतितमे खीस्ताब्दे प्रयागविश्वविद्यालयसंस्कृतदर्शनाध्यापकपदं स्वीकृत्य समागत्य चात्र विश्वविद्यालयस्यास्य प्रधानशिक्षापरिषदो वार्षिकाधिवेशनावसरे यथाश्रुतं प्रसन्नगम्भीरस्वभावं निरभिमानं सर्वजनप्रियमुष्णीषधरं कञ्चन सदस्यं दृष्ट्वा पूर्वानुभवसस्मृत्यायमेव स हीरालालखन्नामहोदय इति सज्ञासज्ञिज्ञानं स्वयमेवोपलब्धवानहम्। तस्य परिचयसम्पादनायान्यस्य कस्याप्यपेक्षा नासीत्। क्रमशः केनाप्यान्तरिकस्वभावसम्पन्नेन गुणेनावयोर्घनिष्ठताऽपि जाता।

विश्वविद्यालयस्यास्य विविधासु समितिषु सदस्यरूपेण तस्य कर्णपुरतो यदा कदागमनमभवत्। तत्तदवसरेषु तेन सह विषयान्तरेष्वपि बहुधा वार्तालापो जातः। तस्य विचारः मर्वंव गम्भीरः सुदूरदर्शी तथा सुहृत्सम्मतः। निष्पक्षपाती स्पष्टवक्ताऽप्ययं सर्वेषां प्रियः इति विद्वत्सु सुप्रसिद्धः। सदाचारसम्पन्नो नैष्ठिकोऽसाविति अस्य प्रसन्नमुखावलोकनेनैव सर्वेषां स्पष्टम्। कार्यकलापे गुणग्राहित्वमस्य सर्वदैव प्रतिभाति। सुविचार्यैव स्वसम्मतिप्रदाता 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' इति लौकिकाभाणकस्य पक्षपाती न कदापि दृष्टोऽयं जनः। इत्येवास्य विद्वत्सु प्रसिद्धेः कारणम्।

विद्यार्थिषु महानस्य प्रभावः। महाविद्यालयाध्यक्षपदमहत्त्वारिभिर्विद्यादयादाक्षिण्यादिविविधगुणैः पितृवत्सुलभस्नेहेन च छात्रान् वशीकुर्वन्, अध्ययनादिकार्येषु तान् समुत्साहयन्, स्वचारित्र्यबलेन सर्वान् दृढीकुर्वन् तैः सह विविधक्षेत्रेषु घनिष्ठतां सम्पाद्य तेषां बौद्धिकविकारं आत्मनः परिचय

समुत्पादयन्, यथावसरं यथायोग्यञ्च तान् सुकोमलहृदयान् बालकानुपदिशन् सर्वेषामानन्दवर्द्धको हितचिन्तकश्चायमिति छात्राणांहृदि निषिक्तमेव। न केवलमस्य गुणैर्विमुग्धा एव छात्राः किन्तु प्रभाविताश्च तथा यथा स्वस्वचारित्र्यनिर्माणे लौकिकव्यवहारे चास्य गुणानामनुकर्त्तारोऽपि ते दृश्यन्ते। बी० एन्० एस्० डी० महाविद्यालयस्य छात्रेषु यत्किञ्चनवैशिष्ट्यं दृश्यते तत्सर्वं श्रीहीरालालमहोदयस्य चारित्र्यप्रयुक्तमेव।

आधुनिकाध्यापक इव नैकमात्राध्यापनजीविकानिर्भरोऽयम्। स्वचातुर्येण कलानैपुण्येन दाक्षिण्येन च धनसम्पन्नाना कर्णपुरनिवासिना सम्पर्केणायमपि ऐहिकविभवसम्पन्नः समुपलभ्यते। अत एव महाविद्यालयाद् गृहीतावकाशोऽप्ययं जीविकानिर्वाहाय नेतस्ततो निराशवदनो भ्रमति।

इत्यादिबहुविधसद्गुणविशिष्टोऽपि निरभिमानोऽयं जन इति महानस्माकं गौरवविषयः। प्राप्त वयसि महाविद्यालयाध्यक्षपदाल्लब्धावकाशोऽयं स्वचारित्र्यबलेन सुनियन्त्रितजीवनेन विशुद्धभावनाभावितेन चाधुनापि प्रसन्नमुखः सुदृढशरीरः कार्यक्षमो बालकेषु शिक्षाप्रचाराय बद्धकटिः सदैवाक्षुण्णोत्साहो निरलसः सर्वेषामादरभाक् कस्याय श्रीहीरालालशर्ममहोदयो मनसि मोदं नावहति। स्वकार्यकौशलकलापैः कर्मनिष्ठो भारतीयसंस्कृतिसंरक्षको जनानां हितचिन्तकः स्वजीवनयात्रामनायासेन नयत्ययमस्माकं प्रियसुहृच्छ्रीहीरालालमहोदयः।

चिरमयं जीव्यादित्येव श्रीकाशीविश्वेश्वरादीहे। शुभमिति।

आशीर्वाद

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन
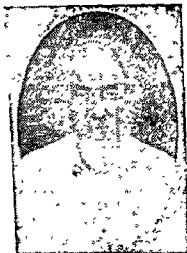
[उत्तर प्रदेश की सविधान परिषद् के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा अखिल भारतवर्षीय काग्रेस कमेटी के प्रधान राजर्षि बाबू पुरुषोत्तमदास जी टडन ने श्री सद्गुरुशरण अवस्थी को एक पत्र के साथ श्री हीरालालजी खन्ना के विषय मे क्या लिखा है उसे अविकल रुप से यहाँ प्रकाशित किया जाता है।]

रेलगाडी
कानपुर के पास
१७-२-५०

प्रिय अवस्थी जी, नमस्कार !

श्री हीरालाल खन्ना को जो आप अभिनन्दन-ग्रथ भेंट कर रहे है उसके लिए आपके कहने के अनुसार मैने कुछ पक्तियाँ लिख दी है। भेजता हूँ। इस समय दिल्ली जा रहा हूँ।

सस्नेह
पुरुषोत्तमदास टण्डन

श्री हीरालाल खन्ना को मै उस समय से जानता हूँ जब वह प्रयाग म कालिज के विद्यार्थी थे। विद्यार्थी-अवस्था से विकास पाकर वह प्रयाग की एक शिक्षा सस्था मे अध्यापक हुए। फिर कुछ वर्ष बाद उन्होने कानपुर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया किन्तु यहाँ भी अध्यापन ही उन्होने अपने जीवन का मुख्य ध्येय रखा। शिक्षण और शिक्षण सस्थाओ के सचालन सम्बन्धी प्रश्नो में खन्नाजी की विशेष रुचि रही है। कानपुर के विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज के प्रिन्सिपल वह बहुत वर्षो से है। इस कालेज की नीव को दृढ करने और उसकी व्यवस्था को रूप देने में खन्नाजी का हाथ है।

अब वह अपने पद से हट रहे है। इस अवसर पर उनके सहयोगी उनके प्रति अपने सम्मान और प्रेम को एक अभिनन्दन-ग्रथ के रूप मे प्रगट कर रहे है।

जब खन्नाजी विद्यार्थी थे तब ही मुझ उनके आचरण और व्यवहार में नैतिकता और सेवा की भावना दिखाई पडी। इसने स्वभावत मुझ उनकी ओर आकर्षित किया। जैसे जैसे उनसे मेरा अधिक सम्पर्क हुआ उनके प्रति मेरा स्नेह बढता गया।

अध्यापन के कार्य मे उन्होने आचार्य के ऊँचे कर्त्तव्य का मार्ग दिखाया है। अपने छात्रो के जीवन मे, पढाने-लिखाने के अतिरिक्त, बडे भाई या पिता की भाँति रुचि रखना और उनकी वैयक्तिक कठिनाइयो को अपनी सहायता तथा अपने उपदेश से दूर करने का यत्न करना, यह खन्नाजी की विशेषता है। मैने बहुत कम ऐसे अध्यापक देखे है जो बालको के जीवन मे इतने स्नेह और इतनी सहानुभूति से प्रवेश करने का यत्न करते हो। अपने कालिज से हटकर भी खन्नाजी अपनी स्नेहमयी और उदार प्रकृति के अनुसार छात्रो की सहायता करते रहेंगे यह मेरा विश्वास है।

मेरे हृदय की प्रार्थना है कि बहुत वर्षो तक खन्नाजी की भावना-युक्त शक्ति बनी रहे और दिन-दिन उनका आत्म-सयम उन्नति होता हुआ समाज का हित करे और उन्हे सुखी बनावे।

१७-२-५०

चमक रहे हैं हीरालाल

श्री सोहनलाल द्विवेदी

[हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और देश की राष्ट्रीय चेतना को छंदबद्ध करने में अनुपम कुशलता रखनेवाले पंडित सोहनलालजी द्विवेदी एक छोटी भूमिका के साथ श्री हीरालालजी खन्ना के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।]

आचार्य हीरालाल खन्ना जैसे कर्मठ व्यक्ति हमारे देश में इने-गिने हैं। उन्होंने जैसे आयु को जीत लिया है। उनका अदम्य उत्साह, साहस और शक्ति अनुकरणीय है। अपने संयत आहार तथा उन्नत-विचार द्वारा स्वस्थता को अपने वश में कर रखा है। शिक्षा के क्षेत्र ही में नहीं, किसी भी क्षेत्र में आज ऐसे वृद्ध तरुणों की नितान्त आवश्यकता है। उनके अभिनंदन में क्या लिखा जाये? जब तक उनके जैसे प्राणवान व्यक्ति हमारे देश में हों वह कभी निर्जीव तथा अशक्त नहीं रह सकता?

इन भावों की भूमिका में लिखी अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

कौन कह रहा मेरा भारत
अब भी है निर्धन कंगाल?

जब तक जननी की गोदी में
चमक रहे हैं हीरालाल।

चन्द्रशेखर आजाद और खन्नाजी

आचार्य श्री० नरेन्द्रदेवजी

[लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध उपकुलपति और ख्यातनामा प्रसिद्ध समाजवादी नेता आचार्य श्री नरेन्द्रदेवजी खन्नाजी के साथ पढ़नेवालो में हैं। विद्यार्थी-जीवन का उनका सबंध आज भी उसी घनिष्ठता से चला जाता है। प्रस्तुत पुस्तक के लिए उन्होंने अपने संस्मरण भेजे है। वे लिखते हैं—

"राष्ट्रीय आन्दोलन मे उनकी (खन्नाजी की) सदा सहानुभूति रही है। समय-समय पर वह विप्लवकारियों की सहायता करते थे और इन लोगो का इन पर इतना विश्वास था कि चन्द्रशेखर आजाद मुझसे दो बार खन्नाजी के मकान पर मिले थे।"

"वे अन्यत्र लिखते है—इनके जीवन में सदा से सादगी रही है और वे सदा आदर्श-भक्त रहे है। छोटा या बड़ा काम जो ले लेते हैं उसे पूरा करते हैं और समय के बड़े पाबंद है।"]

प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना से मेरा परिचय बहुत पुराना है। हम लोग प्रयाग में हिन्दू बोर्डिंग हाउस में कई वर्ष एक साथ रहे। वह वग-भग और स्वदेशी आन्दोलन का युग था। हमारा छात्रावास उस समय राजनीति का केन्द्र था। हम लोग भी इन नवीन विचारो से प्रभावित हुए थे। विचार-साम्य होने के कारण मेरी खन्नाजी मे घनिष्ठता हो गई थी और यद्यपि शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् हम लोगों का मार्ग भिन्न भिन्न हो गया तथापि हम लोगो का वह पुराना सम्बन्ध आज भी कायम है।

खन्नाजी ने शिक्षा का कार्य चुना और अपने क्षेत्र में वह यशस्वी हुए हैं। आरम्भ से ही वह स्वावलम्बी थे। पत्रिकाओ और पुस्तको के प्रूफ देखकर वह कुछ कमा लेते थे। इसलिए निर्धन विद्यार्थियो से उनकी सदा से सहानुभूति रही है। विद्यार्थी-जीवन में ही उनके एक-दो गुण प्रकट हो चुके थे। वह सकल्प के बडे पक्के थे। विघ्न-बाधाओ के आने पर वह कभी हताश नही होते थे। अपने विचार को जल्द बदलते न थे। इस कारण कभी-कभी लोग उनको हठी समझ लेते थे। वह अपनी दृढता के लिए प्रसिद्ध थे। ऐसा व्यक्ति सहज ही दूसरो को अपने प्रभाव में ले आता है और इसलिए वह नेता या किसी संस्था का अध्यक्ष सफलता के साथ हो सकता है। खन्नाजी का दूसरा गुण उनका स्वाभिमान है। जो लोग स्वावलम्बन का जीवन विद्यार्थी अवस्था में व्यतीत कर चुके होते हैं उनमें यह गुण होना स्वाभाविक है। अपने ऊँचे चरित्र के कारण भी वह अपने सहयोगियो के प्रियपात्र थे। उनके जीवन में सदा से सादगी रही है और वह सदा आदर्श-भक्त रहे है। छोटा या बडा काम जो ले लेते हैं उसे पूरा करते हैं और समय के बडे पाबन्द है। इन गुणो की हम भारतीयो में बडी कमी है। इन्ही गुणो के कारण वह सफल

प्रबन्धक रहे हैं। विरले ही प्रिंसिपल होंगे जो अपने सब विद्यार्थियो को जानते हो और उनमें दिलचस्पी लेते हो। खन्नाजी तो अपने विद्यार्थियो के अभिभावको को भी जानते है और विद्यार्थियो की हर तरह सहायता करते है, प्रत्येक विद्यार्थी की पढाई की ओर ध्यान रखते हैं, इन्ही कारणो से उनके कालिज का परीक्षा-फल प्रान्त भर में सर्वोत्तम होता है। यद्यपि उनका अनुशासन कडा होता है तथापि वह विद्यार्थियो को इसलिए नही अखरता क्योकि वह जानते है कि खन्नाजी उनसे स्नेह करते है और उनके शुभचिन्तक है।

खन्नाजी सदा से समाज-सेवी रहे है और कई सस्थाओ से उनका सम्बन्ध रहा है। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की उन्होने अच्छी सेवा की है। कई छोटी-मोटी सस्थाओ को उन्होने जन्म दिया है और आज वह सस्थाएँ अपने पैरो पर खडी हो गई है। शिक्षा के क्षेत्र मे भी उन्होने सेवा-भाव से ही प्रवेश किया था और अपनी सच्चाई, त्याग और परिश्रम के कारण उन्होने समाज में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। उनका सेवा-काल अब समाप्त हो गया है। तिस पर भी शिक्षा मे उनकी इतनी लगन है कि वह अपने जीवन का अवशिष्ट भाग उसी कार्य में लगाना चाहते हैं। उनका स्वास्थ्य इतना अच्छा है कि वह अभी कई वर्ष एक नवयुवक की तरह काम कर सकते हैं। आशा है समाज उनके अनुभव तथा उनकी योग्यता का उचित लाभ उठावेगा।

शिक्षा के कार्य से सम्बन्ध हो जाने के कारण खन्नाजी राजनीति में भाग नही ले सके। तथापि राष्ट्रीय आन्दोलन से उनकी सदा सहानुभूति रही है। समय-समय पर वह विप्लवकारियो की सहायता करते थे और उन लोगो का इन पर इतना विश्वास था कि चन्द्रशेखर आजाद मुझसे दो बार खन्नाजी के मकान पर ही मिले थे। उनको यह कभी-कभी शरण भी देते थे तथा धन से उनकी मदद करते रहते थे।

खन्नाजी के जीवन के ६० वर्ष पूरे हो गये हैं। हम आज उनकी जयन्ती मना रहे है। इस शुभ अवसर पर खन्ना जी के हम सभी मित्र उनको शुभकामना भेजते हैं और प्रार्थी है कि वह लोकोपयोगी कार्यों में सदा लगे रहे तथा हमारा स्वतन्त्र देश उनके अनुभवो से पूरा लाभ उठावे।

श्रद्धांजलि

श्री गोविन्द मालवीय, कुलपति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भारत म आजकल अनिश्चितता और विकल्प का युग है। इतिहास की ज्ञान रश्मिया क आलाव की पहुच के पहले स चली आती हुई भारतवर्ष की सनातन संस्कृति और परम्परा से बनी हुई भावनाएँ उनके आधार रूप विचार तथा सिद्धान्त आज क नय ससार की भौतिक प्रगति के सघर्ष से विलुण्ठित होकर अपन स्थिर आसन पर डगमगा रहे हैं। आज हमारे बीच म इस देश क आदि निवासियो की कौशल चातुरी अथवा आर्यों की सरल और शुभ्र स्वच्छन्दता उपनिषदा की अवर्णनीय आध्यात्मिक तथा दार्शनिक प्रौढता, भगवान बुद्ध क काल की जनश्रेष्ठता मौर्य तथा गुप्तकाल की चतुर्मुखी पराकाष्ठा प्राप्त सुख समृद्धता, तथा अन्त म अपन धर्म और संस्कृति की रक्षा का सर्वोपरि भावना म स कोई भी वस्तु नही दिखाई देती। इसम कोई आश्चर्य नही है। राष्ट्रो और मानव खण्डो के इतिहास में यह सदा ही होता आया है। कोई युग, कोई काल, कोई गुण कोई गौरव, कोई विशेषता कही किसी म सदैव के लिए स्थिर नही हो सकती। भारत न अनादि काल स लेकर आज तक अपन जाज्वल्यमान इतिहास पथ में उत्तुगोत्तुग चोटियो को माप लिया है, किन्तु समयरूपी पथ पर चलता हुआ वह उन सबको पार कर चुका है। वह सब अब उसके अतीत है। आज का भारत का समाज आग आनवाली चोटियो की खोज में है। उसे अपनी प्राचीन वस्तुओ पर आज विश्वास नही रह गया है। वह पुरान अध्वयु को छोडकर आज सुदर और मजबूत जूतेवाली सभ्यता का सफल प्रचार चारो ओर देख रहा है। वह जीवन की सभी भौतिक तथा आध्यात्मिक वस्तुओ का मन ही मन नया मूल्याकन करना चाहता है। आज वह गुलामी के युग से निकलकर स्वतन्त्रता के जगत् म प्रवेश कर रहा है। उस अब अपना घर फिर से बनाना है। वह पुरानी सभी चाजो पर शका और विचार कर रहा ह। उस लगता है कि प्रत्येक प्रश्न पर यह भी हो सकता है, वह भी हो सकता ह। कोई चीज आज स्थिर नही है। आनवाले पचास वर्षो म भारत की क्या चित्ररेखा रहेगी यह कहना आज असम्भव है। इसीलिए मैंन इसे भारत का विकल्प युग कहा है।

विकल्प का युग कोई आश्चय की बात नही है। भविष्य का कोई स्थायी रूप बनन से पहले इसका एसा होना स्वाभाविक है। किन्तु एस काल म भारत के लिए एक विशेष खतरा है। यदि हमारे देश का अतीत धूमिल या नगण्य होता तो हम भविष्य को कोई भी रूप क्या न देते, उससे हमें कोई लाछन न लगता। किन्तु भारत एसा नही कर सकता। उस अपने यशोज्ज्वल अतीत की पुण्यात्मा का आधुनिक उपयोगिता और कुशलता के साथ समन्वय करना पडगा। प्राचीन और अर्वाचीन का एसा सुन्दर सामजस्य बनाना पडगा कि ससार का अग्रणी बनानवाली प्राचीन भारत की विशेषताएँ आज भी उसकी सहायता करे।

किसी राष्ट्र के भविष्य का आधार उसके नवयुवकगण तथा उसका विद्यार्थी समाज होता है। उन्ही पर सब कुछ निर्भर रहता है। व सुयोग्य और सुदृढ हो तभी राष्ट्र का भविष्य सुनिश्चित होता

है। भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली सर्वांगपूर्ण होती थी। विद्यार्थी विद्योपार्जन के लिए गुरु के हाथो में अपने को पूर्णरुपेण छोड देता था। गुरु अपनी योग्यता और शक्ति लगाकर विद्यार्थी की शिक्षा पूरी करने मे तथा उसको राष्ट्र का सभ्य नागरिक बनाने मे अपनी जान लगा देता था। पुत्र और शिष्य को अपनी दृष्टि में अन्तररहित मानता था। विद्यार्थी भी गुरु के लिए अपने को न्यौछावर किये रहता था। दोनो में इतनी अभिन्नता रहती थी कि एक का हित, एक की सफलता, एक का यश, दूसरे को भी आलोकित करता था। विद्यार्थी जीवन समाप्त करने पर भी व्यक्ति अपने को अपने गुरु का शिष्य जीवनपर्यन्त मानता था। जो कुछ कार्य करता था, कही किसी कार्य में अपनी योग्यता प्रमाणित करता था, उस सबको गुरु प्राप्त मानकर अपने यश को गुरु का यश मानता और जताता था। भारत का प्राचीन साहित्य गुरु-वन्दना तथा गुरु के प्रति कृतज्ञता से भरा हुआ है। "गुरुणा गुरु" पुकार कर ईश्वर ही को गुरु से ऊँची पदवी दी गई है। सिद्धान्त कौमुदी के अमर भाष्यकार भट्टोजि दीक्षित महाराज ने आदि मे कहा है—"ध्याय ध्याय परब्रह्म स्मार स्मार गुरोर्गिर" ससार के सभी शिक्षा विशेषज्ञ आज पुकार रहे है कि शिक्षण समाज में अवनति के स्थान पर उन्नति ले आने का प्रथम मार्ग शिक्षक विद्यार्थी में परस्पर सम्बन्ध की घनिष्ठता को बढाना ही है, अथात् ससार घूम-फिरकर भारत की प्राचीन प्रणाली को ही अब फिर अपनाना चाहता है। किन्तु समय के चपेटवश ससार के साथ साथ भारतवर्ष मे गत कुछ शताब्दियो में इस प्राचीन परिस्थिति का नाश हो गया है। अन्य स्थानो की भाँति यहाँ भी अध्यापक और विद्यार्थी गुरु और शिष्य के नाते को छोड बैठे है। आज के बूट और चेकबुक की सभ्यता में ससार की सभी वस्तुओ का मूल्य चाँदी के टुकडो में आँका जाता है। विद्यार्थी गुरु शिष्य भावना को छोडकर अध्यापक को पारिश्रमिक देकर अपने दूकान का नौकर समझता है। अपने जीवन के निर्माता अध्यापक को थोडी-सी फीस या तनख्वाह के रूप मे कुछ घटो का पारिश्रमिक देने ही मात्र से अपनी कृतज्ञता समाप्त कर लेता है। आज गुरु और शिष्य के स्थान पर नौकर और मालिक का भाव बढ रहा है। इससे अधिक हानिकर और भयावह और क्या हो सकता है। इसका दोष केवल विद्यार्थियो का ही नही है, अध्यापक का कार्य अत्यन्त उत्तरदायी कार्य होता है। उसमें प्रचुर आर्थिक लाभ या सम्पूर्ण आवश्यकता पूर्ति की अपेक्षा सासारिक अकिंचनता तथा आत्मसतोष का ही सहारा अधिक होता है। लगता है कि कठिनाइयो से हताश होकर आधुनिक समय के अध्यापक भी अपने महत्त्वपूर्ण और मानास्पद कार्य को न्यूनाधिक रोजगार-सा मानने लगे है। विद्यार्थियो की अवहेलना उन्हे इस ओर, और भी ढकेलती है। कक्षाओ में अपना पाठ पढाकर ही वे अपने कर्त्तव्य को पूरा हुआ मान लेते है। इसके फलस्वरूप भारतवर्ष की शिक्षा-प्रणाली आज तथ्य और तत्त्व-रहित हो रही है।

गुरुवर आचार्य हीरालाल खन्नाजी उन व्यक्तियो मे से है जिन्होंने इस आधुनिक अभिशाप से दूर रहकर अपने ३५ वर्ष के कार्य-काल म अध्यापको के बीच एक अत्यन्त उपयोगी तथा श्रद्धास्पद उदाहरण रक्खा है। आधुनिक शिक्षण-प्रणाली के गुणो को अपनाते हुए उन्होंने अपने जीवन में प्राचीन गुरुओं की झलक सदा बनाये रखी है। मुझे विद्यार्थी जीवन के प्रारम्भ के निकट ही उनसे शिक्षा पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हम लोगो के प्रति उनकी सरल और नि स्वार्थ आत्मीयता ने हम सबके मन पर अपनी अमिट छाप उसी समय लगा दी थी। खन्नाजी (उनका मै तब से लेकर अभी तक मास्टर साहब ही पुकारता हूँ) हम लोगो को केवल फिजिक्स और केमिस्ट्री पढाते ही न थे, क्लास को समाप्त कर दूसरे दिन तक के लिए वे हमें भूल नही जाते थे। अपने जीवन के उदाहरण से अपने

भावनाओं के सम्पर्क से विद्यार्थियों को सदा ऊँचा बनाया करते थे। एक स्नेही और हितैषी थोड़ी अधिक अवस्थावाले मित्र की तरह हम लोगों का जीवन की सफलता के मार्ग दिखाते थे। केवल पढ़ाई ही में नहीं, अपितु खेलने-कूदने तथा और सभी व्यावहारिक बातों में उन्नत तथा सुगम और रुचिकर मार्ग को मित्रवत् बता-बताकर हमें अपना भक्त बनाया करते थे। उस बाल्यावस्था में उनके ढंग और प्रणाली का मूल्य और महत्त्व हम नहीं जानते थे। वह अब समझ में आता है। उनके छात्रों के पास समुचित शब्द न होंगे जिनमें वे अपनी कृतज्ञता खन्नाजी के प्रति प्रकट करें।

खन्नाजी के सम्पर्क में जो भी जब भी आया उन्होंने उसे आगे बढ़ाया, उपदेश से नहीं, सहानुभूति, हितकामना तथा ठोस प्रोत्साहन से। खन्नाजी के अनगिनित विद्यार्थियों तथा उपकृतों में एक भी ऐसा न होगा जिसने किसी विद्यार्थी की किसी प्रकार की भी सहायता करने से खन्नाजी को कभी भी मुख मोड़ते पाया हो। अपने विद्यार्थी का हित, उसका सुख, उसका कल्याण खन्नाजी के जीवन का सर्वोच्च सुख रहा है। उसकी प्राप्ति के लिए अपने को कष्ट में डालना, अपने सिर अनावश्यक झंझट ओढ़ना, कभी कभी उस विद्यार्थी से भी अधिक चिन्ता और फिक्र करना खन्नाजी का स्वभाव रहा है। अपने प्रोत्साहन से उन्होंने अगणित तरुणों का जीवन सफलता के मार्ग पर सुदृढ़ बना दिया है। गलती किये हुए विद्यार्थियों को भी भर्त्सना में भी प्रोत्साहन के पुट से ऊपर उठा देने की कुशलता जैसी खन्नाजी में रही है वैसी बहुत कम देखने को मिलती है। उन्होंने गुरु के नाम का यश इस आधुनिक जगत् में भी निबाहा है, अपने छात्रों को, उनका शिष्य होने के नाते, गौरव का अनुभव कराया है। यही नहीं अपनी निःस्वार्थ लगन और कुशलता के उदाहरण द्वारा अनेकों अध्यापकों को भी यह प्रशंसनीय मार्ग दिखाया है।

खन्नाजी का जीवन परोपकारी कार्यों की बहुलता से परिपूर्ण रहा है किन्तु मैंने उनकी चर्चा यहाँ नहीं की। वैसा तो बहुत से लोग करते हैं। मेरी निगाह में पूज्य खन्नाजी का सबसे बड़ा महत्त्व यही रहा है कि अपने छात्रों के साथ अपने को अभिन्न बनाते हुए उन्होंने भारत की प्राचीन विशेषता और आधुनिक शिक्षण संसार की सबसे बड़ी आवश्यकता अर्थात् शिक्षा-जगत् के गुरु शिष्य भावना के प्रचार में बहुत बड़ा हाथ बँटाया है।

आज मास्टर साहब के प्रति ३५ वर्षों की मन में एकत्रित कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धांजलि समर्पित करने का यह सुअवसर पाकर मैं कृतकृत्य हूँ। खन्नाजी के सभी छात्रों और मित्रों की मंगलमय परमात्मा से यही प्रार्थना होगी कि वह उनको चिर काल तक स्वस्थ रक्खे जिसमें वह जनता की और भी अधिक सेवा कर सकें तथा हमारे बीच में उदाहरण और आदर्श-रूप में बने रहें।

खत्राजी डी० ए० वी० स्कूल, प्रयाग में शिक्षक १९३४
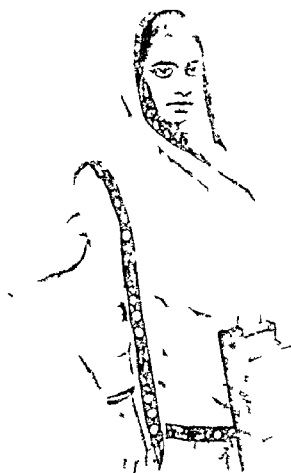
स्वर्गीया श्रीमती पूर्णदेवी धर्मपत्नी श्री हीरालाल खन्ना

समय

लेखक, डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन), प्रयाग विश्वविद्यालय

[समय-सूचक यत्र-घडी का प्रयोग हम सभी करते हैं। परन्तु क्या उसके निर्माण के सिद्धान्त और इतिहास की ओर भी हमारा ध्यान गया है? डा० गोरखप्रसाद ने अत्यत स्पष्ट, सरल और सुन्दर शैली में इन सिद्धान्तो और उनके विकास के इतिहास को समझाया है। न केवल विज्ञान के विद्यार्थियो के लिए, बल्कि सर्वसाधारण के लिए भी इस लेख में रुचि और आकर्षण की प्रचुर सामग्री मिलेगी। एक गूढ वैज्ञानिक विषय पर सर्वसुलभ भाषा में दिया गया यह लिपिबद्ध भाषण हमें इस युग की एक श्रेष्ठ देन, वैज्ञानिक सर जेम्स जोन्स के सर्वसुलभ वैज्ञानिक लेखो की याद दिलाता है।

डा० श्री० गोरखप्रसाद प्रयाग विश्वविद्यालय में गणित के ख्यातिनामा अध्यापक है और गूढ विषयो को सुबोध भाषा मे लिखने में सिद्धहस्त है।]

"कितना बजा है?" यह प्रश्न बहुधा सुनने में आता है, और घडी देखकर उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं होती। परन्तु यदि पूछा जाय कि घडी ठीक है या नही इसका क्या प्रमाण है तो सभवत उत्तर यह मिलेगा कि घडी रेलवे से, डाकघर या तारघर से, या रेडियो से मिली है। परन्तु यदि पूछा जाय कि क्या प्रमाण है कि रेडियो, रेलवे या तारघर की घडी ठीक है तो जनता में से विरला ही कोई सतोषजनक उत्तर दे सकेगा।

बात यह है कि समय का सच्चा ज्ञान ज्योतिष-यत्रो से ही हो सकता है।

प्राचीन काल में समय का ज्ञान सूर्योदय से किया जाता था। परन्तु एक दिन में सूर्योदय तो एक बार होता है। यदि कोई प्रात काल के बदले किसी अन्य क्षण यह जानना चाहता रहा होगा कि सूर्योदय हुए कितना समय बीता तो उसे कठिनाई पडती रही होगी। दिन में आकाश के बीच सूर्य की स्थिति से कुछ अनुमान कर लिया जाता रहा होगा, या वृक्ष आदि की परछाई से, परन्तु सूर्यास्त के बाद तो समय का ज्ञान साधारण व्यक्तियो के लिए, सुदूर भूतकाल में, प्राय असभव रहा होगा। जैसे-जैसे सभ्यता बढी होगी तैसे-तैसे समय के ज्ञान की आवश्यकता भी बढी होगी, और तब किसी ने उस पद्धति का आविष्कार किया होगा जिसमें कटोरे या हाँडी की पेंदी में छेद करके उसे पानी पर छोड दिया जाता था। जब बरतन डूब जाता था तो भीतर का पानी उँडेल कर उसे फिर तैरा दिया जाता था। इस प्रकार समय किसी न किसी प्रकार नाप लिया जाता था।

परन्तु जब एक से अधिक व्यक्तियो ने इस पद्धति से समय नापने की चेष्टा की होगी तब प्रमाणीकरण की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी—लोगो ने अनुभव किया होगा कि ऐसा बरतन बनाया जाय, और उसमे छेद इतना छोटा और इतनी सच्ची नाप का किया जाय, कि बरतन एक दिन-रात में नियमित बार पानी में डूबा करे। लोगो को सभवत ६० की गिनती इस काम के लिए बहुत उपयुक्त इस कारण से लगी होगी कि इसका आधा, तिहाई, चौथाई, पचमाश, षष्ठाश सब सुगमता से हो सकता है; यह इतनी बडी सख्या भी नही थी कि बरतन को बहुत जल्द-जल्द पानी में स निकालना और तैराना पडे, और इतनी छोटी सख्या भी नही थी कि इसे समय की एकाई मानने में असुविधा हो।

इस प्रकार बरतन और उसके छेद का प्रमाणीकरण हुआ होगा। हमारे प्राचीनतम ज्योतिष ग्रथ---वेदाग-ज्योतिष---में एक श्लोक है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि विशेष तौल और लबाई की सोने की सलाई के व्यास से बरतन का छेद नापा जाता था।

सस्कृत में घडे को घट कहते है और छोटे घडे को घटिका या घटी। इसलिए ऊपर बताये गये यत्र का नाम ही घटिका या घटी पड गया और एक दिन-रात के साठवें भाग का नाम भी घटिका या घटी पड गया। आज भी जब पडित जी अपना पत्रा लिये शुभ मुहूर्त बताने आते है तो वे समय की गणना घटी (या घटिका), कला, पल और विपल में करते है। इस घटी शब्द से ही हिन्दी की घडी की उत्पत्ति हुई है। फैशनेबुल लोग अब कलाई पर 'घडी' बाँधते है, परन्तु इस शब्द का मौलिक अर्थ है 'छोटा घडा।'

घटिका यत्र के आविष्कार के बाद भी समय का शुद्ध ज्ञान वस्तुत सूर्योदय से होता रहा। एव सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के समय को सुविधानुसार छोटी एकाइयो में बाँटने के लिए ही घटिका-यत्र का प्रयोग होता था, न कि सर्वदा के लिए शुद्ध समय जानने के लिए। जब कभी बरसात में कई दिनो तक लगातार वर्षा होती रही होगी और आकाश काली घटाओ से ढका रहता रहा होगा तब अवश्य समय बताने म थोडी-बहुत गडबडी पड जाया करती रही होगी।

सूर्योदय से समय जानने में कई एक अन्य कठिनाइयाँ भी है। वर्ष भर में दिन छोटा-बडा हुआ करता है। इससे एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय सदा एक ही नही रहता। इसके अतिरिक्त क्षितिज पर वृक्ष आदि के कारण बहुधा सूर्योदय का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने में कठिनाई पडती है। फिर, क्षितिज के पास हमारा वायुमडल धूमिल रहता है और इस कारण से भी थोडी कठिनाई पडती है। इसलिए सबसे उत्तम रीति यह है कि आकाशीय पिण्ड का वेध उस समय किया जाय---उसे उस समय देखा जाय---जब वह आकाश में सबसे अधिक ऊँचाई पर आ जाता है, या यो कहिए कि उस क्षण उसका वेध किया जाय जिस क्षण यह हमारे याम्योत्तर पर रहता है। याम्य दक्षिण को कहते है (जिधर यम रहते है उधर याम्य है) और उत्तर तो स्पष्ट है ही। इसलिए याम्योत्तर तल उस समतल को कहते है जो दक्षिण और उत्तर दिशाओ तथा शिरोविंदु (सर के ऊपर वाले विंदु) से होकर जाता है। इस तल की एक ओर पूर्व दिशा है, दूसरी ओर पश्चिम ।

याम्योत्तर पर किस क्षण कोई आकाशीय पिंड आया यह बताना इतना सरल नही है जितना यह बताना कि सूर्योदय कब हो रहा है। कारण यह है कि याम्योत्तर आकाश में दिखाई नही देता, क्षितिज दिखाई पडता है। मध्यकालीन ज्योतिषी उत्तर-दक्षिण दिशा में खडी भीत बनाकर अपना काम चलाते थे। काशी के मानमदिर में इस प्रकार की भीत बनी हुई है। इस भीत से आँख सटाकर देखने पर पता चल जाता था कि कोई तारा या ग्रह किसी क्षण याम्योतर पर है या कुछ इधर-उधर। सूर्य के लिए तो विशेष सुविधा थी, परछाही देखकर ही पता चल जाता था।

दूरदर्शक (दूरबीन) के आविष्कार के बाद याम्योत्तर के स्थिर करने में और भी सचाई लायी जा सकी। इसके लिए ऐसे दूरदर्शक बनाये गये जिनमें दो तार (जिन्हे हम स्वस्तिक-तार कहेंगे) एक दूसरे से समकोण बनाते हुए तने रहते थे। ये तार बहुत पतले रहते थे। वस्तुत मकडी पकडकर लोग उसे गिराते थे और गिरते समय मकडी अति सूक्ष्म सूत्र बनाती हुई गिरती थी, वही सूत्र जिससे वह अपना जाला रचती है। इसी सूत्र को दूरदर्शक के दृष्टिक्षेत्र में तान दिया जाता था। फिर दूरदर्शक को इस प्रकार आरोपित किया जाता था कि दूरदर्शक को घुमाने से उसकी केंद्रीय रेखा, अर्थात् स्वस्तिक तारो

के मिलन बिंदु और चक्षुताल के केंद्र को मिलाने वाली रेखा, याम्योत्तर तल में चले। इसके लिए इतना ही पर्याप्त था कि दूरदर्शक ऐसी धुरी पर घूम सके जो इसकी केंद्रीय रेखा से समकोण बनावे और क्षैतिज धरातल में पूर्व-पश्चिम दिशा में रहे। इस प्रकार आरोपित दूरदर्शक को याम्योत्तर-यत्र कहते हैं और जब कोई आकाशीय पिण्ड लगभग याम्योत्तर में आता है तो इस यत्र में से देखकर अत्यत सूक्ष्मता से निश्चित किया जा सकता है कि वह पिंड (चाहे वह तारा हो, ग्रह हो, या सूर्य) किस क्षण याम्योत्तर पर पहुँचा, इतनी सूक्ष्मता से कि इसमें $\frac{1}{10}$ सेंकड से भी कम का अतर पडता है।

यदि इस यत्र से सूर्य का वेध किया जाय तो मध्याह्न (दोपहर) कब हुआ इसका ज्ञान हो जायगा। परन्तु साधारणत सूर्य का वेध नही किया जाता क्योकि सूर्य की चमक के कारण उसे देखने में कठिनाई पडती है और सूर्य के ताप (गरमी) के कारण वायु में उथल-पुथल मचता रहता है जिससे भी सूक्ष्मता नही आने पाती। इसलिए साधारणत तारो का ही वेध किया जाता है और तारो की परस्पर स्थिति से गणना करके पता लगा लिया जाता है कि वेध के क्षण शुद्ध समय क्या था।

परन्तु ऐसा तो हो नही सकता कि जब कभी समय जानने की इच्छा हो तभी तुरन्त वेध कर लिया जाय। स्पष्ट है कि घटिका के समान किसी ऐसे यत्र की आवश्यकता है जिससे प्रत्येक क्षण समय ज्ञात होता रहे। इसके लिए वैज्ञानिक लोग लगर का प्रयोग करते हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो ने देखा कि उसके गिरजाघर का दीपवृक्ष—दीपको का वह समूह जो शोभा के लिए छत से लटक रहा था—ठीक एक ही समय में दोलन करता है चाहे दोलन विस्तार अधिक हो चाहे कम, अर्थात् चाहे दीपवृक्ष दूर तक झूमे चाहे बहुत थोडा ही थोडा। परीक्षणा से भी सिद्ध हुआ कि लगर का दोलन-समय केवल लगर की लबाई पर निर्भर है, दोलन विस्तार पर नही। इसलिए समय नापने के लिए लगर विशेष रूप से उपयुक्त है, कवल यही प्रबध होना चाहिए कि लगर की लबाई घटने-बढने न पाये।

आधुनिक ज्योतिष घडियों में लगर की छड ऐसे इस्पात की बनी रहती है जिसमें थोडी-सी निकल धातु पडी रहती है। धातुओ का यह सकर (मिश्रण) इसलिए चुना गया है कि सरदी या गरमी लगने पर यह घटता-बढता नही है। अन्य सभी पदार्थ ऋतुअनुसार कुछ घटते-बढते है। परन्तु इस निकलमय इस्पात पर भी पूरा भरोसा नही किया जाता। घडी को ऐसी कोठरी में रखत है जो स्वय एक दूसरी कोठरी के भीतर रहती है, जिसमें बाहर की गरमी भीतर न पहुँच सके, और भीतर वाली कोठरी में बिजली का ऐसा यत्र लगा रहता है जो कोठरी के ताप-क्रम को स्थिर बनाये रखता है। जब कभी भी तापक्रम निश्चित तापक्रम से थोडा कम हो जाता है तो बिजली का हीटर (तापदायक, या अँगीठी) काम करने लगता है, और जब कभी कोठरी का तापक्रम निश्चित तापक्रम से थोडा अधिक हो जाता है तो हीटर बद हो जाता है, और उसके बदले पखा चलने लगता है। इस प्रकार कोठरी का तापक्रम सदा एक-सा रहता है।

इस कोठरी में एक काँच का बडा बरतन रहता है और घडी उसी के भीतर बद रहती है। चूषक पप द्वारा बरतन की हवा खीच ली जाती है जिसमें लगर के मार्ग में वायुजनित प्रतिरोध (रुकावट) न पडने पावे। तो भी, एक बार चला देने पर लगर सर्वदा अपने आप तो न चलता रहेगा। इसलिए ऐसा प्रबध रहता है कि बिजली-द्वारा एक नन्हा-सा बेलन नियत समया पर उठा करता है और बिजली बद होने पर नाममात्र नीचे गिरा करता है। नीचे गिरते समय बेलन लगर को लेशमात्र एक बार ढकेल

देता है, जिसका परिणाम यह होता है कि लगर रुकने नही पाता। लगर के दोलनो को गिनने के लिए बिजली द्वारा प्रबध किया जाता है।

सुई आदि चलाने से लगर का कोई सबध नही रहता और इसलिए समय नापने मे बडी सूक्ष्मता आ जाती है। ऐसी घडी महीनो, बिना रुके और बिना अपना वेग बदले, समान गति से चलती रहती है। इस प्रकार समय सेकड के दसवे भाग तक सुगमता से नापा जा सकता है।

लगर के दोलन-समय का यथासभव पूर्णतया स्थिर रखना इसलिए आवश्यक है कि दोलन-समय छोटा रहता है। जब लगर एक दोलन में १ सेकड समय लेता है तब वह एक घटे म ३६०० बार दोलन करता है, और एक वर्ष में ३ लाख बार से अधिक। इसलिए यदि लगर के दोलन-काल म एक सेकड के हजारवे भाग का भी अतर पड जाय तो साल भर मे कई मिनट का अतर पड जायगा। फलत आधुनिक ज्योतिष-घडिया मे लगर को प्रतिकूल प्रभावा से सुरक्षित रखने की यथाशक्य चेष्टा की जाती है। ज्योतिष घडी को दीवारा पर टाँगी जाने वाली साधारण घडियो की रानी समझना चाहिए जिसकी सेवा में ससार के समस्त ज्योतिषी और वैज्ञानिक लगे हुए है।

परन्तु ज्योतिषी अपनी रानी घडी से सतुष्ट नही है। उलाहना इस बात का है कि क्यो इतनी सेवा करने पर भी, इतनी सावधानी बरतने पर भी, महीने दो महीने में कुछ सेकडो का अतर पड ही जाता है।

वैज्ञानिक इन दिना ऐसी भी घडी बनाते है जो परमाणुओं के कपन पर आश्रित है, परन्तु ऐसी घडियो का प्रचार अभी अधिक नही हो पाया है।

साराश यह है कि समय का शुद्ध ज्ञान इन दिनो यह देखकर किया जाता है कि तारे कब याम्योत्तर को पार करते है, ऐसे वेधा से पता चल जाता है कि घडी कितनी तेज है या सुस्त। घडी बहुत सच्ची बनायी जाती है और विकारजनक वातावरण से बडी सावधानी के साथ सुरक्षित रखी जाती है। इन घडियो की जान है लगर, जिसकी लबाई को एकदम स्थिर रखने की चेष्टा की जाती है। प्राचीन समय के घटिका-यत्र और धूप-घडी आदि से हम बहुत आगे अवश्य पहुँच गये है परन्तु और भी उन्नति करने की चेष्टा अब भी जारी है।

श्री हीरालाल खन्ना

ले० माननीय श्री० चन्द्रभानु गुप्त, स्वास्थ्य व रसद मंत्री, उत्तर-प्रदेश

गुप्तजी की सम्मति में हमारे प्रान्त में ऐसे बहुत कम व्यक्ति होंगे जिन्होंने खन्नाजी की तरह शिक्षा के क्षेत्र में इतनी तत्परता से कार्य किया हो। श्री खन्नाजी ने शिक्षको को सुविधा दिलाने में जो यत्न किये हैं वह सराहनीय है। आज भी वृद्ध होते हुए खन्नाजी जिस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र को विस्तृत करने के सम्बन्ध में दिलचस्पी लेते है वह हम सब नवयुवको के लिए अनुकरणीय है।

मुझे खेद है कि अवकाश न मिलने के कारण मै श्री हीरालाल खन्ना के सम्बन्ध मे कुछ लिखकर अब तक न भेज सका। श्री खन्नाजी से मेरा परिचय करीब १५ वर्ष से है। हमारे प्रान्त में ऐसे बहुत कम व्यक्ति हैं जिन्होने श्री खन्नाजी की तरह शिक्षा के क्षेत्र में इतनी तत्परता से कार्य किया हो। उनका सारा जीवन शिक्षा के क्षेत्र को विस्तृत करने मे बीता है और कानपुर नगर को जहाँ उन्होने अपने जीवन का अधिकाश भाग बिताया है, इस बात का गर्व होना चाहिए कि उनके मध्य एक ऐसा योग्य शिक्षक सदैव उनकी समस्याओ के समझने म विद्यमान रहा है। श्री खन्नाजी ने शिक्षको को सुविधा दिलाने में जो यत्न किये हैं वह सराहनीय हैं। शिक्षकगण उनकी इन सेवाओ को कभी भुलायेंगे नही। इलाहाबाद और आगरा के विश्वविद्यालयो की विभिन्न कमेटियो में कार्य करके श्री खन्ना ने जो सेवाएँ इन विश्वविद्यालयो की की है वह भी कभी भुलाई नही जा सकती। आज भी वृद्ध होते हुए खन्नाजी जिस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र को विस्तृत करने के सम्बन्ध में दिलचस्पी लेते हैं वह हम सब नवयुवको के लिए अनुकरणीय है। हमारा प्रान्त अभी शिक्षा के क्षेत्र में पिछडा हुआ है। हमें योग्य शिक्षको तथा विद्यार्थियो की आवश्यकता है। ऐसे तमाम व्यक्ति श्री खन्नाजी के जीवन से बहुत कुछ फायदा उठा सकते हैं। खन्नाजी हमारे बीच में अधिक दिवस तक जीवित रहे ऐसी हमारी अभिलाषा और कामना है।

श्री हीरालालजी खन्ना

लेखक, माननीय डाक्टर बालकृष्ण केसकर, उपवैदेशिक मन्त्री यूनियन सरकार।

[श्री डाक्टर बालकृष्ण केसकर भारतीय केन्द्रीय शासन के प्रधान मन्त्री स्वनामधन्य पंडित जवाहरलाल नेहरू के विदेश विभाग में उपसचिव है। उनका खन्नाजी का घनिष्ठ परिचय है। खन्नाजी के संबंध में अपने कुछ विचार उन्होंने इन पंक्तियों में बद्ध किये है। उन पर खन्नाजी की शिक्षा सेवा से कहीं अधिक प्रभाव उनके व्यक्तित्व और चरित्र का पडा है। उन्होंने लिखा है—
'बुद्धिमत्ता, अनुभव—ये सब चीजें मिल सकती है, लेकिन उनके साथ ही साथ चरित्र और आदमीयत बहुत कठिनता से मिलते हैं। इस दृष्टि से मैं खन्ना जी को बहुत ऊँचा स्थान देता हूँ।']

श्री हीरालाल खन्ना हमारे प्रान्त के एक विशेष अनुभवी और विद्वान् शिक्षा विशेषज्ञ हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उनका अनुभव बहुत विस्तीर्ण है और कई सस्थाओ को बनाने में उनकी सहायता रही है कानपुर का वी० एन० एस० डी० कालेज स्थापित करके उसको मूर्त स्वरूप देने में जो काम उन्होंने करके दिखाया है उसके बारे में मुझे विशेष कहने की आवश्यकता नही है। ऐसे कर्मनिष्ठ और अनुभवी पुरुषो की हमारे देश को अत्यन्त आवश्यकता है। खन्नाजी अपनी शिक्षा सेवा से निवृत्त हो रहे है लेकिन यह बडा दुर्भाग्य होगा यदि उनके अनुभव का हम अब भी फायदा न उठाये। देश में ऐसे कार्यकर्ताओ की नितान्त आवश्यकता है और मैं आशा करता हूँ कि उनके अनुभव से काम लेने की कोशिश की जायगी।

मै खन्नाजी के शिक्षा कार्य से इतना प्रभावित नही हुआ जितना कि उनके व्यक्तित्व से। उनका शिक्षा कार्य अति उत्तम है लेकिन अगर मैं उनकी कदर करता हूँ तो वह प्रधानत उनके व्यक्तित्व और चरित्र के कारण करता हूँ।

बुद्धिमत्ता, अनुभव—ये सब चीजें मिल सकती हैं लेकिन उनके साथ ही साथ चारित्र्य और आदमीयत बहुत कठिनता से मिलते है। इनके होने पर ही किसी पुरुष में विशेषता आ जाती है। और इस दृष्टि से मै खन्नाजी को बहुत ऊँचा स्थान देता हूँ। सार्वजनिक जीवन में ऐसे पुरुषो की आवश्यकता है।

उनका अदम्य उत्साह, कार्य करने की शक्ति और निरन्तर परिश्रम, सभी उल्लेखनीय हैं। लेकिन उस सम्बन्ध में मैं विस्तार से नही कहूँगा। उनके और साथी इस बारे में लिखेंगे ही।

मैं यह चाहता हूँ कि वे दीर्घायु हो और अपने अनुभव से हमारी सहायता करें।

ओ३म्

अभिनन्दन-पत्रम्

श्री रमेशचन्द्रजी शास्त्री एम० ए०

[श्री रमेशचद्र शास्त्री एम० ए० विश्वम्भरनाथ सनातनधर्म कालेज में सस्कृत विभाग के अध्यक्ष है। उनका खन्नाजी का बहुत पुराना साथ है। खन्नाजी के गुणो से प्रभावित होकर उन्होन यह अभिनदन पत्र सस्कृत में लिखकर इस पुस्तक के लिए भेजा है। शास्त्रीजी की योग्यता और खन्नाजी के गुणो का एक साथ परिचय इस अभिनदन-पत्र में मिलता है। यह पत्र उन्होने कालेज की ओर से प्रतिनिधि रूप में लिखा है।]

सेवायाम् —

श्री प्रिसपल हीरालाल खन्नामहोदयस्य कानपुरस्यस्य

अयि महामना महानुभाव! शिक्षासस्थासञ्चालनलब्धपाटव! अनिर्वचनीयोऽय श्रीविश्वम्भरनाथ सनातनधर्म महाविद्यालयस्य रजतजयन्तीमहोत्सवकाल यस्मिन्हि तत्र भवत समुदात्तगुणगणनामाकलयन्तो वयमधिगतकतिपयाक्षरैस्तत्र भवन्तमभिनन्दयितुमन समवेता स्म। अयि प्रशस्तचरित! नून वदान्य समवदातश्चासीत् सोवसर यस्मिन्हि —

ध्यायत्याष्ठाकुर देव, साक्षाद्देवप्रभामिव।
जनन्या जगदम्बाया, कनिष्ठस्त्व सुतोऽभव ॥१॥

एव हि —

श्रीमांस्त्व लब्धजन्मा क्षितिपतिनमिते निर्मले क्षत्रवशे
य वश ह्युन्निनीपु सुविदिततपसा भेजिपे भूति विद्याम्।
प्रत्यक्ष त्व तमेव प्रविरलविमले प्रक्षसे वैभवेऽस्मिन्
यन प्रान्ते दिगन्ते धवलितयशसा श्रूयते गौरवस्ते ॥२॥

अपि च महाभाग! धन्यञ्च तेऽभिधानम् —

हीरकप्रभया युक्त, स्वर्णवर्णाभिशोभितम्।
हीरालालाभिधानन्ते, कन्न रञ्जयति स्वयम् ॥३॥

अन्यच्च महानुभाव —

स्वशैशवेऽभ्यस्तसमस्तविद्य, शरीरविद्यास्वपि लब्धमानम्
शिक्षालयोऽय समवाप्नुवँस्त्वाम् समुन्नते श्रीशिखर प्ररूढ ॥४॥

अयि उदात्तचरित!

विचिन्तयन्तीह तवोपकारम्, सनातनी वी० यन० धर्मसस्था,
वियोगमन्ते तव सोढुकामा, पुनस्तवैवाश्रयमाश्रयऽहम् ॥५॥

श्रीमन निरन्तरन्तव दर्शनमेवाभिलषन्ती स्वावचनीयताञ्चानुभवतीय सस्था कस्यचित्कवे इतिमेव-माकलयति, यद्यपि महाभाग!

यत्रापि कुत्रापि गता भवन्ति, हसा महीमण्डलमण्डनाय।
हानिस्तु तेपा हि सरोवराणा मेपाम्मरालै सह विप्रयोग ॥

अन्यच्च महनीयकीर्त्ते!

इयमुन्नतसत्त्वशालिनाम्महता वापि कठोरचित्तता।
उपकृत्य भवन्ति दूरत परत प्रत्युपकारशकया॥

परन्तथापि देव! प्रायय भवन्तम् —

तव पलवपाणिलालिता नीता चैव परा वदान्यताम्।
मयकैव निवेद्यते भवान् स्मरणीयति यदा कदाप्यहम्॥६॥

अपरञ्च भवन्तमभिनन्दयनन्ते निवेदयाम्यहम् —

पूर्वं यस्य सता कुले समभवद् विद्यानवद्या सखी
लज्जा यस्य पुन पराश्रमवनत्रीताऽभवद् गेहिनी।
सोऽहन्त्वामभिनन्दयनतशिरो विप्रो रमेश सुधी
स्वष्ट वस्तु समर्पयामि भवते सानुग्रह गृह्यताम्॥७॥

भवता कृपाकाक्षिणो वय स्म
बी० एन० एम० डी० विद्यालयस्था
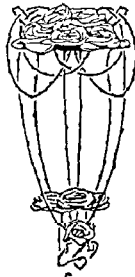
श्री हीरालाल खन्ना

श्री माननीय लालबहादुर शास्त्री, मंत्री पुलिस और यातायात विभाग, उत्तर प्रदेश

[आप खन्नाजी के अभिन्न मित्र आचार्य नरेन्द्रदेवजी के शिष्यों में हैं। शास्त्रीजी ने इस लेख के द्वारा अपने विशिष्ट उद्‌गार खन्नाजी के प्रति प्रकट किये हैं। आशा है कि पाठक दिलचस्पी के साथ उन्हें पढ़ेंगे।]

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री हीरालालजी खन्ना के मित्रो और प्रशंसको ने उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया है। श्री हीरालालजी उत्तर प्रदेश के एक सुविख्यात शिक्षक रहे हैं। शिक्षण क्षेत्र में उनका अनुभव बहुत अधिक है। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग बी० एन० एस० डी० कालेज, कानपुर के बनाने में बिता दिया। वहाँ वह २२ वर्ष से अधिक काल तक प्रिंसिपल रहे हैं।

खन्नाजी बडे ही स्नेही और मिलनसार हैं। वह उदार और प्रगतिशील विचार के व्यक्ति हैं। विचारो का मतभेद रखते हुए भी वह सहयोग देना चाहते हैं। अपने जीवन में उन्होंने केवल अध्यापन का ही कार्य नही किया, वरन् प्रान्त की शिक्षा-सम्बन्धी प्राय सभी महत्त्वपूर्ण योजनाओ के निर्माण में उनका हाथ रहा है। अब भी वह किसी कार्य से, जो उन्हें सौंपा जाय, मुँह मोडना नही जानते।

खन्नाजी स्वस्थ रहें और समाज-सेवा करते रहें यही मेरी अभिलाषा है।

"हमारे विधान में प्रवासी भारतीयो का स्थान"

श्री डा० केसकर उपवैदेशिक सचिव, भारत सरकार

[श्री डाक्टर बी० वी० केसकर भारत के वैदेशिक विभाग के उपमन्त्री है। प्रवासी भारतीयो के प्रश्न पर आपसे अधिक जानकार और कोई व्यक्ति नही है। राजनीति शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् के नाते विधान की गुत्थियो को सुलझाने में भी आप अत्यन्त पटु है। हमारे विधान में प्रवासी भारतीयो का क्या स्थान है यह बात इस लेख से स्पष्ट हो जावेगी।

१ यद्यपि आधुनिक काल में भारतवर्ष के लोग पश्चिमी या अरब लोगो की तरह यात्रा प्रमी नही रहे तब भी प्रवासी भारतीयो की सख्या काफी है। वेस्ट इडीज द्वीपसमूह, फिजी, मारिशस मलाया ब्रह्म-देश लका तथा अफ्रीका में वे काफी सख्या में है। इनमें से मजदूर और गरीब लोग मेहनत करने तथा गन्ना चाय रबड आदि की खेती करने के लिए ठकेवाले कुली की हैसियत से हजारो की सख्या मे जानवरो की तरह भेज गये थे। उनका इतिहास बहुत दुखदायक रहा। बहुत से व्यापारादि के लिए पूर्वी अफ्रीका तथा लका और सिगापुर गये। ब्रह्मदेश तो एक समय हमारे देश का एक अग था वहा काफी लोगो का होना स्वाभाविक है। हमारे देश के नये विधान में इन लोगो का क्या स्थान होना चाहिए इस पर विशेष प्रकार से चर्चा हुई और नागरिकता सबधित धाराएँ बनाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि इनके उचित अधिकारो की रक्षा हो।

२ उचित धारा बनाते समय विधानकर्त्ताओ के सामने प्रवासी भारतीयो के अलावा एक और कठिनाई आई। पाकिस्तान के बनने से जो लाखो लोग इधर आये उनकी नागरिकता तय करना आसान काम नही था। यह काम आसान नही था क्योकि अब भी हजारों का स्थान निश्चित नही है और एक व्याख्या में सब निर्वासितो को किस प्रकार लाया जाय यह भी बडा प्रश्न था।

३ और एक श्रेणी उन लोगो की है जो इस समय भिन्न भिन्न राष्ट्रो में वायवश है या बहुत दिनो से कारोबार कर रहे है लेकिन भारतीय है ऐसे लोगो की सख्या पहली श्रेणी की अपेक्षा बहुत

कम है। इस श्रेणी में भी दो प्रकार है। पहले में उन देशो को गिनना होगा जो किसी समय में ब्रिटिश उपनिवेश थे और अब पूर्ण स्वतत्र है। उदाहरणार्थ ब्रह्म देश, ऐसे देशो में भारतीयो की सख्या काफी है। दूसरे में और विदेशी राष्ट्र आवेंगे जहाँ भारतीयो की सख्या नाम-मात्र है।

४ भारतीय विधान में नागरिक अधिकारो के बारे में जो धाराएँ है उनका विशेष मतलब यह दरसाना है कि २६ जनवरी १९५० के दिन कौन कौन नागरिक बनने योग्य है। उनमें इस बात का प्रयत्न नही किया गया कि भविष्य में कौन और किस प्रकार नागरिक बन सकता है। नागरिकता के सबध में विस्तृत नियम बनाने का पूरा अधिकार धारा ११ के अनुसार पार्लिमेंट को दिया गया है। विधान की धारा ६, ७, ८, ९ और १० में भारतीय गणतत्र के आरभ के दिन जो उसके नागरिक है केवल उन्ही की व्याख्या की गयी है।

५ प्रवासी भारतीयो के नागरिकता के प्रश्न की जटिलता और भी बढने का एक कारण मलाया का वर्तमान नागरिक कानून है। हमारे विधान के अनुसार राष्ट्रीयता नेशनैलिटी और नागरिकता एक ही है और किसी दूसरे राष्ट्र की नागरिकता लेते ही एक व्यक्ति भारतीय नागरिकता आप ही आप खो बैठेगा। अधिकाश राष्ट्रो में यही नियम है और कोई भी व्यक्ति एक साथ दो राष्ट्रो की नागरिकता रख नही सकता। लेकिन मलाया में जो नागरिकता कानून अमल में आया है उसके अनुसार कोई व्यक्ति मलाया का नागरिक बनकर और उसके सब अधिकार पाकर भी दूसरे देश की राष्ट्रीयता नेशनैलिटी रख सकता है। इस प्रकार की स्वतत्रता देने के दो मुख्य कारण है। एक तो मलाया ब्रिटिश उपनिवेश होने के कारण उसका कोई अतर्राष्ट्रीय स्थान नही है अत राष्ट्रीयता प्रदान करने का उसे अधिकार नही है और दूसरे मलायन में चीनी भारतीय आदि दूसरे राष्ट्रीय भी बसते है जो सख्या की दृष्टि से वहाँ के मूल निवासी मलाया से सख्या में अधिक है। उन्हे राष्ट्रीय मान लेने से मलाया का सारा प्रदेश मलाया जाति के हाथ से निकल जाने का डर है।

सब दिक्कतो को ध्यान में रखते हुए विदेशी भारतीयो के लिए विधान ने धारा ८ मे निम्न प्रकार से नियम बनाया है—

कोई व्यक्ति जिसके माता पिता या मातामह पितामह में से कोई एक भारत में पैदा हुए थ और जो इस समय साधारणतया भारत के बाहर रहता है वह भारत का नागरिक समझा जावेगा अगर वह उस देश में स्थित भारतीय राजदूत या कौंसिल को दरख्वास्त दे। यह दरख्वास्त विधान के आरभ होने के पहले या बाद को भी दी जा सकती है और उसका नमूना भारत-सरकार तय करेगी।

धारा ८ में जिस भारत का उल्लेख है वह अविभाज्य सम्पूर्ण भारत है जिसकी व्याख्या गवर्नमेंट आफ इडिया ऐक्ट १९३५ में की गई है। -।

इसका मुख्य कारण यह है कि ऐसे बहुत से हिन्दू या सिक्ख है जिनका जन्म १९४७ के पहले उस प्रदेश में हुआ जिसको आज पाकिस्तान कहते है। और जो साधारणतया पाकिस्तान छोडकर भारत में चले आते है। ऐसे निवासी जो विदेश में है उनको भी अधिकार होना चाहिए कि वह भारत की नागरिकता पा सकें।

विधान पास होने पर अब विदेश में रहनेवाले भारतीयो को नागरिकता का अधिकार पाने के लिए जिस देश में वह रहते हो वहाँ के भारतीय राजदूत या राज प्रतिनिधि के पास आना चाहिए और निश्चित फार्म पर दरख्वास्त देना चाहिए। इससे अधिक उन्ह कोई विशेष कार्य करना नहीं है। अवश्य

राजदूत को यह अधिकार है कि यदि उसको सन्देह हो जाय कि कोई दरख्वास्त देनेवाला व्यक्ति सचमुच भारतीय नही है यानी पाकिस्तानी है या देश विरोधी है तो वह दरख्वास्त को नामजूर करे। लेकिन एस उदाहरण कम ही आवेंग।

इस व्यापक नियम स विदेश म रहनवाले सभी भारतीयो को नागरिकता पान में सहूलियत होगी।

मलाया में रहनेवाले भारतीयों के लिए एक प्रश्न उपस्थित था कि यदि वे मलाया फडरेशन के नागरिक हो जावें तो भारतीय राष्ट्रीयता का अधिकार उनको कैसे प्राप्त हो सकता है। इस बारे में धारा ९ में स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि कोई व्यक्ति स्वय स्वीकृत स किसी विदशी राज्य की नागरिकता स्वीकार करे तो वह भारत का नागरिक नही रह सकता। मलाया के भारतीयो के सामन जो प्रश्न है उसका हल इस प्रकार निकाला गया कि मलाया विदशी राज्य नही माना जायेगा। अत मलाया की नागरिकता स्वीकार करन मे कोई व्यक्ति भारतीय राष्ट्रीयता खो नही सकता।

नागरिकता के यह दो मोट मोट नियम इस समय बना दिये गये है उनकी टीका टिप्पणी और विस्तार एक नागरिकता कानून स नये पार्लिमेंट में किया जावेगा क्योकि यह स्पष्ट है कि विधान की धाराओ में भिन्न भिन्न प्रकार के नाता पान या न पान के अधिकतर व्यक्तियो के उदाहरण नही समा सकत। लेकिन इन धाराओ न इतना काम कर दिया कि आरभ में हमारे नागरिक कौन हाग। इसस आगे का रास्ता साफ हो गया और हमें आशा है कि शीघ्र ही विस्तृत कानून बनाकर जो बातें सदिग्ध रह गई है वह भी साफ हो जावेंगी।
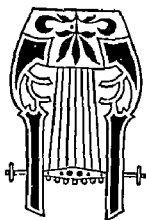
अभिनन्दनम्

श्री पं० कन्हैयालाल शर्मा

[पंडित कन्हैयालाल शर्मा गौड़ शास्त्री डी० एन० एम० डी० कालेज के बहुत पुराने संस्कृत-अध्यापक हैं। सभाजी के प्रति आपका अपार अनुराग है। आदरभाव से प्रेरित होकर आपने इस अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए संस्कृत में अभिनन्दन किया है। सभाजी के गुणों और उनके कार्यक्षेत्र की चर्चा बहुत संक्षेप में की गई है।]

सरस्वती श्रुति महती महीयताम्

अयि प्राच्य-पाश्चात्य-भाषापारावारीणा गणितशास्त्रावगाहनासादितहृदयानन्दा श्रीमन्त हीरालाल प्रिंसिपलमहोदया ।

श्रीमता रजतजयन्तीमहोत्सवप्राणाना, वाग्मीना, सभीवशावतंसानाम्, तत्रभवता कीर्तिमभिनन्दितु यदद्य वय समुत्सुकाः तदस्माक नितरा स्नेहातिशय एव नत्वभिनन्दनपाटवमात्रम्।

तथा च अयि छात्रपद्मविकाशन-विभाकर !

शरदिन्दुसमो गौरो जन्म लेभे महाकुले ।
षट्तुर्यनवचन्द्रेऽब्दे रीवाख्ये नगरे शुभे ॥१॥

रत्नपण्यो महावीर्य ख्यातो लोके महायशा ।
पिता ठाकुरदासोऽस्य केशवे भक्तिमानभूत् ॥२॥

कीर्त्या दिगन्तपावन्या पावयन् मण्डल भुव ।
रञ्जयन् सुहृदो नित्य भञ्जयन् दुर्हृदो नयै ॥३॥

सारस्वते महापीठे प्रधानत्वे व्यवस्थित ।
रेजे कर्णपुरे रम्ये धर्ममल्लासयञ्चिरम् ॥४॥

अयि ! अध्यापकवृन्दानुरञ्जन-पटो !

सनातने वर्त्मनि सम्प्रतिष्ठित
अधीतविद्य नृपसंसदि प्रभुम्।
विराजमान रजते महोत्सवे
श्रिया स्फुरन्त परिकामये हितम् ॥५॥

अयि ! सनातनधर्मानुशीलनमानस ! इदमाशास्महे

पूर्णं कलाभिरभिरामतमो महेन्दु
कैलाशचारिचरणो भगवान् महेश ।
ब्रह्मादिदेवगणमध्यगतो महेन्द्र
कीर्ति दिशेत् सकलछात्रयुताय तुभ्यम् ॥६॥

छात्रसंसदि समान्य सर्वरञ्जनपंडित ।
हीरालालो महाप्राज्ञ सर्वत्र विजयी भवेत् ॥

सकलदुःखदलदलनपटीयोऽभिनन्दनदलमेतच्छ्रीमता करकमलाभ्या समर्प्य स्वकीयमपि सौभाग्य सुबहु मन्यामहे।

गौडवंशावतंसेन कन्हैयालालशर्मणा।
विदुषा रचित चेद नन्दन नन्दनायते ॥७॥

हीरालालजी खन्ना

लेखक, श्री पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', एम० पी०

[भाई बालकृष्ण शर्मा कानपुर के राजनीतिक जीवन की पवित्र प्रेरणा हैं। हिंदी के साहित्यिक स्वरूप को उन्होंने बल दिया है और गति दी है। वे अपने ढंग के अकेले कवि हैं। उनके निबंधों में मर्म और तर्क का अनूठा सोहाग है। उनकी राजनीति भी उनके साहित्य की भाँति खुली हुई और तपी हुई है। कांग्रेस ने उन्हें कानपुर से दिल्ली बुलाकर इस नगर को दरिद्र कर दिया है, ऐसा यहाँ के निवासी सोचते हैं।

शर्माजी की खन्नाजी से बड़ी पुरानी मैत्री है। खन्नाजी के अनेक गुणों की चरचा इस लेख में भाई बालकृष्ण ने की है। उनके नीचे दिये हुए वाक्य बड़े उपयोगी और चित्य हैं—"शिक्षा विभाग के नियम उन्हें अवकाश लेने के लिए भले ही बाध्य करें, पर समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह उनके अनुभव, उनकी क्षमता, उनकी सूझ-बूझ और उनकी निर्माण शक्ति से लाभान्वित होने का कोई उपाय ढूँढे। ऐसे सज्जन को चुप बैठने के लिए बाध्य करना समाज के अहित को प्रोत्साहन देने के सदृश है। यह मुझे भली प्रकार ज्ञात है कि खन्नाजी चुप बैठनेवाले नहीं। वे कोई न कोई समाजोपयोगी कार्य अपने आप उठा लेंगे। पर मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि स्वयं समाज को चाहिए कि वह उनके लिए, उनकी क्षमता और प्रतिष्ठा के अनुरूप, कोई कार्य निकाले। . . . उत्तर प्रदेश राज्य का स्वयं यह कर्त्तव्य है कि वह खन्ना जी से इस शिक्षा-कार्य प्रसार के लिए कहे। वे प्रसन्नतापूर्वक इस निर्माण कार्य में अवैतनिक रूप से योगदान देने को प्रस्तुत होंगे। हमारे राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह खन्नाजी की सेवाओं से लाभान्वित होने का अवसर निकालें।"]

कानपुर में—और कानपुर में ही क्यों, समस्त उत्तर प्रदेश के शिक्षा-जगत में,—"खन्ना जी"—शब्द जातिवाचक, गुणवाचक, भाववाचक या समूहवाचक संज्ञा नहीं है, वह एक व्यक्तिवाचक,—और सो भी एक विशिष्ट व्यक्तिवाचक—संज्ञा है। इस शब्द का उच्चारण करते या सुनते ही आपके मानस दृगों के सम्मुख एक मूर्ति आती है—बघेलखण्डी धवल साफा पहने, श्वेत केशी, श्वेत श्मश्रुधारिणी, लम्बे कोटवाली गौरवर्णा, चातुरी विज्ञापक और हेम-कमानीवाले चश्मे से विभूषित नेत्रोंवाली गहर गंभीर और दयालु। मैं मित्रों से बहुधा कहा करता हूँ कि खन्नाजी कोई व्यक्ति थोड़े ही हैं। वे एक चक्की हैं! एक धुन हैं, एक लगन है, संस्था-स्थापन-रोगाक्रान्त एक भ्रमर हैं। मेरे आजीवन सखा भाई सद्गुरुशरण ने मुझे आज्ञा दी कि मैं उनके विषय में कुछ लिखूँ। क्या लिखूँ? यह समझ में नहीं आता। इतने समय तक न लिखने के कारण सद्गुरु अत्यन्त रुष्ट हो गये हैं। भले मानुस यह तो जानते नहीं कि अपनों के सम्बन्ध में लिखना मेरे लिए कठिन हो जाता है। पर, एक सद्गुरु हैं कि मुँह फुलाए बैठे हैं। तो फिर, लिख रहा हूँ, इस कारण नहीं कि सद्गुरु की रुष्टता दूर करनी है,—वह तो एक गप्प में ठीक रीति से दूर हो जायगी,—पर, इसलिए कि इस व्याज से मैं खन्नाजी के प्रति अपनी सम्मानाञ्जलि अर्पित कर सकूँगा।

तो, मै कह यह रहा था कि खन्नाजी एक धुन है, एक लगन है, एक चक्की है, एक भ्रमर है। आप पूछेंगे कि अन्तत मै खन्नाजी को कब से जानता हूँ जो इस प्रकार की बात कहने का साहस कर रहा हूँ? वर्षों की गणना क्या लगाऊँ? मै इतना कह सकता हूँ कि मै उन्हे बहुत वर्षो से जानता हूँ—कदाचित् सन् १९२० ईसवी से। किसी समय, वे कानपुर में बुद्धादेवी वाली गली के एक घर में रहते थे। उस समय से मै उन्हें जानता हूँ। ज्यो-ज्यो समय बीतता गया उनसे अधिकाधिक परिचय बढता गया और आज वही परिचय एक घनिष्टता के रूप में, एक कौटुम्बिक सम्बन्ध के रूप में, परिणत हो गया। मेरे पुण्यलोक हुतात्मा अग्रज गणेशशकर विद्यार्थी खन्नाजी पर बहुत विश्वास रखते थे। बहुत से विषयो में वे उनसे परामर्श किया करते थे। वे हीरालालजी की व्यवहार-बुद्धि के प्रशसक थे और उन्हे अपना मित्र मानते थे इस कारण खन्नाजी मेरे आदर भाजन हैं। गत तीस वर्षो से भी अधिक काल से वे शिक्षा-क्षेत्र में कार्य कर रहे है। असख्य युवको को उन्होंने मार्ग दिखलाया है। उनके छात्रो ने जीवन में अच्छी सफलता प्राप्त की है। उत्तर प्रदेश की शिक्षा सस्थाओ पर उनकी कर्मठता की छाप है। हाई-स्कूल इन्टमीजिएट-परीक्षा-समिति ने उत्तर प्रदेश में जो भी सफलता प्राप्त की है उसमे हीरालालजी खन्ना का बहुत हाथ रहा है। प्रान्त भर के शिक्षा-शास्त्री उनके नाम और काम से सुपरिचित है। गत तीस-पैंतीस वर्षो मे हमारे उत्तर प्रदेश में शिक्षा की जो गति विधि रही है उससे खन्नाजी का घनिष्ट सबध रहा है। खन्नाजी हमारे प्रदेश के शिक्षा-गति-दाताओ में अग्रगण्य हैं।

कानपुर की "विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म इन्टरमीजिएट कालेज" नामक शिक्षासस्था खन्नाजी के अथक परिश्रम और उनकी सेवा भावना का परिणाम है। जिस प्रकार कानपुर के डी० ए० वी० कालेज के निर्माण एव उसकी उन्नति का सम्पूर्ण श्रेय आदरणीय लाला दीवानचन्दजी को है, उसी प्रकार वि० ना० स० ध० इन्टर कालेज, कानपुर हाईस्कूल आदि सस्थाओ को मूर्त्त स्वरूप देने एव उन्हें सफलतापूर्वक सचालित करने का श्रेय मान्यवर हीरालालजी खन्ना को है। सस्थाओ का निर्माण कोई हँसी-खेल नही है। हमारे उत्तर प्रदेश का यह अभिशाप है कि हमारे बीच सस्था निर्माता लोग जन्म नही लेते। यदि आपको सस्था-निर्माण-क्षमता का चमत्कार देखना हो तो आप महाराष्ट्र, गुजरात और मद्रास राज्यो में जाइए। आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि वहाँ ऐसे ऐसे कर्मठजन पडे हैं जिन्होंने एक काम अपने हाथ में ले लिया तो सम्पूर्ण जीवन उसी के लिए निवेदित कर दिया। हमारे प्रदेश में ऐसे जन नही मिलते। पर, हीरालालजी इस नियम के अपवाद हैं।

हीरालालजी बहुत अच्छे पिता हैं। बडे स्नेही, बडे ही वत्सल किन्तु बड अनुशासक। अपने कर्त्तव्य को निभाने में वे किसी अन्य विचार को आडे नही आने देते। वे विधुर है। पर, जिस समय उनकी जीवन-सगिनी उन्हें छोडकर चली गई उस समय उनका वय ऐसा नही था कि वे विवाह नही कर सकते थे। पर, उन्होने विवाह नही किया। उनकी पत्नी एक पुत्र छोड गई थी। खन्नाजी ने उसी के लालन-पालन को अपना आद्य कर्त्तव्य समझा और विवाह नही किया। यह साधारण बात नही है। आज वही उनका पुत्र स्वय पितृत्व का गौरव प्राप्त कर चुका है। भगवान् उसे शतजीवी करें। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि एक बार जब खन्नाजी ने अपने कर्त्तव्य का निर्णय कर लिया तब फिर अपने सुख की लालसा को स्वाहा कर देने मे उन्होने तनिक भी हिचकिचाहट नही की। मैं तो आयुष्मान् नन्दलाल खन्ना को बडा भाग्यशाली मानता हूँ कि उसे हीरालालजी के सदृश ममतामय, कठोर, स्नेहशील एव चरित्र-निर्माता पिता मिले।

खन्नाजी एक सद्गृहस्थ है। उन्होने अपने गृहस्थ धर्म को सुचारु रूप से निबाहा है। वे स्वाभिमानी, मितव्ययी, नियमपालक एव सुघड गृहस्थ है। और आप यदि एक बात की चर्चा न करे तो मै आपको वह बात बताऊँ। देखिए, इसको किसी से कहिएगा मत। बात यह है कि खन्नाजी थोडे सनकी है। उनकी सनक कुछ उसी प्रकार की है जैसी कि पूज्य टण्डनजी की। उनकी इस सनक के कारण हमारी बिचारी बहूरानी पुष्पा—हीरालालजी की पुत्रवधू—परेशान रहती है। "यही खाऊँगा, वह नही खाऊँगा, ऐसा खाऊँगा, वैसा नही खाऊँगा"—घर में इसी तरह का राग वे अलापते रहते हैं। भला बताइए, घर में ले दे के एक गरीब बहू। वह कभी बडे प्रेम से पकावे कोई वस्तु। और एक हीरालालजी है कि झाड रहे है व्याख्यान वर्तमान पाकशास्त्र की अशास्त्रीयता पर। यो पकाने से यो विटामिन नाश होता है यो खाने से यो होता है, यह खाने से वह परिणाम होता है, आदि-आदि। अपनी इसी सनक के कारण वे न किसी के यहाँ खाने जाते है और न जाने-आने का झझट पालते है। पर, इसका अर्थ यह नही है कि वे खिलाते नही है। हमारे नगर मे दो-चार ऐसे व्यक्ति है जिन्हे मित्रो को आकण्ठ भोजन कराने का रोग है। हीरालालजी उनमें है। और वे जो है जो है ही, उनके पुत्र चिरजीवी नन्दलाल और पुत्रवधू सौभाग्यवती पुष्पा ये दोनो इस विषय में उन्हे भी पराजित कर रहे है। पर जैसा मै कह चुका हूँ, निज के खान-पान में हीरालालजी पर्याप्त मात्रा में सनकी है। हाँ, उनकी सनक उनके लिए, और जो भी ऐसा कर सके उसके लिए भी लाभप्रद अब सिद्ध होती है। साठ वर्ष से अधिक वय हो जाने के उपरान्त भी वे जिस प्रकार कठिन परिश्रम कर सकते है वह इस बात का प्रमाण है कि वे मानसिक और शारीरिक रूप से बडे स्वस्थ है।

खन्नाजी ने बहुतो को पढाया है, वे गुरु श्रेणी के जनो मे है ही। पर, एक बात में मुझे उनके गुरु होने का अभिमान है। बरसो पहले मै नियमित रूप से पेट की शुद्धता के लिए ईसबगोल (अस्फगोल) की भूसी या उसके बीजो का प्रयोग किया करता था। मैंने उसके गुण खन्नाजी को बताये। उन्होने उसका सेवन आरम्भ किया और आज तक वे ईसबगोल के पीछे पडे हुए है। बेचारी ईसबगोल जरूर तग आ गई होगी, पर खन्नाजी उसे छोडते ही नही है। धन्य है पडित बालकृष्ण शर्मा जिन्हे हीरालालजी के सदृश शिष्य की प्राप्ति हुई!

खन्नाजी निर्धन माता-पिता के पुत्र है। वे स्वकर्मणा निर्मित जन है। उनका जीवन स्वावलम्बन, अथक परिश्रम एव स्व-उन्नतिशीलता का अनुकरणीय उदाहरण है। उनका जीवन सतत युद्धमय रहा है। उन्होने निर्धनता से युद्ध किया और उसे परास्त किया। उन्होने प्रतिकूल परिस्थितियो से लोहा लिया और उन्हे पराजित एव अतिक्रमित किया। एक साधारण शिक्षक के आसन से उठते-उठते उन्होने उत्तर प्रदेश के शिक्षा शास्त्रियो की श्रेणी मे अपना स्थान बनाया। जीवन भर उन्होने ज्ञान-दान का पुण्य कार्य किया है। उनकी निरलस कर्मशक्ति, उनका उत्साह, उनका साहस एव प्रतिकूलताओ को अतिक्रमित करने की उनकी तत्परता,—ये सब गुण हम सबके लिए अनुकरणीय है।

हमारे प्रदेश में न जाने कितने नवयुवक है जो खन्नाजी के स्नेहमय उपकारो से दबे हुए है। उनकी मासिक आय का एक भाग सदा विद्यार्थियो की सहायता मे जाता है। यह बात बहुत कम लोग जानते है कि खन्नाजी निर्धन विद्यार्थियो की कितनी सहायता करते है। वे यथासभव किसी उपयुक्त पात्र को निराश नही करते। उनकी सेवा-भावना सर्वविदित है। दूसरो के काम के लिए दौड़ जाना हीरालालजी का स्वभावसिद्ध गुण है।

यह बात तो सभी जानते है कि मेरे बहुत से विचार, विशेषकर राजनैतिक विचार, उनके विचारो से मेल नही खाते रहे। बहुधा ऐसा हुआ कि मैने और हीरालालजी ने अपने आपको भिन्न भिन्न शिविरो में विभक्त पाया। पर, मुझे ऐसा एक भी अवसर स्मरण नही पडता जब कि इस विचार-विभिन्नता ने हमारे बीच कोई खाई खोद दी हो। उनके प्रति मेरा सम्मान भाव एव स्नेह तथा मेरे प्रति उनका स्नेह भाव सदा ज्या का त्यो बना रहा। और आज, जब कि उस प्रकार की विचार-भिन्नता का अवसर प्राय समाप्त हो गया है, मैं गर्व के साथ यह कह सकता हूँ कि उनकी, मेरी खूब निभी और मुझे विश्वास है कि आजीवन इसी प्रकार निभती जायगी।

मैं सदा यह कहा करता हूँ कि विधाता ने मुझे धन-दरिद्र बनाया है, पर, मित्रो के रूप में उसने मुझे जो सम्पत्ति प्रदान की है उसके लिए मैं सदा उसका आभारी हूँ। अकारण, बिना रचमात्र भी स्वार्थ के मेरे मित्रगण मुझ पर कृपा करत आये है। मुझमें कोई ऐसा गुण नही है जिन पर मेरे कृपालु मुग्ध हो। पर, मेरा भाग्य कि मेरी त्रुटिया के होते हुए भी मित्र मुझ पर कृपा करते है। हीरालालजी उन कृपालु जना में है।

जीवन में अनेक घटनाएँ ऐसी हैं जिनके स्मरण-मात्र से मैं सुखी हो जाता हूँ। खन्नाजी के और मेरे बीच जो सम्बन्ध-श्रृखला है वह दृढ है। वे मेरे ऊपर सदा अनुग्रह करते आये हैं। मुझे यह भरोसा है कि यदि कभी मुझसे कोई त्रुटि—और अक्षम्य श्रेणी की त्रुटि—हो भी जायगी तो हीरालालजी उदारतापूर्वक उसे क्षमा कर देंगे और मेरे प्रति जो उनका स्नेह भाव है उसमें न्यूनता न आने देंगे।

हीरालालजी अब साठ वर्ष पार कर गये है। उनके अवकाश ग्रहण करने का समय आ गया है। शिक्षा-विभाग के नियम उन्हे अवकाश लेने के लिए भले ही बाध्य करें, पर, समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह उनके अनुभव, उनकी क्षमता, उनकी सूझ-बूझ और उनकी निर्माण शक्ति से लाभान्वित होने का कोई उपाय ढूँढे। ऐसे सज्जन को चुप बैठने के लिए बाध्य करना समाज के अहित को प्रोत्साहन देने के सदृश है। यह मुझे भली प्रकार ज्ञात है कि खन्नाजी चुप बैठनेवाले नही है। वे कोई न कोई समाजोपयोगी कार्य अपने आप उठा लेंगे। पर, मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि स्वय समाज को चाहिए कि वह उनके लिए, उनकी क्षमता और प्रतिष्ठा के अनुरूप, कोई कार्य निकाले। ६ करोड के इस हा-हा हूती उत्तर प्रदेश में शिक्षा का कार्य कोई ऐसा-वैसा नगण्य कार्य तो है नही कि हम लोग खन्नाजी का उपयोग करने की बात सोचें ही नही। उत्तर प्रदेश राज्य का स्वय का यह कर्त्तव्य है कि वह खन्नाजी से इस शिक्षा कार्य प्रसार के लिए कहे। वे प्रसन्नतापूर्वक इस निर्माण-कार्य में अवैतनिक रूप से योगदान देने को प्रस्तुत होंगे। हमारे राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह खन्नाजी की सेवाओ से लाभान्वित होने का अवसर निकाले।

मैं वय में खन्नाजी से छोटा हूँ। अत मुझे यह अधिकार तो है नही कि मैं उनके लिए आशीर्वादात्मक भावाभिव्यक्ति करूँ। हाँ, मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक मगल-कामनाओ का प्रकाश कर सकता हूँ। मैं यह अनुभव करता हूँ कि खन्नाजी के सदृश व्यक्तियो का समाज में रहना समाज के लिए कल्याणकर है। वे अभी वर्षों तक हमारे बीच रहे और हमें अपने स्नेह से अभिषिक्त करते रहे—यही प्रार्थना मैं भगवत्-चरणारविन्दो में अर्पित करता हूँ।

कबीर की भाषा

डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट्

[प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यापक एवं सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर उदयनारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट् ने प्रस्तुत लेख में कबीर की भाषा के सम्बन्ध में प्रामाणिक विचार प्रकट किए हैं। इस विषय पर अभी तक विशेष अध्ययन नहीं हो सका है। डा० तिवारी का यह लेख इस दिशा में एक सुन्दर शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक प्रयत्न है, और हमें आशा है कि इसके द्वारा कबीर की भाषा सम्बन्धी अध्ययन का द्वार यथेष्ट उन्मुक्त होगा। डाक्टर साहब श्री हीरालालजी सभा के निकट मित्रों में हैं।]

जब से श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कबीर के कतिपय पदों का अनुवाद अँगरेजी में प्रकाशित किया, तब से विद्वानों का ध्यान कबीर की मार्मिक कविता की ओर आकृष्ट हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि बँगला तथा हिन्दी में कई पुस्तकें कबीर के सम्बन्ध में प्रकाशित हुईं। बंगाली लेखकों को केवल साधना पक्ष का अध्ययन ही अभीष्ट था क्योंकि मध्ययुग के भारतीय चिन्तन में कबीर तथा उन्हीं के समान अन्य कवियों का एक विशिष्ट स्थान है, किन्तु हिन्दी के विद्वानों के लिए कबीर के विचारों एवं सिद्धान्तों के अध्ययन के साथ-साथ उनकी भाषा का अध्ययन भी आवश्यक था। इसका कारण भी स्पष्ट है। बात यह है कि कबीर के काव्य-ग्रन्थ हिन्दी में ही उपलब्ध हैं, किन्तु हिन्दी के लेखकों तथा विद्वानों ने कबीर की भाषा के सम्बन्ध में गम्भीरता तथा गहराई से विचार नहीं किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास* में इस सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखते हैं —

"इनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी-पंजाबी मिली खड़ी बोली है पर "रमैनी" और 'सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।

नागरी प्रचारिणी-सभा से कबीर ग्रन्थावली का जो संस्करण प्रकाशित हुआ है उसका आधार दो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं जिनमें से एक सं० १५६१ तथा दूसरी सं० १८८१ की है। सं० १७६१ के लगभग गुरुग्रन्थ साहब का संकलन किया गया जिसमें कबीर की वाणी भी संकलित हुई। नागरी प्रचारिणी

---

* हिन्दी साहित्य का इतिहास (संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण) पृ० ९८

सभा द्वारा प्रकाशित कबीर की वाणी भी सकलित हुई। नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित कबीर की भाषा पर पंजाबी का सर्वाधिक प्रभाव है। इसकी भाषा पर विचार करते हुए कबीर ग्रन्थावली के सम्पादक लिखते हैं—"यद्यपि उन्होने (कबीर ने) स्वयं कहा है 'मेरी बोली पूरबी' है। तथापि खड़ी, ब्रज, पजाबी, राजस्थानी, अरबी आदि अनेक भाषाओ का पुट भी उनकी उक्तियो पर चढा हुआ है। पूर्वी से उनका क्या तात्पर्य है, यह नही कह सकते। उनका बनारस निवास पूर्वी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष म है, परन्तु उनकी रचना में बिहारी का भी पर्याप्त मेल है, यहाँ तक कि मृत्यु के समय मगहर में उन्होंने जो पद कहा है, उसमें मैथिली का भी खूब संसर्ग दिखाई देता है।.....इस पंचमेल खिचड़ी का कारण यह है कि उन्होंने दूर दूर के साधु-सन्तों का सत्संग किया था, जिससे स्वाभाविक ही उन पर भिन्न-भिन्न प्रान्तो की बोलियो का भी प्रभाव पडा।" (कबीर ग्रंथावली, पृ० ६७)

पूर्वी से कबीर-ग्रंथावली के सम्पादक ने तो स्पष्ट रूप से अवधी का अर्थ लिया है, क्योकि उनके अनुसार कबीर का बनारस-निवास इसी ओर इगित कर रहा है। यद्यपि 'पूरबी' शब्द से कबीर का क्या तात्पर्य था, यह कहना कठिन है, किन्तु मध्ययुग में इसका अर्थ अवध, बनारस तथा बिहार था। हेनरी यूल तथा ए० सी० बर्नेल ने अपने प्रसिद्ध कोष हाब्सन जाब्सन में पूरब तथा 'पुरबिया' शब्दों की व्याख्या करते हुए लिखा है :—

"उत्तरी भारत में इस शब्द से प्रायः अवध, बनारस तथा बिहार से तात्पर्य है। अतएव 'पूरबिया' शब्द का प्रयोग उन सिपाहियो के लिए किया जाता था, जो बंगाल की सेना मे इन स्थानो से भर्ती होते थे।"

इस प्रकार पूर्वी के अन्तर्गत बनारस और पश्चिमी बिहार भी आ जाता है, जहाँ की प्रचलित भाषा भोजपुरी है। वस्तुतः 'पूरबी' शब्द ब्राह्मण ग्रंथो में उपलब्ध 'प्राच्य' शब्द का ही प्रतिरूप प्रतीत होता है। यही शब्द ग्रीक भाषा में 'प्रसियोई' (Prasioi) के रूप मे मिलता है, जिसका अर्थ है 'पुरबिया' अर्थात् मध्यदेश के पूरब के निवासी। यद्यपि अत्यन्त प्राचीन काल से बनारस का सास्कृतिक सम्बन्ध मध्य देश से ही रहा है किन्तु उसकी भाषा तो स्पष्ट रूप से मागधी की पुत्री है। यह बोली बनारस के पश्चिम मिर्जामुराद थाने से दो तीन मील और आगे तमंचाबाद तक बोली जाती है। वस्तुतः कबीर की यही मातृभाषा थी। यह प्रसिद्ध है कि कबीर पढे-लिखे न थे। अतएव अपनी मातृभाषा मे रचना करना उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक था। कबीर के अनेक पद आज भी बनारसी बोली अथवा भोजपुरी में उपलब्ध है। उदाहरणस्वरूप दो पदो के कुछ अश यहाँ उद्धृत किये जाते है। पहला पद इस प्रकार है :—

कवनो ठगवा नगरिया लूटल हो।
चन्दन काठ के बनल खटोलना,
तापर दुलहिन सूतल हो।
उठो री, सखी, मोरी माग सँवारो,
दुलहा मोसे रूसल हो।
आये जमराज पलँग चढि बइठे,
नैनन आँसू टूटल हो।
चारि जना मिलि खाट उठाइन,
चहुँदिस धू धू उठल हो।

कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो
　　　　जग से नाता छूटल हो।

दूसरा पद इस प्रकार है.—

सूतल रहलू मैं नींद भरी हो,
　　　　गुरु दिहले जगाइ।
चरनकँवल के अंजन हो,
　　　　नैना ले लूँ लगाइ।
जासे निंदियाँ न आवे हो,
　　　　नहिं तन अलसाइ।
गुरु के बचन निज सागर हो,
　　　　चलु चलो हो नहाइ।

ऊपर के दोनो पद बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'कबीर साहब की शब्दावली' से लिये गये हैं। इन पदो की भाषा भोजपुरी है, किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है—कबीर ग्रन्थावली की भाषा पर पजाबी व राजस्थानी का प्रभाव है। अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यो हुआ? इस सम्बन्ध में विद्वानो का अनुमान है कि चूँकि कबीर पर्यटनशील व्यक्ति थे, अतएव जिस प्रान्त में वे जाते थे वहाँ की भाषा अपनाकर उसम पद-रचना करने लगते थे।

वस्तुत यह कोरी कल्पना ही प्रतीत होती है। सच बात तो यह है कि कबीर की भाषा की भी ठीक वही दशा हुई है जो आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व बुद्ध की भाषा की हुई थी। बुद्ध-वचन की भाषा अर्थात् पालि को हीनयान-सम्प्रदाय के दाक्षिणी बौद्ध मागधी मानते है। कतिपय विद्वानो के अनुसार बुद्ध की भाषा अर्द्ध मागधी थी, किन्तु पालि के सम्बन्ध में जो नवीनतम खोजें हुई है उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि संस्कृत की भाँति पालि भी मध्यदेश की ही भाषा थी। प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् सिल्वाँ लेवी तथा जर्मन विद्वान् हेनरिख लूडर्स ने अपने लेखो में यह स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि आधुनिक पालि में मागधी के अनेक शब्द मिलते हैं। इससे यह सहज ही सिद्ध हो जाता है कि मूल बुद्ध वचन की भाषा पहले मागधी ही थी। किन्तु बाद में वह पालि के साँचे में ढाली गई। एक बात और है। मागधी से पालि में यह अनुवाद-कार्य केवल किंचित परिवर्तन से ही सभव था। उदाहरणस्वरूप 'धनिय सुत्र' की निम्नलिखित दो पक्तियाँ लें—वे इस प्रकार हैं:—

पक्कोदनो दुद्ध खीरो हमस्मि,
　　　　अनुतीरे महिया समान वासो।
छन्ना कुटि आहितो गिनि,
　　　　अथ चे पत्थयसी पवस्स देव।

इसका मागधी रूप इस प्रकार होगा—

पक्वोदने दुद्धखीले हमस्मि,
　　　　अनुतीले मंहिया समान वासे। इत्यादि।

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार मागधी को पालि में सहज ही में परिवर्तित किया जा सकता है। कबीर की भाषा की भी यही दशा हुई है। वास्तव में कबीर की मातृभाषा बनारसी बोली थी, जो भोजपुरी का ही एक रूप है। प्राचीन काल में, आज ही की भाँति, इस बोली का कोई साहित्यिक महत्व न था; अतएव जब कबीर की प्रसिद्धि हुई तो उनके पदों का पछाँह की साहित्यिक भाषाओं में रूपान्तर आवश्यक था। बहुत सम्भव है कि अवधी में यह कार्य कबीर ने स्वय किया हो क्योंकि अवधी भोजपुरी की सीमा की भाषा है; किन्तु ब्रजभाषा, राजस्थानी तथा पंजाबी आदि में तो कबीर की मूलवाणी को उन प्रान्तो के उनके अन्य शिष्यों ने ही बदला होगा। नीचे के प्रमाणो से मेरे इस कथन की पुष्टि हो जाती है। यहाँ जो उदाहरण दिये जा रहे है वे सभी नागरी-प्रचारिणी द्वारा सम्पादित 'कबीर-ग्रंथावली' से ही लिये गये हैं। यद्यपि इस संस्करण पर पछाँही बोलियों तथा पंजाबी का अत्यधिक प्रभाव है, फिर भी छन्द के कारण भोजपुरी के संज्ञा-शब्द ही नही अपितु कई क्रिया-पद भी अपने मूल-रूप में ही बचे रह गये है। ये शब्द पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि कबीर की मूलवाणी का क्या रूप था।

(क) अवधी में संज्ञा-पदों के तीन रूप मिलते हैं—(१) लघ्वन्त (२) दीर्घान्त, जैसे घोडा, घोड़वा, घोड़ौना। भोजपुरी में तीसरा रूप नही मिलता, उसके आरम्भ के ही दो रूप मिलते है। बोलचाल की भोजपुरी में प्रायः दीर्घान्त रूप ही प्रयुक्त होता है। ये रूप इस सस्करण के पदो में भी मिलते हैं-जैसे,

खंभवा पृ० ९४; पउआ पृ०९५; पहरवा पृ० ९६; मनवा पृ० १०८; खटोलवा पृ० ११२; रहटवा पृ० १६५ आदि।

(ख) भोजपुरी क्रियाओ के भूतकाल में अले प्रत्यय लगते है। टकसाली भोजपुरी में यह कभी-कभी इल तथा इले एवं बनारसी बोली में यल, यले हो जाता है:— जैसे गइल, गयल तथा आइल, आयल आदि। कबीर ग्रंथावली में भी क्रिया के ये दो रूप उपलब्ध हैं—जैसे

(१) जुलाहे तनि बुनि पौन न पावल। पृ० १०४

(२) त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल। पृ० १०४

(३) ना हम जीवत न मूँवाले माहीं। पृ० १०८

(४) पापी परलै जाहि अभागे। पृ० १३२

(५) अकास गगन पताल गगन है,
चहुँ दिसि गगन रहाइले।
आनन्द मूल सदा पुरुषोत्तम,
घट बिनसै गगन न जाइले॥ पृ० २६८

(ग) भविष्यतकाल के अन्यपुरुष एकवचन भोजपुरी क्रियाओं में 'इन्हें' प्रत्यय लगता है जो वस्तुत. संस्कृत ष्यति, पालि-स्सई से आया है। जैसे करिष्यति-करिस्सइ-करिहइ करि हैं-करि हैं। यह रूप इस ग्रंथावली के भी कई पदो में मिलता है जैसे—

(१) हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं। पृ० १०२

(२) इन्द्री स्वादि विषै रस वहिहै
नरक पडे पुनि राम न वहिहे   पृ० १३४

ऊपर के क्रियापद के 'पावल' 'राखल' 'भूषल' 'परलै' 'रहाइल' 'जाइल' एव 'मरिहै' 'वहिहै' आदि रूप इस बात को स्पष्ट रूप में घोषित करते है कि कबीर की मूलवाणी का बहुत कुछ अश उनकी मातृभाषा बनारसी बोली म ही लिखा गया था। नीचे इसी सस्करण में से एक पद उद्धृत किया जाता है। इस पद का कितनी सरलता से भोजपुरी में रूपान्तर हो सकता है, यह उसके परिवर्तित रूप से स्पष्ट हो जायगा। कबीर ग्रथावली म यह पद इस प्रकार है—

मैं बुनि करि सिराना हो राम, नालि करम नाही ऊबरे।
दखिन कूँट जब सुनहीं भूँका, तब हम सगुन बिचारा।
लरके परके सब जागत है हम धरि चोर पसारा हो राम
तानीं लीन्हीं, बानीं लीन्हीं, लीन्हे गोड के पऊवा।
इत उत चितवत कठवन लीन्हा मांड चलवनां डऊवा हो राम॥

इसका भोजपुरी रूप इस प्रकार होगा—

(मे) बुनि करि (सिरइला) हो राम
नालि करम नाही ऊबरे।
दखिन कूँट जब सुनहा (भूँकल)
तब हम सगुन (विचार लौ)
लरिके परिके सब (जागता रे)
हम धरि चोर (पसरलो) हो राम
ताना (लिहलो) बाना (लिहलो)
(लिहलो) गोड के पऊआ,
इत-उत चितवत कठवन (लिहलो)
मांड चलवनां डऊआ हो राम।

ऊपर के इस रूप में ही कबीर की मूल वाणी का रूपान्तर पछाँही बोलियो म हुआ होगा। कबीर-ग्रथावली के इस प्रामाणिक सस्करण के अतिरिक्त बँगला म श्रीयुत क्षितिमोहन सेन का भी एक सस्करण उपलब्ध है जिसमें भोजपुरी रूपो की ही प्रधानता है। कबीर के निर्गुण पद तो भोजपुरी क्षेत्र में इतने अधिक प्रचलित है कि निरक्षरो तक को इनके दो चार पद याद रहते है। वस्तुत कबीर के ग्रथो के वैज्ञानिक सम्पादन की अत्यधिक आवश्यकता है और उनके सिद्धान्तो के अध्ययन के साथ-साथ उनकी भाषा पर भी गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है। यद्यपि यह कार्य जटिल है किन्तु आज भाषा शास्त्र ने विद्वानो के मार्ग को अपेक्षाकृत प्रशस्त बना दिया है। आशा है हिन्दी अनुसन्धान-कार्य में प्रवृत्त विद्वान् इस कार्य को सम्पन्न करने का उद्योग करेंगे।

भारतीय जनतन्त्र

प्रो० मुकुटबिहारी लाल

[श्री मुकुटबिहारीलालजी समाज-शास्त्र और राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित हैं। आप हिंदू विश्व विद्यालय में राजनीति विभाग के अध्यक्ष प्राध्यापक हैं। श्री हीरालालजी खन्ना के आप विद्यार्थी रह चुके हैं और उनके प्रति अपना आदर व्यक्त करने के लिए अभिनदन ग्रथ में आपने यह सुन्दर लेख भेजा है। इस लेख में जनतत्र की व्याख्या करते हुए आपने भारतीय स्वतन्त्रता के सग्राम का इतिहास भी प्रस्तुत किया है। नृपतत्र के अनुमोदको के तर्क का भी आपने उत्तर दिया है और साथ ही साथ तानाशाही सरकारो की दुर्दशा का सकेत भी किया है। भारतीय विधान कहाँ तक जनतत्रात्मक है, इस पर भी प्रकाश डाला है। स्टॅलिन के अधिनायकवाद के रूप को भारतवर्ष के लिए नितात अयोग्य ठहराया है।]

अब हम स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र नागरिक हैं। इस स्वतन्त्रता को हासिल करने के लिए हमारे बुजुर्गों ने १८५७ में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह किया, १८७५ में वैधानिक आन्दोलन की बुनियाद डाली, १९०५ में *निष्क्रिय प्रतिरोध (passive resistance) और क्रान्तिकारी षड्यन्त्र* की नीतियो को अपनाना शुरू किया और १९२० में असहयोग और सत्याग्रह की नीति अपनायी। हमने गाधीजी के नेतृत्व में १९२० में असहयोग आन्दोलन, १९३० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन, १९४० में वैयक्तिक सत्याग्रह और १९४२ में 'भारत छोडो' आन्दोलन चलाये। १८५७ के विद्रोह में लाखो आदमियो ने नाना प्रकार की यातनाएँ और कष्ट सहे, हजारो तो तलवार के घाट उतर गए या फासी पर चढा दिए गए। पिछले पचास वर्ष के अन्दर भी स्वतन्त्रता के निमित्त सैकडो भारतीय फासी पर चढ गए और पुलिस की गोली का निशाना बन गए, दो तीन लाख न कारावास की यातनायें भुगती और कई लाख ने दूसरे तरह के कष्ट सहे। आखिर दिल को मुराद पूरी हुई। देश आजाद हुआ और हमें आजादी की जिन्दगी बसर करने का अवसर मिला।

१८५७ में जिन नेताओ ने विद्रोह किया वे जनतन्त्र के महत्त्व से परिचित न थे। वे तो देश मे फिर से नृपतन्त्र कायम करना चाहते थे। पर १८७५ में जिन नेताओ ने वैधानिक आन्दोलन की बुनियाद डाली, वे देशभक्ति के आधार पर देशव्यापी असाम्प्रदायिक राष्ट्रीयता और जनतान्त्रिक व्यवस्था के समर्थक थे। वे नौकरशाही हुकूमत के बजाय प्रतिनिधि सरकार (representative government) कायम कराना चाहते थे। लोकमान्य तिलक और महात्मा गाधी तथा उनके साथी भी देश में जनतान्त्रिक उत्तरदायी शासन ही चाहते थे। जनता के लिए जनता द्वारा जनता का राज्य ही उनका उद्देश्य था। देश में असाम्प्रदायिक भाईचारा कायम करने के प्रयत्न में ही गाधीजी ने अपने जीवन की आहुति दी। *व्यापक मानवीय राष्ट्रीयता असाम्प्रदायिक जनतन्त्र और कर्त्तव्यपरायणता के आधार पर* वर्गविहीन और जातिविहीन समाज और जनतान्त्रिक नागरिकता प्रतिष्ठित करना ही उनका हमें उपदेश था। वे अहिंसात्मक समाजवाद के समर्थक थे। वे निजी मुनाफे की बजाय मानव कल्याण को ही समाज के आर्थिक जीवन का आधार मानते थे।

स्वतन्त्र हिंदुस्तान का विधान बनाने के लिए १९४६ में एक विधान परिषद् कायम की गई थी। इस परिषद् ने नया विधान बना दिया है और वह २६ जनवरी को देश में लागू हो गया है। विधान जरूरत से अधिक लम्बा चौड़ा है और उसमें कई जनतन्त्र विरोधी बातें हैं। केन्द्रीय सरकार को इतने विशेष अधिकार दे दिए गए हैं कि वह अगर चाहे तो जनता और प्रान्तीय सरकार को उनके हकों और अधिकारों से वंचित कर अपनी डिक्टेटरी कायम कर सकती है। प्रान्तीय सरकार भी जनता के बुनियादी हकों पर कुठाराघात कर सकती है। देश में पूर्ण जनतन्त्र कायम करने के लिए इस विधान में तबदीली की जरूरत है। पर यह विधान भी बहुत हद तक जनतन्त्र के सिद्धान्तों पर बनाया गया है। इसके जरिए भी हम बहुत हद तक जनतन्त्र की ओर बढ़ सकते हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने जीवन को जनतान्त्रिक बनावें और जनतान्त्रिक ढंग से देश में जनतान्त्रिक व्यवस्था को मजबूत करें और उन शक्तियों को शक्तिशाली न होने दें जो देश में अधिनायकत्व या डिक्टेटरी कायम करना चाहती हैं। जनतन्त्र से ही जनता की सरकार कायम हो सकती है। इसी में जनता का भला है।

हमारे देश में कुछ ऐसे नवयुवक भी हैं जो जनतन्त्र को निकम्मा समझते हैं और देश में अधिनायकत्व कायम करना चाहते हैं। अधिनायकत्व से देश को कोई लाभ नहीं होगा। पहले विश्वव्यापी युद्ध के कुछ दिन बाद ही इटली में मुसोलिनी ने फासिस्ट डिक्टेटरशिप कायम कर ली थी। फासिस्टों ने काफी द्वन्द मचाया, पर जब युद्ध शुरू हुआ तो पता चला कि फासिस्ट डिक्टेटरशिप इटली की ताकत को किसी तरह न बढ़ा पाई। पहले युद्ध की तरह दूसरे युद्ध में भी इटली की सरकार और फौजें निकम्मी साबित हुईं। जर्मनी ने पिछले युद्ध में बड़ी हिम्मत से लड़ाई लड़ी और इसके लिए बहुत से लोग नाजी डिक्टेटरशिप की सराहना करते हैं। पर पहले युद्ध में जर्मनी की फौजें इसी बहादुरी से लड़ी थीं। बहादुरी का श्रेय डिक्टेटरशिप के बजाय जर्मनी की हिम्मत और ताकत को है। इसमें संदेह नहीं कि नाजी डिक्टेटरशिप ने हिटलर को अपनी मनमानी करने का मौका दिया। पर आज इतिहास का कौन विद्वान् होगा जो यह न कहे कि हिटलर की जिद से जर्मनी को बड़ा नुकसान हुआ। जर्मनी के इतिहास से परिचित सभी लोग जानते हैं कि युद्ध से पहले जर्मनी में बहुत से लोग थे जो युद्ध के खिलाफ थे और युद्ध के जमाने में भी जर्मनी के बहुत से जनरलों और राजनीतिज्ञों को हिटलर की परराष्ट्र नीति और युद्धप्रणाली पसन्द न थी। पर डिक्टेटरशिप होने की वजह से वे कुछ न कर सके। अगर वह जनतन्त्र होता तो सम्भव था कि हिटलर को अपनी मनमानी करने का मौका न मिलता और आज जर्मनी की यह हालत न होती। इसमें सन्देह नहीं कि पिछले तीस वर्षों में रूस ने काफी तरक्की की है। वह आज बड़ा शक्तिशाली देश है। पर इसका श्रेय बहुत हद तक समाजवाद को है। आज रूस इसलिए ताकतवर नहीं है कि वहाँ स्टालिन द्वारा संचालित डिक्टेटरशिप चल रही है, बल्कि इसलिए है कि सामन्तशाही और पूंजीशाही के खत्म हो जाने पर किसानों और मजदूरों में एक नई शक्ति का विकास हुआ है। समाजवाद के प्रभाव से जनता ने काफी उन्नति की है और अपने देश को ताकतवर और शक्तिशाली बना लिया है। जहाँ समाजवाद ग्रहण करने की चीज है वहाँ स्टालिन द्वारा संचालित डिक्टेटरशिप को अपनाना गलत होगा। डिक्टेटरशिप ने रूस में जनता की निजी आजादी को छीन लिया है और नये प्रकार की नौकरशाही का जोर कायम कर दिया है। वहाँ जनतन्त्र कम्यूनिस्ट पार्टी का खिलौना बन गया है। किसी को कम्यूनिस्ट पार्टी के, खासतौर पर स्टालिन के खिलाफ दम मारने की भी हिम्मत नहीं होती। डिक्टेटरशिप को खत्म करके ही वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। इस देश में तो स्टालिन के नेतृत्व के माननेवाले कम्यूनिस्टों ने देश की आजादी की लड़ाई में कोई

हिस्सा नहीं लिया और अब वैयक्तिक आतंक और तोड़-फोड़ की नीति को अपना रखा है। वे अपने को मार्क्स, एंगल्स और लेनिन का शिष्य कहते हैं, पर इन तीनों महापुरुषों ने वैयक्तिक आतंक और तोड़-फोड़ की नीति का कभी समर्थन नहीं किया। लेनिन ने तो इस नीति का जोरदार शब्दों में विरोध किया है। उसका निश्चित मत था कि वैयक्तिक आतंक और सामाजिक क्रान्ति में बुनियादी भेद है और आतंक के जरिए पुराने समाज की जगह नया समाज कायम नहीं हो सकता।

हिन्दुस्तान में इस समय डिक्टेटरशिप की बात करना देश के लिए जहर है, देश में प्रतिक्रियावादी शक्तियों को प्रोत्साहित करना है। इस बात की चर्चा से लाभ उठाकर कांग्रेसी सरकार ने देश के नए विधान में बहुत सी प्रतिक्रियावादी धाराएँ जोड़ दी हैं और जनता की नागरिक आजादियों पर प्रतिबन्ध लगा रखा है। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ डिक्टेटरशिप से लाभ उठाना चाहती हैं। देश को स्वतन्त्रता मिलने के साथ ही साथ एक सज्जन ने इस देश में 'अजगर' पार्टी बनाने की कोशिश की थी। उनका विचार था कि अहीर, जाट, गूजर और राजपूत जातियाँ ही क्षत्रिय जातियाँ हैं और क्षत्रिय होने के नाते इन्हें ही देश पर हुकूमत करने का हक है। वह इस तरह देश में एक क्षत्रिय समूह की डिक्टेटरशिप कायम करना चाहते थे। देश में कितने लोग होंगे जो इस प्रकार की डिक्टेटरशिप को देश के लिए हितकर समझते हों? इसमें तनिक सन्देह नहीं कि डिक्टेटरशिप की चर्चा करते ही देश की भिन्न-भिन्न जातियों में अपनी अपनी डिक्टेटरशिप कायम करने की होड़ शुरू हो जायगी। देश को एक भयंकर विघटनकारी संघर्ष का सामना करना होगा। इस संघर्ष में जहाँ जनसाधारण के पददलित होने का डर है, वहाँ देश के कई टुकड़ों में बट जाने का भी भय है। ऐसी परिस्थिति में कम्यूनिस्ट अपनी डिक्टेटरी कायम करने में सफल ही हो जायँगे, ऐसा कहना बड़ा कठिन है। यदि कम्यूनिस्टों ने अपनी डिक्टेटरी कायम भी कर ली तो उसकी नकेल रूस की कम्यूनिस्ट पार्टी के हाथ में होगी। देश को रूस की उँगलियों पर नाचना होगा, वही करना होगा जो रूस को पसन्द हो, रूस के हित में हो। इस परिस्थिति को आजादी कहना कठिन है। जनतन्त्र में ही जनता आजादी की जिन्दगी बसर कर सकता है।

जनता के लिए जनता के द्वारा जनता का राज्य ही जनतन्त्र है। जनतान्त्रिक हुकूमत ही सबसे अच्छी हुकूमत है। इस हुकूमत के अन्दर ही जनता आजादी का अनुभव कर सकती है, आजाद जिन्दगी का लाभ प्राप्त कर सकती है। जिस मनुष्य का अपने देश की हुकूमत में कोई भी हाथ न हो, वह आजाद नहीं कहा जा सकता। वह मनुष्य, जो उन अधिकारियों से शासित है कि जो अपने कामों के लिए उसे किसी तरह भी उत्तरदायी न हों, एक स्वतन्त्र नागरिक के बजाय दूसरों की प्रजा या दास है। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है, उसे सार्वजनिक कामों का सामूहिक रूप से प्रबन्ध और नियन्त्रण करने का उतना ही हक है जितना अपने निजी मामलों का वैयक्तिक रूप से प्रबन्ध करने का। जनतन्त्र के जरिए ही जनता के हितों और हकों की रक्षा और वृद्धि हो सकती है। जनतन्त्र जनता के स्तर को ऊँचा उठाता है, सार्वजनिक मामलों में उनके शौक को प्रोत्साहित करता है और राज्य-प्रबन्ध में उनको सहकारी बनाकर उनके देश-प्रेम को मजबूत करता है। हिन्दुस्तान का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जनता का केन्द्रीय सरकार से घनिष्ठ सम्बन्ध न होने के कारण ही संकट के समय जनता ने केन्द्रीय सरकार की रक्षा के लिए दिलोजान से कोशिश नहीं की। इस बात से यह साफ जाहिर है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए भी यह जरूरी है कि जनतान्त्रिक व्यवस्था के जरिए जनता का केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दिया जावे ताकि

जनता केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को अपनी हुकूमत समझे और उनके संकट को अपना संकट समझे उनकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझे।

भारतीय जनतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए भौमिक राष्ट्रीयता और असाम्प्रदायिक भावना जरूरी है। कायदे आजम जिन्हा कहा करते थे कि पाकिस्तान बन जाने पर साम्प्रदायिक समस्या खत्म हो जायगी। देश के नेताओं ने यह पहले ही कह दिया था कि देश के बटवारे के बाद साम्प्रदायिक समस्या और साम्प्रदायिक भावना खत्म होने के बजाय उसके उत्तेजित होने की अधिक सम्भावना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश के बटवारे से देश को बडी हानि हुई है। बटवारे ने हमारी साम्प्रदायिक भावनाओं को भी बहुत उत्तेजित किया है। आज भी पाकिस्तान के नेता मुस्लिम राष्ट्र की बात करते हैं और पाकिस्तान में दीनी हुकूमत की चर्चा भी होती रहती है। भारत में भी हिन्दू महासभा हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य का नारा लगाती है। राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ भी इस विचार से सहमत है और चाहता है कि देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन का निर्माण प्राचीन हिन्दू संस्कृति के आधार पर हो। पर ये सब बातें गलत है। दीनी हुकूमत की बात मध्ययुग की बात है। आज दुनिया में कोई मुल्क भी नहीं कि जहाँ दीनी हुकूमत कायम हो। मुस्तफा कमालपाशा ने तुर्की से खिलाफत को हटाकर दीनी हुकूमत के जो चिह्न मौजूदा जमाने में रह गए थे, उन्हें भी खत्म कर दिया। पाकिस्तान में दीनी हुकूमत कायम करना असम्भव है। *कायदे आजम जिन्हा स्वयं दीनी हुकूमत को गलत समझते थे। अगर पाकिस्तान ने दीनी हुकूमत कायम करने* की कोशिश की तो उससे पाकिस्तान को फायदे के बजाय नुकसान ही होगा। उसकी दशा तुर्की जैसी हो जायगी। दीनी हुकूमत में मजहब के दीवानों का बोलबाला होता है। पण्डे, पुरोहित और मुल्लाओं की चलती है। वे देश को आगे बढने ही नहीं देते। पुराने रीति रिवाजों और धर्म की दुहाई देकर वे हर नई बात का विरोध करते हैं। सब शक्ति अपने हाथ में रखने के फेर में वे जनता के हकों और अधिकारों को भूल ही जाते हैं। दीनी हुकूमतें सदा प्रतिक्रियावादी होती हैं। पाकिस्तान से प्रभावित हो यदि हमने दीनी हुकूमत की बात अपने देश में की तो हमें इससे हानि ही होगी।

इसमें सदेह नहीं कि सोलहवी और सत्रहवी सदी में योरप के अधिकांश देशों में राष्ट्रीय एकता के लिए धार्मिक एकता जरूरी समझी जाती थी, पर इस विचार से योरप को हानि ही हुई। धार्मिक एकता की जरूरत के नाम पर इतने अत्याचार हुए कि जितने ससार में पहले कभी नहीं हुए थे। उसने राष्ट्रीय एकता को खतरे में डाल दिया। जनता प्रतिद्वन्द्वी समूहों में बट गई और प्रतिद्वन्द्वी धार्मिक दलों की पुकार पर विदेशी शक्तियों ने राष्ट्रीय मामलों में हस्तक्षेप किया। आखिर योरप इस नतीजे पर पहुँचा कि धार्मिक एकता पर जोर देना हानिकर है और धर्म या सम्प्रदाय राष्ट्रीयता का आधार नहीं है। आज दुनिया में कोई विद्वान् भी साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता पर विश्वास नहीं करता। सभी विद्वान् इस बात को तसलीम करते हैं कि जहाँ साम्प्रदायिक मिल्लत समान धार्मिक विश्वासों और परम्पराओं पर कायम एक धार्मिक भाई-चारा है, वहाँ राष्ट्र समान नागरिक और राजनीतिक हितों पर कायम एक भौमिक भाईचारा है। जहाँ साम्प्रदायिक मिल्लत एक ही धर्म के अनुयायियों को समान आध्यात्मिक जीवन के विकास और प्रगति में सहायता प्रदान करता है वहाँ राष्ट्र भिन्न भिन्न धर्मों के माननेवालों को समान देशप्रेम के सूत्र में बाँधकर सब नागरिकों को शान्ति के साथ रहने तथा समान भौमिक संस्कृति तथा साधनों के उपयोग में सहायता प्रदान करता है। साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता में धर्म और राजनीति का मेल है। यह मेल दोनों के लिए ही हानिकर है। इस मेल से जहाँ धर्म राजनीति की दलदल में फँसकर अपने आध्यात्मिक स्वरूप

को खो देता है, वहाँ राजनीति साम्प्रदायिकता के झमेले में फँसकर अपने जनतान्त्रिक स्वरूप को खो बैठती है। साम्प्रदायिकता ने ही हमारे देश को दो भागो में बटवा डाला है और साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता के जरिए देश के विघटन की आशंका अब भी बनी ही है। इसके नाम पर ही मास्टर तारासिंह सिक्ख प्रान्त की माँग कर रहे हैं, और इसके कारण ही पंजाब में हिन्दुओ और सिक्खो का वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा है। इस साम्प्रदायिकता ने ही हमें राष्ट्र-पिता गांधीजी के नेतृत्व से वंचित कर दिया और इसी के नाम पर पंजाब और राजपूताने के कुछ राजे मुनासिब अवसर पर दिल्ली पर धावा बोलकर अपना वहाँ राज्य स्थापित करने की तरकीब लगा रहे थे। हिन्दू सभा के नेता एक ओर हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य का नारा लगाते हैं, और दूसरी ओर पाकिस्तान को भारत में मिलाने की चर्चा करते हैं। यह दोनो बातें असंगत हैं। हिन्दू राज्य और हिन्दू राष्ट्र को स्थापित कर भारत में पाकिस्तान को मिलाना असम्भव है। साम्प्रदायिक राष्ट्रीय भावनाओ के बजाय भौमिक राष्ट्रीय भावनायें ही हिन्दू और मुसल्मानो में आवश्यक सहानुभूति और सद्भावना पैदा कर सकती है, जिनकी बुनियाद पर ही भारत और पाकिस्तान में मेल और एका स्थापित किया जा सकता है। साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता वैमनस्य और झगड़े को बढ़ा सकती है, आपस में मेल और शान्ति स्थापित नही कर सकती। वैमनस्य के वातावरण में देश का पुनर्निर्माण और उन्नति भी करीब करीब असम्भव ही है। साराश असाम्प्रदायिक जनतन्त्र और भौमिक राष्ट्रीयता में ही देश का कल्याण है।

साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता के पक्षपाती अतीत की दुहाई देकर इस बात की माँग करते हैं कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के सिद्धान्तो के आधार पर ही देश के राजनीतिक जीवन का निर्माण होना चाहिए। अपनी इस माँग के पक्ष में वे पाकिस्तानी नेताओ के विचार पेश कर सकते हैं। पर इस माँग में कोई विशेष जान नही है। पुरानी राजनीतिक व्यवस्था के आधार पर भारत की राजनीति का निर्माण असम्भव है। भारतीय संस्कृति के विद्वान् लोकमान्य तिलक जैसे राजनीतिज्ञो ने भी कभी हमें इसका मशवरा नही दिया है। केवल स्वामी दयानन्दजी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में मनु द्वारा प्रतिपादित राज्यव्यवस्था का उल्लेख और समर्थन किया है। पर मनु-व्यवस्था तो नृपतान्त्रिक है। मनुस्मृति में बताया गया है कि राजा को ईश्वर ने देवेन्द्रो की मात्राओ से बनाया है और वह मनुष्य रूप से एक बड़ा देवता है और सर्वतेजोमय है। तो क्या भारतीय संस्कृति के नाम पर हम जनतन्त्र के बजाय नृपतन्त्र कायम करना चाहते हैं, जनता के हाथ से राजसत्ता लेकर उसे किसी राजा को सौंप देना चाहते हैं? कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में हमारे देश में गणतन्त्र भी थे। पहले तो इन गणो का विस्तृत विधान हमें उपलब्ध नही है। इसलिए गण परम्परा के आधार पर भारतीय विधान निश्चित करना असम्भव है। दूसरे ये सब गणराज्य वास्तव में किसी विशेष कबीले के अधीन थे, इनमें जनता के बजाय किसी विशेष कबीले से सम्बन्ध रखनेवालो का राज्य था। तो क्या हम जनतन्त्र के बजाय किन्ही विशेष जाति या समुदायो का राज्य स्थापित करना चाहते हैं?

भारतीय पार्लमेंट के अध्यक्ष श्री मावलंकरजी ने गत सितम्बर में कहा कि "आधिभौतिक पश्चिम के मुकाबले में हम अधिक अध्यात्मवादी हैं। हम अक्सर अपने हकों पर किए आक्रमणो की उपेक्षा कर देते हैं और अपने हकों को लागू करने पर आग्रह नहीं करते। इस कारण हम परहितेच्छु शासन (benevolent rule) पर भरोसा करते हैं और उसी समय तक किसी चीज की परवाह नहीं करते जब तक कि वह हमारे जीवन की रहन-सहन (way) में बुरी तरह दस्तन्दाजी न करे। ऐसा स्वभाव होने के कारण व्यक्ति स्वाधिकार पर आधारित पश्चिमी ढंग का जनतन्त्र हमारी जीवन विधि

के ठीक ठीक उपयुक्त नही है।" हकों पर किए गए आक्रमणो की उपेक्षा को अध्यात्मवाद कैसे कहा जा सकता है? परहितेच्छु शासन पर भरोसा कर देश के सभी राजनीतिक प्रश्नो पर उदासीन रहना भी न नैतिकता है और न अध्यात्मवाद। इस उपेक्षा और उदासीनता के कारण न हमें अब तक परहितेच्छु शासन ही प्राप्त हो सका और न हम अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा ही कर सके। हमारी उपेक्षा और उदासीनता ही हमारी सदियो की गुलामी का कारण है। इस मनोवृत्ति की वजह से ही जब कभी देश पर आक्रमण हुए उस समय हम बाहरी शक्ति का डटकर मुकाबला नही कर सके। जनता ने राज्य की पराजय को अपनी पराजय नही समझा और विजेता ने आसानी से हमारे ऊपर अपना शासन स्थापित कर लिया। उसने शासन स्थापित कर मनमानी की, हमें लूट खसोटा और जलील किया, पर हम उसका कोई प्रतिकार नही कर सके। सिराज-उद्दौला और मीरजाफर में भेद डलवाकर छोटी सी फौज से क्लाइव ने प्लासी के युद्ध मे विजय प्राप्त कर बगाल पर अँगरेजी प्रभुत्व कायम कर लिया। बगाल की हार सारी जनता की हार थी, उस पराजय के बाद बगाल की सारी जनता को त्रस्त होना पडा, कम्पनी के गुमाश्तो की लूट-खसोट और अत्याचारो को सहन करना पडा। क्लाइव को अँगरेजी शासन के खिलाफ जनता की क्रान्ति का डर था और इसलिए ही उसने मुसलमान शासको के नाम को कायम रखते हुए बगाल मे अँगरेजी हुकूमत की बुनियाद डाली। पर बगाल की जनता ने न तो अँगरेजो की विजय को अपनी हार समझा और न अँगरेजी हुकूमत के खिलाफ कोई विप्लव ही किया। सारे हिन्दुस्तान का ऐसा ही इतिहास है। जिस मनोवृत्ति के कारण देश शताब्दियो गुलाम रहा हो उस आध्यात्मिक और राष्ट्र स्वभाव कहकर उसके आधार पर नई राज्य व्यवस्था कायम करना सर्वथा अनुचित है। इस मनोवृत्ति को अध्यात्मिक कहना ठीक न होगा, पर अगर अध्यात्मवाद के पडित इस मनोवृत्ति को अध्यात्मिक समझते हैं, तो हमें नि सकोच कहना होगा कि हमें अध्यात्मिक मनोवृत्ति के बजाय एक ऐसी सामाजिक मनोवृत्ति की जरूरत है जिससे जनता देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हो। इसके लिए यह जरूरी है कि भारतीय जनता भारतीय राज्य को अपना राज्य समझे, इसकी पराजय को अपनी पराजय समझे, इसके श्रेय को अपना श्रेय समझे, उदासीनता और उपेक्षा को तिलाजलि दे उत्साह और कर्त्तव्य परायणता से देश के यश और समृद्धि की वृद्धि करे। देश में इस मनोवृत्ति को जागृत करने के लिए यह जरूरी है कि हम किसी विशेष व्यक्ति या समूह के 'परहितेच्छु शासन' के सिद्धान्त को त्यागकर जनता के 'कल्याणकारी राज्य (welfare state)' के सिद्धान्त को अपनाये और उसके आधार पर अपनी राजनीति का निर्माण करे।

परिस्थिति के अनुकूल मनोवृत्ति में तबदीली हो सकती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि राष्ट्र स्वभाव सदा एक सा नही रहता। सत्रहवी शताब्दी में इगलिस्तान में क्रान्ति हो रही थी, जब कि फ्रास में शान्ति थी। उस समय विद्वानो का विचार था कि फ्रास के निवासी शान्तिप्रिय हैं और अँगरेज लोग स्वभाव से क्रान्तिकारी हैं। पर अठारहवी शताब्दी में फ्रास में क्रान्ति हो रही थी और इगलिस्तान में करीब करीब सभी विद्वान् क्रान्तिकारी तरीको को बुरा बता रहे थे। उस समय विद्वानो की धारणा थी कि फ्रासीसियो का स्वभाव क्रान्तिकारी है और अँगरेज लोग शान्तिप्रिय हैं। वास्तव में परिस्थितियो ने ही दोनो शताब्दियो में इन दोनो राष्ट्रो की मनोवृत्ति और स्वभाव को प्रभावित और निश्चित किया था। दूसरे देशो के इतिहास के पढने से भी पता चलता है कि परिस्थितियो से प्रभावित होकर जनता का स्वभाव और उसकी मनोवृत्ति बदलती रहती है। आज से दो सौ वर्ष पहले करीब करीब सभी देशो में राजसत्ता थोडे से राजाओ और सामतो के हाथ में थी, केवल कुछ देशो में थोडे से पूजीपति भी राजसत्ता मे शरीक हो गए थे और अधिकाश

देशों की जनता 'परहितेच्छु शासन' को ही सर्वोत्तम समझती थी। उनकी यही इच्छा थी कि सत्ताधारी परहित की वृद्धि ही अपना कर्त्तव्य समझें और सदा इसकी चेष्टा करते रहे। पर आज कौन सा देश है कि जहाँ की जनता सत्ताधारियो को अपना माई बाप मानने को तैयार हो और जनता की हुकूमत कायम करने की इच्छुक न हो। जनतान्त्रिक कल्याणकारी राज्य आज के युग की पुकार है। सभी लोग इस प्रकार से प्रभावित है, सभी की मनोवृत्ति और स्वभाव म इसकी वजह से तबदीली हो गई है या होने लगी है। १९४५ में चीन के प्रसिद्ध नेता च्यांगकाई शेक ने "चाइनाज डेस्टिनी (China's Destiny) नाम की एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक में इन्होंने भी चीन के अतीत और राष्ट्र-स्वभाव की दुहाई देकर लिबरलिज्म और कम्यूनिज्म दोनो को विदेशी बताकर दोनों को चीन के लिए अनुपयुक्त ठहराया था। उनका कहना था कि "*ये सिद्धान्त और राजनीति चीन की राष्ट्रीय जिन्दगी और जनता की आजीविका के लिए ही अनुपयुक्त* और चीन की मूल सास्कृतिक वृत्ति के विरुद्ध ही नही है बल्कि ये जाहिर करते हैं कि उनके सवर्धक (promoters) यह भी बिलकुल भूल गए है कि वे चीनी हैं और उन्हे चीन के लिए ज्ञान प्राप्त करने और उस ज्ञान को चीन के लिए प्रयोग करने का विचार ही नही है।" च्यांगकाई शेक व्यक्तिवादी जनतान्त्रिक व्यवस्था और समाजवाद दोनो ही के विरुद्ध थे। वे दोनों का तिरस्कार करते हुए चीन का शासन करते रहे। उसका अन्तिम परिणाम चीन मे कम्यूनिस्ट दल की विजय है। इस विजय का कारण यह नहीं है कि माउतसेतुग किसी प्रकार भी च्यांगकाई शेक से अधिक योग्य जनरेल है, और सोवियत रूस ने जितनी सहायता कम्यूनिस्टो को दी, उतनी सहायता च्यांगकाई शेक को सयुक्तराष्ट्र अमरीका से प्राप्त न हो सकी। कम्यूनिस्टो की विजय का मुख्य कारण यही है कि परिस्थितियो और जरूरतों ने चीन की जनता की मनोवृत्ति को बदल दिया था। वे अब पुरानी सास्कृतिक परम्परा के नाम पर च्यांगकाई शेक की तानाशाही और लूट-खसोट को उसी तरह बरदाश्त करने को तैयार नही थे जिस तरह उनके बुजुर्गो ने पुराने जमाने मे बहुत से राजाओ की धाधली और खुदमुख्तारी को सहन न किया था। *यदि च्यांगकाई शेक युग की पुकार पर ध्यान देकर चीन में जनतान्त्रिक* कल्याणकारी राज्य-व्यवस्था कायम करते और जनता की समता और समृद्धि की प्यास बुझाते तो आज चीन पर कम्यूनिस्टो का आधिपत्य नहीं होता और चीन को गृह युद्ध का सामना भी नही करना पडता। आशा है कि हम लोग अतीत और राष्ट्र स्वभाव की दुहाई देने के बजाय देश म वास्तविक जनतन्त्र स्थापित कर जनता को अपने शासन के जरिए अपनी स्वतन्त्रता, समता और समृद्धि की प्यास बुझाने का मौका देंगे और इस तरह देश को कम्यूनिस्टों की तोड फोड की नीति और कार्यवाहियो से बचाय रखगे।

राष्ट्रभाषा का स्वरूप

श्री० डा० ब्रजमोहन, बनारस विश्वविद्यालय

[देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी निर्धारित हो चुकी है परन्तु राष्ट्रभाषा के स्वरूप निर्धारण का प्रश्न अभी भी शेष है। कुछ लोग जो हिन्दुस्तानी के समर्थक रहे हैं उसे अपनी पुरानी हठ के अनुसार ही ढालना चाहते हैं। कुछ अन्य उसे संस्कृत के कठिन, अप्रचलित तत्सम रूपों से भर देना चाहते हैं। प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने इन दोनों ही खतरों से सावधान रहने की बात कहते हुए कुछ ठोस एवं व्यावहारिक सिद्धान्त बताये हैं, जिनका पालन करने से राष्ट्रभाषा को सरल, व्यापक और समृद्ध बनाया जा सकता है।

डाक्टर ब्रजमोहन हिन्दू विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार में उनका विशेष योग है। वे खन्ना जी के अत्यन्त निकट के शिष्यों में हैं।]

राष्ट्रभाषा के नाम का प्रश्न तो हल हो गया, परन्तु अभी उसका स्वरूप-निर्णय शेष है। भिन्न-भिन्न प्रकार के लेखक हिन्दी के भिन्न भिन्न अर्थ लगायेंगे। हिन्दुस्तानी के समर्थक हिन्दी के नाम से हिन्दुस्तानी लिखेंगे अर्थात् वह भाषा जिसे वे हिन्दुस्तानी' कहते हैं। मैंने बहुत से स्थानों पर इस प्रकार के वाक्यांश लिखे देखे हैं —

'उल्फत की रीति,' 'आजादी का आन्दोलन', 'सभापति की गलतफहमी' आदि।

एक स्थान पर तो मैंने यह वाक्य भी लिखा देखा है —

'अथक परिश्रम ही रेगिस्तान को नखलिस्तान बना सकता है।'

उपर्युक्त उद्धरणों के लेखकगण अभी तक हिन्दुस्तानी की आड़ में इस ढंग के भद्दे प्रयोग करते थे। अब वही लोग इसी ढंग के वाक्यांशों का प्रयोग हिन्दी के नाम पर करेंगे और कहेंगे कि यही उनकी हिन्दी है। यह भी सम्भव है कि उर्दू के समर्थक ठेठ उर्दू लिखें और उसी को हिन्दी कहें। अतएव हिन्दी की मर्यादा का निर्धारण आवश्यक प्रतीत होता है।

उर्दू के लेखकों में से कुछ लोग जान-बूझकर अरबी और फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग करते हैं और सरल शब्दों के रहते हुए भी उनसे काम नहीं लेते। यह लोग गेहूँ को 'गन्दुम', जलपान को 'आशा पिया' और घंटे को 'साअत' कहते हैं। इसी प्रकार हिन्दी के भी कुछ लेखक ऐसे हैं जो सरल शब्दों के रहते हुए भी अपनी भाषा में कठिन शब्द डालना पसन्द करते हैं। इन लोगों का विचार है कि अरबी, फारसी के जो शब्द हिन्दी में घुल मिल गये हैं उन्हें भी निकाल बाहर करना चाहिए। ये लोग बरफ को 'हिम', ईमानदारी को 'आर्जव' और शिकायत को 'उपालम्भ' कहेंगे। मैंने कुछ लोगों को सेब के लिए 'उत्मोल', तरबूज के लिए 'कालिन्द' और खरबूजे के लिए 'दशांगुल' कहते सुना है। शर्बत को यह लोग 'मिष्टोद' और बरफ के पानी को 'हिमाद' कहते हैं।

एक बार मैं अपने एक मित्र के घर गया था जो इसी विचार-धारा के समर्थक थे। मुझे उनके घर कई सप्ताह रहना था। अतएव उन्होंने मेरे लिए अलग एक कमरे का प्रबन्ध करा दिया। जब उस कमरे में मेरा सामान लगाकर रख दिया गया तो उनकी लड़की, जो लगभग १२ वर्ष की थी, मेरे पास आई और पूछने लगी '—"क्या आपके कोष्ठ के पटल पर आवरण बिछाया जायगा ?" मैं उसका तात्पर्य नही समझा। उसके पिताजी ने मुझे बताया कि उसका अर्थ था —"क्या आपके कमरे की मेज पर मेजपोश बिछाया जायगा ?"

जब मैंने अपने मित्र से पूछा कि इस ढग की भाषा बोलने से क्या लाभ है, तो उन्होंने कहा—"हम लोगो ने कोई नये शब्द नही बनाये है। केवल प्राचीन शब्दो को ही खोज निकाला है। जब किसी भाव के लिए एक शुद्ध स्वदेशी प्राचीन शब्द विद्यमान है तो हम किसी विदेशी शब्द का प्रयोग क्यो करें ?"

यह सभव है कि उनका यह कथन सत्य हो। ऊपर जो शब्द दिये गये है—उत्कोल, कालिन्द, पटल इत्यादि—कदाचित् सभी प्राचीन हो। परन्तु क्या आवश्यक है कि उन्हें दुबारा खोज खोजकर निकाला जाय और उनका प्रयोग विदेशी किन्तु सुबोध और बहुप्रचलित शब्दो के स्थान पर किया जाय ? क्या हम इस प्रकार अपनी भाषा की कोई वास्तविक सेवा करेंगे ? जीवित भाषा का यह एक लक्षण है कि वह अधिक से अधिक शब्द पचा सके। अँगरेजी में प्रतिवर्ष दर्जनों शब्द बढ जाते है। पडित, राजा, गुण्डा और स्वराज्य जैसे दर्जनों शब्द अग्रेजी ने हिन्दी से लिए है। ग्रीक और लैटिन से अग्रेजी ने कितने शब्द लिए है, इसकी तो कोई गणना ही नही हो सकती। यदि समस्त शब्दो को अग्रेजी से निकाल दिया जाय तो अग्रेजी की कमर टूट जाय और उसमें कठिनाई से दस पाँच हजार शब्द बच रहें, जो किसी शक्तिशाली भाषा के लिए बहुत ही कम होगे। इसी प्रकार यदि हम उन समस्त शब्दो का बहिष्कार कर दें, जो हिन्दी में विदेशी भाषाओ से आये है तो हिन्दी की अभिव्यजन शक्ति में कमी आ जायगी। दूसरी भाषाओ से शब्द लेना कोई पाप नही है। हम उसकी सीमा निर्धारित कर सकते है, बहिष्कार नही कर सकते। किसी नदी के प्रवाह को नियन्त्रित करना सभव है, उसे सर्वथा अवरुद्ध कर देना असभव है।

कुछ लोग हिन्दी पर आक्षेप लगाते है कि इसमे पाचनशक्ति की कमी है। यदि हम निष्पक्ष भाव से विचार करें तो यह आरोप मिथ्या प्रतीत होगा। हिन्दी ने दूसरी भाषाओ से सैकडो शब्द लेकर पचा लिए है जो हिन्दी के शब्दो में इस प्रकार घुलमिल गए है कि आज उन्हे पहचानना भी कठिन है। फारसी का एक शब्द लीजिए-'कम'-हम इस शब्द का दिन में सैकडो बार प्रयोग करते है—कम या अधिक, कमी, अधिकता, कमती बढती, दिन रात के प्रयोग के वाक्याश है। इनका प्रयोग करते समय हमें कभी यह ध्यान नही आया कि 'कम' फारसी का शब्द है। यह शब्द बहुत ही सरल, सुबोध और सुन्दर है। इसका हिन्दी पर्याय 'न्यून' कदापि इससे अधिक सुबोध नही है। फिर कोई कारण दिखाई नही देता कि हम प्रत्येक स्थान पर 'कम' को निकालकर 'न्यून' को बिठा दें।

फारसी का एक और शब्द लीजिए—'या'—क्या कभी हम यह सोचते है कि 'या' एक विदेशी शब्द है जिसका शुद्ध हिन्दी पर्याय है "अथवा'। कितना भावयुक्त और व्यजक शब्द है। इस सुबोध शब्द के स्थान पर बच्चो के मस्तिष्क पर 'अथवा' का बोझ डालना कहाँ की बुद्धिमानी होगी ?

इसी प्रकार हिन्दी में सैकडो विदेशी शब्द घुल-मिल चुके है। आज देश भर के अपढ लोग तक जानते है कि रेल, इन्जन और टाइम किसे कहते है। कितने लोग आज इस बात पर ध्यान देते है कि लालटैन और

बोतल अँगरेजी शब्दों के रूपान्तर है। क्या हम लालटैन के लिए 'हस्त-काँच-दीपिका' और रूमाल के लिए 'मुख-मार्जन वस्त्रखण्ड' कहे ? क्या इस ढंग की भाषा हास्यास्पद न होगी ? कुछ लोगो ने तो कदाचित ऐसे व्यक्तियो का उपहास करने के लिए ही इस प्रकार के वाक्यांश बनाये है। इसी ढंग का एक अनुवाद है 'रेलवे सिगनल' का पर्याय—

अग्नि-रथ पथ गमना गमने मार्ग प्रदर्शक लौह ताम्र पीठिका।

इस विचार-धारा के समर्थक कहेगे कि इस प्रकार तो हमारे प्राचीन शब्द मरते चले जायँगे और नये विदेशी शब्द यदि सरल हुए तो उनके स्थान पर बैठते चले जायँगे। परन्तु बात वास्तव म ऐसी नही है। जीवित भाषा का यह एक लक्षण है कि उसमे भावो के सूक्ष्मान्तरो के लिए भिन्न भिन्न शब्द निर्धारित हो जाते है। दीपक एक प्राचीन शब्द है। लालटैन एक नया शब्द है। आज से कई सौ वर्ष पूर्व जब लालटैन शब्द नही बना था तब यदि कोई अँगरेजी के शब्द 'लैनटर्न' का हिन्दी पर्याय पूछता, तो कदाचित 'दीपक' ही कहा जाता। परन्तु आज समय की गति से 'लालटैन' और 'दीपक' मे अन्तर पड चुका है। आज जिसे हम 'लालटैन' कहते है वह 'दीपक' नहीं है, और जिसे दीपक कहते है वह लालटैन नही है। आज यदि कोई 'लैनटर्न' का पर्याय पूछे तो उत्तर मिलेगा 'लालटैन'। दीपक कदापि नही मिलेगा। लालटैन शब्द के बन जाने से हमारी भाषा समृद्ध हुई है न कि दरिद्र, शक्तिशाली हुई है न कि दुर्बल।

बोतल के लिए प्राचीन शब्द है 'कूपी' जिसका विकृत रूप 'कुप्पी' है। परन्तु आज 'बोतल' और 'कूपी' में वास्तविक अन्तर पड चुका है। बोतल ने हमारी भाषा में आकर कूपी का स्थान नही लिया है, वरन् अपने लिए अलग स्थान बनाया है। अतएव 'बोतल' शब्द के बन जाने से हिन्दी की अभिव्यजना शक्ति बढी है, घटी नही। आज हिन्दी से बोतल को निकाल देने का प्रयत्न व्यर्थ का दुस्साहस, सकीर्णता और कदाचित् उन्माद होगा।

इसी प्रकार और भी जो सैकडो विदेशी शब्द हिन्दी में पच गये है उन्होने हमारी भाषा में अपने लिए एक नया स्थान बनाया है अथवा बनाते जा रहे है। कालान्तर में उनके और हिन्दी के प्राचीन शब्दो के अर्थों में सूक्ष्म भेद पडते जायँगे। क्या हमारी भाषा मे 'हिम' और 'बरफ' दोनो शब्द नही चल सकते ? बरफ तो कई प्रकार का होता है। हम प्राकृतिक बर्फ को 'हिम' कह सकते है और कृत्रिम बर्फ को 'बर्फ'। जिस प्रकार अँगरेजी के शब्दो 'आइस' और 'स्नो' में अन्तर है, उसी प्रकार एक दिन 'हिम' और 'बर्फ' का अन्तर भी निश्चित हो जायगा। बर्फ के आने से हिम की कोई हानि नही हुई। हिम और बर्फ में भाईचारे का सम्बन्ध होना चाहिए न कि शत्रु का। इसी प्रकार किसी दिन 'कम' और 'न्यून' मे अन्तर पड जायगा, 'या' और 'अथवा' में अन्तर पड जायगा, 'गल्ती' और 'त्रुटि' में अन्तर पड जायगा।

अतएव स्पष्ट है कि विदेशी शब्द-बहिष्कार की नीति हमारी भाषा के लिए घातक सिद्ध होगी। परन्तु ऐसे शब्दो का बहिष्कार न करना एक बात है और उनकी सीमा निर्धारित करना दूसरी बात। जिस भाव के लिए हमारी भाषा में एक बहुत प्रचलित शब्द विद्यमान है, उसके लिए हम किसी अप्रचलित विदेशी शब्द का प्रयोग कदापि नही करेंगे। हम 'व्याख्यान' के स्थान पर 'तकरीर' नही कहेंगे, 'प्रस्ताव' के स्थान पर 'तजवीज' नही कहगे, 'अन्तराष्ट्रीय' के स्थान पर 'बैनुल अक्वाम' नही कहेंगे। कुछ लोग हमारी भाषा में अपरिचित विदेशी शब्द ठूस-ठूसकर जबरदस्ती एक कृत्रिम भाषा बनाना चाहते है जिसे वे हिन्दुस्तानी कहते है। ऐसी भाषा के कुछ नमूने इस लेख के आरम्भ में दिये गये है। उसी ढंग के कुछ वाक्यांश ये भी है —

'कोयल की फरियाद', 'चकोरी का नाला', 'साहित्य का जनाजा'।

इस प्रकार के प्रयत्न कभी सफल नही हो सकते। इन वाक्यांशो में एक खटक है जो पढते ही स्पष्ट हो जाती है। 'कोयल की पुकार' में कोई खटक नही है। 'कोयल की फरियाद' तुरन्त कान पर चोट करती है। 'चकोरी का दुखडा' उतना ही कर्ण-प्रिय है जितना कर्ण-कटु है 'चकोरी का नाला।' इसका कारण क्या है?

प्रत्येक भाषा की एक प्रकृति होती है, एक परम्परा होती है, एक मर्यादा होती है। जो विदेशी शब्द किसी भाषा की प्रकृति के अनुकूल बैठते हैं, वही उसमे पच सकते हैं। जो शब्द भाषा की मर्यादा के प्रतिकूल बैठते है उन्ही मे खटक दिखाई पडती है। यही कारण है कि कुछ विदेशी शब्द भाषा में ज्यू के त्यू घुल मिल जाते है, कुछ अन्य विदेशी शब्द घिस घिसकर विकृत होकर भाषा मे मिलते हैं और कुछ अन्य शब्द ऐसे होते हैं जो भाषा म कभी मिल ही नहीं पाते। हिन्दी के किसी सिद्धहस्त वक्ता को सुनिए। वह अपनी भाषा में दर्जनो प्रचलित विदेशी शब्दो का प्रयोग करेगा, परन्तु आपको उनका पता नही चलेगा। किन्तु यदि उसने किसी एक भी ऐसे विदेशी शब्द का प्रयोग किया जो हमारी भाषा में घुल मिल नही चुका है, तो तुरन्त आपके कान खडे हो जायेंगे। यही कसौटी है भाषा की मर्यादा निर्धारित करने की।

प्रयाग में एक सस्था है "हिन्दुस्तानी कलचर सोसायटी"। यह सस्था 'हिन्दुस्तानी' का प्रचार करती है। पहला प्रश्न यह है कि इस सस्था को अँगरेजी नाम क्यो दिया गया? हिन्दुस्तानी नाम ही क्यो नही दिया गया? कारण स्पष्ट है। इस नाम का हिन्दुस्तानी अनुवाद हो ही नही सकता। 'कलचर' को हिन्दी में कहते है 'सस्कृति' उर्दू में 'तरबियत', हिन्दुस्तानी में क्या कहते है? 'सोसायटी' को हिन्दी में 'परिषद्' कहेंगे, उर्दू मे कदाचित् 'अजुमन' कहेंगे, हिन्दुस्तानी में क्या कहेंगे? यदि इस सस्था का जबरदस्ती कोई हिन्दुस्तानी नाम रखना हो तो कहेंगे "हिन्दुस्तानी तरबियत परिषद्" अथवा "अजुमने हिन्दुस्तानी सस्कृति"। इस ढग के नाम में न हिन्दी की मर्यादा का सरक्षण है न उर्दू का। इसी ढग का एक नाम "सदाकत आश्रम" है। 'सत्य आश्रम' तो हो सकता है। कदाचित् 'सदाकत मजिल' भी हो सके। परन्तु 'सदाकत आश्रम' मे क्या तुक है? क्या हम 'जलवायु' के स्थान पर 'जलहवा' कह सकते है, 'क्षमा-याचना' के स्थान पर 'क्षमा-दरख्वास्त' कह सकते है? 'कुशल-मगल' के स्थान पर 'खैरियत-मगल' कह सकते है? अभी तक हम 'गर्दन-तोड बुखार' सुनते आये थे। अब समाचारपत्रो के विज्ञापनो से पता चलता है कि 'ऐनक तोड साधन' का भी आविष्कार हो गया है। यदि ऐसी ही प्रगति रही तो कदाचित् किसी दिन 'कर्मफोड कानून' भी बन जायगा।

तनिक इस तर्क को थोडा और आगे बढाइए। हम लोगो ने सहस्रो ही बार 'ईश्वरदत्त' और 'खुदा-बख्श' नाम सुने होगे। परन्तु क्या एक दिन ऐसा भी आनेवाला है जब हमें 'खुदादत्त' व 'ईश्वरबख्श' जैसे नाम भी सुनाई पडें?

अगर कभी हिन्दुस्तानी के किसी समर्थक के मुँह से कोई हिन्दी शब्द निकल जाता है तो उसे तब तक चैन नही पडता जब तक वह उसकी टक्कर के एक उर्दू शब्द का भी प्रयोग न कर दे। चाहे उस शब्द का मेल वाक्य के शेष भाग से बैठे या न बैठे। बहुधा आप इन लोगो को कहते सुनेगे कि 'हिन्दुस्तानी उस भाषा का नाम है जिसमें हिन्दी और उर्दू के शब्द प्राय बराबर बराबर सख्या मे रहें।" ऐसी परिभाषा देते समय यह लोग इस तथ्य को भूल जाते है कि भाषा केवल शब्दो का एक बेजोड समूह नही है। भाषा की एक प्रकृति हुआ करती है। जब कभी हम भाषा की प्रकृति पर अत्याचार करेंगे, भाषा तुरन्त बेमेल, बेजान और कृत्रिम हो जायगी। एक प्रयोग कीजिए। एक वाक्य बनाइए जिसमें एक शब्द उर्दू रखिए, फिर एक शब्द हिन्दी का, फिर एक उर्दू का देखिए कितना विलक्षण वाक्य बनता है। इस प्रकार का एक वाक्य मै यहाँ देता हूँ —

"हिन्दुस्तान के हिफाजत विधान के मुताबिक देश के मशहूर समाचारपत्रों से जमानत माँगकर सरकार ने अखबार नवीसों पर कुठाराघात किया है।"

इस ढंग की विलक्षण भाषा कहाँ तक चल सकेगी? अन्त में हमें सहारा संस्कृत का अथवा अरबी फारसी का ही लेना पड़ेगा। मेरा विचार है कि भाषा के सम्बन्ध में हम लोग कुछ नपे-तुले सिद्धान्त बना लें —

१—अरबी फारसी अथवा अन्य विदेशी भाषाओं के जो शब्द हिन्दी में घुल-मिल गये हैं उन सबको अंगीकार कर लिया जाय। उनके बहिष्कार का प्रश्न ही न उठाया जाय।

२—जब कभी किसी नये शब्द की आवश्यकता आन पड़े तो देश की अन्य भाषाओं, बंगाली, गुजराती, मराठी इत्यादि के प्रचलित शब्दों को टटोला जाय। यदि कोई उपयुक्त शब्द मिल जाय तो उसी को हिन्दी में अपना लिया जाय।

३—यदि इन देशी भाषाओं में भी कोई उपयुक्त शब्द न मिले तो नये शब्द का निर्माण संस्कृत-मूल से संस्कृत व्याकरण के अनुसार किया जाय।

४—हिन्दी को कोई अपवर्जी भाषा न बनाया जाय। भविष्य में भी विदेशी भाषाओं से सैकड़ों शब्द हिन्दी में आकर घुल-मिल जायेंगे। यह उन शब्दों की सुबोधता, उपयोगिता और सरलता पर निर्भर है। ऐसे शब्दों के लिए हिन्दी का द्वार सदैव खुला रहे। गत महायुद्ध ने हमारी भाषा को बहुत से अँगरेजी शब्द दिये हैं जैसे कण्ट्रोल, राशन, परमिट। इन शब्दों को ज्यू को त्यू चलने दिया जाय। जिन शब्दों को ग्रामीण जनता भी समझने लगी है, उनका अनुवाद करने की क्या आवश्यकता है?

विज्ञान का पठन-पाठन

लेखक, प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव

[विज्ञान की शिक्षा दशोन्नति के लिए कितनी आवश्यक है, इस कहने की आवश्यकता नही। परन्तु इस शिक्षा का लाभ विद्यार्थिया को तभी भली भाँति मिल सकता है जब आरम्भ से ही उनकी रुचि प्रेक्टिकल विज्ञान की ओर आकर्षित की जाय। अभी हमारे स्कूलो में इस ओर से बडी उदासीनता रहती है। प्रस्तुत लेख म कायस्थ पाठशाला कालेज, प्रयाग के रसायन विभाग के अध्यक्ष श्री गोपालस्वरूप भार्गव ने विज्ञान की शिक्षा की इसी कमी की ओर सकेत करते हुए उसकी पूर्ति की आवश्यकता बताई है। भार्गवजी खन्नाजी के पुराने मित्र है।]

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। ससार म जितनी योग्यता दिखाई पडती है, वह सब विज्ञान की बदौलत है। विज्ञान का एकमात्र ध्येय सत्य की खोज है। इसी उद्देश्य से परीक्षण तथा निरीक्षण का सहारा लेकर विज्ञान का पठन-पाठन होता है।

हमारे प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू स्वय विज्ञान के प्रेमी है और वे विज्ञान की सर्वतोमुखी उन्नति का प्रयत्न कर रहे है। हमारे प्रान्त के शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्दजी विज्ञान के अध्यापक रह चुके है, कई विज्ञान ग्रन्थो के लेखक है और अब शिक्षा के प्रचार म दत्तचित्त है। अतएव इस समय यह विचार करना उचित है कि शिक्षा में विज्ञान का क्या स्थान है और उसके प्रचार तथा प्रसार म क्या त्रुटियाँ है।

यह तो स्पष्ट है कि पिछले २० वर्षो म हाईस्कूलो तथा इण्टरमीडियेट कालेजो की सख्या बहुत बढ गई है। जो विद्यार्थी इन परीक्षाओ मे सम्मिलित होते है उनकी सख्या भी लगभग बीस गुनी हो गई है। विचारणीय विषय यह है कि पठन पाठन में भी कुछ उन्नति हुई है या नही। पहले हाईस्कूल म विज्ञान विषय लेनेवाले विद्यार्थियो की परीक्षा प्रेक्टिकल में भी ली जाती थी, परन्तु गत २०, २५ वर्ष से यह परीक्षा बन्द हो गई है। परिणाम यह हुआ है कि स्कूलो मे प्रेक्टिकल पर भी अब ध्यान नही दिया जाता। बहुत जगह तो प्रेक्टिकल कराना ही बन्द हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जो विद्यार्थी इण्टर म आते है, उन्हे पर्याप्त ज्ञान नही होता। प्रेक्टिकल में तो व कोरे होते ही है। थियरी म भी उनके विचार स्पष्ट नही होते और यह दुर्बलता उन्ह बडी अखरती है। उनकी पर्याप्त उन्नति नही हो पाती। यह ठीक है कि

इण्टरमीडियेट बोर्ड ने इस प्रकार खर्चे में किफायत कर ली है। परन्तु ऐसा करने से शिक्षा में बड़ी त्रुटि आ गई है। व्यय में कमी करने के अनेक साधन थ। प्राय प्रत्येक स्कूल म परीक्षक बाहर के दूर दूर के नगरा मे आते थे। यदि परीक्षक नियुक्त करने म अधिक सावधानी की जाती—ग्राम के नगरा के परीक्षक नियुक्त किये जाते और एक नगर के अधिकाश विद्यालयो में एक ही स्थान का परीक्षक नियुक्त किया जाता तो बचत हो सकती थी। यदि इससे भी अधिक बचत की आवश्यकता होती, तो इन्सपेक्टरो, डिप्टी इन्स्पेक्टरो आदि से यह काम लिया जा सकता था।

विद्यालयो म भी विज्ञान के अध्यापको को कक्षा म प्रयोग दिखाने के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया जाता। प्रयोग प्रदर्शन के लिए पर्याप्त समय उन्हे मिलना चाहिए। क्रियात्मक विषयो के अध्यापको को इस काम के लिए कुछ समय देना आवश्यक है। आर्थिक सहायता भी पर्याप्त होनी चाहिए। जितने प्रयोग कक्षा म करके दिखाने और विद्यार्थियो को कराने पर्याप्त समझे जाव, उनकी सूची विवरणपत्रिका में छाप देनी चाहिए और हेडमास्टरो और इन्स्पेक्टरो को यह ताकीद होनी चाहिए कि वह इस बात की जांच करते रहे कि यह काम सुचारु रूप से हो रहा है कि नहीं। प्रयोग प्रदर्शन के लिए पर्याप्त सामग्री भी प्रत्येक स्कूल में रहनी चाहिए।

आजकल जब कि शिक्षा के प्रचार पर इतना ध्यान दिया जा रहा है, एक और प्रबध किया जाय तो लाभदायक होगा। विशेषत जहाँ पर अधिक हाईस्कूल हो वहाँ पर एक अजायबघर बना देना चाहिए। बजाय इसके कि प्रत्येक विद्यालय अपना अपना सग्रह अलग रखे, वह सब सामान एक केन्द्रीय सग्रहालय में रखा जावे और उनके सरक्षण तथा प्रदर्शन के लिए योग्य व्यक्ति और योग्य सहकारी रखे जायें। जब जिस स्कूल को आवश्यकता हो, वहाँ के विद्यार्थी इस दर्शनालय म आवे और उनके शिक्षक आकर प्रयोग करके या विवरण देकर यन्त्र आदि दिखला दे। अमेरिका आदि उन्नतिशील देशो म आजकल ऐसे दर्शनालय अथवा सग्रहालय बनाये जाते है और उनसे विद्यार्थियो को बडा लाभ पहुँचता है। अभी हाल म ज्योतिष और भूगर्भ के विषय भी हाईस्कूल के पाठ्यक्रम मे आ गए है। इन विषयो के पठन पाठन म भी यह दर्शनालय बडी सहायता दे सकते हैं।

इण्टर कालेजो में भी धन के अभाव से पर्याप्त प्रेक्टिकल नहीं होता। भौतिक शास्त्र तथा जीव विज्ञान में तो कुछ क्रियात्मक कार्य होता भी है, परन्तु रसायनशालाओ म तो केवल आँसू पोछे जाते हैं। प्राय गुणात्मक विश्लेषण (qualitative analysis) घनात्मक नाप तौल (valumetive analysis) और ऑर्गेनिक निरीक्षण (organic detection) के अतिरिक्त प्राय कही भी कुछ नहीं कराया जाता। यदि प्रत्येक विद्यार्थी को दो तीन ऑर्गेनिक पदार्थ बनाने पड तो प्राय १०) प्रति विद्यार्थी व्यय करना पडेगा, परन्तु इतना रुपया न तो विद्यालयो के पास रहता है और न शिक्षा विभाग ही ग्रान्ट (grant) का हिसाब लगाते समय इस बात पर ध्यान देता है। बोर्ड जिन परीक्षको को भेजता है, उन्हे भी इस उपेक्षित विषय के प्रश्नो को देने का आदेश नहीं देता। परिणाम यह होता है कि लवणो का बनाना, उनको अलग करना और शुद्ध करना, गैसो का बनाना और उनका परीक्षण, ऑर्गेनिक पदार्थों का बनाना और शुद्ध करना नहीं सिखाया जाता। प्रयोगशालाओ में न तो पर्याप्त सामान रहता है और न उस सामान का उचित प्रदर्शन होता है जो वहाँ रहता है। जब विश्वविद्यालयो के सरक्षण और निरीक्षण म इण्टर की शिक्षा थी तो विश्वविद्यालय प्रत्येक प्रयोगशाला म शिक्षक के अतिरिक्त एक डेमान्सट्रेटर भी नियुक्त कराता था। अब तो डेमान्सट्रेटर या लेबोरेटरी एसिस्टेन्ट की ओर किसी

का ध्यान ही नही जाता। परिणाम यह होता है कि विज्ञान के शिक्षक से उतना ही शिक्षण कार्य लिया जाता है जितना कला विभाग के शिक्षकों से लिया जाता है, फिर विज्ञान के शिक्षकों को अपने सग्रहालय की देख भाल के लिए, कक्षा में प्रयोग प्रदर्शन के लिए यत्रों की सफाई आदि के लिए समय ही नही मिलता, अतएव प्रयोग चित्रों द्वारा काले तख्ते पर ही समझाए जाते हैं।

यदि शिक्षा विभाग के पास डेमन्सट्रेटर्स की नियुक्ति के लिए पर्याप्त धन नही है तो कम से कम शिक्षित लेबोरेटरी असिस्टेंट तो नियुक्त कर दे। साधारण अशिक्षित काम करनेवालो को प्रयोगशालाओं में नियुक्त करके वहाँ के सग्रह की देख भाल, सफाई, यत्रो को प्रयोगात्मक अवस्था में रखना, प्रयोगो का प्रदर्शन आदि कोई भी काम नही हो सकता।

इन सब बातों पर विचार करते हुए इण्टर कालेजो के लिए भी सग्रहालयो या प्रदर्शनालयो का होना परमावश्यक है। जिन इण्टर कालेजो म विज्ञान विभाग में ५०० विद्यार्थी हो और रसायन भौतिक तथा जीव विज्ञान का पठन-पाठन होता हो वहाँ तो तीनो विभागो का एक सम्मिलित सग्रहालय बनाकर सग्रह की उपयोगिता बढाई जा सकती है। इस प्रकार न केवल शिक्षको का काम हलका हो जायगा, प्रत्युत शिक्षा का कार्य अधिक उपयोगी और लाभदायक हो जायगा।

अत साराश यह निकला कि —

(१) हाईस्कूलों मे प्रयोगात्मक कार्य सुचारु रूप से चलाया जाय और प्रयोगात्मक परीक्षा फिर से जारी कर दी जाय।

(२) इण्टर कालेजो की ग्रान्ट (वार्षिक आर्थिक सहायता) बढाई जाय ।

(३) इण्टर कालेजो मे डेमन्सट्रेटर दिए जायँ जो यत्रो की देख भाल करते रहे और उनको इस अवस्था म रखे कि चाहे जब उनसे काम लिया जा सके।

(४) बडे बडे इण्टर कालेजो में दर्शनालय खोले जायँ या प्रत्येक नगर में दर्शनालय बनें जिनमे नगरस्थ विद्यालयो के विद्यार्थी जाकर ज्ञान की वृद्धि कर सकें।

अब तक सरकार की नीति यह रही है कि विद्यार्थियो की सख्या बढे परन्तु उनकी योग्यता बढे, इस बात पर कम ध्यान दिया गया है। बेसिक स्कूलो में जो हाथ का काम कराया जाता है उससे विद्यार्थियो का क्रियात्मक दृष्टिकोण बनता है, परन्तु वहाँ धनाभाव और समयाभाव के कारण सुचारु रूप से काम नही चल रहा है, केवल निरीक्षको को दिखाने और उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न होता है। इसलिए शिक्षा विभाग को शिक्षा कार्य मे अधिक धन लगाना चाहिए।

मेरा परिचय

लेखक, बाबा राघवदास

[बाबा राघवदास उत्तर भारत के अद्वितीय जनसेवक हैं। वे आजकल प्रान्तीय धारासभा के सदस्य हैं। उनकी सेवाएं बहुमुखी हैं। गोरक्षा कार्य हिन्दी प्रचार कार्य, शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा राष्ट्रीय कार्यों में लगे रहना उनका व्यवसाय हैं। स्वतन्त्रता संग्राम के प्रत्येक आह्वाहन में आप आगे रहे और जेल-यातनाएँ भी भोगीं। आप खन्नाजी के अभिन्न मित्रों में हैं। प्रस्तुत लेख में आपने खन्नाजी की निर्भीकता, उनके हिन्दी प्रेम, राष्ट्रीय कार्य, हिन्दी प्रचार कार्य, ग्रामोद्योग कार्य, शिक्षा कार्य में मुक्त हस्त आर्थिक सहायता देने की चर्चा की है। खन्नाजी की दानशीलता और स्वर्गीय बापूजी पर उनके काय के प्रभाव की चर्चा भी इस लेख मे बाबाजी ने की है। श्री रामजी दुबे की कहानी विशेष प्रकार से पढ़ने योग्य है।]

आचार्य श्री हीरालालजी खन्ना से मेरा परिचय हुआ था १९२५ मे कानपुर कांग्रेस के अवसर पर। उसके बाद वह बढ़ता ही गया। १९३४ में जब पूज्य बापूजी हरिजन दौरे पर कानपुर आये थे। युक्तप्रान्त के दौरे के पहले आसाम प्रान्त का दौरा हो चुका था और उस दौरे में पूज्य बापूजी ने कृपाकर हिन्दी के बारे में अपने इर एक व्याख्यान में कहा था। इससे वहाँ काफी जागृति हो गई थी। मुझे चार हिन्दी प्रचारक वहाँ भजने थे। उनके खर्च का भी प्रबन्ध करना था। पूज्य बापूजी के शुभागमन के आधार पर कानपुर हिन्दी प्रेमियो की एक छोटी-सी बैठक प्रताप कार्यालय में हुई और वहाँ श्री अम्बिकाप्रसाद जी तिवारी कानपुर निवासी हिन्दी का काम करने के लिए तत्पर हुए, जो आज भी आसाम के जोरहट में काम करते हैं। वहाँ हो श्री बालकृष्णजी शर्मा, श्री खन्नाजी, श्री हिन्दी विद्यार्थी सम्प्रदाय के श्री चन्द्रभान जी विद्यार्थी इन तीनो ने प्रतिमास सहायता देने का वचन दिया। श्री खन्नाजी ने वर्ष भर का अपना चन्दा थोड़े ही दिनों के बाद अपनी ओर से ही अलग से भेज दिया। श्री खन्नाजी हमारे हिन्दी प्रचार समिति के भी सदस्य रहे। वर्धा में उस समिति की बैठक थी। पूज्य बापूजी अध्यक्ष थे इसलिए बैठक वहाँ थी। श्री खन्नाजी उस बैठक म नही आ सके, इसलिए उन्होंने पूज्य बापूजी के नाम पत्र भेजा था। उसमें ३० रुपये भी थे। पत्र म यह लिखा था कि "मैं कार्यवश नही आ सका इससे यह न समझा जाय कि मैं पैसों के बचाने के लिए इतनी लम्बी यात्रा नहीं करना चाहता हूँ। इसलिए यह किराये का रुपया भेज रहा हूँ।" पूज्य बापूजी तथा अन्य सदस्य इस पत्र से बडे ही प्रभावित हुए।

तारीख ५-८-४२ को मैं बम्बई जाने के लिए कानपुर पहुँचा। वहाँ श्री खन्नाजी के यहाँ ठहरा था। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तथा लेखक श्री माखनलालजी चतुर्वेदी भी वहाँ उस दिन मौजूद थे। दुपहर को झाँसी मेल से मैं बम्बई रवाना हुआ।

१९४३ में जब मैं फरार था, प्रयाग से कानपुर का काम देखने आया था। यात्रा में ही खबर मिली थी कि बरहज आश्रम पर जो ग्रामोद्योग काम हो रहा था, वह बर्बाद हो चुका है, इसलिए उसके लिए पैसों की जरूरत है। कानपुर का काम देखने के बाद मैंने श्री खन्नाजी से ग्रामोद्योग की चर्चा की। तुरन्त

उन्होंने अपने तथा अपने मित्रो से ६००,१०००) रुपयो का प्रबन्ध कर दिया। रात को वहाँ पहुँचा था। दिन में वहाँ रहा और बारह बजे दिन की गाडी से झाँसी के लिए रवाना हुआ था।

आश्रम बरहज का एक छात्र श्रीरामजी दुबे बरहज मे मैट्रिक प्रथम श्रेणी से पास कर कानपुर जा रहा था। कानपुर में उसका कोई परिचित नही था। उसके लिविंग सार्टिफिकेट पर यह लिखा था कि यह गरम राजनैतिक विचारो का हैं इसलिए उस पर पुलिस की कृपा भी थी। कानपुर की गाडी से वह मुझे देवरिया स्टेशन पर मिला। मैंने उसका वह सार्टिफिकेट पढा। मुझे चिन्ता हुई कि इसको कानपुर कहाँ भेजूँ। मैंने श्री खन्नाजी के नाम पत्र भेजा। और श्री खन्नाजी ने उस गरीब होनहार छात्र को छात्रावास में स्थान न होने के कारण अपने घर पर कई महीने रखा और बाद को छात्रावास मे व्यवस्था की। पुलिस को भी अपने ढग से समझा दिया। इससे वह पढ पाया और १९४२ की इण्टर परीक्षा में प्रान्त भर मे प्रथम श्रेणी में प्रथम आया।

इस प्रकार आचार्य श्री खन्नाजी ने हमारे हिन्दी प्रचार, गरीब छात्र सहायता आदि करने म सहायता देकर हमें अनुगृहीत किया है। मैं उनका हृदय से इस मगल अवसर पर अभिनन्दन करता हूँ और आशा करता हूँ कि वह कानपुर शिक्षा सस्था से अलग होने पर हमारे प्रात के व्यापक शिक्षा कार्य में भाग लेकर अनुगृहीत करेंगे।

उनकी सेवा में हम श्री अयोध्याजी फैजाबाद में डिग्री कालेज न होने से सैकडा गरीब छात्रों को जो कष्ट होता है, उसका स्मरण दिलाना चाहते हैं। श्री अयोध्याजी भारतीय सस्कृति का सुन्दर पुण्यधाम तथा श्रीराम का जन्मस्थान हैं। इस धाम से करोडो भारतीय स्त्री-पुरुषो को प्रेरणा मिली है। भारत स्वतन्त्र है, पूज्य बापूजी रामराज्य की रट लगाकर ही तो आज के समय मे 'हे राम' कहकर इस स्वप्न की पूर्ति भगवान् राम के हाथ में छोडकर हमसे विदा हुए हैं।।

इसलिए ऐसे अखिल भारतीय महत्त्वपूर्ण स्थान में आचार्य श्री खन्नाजी अपना वर्षो का अनुभव तथा कार्यक्षमता से लाभ पहुँचाने की कृपा करें तो बडी कृपा हो। यह इसलिए कहने की धृष्टता कर रहा हूँ कि आप एक प्रकार से वानप्रस्थाश्रम मे है। आप चाहेंगे तो श्री साकेत महाविद्यालय एक अपने ढग की सस्था होगी।

श्री अयोध्याजी ही एक ऐसा तीर्थस्थान है जहाँ कोई महत्त्वपूर्ण शिक्षा-सस्था नही है। काशी, प्रयाग में तो भारतप्रसिद्ध विश्वविद्यालय है, हरद्वार तथा वृन्दावन में प्रसिद्ध गुरुकुल ऋषिकुल। पर श्री अयोध्याजी फैजाबाद ही ऐसी नगरी है जिसमें कौन चलावे सारे फैजाबाद कमिश्नरी में—गोडा बहराइच फैजाबाद, रायबरेली, प्रतापगढ, बाराबकी ६ जिला में कोई डिग्री कालेज नही है। प्रसिद्ध सस्था की तो बात दूर रही डिग्री कालेज जौनपुर, 'आजमगढ', बलिया ऐसे साधारण जिला में भी है।

इसी लिए मैं आचार्य श्री खन्नाजी से नम्र निवेदन करूँगा कि वह श्री अयोध्याजी म डिग्री कालेज खोलने के लिए जो श्रीसाकेत महाविद्यालय समिति बनी है और जो रजिस्टर्ड भी हो चुकी है उसम भाग लेकर श्री अयोध्या नगरी के जीर्णोद्धार में हाथ बँटावें।

श्रद्धेय खन्नाजी

लेखक, श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

[श्री० पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदी हिंदी भाषा के सुपरिचित उन्नायकों में हैं। उनके सहयोग से पत्रकारिता का स्तर ऊँचा हुआ है और उसका सम्मान हुआ है। वह जिस जिस स्थान पर रहे हैं हिंदी सेवकों की सहायता की है और उनका आदर बढ़ाया है। श्री हीरालालजी खन्ना के विषय में इस लेख में, उन्होंने अपने सस्मरण लिखे हैं। खन्नाजी का भी इनका पुराना परिचय है। उनके संबंध में अनेक ज्ञातव्य बातें इस लेख में हैं और उनके अनेक गुणों का परिचय भी है। लेख के अंत में चतुर्वेदीजी ने खन्नाजी से एक प्रार्थना की है—

वे (खन्ना जी) अपनी अनुभूतियों को और पूज्य द्विवेदीजी, गणेशजी विषयक संस्मरणों को बोलकर लिखा दें—(स्वयं लिपिबद्ध करने की फुरसत उन्हें शायद ही मिल सके!) ताकि आगे आनेवाली पीढ़ी यह जान ले कि विद्यालयों का संचालन कितना कठिन है और खन्ना जी जैसे ईमानदार शिक्षकों को इसमें कैसे खपना पड़ा।"]

सन् २७ की बात है। महकमा बेकारी में नाम लिखवाकर घर बैठा हुआ था। और चिन्ताएँ तो थी ही, पर सबसे बड़ी फिक्र यह थी कि अपने अनुज (स्वर्गीय रामनारायन) की कालेज की शिक्षा किस प्रकार दिला सकूँगा। उसने हाल ही में ऐण्ट्रेंस की परीक्षा पास की थी। एक दिन अकस्मात् एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था, "आप अपने छोटे भाई की शिक्षा के लिए चिन्तित होंगे। क्या आप उसे मेरे पास भेज सकते हैं? वह मेरे घर पर ही रहेगा और आपको उसकी अगली पढ़ाई के लिए कुछ भी फिक्र न करनी पड़ेगी। इसका जिम्मा मैं लेता हूँ।"

शब्द मुझे ज्यों के त्यों याद नहीं रहे पर उनका आशय यही था। पत्र में नीचे नाम था 'हीरालाल खन्ना'। सम्भवतः साहित्य सम्मेलन के किसी अधिवेशन में खन्नाजी से परिचय हुआ था, पर चूंकि वे साहित्यिक नहीं हिन्दी प्रेमी अवश्य हैं, इसलिए वह परिचय नाम मात्र का ही रह गया था। स्वभावत मुझे उनके उस पत्र से बड़ा आश्चर्य हुआ। पहले तो मुझे उस पर यकीन ही नहीं हुआ, फिर पीछे भाई

चम्पारामजी से, जो खन्नाजी से बहुत पहले से परिचित रहे है, ज्ञात हुआ कि खन्नाजी सुयोग्य विद्यार्थियो के सग्रह करने मे कुशल है। उनके इस कौशल तथा परोपकार-वृत्ति का परिचय मुझे आगे चलकर खूब मिला और उनकी सहृदयता से लाभ भी मैंने भरपूर उठाया।

सौभाग्य से थोडे दिन बाद ही मुझे आगरे मे 'आर्यमित्र' के सहकारी सम्पादक का काम मिल गया और इस प्रकार अनुज की शिक्षा का प्रश्न हल हो गया,— पर खन्नाजी की इस कृपा को मै आज तक नही भूला। मैंने खन्नाजी को लिखा कि रामनारायन की पढाई का प्रबन्ध तो हो गया है, उसके सहयोगियो के लिए क्या कुछ कर सकेंगे? खन्नाजी ने मेरे प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और पिछले २२ वर्षों में न जाने कितने विद्यार्थियो को मेरी सिफारिशी चिट्ठी के अनुसार उन्होने पूरी मदद दी है। बुन्देलखण्ड के तो कई साधनहीन विद्यार्थी केवल इसीलिए शिक्षा पा सके है कि खन्नाजी ने उनको यथोचित सहायता दी। अध्यापक श्री प्रयागनारायणजी त्रिपाठी उन्ही में से है, जिन पर कोई भी विद्यालय गौरव कर सकता है। चाहे सैकिंड या थर्ड डिवीजनवाला विद्यार्थी क्यो न हो, खन्नाजी का तर्क यही रहा है, "जब यह चौबेजी की चिट्ठी लाया है, तो इसकी मदद करनी ही है!"

कई बार मैंने स्वय विद्यार्थियो से तर्क किया है, "भाई तुम्हारा डिवीजन ठीक नही है। आखिर विद्यालयो में फीस की माफी के कुछ नियम है, जिनकी पाबन्दी प्रिंसिपल को करनी पडती है। मै कैसे सिफारिश कर दू कि तुम्हारी पूरी फीस माफ हो जाय और छात्रालय में भी कुछ सहायता मिले?" पर उन विद्यार्थियो ने मुझसे यही कहा है "बस आप लिख दीजिए। कानपुर में यह बात मशहूर है कि खन्नाजी चौबेजी की बात नही टालते!"

और आज इस बात को मै निस्सकोच स्वीकार करता हूँ कि अनेक अनजान विद्यार्थियो की भी सिफारिश मै करता रहा हूँ और खन्नाजी मेरी हुडी सकारते रहे है। चौबे लोग यजमान सग्रह में कुशल होते ही है—यह हम लोगो का पुराना पेशा है—पर खन्नाजी जैसे 'जिजमान' भाग्य से ही मिलते है। हर्ष की बात है कि प्रिंसिपल अवस्थीजी भी इस परम्परा को कायम रख रहे है।

अत्यन्त निर्धन अवस्था में हमें कुलजमा एफ० ए० तक पढ़ाने में हमारे पूज्य पिताजी को किन किन कठिनाइयो का सामना करना पडा, उसकी हमे भली भाँति याद है और इसलिए खन्नाजी की सामयिक सहायता की उपयोगिता का अन्दाज हम लगा सकते है।

खन्नाजी की प्रबन्धशक्ति की प्रशसा मै वर्षों से सुनता रहा हूँ और अक्सर मैंने यह देखा है कि परीक्षाओ मे उनके B N S D कालेज के ही छात्रो का प्रान्त भर में काफी ऊँचा नम्बर आया है। अनेको बार उन्होने सर्वोच्च स्थान भी पाया है। सस्थाओ के सचालन के लिए कितना श्रम करना पडता है, इसका मुझको कुछ भी अनुभव नही और दूसरो से काम लेने की परीक्षा में तो मुझे 'शून्य' ही मिलेगा। अमर शहीद गणेशशकर जी कहा करते थे —'खुद काम करना आसान है, दूसरो से काम लेना मुश्किल।" खन्नाजी खुद भी खूब मेहनत करते है और दूसरो से भी डटकर काम ले सकते है।

एक बार मै कलकत्ता जा रहा था कि कानपुर स्टेशन पर खन्नाजी उसी डिब्बे में आ गये। गणेशजी का बलिदान हो चुका था। खन्नाजी ने उनके अनेक सस्मरण सुनाये जो वस्तुत बडे महत्वपूर्ण थे। मैंने निवेदन किया "खन्नाजी, आप इन्हें तुरन्त ही लिख दीजिए।" उन्होने कहा, "मै कोई लेखक तो हूँ नही, कि जल्दी से घसीट दू और फिर मुझे फुर्सत कम ही मिलती है।" मैं कुछ उत्तेजित हो गया

और बोला, 'आप तो प्रिंसिपल है। फुर्सत ही फुर्सत होगी। आप बहाना तो नही बना रहे?" खन्नाजी ने मुस्कराकर इतना ही कहा, 'आपको, चौबे जी, पता नही कि सस्थाओ का सचालन कैसे होता है?'

जब तक मैंने खन्नाजी के कालेज के विशाल छात्र-समूह को अपनी आँखो से नही देख लिया तब तक मैं खन्नाजी की बात को अत्युक्ति ही समझता रहा।

उसके बाद तो मैंने खन्नाजी के घर पर ठहरकर उनकी प्रशसनीय परिश्रमशीलता तथा उसके मूल कारण का भी पता लगा लिया। स्वास्थ्य के विषय में खन्नाजी जितने सावधान है, अपने शरीर को उन्होंने जैसे कसा है, अपने भोजन का उन्होंने जिस प्रकार नियत्रण किया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है! दरअसल उन्हे तो किसी स्वास्थ्य-सम्बन्धी महाविद्यालय का आचार्य नियुक्त होना चाहिए।

खन्नाजी यद्यपि साहित्यिक नही है, पर साहित्यिको में उनकी अनन्य श्रद्धा है। एक बार पूज्य द्विवेदी जी ने अपनी बीमारी में उन्ही का आश्रय लिया था और वही मैंने उनके दर्शन किये थे। और बन्धुवर माखनलाल जी के भी वे परम भक्त है। हिन्दी साहित्य सम्मेलनो की मीटिंगो में भी वे अपने आवश्यक कार्य को छोड़कर जाते रहे हैं। जहाँ तक हमें पता है, खन्नाजी सम्मेलनवालो की कट्टरता के समर्थक नही और निस्सन्देह उन्हें इस बात से खेद हुआ था कि महात्माजी को सम्मेलन छोडना पडा। खन्नाजी उन अल्पसख्यक व्यक्तियो में से है जो बडी से बडी सस्था को सुचारु रूप से चलाने की क्षमता रखते है और यदि सम्मेलन का कोई विभाग उनके सुपुर्द होता तो उसका भी विधिवत् सचालन कर देते।

एक बात से हमें सदैव आश्चर्य रहा है। वह यह कि खन्नाजी जैसे असाधारण प्रबन्धक व्यक्ति को इतने वर्षों के अनुभव के बाद भी अपने प्रान्त में अपनी शक्ति के भरपूर उपयोग करने का अवसर क्यो नही मिला। पिछली बार अपनी कानपुर यात्रा में जब हमने सुना कि खन्नाजी किसी नये हाईस्कूल की नीव डाल रहे है, तो हमें खेद ही हुआ। जो व्यक्ति शिक्षा विभाग के कई आवश्यक अगो के सचालन की ताकत रखता हो, उसे हाईस्कूल में खपना पडे, शक्ति का कितना बडा अपव्यय है।

अनक बार हमारे मन में एक अभिलाषा उठी है—वह यह कि खन्नाजी के नेतृत्व में ग्रामीण अध्यापको के सगठन का काम किया जाय। ग्रामीण अध्यापको की दुर्दशा से सभी परिचित है, पर उनकी अन्तर्निहित शक्ति का अन्दाज बहुत कम व्यक्तियो को होगा। यदि उन्हे खन्नाजी जैसा पथ-प्रदर्शक मिल जाय तो उनके प्रश्नो के हल होने में बहुत देर न लगे। जो भी दूरदर्शी व्यक्ति ग्रामीण अध्यापको का सगठन कर देगा, वह पुण्य का भागी तो बनेगा ही, साथ ही साथ वह शिक्षा जगत् में असाधारण शक्तिशाली भी बन जायगा। पर यह काम वही कर सकता है जिसके पास समय हो और जिसे ग्रामीण अध्यापको की सहायता पर निर्भर न रहना पडे। ये अध्यापक अत्यन्त निर्धन है, इसलिए वैतनिक कार्यकर्त्ता रखने की सामर्थ्य उनमें नही। वस्तुत यह कार्य मिशनरी ढग पर ही होना चाहिए। अपने असाधारण स्वास्थ्य के कारण खन्नाजी में अभी २०-२५ वर्ष तक परिश्रम करने की शक्ति विद्यमान है। क्या ही अच्छा हो यदि उसका एक अश ग्रामीण अध्यापको की सेवा में भी अर्पित हो जाय! "दरिद्रान भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वर धन'— भगवान् कृष्ण का यह उपदेश था और ग्रामीण स्कूलो के मुदर्रिसो से अधिक 'दरिद्र' और कौन मिल सकेगा? मेरे पूज्य पिताजी ने पूरे पचपन वर्ष मुदर्रिसी की थी, इसलिए यह बात मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ।

एक बात का हमें पछतावा है। वह यह कि बन्धुवर खन्नाजी के ऋण के एक अश को भी हम नही चुका सके। उन्हें हमने वचन दिया था कि उनके विद्यालय में आठ दस भाषण देकर हम उनसे

उन्नत् होने का किंचित् प्रयत्न तो करेंगे ही, पर अपने इस वचन का भी हमसे पालन नही हो सका! सम्भवत खन्नाजी हमारे इस वचन को भूल ही गये होंगे और उनके उत्तराधिकारी बन्धुवर सद्‌गुरुशरण जी अवस्थी इस बात को अच्छी तरह जानते है कि दर्जियो, सुनारो तथा पत्रकारो के वचन पर अधिक विश्वास नही किया जा सकता!

एक बात और। आचार्य खन्नाजी के सहस्रो ही शिष्य और उनमें कितने ही साधन सम्पन्न भी होगे। क्या ही अच्छा हो यदि वे कालेज के किसी विस्तृत कमरे को 'खन्ना भवन' नाम देकर उसे हिन्दी लेखको के तैल चित्रो से सुशोभित कर दें! आचार्य द्विवेदीजी, अमर शहीद गणेशजी, तथा स्व० प्रतापनारायण मिश्र के तैल चित्र तो तुरन्त ही तैयार कराये जाने चाहिए।

एक प्रार्थना खन्नाजी से भी। वे अपनी अनुभूतियो को और पूज्य द्विवेदीजी, गणेशजी, विषयक सस्मरणो को बोलकर ही लिखा दें—(स्वय लिपिबद्ध करने की फुर्सत उन्हें शायद ही मिल सके!) ताकि आगे आनेवाली पीढी यह जान ले कि विद्यालयो का सचालन कितना कठिन कार्य है और खन्नाजी जैसे ईमानदार शिक्षको को उसमें कैसे खपना पडा।

हमारे व्रज में एक कहावत है 'साठा सो पाठा'। खन्नाजी उसके उदाहरण है। वे शतायु हो और अपने सदुद्देश्यो में पूर्णतया सफल, यही हमारी कामना है।

विद्या का स्वरूप और वर्तमान शिक्षा

राजगुरु पं० हरिदत्त शास्त्री, विद्यालङ्कार, विद्यारत्न, धर्मधुरीण

[शिक्षा के प्राचीन आदर्श और वर्तमान स्वरूप की विवेचना करते हुए राजगुरु पं० हरिदत्तजी शास्त्री, विद्यालंकार, विद्यारत्न, धर्मधुरीण ने बड़े ही सुन्दर रूप में दोनों में सामञ्जस्य स्थापित करने की ओर संकेत किया है। आधुनिक युग प्रत्यक्ष ज्ञान का युग है। परन्तु हमने आज अपने को इतना बहिर्मुख बना लिया है कि परोक्ष ज्ञान की ओर से हमारी दृष्टि सर्वथा हट रही है। श्री शास्त्रीजी के कथनानुसार यह गलत मार्ग है। 'जिस ज्ञान का चरम ध्येय और प्रधान तात्पर्य धर्म या आत्म शान्ति है और अप्रधान या वैकल्पिक तात्पर्य अर्थोपलब्धि है, वही वास्तविक विद्या है"।]

विद्या भगवान् की उस महती शक्ति का संकेत है जिसका विकास होने से मनुष्य को यथार्थ जानकारी अर्थात् कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान हो जाता है। देश या जाति की सेवा का अर्थ है देश-जाति को दुःख से मुक्त कराना। यह ठीक है कि अन्न-वस्त्र और आरोग्य के अभाव को दूर कराना भी देश को दुःख से मुक्त करना है और जब तक इन कष्टों से छुटकारा न मिले तब तक कोई भी शरीरधारी प्रगतिशील नहीं बन सकता। सामर्थ्यवान् होने पर भी जो व्यक्ति इन दुखों की ओर उपेक्षा की दृष्टि डाले, वह सेवा से ही विमुख नहीं होता अपितु पातकी भी कहलाता है। स्मृति का वाक्य है "उपेक्षक शक्तिमान् चेत्।" समर्थ होने पर भी जो दीन-दुखी जनों की उपेक्षा करता है, उनकी ओर से उदासीन रहता है, वह दोषी है। परन्तु यथार्थतः दुःख से छुटकारा अज्ञान के दूर होने से ही होगा। अज्ञान ही मनुष्य का एक घोर शत्रु है। अज्ञान ही महान् दुःख है। इसको दूर करने की एकमात्र औषधि यथार्थ ज्ञानवती विद्या शक्ति है। विचार यह करना है कि यह यथार्थ ज्ञानवती विद्या शक्ति क्या है? उसकी प्राप्ति का साधन क्या है? वह मनुष्य-जीवन की उपज है या खोज है?

उपर्युक्त प्रश्न के समाधान में अनेक मत प्राचीन काल से व्यक्त किये जा रहे हैं। एक भारतीय पर्यवेक्षक का कथन है "अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शनम्" —अनेक प्रकार के संशयों को दूर करने और परोक्ष ज्ञान का अनुभव कराने की सामर्थ्य जिसमें है वही विद्या-शक्ति है। दार्शनिक विचारों के उच्च स्तर पर जाने से *यह ज्ञात होता है कि दो बातें हैं 'यह और 'वह'। चार्वाक आदि भौतिकवादियों का कथन है कि 'यह'*

अर्थात् जो ऐन्द्रिक ज्ञान का विषय है वही प्राप्य-सुख-साधन वस्तु है। उपनिषदादि उच्च विद्याओं का मत है कि 'यह' तो परछाईं मात्र है। तुम जब तक इसे सच मानते रहोगे तब तक कष्ट की शृङ्खलाओं में जकड़े रहोगे। 'वह'—जो नेत्रादि इन्द्रियों का विषय नहीं है—वही सत्य है, वही सुख है। उसी की परछाईं 'यह' है जैसे रेगिस्तान में कोई प्यासा यात्री सामने की जलतरंगों को सच्ची समझकर उनकी ओर भाग-दौड़ कर रहा है और सोच रहा है कि मेरी पिपासा इससे शान्त हो जायगी, वही हमारी दशा है। किन्तु जो जानकार है वह बताता है कि 'तुम यह जो जल मरुभूमि में देख रहे हो, वह भ्रम है, मृगतृष्णा है। जल तो वहाँ है जहाँ तुम नहीं देख रहे हो। मेरे द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलो तो मैं बता दूंगा कि जलाशय कहाँ है। वहाँ तुम अपनी पिपासा को शान्त करके सुखी बनोगे।' अब यह उस यात्री की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह उस जानकार के कथनानुसार जलाशय पर जावे या अपनी इन्द्रियों के ज्ञान पर अभिमान करके रेगिस्तान में ही चक्कर काटता रहे।

संसार के आदि सेवक भगवान् नारद, भगवान् शंकर और भगवान् बुद्ध आदि ने उस यथार्थ जलाशय को बताने की चेष्टा करना ही देश व जाति के संकट को दूर करने का सही मार्ग माना है। अतः यथार्थ रूप से देश के सेवक वे ही हैं जो सत्य विद्या के विकास द्वारा देश व जाति की सेवा में प्रवृत्त होते हैं। जो विज्ञान केवल अर्थ प्राप्त करने का साधन बनकर रह जाता है वह वास्तविक विद्या नहीं है। जिस ज्ञान का चरम ध्येय और प्रधान तात्पर्य धर्म या आत्म शान्ति है और अप्रधान या वैकल्पिक तात्पर्य अर्थ की उपलब्धि है वही वास्तविक विद्या है। जो इस विद्या का परिचय करावें वे ही सच्चे गुरु हैं, वे ही वन्द्य हैं, वे देश और जाति के पूज्य हैं। जो केवल अर्थ-साधन या अर्थ प्राप्ति के अमुख्य धर्म को प्राप्त कराने का प्रयत्न है, वह भी विज्ञान है। पर यह विज्ञान भौतिकता की ओर उन्मुख है। यह देह की खोज है। भारतीय आदर्श के अनुसार विद्या वह है जिसमें धर्म प्रधान हो और अर्थ गौण। उस विद्या की प्राप्ति के लिए पहले शारीरिक और मानसिक बल को पुष्ट करना है। सच्चे साधन वे ही हैं जिनसे शारीरिक और मानसिक—उभय बल साथ-साथ प्राप्त हों। "नायमात्मा बल हीनेन लभ्य।" शारीरिक व मानसिक—दोनों ही बलों की सम्पन्नता होने से ही धर्म-प्रधान विद्या का विकास होगा।

इस बल की प्राप्ति के प्रधान साधन हैं ब्रह्मचर्य, शुद्ध भोजन और एकान्त-चिन्तन। इसी को क्षात्रबल और ब्रह्मबल का समीकरण कहा है। वही देश निरुपद्रव हो सकता है जहाँ के निवासी स्वभाव से ही सैनिक बल और मनोबल रखते हों। इन दोनों बलों का विकास विद्या प्राप्ति काल में ही हो सकता है। विद्या के यथार्थ विकास से आत्मबल प्राप्त होता है और परोक्ष ज्ञान-संशय की निवृत्ति हो जाती है। जिन साधनों या जिस विद्या द्वारा इन्द्रिय भोगों और विलासिता की ओर प्रवृत्ति होती है वह विद्या नहीं है। ऐसी विद्या का विकास करना देश और जाति के साथ द्रोह करना है। भोग-सामग्री की वृद्धि करने और उसकी प्राप्ति की चेष्टा में संलग्न होने से ही संघर्ष होते हैं और द्वेषाग्नि धधकती है। भारतवर्ष की शिक्षा का आदर्श यही बताता है कि मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह की सामग्री इतनी ही रक्खे जिससे वह स्वस्थ, दीर्घायु और बलवान् बना रहकर वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति कर सके। यथार्थ में भारतीय कहलाने का अधिकार उसी को है जो अपने को बलवान् और नीरोग रखता हुआ स्वल्प धन में निर्वाह करे। यथार्थ विद्या की प्राप्ति राज-अट्टालिकाओं में रहकर न होगी। उसे तो बालक निर्जन पर्णशालाओं में रहकर अपने श्रम से अन्न और दुग्ध उपार्जन करके, स्वावलम्बन का जीवन बिताते हुए ही प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान प्रणाली द्वारा सत्य-विद्या की प्राप्ति स्वप्न मात्र है। लोग कहते हैं कि शिक्षा का समय ५ या ८ वर्ष की अवस्था से आरम्भ होना चाहिए। परन्तु वस्तुतः शिक्षा तो बालक के गर्भ में आते ही आरम्भ हो जाती है। बालक माता पिता के संस्कारों से प्रभावित होकर अपने

सस्कारा का विकास करने लगता है। मुझे एक स्थल पर पढने को मिला कि माता पार्वती ने अपने पुत्र कार्तिकेय को सैन्य-सचालन और समर शास्त्र का ज्ञान और गणेश को आत्म विद्या गर्भकाल म ही सिखानी आरम्भ कर दी थी। यही नही, बल्कि सैन्यबल के देवता स्वामि कार्तिकेय और आत्म ज्ञान के देवता गणेश अब तक ब्रह्मचारी है। इससे बल, विद्या और ब्रह्मचय का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। माता का बडा प्रभाव बालक पर पडता है। शास्त्रो म कहा गया है कि माता यदि क्रोधी स्वभाव की न हो और गर्भा वस्था में बालक को स्तन-पान न करावे तो बालक दीर्घायु और विशाल ज्ञान विज्ञानवाला होता है। माता पिता के समान आचार्य के चरित्र का प्रभाव भी विद्यार्थी पर पड़ता है। इस कारण आचाय का चरित्रवान् होना पहली आवश्यकता है।

आज की परिस्थिति को देखते हुए अब देश के ग्राम-ग्राम में बाल-मन्दिरो का आयोजन होना चाहिए जहाँ पर ३ वष की आयु से बालक रहें। वहाँ शान्त स्वभाववाली चरित्रवान् माताओ द्वारा उन बालको का पालन-पोषण हो। बाल्यकाल ही से विलासिता की ओर से उनका ध्यान पृथक् रक्खा जाय। इस प्रकार चरित्र वान् आचार्यो द्वारा जब उन्हें विद्या की प्राप्ति होगी तो वे यथाथ में देश और जाति को शान्ति देनवाले विद्वान् बनेंगे। भारतवर्ष की प्राचीन शिक्षा-पद्धति यह भी बताती है कि बाल्यकाल से विद्याध्ययन के साथ-साथ बालको को भगवान् के अस्तित्व और उनकी उपासना का भी ज्ञान कराया जाता था जिससे उनमें दैवीशक्ति का विकास हो सके। पाणिनि, कालिदास विक्रमादित्य आदि विद्वानो ने साथ-साथ दिव्य शक्तियो के विकास का भी प्रयत्न किया। जो देश ईश्वर पर विश्वास करता है वही पाप और द्रोह से मुक्त होकर परस्पर हित की भावना को अपनाता है। जिसका ईश्वर पर भरोसा नही, जो भगवान् को नही मानता, वह देश विश्वास के योग्य नही। उसे कभी शान्ति न मिलेगी। भारतवर्ष की विद्या भगवान् के अस्तित्व में विश्वास करने के कारण ही ससार में श्रेष्ठ मानी जाती है।
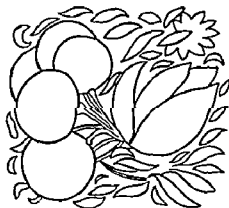
आचार्य हीरालाल खन्ना

लेखक, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी
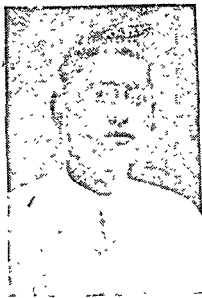
[इस लेख के लेखक आचार्य श्री लक्ष्मीधरजी वाजपेयी हिंदी के बहुत पुराने और तपस्वी सेवक हैं। हिंदी जगत मे आपका स्थान विशिष्ट हैं। श्री हीरालालजी खन्ना से आपका पैंतीस वर्ष पुराना परिचय है। इसी के आधार पर आपने अपने सस्मरण लिखे हैं। खन्नाजी पर यह लेख अपना विशेष महत्त्व रखता है। इतने वृद्ध साहित्य-सेवी का भी ममत्व खन्नाजी को प्राप्त है। आज यदि आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी जीवित होते तो वे भी कदाचित् ऐसा ही लिखते।]

बाबू हीरालाल खन्ना के लिए "आचार्य" पद मैं जान बूझकर और समझ-सोचकर लगा रहा हूँ—शिष्टाचारवश नही। आजकल एक प्रकार की परिपाटी सी चल पडी है कि किसी इटर कालेज का प्रिंसिपल हुआ, अथवा किसी छोटे मोटे विद्यालय का कोई पडित हुआ, तो उसके भक्त शिष्यगण उसको "आचार्य" लिखने लग जाते है। मै उस अर्थ में प्रिंसिपल खन्ना को आचार्य नही लिख रहा हूँ, बल्कि मै हृदय से खन्नाजी को आचार्य मानता हूँ, और इसीलिए उनकी पूजा करता हूँ।

खन्नाजी कोई बहुत बडे पडित नही है, और न वैसे विद्वान् है, अगर है, तो किसी एक दो विषय के हैं, पर जो कुछ खन्नाजी हैं, उस पाण्डित्य का—उस आचार्यत्व का खन्नाजी ने अपने समस्त जीवन मे क्रियात्मक उपयोग किया है—"यस्तु क्रियावान् पुरुष स विद्वान्"—जो क्रियावान् पुरुष है, वही सच्चा विद्वान् है—वह आचार्यो का आचार्य है—बाबू हीरालाल खन्ना सच्चे अर्थो में आचार्य और महान् पडित है।

आचार्य खन्ना को आज मै, प्रत्यक्ष रूप से, लगभग पैंतीस वर्ष से जानता हूँ और इनके क्रिया-कलाप को बारीकी से, दूर दूर से, देखता रहता हूँ। इनका जीवन, सार्वजनिक रूप से, लगभग आधी शताब्दी का, करीब करीब ४५-५० वर्ष का है। अपने जीवन की जो रूप रेखा इन्होने प्रारम्भ से बाँधी है, उसी पर आज भी कदम-ब-कदम चल रहे है। आपकी सार्वजनिक सेवा (शिक्षा सस्कार और शिक्षा प्रचार) बहुत लम्बी और विस्तृत है, जिसका ओर-छोर ढूढना बहुत मुश्किल है।

केवल अध्ययन और अध्यापन के ही रूप में नही, बल्कि सैकडो सस्थाओ में शिक्षा और सस्कार का प्राण फूकना आपके जीवन का व्रत रहा है, और आज तक अनवरत रूप से आप इसी व्रत का पालन कर रहे है। आचार्य खन्ना एक दृढव्रती पुरुष है। जिस चीज का व्रत (व्रत) आपने उठाया, उसमे चाहे किसी किस्म की विघ्न-बाधाएँ आई—चाहे कोई आपकी निन्दा करे या स्तुति—

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकज
ते सज्जन मम प्राणप्रिय, गुनमन्दिर सुखपुज

आचार्य खन्ना को तो अपना मिशन (असिधारा व्रत) प्यारा है, वही उनका असिधाराव्रत उनका भगवान् है, उसी के वे भक्त है उसी में उनको भगवान् दिखाई देता है। इसी सज्जनता के कारण खन्ना जी गुन-मन्दिर है सुख पुज है, और इसीलिए वे भगवान् को प्राणप्रिय है।

खन्नाजी इतने क्रियात्मक पुरुष प्रसिद्ध है कि जब मैं प्रयाग मे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की शिक्षा-विषयक कमेटियो में आपके साथ काम करता था, तो देखता था कि खन्नाजी भवन के फाटक के सामने, सडक पर, टाँगे पर अथवा किसी दोस्त की मोटर पर आये, तो इनका बिस्तरा अवश्य इनके साथ रखा हुआ है, सफर में शायद ही कही इनको बिस्तरा खोलने की नौबत आती हो। लम्बी सफर में, और कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी, आगरा तो इनके पैर के नीचे की जमीन है। इतने चचल, चपल और क्रियाशील किस वास्ते—सार्वजनिक शिक्षा, सस्कार और सेवा के लिए, जिसमें अपना कुछ भी निजत्व नही, सिर्फ अपने साथियो का भाव और सार्वजनीन भाव—जनता का हित।

आचार्य खन्ना इतने चतुर चाणक्य—अपन सार्वजनीन लोकहित साधन कार्य के लिए 'गदहे को भी बाप' कहने को तैयार! मनुष्य प्रकृति का इतना ऊँचा आपका अध्ययन है कि जो मनुष्य जिस तरह से माने, उसी तरह से उसको मनाओ और अपना उद्दिष्ट कार्य निकालो—'स्वकार्य साधयेत् धीमान् कार्यध्वसो हि मूर्खता'—तो क्या आचार्य खन्नाजी ने अपने निज के स्वार्थ-साधन के लिए यह सब चाणक्यनीति स्वीकार की थी? सो नही। खन्नाजी का हमेशा ध्यान रहा, और अब तक है कि उनकी सारी शक्तियाँ, चाहे वे किसी एक सस्था में शिक्षा और सस्कार के लिए रहे, और चाहे भिन्न भिन्न सस्थाओ में उनका आशिक भाग लगता रहे, पर वे सब हो उस सस्था के द्वारा सार्वजनीन हित मे।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में मैंने वर्षों आचार्य खन्ना को देखा—आपने हिन्दी विश्वविद्यालय की बडी समिति, उसकी परीक्षा समिति, और सग्रहालय विभाग में विशेषरूप से भाग लिया। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के उन्ही कामो में आपने ध्यान दिया, जो उनके उपर्युक्त जीवनव्रत से सम्बन्ध रखते थे। अन्यान्य समितियो मे घुसने की आपने कभी कोशिश नही की। जिन समितियो में आपने काम किया, उनमें भी अनासक्त और निर्लिप्त भाव से—यह कभी नही कि आपकी या आपके किसी गुटवाले की, कोई पुस्तक कोर्स म हो जाय। अगर हो जाय, तो हो जाय, आपका कोई आग्रह या पक्षपात नही। समितियो म मैंने खन्नाजी को देखा कि सदैव विचार-विभिन्नता मे सामजस्य स्थापित करते रहे। अपना कोई आग्रह या झूठी धमकी और धाक जमाकर बाजी मार ले जाना, कमेटीबाजी का एक तरीका होता है, अथवा अपना अपना निजी स्वार्थ साधने के लिए—जैसे कोर्स में किताब करवाना अथवा परीक्षक बनना। लोग शिक्षा कमेटी में गुटबन्दियाँ किया करते है, पर आचार्य खन्नाजी चाहे सरकारी शिक्षा विभाग की कमेटी में हो, और चाहे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की कमेटी में हो, कभी किसी प्रकार की गुटबन्दी में नही पडे। आपके विचारो से जिसको फायदा होता हो, उठा ले। हाँ, शर्त यह है कि कमेटी के कार्य और आपके शिक्षा-सस्कार व्रत को हानि न हो।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के संस्थापक और उसकी नीति के संचालक स्वनामधन्य (बाबू और अब राजर्षि) पुरुषोत्तमदासजी टंडन सम्मेलन के शिक्षा-संस्कार-विषयक कार्य में खन्नाजी को सदैव अपना दाहना हाथ मानते रहे। सन् १९१० के प्रथम सम्मेलन से लेकर लगभग सन् १९४०-४२ तक आचार्य खन्नाजी का, किसी न किसी रूप में, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से बराबर सम्बन्ध रहा। टंडनजी को शिक्षा-संस्कार-विषयक कार्यों और नीति-संचालन में भी आपकी बहुमूल्य सहायता और परामर्श प्राप्त होता रहा। इन पंक्तियों का लेखक भी सदैव इसका साक्षी है। यदि मैं भूलता नहीं तो आचार्य खन्नाजी सम्मेलन की विज्ञान-परिषद् के एक या दो बार सभापति भी हुए। यों ही जबरदस्ती लोगों ने बना दिया था। आपको उसकी कोई आकांक्षा नहीं।

संक्षिप्त संस्मरण

श्री डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय

[डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यक्ष है। उनका खन्नाजी का काफी पुराना परिचय है। कई कमेटियो में इन महानुभावो का साथ रहा है। खन्नाजी की प्रकृति के विषय में आप लिखते है—'प्रकृति भी बराबर एक रस रही है—हँसमुख मिठास भरी, उत्साहपूर्ण।' आगे लिखा है—'सभी समितियो में बोलने की कला में आप (खन्नाजी) पूर्ण निपुण है।'

संस्मरण के अंतिम वाक्य लेखक की हार्दिक शुभ कामना है।]

खन्नाजी से मेरा प्रथम परिचय १९१४ म हुआ था। मै तब इटरमीडियट में म्यार सेंटल कालेज म पढने प्रयाग आया था और हिन्दू बोर्डिंग हाउस मे रहता था। खन्नाजी किसी उच्च कक्षा के विद्यार्थी थे और हिन्दू बोर्डिंग हाउस में ही थे। सीनियर विद्यार्थी अपने जूनियर साथियो के प्रति व्यवहार की दृष्टि से प्राय तीन प्रकार के होते है—शान दिखलानेवाले, उपेक्षा करनेवाले, और सहानुभूति का भाव रखनेवाले। खन्नाजी तीसरी श्रेणी के सीनियर विद्यार्थियो में थ और फलस्वरूप हम सब जूनियर विद्यार्थी उन्हे बडे भाई की तरह मानते थे और हम लोगो का यह सबध समस्त जीवन चलता रहा।

खन्नाजी का रहन-सहन सादा था। कुर्ता और उसके ऊपर बद कालर का कोट जिसके बटन प्राय खुले रहते थ। एक खास ढग का बँधा सफेद साफा और बिना मोज का शू। इस रहन-सहन मे ३६ वर्षों में मैने कोई परिवर्तन नही देखा। उनकी प्रकृति भी बराबर एकरस रही है—हँसमुख, मिठासभरी, उत्साहपूर्ण। खन्नाजी स्वदेशी कपडे पहनते थे और एम० ए० की पढाई के साथ कुछ घटे किसी स्कूल में भी काम करते थ। उनके इस देश-प्रेम और स्वावलबन का भी हम जूनियर विद्यार्थियो पर गहरा प्रभाव पडा था—खन्नाजी के प्रति श्रद्धा की भावना हम सबके हृदयो में थी।

इसके उपरान्त विद्यार्थी जीवन के समाप्त होने पर हम दोनो का कार्यक्षेत्र भिन्न हो गया—खन्नाजी का सारा जीवन कानपुर में और मेरा जीवन प्रयाग में कटा। किन्तु प्रारभ में इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के अतरग और बहिरग भागो की सफलता के बहाने और फिर आगरा यूनीवर्सिटी, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी, इटरमीडियट बोर्ड, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा आदि अनेक सस्थाओ के साथ साथ सदस्य होने के कारण खन्नाजी से निरन्तर सपर्क बना रहा—वास्तव में यह सपर्क अधिक घनिष्ठ होता गया।

कमेटियो में अपने सहयोगियो के साथ मिल-जुलकर कार्य करने की असाधारण क्षमता मैंने खन्नाजी में पाई। मतभेद होने पर उसे दृढ़ता से प्रकट करना किन्तु उसके साथ कटुता को न आने देने की कला से खन्नाजी पूर्णतया अभिज्ञ है। कार्य करने की भी [illegible] में है और इसमें आज भी कोई कमी नही दिखलाई पडती। सैकडो ही [illegible] सदस्य [illegible] प्रत्येक में नियम से पहुँचना और उसके कार्य में पूरी दिलचस्पी लेने में [illegible]

हिन्दी का भी विशेष [illegible] को [illegible] के सपर्क में आप निरतर बने रहे। हि[illegible] रहे हैं।

सभा-समितियों में बोलने की कला में आप पूर्ण निपुण हैं। प्रभावशाली तथा तर्कपूर्ण ढंग से थोड़े शब्दों में अपने भावों को स्पष्टतया प्रकट करना आप अच्छी तरह जानते हैं। उपसमितियों में भी आपका विचार-विनिमय में प्रधान भाग रहता है। यों सामाजिक बातचीत में खन्नाजी के साथ हमेशा अच्छा समय कटता है, क्योंकि प्रत्येक विषय के संबंध में आपके पास कुछ न कुछ मौलिक विचार रहते हैं तथा उन्हें रोचक ढंग से रखना भी आप जानते हैं।

यह दुर्भाग्य है कि आपने देशवासियों की सेवा करने का जो मार्ग अपनाया, उसमें कोई स्थायी ठोस परिणाम निकलने की संभावना नहीं थी। आपका ध्यान ही कदाचित् उस ओर नहीं जा सका, क्योंकि समस्त जीवन आप इतने व्यस्त रहे कि अन्तर्दृष्टि के साथ सोचने और उसे कार्यरूप में परिणत करने का आपके पास अवकाश ही नहीं था। किन्तु इसके लिए अभी भी देर नहीं है क्योंकि खन्नाजी को वृद्ध कहना उनका अपमान करना होगा। वे किसी भी साधारण युवक से शरीर और मन दोनों ही में अधिक युवक हैं। इस बात में वे हमारे माननीय प्रधान मंत्री नेहरूजी की श्रेणी में रखे जानेवाले व्यक्ति हैं जो सदा युवा ही रहेंगे।

ईश्वर खन्नाजी को दीर्घायु करे जिससे कि वे अपनी प्रौढ़ अनुभूति के साथ शिक्षा के क्षेत्र और नवयुवकों की और भी अधिक सेवा और सहायता कर सकें।
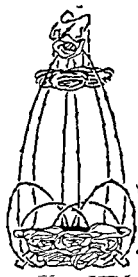
ईसा से पूर्व का भारतीय धातुविज्ञान

श्री० के० पी० चट्टोपाध्याय

[प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग के भूतपूर्व प्राध्यापक श्री के० पी० चट्टोपाध्याय ने प्रस्तुत लेख में बताया है कि भारत में बहुत प्राचीन समय में धातु-विज्ञान यथेष्ट विकास कर चुका था। ईसा से ५००० वर्ष पूर्व की मोहेंजोदरो और हरप्पा की सभ्यता—जिसे सिन्धु घाटी की भी सभ्यता कहते हैं—के अवशिष्ट चिह्नों के अन्तर्गत सोना, चाँदी, ताँबा आदि की वस्तुएँ प्रचुर परिमाण में पाई गई हैं। वेदों में 'हिरण्य' या सोने का सर्वत्र उल्लेख है। सम्कृत के 'ज्वलित' (चमकीला) शब्द से ही अँगरेजी gold की व्युत्पत्ति है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी धातुओं के विवरण, प्रकार और वर्णभेद, निष्कासन का विवरण, शोधन-प्रक्रिया आदि का विस्तार से वर्णन है। बाद के वैद्यक ग्रन्थों में तो पारा तथा अन्य धातुओं की भस्मों आदि का बड़ा ही विशद व वैज्ञानिक वर्णन है। श्री चट्टोपाध्यायजी का यह लेख धातु-विज्ञान पर प्रचुर ज्ञान व रुचि-सम्पन्न सामग्री प्रस्तुत करता है।]

यूरोप और अमेरिका के कई प्रदेशों से, विज्ञान में आज भारत अनेक अनिवार्य कारणों से पीछे पड़ गया है। पर प्राचीन समय में, जब अन्यत्र अज्ञानान्धकार छाया हुआ था, हमारी इस भूमि में आलोक परिव्याप्त था। यह हम लोग न समझें कि पश्चिम में ही विज्ञान का उद्‌भव हुआ। ऐसी ही भ्रान्त धारणा हम लोगों की भी उस समय थी, जब हम लोग स्कूल में पढ़ते थे, क्योंकि हम लोगों को विलायती लेख ही पढ़ने के लिए मिलते थे। उस समय आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय का ग्रन्थ प्रकाशित ही हुआ था, पर हम लोगों को उस ग्रन्थ के विषय में अविदित था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र की बात कोई जानता भी न था। फिर भी हम लोग गर्व ही का अनुभव करते थे कि भारत भगवत् ज्ञान से डूबा रहनेवाला देश है। वस्तु-विज्ञान का कोलाहल उसको कभी विचलित नहीं कर सका है। किसी कवि ने कहा है :—

> The East bowed low before the blast
> In patient deep disdain ;
> She let the legions thunder past
> Then plunged in thought again.

पर सत्य ही भारत आत्मिक ज्ञान के ऐसे उच्चासन पर प्रतिष्ठित था, और आज भी है, जिस तक कोई भी अन्य सभ्यता आज तक नहीं पहुँच सकी है। पर यह भी सत्य है कि वैज्ञानिक और व्यावहारिक ज्ञान में भी प्राचीन समय की कोई भी सभ्यता उसके समकक्ष नहीं थी। इसी देश में महर्षि कणाद के परमाणुवाद (Atomic Theories) ने खृष्टपूर्व की अनेक शताब्दियों पहले जन्म लिया था। दिल्ली में प्रतिष्ठित, खृष्टोत्तर चतुर्थ शताब्दी का लौहस्तम्भ, भारत के धातु ज्ञान के एक चमत्कारी निदर्शनस्वरूप, इस देश की विजय-घोषणा कर रहा है। इन सब बातों पर मुग्ध होकर पाश्चात्य पण्डितों ने लिखा है "Although the column has been exposed to the storm of 1700 years, not a particle of rust corrodes its smooth surface" धातु-विज्ञान के जगद्विख्यात विशेषज्ञ Hadfield ने लिखा है "It is one of the finest specimens of iron work produced until modern times." बड़े भारी रासायनिक Roscoe लिखते हैं "The dexterity exhibited by the Hindus in the manufacture of wrought iron, may be estimated from the fact of the

existence near Delhi of a wrought iron pillar belonging to the 4th century It is not an easy operation at the present day to forge such a mass with our longest rolls and steam hammers, how this could be effected by the crude hand labours of the Hindus, we are at a loss to understand".

बुद्धोत्तर युग में भारत मे विज्ञान की क्या अवस्था थी, उसका कुछ कुछ विवरण आचार्य राय के रासायनिक इतिहास, और कई एक पुस्तको में आप पायेंगे। इस निबन्ध मे अति प्राचीन युग से बुद्ध पूर्व युग तक भारत में धातुओ का कैसा ज्ञान था उसी का कुछ कुछ विवरण देने का प्रयास किया गया है। उस समय प्रचलित धातु शास्त्र विज्ञान का एकमात्र छोटा ही अश था, पर इसी से ही आपको मालूम हो जायगा कि भारत को विज्ञान म कैसा उच्चासन प्राप्त था।

खृष्ट पूर्व ५००० वर्ष

सिन्धु प्रदेश का मोहेंजोदारो और पजाब का हरप्पा खृ० पू० ५००० वर्ष पहले की सभ्यताओ के परिचायक हैं। वहाँ खुदाई से जो-जो वस्तुएँ निकली हैं, उनमें सोना, चाँदी और ताँवा आदि प्रचुर परिमाण में पाये गये हैं। सीसा, राँगा और ब्राज (Bronze) (जिसमे सैकडा मे ६ से १३ हिस्सा राँगा है) भी पाये गये हैं। ताँबा और ब्राज के अनेक प्रकार के पात्र और अस्तुरे मिले हैं। इन सब धातुओ की परीक्षा से निर्धारित किया गया है कि ये भारत की खानो से पाये गये थे।

अब वैदिक काल पर विचार किया जाय, जिसका समय तिलकजी खृ० पू० ५००० वर्ष समझते थे, और यूरोप के पण्डितो ने बहुत काट कूटकर, जिसका समय खृ० पू० २५०० वर्ष निर्धारित किया है। चारो ही वेदो में हिरण्य, या सोने का उल्लेख बहुत ही अधिक पाया जाता है। सस्कृत के 'ज्वलित (चमकीला) शब्द से (Gold) शब्द निकला है। यजुर्वेद में हिरण्य, लोहा, श्याम शीशा और त्रपु (gold, copper, iron, lead and tin) मिलते हैं। अयस पहले पहल धातुओ का एक साधारण नाम था, पश्चात् लोहे का विशेष नाम हुआ। इस अयस से eisen और iron शब्द बने हैं। लोहे का पहला नाम श्याम था, और ताँबा का, लाल रग के कारण लोहित या लोह था, बाद में लोहा कृष्णायस और ताँबा लोहितायस हुआ। वेद में लोहे के तीर, अकुश और पाश (जाल) का उल्लेख है और लोहे को किस तरह से कठिन किया जाता है, इसका वर्णन है। लोहा भूत प्रेतों से बचानेवाला समझा जाता था। सम्भवत यह धातु असुर या Assyrians से मिली थी, इसी लिए देव-कार्य में इसको अपवित्र गिना जाता है। ऋग्वेद मे निष्क या चाँदी की मुद्रा का प्रभूत उल्लेख है।

अब उपनिषद् काल को लिया जाय, जिसका समय पण्डितो ने खृ० पू० १०००–५०० वर्ष समझा है। छान्दोग्य उपनिषद् में सोने को जोडने के लिए सोहागा, शीसक के लिए राँगा और लोहे के लिए सीसे के व्यवहार का उल्लेख है। अनेक प्रकार की धातुओं और मिश्रधातुओं का उल्लेख मनुसहिता में अनेक स्थानो में पाया जाता है। रामायण और महाभारत मे धातुओं का बेशुमार उल्लेख है। रामायण में स्वर्ण की लका, महाभारत में बलरामजी का लौह हल, भीम की लौह-गदा, और भीम की लौहमूर्ति, जो धृतराष्ट्र ने चूर चूर कर दी थी, सभी को भली भाँति विदित है। इस समय लोहे का नाम पूरी तरह से अयग्र हो गया था, lodestone, अयस्कान्त मणि या लोहे का प्रभु, कहा जाता था।

चाणक्य या कुटिलबुद्धि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में, जो खृ० पू० ४०० वर्ष की पुस्तक समझी जाती है, राजा और प्रजा के सम्बन्ध में अनेक बातें है। यह पुस्तक ऐसी है कि सबको इसे पढना चाहिए। स्थान सकोच के कारण हम अधिक उदाहरण तो नही दे सकते, केवल कुछ बातो की ही चर्चा उक्त पुस्तक के सम्बन्ध में की जा सकती है। धातुओ के पत्थर का जो खान में पाया जाता है और जिससे धातु निकाली जाती है, विवरण, प्रकार और वर्णभेद, धातु निष्कासन का विवरण, और धातु किस प्रक्रिया से निकाली जाती है और शोधित की जाती है इसका विवरण, और धातुओ की परीक्षा—यह सब, जो उसमें दिया हुआ है अगर आप पढें, तो मालूम होगा कि आप आज का कोई रसायनशास्त्र पढ रहे हैं।

फौलादी लोहा steel बनाने में भारत पूर्णतया सिद्धहस्त था। कहा गया है कि दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने लोहे में ताव चढ़ाने की (tempering) पद्धति निकाली थी। दैत्य यानी असुर—Assyrians कौन थे? यह वही मोहेजोदारो निवासी थे जिनकी सन्तानें आज Dravidians है। सुनिए शुक्राचार्य शुक्रनीति में क्या कहते है: "A sword previously treated with a coat of a paste of oil of latex of calotropis zigantia, and ashes of burnt sheep horns, gets a temper, so strong that it does not break even though struck against stones. Instruments tempered by plunging them in blood or in solutions of the ash of plantains and butter-milk, do not break or bend or blunt their edges against stone". यह modern process of surface hardening or nitriding ही है या नही?

पारा (पारद) वेदादि शास्त्रो में नही मिलता, पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख है। यह रसायन का मुख्य रस समझा जाता है। बौद्ध और तान्त्रिक युग में पारद का व्यवहार बहुत ही अधिक प्रचलित था। यह समझा जाता था कि protoplasm या प्राथमिक कोष, जैसा सब प्रकार के जन्तुओ के शरीर का बीज है, पारद भी वैसा ही सब प्रकार के धातु-शरीर का बीज है, और भगवान् शिवजी इस बीज के जन्मदाता है। यह कहानी, पारद के तरल और बहुधातुओ को द्रावक होने के कारण, और अनेक धातुएँ इसकी खान में पाई जाती है इस कारण से, प्रचलित हुई होगी। यूरोप के प्राचीन रासायनिक (alchemists) पारद, गन्धक और नमक से सब पदार्थ बने है, ऐसा कहते थे। पारद से तीव्र विष भी बनते है, जैसे रस कर्पूर (corrosive sublimate) और अमृत भी बनते है, जैसे मकरध्वज।

यहाँ हमने केवल ईसा से पूर्व के समय का वर्णन दिया, और वह भी बहुत ही सामान्य रूप में है। पर इसी से ही आपको मालूम हो जायगा कि प्राचीन काल में धातु-विज्ञान की क्या अवस्था भारतवर्ष में थी।

हम अपने परम मित्र हिन्दी भाषा हितैषी, देश-प्रेमी, स्वनामधन्य श्री हीरालालजी खन्ना के दीर्घायु की कामना करते है। उन्ही के स्मरणार्थ अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए हमने यहाँ देश के प्राचीन गौरव की दो-एक बातों की सहर्ष चर्चा की है।

आशीष

श्री रामनारायण मिश्र

[श्री पण्डित रामनारायण मिश्र इस प्रांत के इन-गिने शिक्षाशास्त्रियों में हैं। उनकी कार्यशैली अनेकमुखी है। श्री हीरालालजी खन्ना तथा मिश्रजी में कई प्रकार से साम्य स्थिर किया जा सकता है। श्री रामनारायणजी पी० ई० सी० से अवकाश ग्रहण कर चुके हैं और अपना सारा समय हिंदी भाषा की उन्नति और शिक्षा के प्रसार में लगाते हैं। समय के अभाव से उन्होंने अपने विचार अत्यंत संक्षेप रूप में नीचे दिये हैं।]

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्री हीरालालजी खन्ना को कानपुर सनातन धर्म कालेज से बिदाई के समय एक अभिनन्दन-ग्रन्थ दिया जा रहा है। श्रीयुत खन्नाजी ने शिक्षा-क्षेत्र में सचमुच बड़ी ही सेवा की है। अखिल भारतवर्षीय, प्रान्तीय, सरकारी और गैर-सरकारी सभी शिक्षा-संस्थाओं से उनका सम्बन्ध रहा है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और काशी-नागरी प्रचारिणी सभा के वे सदस्य रहे हैं। हिन्दी के समर्थन में वे सदा आगे रहे हैं। उनके विद्यार्थियों को मैंने उनका अनन्य भक्त पाया है। अध्यापन शक्ति के साथ साथ उनकी प्रवन्ध शक्ति भी अद्भुत है।

प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा तक का उन्हें अनुभव है इसलिए मुझे विश्वास है कि उनके अवकाश ग्रहण कर लेने पर भी जनता उनके अनुभव से फायदा उठाती रहेगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे दीर्घजीवी हों।

जीवन की उत्पत्ति

श्री श्रीचरन वर्मा

[इस सुन्दर लेख के लेखक श्री श्रीचरण वर्मा प्रयाग विश्वविद्यालय के जतुशास्त्र विभाग के उपप्राध्यापक हैं। आपने जिस विषय पर लिखा है उसका आपको अधिकृत ज्ञान है। लेख साधारण व्यक्ति को सामने रखकर लिखा गया है। इसीलिए वह सर्वसुबोध और सरल है परतु उससे लेखक के विषय-ज्ञान के गहरेपन का भी परिचय मिलता है। इस लेख के पढनेवाले को बहुत सी चमत्कारिक और कुतूहलपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं। प्रकृति के नाना प्रकार के रहस्य सामने आ जाते हैं।]

हजारों वर्षो से लोग जीवन के विषय मे वैसे ही प्रश्न करते आये है जैसे आप स्वय आज पूछ सकते है। लोग सूर्य और चन्द्रमा की ओर आश्चर्य से देखते और विचार करते थे कि वह किस पदार्थ के बने है। उन्हें यह जानने की इच्छा थी कि बिजली और वज्र क्या है ? वे यह भी जानने को उत्सुक थे कि इस भूमि पर जीवन सर्वप्रथम कैसे आरम्भ हुआ और किस प्रकार नये प्राणी उत्पन्न होते हैं। इनको यह भी जानने की इच्छा थी कि बच्चों का जन्म कैसे होता है और जन्म से पूर्व उनकी वृद्धि कैसे होती है। इनके अतिरिक्त उनको और भी अनेको बातो के विषय में आश्चर्य था। ये प्रश्न आज भी वैसे ही मनोरजक है जैसे बहुत समय पहले थे, यद्यपि इनमें से बहुतो के उत्तर अब हम जान गये है। परन्तु फिर भी प्रकृति और जीवन के कुछ रहस्य ऐसे है जिन्हें सैकडों वर्षो के अध्ययन और खोज-द्वारा उपार्जित ज्ञान के होते हुए भी हम आज तक समझने मे असमर्थ है। इन प्रश्नों मे से एक प्रश्न यह है कि जीव सबसे पहले कैसे बना ? सृष्टि की यह बहुत बडी पहेली है, जिसे हमारे बड़े से बड़े वैज्ञानिक भी अभी तक हल नही कर पाये है। हमारे पास जीवन के प्रारम्भ का कोई प्रमाण नही है। अमरीका के रोचेस्टर विश्वविद्यालय के ग्यारह सदस्यो ने अपनी पुस्तक 'The Orientation in Science' में जिसका प्रकाशन १९३८ ई० में हुआ था यह राय दी है "निर्जीव पदार्थ से सजीव का विकास कैसे हुआ इसको हम तब ही जान सकेंगे और कोई सिद्धान्त रच सकेंगे जब उन विधियों और क्रियाओ का अध्ययन करें जो वर्तमान काल में जड वस्तुओ मे हो रही है और विचार करें कि इस विषय पर उनका क्या गौरव हो सकता है।"

जीवधारियों की उत्पत्ति के विषय में आरम्भिक विश्वास—आइए अब देखें कि मानव-मस्तिष्क इस बडे भेद को सुलझाने के पीछे कैसे पड़ा रहा। लगभग चार या पाच हजार वर्ष पहले हमारे पूर्वज अनाज उगाना और कुछ पशुओं को पालना सीख गये थे। आपकी भाँति प्राचीन मनुष्यों ने यह भी देखा था कि वर्षाऋतु के आगमन के साथ-साथ नाना प्रकार के असख्य कीडे आ पहुँचते है और भरे नगरों में भी प्राय: रात्रि के समय लोगों का प्रकाश के निकट कार्य करना कठिन कर देते है। उन्होंने यह भी देखा कि चरागाह, मैदान, बाग और अन्य बजर भूमि जो गर्मियो से सूखी पडी थी दो-एक अच्छी वर्षा के पश्चात् एकाएक हरियाली से छा जाती है। तब वे सोचने लगे कि ये असख्य जन्तु और पौधे एकदम कैसे और कहाँ से उत्पन्न हो जाते है ? ये पालतू

पशुओ की भाँति माताआ से उत्पन्न होते या बोये हुए पौधे की भाँति बीजा से उगते नही दिखाई पडते। केवल इतना ही नही, बहुत से प्रारम्भिक अनुसन्धानकर्त्ताओ ने यह भी देखा कि वसत ऋतु में तालाबो और झीलो का जल भाँति-भाँति के जल-जन्तुओ और तलहटी की कीचड भिन्न-भिन्न प्रकार के कीडा से भर जाती है। जब कि कुछ मास पूर्व शीत ऋतु म इनकी उपस्थिति का कोई चिह्न न था। उन्होने सडे-गले पदार्था मे कृमि भी बनते देखे थे। ये अन्वेषण उनके विचार के विषय बन गये।

यदि वर्षा ऋतु के प्रारम्भ मे गीली कीचड में मेढक के छोटे-छोटे सैकडा बच्चो को एकाएक उछलते-कूदते देखकर कोई मनुष्य दो हजार वर्ष या और पहले इस परिणाम पर पहुँचा कि उनकी उत्पत्ति कीचड से हुई, तो इसमे आश्चर्य की कौन सी बात है? दूसरो ने इसको स्वीकार किया। यूनान का प्रसिद्ध प्रकृतिवादी **अरस्तू** भी इन्ही मे से था। वास्तव में ऐसा ही मालूम होता था और कई शताब्दियों तक लोगो का यही विश्वास रहा। जब वे लोग वृक्षो पर कीडो को पत्ते खाते देखते थे तब सोचते थे कि उनका जन्म उन्ही पत्तियो से हुआ है। व यह भी समझते थे कि मक्खियाँ मवेशिया के शरीर से जन्म लेती है और केंचुए जैसे कृमि पशुआ और मनुष्यो के शरीर के अन्दर से पैदा होते है। इन प्राचीन अनुसन्धानकर्त्ताओ ने यह मान लिया था कि बहुत से छोटे जीवो का जन्म निर्जीव पदार्थ से होता है, दूसरे शब्दों में उनका विश्वास था कि जीवधारियो का प्राकृतिक उदय स्वय-जनन (एकाएक उत्पत्ति) द्वारा हुआ।

अनेक्सीमिनोज नामक एक यूनानी तत्त्वज्ञानी ने ईसा के लगभग ६०० वर्ष पूर्व लिखा था, "सूर्य की गर्मी से भूमि और जल का सम्मिश्रण पौधो, पशुआ और मनुष्यो मे बदल जाता है।" उस समय वह और ऐसे बहुत से दूसरे विद्वान् विश्वास करते थे कि जीवन की आरम्भ की समस्या इतनी ही सरल है। लेकिन वे लोग उन बातो मे अनभिज्ञ थे जो उसके बाद खोजी गईं। उस समय सूक्ष्मदर्शक यन्त्र का आविष्कार नही हुआ था। इसलिए उन छोटे-छोटे कीटाणुओं का, जिनसे जीवधारिया का प्रारम्भक निर्माण हुआ था, और जिनके विषय में सोचा था कि वे अपने आप भिन्न भिन्न वस्तुआ म पैदा हो जाते है पता न था। बहुत वर्षो के अध्ययन और अनुभव के पश्चात् वैज्ञानिक लोग इस निश्चय पर पहुँचे कि 'जीवन का जन्म केवल जीवन ही से सम्भव है" और निर्जीव से सजीव की उत्पत्ति नही हो सकती।

रेडी की बडी खोज—लगभग सत्रहवी शताब्दी के मध्य तक लोगा का यह विश्वास रहा कि नीचे दर्जे के प्राणी स्वय उत्पन्न हो जाते है। सर्वप्रथम इटली के एक विज्ञानवत्ता ने इस बात के अनुसन्धान करने का निश्चय किया कि छोटे-छोटे कृमि और सूडी जो सडे गले मास म दिखाई पडते है क्या वास्तव म स्वय पैदा हो जाते है। रेडी के दिमाग की रुझान सचमुच वैज्ञानिक थी और वह किसी बात को बिना प्रमाण के नही मानता था। इसलिए उसने मास के दो एक टुकडे सडने दिये और ध्यान के साथ उनकी रखवाली की। शीघ्र ही उनके ऊपर मक्खियाँ भिनभिनाती और बढती हुई दिखाई पडी, तथा उसे सन्देह हुआ कि क्या मास पर कृमि दिखाई पडने मे मक्खिया का कोई हाथ है। इसकी उसने परीक्षा की। ताजे गोश्त के टुकडे कई काच के चौडे मुँहवाले बर्त्तनो में रख दिये। कुछ के मुंह कागज से ढक दिये और कुछ के खुले रहने दिये। कृमि केवल उन बर्त्तना में दिखलाई पडे जिनके मुँह खुले थे। तब उसने ढके हुए बर्त्तना म से एक का कागज हटा दिया और उसको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दो-चार दिनो म ही उसमें कृमि आ गये। रेडी को यह जान पडा कि मास के कृमि के साथ मक्खिया का कुछ न कुछ सबध अवश्य है। उसने सोचा कि कदाचित् मक्खिया ही ने मास पर अडे दिये हो और उन्ही अडा से कृमि निकले हो।

रेडी ने अपने प्रयोगो को दुहराया पर इस वार वर्त्तनो का मुँह कागज के स्थान पर तार की जाली से वन्द कर दिया जिससे सडे मास की महक वर्त्तन के वाहर निकल सके किन्तु मक्खी उसके भीतर एक भी न पहुँच सके। उसने देखा कि मास की महक से आकंपित होकर मक्खियों के झुंड ने तार की जाली के ऊपर अडे दिये और उन अडो से उसी प्रकार के कृमियों का जन्म हुआ जिस प्रकार के कृमि पहले प्रयोग मे दिखाई पडे थे। इससे रेडी ने समझा कि सडे मास में अपने आप कृमि की उत्पत्ति नही हुई थी वरन् मक्खियों के अडो ही से कृमि उत्पन्न हुए थ। उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि इस प्रकार से उत्पन्न हुए कृमि वाद में वदलकर मक्खियाँ हो गइ। वास्तव में व कृमि न थ। वे मक्खिया के अडा से निकले हुए इल्ले थे। इस प्रयोग से दूसरो के लिए माग खुल गय और अनेक खोजें हुईं। कई दूसरे जानवरो की उत्पत्ति के रहस्य भी खुले। मेढक की जीवन की कहानी का पूर्ण ज्ञान इसके वाद ही हुआ। आजकल के वहुत से विद्यार्थी इस मनोरजक जीवन-कहानी से भलीभाँति परिचित हैं। धीरे-धीरे, नये जीवो की उत्पत्ति का ज्ञान जैसे-जैसे वढता गया, लोगों का विश्वास जीवन की एकाएक उत्पत्ति से वैसे वैसे हटता गया।

सूक्ष्मदर्शक यत्र का आविष्कार —रेडी की खोज के छपने के सात वर्ष वाद हालैंड निवासी ल्यूवेनहूक ने एक यत्र वनाया जिसके वर्त्तमान सुधरे हुए रूप से कोई भी छोटी वस्तु अपनी निजी वडाई से चार सौ या पाँच सौ गुना वडी दिखाई देती है। इस अस्त्र को हम अणुवीक्ष या सूक्ष्मदर्शक यत्र कहते हैं। जिन वस्तुओं को हम आँख से नही देख सकते उनको इस यत्र द्वारा सरलता से देख लेते हैं। जिस पदार्थ को देखना हो उसको पहले एक स्वच्छ काँच के टुकडे या स्लाइड पर रक्खा जाता है। तव वह स्लाइड यत्र के मच पर रक्खा जाता है। नली के भीतर वे काँच होते हैं जिनसे वस्तु वडी दिखाई देती है। उस पदार्थ पर नीचे के दर्पण द्वारा प्रकाश डालकर ऊपर से नली में देखने पर वह पदार्थ वडे दिखाई देते हैं।

इस विचित्र यत्र की सहायता से अनेक नवीन वस्तुएँ देखी गईं। सूक्ष्मदर्शक यत्र की मदद से ल्यूवेनहूक और दूसरे जीवविज्ञान वेत्ताओ ने शाकाणुओं और रोगाणुओं की एक नई दुनिया खोज निकाली। पहली वस्तु जो सूक्ष्मदर्शक यत्र के नीचे देखी गई, पानी थी। एक या दो बूँद स्वच्छ जल जव स्लाइड पर रक्खा गया तो कोई जीव नही दिखाई पडा, लेकिन कुछ दिन रक्खे हुए पानी के बूँद जव इस यत्र से देखे गए तव तमाम छोटे-छोटे जीव उसमें दिखाई पडे। केवल अणुवीक्ष की मदद से दिखाई पडने के कारण इनका नाम अणु जीव रक्खा गया। तालावों के रुके हुए जल को जव देखा गया तो उसमें सैकडा नन्हें नन्हें जीव और पौधे सुन्दरता से उतराते हुए दृष्टिगोचर हुए।

आप स्वय किसी अणुवीक्ष द्वारा इसका अनुभव कर सकते हैं। पहले नल के ताजे पानी की दो-एक बूँद देखिए। उसमें कोई जीव न दिखाई देगा। फिर किसी ताल या गड्ढे में कुछ दिन रुके हुए पानी की दो-एक बूँद देखिए। अवश्य कुछ न कुछ विचित्र जीव चलते-फिरते आपको नजर पडेंगे। इससे भी अच्छा हो कि एक प्याले पानी में थोडे फूल, सूखे पत्ते या सूखी घास डाल दीजिए और प्याले को पतले कपडे से ढक दीजिए चार छ दिन ऐसा ही रक्खे रहने के वाद जो पानी के ऊपर झिल्ली सी जम जाये उसके निकट से एक बूँद जल की परीक्षा की जाये, तो अनेको सूक्ष्म अणु जीव, द्रमाणु, सेवाल, एक काशीया, व वहुकोशी देखकर आप चकित हो जायेंगे।

जीव विज्ञान के विद्वानो का विचार था कि कई दिन के वासी पानी में और घास-पात तथा सडी हुई पत्तियों से परिपूर्ण जल में अणुवीक्ष से जो छोटे-छोटे प्राणी देखे जाते हैं उनका जन्म अपने आप हुआ। इससे एकाएक उत्पत्ति (स्वय-जनन) में फिर लोगो का विश्वास होने लगा किन्तु अव यह विश्वास केवल उन्हीं

सूक्ष्म जीवाणुओ तक सीमित रहा। कुछ समय उपरान्त यह विचार भी ठीक ज्ञात नही हुआ अत लोगो ने फिर इसे भी छोड दिया।

स्पेलेनजानी और पासच्योर के प्रयोग—अठारहवी शताब्दी के समाप्त होने के पहले, योरप के एक वैज्ञानिक ने जिसका नाम स्पेलेनजानी था कई दिन के बासी पानी से एक बोतल भरी और फिर उसका मुंह कसकर बन्द कर दिया। बाद जल सहित बोतल को उसने इस विचार से कि बोतल के ऊपर व भीतर के जीव मर जायें खूब उबाल डाला और उस बोतल को कई माह तक वैसे ही बन्द रहने दिया। तत्पश्चात् स्पेलेनजानो ने सूक्ष्मदर्शक यत्र से कई बार बोतल के जल की अच्छी तरह परीक्षा की, परन्तु उसे अपनी आशा के अनुसार एक भी अणु जीव देखने में नही आया। इससे स्पेलेन-जानी इस परिणाम पर पहुँचा कि दिनारे पानी के कारण ही उसमें जीव उत्पन्न नही होते। पानी में केवल वास करते हैं, उसमें उत्पन्न नही होते। अत उनकी उत्पत्ति कैसे होती है ? यह बात स्पेलेन-जानी के भी समक्ष में नही आई और उसके पीछे भी कुछ काल तक अणु जीवो की उत्पत्ति का कारण अज्ञात ही बना रहा।

जीव-विज्ञान के एक और प्रसिद्ध विद्वान् लूई पासच्योर न जो फ्रास देश का रहनेवाला था अधिक प्रयोगो द्वारा स्वय जनन के इस प्रश्न को सदैव के लिए तय कर दिया। उसने बहुत-सी बोतले और काँच के बर्त्तन लिए और कई मिनट तक इस अभिप्राय से उबलते हुए पानी में डाल रक्खे जिससे सब अणु जीव, अडे तथा वे बच्चे, जो उसमें हो मर जायें। तत्पश्चात् हर गर्म ही गर्म बर्त्तन में मास के टुकडे तथा सड जाने योग्य अन्य चीजें डाल दी और उनका मुँह ऐसे बन्द कर दिया कि बाहर की हवा बिलकुल भीतर न जा सके। कई दिनो तक न तो चीजें सडी और न उनमें किसी प्रकार के जीव दिखाई पडे। इसके बाद उसी प्रकार से गर्म की हुई बोतलो में साफ पानी भरा गया। महीनो बीतने पर भी एक भी अणु या द्रमाणु का पता उन बोतलो के पानी में न लगा।

पासच्योर ने अपने प्रयोगो से यह सिद्ध कर दिया कि जब घास और पत्तियाँ पानी में सोखी पडी रहती हैं या जब गोश्त अथवा फल सडते है तब वे जीव जो उनम देखे जाते हैं अथवा जो फफूदी उन पर लगती हैं वे आप ही, अपने से, पैदा नही हो जाती। उनका जन्म उन नन्हे कणो से जिन्हे स्पोर कहा जाता है या उन अडो से ही होता है जो वायु के सहारे उन बोतला या बर्त्तनो में जा पहुँचते हैं। भली भाँति खौलने पर जो स्पोर या सूक्ष्म अण्डे उन बोतलो में थे मर गये, और बोतलें कसकर बन्द रखने से दूसरे भी हवा द्वारा बाहर से न पहुँच सके, इसलिए वे वस्तुएँ जो उनमे रक्खी गई समय बीतने पर भी न तो सडी और न उनमें जीवो का कोई चिह्न ही दिखाई दिया। इन्ही प्रयोगो से जीवाणुघात (Sterilisation) और पासच्योराईजेशन (Pasteurisation) के ढग स्थापित हो गये जिनका प्रयोग आजकल सुगमतापूर्वक औषधियो और व्यापार में, फल और दूध की सुरक्षा में, शर्बत और फलो के तत्त्व-निर्माण में तथा घाव को देखने या चीरा लगाने से पहले अस्त्रो और मरहमपट्टी के सामान को रोगाणुओ से मुक्त बनाने में किया जाता है।

इस प्रकार अब यह निश्चय हो गया है कि जीवन की उत्पत्ति केवल जीवन ही से होती है। निर्जीव पदार्थों से सजीव की उत्पत्ति नही हो सकती। जीव कीटाणु की उत्पत्ति के लिए चाहे वह कितना ही छोटा क्यो न हो एक जीवित पौधा, पशु, स्पोर, बीज या अण्डे का होना आवश्यक है। केवल इन्ही से नये जीवो की उत्पत्ति हो सकती है। अधिकाश जीवधारी पौधे और पशु जीवन भर निर्जीव

वस्तुओं को ही खाकर, अपना जीवन स्थिर रखते हैं। उन्हीं से उनकी वृद्धि होती है और सन्तान उत्पन्न हो उनका वंश चलता है। मृत्यु व क्षय होने पर प्रत्येक जीवित पदार्थ निर्जीव पदार्थ में बदल जाता है। किसी ने सच कहा है कि 'तू धूल है और धूल ही में फिर मिल जाता है।"

जीवन की सर्वप्रथम उत्पत्ति—अब यह प्रश्न उठता है कि जीवन के सर्वप्रथम रूप और उनके बीज या स्पोर की पहले-पहल उत्पत्ति कैसे हुई? भूगर्भ विद्या हमको सिखाती है कि एक समय पृथ्वी का गोला इतना गर्म था कि जीवन मूल या कोई जीवित पदार्थ उस पर नहीं रह सकता था। एच० जी० वेल्स ने अपनी पुस्तक 'पृथ्वी का संक्षिप्त इतिहास' में लिखा है कि पृथ्वी पर कुछ समय तक जीव का कहीं नाम न था, समुद्र जीवविहीन थे और चट्टान उजाड़ पड़ी थीं।

कुछ विचारक यह मानते हैं कि इस पृथ्वी पर जीवन निद्रित अवस्था में किसी तारे या ग्रह से टूटे हुए टुकडे अथवा ब्रह्माण्ड की धूल द्वारा आया। तारा या ग्रहों से टूटे हुए पत्थर बहुधा हमारी पृथ्वी पर गिरते देखे गये हैं। किन्तु जीवन का इस प्रकार आना बिलकुल असम्भव प्रतीत होता है। टूटे हुए ग्रहों के टुकडे गिरते हुए सितारे या ब्रह्माण्ड की धूल, आकाश में ऐसी तीव्रगति से यात्रा करते हैं कि जब वे उस वायुमंडल में से निकलते हैं जो पृथ्वी को घेरे है तो गर्म होकर लाल हो जाते हैं। इसलिए यह असम्भव है कि कोई स्पोर, जीवाणु या जीव इतनी लम्बी यात्रा और भीषण गर्मी को सहन करके हमारे गृह में निद्रित अवस्था में पहुँच सका हो। यदि यह भी मान लिया जाये कि ऐसा होना सम्भव है, तो जीव की प्रथम उत्पत्ति की समस्या हल नहीं होती वरन् एक स्थान से दूसरे में चली जाती है। प्रश्न रह जाता है कि उस ग्रह या तारे में पहले-पहल जीव कैसे बना।

आजकल के जीव-विज्ञानवेत्ता इससे सहमत हैं कि प्रथम जीवित पदार्थ या जीवन मूल की उत्पत्ति जड पदार्थों के मेल से हमारी पृथ्वी पर उस समय हुई जब वह अपनी बाल्यावस्था में थी। जब ये घटनाएँ हुई होंगी उस समय पृथ्वी की दशा अब से बिलकुल भिन्न थी। यही कारण है कि यह घटना अब देखने में नहीं आती। इसको स्पष्टरूप से सन् १९३१ में एच० जी० वेल्स और उनके सहयोगी लेखकों ने अपनी पुस्तक "जीवन का विज्ञान' में इस प्रकार प्रकट किया है, "यह बहुत कुछ सम्भव है कि जब पृथ्वी ठंडी होती जा रही थी उस समय एक बार गर्म समुद्रों की परिस्थिति ऐसी हो गई थी जो फिर कभी नहीं हुई। यह परिस्थिति तापक्रम में, वायु के दबाव में, पानी में, घुले नमकों में, और जलों के ऊपर बहनेवाली पवन के वायव्या में अपने से पूर्व अथवा आनेवाली परिस्थितियों से भिन्न थी। उस समय पृथ्वी पर वे सभी परिस्थितियाँ उपस्थित थीं जिन्हें रसायनज्ञ अपनी घरियाओं में फिर से पैदा करने की चेष्टा करते थे। जिस प्रकार इससे पहली और भिन्न परिस्थितियों में पृथ्वी पर चट्टान, समुद्र और बादल बने, उसी प्रकार उचित समय आने पर विश्व की प्रयोगशाला में ऐसा तूफान उठा जिसमें जीवन पदार्थ का प्रादुर्भाव हो गया।'

यह प्रमाणित हो चुका है कि पहले पृथ्वी पिघली हुई दशा में थी और वह अपनी वर्तमान दशा में करोडों वर्ष पश्चात् धीरे-धीरे ठंडी होकर पहुँची। पृथ्वी का ताप अब भी घटता जा रहा है। सम्भव है कि आगे भी ऐसा ही होता रहे और एक समय ऐसा आ जाय कि ठंड के कारण पृथ्वी पर जीवन का बना रहना अति असम्भव हो जाय। कदाचित् प्रलय इसी प्रकार हो।

जीवन का पहला घर समुद्र—यह ध्यान रखते हुए कि जीवनमूल न अधिक ताप सहन कर

सकता है और न अधिक शीत, हम कह सकते हैं कि पृथ्वी के इतिहास में प्रथम जीव की उत्पत्ति अवश्य ठीक उसी समय हुई होगी जब पृथ्वी का तापक्रम उसके लिए उचित था।

भौतिक-विज्ञान-ज्ञाता हमको यह बतलाते हैं कि गर्म सितारो के वायुमडल में उद्जन अधिकता से पाया जाता है। जब वे ठण्डे होने लगते हैं, तब शुद्ध कोयला या कार्बन भी बडी मात्रा में मिलने लगता है और ओषजन भी उनमें विद्यमान रहता है। ऐसा ही पृथ्वी के साथ अवश्य हुआ होगा। जब पृथ्वी ने अपनी गर्म अवस्था से ठडा होना आरम्भ किया होगा तो यही वायव्य अधिकता से मौजूद रहे होगे। ज्यो-ज्यो वह और ठडी पडती गई उसका ऊपरी भाग जमकर ठोस पर्त सा हो गया। इस प्रकार जो कडी भूमि बनी उस पर पानी की भाप के घने और घनघोर बादल छाये और उनमें से कुछ पानी की बूंदे बनकर मूसलाधार वर्षा के रूप मे बरस पडे। सहस्रो वर्षों की भारी वर्षा और उसी के साथ-साथ कदाचित् भीषण भूकप और ज्वालामुखी पर्वतो के फटने से पृथ्वी के ऊपर जगह-जगह पानी भर गया और महासागर, सागर, झील अथवा नदी बने तथा धरातल उलट-पलट कर नीचे ऊँचे पहाड के रूप मे बदल गया। इतना काल व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक पृथ्वी का ठोस पर्त काफी मोटा नही हुआ। बहुधा उसकी उलट-पलट या उभार भूकम्प के रूप मे हमको ज्ञात होती है।

इस प्रकार जो जल-समूह बने उन्होने वायुमडल से कार्बन-द्व्योषिद्, और ओषजन काफी मात्रा में सोखे होगे और पृथ्वी से कुछ मात्रा में नौसादर और अन्य लवण भी लिये होगे। उस समय पृथ्वी का धरातल अवश्य ही गर्म और नम रहा होगा और तापक्रम भी अधिक घटता-बढता न होगा। चारो ओर सहायक अवस्था होने हुए अधिकता से उपस्थित लवणो और वायव्यो को कार्बन से मिलकर तमाम प्रकार के ऐन्द्रिक यौगिक बनने में कोई बाधा न थी। इन यौगिको में से कुछ तो टिकाऊ थे और कुछ नही। कुछ ही वर्ष हुए जब लिवरपूल के प्रोफेसर बली ने दिखाया था कि प्रकाश के प्रभाव से पानी, कार्बन, द्व्योषिद्, वायु और नौसादर जैसे सरल पदार्थो के मिश्रण से चीनी और अन्य पदार्थ थोडी मात्रा में बनाये जा सकते हैं। ऐसे रासायनिक रूपान्तरो में विशेषकर प्रकाश की अति बैंजनी किरणें Ultra-Violet rays ही क्रियाशील होती है। आजकल ऐसी किरणें वायुमडल के ओषजन में ही रुक जाती हैं। किन्तु उस प्राचीन काल के वायुमडल में ओषजन अवश्य ही कम था इस-लिए बहुत-सी किरणें, पुराने सागरो मे पहुँच कर उन पर अपना प्रभाव डालती थी और उन सागरो का जल गर्म पतले रसे के समान हो गया था।

इन पहले यौगिको के विच्छेद और योग से और भी जटिल ऐन्द्रिक यौगिक बने। अकस्मात् एक ऐसा समय आया जब आवश्यक तत्त्व ऐसे उचित अनुपात में उपस्थित हो गये कि उनसे वह पदार्थ बन गया जिसमें जीवन के लक्षण थे। यह अवश्य पानी की ऊपरी तहा मे हुआ होगा और पानी की उस समय कोई कमी न थी। यही कारण है कि सर्वत्र सागर ही जीवो का प्रथम गृह माना जाता है।

हाल की दो खोजें—पिछले कुछ वर्षो में दो खोजें हुई है जो इस समस्या पर अधिक प्रकाश डालती है। इनमें से एक वह नन्हे-नन्हे कण है जो रोगाणुओ को नष्ट कर देते है और जिन्हे **प्रमाणुभक्ष** (Bacteriaphage) कहा जाता है। *द्रुमाणुभक्ष कण वास्तव मे न तो सजीव हैं और न निर्जीव।* उनकी गणना सजीव और निर्जीव के मध्य में की जाती है। इन अत्यन्त सूक्ष्म कणो की खोज निकालने-वाले विद्वान्, एफ० डी० हेर्ल, उन्हे श्लिषाभ (colloids) की तरह के जीवित अश मानते है क्योकि जब तक उन्हे द्रुमाणु खाने को मिलते हैं उनमें उत्पादन भी होता है। दूसरे वैज्ञानिक इन अशों को एक

वस्तुओं को ही खाकर, अपना जीवन स्थिर रखते है। उन्ही से उनकी वृद्धि होती है और सन्तान उत्पन्न हो उनका वश चलता है। मृत्यु व क्षय हाने पर प्रत्येक जीवित पदार्थ निर्जीव पदार्थ मे बदल जाता है। किसी ने सच कहा है कि 'तू धूल है और धूल ही में फिर मिल जाता है।"

जीवन की सर्वप्रथम उत्पत्ति—अब यह प्रश्न उठता है कि जीवन के सर्वप्रथम रूप और उनके बीज या स्पोर की पहले-पहल उत्पत्ति कैसे हुई? भूगर्भ विद्या, हमको सिखाती है कि एक समय पृथ्वी का गोला इतना गर्म था कि जीवन मूल या कोई जीवित पदार्थ उस पर नही रह सकता था। एच० जी० वेल्स ने अपनी पुस्तक 'पृथ्वी का सक्षिप्त इतिहास' म लिखा है कि पृथ्वी पर कुछ समय तक जीव का कही नाम न था, समुद्र जीवविहीन थे और चट्टान उजाड पडी थी।

कुछ विचारक यह मानते है कि इस पृथ्वी पर जीवन निद्रित अवस्था में किसी तारे या ग्रह से टूटे हुए टुकडे अथवा ब्रह्माण्ड की धूल द्वारा आया। तारा या ग्रहा स टूटे हुए पत्थर बहुधा हमारी पृथ्वी पर गिरते देखे गये है। किन्तु जीवन का इस प्रकार आना बिलकुल असम्भव प्रतीत होता है। टूटे हुए ग्रहो के टुकडे गिरते हुए सितारे या ब्रह्माण्ड की धूल, आकाश म ऐसी तीव्रगति से यात्रा करते है कि जब वे उस वायुमडल में से निकलते है जो पृथ्वी को घेरे है तो गर्म होकर लाल हो जाते है। इसलिए यह असम्भव है कि कोई स्पोर, जीवाणु या जीव इतनी लम्बी यात्रा और भीषण गर्मी को सहन करके हमारे गृह में निद्रित अवस्था में पहुँच सका हो। यदि यह भी मान लिया जाये कि ऐसा होना सम्भव है, तो जीव की प्रथम उत्पत्ति की समस्या हल नही होती वरन् एक स्थान से दूसरे में चली जाती है। प्रश्न रह जाता है कि उस ग्रह या तारे मे पहले-पहल जीव कैसे बना।

आजकल के जीव विज्ञानवेत्ता इससे सहमत है कि प्रथम जीवित पदार्थ या जीवन मूल की उत्पत्ति जड पदार्थों के मल से हमारी पृथ्वी पर उस समय हुई जब वह अपनी बाल्यावस्था में थी। जब ये घटनाएँ हुई होगी उस समय पृथ्वी की दशा अब से बिल्कुल भिन्न थी। यही कारण है कि यह घटना अब देखने में नही आती। इसको स्पष्टरूप स सन् १९३१ में एच० जी० वेल्स और उनके सहयोगी लेखकों ने अपनी पुस्तक "जीवन का विज्ञान' म इस प्रकार प्रकट किया है, "यह बहुत कुछ सम्भव है कि जब पृथ्वी ठडी होती जा रही थी उस समय एक बार गर्म समुद्रो की परिस्थिति ऐसी हो गई थी जो फिर कभी नही हुई। यह परिस्थिति तापक्रम म, वायु के दबाव म, पानी में, घुले नमकों में, और जलों के ऊपर बहनेवाली पवन के वायव्यो मे अपने से पूर्व अथवा आनेवाली परिस्थितियो से भिन्न थी। उस समय पृथ्वी पर वे सभी परिस्थितियाँ उपस्थित थी जिन्हें रसायनज्ञ अपनी धरियाओ म फिर से पैदा करने की चेष्टा करते थे। जिस प्रकार इससे पहली और भिन्न परिस्थितियो में पृथ्वी पर चट्टान, समुद्र और बादल बने, उसी प्रकार उचित समय आने पर विश्व की प्रयोगनली मे ऐसा लहान उठा जिसमें जीवन पदार्थ का प्रादुर्भाव हो गया।'

यह प्रमाणित हो चुका है कि पहले पृथ्वी पिघली हुई दशा में थी और वह अपनी वर्तमान दशा में करोडो वर्ष पश्चात् धीरे धीरे ठडी होकर पहुँची। पृथ्वी का ताप अब भी घटता जा रहा है। सम्भव है कि आगे भी ऐसा ही होना रहे और एक समय ऐसा आ जाय कि ठड के कारण पृथ्वी पर जीवन का बना रहना अति असम्भव हो जाय। कदाचित् प्रलय इसी प्रकार हो।

जीवन का पहला घर समुद्र—यह ध्यान रखते हुए कि जीवनमूल न अधिक ताप सहन कर

सकता है और न अधिक शीत, हम कह सकते हैं कि पृथ्वी के इतिहास में प्रथम जीव की उत्पत्ति अवश्य ठीक उसी समय हुई होगी जब पृथ्वी का तापक्रम उसके लिए उचित था।

भौतिक-विज्ञान ज्ञाता हमको यह बतलाते हैं कि गर्म सितारों के वायुमंडल में उद्जन अधिकता से पाया जाता है। जब वे ठण्डे होने लगते हैं, तब शुद्ध कोयला या कार्बन भी बड़ी मात्रा में मिलने लगता है और ओषजन भी उनमें विद्यमान रहता है। ऐसा ही पृथ्वी के साथ अवश्य हुआ होगा। जब पृथ्वी ने अपनी गर्म अवस्था से ठंडा होना आरम्भ किया होगा तो यही वायव्य अधिकता से मौजूद रहे होंगे। ज्यों-ज्यों वह और ठंडी पड़ती गई उसका ऊपरी भाग जमकर ठोस पर्त सा हो गया। इस प्रकार जो कड़ी भूमि बनी उस पर पानी की भाप के घने और घनघोर बादल छाये और उनमें से कुछ पानी की बूद बनकर मूसलाधार वर्षा के रूप में बरस पड़े। सहस्रों वर्षों की भारी वर्षा और उसी के साथ-साथ कदाचित् भीषण भूकंप और ज्वालामुखी पर्वतों के फटने से पृथ्वी के ऊपर जगह-जगह पानी भर गया और महासागर, सागर, झील अथवा नदी बने तथा धरातल उलट-पलट कर नीचे ऊँचे पहाड़ के रूप में बदल गया। इतना काल व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक पृथ्वी का ठोस पत काफी मोटा नहीं हुआ। बहुधा उसकी उलट-पलट या उभार भूकम्प के रूप में हमको ज्ञात होती है।

इस प्रकार जो जल-समूह बने उन्होंने वायुमंडल से कार्बन-द्वयोषिद्, और ओषजन काफी मात्रा में सोखे होंगे और पृथ्वी से कुछ मात्रा में नौसादर और अन्य लवण भी लिये होंगे। उस समय पृथ्वी *का धरातल अवश्य ही गर्म और नम रहा होगा और तापक्रम भी अधिक घटता-बढ़ता न होगा।* चारों ओर सहायक अवस्था होते हुए अधिकता से उपस्थित लवणों और वायव्यों को कार्बन से मिलकर तमाम प्रकार के ऐन्द्रिक यौगिक बनने में कोई बाधा न थी। इन यौगिकों में से कुछ तो टिकाऊ थे और कुछ नहीं। कुछ ही वर्ष हुए जब लिवरपूल के प्रोफेसर बली ने दिखाया था कि प्रकाश के प्रभाव से पानी, कार्बन, द्वयोषिद्, वायु और नौसादर जैसे सरल पदार्थों के मिश्रण से चीनी और अन्य पदार्थ थोड़ी मात्रा में बनाये जा सकते हैं। ऐसे रासायनिक रूपान्तरों में विशेषकर प्रकाश की अति बैंजनी किरणें Ultra-Violet rays ही क्रियाशील होती हैं। आजकल ऐसी किरणें वायुमंडल के ओषजन में ही रुक जाती हैं। किन्तु उस प्राचीन काल के वायुमंडल में ओषजन अवश्य ही कम था इस-लिए बहुत-सी किरण, पुराने सागरों में पहुँच कर उन पर अपना प्रभाव डालती थीं और उन सागरों का जल गर्म पतले रसे के समान हो गया था।

इन पहले यौगिकों के विच्छेद और योग से और भी जटिल ऐन्द्रिक यौगिक बने। अकस्मात् एक ऐसा समय आया जब आवश्यक तत्त्व ऐसे उचित अनुपात में उपस्थित हो गये कि उनसे वह पदार्थ बन गया जिसमें जीवन के लक्षण थे। यह अवश्य पानी की ऊपरी तहों में हुआ होगा और पानी की उस समय कोई कमी न थी। यही कारण है कि सर्वत्र सागर ही जीवों का प्रथम गृह माना जाता है।

हाल की दो खोजें—पिछले कुछ वर्षों में दो खोजें हुई हैं जो इस समस्या पर अधिक प्रकाश डालती हैं। इनमें से एक वह नन्हे-नन्हे कण हैं जो रोगाणुओं को नष्ट कर देते हैं और जिन्हें **द्रुमाणुभक्ष** (Bacteriaphage) कहा जाता है। द्रुमाणुभक्ष कण वास्तव में न तो सजीव हैं और न निर्जीव। उनकी गणना सजीव और निर्जीव के मध्य में की जाती है। इन अत्यन्त सूक्ष्म कणों की खोज निकालने-वाले विद्वान्, एफ० डी० हेर्ल, उन्हें श्लिपाभ (colloids) की तरह के जीवित अंश मानते हैं क्योंकि जब तक उन्हें द्रुमाणु खाने को मिलते हैं उनमें उत्पादन भी होता है। दूसरे वैज्ञानिक इन अंशों को एक

ऐसे प्रकार का अत्यन्त क्रियाशील खमीर समझते हैं जो बिना जीवित पदार्थ को पाये अपनी मात्रा बढाने मे असमर्थ है। एच० जी० वेल्स और दूसरे लोगो का मत है कि निर्जीव और सजीव अवस्थाओ के बीच ऐसी ही लुप्त कड़ियो से जीवित पदार्थ का प्राथमिक रूप बना होगा।

दूसरी खोज कोषो म उन नन्हे कणो का होना है जो अति सूक्ष्मदर्शीय प्रदेश से जीवन के शारीरिक परिवर्तनो का सुधार और शासन करते है। इन अति सूक्ष्म कणिकाओ में से एक जत्था वह है जो पित्र्यैक (Genes) कहलाता है और जिनकी सख्या वास्तव म अपनी जगह पर ही दुगुनी हो जाती है, प्रोफेसर जे० एलिग्जेण्डर ने अपनी पुस्तक 'कोलॉयड केमिस्ट्री में इस अवस्था का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया है, 'यह बहुत कुछ सम्भव है कि पहला जीवित प्राणी एक अणु या कोई सरल परिमाणु समूह था जिसम पित्र्यैक की-सी शासक और पुर्नजनन शक्ति थी।'

जीवन के सर्वप्रथम उत्पत्ति क ज्ञान की खोज में मानव मस्तिष्क अभी यही तक पहुँचा है। जो कुछ निश्चय हुआ है वह है 'बहुत युग बीते, समय के धुंधले प्रभात में, जब पृथ्वी का धरातल काफी ठडा हो चुका था और वायु अथवा जल की प्रबल शक्तियो से हमारी पृथ्वी जीवित वस्तुओ के रहने योग्य बन चुकी थी,' आवश्यक निर्जीव तत्त्व इस प्रकार एक दूसरे से मिले कि सजीव पदार्थ के छोटे-छोटे अग बने, "और तब से पृथ्वी पर जीवन की आश्चर्यजनक कथा का प्रारम्भ हुआ।"

मेरे अद्वितीय मित्र

श्री जसपतराय कपूर, सदस्य, भारतीय लोकसभा

['बी० एम० एस० डी० कालेज के मालवीय'—इस गौरवान्वित सम्बोधन द्वारा खन्नाजी के परम मित्र एव भारतीय विधान-परिषद् और आज की लोकसभा के सदस्य श्री जसपतराय कपूर ने खन्नाजी का स्मरण किया है। अपने मित्र के सफल जीवन का अत्यन्त सक्षिप्त, परन्तु सफल रूप में स्मरण करने मे श्री जसपतरायजी इस लेख में सर्वथा समर्थ हुए है।

उनके निम्नलिखित शब्द स्मरणीय है "खन्नाजी अपनी धुन के पक्के और लगन के सच्चे है। वे जिस काम को करते है, उसमें तन्मय हो जाते है मेरे मित्र खन्नाजी को भगवान् ने आन्तरिक और बाह्य-दोनो ही सौन्दर्य प्रदान किये है। उनका शरीर सुडौल एव गौर वर्ण है। हृदय उनका विशाल है, तथा मस्तिष्क पूर्ण उन्नत एव विकसित।"]

श्री हीरालाल खन्ना मेरे मित्र है। मुझे उनके अन्दर गुण ही गुण दिखाई देते है। मित्र के विषय में लिखना उतना ही कठिन कार्य है, जितना स्वय अपने बारे में लिखना—सम्भवत उससे भी अधिक कठिन। अपने प्रिय जनो के गुण महागुण के रूप में प्रकट होते तथा त्रुटियाँ केवल भ्रान्तियाँ मात्र ही परिलक्षित होकर रह जाती है।

श्री हीरालाल खन्ना से मेरा प्रथम परिचय लगभग सन् १९१८-१९ में हुआ था। कहना अनुचित न होगा कि प्रथम परिचय में ही हममें प्रेम हो गया। वह उस समय सेंट जोन्स कालेज आगरा मे प्रोफेसर थे—और मैं नागरी-प्रचारिणी सभा आगरा में मन्त्री के रूप में कार्य कर रहा था। हम दोनो ने हिन्दी का कार्य प्रारम्भ किया। इस ओर खन्नाजी ने मेरा पूरा-पूरा हाथ बँटाया। पुस्तकालय के लिए पुस्तकें तथा सभा के लिए चन्दा माँगना—ये दो कार्य मुख्य थे। और खन्नाजी इसमें बहुत ही सहायक रहे। थोडे ही दिन बाद वह बी० एन० एस० डी० इन्टर कालेज कानपुर के प्रिंसिपल नियुक्त हो गये और हमारा उनका साथ छूट गया। सार्वजनिक सस्था के लिए चन्दा माँगनेवाली उनकी प्रवृत्ति बराबर बनी रही और इसमें उन्हें काफी सफलता भी प्राप्त हुई है। यदि वह किसी का कोई कार्य करते है, तो पारितोषिकस्वरूप अपने कालेज के लिए सहायता ले लेते है। उनके विषय में यह एक मशहूर सी बात थी कि यदि उनसे काम कराना है तो उनके कालेज के लिए भेंट लेकर चले चलो। उक्त कालेज का वर्तमान भव्य स्वरूप 'बी० एन० एस० डी० कालेज के मालवीय'—इन्ही खन्नाजी के प्रयत्नो का फल है।

खन्नाजी अपनी धुन के पक्के और लगन के सच्चे है। वे जिस काम को करते है, उसमें तन्मय हो जाते है। किसी चीज को हाथ में लेते समय, किसी पुस्तक को पढते समय, वह उसका पूर्ण विश्लेषण कर डालते है और तह की गहराई तक पहुँचने का प्रयास करते है और जब तक तह तक नही पहुँच जाते, चैन नही लेते।

उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग में उन्हे कौन नही जानता? शिक्षा से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति उनसे भली भाँति परिचित है। शिक्षा के लिए उन्होने अपना सर्वस्व दे रखा है। अनेक पदो पर रहकर तथा अनेक अन्य रूपो में उन्होने इस प्रान्त के शिक्षा विभाग की अपार सेवा की है। वह एक सफल प्रिंसिपल तो है ही।

उनके कालेज का परीक्षाफल प्रान्त में प्राय सर्वोपरि ही रहता है। इस प्रान्त के विद्यार्थियो के हृदय में विद्या के प्रति अनुराग उत्पन्न करने में उन्हे अद्वितीय एव अतीव सफलता प्राप्त हुई है।

खन्नाजी आगरे से चले गये, परन्तु हमारा उनका साथ न छूट सका। केवल हृदय तक ही हमारी सीमाएँ नही रही। हमारे कुछ कार्य-क्षेत्र भी एक रहे। इस बीच में मैने देखा कि खन्नाजी अपनी बात पर अटल रहनेवाले व्यक्ति है। वह जिस बात को ठीक समझते है, उस पर अडिग बने रहते है। अपने अन्त करण के विरुद्ध बात कहना तो उन्होने सीखा ही नही है—"कौल मर्दां जाँ दारद" तो मानो किसी ने उन्हे बचपन म घुटी के साथ पिला दिया है। एक बार आगरा विश्वविद्यालय की सीनेट के चुनाव से आप सहमत नही थे। आपने उसके विरोध में आवाज उठाई और निस्सकोच लडते रहे। अन्त में सीनेट के रजिस्टर्ड ग्रैजुएटो का पुन निर्वाचन हुआ था।

खन्नाजी केवल शिक्षा-विशेषज्ञ एव सस्थाओ के लिए चन्दा इकट्ठे करने में ही सिद्धहस्त हो, सो बात नही है। उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी है। उनकी उद्योग एव व्यापार सम्बन्धी सूझ तो अनोखी ही है। आर्थिक मसलो पर उनकी राय बहुमूल्य होती है। आजकल वह इस प्रान्त की कई कम्पनियो के डायरेक्टर है और वहाँ उनका अच्छा सम्मान है।

मेरे मित्र खन्नाजी को भगवान् ने आन्तरिक और बाह्य—दोनो ही सौन्दर्य प्रदान किये है। उनका शरीर सुडौल एव वर्ण गौर है। हृदय उनका विशाल है, तथा मस्तिष्क पूर्ण उन्नत एव विकसित। अपने मित्रो का उन्हे पूरा पूरा ध्यान रहता है। प्रत्येक की सहायता करने के लिए वह लालायित एव उतावले से बने रहते है। उनके कारण किसी को कोई कष्ट न हो, इसका वह पूरा पूरा ध्यान रखते है। उनकी इस मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि उनका जीवन, उनका रहन-सहन अत्यन्त सीधा-सादा बन गया है। उनके जीवन में स्वच्छता तथा सादगी समानान्तर चली जाती है। हर काम में वह एक ओर तो पूरी सफाई का ध्यान रखते है, और दूसरी ओर पूरी पूरी सादगी का। उनका परिधान है धोती-कुर्ता और साफा। एकदम सीधा-सादा। न उनके किसी कपडे पर एक भी धब्बा और न उनके शरीर के किसी भी भाग पर तनिक भी मैल।

भोजन-व्यवस्था के तो मानो वह आचार्य है। वह स्वल्प, स्वस्थ एव आवश्यक भोजन ही करते है, तथा इसका उपदेश भी करते रहते है। उनका शायद ही कभी सिर भी दुखता हो। वह शतायु होगे, इसमें सन्देह नही।

उनसे सम्बन्धित मुझे बहुत से किस्से भी याद है। उनके उल्लेख द्वारा उनके गुणो पर बहुत सा प्रकाश पड सकता है—परन्तु "बाढहि कथा पार नहि लहऊँ"। और फिर उनकी अधिक प्रशसा करना मेरी स्वय अपनी प्रशसा का स्वरूप बन सकता है। अपने मित्र खन्नाजी पर मुझे गर्व है। भगवान् से प्रार्थना है कि वह उन्हें चिरायु करे जिससे वह आगे भी समाज व देश की वैसी ही सेवा करते रहे जैसी अब तक करते रहे है।

विज्ञान और बालक

श्री बलवन्तसिंह स्याल, एम० एस्-सी०, एल्-टी०

[कानपुर जिले के शिक्षा-सस्थाओ के आप ख्यातनामा जिला निरीक्षक है। इस प्रान्त की शिक्षा सरकार के इने-गिने चिन्तनशील अधिकारियो में आपका स्थान है। शिक्षण कला के अनेक प्रयोगो में आपने मौलिक योग दिया है। आपकी स्फूर्ति और प्रेरणा शक्ति तथा आपका अदम्य उत्साह शिक्षा की प्रगति को उत्तेजना देने में हमेशा सफल रहे हैं। अपनी मिलनसारी और लोकप्रियता के बल पर आप जहाँ रहे है सफल कार्यकर्त्ता के रूप में आपका अभिनदन हुआ है।

इस छोटे से लेख मे स्याल साहब ने बालको और बालिकाओ को किस वैज्ञानिक ढग से ज्ञान अर्जन करना चाहिए इसकी शिक्षा दी है। असावधानी से जो भ्रान्तियाँ हो जाती है उनका भी दिग्दर्शन कराया है।]

हमारे बालको में प्रकृति निरीक्षण की उत्सुकता कम है। वे अपने वातावरण से अपरिचित से जान पडते है। यह तो बालको और बालिकाओ का स्वाभाविक गुण होना चाहिए कि वे सृष्टि की विलक्षणता को देखकर प्रसन्न हो, अपने आस-पास के प्राणि और वनस्पति-जगत् का ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक हो प्राकृतिक घटनाओ को समझने की चेष्टा कर तथा हर बात का कारण समझने को लालायित हो। ऐसा बालक विज्ञान मे रुचि रखता है जो सदा अपने मन में यह प्रश्न करता रहता है कि "यह क्या है?" "ऐसा क्यो है?", सूर्य, चन्द्रमा, तारे इत्यादि क्या है, ये किस प्रकार आकाश में लटके है, ये कैसे उदय और अस्त होते है, दिन-रात और ऋतु-परिवर्तन कैसे होते है, पेड कैसे उगते और बढते है, अमुक पशु की बनावट कैसी है और उसमें क्या विशेषता है, वह कहाँ रहता है, क्या खाता है और उसके कौन शत्रु और मित्र है, हमारा शरीर कैसे बना है, भोजन कैसे पचता है, बीमारी क्या होती है और इससे कैसे बचना चाहिए, वायुयान किस प्रकार उडता है, मोटर कैसे चलती है, बिजली क्या है, रेडियो द्वारा किस प्रकार बिना तार के खबरें और गाने सुनाई देते है, बरफ कैसे बनती है, चीनी कैसे बनाई जाती है, रेशमी और ऊनी कपडे कैसे बनाये जाते है, दैनिक जीवन में प्रयोग होनेवाली रासायनिक वस्तुएँ कैसे बनती है, उनके गुण क्या है, इत्यादि इत्यादि।

जो बालक या बालिकाएँ इन सब बातो पर ध्यान नही देती और विचार नही करती उनकी बुद्धि कुठित हो जाती है और ऐसी दशा में उनका जीवन पशुओ से भी लगाव हो जाता है। उनमें और

मूर्ख म कोई अन्तर नही रह जाता जिन्हे केवल लकडी-नून तेल ही की चिन्ता रहती है। जिस प्रकार व्यायाम करने मे शरीर दृढ और सुडौल बनता है उसी प्रकार और विचार विवेचना द्वारा बुद्धि तीव्र तथा भाव सयत होते है। इसके विपरीत बिना विचारे और समझे हुए केवल रट लेने से विवेचना-शक्ति नष्ट हो जाती है। बहुत से छात्र केवल तोता रटन्त करके परीक्षाओ मे तो सफल हो जाते है परन्तु ऐसा करके वे अपने मस्तिष्क को सदा के लिए खराब कर लेते है जिससे जीवन में वे कोई मानसिक शक्तिवाला काम करने के योग्य नही रहते। अतएव विज्ञान में हमें सदा अपने विचार से काम लेना चाहिए। बिना परिश्रम द्वारा समझे हुए कोई बात केवल रटना नही चाहिए।

विचार और विवेचना के लिए हमे ज्ञानेन्द्रियाँ मिली है। इनके द्वारा हमे बाहरी वस्तुओ का ज्ञान होता है। स्पर्श करके देखकर, सुनकर, सूँघकर, और चखकर हम पदार्थो के गुण और घटनाओ का ज्ञान प्राप्त करते है। इसलिए हमें इन ज्ञानेन्द्रियों से अधिक से अधिक काम लेना चाहिए। इनसे जितना अधिक और ठीक काम लिया जायगा ये उतनी ही अनुभूतिशील तथा सूक्ष्म-ग्राही हो सकेगी। जिससे हमारा ज्ञान भी उतना ही ठीक एव सयत होगा। अभ्यास होने पर हम स्पर्श से किसी पदार्थ को पहचान सकते है, चिडिया या पशु के शब्दनाद से उसे जान जाते है, गायक तबले की ध्वनि, तार की झकार और अलाप से स्वर और ताल को ठीक ठीक समझ लेते है, जौहरी मणियो को देखते ही परख लेते है, बनिये-व्यापारी तौल का अनुमान कर लेते है, रसोइया नमक मिर्च का ठीक अन्दाज कर लेता है और सैनिक को दूरी का अनुमान ही से ठीक ज्ञान हो जाता है।

विज्ञान में निरीक्षण का बडा महत्त्व है। बिना निरीक्षण के विज्ञान म उन्नति असम्भव है। इसी के आधार पर हम आगे बढ सकते है। बिना स्वय निरीक्षण के हमारा ज्ञान अपूर्ण और अशुद्ध रहेगा। विज्ञान म सफलता की यही कुजी है। विज्ञान के बडे-बडे आविष्कारो का रहस्य और मूल साधारण बातो और घटनाओं का निरीक्षण ही है। उन बातो को लोग पहले भी जानते और देखते भी आये थे, पर साधारण व्यक्ति उन पर कुछ भी ध्यान नही देते थे। भरे टब म घुसने से पानी छलक जाता है, यह सभी जानते है। इसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके आर्किमिडीज ने नया और बडा ही उपयोगी सिद्धान्त निकाला। गैलीलियो ने गिरजाघर म घडी की ध्वनि सुनकर बडा महत्त्वपूर्ण आविष्कार किया। विद्युत् और उसके सारे चमत्कार का आविष्कार फैरेडे की उस सजग निरीक्षण शक्ति पर आश्रित है जिसके द्वारा उन्होने (galvanometer) की सुई का बेर बेर पीछे की ओर थोडी-सी ठोकर लेकर चलना देखा। देगची मे पानी उबलने के कारण ढक्कन को हिलते देखकर वैट के मन में जो उत्कण्ठा हुई उसका फल आधुनिक वाष्प-इजन है। न्यूटन ने पेड से सेव नीचे गिरता हुआ देखा और यही देखकर उन्होने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को स्थापित किया। केवेंडिश ने इसी निरीक्षण के बल पर ही जल को रासायनिक यौगिक सिद्ध किया। ऐसे उदाहरणो की कोई सीमा नही है। अतएव विज्ञान म निरीक्षण की महिमा का उल्लेख जितना भी किया जाय वह थोडा है। इसलिए प्रत्येक बालक और बालिका को सावधानी से निरीक्षण करने का अभ्यास करना चाहिए। चतुर बालक और मूर्ख में यही अन्तर है कि चतुर बालक अपने आँख-कान खोलकर रखता है अर्थात् वह सदा सजग रहता है। चतुर बालक यदि कही जायगा तो वह बता सकेगा कि उसने रास्ते में किस प्रकार के वृक्ष देखे, कौन से जन्तु उसे दिखाई पडे, खेत की उपजें कैसी थी, उसे किस प्रकार के लोग मिले, सडके कैसी थी, वह कितनी दूर चला, उसे कितना समय लगा, इत्यादि इत्यादि। जब हम देखते है कि बडे से बडे आविष्कार छोटी-छोटी बातों के निरीक्षण से हुए है तब सम्भव है कि हमारे

बालक भी आगे चलकर ऐसे ही महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान करें और अपना तथा अपने कुल व देश का गौरव बढाएँ।

यह भी परम आवश्यक है कि निरीक्षण शुद्ध हो। आरम्भ से ही शुद्ध निरीक्षण का अभ्यास करना अनिवार्य है। कौवे को देखकर कोयल कह देना, स्यार को भेडिया बतलाना, मोर की बोली को सिंह की गरज समझना निरीक्षण तो है पर अशुद्ध। इससे कोई लाभ नही होगा। हा, हानि बहुत होगी। स्कूली जीवन मे अशुद्ध निरीक्षण और उपेक्षा से सम्भव है बहुत हानि न हो पर जीवन में ऐसी भूलो से घोर विनाश की सम्भावना है। निरीक्षक के ठीक और समय पर हिमखड को न देखने से टिटेनिक जहाज एटलाण्टिक महासागर मे उससे टकराकर डूब गया और लगभग १,५०० प्राणी हत हुए। यदि निरीक्षक कुछ क्षणों के लिए भी सजग रहता तो यह महान् दुर्घटना न होती। देश मे रेल लडने, मोटर उलटने व टकराने, नौका और जहाज डूबने इत्यादि की दुर्घटनाएँ सजग और शुद्ध निरीक्षण की उपेक्षा ही के कारण होती है। वायुयानो, रणपोतो, टैंको, मशीनगनो, बमो, बिजली की मशीनो, कलो तथा वैज्ञानिक यन्त्रो और उनके पुरजो की ठीक बनावट तथा उनके ठीक माप म अशुद्ध निरीक्षण तथा तनिक भी त्रुटि होन से कितनी हानि हो सकती है इसका हर कोई अनुमान कर सकता है।

शुद्ध निरीक्षण के साथ-साथ विज्ञान में प्रयोग भी अत्यन्त आवश्यक है। प्रयोगो के द्वारा ही पदार्थों के गुणो का अनुभव किया जाता है, सिद्धान्तों और नियमों की परीक्षा की जाती है और नये सिद्धान्त निकाले जाते है। प्रयोग करने मे यह परम आवश्यक है कि उसे सावधानी से किया जाय और जो कुछ देखा जाय उसे ठीक ठीक अकित किया जाय। मनोनीत धारणाओ के अनुसार निरीक्षण के फल को देखने की चेष्टा कभी न की जाय। जो वास्तव में दिखाई दे उसे ही ठीक माना जाय चाहे वह आशातीत क्यो न हो। यही है वास्तविक सत्य की खोज। इतिहास बतलाता है कि वैज्ञानिक अपने निरीक्षण और प्रयोगो के बल पर तत्कालीन रूढियो और प्रभावशील अन्धविश्वासों का निर्भीक खण्डन करते रहे है। उन्हे अपने ऊपर इतना दृढ विश्वास था कि अनेक यातनाओ से सन्तप्त होने पर भी वे अटल रहे, और अन्त में उन्ही की विजय हुई जिससे आज भी उनके नाम अमर है। लोगो की धरणा थी कि हलकी वस्तु की अपेक्षा भारी वस्तु गिरकर जल्दी नीचे पहुँचती है। गैलीलियो ने स्पष्ट रूप से प्रयोग द्वारा दिखाया कि यह धारणा भ्रमपूर्ण है पर फिर भी अन्धविश्वासियो ने उसे कारागार म बन्द कर दिया। बालको को भी अपने प्रयोगों के फल का ही अवलम्बन लेना चाहिए। यदि कोई बात प्रयोग से सिद्ध नहीं होती तो उसे केवल किंवदन्ती होने के कारण सत्य न मानना चाहिए। प्रत्यक नियम, सिद्धान्त अथवा कथन को प्रयोग की कसौटी पर कसकर देखन का उद्योग करना चाहिए।

प्रयोग और निरीक्षण के सहारे निष्कर्ष भी निकालना चाहिए परन्तु इसमे विशेष सावधानी की आवश्यकता है। यदि धैर्य और सावधानी से काम न लिया जायगा तो सम्भव है निष्कर्ष ठीक न हो। टोलमी ने यह सिद्धान्त स्थापित किया कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य उसके चारो ओर घूमता है। सूर्य को पूर्व में उदय और सारा दिन यात्रा करके पश्चिम में अस्त होते देखकर टोलमी का सिद्धान्त ठीक जान पडता है। निरीक्षण अवश्य ठीक है पर यह निष्कर्ष ठीक नही है। यह बात पूर्णरूप से सिद्ध हो चुकी है कि पृथ्वी सूर्य के चारो ओर भ्रमण करती है, सूर्य पृथ्वी के चारो ओर नहीं। कुछ देशो में जिस समय रेलगाडी पहले पहल चली तो उसके इजन को देखकर लोग डरे और वे उसे भूत प्रेत समझे। उसे रोकने के लिए पटरी पर ओझा और तान्त्रिक एकत्र होकर जादू-टोने करने लगे। चालक ने पटरी पर

जन-समूह देखकर इंजन रोक दिया जिससे लोग कट न जायँ। इंजन का रुकना देखकर सब तान्त्रिक अपने मन्त्रों और जादू को सफल जानकर बड़े प्रसन्न हुए और वहाँ से लौट गये। यद्यपि उनका यह निरीक्षण तो ठीक था कि इंजन रुक गया तथापि इससे यह निष्कर्ष निकाल लेना कि ऐसा उनके जादू-टोने के प्रभाव से हुआ है, केवल विडम्बना ही थी। अतएव निष्कर्ष निकालने में विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

आचार्य हीरालाल खन्ना

लेखक, श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

[" मैंने देखा कि खन्नाजी एक पुस्तक है—एक इतिहास है " इन शब्दो में श्री परिपूर्णानन्दजी ने अपने गुरु आचार्य नरेन्द्रदेव के सहपाठी और अभिन्न मित्र श्री खन्नाजी को समझने का प्रयास किया है। हमारे प्रान्त के शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानद के अनुज, कानपुर के एक प्रमुख नागरिक, सार्वजनिक सेवक, शिक्षित और सुसस्कृत श्री परिपूर्णानदजी की खन्नाजी के सम्बन्ध में लिखी गई इन पक्तियो पर भी ध्यान दीजिए "उन्हे भारत की पच्चीस-तीस वर्ष पहले की विभूतियो का बडा अच्छा ज्ञान है, निकट से जानकारी है। यदि वे अपने सस्मरण ही लिखे तो एक अद्भुत ग्रन्थ तैयार हो सकता है। मुझे सबसे अधिक प्रभावित करनेवाली बात लगी खन्नाजी का सुन्दर स्वास्थ्य खन्नाजी हमारे आपके साथ बैठकर भोजन कर लेंगे पर नित्य के जीवन में उनका सयम बडा कठोर है चित्त कहता है कि खन्नाजी का ही सिद्धान्त ठीक है। मनुष्य खाने के लिए नही पैदा हुआ है। भोजन केवल एक आधार है जिसके सहारे मनुष्य सचमुच मनुष्य बना रह सकता है।"]

आचार्य हीरालाल खन्ना के प्रशसको तथा विरोधियो से मेरा बहुत कुछ परिचय है। इसलिए उनकी प्रशसा तथा विरोध में काफी बातें मैंने सुनी है। इसलिए यदि मैं उनके सबध मे समीक्षापूर्ण ढग से लिखने का प्रयत्न करूँ तो यह अधिक गलत न होगा।

वास्तव मे आज ऐसा कोई भी व्यक्ति नही है जिसके निन्दक तथा प्रशसक, दोनो ही न हो। हमारा स्वभाव कुछ ऐसा हो गया है कि दूसरे की निन्दा की बातें हमें ज्यादा अच्छी लगती है। आत्म प्रवञ्चना-वश दूसरे की बुराई से हमारा जी हल्का होता है और यदि प्रशसा अधिक होती है तो मन को ग्लानि होती है।

मैं खन्नाजी के विषय में सुनी बाते ही अधिक जानता हूँ। उनसे मेरा विशेष परिचय नही है। उनके प्रति आदर का केवल एक ही कारण है। वे मेरे परम पूज्य आचार्य नरेन्द्रदेवजी के सहपाठी है। आचार्य जी के चरणो में बैठकर मैंने शिक्षा प्राप्त की है। उनके सहपाठी भी मेरे लिए आदर के पात्र है। मैं पुराने जमाने का विद्यार्थी हूँ। जिसे गुरुजनो का आदर करना सिखलाया जाता था। सिखलाया आज भी जाता होगा, पर आज का विद्यार्थी वह पाठ याद रखना आवश्यक नही समझता। इसी लिए विद्या भी वास्तव में उसको याद रखना आवश्यक नही समझती।

मैंने खन्नाजी को पहली बार आचार्यजी (नरेन्द्रदेवजी) के साथ देखा। भले से मालूम पडे। बात-चीत में आकर्षण था। पर कानपुर की शिक्षा-राजनीति से मैं सहम गया। मैं प्राय नगर के किसी आचार्य से सु-परिचित न हो सका। यदा-कदा जब भेंट हो जाती तो आदत के मुताबिक कुछ सीखने की कोशिश करता।

और इस चेष्टा मे मैंने देखा कि खन्नाजी एक पुस्तक है—एक इतिहास है। जब हम पैदा भी न हुए थे, वे राष्ट्रीय विचार के बन चुके थे। महामना मालवीयजी के चरणो मे बैठकर उन्होंने समाज-सेवा सीखी। प० मोतीलाल नेहरू, डा० सर तेजबहादुर सप्रू डा० सच्चिदानन्द सिनहा आदि के राष्ट्रीय जीवन की जवानी का युग उन्होंने देखा है। बडे बडे महापुरुषो का उनका बडा साथ रहा है। स्वर्गीय माननीय श्री श्रीनिवास शास्त्री इन्हे काफी मानते थे। शास्त्रीजी की उक्ति (उपदेश) इन्हे अब भी याद है कि—"यदि कोई व्यक्ति बहस के लिए बात करता हो तो मौन रह जाना चाहिए।" लाला लाजपत राय का सिंह-गर्जन वे बडे मजे मे सुनाते है।

विद्यार्थी-जीवन में खन्नाजी, उस जमाने के लिहाज से, बडे उग्र विचार के छात्र रहे होंगे। उन्हे भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राम के सुप्रभात का सदेश मिला। अरविन्द की क्रान्तिकारी पत्रिका के वे प्रेमी पाठक थे। स्यात् मालवीयजी का प्रभाव न पडा होता तो वे क्रान्तिकारी भी हो गये होते।

खन्नाजी से बातें करने से एक बात स्पष्ट मालूम होती है। उन्हें भारत की पच्चीस-तीस वर्ष पहले की विभूतियों का बडा अच्छा ज्ञान है, निकट से जानकारी है। वे यदि अपने "सस्मरण" ही लिखें तो एक अद्भुत ग्रन्थ तैयार हो सकता है। वह हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक रोचक और ज्ञान वर्द्धक इतिहास बन सकता है। वह एक ऐसा लाजवाब सकलन होगा जो आगे आनेवाली पीढी के लिए बडा लाभप्रद होगा। खन्नाजी उसमें बतलायेंगे कि मालवीयजी ने किस दूरदर्शिता से त्रिवेणी का उद्धार किया, प्रयाग की अच्छी इमारतें दिलवाई, हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए चन्दा इकट्ठा करने का मार्ग निकाला और राष्ट्रवादी होते हुए भी कैसे राजा महाराजाओं को प्रसन्नता प्राप्त कर सके। खन्नाजी हमे यह भी बतलायेंगे कि श्री सुन्दरलालजी की अदालती प्रतिभा से प्रयाग को क्या वरदान मिला था, प्रयाग विश्वविद्यालय किस प्रकार हमारे प्रान्त की विचार-धारा का केन्द्र बना, लाला लाजपतराय का हमारे सूबे पर कितना असर था—इत्यादि।

किन्तु स्वभाव से मैं ऊहापोह बहुत करता हूँ, समझता कम हूँ। समझने की शक्ति भी कम है। अतएव मुझे तो अपने मतलब की बात ज्यादा अच्छी लगती है। और मुझे सबसे अधिक प्रभावित करनेवाली बात लगी—खन्नाजी का सुन्दर स्वास्थ्य। भगवान् उन्हे चिरायु करें और इस मामले में किसी की नजर न लगे। मैं रोगी आदमी हूँ। अभी चालीस साल लाँघा है पर इस चालीस-बयालीस साल में कितने ही डाक्टर वैद्यों ने मेरा इलाज किया होगा। कभी पेट, कभी सर, कभी नाक, तो कभी दिमाग भी शायद खराब हो जाता हो।

पर मुझसे कही अधिक कर्मठ होते हुए भी खन्नाजी कभी बीमार न पडे। इतनी उम्र भी हो गई—आज तक कोई ऐसा डाक्टर या वैद्य ही न पैदा हुआ, जिसने उनका इलाज किया हो या एक पैसे की मुफ्त दवा ही उन्हें दी हो। ऐसे स्वास्थ्य के प्रति किसे ईर्ष्या न होगी! खन्नाजी का कथन है कि यह सब कुछ उनके सात्विक भोजन तथा खाद्य वस्तु सम्बन्धी उनकी तरह तरह की खोजो का परिणाम है। पर वह खोज हमारे प्रान्त-पति (वर्तमान राष्ट्रपति) टण्डनजी की तरह नही है कि जहाँ जायेंगे वहाँ अपने अनुकूल भोजन, वनफशे की चाय, नमक का अभाव आदि जरूरी होगा। खन्नाजी हमारे आपके साथ सबके जैसा भोजन कर लेंगे, पर नित्य के जीवन में उनका सयम बडा कठोर है। इस विषय में हम खन्नाजी का अनुकरण शायद न कर सकेंगे।

मैं डाक्टर को फीस देने को तैयार हूँ, जीभ को कष्ट नहीं। आखिर मेरी जीभ केवल बोलने के लिए नहीं बनाई गई है। उस बेचारी को स्वाद भी मिलना चाहिए। यह उसका नैसर्गिक अधिकार है। और इसके साथ हमने जीभ को एक और भी अधिकार दे रखा है —

> मुख आवै सोई कहै,
> बोलै नहीं विचार।
> हते पराई आत्मा,
> जीभ बाँधि तलवार॥

पर चित्त कहता है कि खन्नाजी का सिद्धान्त ठीक है। मनुष्य खाने के लिए नहीं पैदा हुआ है। भोजन केवल एक आधार है जिसके सहारे मनुष्य सचमुच मनुष्य बना रह सकता है। पर जीभ को भोजन और कुछ द का आदी बना देना इहलोक और परलोक दोनों को बिगाड देना है।
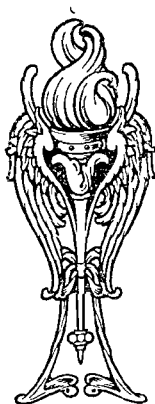
वे क्या हैं ?

लेखक, श्री रामस्वरूपजी गुप्त, एम० ए०, एम० एल० सी०

[इस लेख के लेखक श्री हीरालालजी खन्ना के किसी समय के विद्यार्थी हैं। उन पर खन्नाजी का क्या प्रभाव पड़ा, इस लेख में उसी की चर्चा है। खन्नाजी का हिन्दी प्रेम, छात्रों की सहायता, उनकी अनुशासन-प्रियता, उनके प्रतिकूल प्रचार उसका निराकरण, खन्नाजी का चरखा-प्रेम, उनका शिक्षा-क्षेत्र में काम, उनका गो सेवा में योग--इत्यादि सभी की चर्चा इस लेख में है। अंत में गुप्तजी लिखते हैं—"खन्नाजी का जीवन एक सन्तुलित जीवन का उदाहरण है।"]

प्रिंसपल हीरालाल खन्ना से सर्वप्रथम सम्पर्क में आने का अवसर मुझे आगरा में प्राप्त हुआ। सन् १९१६ या १७ की बात है। तब इन्होंने सेंट जान्स कालेज में व्याख्याता (lecturer) के पद पर कार्य आरम्भ किया था। उस समय मैं बी० ए० में पढ़ता था और कालेज की हिन्दी प्रचारिणी सभा का मंत्री था। श्री खन्नाजी विद्यार्थियों में हिन्दी प्रचार के कार्य में खूब योग देते थे। उनमें सौजन्य और स्नेह का भाव मानो प्रकृतिजन्य था, अतएव उनके व्यक्तित्व में एक आकर्षण था। हिन्दी प्रचार का काम वे बराबर करते रहे। और कानपुर में जब प्रोफेसर होकर वे आये तो यहाँ भी अदालतों में हिन्दी में मुहर्रिरी का काम सीखने और करने के लिए उन्होंने मुझसे कुछ छात्र मांगे। मैंने दो हिन्दी मिडिल पास विद्यार्थी भेजे थे। बाबू गिरधरदास भार्गव ने उनको अपने बस्ते पर काम सिखाया था और उनमें एक अब भी मुहर्रिरी कर रहा है।

विद्यार्थी वर्ग के प्रति खन्नाजी का सामूहिक रूप से सदैव स्नेह-भाव रहा और व्यक्तिगत रूप से वे बराबर उनकी सहायता करते रहे हैं। अध्यापन कार्य के प्रारम्भ से ही यह बात वर्तमान रही है और इस गुण के कारण वे सदैव विद्यार्थी वर्ग के प्रेम-पात्र रहे हैं। साथ ही वे उच्च कोटि के अनुशासक (disciplinarian) भी हैं और व्यवस्था बांधने और चलाने की विशेष योग्यता भी उनमें है। उनका जीवन आरम्भ से ही शिक्षा-क्षेत्र के लिए समर्पित था और इन गुणों के समुच्चय के कारण उसमें उन्होंने सफलता प्राप्त की है। परन्तु सफलता के पूर्व मनुष्य की खासी परीक्षा भी होती है। और खन्नाजी की भी हुई है। आज विद्यार्थी वर्ग में अनुशासन रखना कोई सहज बात नहीं है। फिर प्रिन्सपल हीरालाल खन्ना को तो उन स्थितियों में होकर गुजरना पड़ा है जब देश की स्वतंत्रता संग्राम का आह्वान युवक हृदय को आकर्षित करता था। वे उस आकर्षण को किसी रूप में प्रकट करने से अपने को रोक भी नहीं सकते थे और न कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार शिक्षा संस्थाओं से निकलने को तैयार थे। मुझे वे दिन याद हैं जब कानपुर में प्रिन्सपल हीरालाल खन्ना कांग्रेस के अथवा यों कहिए कि देश की स्वतंत्रता के विरोधी समझे जाते थे। न केवल समझे जाते, थे बल्कि गद्दार और देशद्रोही पुकारे जाते थे और जनसमुदाय में उनके प्रति ऐसी विरोधी भावनाएँ थी कि उनके ऊपर आक्रमण किया गया और उनको अपमानित किया गया। ऐसी परिस्थिति में भी मेरे मन ने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि वे कांग्रेस विरोधी हैं। देश की स्वतंत्रता का विरोधी होना तो उनके लिए कल्पना के भी बाहर की बात थी। कांग्रेस के अनेक मान्य नेताओं ने जिनमें आचार्य नरेन्द्रदेव का भी नाम है, प्रिन्सपल खन्नाजी से अपने प्रेम-सम्बन्ध को ऐसे समय में अक्षुण्ण रक्खा और जनसमुदाय की उतावली-

पूर्ण निन्दा-स्तुति को निराधार ही माना। प्रिन्सपल दीवानचन्द्र को भी इसी प्रकार जनसमुदाय के अपमान और आक्रमण का सामना करना पडा था। देशद्रोही अथवा स्वतनता विरोधी होने की आवाज तो इस दशा में भी वैसी ही निर्मूल, मूर्खतापूर्ण और निराधार थी। परन्तु काग्रेस के प्रति भाव और सहानुभूति और सद्भावना मे अन्तर अवश्य था। मुझे स्मरण है कि जब महात्मा गाधी की प्रेरणा से १९३२ में काग्रेस ने श्रम का मताधिकार (labour enfranchisement) स्वीकार किया था तब प्रो० हीरालाल खन्ना ने भी स्वय कताई का श्रम मजूर किया था और मैने ही उनके यहाँ चरखा पहुँचाया था। काग्रेस जनो में भी बहुत कम लोग है जिन्होने अपने इस व्रत अथवा कार्यक्रम को कायम रखा अथवा निभाया है और एक इसको ही क्यो कहें, काग्रेस के पिछले बीस वर्षो के इतिहास में यह विचित्र राजनैतिक व्यग रहा है कि हमने बार बार महात्मा गाधी की विचारधारा और उनके कार्यक्रम के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है, प्रस्ताव पास किये है और शपथें भी ली है, परन्तु वास्तविक रूप में या तो उनकी उपेक्षा करते रहे है या रस्म अदायगी के तौर पर मानते रहे है। अस्तु, शिक्षा के क्षेत्र को अपने जीवन का प्रधान कार्य-क्षेत्र रखकर भी श्री खन्ना जी ने लोकसेवा के अन्य कार्यो में भी यथावकाश बराबर योग दिया है। मैंने खन्नाजी को गो सेवा के काम में भी कानपुर मे योग देते देखा है। हिन्दी प्रचार का उल्लेख मैंने ऊपर किया है। शिक्षा के एक सेवा-कार्य को प्रधान रखते हुए अन्य कार्यों में सामायिक सहयोग देते रहना ही अपने समय, सामर्थ्य और योग्यता का अधिक से अधिक उपयोग करने की युक्ति है। श्री खन्नाजी का जीवन एक सतुलित जीवन का उदाहरण है जिसमे उन्होने विद्यार्थी वर्ग से प्रेम के साथ में अनुशासन प्रियता, उदारता के साथ म दृढता और सेवाकार्य के साथ मे व्यवहार-कुशलता का सतुलन किया है।
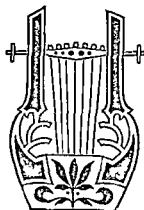
कुछ संस्मरण

लेखक, डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

[व्यक्तियों और गुणों के पारखी खन्नाजी का यह लघु शब्दचित्र उनके मित्र एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गणित विभाग के अध्यापक हिन्दी संसार के सुपरिचित विज्ञान विषयों के लेखक डा० गोरखप्रसाद ने प्रस्तुत किया है। हिन्दी के प्रति खन्नाजी का कितना अधिक प्रेम था और उन्होंने किस प्रकार प्रतिकूल वातावरण होते हुए भी हाईस्कूल व इन्टरमीडियेट बोर्ड में हिन्दी को परीक्षाओं का माध्यम बनवाया था इसकी चर्चा डा० गोरखप्रसाद के संस्मरणों में की गई है। डा० प्रसाद के इन शब्दों को हम शतशः दुहराते हुए भी न थकेंगे। परमेश्वर की कृपा से खन्नाजी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। वे आज भी क्रियाशील और सतर्क हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि वे बहुत समय तक इसी प्रकार स्वस्थ बने रहें और हिन्दी तथा शिक्षा के क्षेत्र में अन्य कार्यकर्ताओं को अपने परिपक्व अनुभव और पितातुल्य प्रोत्साहन से सहायता पहुँचाते रहें।']

श्री हीरालालजी खन्ना से मेरा प्रथम परिचय एक चंदे के संबंध में हुआ। खन्नाजी लाला दीवानचंदजी के साथ मेरे घर आए थे। चंदा या तो डी० ए० वी० कॉलेज, या वी० एन० एस० डी० कॉलेज के संबंध में था, यह मुझे अब ठीक स्मरण नहीं है कि किस कॉलेज के लिए, परन्तु उसी दिन से मैं बड़े भाई के समान दयालु खन्नाजी के स्वभाव पर मुग्ध हो गया। यह सन् १९२५ की बात है, उसी वर्ष मैं ग्रेटब्रिटेन से लौटा था। परन्तु खन्नाजी मुझे पहले से जानते थे क्योंकि इसके पूर्व एक बार मैं १९२२ में सुधाकर द्विवेदी कृत समीकरण-मीमांसा का संपादक नियुक्त हुआ था। इस पुस्तक को विज्ञान-परिषद प्रयाग, प्रकाशित कर रही थी। विभक्तियों को शब्दों से पृथक् छापा जाय या सटाकर—इस प्रश्न पर विज्ञान-परिषद् और सुधाकरजी के सुपुत्र श्रीपद्माकर द्विवेदी में मतभेद होने के कारण पुस्तक की छपाई कई महीनों तक स्थगित रही, और १९२३ के सितम्बर में मैं विदेश चला गया। इसलिए समीकरण मीमांसा के संपादन में मैं कुछ सहायता न दे सका। खन्नाजी विज्ञान-परिषद् के सदस्य और सहायक थे। इसलिए वे मेरे हिन्दी प्रेम से परिचित हो गये थे। १९२५ में पहली बार भेंट होने के अवसर पर समीकरण मीमांसा पर बात चली तो मुझे पता चला कि खन्नाजी के हृदय में हिन्दी के प्रति असीम प्रेम है। इस कारण मेरा-उनका संबंध और भी सुदृढ़ हो गया। जब कभी वे मिलते तो हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य की उन्नति की चर्चा होती। हिन्दुस्तानी ऐकेडमी से मेरे पास ज्योतिष पर हिन्दी में पुस्तक लिखने का जो प्रस्ताव आया उसमें खन्नाजी का हाथ अवश्य रहा होगा। वे वहाँ के अत्यन्त प्रभावशाली सदस्य थे। इंटरमीडियेट बोर्ड से भी मेरा संबंध खन्नाजी के ही कारण हुआ पहले—बिना मेरे कुछ कहे ही—परीक्षक के रूप में, पीछे गणित समिति के सदस्य के रूप में और अंत में स्वयं बोर्ड के सदस्य के रूप में। खन्नाजी इंटरमीडियेट बोर्ड के भी प्रभावशाली सदस्य थे।

खन्नाजी हिंदी में कार्य करने के लिए मुझे सदा ही प्रोत्साहित करते रहे मैं विज्ञान का संपादक हुआ स्वर्गीय श्री रामदासजी गौड़ और खन्नाजी के आग्रह से।

खन्नाजी के साथ मुझे अपने विश्वविद्यालय में, फिर इंटरमीडियेट बोर्ड और हिंदुस्तानी ऐकेडमी में काम करने का सुअवसर मिला है। मैं मन ही मन इस बात की प्रशंसा किया करता था कि किस प्रकार वे अपने प्रस्तावों की ऐसी पुष्टि किया करते थे कि वे साधारणतः सर्वमान्य हो जाते थे।

स्वराज्य मिलने के बहुत पहले की बात है जब खन्नाजी के प्रयत्न से इंटरमीडियेट बोर्ड में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि हाईस्कूल तक परीक्षाओं का माध्यम अनिवार्य रूप से हिन्दी हो और इंटरमीडियेट में परीक्षार्थी की इच्छानुसार। हाईस्कूल परीक्षा में छूट केवल उन लोगों को दी गई थी जो विशेष कारण दिखाकर डाइरेक्टर से अनुमति प्राप्त कर लें। यह दूसरी बात है कि उस समय के अँगरेज डाइरेक्टर ने अँगरेजी में उत्तर दे सकने की अनुमति सबको दे दी, इस बहाने कि हिन्दी में अच्छी पुस्तकें प्राप्य नहीं थी। परन्तु उस समय हिन्दीवाला प्रस्ताव ही स्वीकृत करा लेना टेढ़ी बात थी। उस समय वातावरण ही कुछ और था। प्राय सभी सरकारी नौकर डाइरेक्टर का मुँह जोहा करते थे। सरकारी सहायता पानेवाले स्कूल और कॉलेजो के अध्यक्ष भी डरा करते थे। परन्तु खन्नाजी की प्रेरणा ऐसी थी कि अधिकाश सदस्य हिन्दी के लिए वोट देने को राजी हो गये।

मैंने ऊपर केवल उन्ही बातो में से एक-दो की चर्चा की है जिनमें खन्नाजी का प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा। खन्नाजी की अन्य कृतियो का गुणगान और लोग करेंगे ही, यह समझकर मैं उन सबके बारे में मौन हूँ।

व्याख्यानदाताओं को स्वभावत हर्ष और गौरव का अनुभव होता है जब उनके व्याख्यानों को सुनने प्रतिष्ठित जन आते हैं। खन्नाजी ने मेरे कई व्याख्यानो को सुना है और उसकी प्रशसा भी की है। कानपुर में भी कई बार व्याख्यान देने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है। उन्हीं व्याख्यानों में से एक का साराश मैं यहाँ श्री खन्नाजी को सादर अर्पित करता हूँ।

परमेश्वर की कृपा से खन्नाजी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। वे आज भी क्रियाशील और सतर्क हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि वे बहुत समय तक इसी प्रकार स्वस्थ बने रहे और हिन्दी तथा शिक्षा के क्षेत्र में अन्य कार्यकर्ताओं को अपने परिपक्व अनुभव और पितातुल्य प्रोत्साहन से सहायता पहुँचाते रहे।

समाज का कल्याण

श्री डाक्टर बाबूरामजी सक्सेना, प्रयाग विश्वविद्यालय

[श्री डाक्टर बाबूरामजी सक्सेना प्रयाग विश्व-विद्यालय के ख्यातनामा प्राध्यापक हैं। इस लेख में विज्ञ लेखक ने उन सभी प्रश्नो को सामने रखा है जो आजकल के चिंतनशील व्यक्तियो के सामने है। स्वतंत्र भारत का क्या यही चित्र है—ये निराशापूर्ण भाव आज बहुतो के मन मे जागरित हो रहे है। लेखक ने उनकी चर्चा भी की है और अपने ढग से उनका निरूपण भी किया है। लेख सामयिक और रोचक है।]

भारत को स्वराज्य प्राप्त किए हुए ढाई वर्ष हो गये। हम अपने देश के मालिक है। अँगरेज चले गए। हमारे सामाजिक जीवन में अडगे डालनेवाले अन्य लोग या तो पाकिस्तान चले गए या जो रह गए वे इतने दब गए कि उपद्रव करने की जरा भी हिम्मत नही रखते। विदेश से भारत पर आक्रमण होने की भी निकट भविष्य में कोई सभावना नही दिखाई पडती। फिर भी क्या हम स्वस्थ है, नीरोग है? क्या जिस आनन्दमय वायुमडल में स्वस्थ मनुष्यगण (राष्ट्र) को विचरना चाहिए वह हमें प्राप्त है? क्या वह सुख और शान्ति जो स्वाधीन राष्ट्र को मिलनी चाहिए वह हमें मिल रही है? प्रत्येक सहृदय के मुख से उत्तर निकलेगा कि नहीं। तब फिर विचार करना चाहिए कि कारण क्या है कि राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त कर लेने पर भी हम अशान्ति और दुःख के पराधीन है।

किसी समाज को सुव्यवस्थित रखने के लिए दो बाते परम आवश्यक है, एक तो सुनिश्चित राजनियम और उनका राजशक्ति द्वारा कठोरता से पालन और दूसरे जागरूक लोकमत।

राजनियम राष्ट्र के हित के होने चाहिए और सरल तथा सुबोध। राष्ट्र का सविधान बन गया है, विदेशी सविधान के आदर्श पर बना है इसलिए जटिल और पेंचीदा है। तथापि अच्छा है। उसी को आधार मानकर अब राष्ट्र के सारे राजनियम, फौजदारी, दीवानी, माल आदि सभी में ऐसे सशोधन हो जाने चाहिए कि भारतीय जन अनायास ही न्याय पा सके और उसे वकील और अहलकार

के चगुल से मोक्ष प्राप्त हो सके। साधारण मनुष्य के मन से अभी पुलिस का डर नही निकल पाया है। इधर बरेली आदि दो-चार जगहो पर जो अत्याचार हुए हैं, उससे जनसाधारण की दृष्टि में स्वतन्त्र भारत की पुलिस भी अभी तक भक्षक ही है रक्षक नहीं। न्याय की प्राप्ति में देरी का क्या कहना ? हाईकोर्ट के फैसलो को यदि देखें तो पता चलेगा कि शायद ही कोई मुकदमा हो जिसका एक साल के भीतर फैसल हो गया हो। सामान्य अवधि तो दो-तीन साल की है। और फिर तीन, चार, पाँच अदालतो में अपील हो सकती है और जब तक अन्तिम अदालत का निर्णय न मिल सके, मुकदमे के दोनो पक्षवाले त्रिशकु की तरह लटके रहते हैं। यह अवस्था समाज के कल्याण की नही है। निश्चित न्याय निश्चित अवधि के भीतर मिलना चाहिए। इस ध्येय की प्राप्ति मे जितनी बाधाएँ हो वे यथाशक्ति दूर करनी चाहिए। इसकी अप्राप्ति के कारण ही समाज में एक नया पेशा ही बन गया है—मुकदमेबाज का है, जो समाज के स्वास्थ्य मे घुन की तरह लग गया है।

सुदृढ और सुव्यवस्थित राजनियमो का होना ही आवश्यक नही, उनका दृढता से पालन होना भी साथ ही साथ आवश्यक है। शारदा ऐक्ट बताकर बाल-विवाह की अवहेलना करना हास्यास्पद है। अस्पृश्यता को सविधान में राजदड्य बताकर हरिजनो के प्रति काशी के पडितो के दूषित व्यवहार को स्थिर रहने देना सविधान का उपहास करना है। यदि कोई नियम ऐसे हो जिनका पालन करवा पाना प्राय असभव है तो ऐसे नियमो का राजनियम सग्रह में से निकाल देना ही अच्छा होगा। नियमो को जारी करने के पूर्व समाज की क्षमता का भली भाँति विचार कर लेना बहुत जरूरी होता है। यदि म्युनिसिपैलटी यह नियम बनाती है कि सडक और नाली को शौचालय की तरह प्रयोग में न लाया जाए तो साथ ही साथ उसका कर्तव्य है कि जनता की सुविधा के लिए स्थान स्थान पर शौचालय बनवा दे और वे ऐसे स्वच्छ रखे जायें जिनमें जनसाधारण को जाने में सकोच न हो। इसी प्रकार अन्य नियमो को भी सोच-समझकर बनाना चाहिए।

कितने भी दृढ, निश्चित और सुमान्य राजनियम हो, कोई समाज केवल राजनियमो के आधार पर ठहर नही सकता। व्यक्ति के नियमन के लिए चार चीजें गिनाई गई हैं—श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्मा का स्वप्रिय। श्रुति और स्मृति के आधार पर श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र (स्मृति ग्रन्थ) बने थे। सदाचार और आत्मा के स्वप्रिय की नाप तौल समाज करता है और यह लोकमत के द्वारा होता है। जिस समाज मे लोकमत सुदृढ रहता है वह समाज पुष्ट, स्वस्थ और सुगठित रहता है, पर जिस समाज मे लोकमत क्षीण हो जाता है, वहाँ नियमो की अवहेलना के कारण व्यभिचार फैल जाता है और वह समाज छिन्न-भिन्न होकर धराशायी हो जाता है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति उच्छृखल हो जाते है, उन्हे देखकर दूसरो को स्वच्छन्द हो जाने का प्रोत्साहन मिलता है और समाज की सारी व्यवस्था बिगड जाती है। अपेक्षा दृष्टि से मुसलमान समाज अपने देश में अधिक दृढ रहा है, उसमें प्रचलित विचार धारा (अच्छी या बुरी) से विद्रोह करनेवालो की सख्या हिन्दू समाज की विचार-धारा के विद्रोहियो की सख्या से बहुत कम है। इसका कारण केवल मुस्लिम लोकमत की जागरूकता और दृढता है। यह आवश्यक नही कि ऐसा सुदृढ समाज अन्य समाजो से अधिक सस्कृत या सभ्य हो। अभी अभी समाचार प्रकाशित हुआ है कि सथाल समाज के किसी व्यक्ति ने अपनी पुत्रवधू को रखेल के रूप में रख लिया था, जो बात उनके समाज के नियमो के प्रतिकूल थी। उस समाज के

सोलह सौ व्यक्तियो ने उस व्यक्ति पर धावा बोल दिया और यदि पुलिस बीच में न पड़ गई होती तो उस उच्छृखल व्यक्ति का काम समाप्त हो चुका था। यह है उदाहरण एक सुदृढ समाज की जागरूकता का। सथाल समाज उतना सुसस्कृत नही जितना साधारण हिन्दू-समाज। पर हिन्दू समाज में कोई प्रेरणा उच्छृखल व्यक्ति को स्वय दड देने की अथवा राजनियमो से दडित कराने की नही है। प्राय एक हजार वर्ष पूर्व जब विदेशी सस्कृत से सघर्ष हुआ था तब हिन्दू समाज ने अपनी रक्षा के लिए अपने को बिरादरी कही जानेवाली छोटी छोटी टुकडियो मे बाँट लिया था। वह क्रम कई सौ साल चला और सफलता से चला। पर इधर सौ-सवा सौ साल से बिरादरियो का सगठन खोखला पड़ गया है और जरूरत है इस समस्या को फिर से सुलझाने की।

भारतीय समाज आज अस्तव्यस्त है, कोई परस्पर बन्धन नही, उच्छृखल व्यक्ति को कोई ताडना नही मिलती। व्यभिचारी, चोरबाजारवाले, घूसखोर को कोई भय नही। अँगरेज जब थे तब जनसाधारण के मन मे डर था कि कोई अपराध होगा तो दड मिलेगा। स्वराज प्राप्ति के साथ ही जहाँ सज्जन के मन से भय निकल गया वहाँ दुर्जन भी खुल खेलने लगा। प्रत्येक को किसी न किसी एम्० एल० ए० का वरदहस्त प्राप्त है जो उसे गड्ढे से उबार लेगा। अतिथि-सेवा, वृद्ध माता-पिता की शुश्रूषा की भावना,अध्यापक और शिष्य का परस्पर स्नेह-सद्भाव इत्यादि का जनसाधारण में और विशेषकर पढे-लिखे समाज मे लोप सा होता दिखाई देता है। स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम भाव, मालिक और नौकर के सम्बन्ध, सास और बहू के नाते आदि में लौट-पौट होता दिखाई देता है। इन परिवर्तनो के कई कारण है। एक तो शताब्दियो की परतन्त्रता और फिर पश्चिमी सभ्यता के भौतिकवाद से हमारे अध्यात्मवाद का घोर सघर्ष, दोनो ने हमारी सभ्यता की जडे हिला दी हैं। प्रत्येक व्यक्ति 'स्व' की ओर केन्द्रित होता जा रहा है। उपनिषदो के भूमा की ओर से उसका ध्यान हट रहा है। ऐसी परिस्थिति में लोकमत के दृढ़ होने की बात तो दूर, यही पता नही चलता कि लोकमत है क्या। एक ही मुहल्ले में या गाँव में सदाचार के ठीक विपरीत कोई व्यक्ति काम कर रहा है, कुछ उसके पक्ष में हो जाते है, कुछ विपक्ष में। परिणाम यह होता है कि अपराधी व्यक्ति मनचाही बात करता रहता है, कोई उसका बाल बाँका नही कर पाता। यह परिस्थिति समाज के लिए घातक है। समाज के व्यक्तियो में जो उपेक्षा की भावना घर कर गई है, उसे जल्द से जल्द हटाने की जरूरत है। समाज के सर्वमान्य आचार के विरुद्ध जो कार्य कर रहा हो, उसको इस दृष्टि से देखना चाहिए कि इस विरुद्ध आचार की प्रतिक्रिया मेरे स्वजनो पर भी होगी। उस व्यक्ति पर दबाव डालना चाहिए कि वह उसे छोड दे। प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, अपितु सबकी उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिए। यदि अपने समाज के व्यक्ति इस भावना से प्रेरित होगे तो समाज शीघ्र ही स्वस्थ हो सकेगा।

भारतीय जन-समाज ने ही ससार के समक्ष अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा तप शौच सन्तोष स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान के यम-नियम उपस्थित किये थे। जब लोकमत जागरूक था तब इनके अनुकूल आचरण होता था। आज हमारे देश में लोकमत छिन्न-भिन्न है तभी समाज की अवस्था विशृखल है। सदाचार की प्रेरणा सच्ची शिक्षा द्वारा मिल सकती है। इसलिए शिक्षा को केवल जीविकोपार्जन का साधन न मानकर उत्तम जीवन का साधन बनाना चाहिए। इस कार्य के लिए आदर्शवादी, त्यागी, तपस्वी और सत्यनिष्ठ शिक्षको की परम आवश्यकता है। उन्ही के द्वारा यह परम ध्येय प्राप्त हो सकता है। वही समाज को फिर से कल्याण दे सकते हैं।

कुछ रेखाएँ

लेखक, आचार्य पं० सद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए०

[सफल रेखाचित्र की परिभाषा करते हुए किसी ने ठीक ही कहा है—"रेखाचित्र छाया और प्रकाश और अनूठे रंगों के सूक्ष्म, संतुलित सम्मिश्रण की जादूगरी है।" इस कसौटी पर कसने पर आप प्रस्तुत रेखाचित्र को एक अनुपम आकर्षणसंयुक्त इन्द्रजाल ही पायेंगे। "तीस वर्षों के सम्पर्क की गरिमा का बोझ मन और लेखनी पर अनुभव करते हुए भी जो यह लिख सकता है कि 'खन्नाजी की जीवनी एक नितान्त साधारण व्यक्ति की जीवनी है" उसकी दृष्टि निश्चय ही स्तुति पर न होकर सत्य पर ही है। अवस्थीजी ने ठीक ही कहा है, 'किसी के गुणों का गान नहीं करना है, पर उन्हें सुझाना मात्र है। कलाकार को काव्य नहीं लिखना है, उसे इतिहास देना है। स्वप्न नहीं सजाने हैं, वस्तुस्थिति रखनी है।" और इस पैमाने से नापने पर अवस्थीजी ने खन्नाजी में पाया है कि 'ये तो छोटी-छोटी बातों को साधना के साधारण मार्गों से ले जाकर खूब ऊँचा उठा देते हैं और लोग चमत्कृत हो जाते हैं। वे कवि नहीं हैं—पर काव्य-मर्मज्ञ हैं। साहित्यिक नहीं हैं पर साहित्य रसिक हैं। इनकी आत्मश्लाघा और कीर्ति-कामना को आदर्श की उपासना से बल मिलता है उसमें निज की महान् प्रेरणा के कारण भ्रम हो सकता है परन्तु उस निज में स्वार्थपूर्ण निजत्व की गंध नहीं रहती।"]

रेखाएँ ढीलीढाली और धीमी हैं। उनमें इतनी दृढ़ता और चमक नहीं है कि वे रूप को बाँध सकें। मन-मानस में सीपियाँ नहीं हैं जो मोतियों को बाहर भेज सकें। किसी ने कहा है कि लेखनी की जिह्वा और मसि पात्र दोनों ही काले हैं। पर उँगुलियों के भी तो तीन पोर हैं जहाँ से वे बल खा जाती हैं, फिर काली सतरों की सृष्टि करनेवाली सही परन्तु लेखनी को कसकर पकड़ने का बल कहाँ?

पर यह बेबसी क्यों? किसी अरूप को सरूप थोड़े ही बनाना है और न सरूप को ऊपर उठाकर अरूप कर देना है। किसी के गुणों का गान नहीं करना है पर उन्हें सुझाना मात्र है। फिर प्राकृत जन की आराधना समझकर सरस्वती के रूठने की ही क्या बात है? कलाकार को काव्य नहीं लिखना है उसे इतिहास देना है। स्वप्न नहीं सजाने हैं वस्तु-स्थिति रखनी है।

फिर भी मन कुछ विचित्र बना है। उसके पास प्रत्येक व्यक्ति के रागद्वेष के खेत अलग-अलग हैं। परिस्थितियाँ इन खेतों में बीज वपन किया करती हैं ये दो खेत खूब लहलहाया करते हैं पर दोनों के बीच की मेड़ खूब स्पष्ट दिखाई देती है। हाँ, कुछ व्यक्तियों के सम्बन्ध में दूसरा खेत अधिक अंकुरित और हरा-भरा रहता है। ये दोनों खेत कल्पना के संकुलित कोष हैं। परन्तु राग और द्वेष में से जो भी भाववृत्ति किसी समय उद्दीप्त होती है उसी को उत्तेजना देनेवाला अंकुरित खेत सामने आ जाता है। दूसरे खेत का ध्यान भी नहीं रहता।

अतएव भावना के जागरण में जहाँ एक घोर सूझ के दर्शन होने लगते हैं वहाँ उसके भावुकता बनने से एकांगीपन भी आ जाता है। निज की अनुकूलता और प्रतिकूलता से सिंचित रागद्वेष के इन तत्तों का उपयोग समबुद्धि से करना ऊँचे कलाकार का लक्षण है। पर सबमें यह सब बुद्धि नहीं उगती। इसी से इतिहास बिगड जाते हैं, काव्य भाव के गीत बनकर रह जाते हैं, कथाएँ केवल कहानियाँ रह जाती हैं, नाटक और उपन्यास अभिनय का चमत्कार मात्र रह जाते हैं और जीवनियाँ अवास्तविक गाथाओं का रूप धारण कर लेती हैं।

× × ×

इन पंक्तियों के लेखक पर श्री हीरालाल खन्ना का बड़ा भारी आभार है। उनके तीस वर्षों के सम्पर्क की गरिमा का बोझ मन और लेखनी दोनों पर है। इसी महत्त्व को बिना अत्युक्ति और उत्तेजना के सामने रखता हूँ और बोझ के वास्तविक रूप की पार्थिवता को भी बिना अन्याय किये हुए दिखा देना हूँ।

खन्नाजी की जीवनी एक नितान्त साधारण व्यक्ति की जीवनी है। रीवाँ राज्य के किसी नगण्य स्थान में नवम्बर सन् १८८९ में उनका जन्म हुआ। उनका परिवार पंजाब प्रान्त से नजीबाबाद में प्रवासित होकर लखनऊ में रहने लगा था। विधवा माता छोटे बच्चे के साथ आठ आने प्रतिमास की कोठरी में कसीदा काढकर अपने और अपने पुत्र की जीविका निर्वाह करती थीं। विधवा-पुत्र की सारी उद्दण्डता इस बालक में थी। पैसों के कचालू खा जाना और पढने में बिल्कुल मन न लगाना, दिन भर मारे मारे घूमना, माता को खूब खिझाना, साथियों से खूब झगडना, मानसिक बल के स्थान पर शारीरिक बल के फेर में अधिक रहना, यही सब इस बालक की जीवनी के आरम्भिक पृष्ठों की रेखाएँ हैं। इस 'होनहार बिरवा" में कहीं भी 'चिकने पत्ते" न थे।

जीवन की एक आकस्मिक घटना ने इस अनाथ बालक को एक रायबहादुर के पोषण और संरक्षण में पहुँचा दिया। उनके दो पुत्र और एक निकट सम्बन्धी का आत्मज भी उन्हीं के साथ रहते थे। ये सब पढते थे। रायबहादुर की धर्मपत्नी इस अनिमंत्रित स्वर्णिम बालक के प्रति कभी भी स्निग्ध न हो सकीं। अपने कुटुम्ब का उच्छिष्ट भोजन, बचा-खुचा मीठा और दूध, कपडे के उतरन पर इस बालक को पोषित करने की चेष्टा की गई। इससे इसके व्यक्तित्व पर बडी अपमानजनक ठेस लगती थी। स्वेच्छाचारिता पर चलनेवाले व्यक्ति का 'स्व' कभी-कभी आवश्यकता से अधिक भी बलवान् हो जाता है और वह 'स्व' की उपेक्षा और अपमान को सहन नहीं कर सकता इस छोटे हीरालाल पर अपमान के आघातों का प्रभाव दो रूपों में दिखाई दिया। एक तो यह पढने में खूब परिश्रम करने लगा और अपने सम्बन्धी तीनों साथियों से अच्छा हो गया और दूसरे यह रायबहादुर रानी की जूठन की उदारता से बचने लगा। रायबहादुर के यहाँ चनों का सदावर्त प्रतिदिन बँटता था। यह बालक कँगलों के चनों को चुपके से अपने बक्स में रख लेता और दो-दो, तीन-तीन दिनों तक उन्हीं को खाकर निर्वाह करता और रायबहादुर की पत्नी का दिया भोजन न करता।

कदाचित् छोटेपन का यह प्रसंग भी हीरालाल खन्ना के जीवन को मोड देने में एक बडा महत्त्व रखता है। इसका अधिकृत उत्तर तो कोई मनोविज्ञानवेत्ता ही दे सकेगा परन्तु यह निश्चय-सा प्रतीत होता है कि रायबहादुर के घर में बालक का 'स्व' अपमान के घातों से खूब बलिष्ठ बनता गया और इतना तनकर खडा हो गया कि बालक का सारा लक्ष्य उसी की रक्षा में तत्पर हो गया। जहाँ एक ओर उसमें स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता, निज के शक्ति में अटूट विश्वास, धर्म में निष्ठा उत्पन्न हुई वहाँ दूसरी ओर

अनम्रता, अविनय, रूखेपन, कठोरता को भी पोषण मिला। आगे चलकर जीवन के अनेक घात प्रतिघात में बालक को पड़ना पड़ा और तरुण से वृद्ध होते-होते कठोरता और मृदुता, उग्रता और नम्रता, असहिष्णुता और उदारता का सामंजस्य बहुत कुछ स्थिर हुआ परन्तु ये दोनों विरोधी गुण उसमें बिल्कुल अलग-अलग सदा ही बने रहे। विरोधी गुणों के पूरे समन्वय से दैनिक व्यवहार में जो शील का एक सर्वानुकूल और सर्वप्रिय नागरिक रूप निखर आता है उसे उदय होने का अवकाश न मिला।

परन्तु अपने-अपने स्थान पर खन्नाजी के दोनों पक्षों के तत्त्वों ने उन्हें बड़ी सहायता पहुँचाई। वे मित्रों के लिए बड़े नम्र, उदार, पराकाष्ठा तक शिष्ट, नितान्त निरभिमान हर प्रकार की सहायता देनेवाले, संकटमोचन है, पर अपने व्यक्तित्व का अपमान करनेवाले को वे बिल्कुल सहन नहीं कर सकते।

गोस्वामी जी की यह पंक्ति उन्हें बहुत प्रिय है—

"जो रन हमहिं प्रचारहिं कोई,
लड़हिं सुखेन काल किन होई"।

और इसे वे दोहराया भी करते हैं। दो प्रतिकूल तत्त्व उनके व्यक्तित्व में अपने-अपने संदर्भ में इतने प्रबल हैं कि जिसके चपेट में जो पड़ जाता है उसके लिए रुककर यह सोचना कि खन्ना जी में कोई प्रतिकूल तत्त्व भी है असम्भव है। वह अपना ही घाव कुरेदा और देखा करता है अथवा उनकी कृपाओं में डूबा रहता है, दूसरा पक्ष उसके सामने ही नहीं आता। परहित कामना, परदुख कातरता, शरणवत्सलता, दया दाक्षिण्य इत्यादि गुणों में धन, बल और सम्मान खोकर भी वे जितने साहस से रस लेना जानते हैं उतनी ही निर्भीकता से वे संघर्ष में भी रमण करते हैं। विरोध में उनका बल उभर आता है और उदारता में उनका सौजन्य बिखर पड़ता है।

जैसे एक ओर उनके अपमान ने 'स्व' को उभार कर बड़ा बलवान् बना दिया, यहाँ तक कि वे भागकर बम्बई पहुँच गये और उसी छोटी आयु में कुली बनकर अपना जीवन निर्वाह करने लगे जिसमें किसी भाँति वे अपमान से बचे और अवसर मिलने पर जापान जाकर एक बड़े व्यक्ति बने, उसी प्रकार उनके किसी सम्बन्धी की वेश्या की गोद ने इस छोटे से बच्चे को नितान्त प्रशान्त, प्रेममय, मृदुल और कोमल बना दिया था। खन्नाजी अब भी कहा करते हैं "उस छोटी-सी आयु में मेरे जंगलीपन को पालतू बनाने में उस वेश्या की गोद ने बड़ी सहायता दी और उसमें मुझे अपार शान्ति मिलती थी। उस रमणी का इस बालक पर निज पुत्रवत् वात्सल्य था। कदाचित् यह प्रेम भी इस बालक के जीवन में आयु के साथ साथ बढ़ता रहा। इसकी परमावस्था के दर्शन खन्नाजी के पत्नी प्रेम में दिखाई दिये। इस सम्बन्ध में मेरी कभी खुलकर तो उनसे बातें नहीं हुई पर परिस्थितियों का संदर्भ इसी ओर संकेत करता है। उनका विवाह सन् १९१४-१५ में हुआ था और केवल पाँच वर्षों के बाद उनकी पत्नी सन् १९१८ में गोलोक पधार गईं। इसी छोटे समय में प्रेम की दृढ़ता इतनी अधिक हो गई थी कि विधुर होने के समय कम आयु होने पर भी खन्नाजी ने दूसरा विवाह करने की बात भी नहीं सोची।

खन्नाजी ने बातों के प्रवाह में एक बार एक घटना का उल्लेख मुझसे किया था। एक बड़े पत्थर को स्थानान्तरित करने के लिए इनकी मित्र मंडली प्रयास कर रही थी। खन्नाजी की पत्नी सामने खड़ी थी। किसी का प्रयास सफल नहीं हुआ। खन्नाजी भी प्रथम प्रयास में विफल रहे। उन्होंने अपनी पत्नी की ओर सहसा देखा। कहते हैं कि उन्हें पत्नी की मुद्रा में एक ऐसा आलोक, एक ऐसी स्फूर्ति, एक ऐसी प्रेरणा मिली कि दूसरी बार उन्होंने भरपूर बल लगाकर पत्थर को हटा दिया। यह स्फूर्ति अपार प्रेम की

ही थी, स्नेह की एकनिष्ठा की थी। पत्नी ने सन् १९१७ में अपने सोहाग का फूल और अनुपम प्रेम की ग्रंथि 'नदो' के रूप में विसर्जित की। यह इस दम्पति की एकाकी सन्तान है। मधुरता और कोमलता इस बालक में आदि से लेकर अब तक अक्षुण्ण है। खन्नाजी की पुत्रवधू भी नितान्त सरल, गृहकार्य में पटु, उदारता का प्रतिरूप, निश्छला शिष्टाचारिणी और मृदुभाषिणी है। अपने सौजन्य और शील मे वह अपने पति मे कही आगे है।

खन्नाजी भावुक है पर उनकी भावुकता दिखाई देने की वस्तु नही है। उन्होने अपनी समस्त भाव-वृत्तियो को चिन्तना के आवरण में दबा रखा है। वे बुद्धि-प्रधान प्राणी है। भावरूप को वे मानव-दुर्बलता समझते है। किसी के आँसू उन्हे विचलित नही कर सकते, किसी का रोना उनकी सतर्कता को बहका नही सकता फिर भी उन्हे काठ का व्यक्ति न समझना चाहिए। उनके पास हृदय है, कोमल भावपक्ष है और स्पदनशीलता भी है। अपने एकाकी पुत्र की घोर बीमारी में मैने उन्हे धैर्य के साथ औषधि-व्यवस्था करते देखा है और उसकी मरणासन्न स्थिति में छिपकर आँसू गिराते भी देखा है। अपने गुरुवर स्वनाम-धन्य स्वर्गीय महामना मालवीयजी के निधन पर व्याख्यान के बीच फूट फूटकर रोते भी सुना है। कालेज से विदा होते समय अध्यापको के मध्य में वाणी में कण्ठागुरुता और स्वरावरोध भी देखा है। कहने का अभिप्राय यह है कि खन्नाजी मे भावुकता की प्रचुर मात्रा है पर उनमें अनुपम नियनण भी है।

भाववृत्ति को नियन्त्रित रखना मानव को लम्बे अभ्यास से प्राप्त होता है। बात बात पर रोने हँसने-वाले और हँसने-रोने से प्रभावित होनेवाले नारीरूप नर तो बहुत देखने में आते है। यह अभ्यास खन्नाजी ने जीवन के कर्मपक्ष पर अधिक बल देकर किया है। उनका जीवन एक कर्मठ का जीवन है। वे परिस्थिति की मीमासा करने में उभयपक्षा के लम्बे ऊहापोह में, बुद्धिकौशल और बुद्धि-विलास मे विश्वास नही करते। थोडी गहराई से खीचकर निष्कर्ष तक पहुचते ही वे पूरे योगी के मनोयोग के साथ एकनिष्ठा से कर्म में रत हो जाते है। उनकी आश्चर्यजनक सफलता का यही रहस्य है। प्रात काल से सध्याकाल तक कालेज में बैठे-बैठे काम करते रहना, जेठ के मध्याह्न में खडे होकर कानपुर स्कूल का भवन बनवाना-छोटी-छोटी वस्तुओं के स्वीकार-पत्र प्राप्त करने के लिए इधर उधर कार्यालयों मे समय-कुसमय मारे-मारे घूमना, अपने व्यक्तिगत प्रभाव और उपकार को सस्था के साधारण हित के लिए उत्सर्ग कर देना क्या कोई साधारण बात है? उनके कार्य में एक धुन रहती है, और उनकी धुन में कार्य प्रवाह को बल मिलता है।

कार्य-विस्तार में जिसे अटूट लगन है, जो सफलता और विफलता की उपेक्षा करने के व्यापार में रत रहता है उसकी साधना तपस्या है, उसका कर्म कर्मयोग है। ऐसे कर्मठ की भावना में जिसे स्वार्थ की गध आती है अथवा जिसे छल और प्रपच दिखाई देता है उसे अपनी वृत्ति को पवित्र करने की आवश्यकता है उसे अपने मल को धो डालने की व्यवस्था करनी चाहिए। दूसरे के मुख पर कालिख पोतने-वाला पहले अपने हाथ काले करता है। वैसे तो प्रत्येक कार्य के अनेक पक्ष होते है। मन को ऐसी मलिन मक्खिका क्यों बनाया जाए कि वह मल-मूत्रवाले पक्ष पर ही बैठे। उसे मधुर पक्ष पर बैठाल्ने का स्वभाव डालना चाहिए। इस सम्बन्ध में तो विचारको का यह मत-निश्चय है कि परहित कामना के कार्यों में व्यस्त मानव को अपवित्रता को प्रश्रय देना असम्भव है। हाँ, यदि आरम्भ ही बिगडा हुआ है और आदर्श ही भ्रष्ट है तो बात दूसरी है। पर फिर व्यापार में इतनी एकनिष्ठा आ ही नही सकती।

इसी एकनिष्ठा और मनोयोग के कारण खन्नाजी जिस कार्यक्षेत्र में उतरे वहाँ उनका नाम हो गया। हाईस्कूल पास करने के पश्चात् कायस्थ पाठशाला से उन्होने इटर मीडिएट पास किया और

बी० एस० सी० में म्योर सेंट्रल कालेज, प्रयाग से पढकर सफल हुए। सी० ए० बी० हाईस्कूल, प्रयाग म विज्ञान-अध्यापक के पद पर बडी कुशलता से कार्य करने लगे और वही रहते हुए उन्होने एम० एस० सी० किया। उनकी कार्य-कुशलता ने सेंट जॉन्स कालेज के तत्कालीन आचाय श्री डेविड महोदय का ध्यान आकृष्ट किया और वे उस कालेज के गणित के अध्यापक के स्थान पर काम करने लगे। खन्नाजी अपने दृष्टान्तो में डेविड महोदय की वडी प्रशसा किया करते है और कदाचित् उनके अध्यवसाय और निश्छल स्वभाव से इन्होंने वहुत कुछ सीखा है। अपने सहकारी अध्यापक की वेतन-वृद्धि न होने के कारण स्वय अपनी वेतन-वृद्धि को अस्वीकार करने के इनके साहस का डेविड महाशय पर भी वडा प्रभाव पडा था और उन्हाने बाध्य होकर सबकी वेतन-वृद्धि की थी। उदाहरण साधारण है पर त्याग और उदारता के इस प्रसग से खन्नाजी के व्यक्तित्व का पता लगता है।

जिन व्यक्तियो ने इन्हे छात्र-जीवन में आर्थिक सहायता दी थी उनका नाम ये बडे आदर और गौरव से लेते है। प्रयाग निवास में इनका सबसे बडा गौरव स्वर्गीय महामना मालवीयजी का सम्पक था। वे इन्ह पुनवत् मानते थे और सहायता दते थे। ये उन्हे पिता से अधिक आदर करते थे और उनकी सेवा करते थे। उनके व्यक्तित्व क ये इतने निकट थे कि इनका जीवन उचित मार्ग पर लाने में उनका वडा भारी श्रेय है। मालवीयजी से खन्नाजी ने दो बहुत बडे गुण सीखे।

उपयोगी सस्थाओ के निर्माण की धुन और इस कार्य के लिए चदा एकत्रित करने का ढग। कानपुर में शिक्षा-सस्थाओ के निर्माण करने के लिए खन्नाजी ने चन्दा एकत्रित करने का व्यवसाय सा कर रखा था और न जाने कहाँ से सहस्रो रुपए ले आते थे। चन्दे के माँगने में वे किसी से चूकते न थे। यहाँ तक कि अपने पुत्र से भी चन्दा माँगते थे। कदाचित् देश के बडे से बडे इने गिने भिखारियो में खन्नाजी का नाम आ सकता है।

माँगने की भी एक कला होती है। खन्नाजी अवसर, स्थान और व्यक्ति को खूब पहचानते है। वे बडे गौरव के साथ भिक्षा माँगते और लेते है। यह ठीक है कि मालवीयजी की मधुरता और व्यवहार की नागरिकता और उनका प्रभाव खन्नाजी में उतनी मात्रा मे न था पर लगन और अध्यवसाय म खन्नाजी किसी भी माँगनेवाले से कम नही ह। यही उनकी सफलता का कारण है। खन्नाजी का सारा समय सार्वजनिक कार्यो में लगता है। शिक्षा-सस्थाओ के अतिरिक्त खन्नाजी ने कानपुर की अन्य सार्वजनिक सस्थाओं में भी पर्याप्त योग दिया है। यू० पी० चेम्बर आफ कामस में उनका सहयोग आरम्भ से था।

खन्नाजी की प्रतिभा का उपयोग उस समय पूर्ण रूप में आरम्भ हुआ जब वे बी० एन० एस० डी० कालेज म सन् १९२७ में आये और स्वतन्त्र रूप से आचाय के पद पर काय करने लगे। यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता नही है कि उन्होने इस कालेज को क्या से क्या बना दिया। इस कालेज की सर्वमुखी उन्नति का पूरा श्रेय खन्नाजी को है। वास्तव में वही प्रबन्ध समिति थे, वही आचाय थे और वही कालज थे। इसकी ईंट ईंट में खन्नाजी के अध्यवसाय और योग्यता का इतिहास अंकित है। बी० एन० एस० डी० कालेज का खन्नाजी का पुत्रवत् स्नेह आरम्भ से रहा है। इसकी बढती और उन्नति के सामने उन्होने नदो तक का ध्यान नही रक्खा इसकी भलाई में आडे आनेवालो की उन्होने कभी नही सुनी। कालेज की उन्नति के लिए उन्होने जो सूत्र बना रखे थे उनके प्रतिकूल उन्होने किसी की नही सुनी और जेब में हमेशा त्यागपत्र रखा। इसी के बल पर उन्होने अपने कालेज की साख ऊँची की और बुद्धिमानो के भी कृपापात्र बने रहे।

सस्था प्रधान और व्यक्ति गौण है यह उनकी शासन-पद्धति का प्रमुख लक्षण रहा है। उन्होने व्यक्ति की ओर कम और सस्था की ओर अधिक देखा। इसी से उनके शत्रु बहुत बढ गये। किसी के कहने से उन्होने किसी की नियुक्ति नही की यदि वह व्यक्ति उनकी दृष्टि में उच्चतम न था। निकट-से-निकट रहनेवाले व्यक्ति का यह साहस न था कि वह उनके समक्ष सस्था के सम्मानित आदर्श को ढीले करनेवाली कार्यसाधना का कोई स्वार्थी प्रस्ताव रख सके। कामचोर अध्यापक बी० एन० एस० डी० में बहुत कम टिक पाये। बहुत से छोड भागे बहुतो को हटना पडा। ये सब उनके शत्रु बन गये। पर किसी व्यक्तिगत विद्वेष द्वारा उन्होंने कभी किसी को नही निकाला। यह नितान्त असम्भव नही कि सस्था की हितकामना अत्यन्त प्रबल होने के कारण और सस्था की ही ओर एकमात्र दृष्टि रखने के कारण व्यक्ति को उतनी सहानुभूति न मिल सकी हो जितनी व्यक्ति और सस्था के हितो के आदर्श सामजस्यवाली व्यवस्था में वह अधिकारी है पर इसमें दोष खन्नाजी की नियत का नहीं है व्यवहार की उष्णता और त्वरा का है।

खन्नाजी का मेरा साक्षात् इसी कालेज के ही सम्बन्ध में हुआ। स्वर्गीय श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कदाचित् यह परिचय कराया था। उनके ही प्रशसात्मक वाक्यो के कारण खन्नाजी ने मुझे हिन्दी अध्यापक बनाकर अपने कॉलेज में बुला लिया। इटर मीडिएट बोर्ड के वे आरम्भ से सदस्य थे। उनका बडा सम्मान था। उनकी उक्तियाँ अकाट्य समझी जाती थी। उनकी प्रत्युत्पन्न मति ने उन्हे बोर्ड के एक बड़े भारी बहुमत का नेता बना रक्खा था। कदाचित् ही कोई ऐसा सदस्य मिलेगा जिसने पुस्तकें लिखकर बोर्ड से लाभ न उठाया हो। पर खन्नाजी का एक अकेला निस्स्वार्थ उदाहरण है कि प्रलोभन आने पर भी उन्होने ऐसा नही किया। इसीलिए उनका बड़ा प्रभाव था। हिन्दी की कोई योग्यता न होने पर भी मुझे बोर्ड ने इंटर मीडिएट का हिन्दी अध्यापक की मान्यता प्रदान की। बाद में मैंने खन्नाजी की ही प्रेरणा से हिन्दी में एम० ए० किया।

खन्नाजी की कृपा उत्तरोत्तर बढती गई। मुझे उन्हे बहुत निकट से देखने का अवकाश मिला। जिन गुणो को लोग उनका भारी दोष समझते है उनमें भी आदर्श-प्रिय व्यक्तियो को उनके शील का महत्व मिलता है। इतने दिनो में मेरे उनके बहुत झगडे हुए। मैंने उन्हे दो एक बार त्यागपत्र भी दे दिया था पर उसकी सूचना कदाचित् तीसरे व्यक्ति तक भी नही पहुँची। कदाचित् ही मेरे लाभ का कोई स्थान होगा जहाँ उन्होने मुझे पहुँचाने का प्रयत्न न किया। उनको इससे अधिक आनन्द और किसी बात में न मिलता था कि मैं ऊँचे से ऊँचे स्थान पर पहुँच जाऊँ। सरकारी हिन्दुस्तानी एकेडेमी, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, इटर मीडिएट बोर्ड, कानपुर की कई शिक्षा-सस्थाओ की सदस्यता सभी उन्ही की कृपा से मुझे मिली। मैंने देखा है कि बहुधा प्रधान लोग अपने अधीनस्थ की लोकप्रियता और जनप्रियता से द्वेष करते है, परन्तु खन्ना जी इसके बिलकुल विपरीत है। उन्होने मुझे अधिक से अधिक जनप्रिय होने में सहायता दी। मुझे म्युनिसिपल बोर्ड का सदस्य निर्वाचित होने में पूरा-पूरा योग दिया।

खन्नाजी का वेग से बोलने का आरम्भ से अभ्यास है। तर्क और उक्तियो से दूसरे की बातो को ध्वस्त कर देना उनका वाणीविलास है। कभी कभी यह वाक्-प्रयोग यो ही विनोद में भी किया करते है और कभी-कभी दूसरे की अयोग्यता, कार्य-शिथिलता, वाक्छल दिखाने के लिए भी करते है। बात बनाने-वाले के लिए उनके पास कोई सहानुभूति नही है उसका त्राण केवल परास्त होने में है अथवा अपनी भूल स्वीकार करने में है। कितने ही क्रोध में कितनी ही उष्ण वाणी में वे किसी पर कितने ही वेग से क्रोध-वर्षा क्यो न कर रहे हो, पर यदि वह तुरन्त ही क्षमा माँग ले तो वे पानी पानी हो जाते है। उनके

उत्तरोत्तर में हमेशा तर्क का बल रहता हो यह बात नही; उनके विवाद मे बलवान् युक्तियो का ही सहारा लिया जाय यह भी बात नही, पर उनके कथोपकथन में बुद्धि-चौकन्नेपन और जानकारी की इतनी अनेकरूपता रहती है कि बेचारा प्रतिपक्षी उसके वेग से उबर नही पाता। उसकी वाणी उनके महत्त्व के सामने सीधे खडी नही हो पाती और बड़े-बड़े महारथी या तो लज्जित हो जाते हैं या आवेग में अनर्गल बकने लगते हैं। खन्नाजी जितने बड़े कर्मवीर हैं उतने ही बड़े वाग्धीर भी हैं। वाणी के बाणो के घाव बहुत पैने होने के कारण बहुत गहरे गड़ते हैं। इस उक्ति के तथ्य को खन्नाजी खूब समझते हैं पर उनकी वाणी के कारण उनके अनेक शत्रु हो गये हैं जो अपने घावों को कुरेदा करते हैं। यह वाक्प्रखरता कदाचित् खन्नाजी के ओज के कारण है। दूसरे की भ्रान्ति उसे बलात् प्रमाणित करके छल को खोलकर सामने रख देने से दूसरों पर इसका प्रभाव अच्छा पड़ता है, कदाचित् खन्नाजी के व्यवहार-शास्त्र का यह प्रथम सूत्र है। मन की चोट का दर्द प्रतिहिंसा को सजग करता रहता है, इसकी वे परवाह नही करते।

पर यह बात भी पूरी पूरी सत्य नही। एक बार एक विषय पर हम लोगो की बड़ी उष्ण बातचीत हो गई। एक सभ्रात मित्र के विषय की मेरी एक साधारण भ्राति को उन्होंने बडा महत्त्व देकर मुझे लज्जित करना आरभ कर दिया। मैंने भी बड़ी कटु और अशिष्ट भाषा में उन्हें उत्तर दिया। उत्तर और प्रत्युत्तर की भाषा कटु होती गई। हम लोगों की आकृतियाँ तमतमा गईं थी। अत मे उन्होंने ही विवाद समाप्त कर दिया और अतिम कटुता मेरी ही ओर से रही। मैं घर आया ही था और अभी आत्मनिरीक्षण के लिए शात न हो पाया था कि खन्नाजी का पत्र मिला। उन्होंने मुझसे अपनी कटु और व्यगपूर्ण विवाद के लिए क्षमा माँगी थी। मेरे मन का मैल न जाने कहाँ घुलकर बह गया। वे थे कालेज के प्रधान और तब मैं एक साधारण अध्यापक मात्र था फिर उनका पक्ष भी उचित था और मेरा अनुचित।

खन्नाजी विवाद में चाहे कितने कटु हो जायें पर उनका स्वभाव सारी कटुता को तुरन्त भूल जाने का है। यह उनके सारे मित्र एव सहकारी अध्यापक जानते हैं। एक ओर जहाँ उनकी वाणी से भीषण उग्रता झरती है—केवल उस समय जब वह किसी भ्राति पर किसी पर उत्तेजित हो उठते हैं—वहाँ कुछ ही क्षणो के पश्चात् वे मृदुता से भी उसी व्यक्ति से बाते करने लगते हैं जैसे कुछ हुआ ही नही है।

"शासित करि पुनि करहिं पसाऊ
नाथ बडेन कर यहै सुभाऊ।"

गोस्वामीजी का यह भाव खन्नाजी पर अक्षरशः चरितार्थ होता है।

खन्नाजी की वाणी की कटुता उनके स्वभाव में बिलकुल नही है। वे मानव-दुर्बलताओ के लिए स्वभाव से बड़े उदार हैं। जिस छोटी स्थिति से वे उठे हैं जिस ऊबड-खाबड मार्ग से उन्हे जीवन-पथ पर आगे बढ़ना पड़ा है और दुर्बलताओ के जिन झोंकों से वे साधारण मानव की भाँति परास्त हुए हैं वे सब उन्हें सर्वदा स्मरण रहते हैं। उनकी झुँझलाहट दुर्बल प्राणी के पराभव पर नही होती, परन्तु ऊँचे आदर्श को ढीला करने के कारण होती है। वे इतने कर्मप्रधान और व्यवहार-व्यस्त हैं कि उन्हें विश्लेषण करने का अधिक अवकाश नही रहता।

पर उनकी बुद्धी बडी तीव्र और दृष्टि बडी पैनी है· उनके पास स्पष्ट आतरिक प्रेरणा है जिसके सहारे वे बडे से बडे काम कर उठाते हैं। जीवन के सघर्षशील व्यवहार पक्ष ने उनके आभ्यतर में एक ऐसी स्फूर्ति सजग कर दी है कि वह उनका कर्मपथ सर्वदा सुगम किये रहती है। वे बुद्धिमान् होते हुए भी बुद्धिवादी अथवा बुद्धिजीवी नही है। वे ज्ञानी होते हुए भी ज्ञानवादी अथवा ज्ञानजीवी नही हैं। उनकी

सारी विद्या विशिष्टो का शास्त्रीय मथन नही और न उनका समस्त ज्ञान वैज्ञानिको की प्रयोगशाला की शोध है। उन्हें कुछ जानने का न अध्यवसाय है और न अवकाश, उनके समस्त जीवन में उसका कोई मूल्य भी नही है परन्तु वे सब कुछ का बहुत कुछ बहुत अच्छी प्रकार से जानते है और अपने ज्ञान से विशिष्टो को भी चकित कर देते है।

वे हर प्रकार के समाचारपत्र और विचारपत्र बडे मनोयोग से रात को तीन बजे उठकर तीन चार घटे पढते है और न जाने कितने प्रकार का बहुमुखी ज्ञान उन्हे इस प्रकार से प्राप्त होता है। उनकी स्मरण शक्ति अनुपम और उनकी मेधा अद्वितीय है। व्यक्तियो, घटनाओ परिस्थितियो, विचारो और अको को तारतम्य के साथ पकडे रहने का उनकी स्मरण शक्ति को अनुपम बल है। इसी गुण के कारण वे बडे से बड व्यक्ति को विवाद में टिकने नही देते और इसी गुण के कारण वे छात्रो मे प्रिय है। किसी वर्ण का विद्यार्थी क्या न हो अथवा कितने ही वर्षो के पश्चात् वह खन्नाजी से मिला हो, वे तुरन्त उसके घरेलू अभिधान से वात्सल्य के साथ पुकार देते है और वह भक्ति से नत हो जाता है। वैसे भी उनके सदृश चौकन्ना व्यक्ति बहुत कम मिलेगा। शासनकार्य की उनकी अनुपम क्षमता का यही कारण है। वे प्रत्येक समस्या की तह तक पहुँचते है और प्रत्येक व्यवस्था के सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण को स्वय देखते और समझते है। आगरा विश्व-विद्यालय की विभिन्न समितियो और कार्यकारिणी में उनके इसी गुण के कारण उनका बडा सम्मान और महत्व रहा है। प्रयाग विश्व विद्यालय, काशी विश्व विद्यालय तथा अन्य किसी भी शिक्षा-सस्था में जिससे उनका सपर्क रहा है, उनकी प्रतिभा से सस्था को लाभ ही हुआ है।

उनकी प्रतिभा शिक्षा के क्षेत्र में ही सीमित नही है। वे न जाने कितनी व्यवसायिक सस्थाओ के सचालक मडली के सदस्य है। 'सीतल्पुर सुगर वर्क्स', साइटिफिक इन्सट्रूमेंट कम्पनी, 'स्वदेशी बीमा कम्पनी', झाँसी इलैक्ट्रिक वर्क्स, विक्रम कॉटन मिल्स इत्यादि के वे सचालक मडली के प्रमुख व्यक्ति है। यू० पी० चैम्बर ऑफ कामर्स के भी वे बहुत काल से सदस्य है। किसी भी शिक्षासस्था के प्रधान के स्थान पर यदि वे किसी भी मिल के प्रधान प्रबन्धक अथवा किसी बैंक के प्रधान सचालक बना दिये जायें तो वे उतनी ही योग्यता और कुशलता से उस कार्य को निभा ले जायेंगे। वास्तव में उन्होने शिक्षा-कार्य की पवित्रता को हमेशा सामने रक्खा और इसलिए इस व्यवसाय को केवल अधिक वेतन के लिए परिवर्तित करना उन्होंने कभी उचित नही समझा। वे व्यापार करके अधिक धन उपार्जन कर सकते थे और इस दिशा में उन्होने कुछ किया भी परन्तु स्वतन्त्र रूप में। उनकी व्यापार-सूझ की बडे बडे व्यवसायी प्रशसा करते है।

खन्नाजी के कुछ बहुत ही घनिष्ठ मित्र है। खन्नाजी उनके लिए और वे खन्नाजी के लिए प्रत्येक क्षण उत्सर्ग है। मुझे तो खन्नाजी विनोद में अपना पौत्र कहा करते है। उन्होने एक अपने पटु शिष्य को सेंट जॉन्स कॉलेज में गणित पढाया था। उसने मुझे हाईस्कूल में गणित पढाया था। बस इसी शिष्यपरपरा से मैं उनके शिष्यो की दूसरी पीढी में पहुँच जाता हूँ। परन्तु शिक्षा सस्था के बाहर खन्नाजी कभी गुरु नही रहते। वे समय पडने पर बडे से बडे स्वामिभक्त सेवक से भी अधिक तत्परता से अपने शिष्य की सेवा करते है।

खन्नाजी के एक परम मित्र बाँदा के श्री चौधरी केशवचन्द्रसिंह है। छात्रावास में उनका एक पुत्र रुग्ण होकर खन्नाजी के घर चला गया। हम लोगो ने अपने नेत्रो से देखा है कि दिन में पचास साठ बार इस बालक का मल-मूत्र स्वय अपने हाथो से खन्नाजी उठाते थे और इस कार्य में सेवकों से कोई

सहायता नही ली। बालक के माता-पिता बाँदा में भीषण बीमारी का समाचार पाकर भी बिलकुल निश्चिन्त थे। खन्नाजी में उनका अपार विश्वास है।

एक बार खन्नाजी के साथ हम लोग गोरखपुर हिंदी साहित्य-सम्मेलन जा रहे थे। स्वर्गीय श्रीकृष्ण बलदेवजी वर्मा हमारे साथ थे। बडी रात तक साहित्य की चर्चा होती रही और वर्माजी केशव के अनेक छद हम लोगो को सुनाते रहे। देर में सोने के कारण प्रात काल हम लोगो की नीद न खुली। खन्नाजी तीन बजे से ही उठ बैठे और कुछ पढने लगे। छ बजे उन्होने हम लोगो को जगाया। उठते ही मैं शौचगृह गया। लौटकर क्या देखता हूँ कि खन्नाजी ने मेरे सारे कपडे अच्छी प्रकार से बाँधकर रख दिये हैं और साबुन तक बर्थ पर रक्खा है। मैं लज्जित होकर गड गया। पर उनके लिए जैसे यह कोई बात ही न थी। ऐसे ही छोटे-छोटे कामो से हम लोगो के मन और हृदय को सदा के लिए दास बना लेते थे।

विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज के ड्राइग अध्यापक पर साम्प्रदायिक दगे के समय घातक आक्रमण हुआ। सबसे पहले खन्नाजी ही उस स्थल पर पहुँचे और सैकडो रुपये व्यय करके उनके प्राणो की रक्षा की। उनका सारा परिवार खन्नाजी का चिर-आभारी है।

एक बात जो खन्नाजी से विशेष सीखने की है वह उनके रहन सहन की सरलता है। उनका स्वास्थ्य आदर्श है। मैंने तो उन्हे कभी रोगशय्या पर पडे नही देखा। रुग्ण तरुणो और अध्यापको की वे सदा से हँसी उडाया करते हैं। बहुधा विनोद में वे किसी भी रुग्ण व्यक्ति का उपहास करते हुए कह देते हैं कि तुम्हे और तुम्हारे भगवान् को चुनौती देता हूँ कि वह मुझे बीमार कर दे। अपने स्वास्थ्य के सबध में वे खूब सतर्क रहते हैं और उसके नियत्रण में उन्हे पूर्ण विश्वास है। थोडा सा भी व्यतिक्रम उन्हे अनुभव हुआ कि तुरन्त ही प्राकृतिक चिकित्सा से उसे ठीक कर लेते हैं। अन्न तो लगभग खाते ही नही। प्रत्येक गुरुवार को छत्तीस घटे का पूर्ण उपवास करते हैं। जब जब भी व्यतिक्रम होता है वे उपवास से ही उसे ठीक करते हैं। उनका यह ध्रुव विश्वास है कि सारे रोग पेट के ही कारण होते हैं अतएव जब कही उन्हे अपने स्वास्थ्य में गडबडी प्रतीत हुई इसी पर बीतती है। वे तो हम सरीखे व्यक्तियो से साफ साफ कहा करते हैं कि मुझे तो बीमार होने के लिए अवकाश ही नही। बीमार तो भाग्यशाली पडते हैं जिसकी तीमारदारी के लिए लोग दौडते हैं। उन्होने थोडा बहुत अपना ही क्रम अपने कुटुम्ब में भी चलाया है।

जिस समय बी० एन० एस० डी० कालेज का खन्नाजी निर्माण कर रहे थे वे तन मन-धन से उसकी सेवा में तत्पर थे। असहयोग-आन्दोलन में भी राजनीतिक बवडर से इस सस्था को क्षति न पहुँच जाये इसकी वे विशेष चिता रखते थे। वैसे व्यक्तिगत रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए वे व्यक्तियो को हमेशा प्रोत्साहित करते रहते थे। छात्रो के राजनीति में भाग लेने के वे प्रतिकूल थे पर पढाई को छोडकर देश के कार्य करने के लिए वे हमेशा सहायता देते थे। देश की विशाल क्राति में कालेज और शिक्षा का क्या महत्व रह जाता है इस राजनीतिक तथ्य को निर्मित सस्था के ममत्व ने रुककर नही सोचा। परन्तु इसका कारण देश सेवा अथवा राष्ट्र सेवा की ओर से उपेक्षा अथवा राजनीतिक जीवन की आपदा नही थी। खन्नाजी स्वभाव से निडर और भीरुता के शत्रु हैं। उन्होने मेरी जानकारी में न जाने कितने चदे गुप्त रूप में राष्ट्रीय सस्था को भेजे और उसके अनियमित घोषित होने के पश्चात उसके कार्यकर्ताओ को दिए हैं।

इस सबंध में एक घटना का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है। मेरा छोटा भाई चि० सद्गुरुदयालु हिंसात्मक क्रांतिकारियों में एक विशेष स्थान रखता था। उसका अधिक जीवन पुलिस से छिपकर गुप्त रूप से षड्यन्त्र करने में बीता है। मेरे घर में तलाशियों पर तलाशियाँ हुआ करती थीं गुप्तचरों की मेरे प्रतिकूल जो सूचना पहुँचती थी उससे शिक्षा विभाग ने कई बार मुझे हटा देने का प्रस्ताव भेजा। कई महीनों सरकारी सहायता कालेज के लिए बंद रही। ऐसी स्थिति में सम्राजी ही थे कि मैं कालेज में बना रहा और भारी आपत्तियाँ टल गईं। चि० सद्गुरुदयालु के ही कारण मेरा साक्षात्कार स्वनामधन्य स्वर्गीय श्री चंद्रशेखर आजाद से हुआ। उन्हें गुप्त प्रश्रय की आवश्यकता थी, मेरा घर तो नितान्त संदिग्ध था। मैंने सम्राजी से चंद्रशेखरजी को रखने की बात कही। उन्होंने अपने कई प्रोफेसर मित्रों से अनुरोध किया कि वे उन्हें आश्रय दें, पर किसी का साहस न हुआ। तब कई महीनों तक चंद्रशेखरजी को सम्राजी स्वयं अपने घर में अज्ञात रूप से रखे रहे। उनके साहस, धैर्य और आतिथ्य की चंद्रशेखरजी भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। कानपुर और बाहर के क्रांतिकारी इस घटना को भली भाँति जानते हैं। सन् ४२ के आन्दोलन में सम्राजी बड़े चिंतित थे। वे चाहते थे कि संस्था को धक्का भी न पहुँचे और अधिक से अधिक प्रगति आन्दोलन को दी जाये। न जाने कितनी कैंचियाँ तार काटने के लिए उन्होंने बँटवाईं। न जाने कितने लोगों को उन्होंने धन से सहायता दी और न जाने कितने गुप्त कार्यकर्ताओं को उन्होंने प्रश्रय दिया। सम्राजी अंतरात्मा से देशसेवक और राष्ट्रभक्त हमेशा रहे हैं और अब भी हैं। परन्तु उन्होंने बड़े से बड़े नेता का भी अंध अनुकरण नहीं किया यद्यपि उनका परिचय थोड़ा-बहुत सबसे था।

सम्राजी के गुणों की तालिका मुझे उपस्थित नहीं करनी है। वे विश्व से दूर भागनेवाले लोक-बाह्य धर्म के उपासक साधु महात्मा नहीं हैं और न बड़े बड़े आदर्शों का विज्ञापन करनेवाले वाक्-शूर। वे संसार की भीषण घुसपैठ की क्रियाशीलता में रमण करनेवाले प्राणी हैं। संघर्ष का फेनिल मुख, व्यापार-व्यस्तता का प्रस्वेद तथा उतावलेपन के खरोंचे इनके अलंकार हैं। इनका अपकारी व्यक्तिगत धरातल पर क्षमा पा जाता है, परन्तु लोकहित के आड़े आनेवाले को घोर प्रतिहिंसा का सामना करना पड़ता है। बहुत बड़ी बड़ी बातों को साधना के साधारण मार्गों से ले जाकर खूब ऊँचा उठा देते हैं और लोग चमत्कृत हो जाते हैं। ये कवि नहीं हैं पर काव्य मर्मज्ञ हैं। साहित्यिक नहीं हैं पर साहित्य-रसिक हैं इनकी आत्मश्लाघा और कीर्तिकामना को आदर्श उपासना से बल मिलता है। उसमें निज की महान् प्रेरणा होने के कारण लोगों को भ्रम हो सकता है, परन्तु इस निज में स्वार्थपूर्ण निजत्व की गंध नहीं रहती। तनकर सामना करने के कारण इनका व्यक्तित्व समष्टि की रक्षा तो कर ले जाता है, पर सारा दोष लोग उसी पर थोप देते हैं। ये कल्पना के पुजारी नहीं हैं, और न महत्त्व के लंबे चौड़े स्वप्न ही देखते हैं।

Khannaji as he was in 1915

Principal Khanna in 1927

Two generations at the feet of the master

(1) Shri Chandra Mohan Gupta, Associated Industries, Bombay (sitting)

(2) *Shri Surendra Nath Gupta (standing)*

हीरालाल

श्री शम्भुदयालु श्रीवास्तव

[श्री बाबू शम्भुदयालुजी श्रीवास्तव स्थानीय मारवाडी विद्यालय कालेज के हिन्दी अध्यापक है। यद्यपि आपने थोडा लिखा है, परन्तु आपके कवि होने में कोई सन्देह नही। अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए आपने सात दोहे भेजे है। हम इन्हें अविकलित रूप में छापते है।]

१

कौडी गिर जाती कही, होता मन बेहाल।
दुखी क्यो न हम हो भला, तजकर हीरालाल॥

२

किया प्रान्त में नगर का यद्यपि उन्नत भाल।
पर विनीत ही नित रहे श्रीयुत हीरालाल॥

३

पाकर इनको है हुआ अपना नगर निहाल।
धन्य हुई माँ प्रसव कर ऐसे हीरालाल॥

४

भगे विरोधी त्रस्त हो, सके न पैर सँभाल।
सहसा सम्मुख आ गये ज्यो ही हीरालाल॥

५

आतप, पावस, शीत सब, सके प्रभाव न डाल।
अटल हिमाचल सम रहे, सन्तत हीरालाल॥

६

छात्र-छत्र, शिक्षक-कवच, मित्र-सुधा, रिपु काल।
अनुचर कल्पद्रुम सतत है श्री हीरालाल॥

७

मुक्ति मार्ग ही समझकर, सेवा-धर्म विशाल।
चिर जीवें कर्तव्य-रत, श्रीयुत हीरालाल॥

पिलानी की शिक्षण संस्थाएँ

श्री शुकदेव पांडे

[श्री० लेफ्टिनेंट कर्नल प० शुकदेव पाण्डेय एम० एस् सी० इस समय बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट के मंत्री और संचालक हैं। इसके पहले ये हिंदू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक थे, और बाद में ये पिलानी महाविद्यालय के आचार्य थे। इन्हीं के सदुद्योग से पिलानी की शिक्षा-संस्थाएँ आज इस देश की प्रमुख शिक्षा केंद्र हैं। आप खन्नाजी के पुराने परिचित और मित्र हैं।

इस लेख के पढ़ने से पिलानी की शिक्षण-संस्थाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है।]

आज से करीब ५० वर्ष पहले पिलानी में प्राइमरी पाठशाला स्थापित करके प्रातः स्मरणीय सेठ श्री शिवनारायणजी बिड़ला ने शिक्षा के क्षेत्र में जो बीज डाला था वही आज बिड़ला एजूकेशन ट्रस्टरूपी विशाल और सुदृढ़ वटवृक्ष के रूप में फल फूल रहा है। यह ट्रस्ट देश के सबसे बड़े ट्रस्टों में से है जो वेग के साथ शक्ति-संचय करता हुआ बढ़ता चला जा रहा है और जिसकी प्राणदायनी शाखाएँ वर्ष प्रतिवर्ष अनेक दिशाओं में फूट रही हैं। ट्रस्ट की कुछ वे संस्थाएँ जिनमें बड़ी सजीवता से काम हो रहा है निम्नलिखित हैं —

१—बिड़ला कालेज जिसमें एम० ए०, एम० एस्-सी० तथा एम० काम० तक की शिक्षा दी जाती है। अन्वेषण तथा खोज के लिए भी सुविधाएँ हैं। विज्ञान विभाग के लिए नई आधुनिक प्रयोगशालाएँ बनाई जा रही हैं जो इस वर्ष जुलाई तक तैयार हो जायेंगी। एक विशाल पुस्तकालय, अजायबघर तथा हाल जिसमें ५,००० विद्यार्थी बैठ सकें, निर्माण हो रहे हैं।

बिडला कालेज का पुराना भवन

इंजीनियरिंग कालेज की फिटिंग शाप
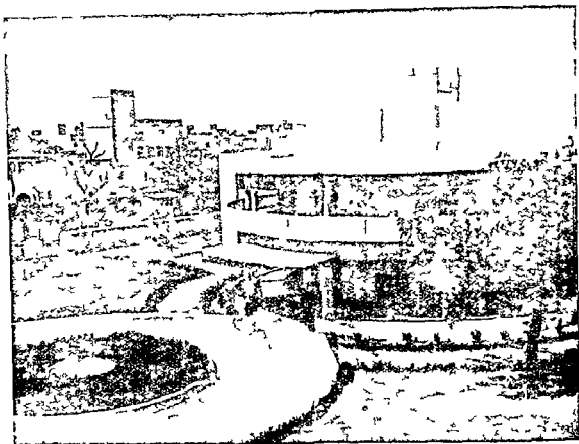
बिडला मान्टसरी स्कूल का एक भाग

किसी सस्था म प्रवेश नही पाते। इस विद्यालय का नवीन भवन अब तैयार हो गया है। ऐसे बड भवन विरले ही होग।

३—बिडला हाईस्कूल —इस सस्था म छात्रो की सख्या १००० है और यह तीन भागो में बाटा गया है।

४—बिडला मान्टसरी स्कूल —जिसका विकास बिलकुल मान्टसरी पद्धति पर हुआ है और जिसमें तत्सबधी शिक्षा के सभी उपकरण मौजूद हैं पिछले ५ वर्षों म शिक्षा सबधी आवश्यक सामग्री जुटाने में २५ ००० रु० से अधिक खर्च हो चुका है। डढ लाख रुपयो से भी अधिक लागत का एक नया भवन इस स्कूल के लिए बनवाया जा रहा है जिसका प्लान मैडम डा० मरिया मान्टसरी न दिया है और जिसकी रूप रेखा ट्रस्ट के भवनशिल्पी श्री वुड सन्स एण्ड पाटनस न तयार की है। यह अपन ढग का निराला ही भवन है। बाहर के छोटे बच्चो के लिए एक छात्रावास भी अब तयार हो गया है। जिसम ६० बालको के लिए स्थान है। इसमें जिस प्रकार से शिक्षा दी जा रही ह उसम बालको के विकास में विशेष सफलता हो रही है। मैडम मान्टसरी न स्वय इस विद्यालय का निरीक्षण किया और उन्हे बडा सतोष हुआ। उनका कहना है कि उन्होन अपन स्वप्न इस विद्यालय द्वारा ही कार्यान्वित किए ह। स्कूल म २५० से अधिक विद्यार्थी शिक्षा पाते ह। विद्यार्थी सदा अपन काय म सलग्न रहते ह और सारी सस्था
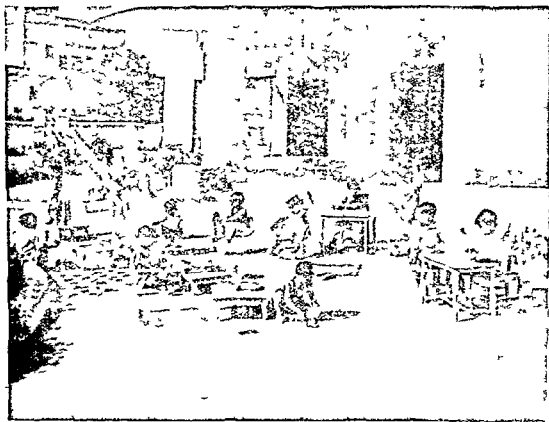
बिडला मान्टेसरी स्कूल के बालक स्कूल म कार्य कर रहे है

के वातावरण को शान्त, सुन्दर तथा उपयोगी बनाने में पूण सहयोग देते है। सब श्रणियो के बालक यहाँ पढते है। अन्य स्कूला के बालको की अपेक्षा मान्टसरी पद्धति स शिक्षा प्राप्त बालक अधिक सतर्क, परिश्रमी, सलग्न पाये जाते है।

५—बिडला बालिका विद्यालय —छानाआ की शिक्षा के लिए यह एक रेजीडेंन्सियल हाईस्कूल है। इसकी अपनी एक अलग स्वतत्र वस्ती है और स्कूल के अहाते में विशाल भवन है। भोजनगृह, अध्यापिकाओ के मकान, खेल के मैदान और स्वास्थ्य-सबधी सभी प्रकार की आधुनिक व्यवस्था है। गृह-विज्ञान की शिक्षा यहाँ अनिवार्य है और सगीत तथा गृहशिल्प सीखन के लिए पर्याप्त सुविधाएँ है। दो लाख की लागत का एक नया भवन इस सस्था के लिए बनाया गया है जिसमें आधुनिक ढग के सभी उपकरण रखे गये है। २०० लडकियो के लिए छात्रावास म स्थान है। फीस केवल नाममात्र ही ली जाती है २० व ३५ रु० पठन पाठन व भोजन व्यय म लगते है।

६—औद्योगिक स्कूल —इस स्कूल में बहुत स शिल्प और उद्योग धन्धो के सीखन की सुविधाएँ दी जाती है उदाहरण के लिए बढई, बुनाई, कताई और दरजीगीरी। बिडला हाईस्कूल के छात्रो के लिए दस्तकारी अनिवार्य है। यहाँ से कारीगर शिल्पकार भी तैयार किये जाते है।
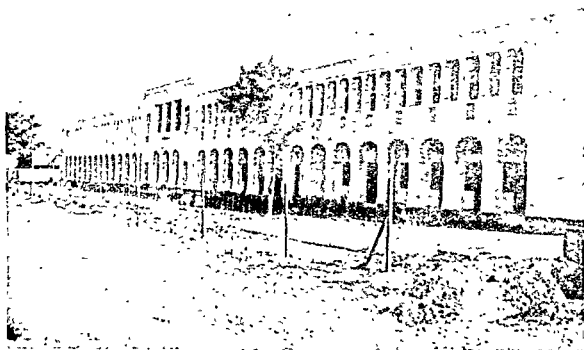
पिलानी का नया छात्रावास

७—डेरी और कृषिफार्म ट्रस्ट की दो अन्य महत्त्वपूर्ण सस्थाएँ हैं। निकट भविष्य में जो कृषि कालेज यहाँ पर स्थापित होनेवाला है उसके लिए बहुत सभव है कि उक्त दोनों संस्थाएँ आधारभूत सिद्ध हो सकें। गायों तथा भेड़ों की नस्ल सुधारने के लिए १० वर्षो से प्रयत्न किया जा रहा है खेती के लिए ट्यूबवेल खोदे गये हैं।

८—प्रायमिक शिक्षाट्रस्ट:—२०० प्राइमरी स्कूल चला रहा है और पिलानी के ५० मील की परिधि के भीतर १४ मिडिल स्कूल ट्रस्ट की ओर से चल रहे हैं। इन स्कूलों द्वारा रियासतों के ग्रामों में शिक्षा-प्रचार में बड़ी प्रगति हुई। प्रायमिक शिक्षा का कार्य अब नई स्टेटें अपने हाथ में ले रही हैं।

९—भिवानी की टैक्सटाइल टैकनीलाजिकल इन्स्टीट्यूट:—तीन वर्ष की शिक्षा के बाद इस संस्था से कताई-बुनाई के लिए डिप्लोमा दिये जाते हैं। मैट्रीक्यूलेशन पास छात्र इसमें भरती हो सकते हैं और यहाँ से शिक्षा पाये विद्यार्थी मिलो में सहायक वीविंग मास्टर इत्यादि का स्थान पा रहे हैं।

१०—विड़ला विद्यामंदिर नैनीताल:—पब्लिक स्कूलों के ढंग पर जुलाई १९४७ से इस स्कूल का कार्य आरम्भ हुआ। संसार के पब्लिक स्कूलों में यह स्कूल सबसे अधिक उँचाई पर है। यहाँ का जलवायु स्वास्थवर्धक है। स्कूल के कई विशाल भवन हैं, एक ओर हिमांचल और दूसरी ओर नैनीताल की सुन्दर झील है। प्रकृति ने इस स्थान को रम्य बनाया है। २५० विद्यार्थियों के लिए छात्रावास में स्थान है।
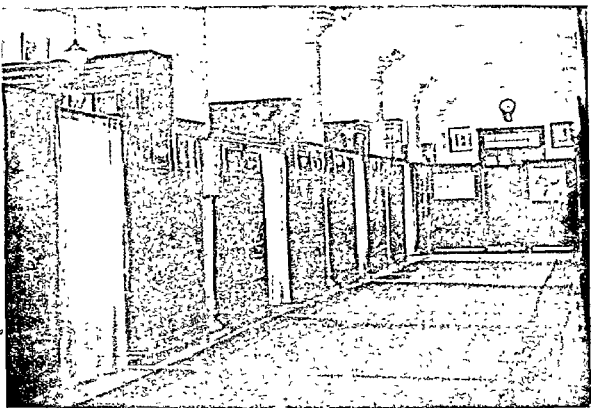
बिड़ला केन्द्रीय पुस्तकालय का एक भाग
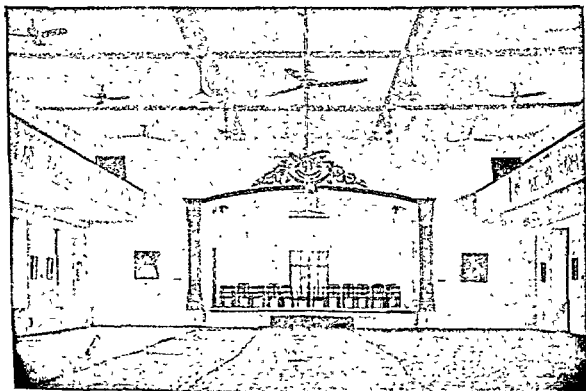
बिड़ला कालेज हाल
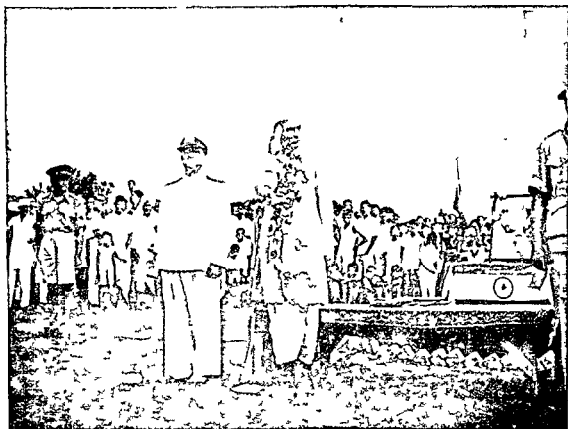
स्वतत्रता दिवस समारोह में माननीय डाक्टर राजन्द्रप्रसाद सलामी ले रहे है

११—बिडला विश्वकर्मा महाविद्यालय —वल्लभ विद्यानगर आनन्द स्थित यह एक सिविल मैकेनिकल तथा इलेक्ट्रिकल इजीनियरिंग कालेज हैं जो बम्बई विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। इस सस्था में १५० विद्यार्थी तीनो विषयो के लिए भर्ती किय जाते हैं। डिप्लोमा क्लास भी इस सस्था म चलाया जा रहा है।

१२—बिडला विद्याविहार —यह शिक्षा-सस्थाओ की नई बस्ती पिलानी म निर्माण हो रही है जिसम ६० लाख के लगभग खच हो चुका है। ४० लाख रुपया इसको अपना पूरा रूप प्राप्त करन में और भी लगेगा।

१३—अनिवाय शिक्षा पाठशालाएँ —समस्त राजस्थान म पिलानी ही एसा ग्राम है जहा शिक्षा अनिवाय है। ट्रस्ट द्वारा ही यह सब कार्य सम्पादन हो रहा है।

सन् १९०५ से लेकर १९२५ तक का समय इस सस्था का शैशव काल कहा जा सकता है। इसके बाद इसकी प्रगति का युग आरम्भ हुआ। २३ जनवरी सन १९२९ को नौ लाख ५० हजार रुपय की सपत्ति से बिडला शिक्षा ट्रस्ट की स्थापना हुई और इसी साल जुलाई महीन में इन्टरमीजिएट तक कालेज क्लास खोले गय। इसी साल से ट्रस्ट का प्रबन्ध श्री घनश्यामदासजी बिडला के हाथ में आ गया। आगरा विश्वविद्यालय की ओर से डिग्री कालेज खोल देने की अनुमति भी प्राप्त हो गई। और ६ दिसम्बर १९३१

माननीय सरदार पटेल तथा श्री बिडलाजी, बिड़ला हाईस्कूल की कलाप्रदर्शनी में

को यद्यपि श्रीमान् जयपुर-नरेश के करकमलो द्वारा डिग्री कालेज का उद्घाटन भी हो गया, किन्तु स्टेट कौंसिल और जयपुर राज्य के शिक्षा-विभाग के अधिकारियो द्वारा जो अडचनें डाली गई, उनके कारण वर्षो तक यह कालेज डिग्री कालेज न हो सका। आखिरकार सर मिर्जा इस्माइल के मंत्रित्व काल में जुलाई १९४३ में डिग्री क्लास खोलने की अनुमति मिली। इसके उपरान्त शिक्षा-कार्य में विशेष प्रगति हुई। एम० ए०, एम० ए० काम० तथा एम० एस्-सी० तक शिक्षा दी जाती है। शिक्षा के सम्बन्ध में सर जान सार्जेन्ट ने जो योजना बनाई थी उसमें बतलाया गया था कि भारतवर्ष में साक्षर व्यक्तियों की सख्या करीब १० या १२ प्रतिशत है, जब कि इँगलैंड अमेरिका आदि देशों में साक्षरो की संख्या ८० प्रतिशत से भी अधिक है और फिर राजस्थान तो शिक्षा की दृष्टि से और भी पिछडा हुआ प्रान्त है। अब जब कि देश में स्वतंत्रता के प्रभात का नव जागरण हुआ है राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की अनेक योजनाएँ सामने आयेंगी जिनको कार्य का रूप देने के लिए सुयोग्य अध्यापकों, डाक्टरों, इंजीनियरों, वैज्ञानिको आदि सभी की आवश्यकता होगी।

बिडला ट्रस्ट की शिक्षण-सस्थाएँ नि सन्देह इस एक बड़े अभाव की पूर्ति करने में कुछ सहायक हो सकेंगी।

भारतवर्ष के सभी प्रान्तो के विद्यार्थी यहाँ की शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओं से लाभ उठाते हैं। पिलानी के स्वास्थ्यप्रद जलवायु का लाभ उठाते हुए, नागरिक जीवन के व्यवधानो से दूर रहते हुए
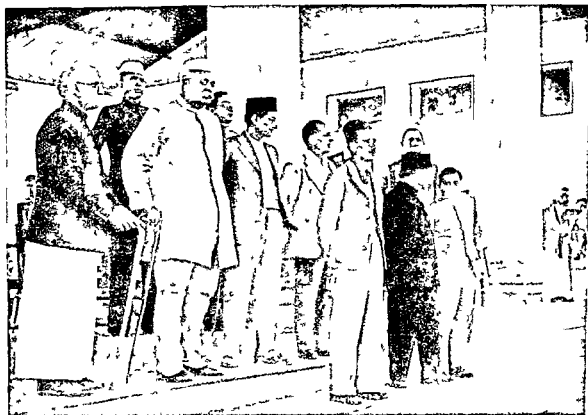
पिलानी के खेल के स्टेडियम म माननीय गोविन्द वल्लभ पतजी

यहाँ छात्रो को एकाग्रतापूर्वक अध्ययन करने के लिए अच्छे अवसर मिल जाते है। छात्रावासा में प्रत्येक छात्र के लिए अलग अलग कमरे की योजना की गई है। अध्ययन के साथ साथ छात्रा के नियमित जीवन एव उनके स्वास्थ्य पर भी विशेप ध्यान दिया जाता है। प्रात काल कालेज जाने से पहले छात्रा को आध पौड दूध, डबलरोटी, मक्खन या मिठाई तथा फल दिय जाते है। ७।३० बज स १ बजे तक कालेज लगता है। दोपहर के भोजन म चपाती, चावल, दाल, साग, दही तथा चटनी की व्यवस्था है तथा शाम को पूरी, पराठा अथवा चपाती तथा साग एव दूध का प्रवन्ध है। इस प्रकार का भोजन ३,००० कैलोरिक भैल्यू को लिये हुए है। सायकाल छात्रो को मास ड्रिल तथा खेल आदि म अनिवार्य रूप से भाग लेना पडता है।

शिक्षण-सस्थाओ का कार्य प्रति दिन सामुहिक प्रार्थना के बाद प्रारम्भ होता है। प्रत्येक कक्षा के लिए सप्ताह में एक बार भारतीय धर्म और सस्कृति की शिक्षा का प्रवन्ध है। तुलसी जयन्ती, रवीन्द्र जयन्ती, कृष्ण जन्माष्टमी आदि अनेक उत्सव मनाये जाते है। विभिन्न विषयो स सवध रखनेवाली अनक समितियाँ सस्थाओ में है जिनके तत्त्वावधान में समय समय पर विचार-विनिमय होता रहता है। नाट्य-परिषदो की ओर से हिन्दी तथा अँगरेजी में नाटको के अभिनय भी यहाँ प्रतिवर्ष होते है। कालेजा के अधिकारियो की ओर से अन्य बातो के साथ साथ इस बात का भी प्रयत्न किया जाता है कि इस सस्था के छात्र अपने समय के प्रसिद्ध महापुरुषो के सास्कृतिक सम्पर्क का भी लाभ उठा सकें। स्वर्गीय महामना

शिव गगा म शिवजी (पिलानी)

मालवीय जी दीनबन्धु सी० एफ० एण्डज तथा आधुनिक युग के दार्शनिक विद्वान सर राधाकृष्णन देशभक्त डा० राजेन्द्रप्रसाद माननीय श्री सरदार पटेल माननीय श्री बलदेवसिंह श्री डा० रमन माननीय श्री सयानम अडमिरल गोडफ्रे तथा शान्तिनिकेतन के आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन आदि के शुभागमन से लाभान्वित होने का सौभाग्य इस संस्था को प्राप्त हो चुका है। छात्रों के बहुमुखी विकास के लिए इस संस्था में अनेक साधन है। कालेज में छात्रों की सबसे महत्वपूर्ण संस्था कालेज परिषद् है और हर एक छात्र इसका सदस्य है। कालेज की बहुत सी प्रगतियों का सचालन परिषद द्वारा होता है जिसमें विद्यार्थी

अपने उत्तरदायित्व को समझने लगते हैं। वाद-विवाद, निबन्ध, अनुवाचन आदि अनेक प्रतियोगिताएँ परिषद् को ओर से होती है। बैंक आदि की व्यवहारिक शिक्षा भी यहाँ के कालेज कोआपरेटिव बैंक द्वारा छात्रो को दी जाती है। शिक्षको के सम्पर्क में आने के लिए विशेष अवसर यहाँ के छात्रो को मिलते हैं। यहाँ की ग्रुप-पद्धति भी इस सम्पर्क को बढाने तथा छात्रो के पथ-प्रदर्शन मे सहायक होती है।

उच्च शिक्षा तभी फलवती हो सकती है जब उच्च शिक्षा के लिए वातावरण उपस्थित हो इस प्रकार के वातावरण उपस्थित करने में अन्य बातो के साथ साथ यहाँ की बिडला सेन्ट्रल लाइब्रेरी का भी बडा हाथ है। जिसमें करीब ३०,००० पुस्तकें है। अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ लाइब्रेरी मे मँगवाई जाती है। पुस्तको की सख्या भी प्राय प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है यह आशा की जाती है कि समय पाकर यह पुस्तकालय राजस्थान का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय बन जायगा। प्राचीन राजस्थानी साहित्य के सग्रह और सवधन का प्रयत्न भी इस पुस्तकालय की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। मुद्रित राजस्थानी साहित्य के अतिरिक्त हस्तलिखित राजस्थानी साहित्य का भी यहाँ अच्छा सग्रह है जिसको बढाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

पिलानी शिक्षा-केन्द्र का आरम्भ जिस रूप में हुआ था, उसके साथ यदि आज के बृहत् रूप की तुलना करें तो इतने थोडे समय में शिक्षा की जो प्रगति हुई है उस पर आश्चर्य हुए बिना नही रहता। पिलानी आज एक विशाल विद्यापीठ एव ज्ञान विज्ञान के शिक्षण-केन्द्र का रूप धारण कर रहा है। शहर के शोर-गुल और कोलाहल से दूर, शान्त वातावरण में शिक्षा के एक नूतन उपनिवेश का आजकल निर्माण हो रहा है। पढने के कमरे, छात्रावास, स्टाफ के क्वाटर आदि सब इस तरह बनाये जा रहे हैं जिससे शिक्षक और छात्र दोनो अधिक से अधिक सहयोग और साहचर्य की भावना से काम कर सक।

ट्रस्ट में इस समय लगभग दो करोड रुपयें की सपत्ति हैं, करीब ७ लाख ट्रस्ट की सालाना आय हैं। देशभक्त डा० राजेन्द्रप्रसाद तथा श्री के० एम० मुशी, आदि बिडला एज्यूकेशन ट्रस्ट के ट्रस्टियो मे से हैं। श्रीयुत घनश्यामदासजी बिडला ट्रस्ट के सभापति हैं।

शिक्षा के विशुद्ध आलोक की जितनी अधिक आवश्यकता आज है सभवत उतनी पहले कभी नही थी। सच्ची शिक्षा हमारे मस्तिष्क में प्रेम और सद्भावना के भाव भरती है, दूसरो के धर्मो के प्रति आदर-भाव जाग्रत करती है और इस प्रकार मिल जुलकर रहना सिखलाती है। राष्ट्रीय पुनर्जागरण की योजनाओ को कायरूप में परिणत करने के लिए देश को अनेक शिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकता होगी, ऐसे व्यक्तियो की जिनमें सच्ची शिक्षा के कारण व्यक्तित्व का समुचित विकास हुआ हो। भविष्य कृतज्ञतापूर्वक इस बात को स्मरण करेगा कि बिडला शिक्षा-ट्रस्ट ने शिक्षा के क्षेत्र में कितना महत्त्वपूर्ण योग दिया था। निस्सन्देह वे उदारचेता महापुरुष अभिनन्दन के पात्र है जिन्होंने इस मरुस्थल में भी शिक्षा की मदाकिनी प्रवाहित कर दी। और सच तो यह है कि पिलानो की नयनाभिराम शिवगगा, अनाज और साग सब्जियो के खेत, बगीचो तथा बिजली और नल की व्यवस्था को देखकर पिलानी को मरुस्थल कहना इस शब्द का दुरुपयोग करना है।

खन्नाजी के साथ अमूल्य घड़ियाँ

लेखक—सरदार बलवंतसिंह स्याल एम० एस्-सी० एल० टी० डिस्ट्रिक्ट इस्पेक्टर आफ स्कूल्स कानपुर

[खन्नाजी के जीवन के कई पहलू हैं। प्राय प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति उनके जीवन के एक ही पहलू का देख पाते हैं, स्याल साहब के निरीक्षण ने खन्नाजी के समूचे व्यक्तित्व को एक स्थान पर समेटने का प्रयत्न किया है उनकी सम्मति में "पुण्य और महान् आत्माओ से प्रभावित तथा प्रेरित हुए भी खन्नाजी की जीवनकला किसी परम्परागत परिपाटी या रूढि का अनुसरण नही करती, वह मौलिक है, वह किसी पूर्ववर्ती आदर्श की अपेक्षित न होकर स्वय आदर्श प्रस्तुत करती है।" उनके शब्दो म 'खन्नाजी का अनुशासन और प्रबन्ध जितना प्रभावपूर्ण और कठोर रहा है उतना ही सरल और मानवतापूर्ण। आत्मीयता ही उनकी सफलता की कुजी है।" खन्नाजी की विशेषता बतलाते हुए स्याल साहब लिखते है, "मैंने कई बेर देखा है कि खन्नाजी जहां नियम और विधान के घोर समर्थक और पालक हैं वहां उसके बधन से मुक्त भी है, नियम के निर्जीव शब्दा पर नही वरन् उसके वास्तविक आशय को आप देखते है अत आप मृत नियम के नही बल्कि उसके प्राण के पोषक है . खन्नाजी में सरल स्वभाव तथा निर्मल बुद्धि और विवेक के साथ ही आत्मगौरव भी है आचाय कुल की प्रतिष्ठा आपको जीवन से भी अधिक प्रिय है। अन्त में अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए स्याल साहब कहते है—"श्रद्धाभाजन खन्नाजी वास्तव में सयम मूर्ति, कर्मवीर योगी, मेधावी सूत्रधार और कुशल व्यवस्थापक है—अभिनन्दनीय है, जीवनमुक्त है।']

'मुझे बीमार पडने की फुरसत नही है, मैं एडियाँ रगड रगडकर मरना नही चाहता"—खन्नाजी के यह आवश्य स्वर्ण वाक्य कान में निरन्तर गूंजा करते है और उनके जीवन मे ये मूलध्येय युवको में विशेष नवज्योति एव स्फूर्ति का सचार करते है। कर्मयोगी के ये स्वजीवन घटित सवाद श्री गुरुगोविंदसिंहजी की इन स्तुत्य सफल आकाक्षाओ का प्राय स्मरण कराया करते है —

देह शिवा बर मोहि इहै, शुभ करमन ते कबहुँ न टरो।
न डरो अरि सो जब जाइ लरो, निश्चय कर आपनी जीत करो।
अर सिक्ख हौं आपने ही मन कौ, इह लालच हउँ गुन तउँ उचरो।
जब आव की अउध निदान बनै, अत ही रण में तब जूझ मरो।
छत्री को पूत हौं बामन को नहि, कै तपु आवत है जु करो।
अरु अउर जजार जितो गृह को, तुहि त्याग कहा चित तामें धरो।।
अब रीझ कै देहु वहै हम कउ, जोउ हऊँ विनती कर जोर करो।
जब आउ की अउध निदान बनै, अति ही रन में तब जूझ मरो।।

खन्नाजी से मेरे सम्पर्क की अवधि सुदूर अतीति में विलीन है और मैं उसे अंको में नही बता सकता। हाँ इतना बोध अवश्य है कि काल की क्रूर गति उनको प्रभावित नही कर सकी है। इनका जो रूप वैभव, प्रफुल्लित मुख चेष्टा, विकसित कांति, सजगता, ओज, अदम्य उत्साह, प्रखर स्वास्थ्य तथा तेज मैंने २१ या २२ वर्ष पूर्व देखा था, वही आज भी अपरिवर्तित देखता हूँ। शास्त्रकार अवस्था-चिह्न-मुक्त विभूतियो का अस्तित्व बतलाते हैं, खन्नाजी को देखकर उन नैसर्गिक आत्माओ पर विश्वास होता हैं।

"प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवास दु खत ।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुल मगलप्रदा ।।"

—गोस्वामी जी का मर्यादा पुरुषोत्तम के लिए यह मगलाचरण अपने आराध्य के प्रति केवल भावोद्रेक नही है। हमें तो इस युग में भी इसका सजीव प्रमाण मिल रहा हैं।

श्री हीरालाल खन्ना में जिन्हें छोटे-बडे सभी "खन्नाजी" कहते है, कौन सी सचित दैवी शक्ति और प्रतिभा है, उनकी जीवन-कला में कौन सा रहस्य निहित है, वे किस प्रकार कर्मक्षेत्र के कुशल सैनिक हैं—इन प्रश्नो से लेकर ऐसे प्रश्न कि वे क्या खाते हैं और क्या व्यायाम करते हैं जिसके बल पर वे इतने गर्व और दम्भ से बीमारी को ताल ठोककर ललकारा करते हैं—ऐसे विचार मेरे मन में निरन्तर उठते रहे हैं और जब जब मैं खन्नाजी से मिला मैंने इस गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा की। ईश्वर की कृपा से मुझे बी० एन० एस० डी० कालेज की कुछ समय तक सेवा करने का शुभावसर प्राप्त हुआ। तब मैं खन्नाजी के अति निकट रहकर इस समस्या को हल करने की चेष्टा करने लगा।

यह तो सभी जानते हैं कि यह कालेज अपने चमत्कृत परीक्षाफल के लिए सारे सूबे में विख्यात हैं। एक वर्ष नही, दो वर्ष नही प्रत्युत हर वर्ष यहाँ का परीक्षाफल उत्कृष्ट रहता आया है। ९० %, ९५ % और १०० % फल तो यहाँ साधारण सी बात है। हर वर्ष यहाँ के छात्र हाईस्कूल तथा इण्टर में उच्च स्थान प्राप्त कर योग्यता छात्रवृत्ति पाते आ रहे हैं। बहुधा जितनी छात्रवृत्तियाँ सारे सूबे को मिलाकर मिल सकी उतनी या उससे अधिक अकेले बी० एन० एस० डी० कालेज ने ले ली। सूबे में प्रथम, द्वितीय या तृतीय स्थान पानेवाले छात्रो का श्रेय भी खन्नाजी के नेतृत्व में इसी कालेज को रहता आया है। प्रथम श्रेणी और विशेषता प्राप्त करनेवाले छात्रों की महती सख्या का तो कहना ही क्या हैं। गजट में पक्तिया की पक्तियाँ देखते जाइए द्वितीय श्रेणी का कही पता ही नही चलता और तृतीय श्रेणी दिया लेकर भी ढूंढने और सौगन्ध खाने को दुर्लभ हो जाती है। साथ ही विशेषता यह कि परीक्षार्थियो की सख्या १५०-२०० से कम नही।

ऐसे असाधारण परीक्षाफल को देखकर छात्रों में उल्लास, अध्यवसायी कर्मनिष्ठ तथा कर्तव्य-परायण गुरुजनो के हृदयो में नियन्ता के प्रति कृतज्ञता, अपने प्रति अपूर्व शान्ति एव सतोष और कुशल नाविक के प्रति असीम श्रद्धा की भाव तरगो का सृजन तो स्वाभाविक ही है। परीक्षाफल प्रकाशित होने पर स्थान स्थान पर छात्रो की टोलियों के मुँह पर बी० एन० एस० डी० का नाम सुन लीजिए, टी-स्टेंड पर ड्राइंग रूम में जहाँ देखिए इसी कालेज की चर्चा और सराहना हो रही है।

'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।'

प्रशसको के साथ हतश्री पराजित आलोचकों, ईर्ष्यालु व्यक्तियो, सदेहियों, निंदक और ग्लानि-प्रसारकों की भी कमी नही होती।

'पर-हित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष विषाद बसेरे।
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम-उपल कृषी दल गरहीं।'

कौन नही जानता कि खन्नाजी इण्टर बोर्ड के जन्म से ही उसके प्रभावपूर्ण सदस्य रहे हैं। विश्वविद्यालयो की सिनेट, कोर्ट, एकेडेमिक और एक्जीक्युटिव कौंसिलो के भी आप शक्तिशाली सदस्य रहे है और अब भी है। इससे सहज विश्वास और सदेह प्रेरित भावनाओ को बल भी मिल जाया करता है। पढाई सब जगह होती है। हर जगह योग्य अध्यापक हैं। यहाँ के और अन्य स्थानो के छात्रो मे कोई विशेष अन्तर भी नही है। फिर क्या कारण है कि यहाँ का परीक्षाफल इतना उत्तम और कौतूहलपूर्ण होता है ? जिन छात्रो के उत्तीर्ण होने के भी लाले पडे रहते हैं और जो नितान्त मन्दबुद्धिवाले समझे जाते है, उन्हे भी यहाँ शरण मिलती है और वे आश्चर्यजनक प्रगति दिखाकर सम्मानित ढग से सफलता प्राप्त कर लेते है। फिर कुछ न कुछ शका, किंचित आभास मात्र में ही क्यो न हो तो हृदय के किसी न किसी छिपे तल से झाँक ही देती है।

हाँ तो मै अपने अन्वेषण की बात कर रहा था। मैंने यह भी निश्चय किया कि मै इस सस्था की असम्भव सफलता, खन्नाजी के रहस्य और किंवदतियो के तथ्यो को समझने के लिए प्रयत्न करूँगा और इसके लिए भी उत्सुक था, इसलिए और भी क्योकि मेरे मन में खन्नाजी के प्रति अगाध श्रद्धा थी जिसे शका के हल्के स्पर्श से भारी ठेस लगती थी। जिस विशेष परिस्थिति में मै यहाँ था, मुझे हर बात के सूक्ष्म से सूक्ष्म मर्म को अवगत करना नितान्त सुगम था। साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक परीक्षाएँ देखी और उनके फलो के लेखे-जोखे बनते देखे। अभी मन को पूरा सतोष नही हुआ। परन्तु देखा क्या कि सृष्टा के हाथ में पहुँचते ही. .और मूक अक किस प्रकार सजल और मुखर हो उठे। उनका विग्रह और विश्लेषण हुआ और निष्कर्ष निकाले गये और शीघ्र प्रत्येक विद्यार्थी की भूत, भविष्य और वर्तमान की कुडली प्रस्तुत हो गई। अब यह जाना कि खन्नाजी कितने कुशल और अनुभवी शिक्षाविद हैं। प्रत्येक छात्र की अवस्था, उसकी अल्पज्ञता और उसके मर्म स्थान खन्नाजी ने चित्रित किये, उनका निदान किया और तुरन्त ही उपचार की व्यवस्था निश्चित की। बस, योग्यता और ज्ञानस्तर के अनुसार वर्गीकरण किये गये, टोलियाँ उपयुक्त सहायको को सौंपी गईं, अतिरिक्त शिक्षण का सुव्यवस्थित और विशद् कार्यक्रम निर्धारित किया गया। फिर भी यह परिपाटी कोई रूढ परम्परा बनकर नही रही। खन्नाजी ऐसे सूक्ष्म परिवेक्षक और जागरूक सूत्र सचालक के होते हुए यह होता भी कैसे। गति-विधि की यथा समय समीक्षा, उसमें उचित परिवर्तन और परिवर्धन और उनमें नव-सचार, खन्नाजी स्वय ही किया करते हैं। फिर फल तो हस्तामलकवत स्पष्ट हो गया। विहगम दृष्टाओ को क्या पता कि वार्षिक चमत्कार के पीछे कितना परिश्रम, अध्यवसाय, कडी साधना, तपस्या और त्याग छिपे हैं।

लोग कहते हैं कि गणितज्ञ की दुनिया दूसरी ही होती है; वह अको की काल्पनिक दुनिया में रमता है और व्यावहारिक जीवन के अयोग्य सिद्ध होता है। खन्नाजी का जीवन, उनकी व्यवहार-कुशल बुद्धि और विवेक इस मत का सर्वथा खण्डन करते है। गणित के आचार्य और डाक्टर होना एक बात है और उसके मूल सिद्धान्तो, तत्वो और रहस्यो को हृदयगम कर और उन्हें व्यवहार में घटित करना दूसरी बात है। अको पर तो खन्नाजी को अद्भुत अधिकार है। उनसे कालेज के किसी भी कमरे की नाप-जोख पूछ लीजिए। उनसे पूछ लीजिए कि सरकारी और गैरसरकारी सस्थाओ की छात्र सख्या, अध्यापको की सख्या, छात्र प्रति अध्यापक, तुलनात्मक व्यय, परीक्षाफल इत्यादि किस प्रकार है। यह उनकी उँगलियो पर है कि अमुक सरकारी स्कूल में प्रति छात्र को कितनी भूमि उपलब्ध है। इन्होने गणित का व्यवहार में कितना व्यापक सदुपयोग किया है इसके उदाहरण यहाँ तक दिये जायँ। बी० एन० एस० डी० कालेज का [illegible] और उसके मच की विशेषता उसी व्यवहृत गणित विज्ञान का एक सुन्दर नमूना है।

तुलना की जा सकती है। खन्नाजी बड़े से बड़ा कार्य अर्थाभाव और बिना समुचित साधनों के हाथ में ले लिया करते हैं। अन्त में निरन्तर परिश्रम और लगन से कार्य का सचालन इस कुशाग्र बुद्धि से होता है कि सारी बाधाएँ स्वत ही दूर हो जाती हैं और 'भगवान् भी उन्ही की सहायता करता है जो स्वय अपनी सहायता करते हैं' लोकोक्ति चरितार्थ होती है। नगर की सस्थाएँ इसकी सजव और मूर्त उदाहरण हैं। जहाँ एक तृण भी न हो वहाँ तीन महीने के अल्पतम काल मे विशाल भवन बनाकर सस्था में मान्य करा लेना खन्नाजी की प्रतिभा कार्यपटुता, अनुभवशीलता, कर्मठता और व्यवहार-कुशलता और अपार साहस का ज्वलत उदाहरण सजीव परिचायक एव मुखर प्रतीक है। सार्वजनिक कार्यकर्ताओ के लिए यह प्राणदाता आदर्श पथ निर्देशक है। यहाँ के इतिहास में यह अलौकिक और अनुपम कीर्ति अमर रहेगी।

पुण्य और महान् आत्माओ से प्रभावित तथा प्रेरित होने हुए भी मुझे ऐसा लगा है कि खन्नाजी की जीवन कला किसी परम्परागत परिपाटी या रूढि का अनुसरण नही करती। वह मौलिक है। वह किसी पूर्ववर्ती आदर्श की अपेक्षित न होकर स्वय आदर्श प्रस्तुत करती है। आप बात-बात पर वेद और वेदान्त की दुहाई देकर उसका उपहास नही करते। ईश्वर मे आस्था रखते हुए भी वे किसी विशेष 'वाद' या 'मत' के दास नही है। उन्हे किसी मत के खडन मडन से प्रयोजन नही। हाँ, वे प्रकृति के अटूट कडे नियमो को समझते हैं, ससार-व्यापार जानते हैं और उन्होने कर्मयोग का पाठ कर्मस्थली मे प्रयोगात्मक रूप से सीखा हैं। उनकी जीवन कला में सशय, सन्देह और अनिश्चितता नही हैं। आप ठोस धरती पर रहते हैं, काल्पनिक मिथ्या जगत् में नही। साराश यह कि अपने को धोखा नही देते। अत उनका जीवन और उनकी कला निर्मल तथा सरल है और उनकी प्रत्येक बात, प्रत्येक योजना और तर्क-सगत कार्य प्रणाली अकाट्य नियमो पर अवलम्बित रहती है।

इनका भोजन सात्त्विक और अत्यन्त सरल होता है। कोई व्यसन तो छू भी नही गया है। इधर तो कई वर्षों से फलाहार इनका भोजन है। परन्तु यह साधन है साध्य नही। अवसर होने पर अन्न भी ग्रहण कर लेते है और गृहस्थियो का वैष्णव भोजन भी कर लेते हैं। साराश यह कि कही अतिथि होने या पार्टी व दावत में आपसे किसी भी प्रकार की असुविधा नही उत्पन्न होती। प्रकृति के नियमो का बडा पालन आप उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार आप मित्रो और सहकारियो में 'सहृदय हार्ड टास्क मास्टर' के नाम से प्रसिद्ध है।

आपकी वेश-भूषा भी अत्यन्त सरल और आडम्बरहीन है, साथ ही उसमें अनोखा स्थायी भाव भी है। फैशन से आप उतने ही उदासीन हैं जितना एक सन्यासी ससार की माया से। २५-३० साल पहले के और आज के पहनावे में तनिक भी अन्तर नही है। *आन्तरिक दृढता बाह्यरूप मे भी अभिव्यक्त और* प्रतिबिम्बित है। इनकी बुन्देलखडी पगडी एक विचित्र शोभा दर्शाती है।

श्री सुभाषचन्द्र बोस एक समय में ज्याउद्दीन थे। परन्तु खन्नाजी अपने इसी रूप ही में कई दिन *तक पडित अमरनाथ झा रहे*--जब असली अमरनाथजी बराबर साथ ही थे। त्रिवानी में आप लोग निरीक्षण के लिए गये थे और वेश-भूषा और विशेष कर आपकी पगडी ने लोगो को भ्रम में डाल दिया। इस भ्रम-विनोद को आप लोगो ने स्थिर रखा और तीन दिन तक ये दोनो पारस्परिक प्रतिनिधित्व करते रहे।

खन्नाजी का अनुशासन और प्रबन्ध भी जितना प्रभावपूर्ण और कठोर रहा है उतना ही सरल और मानवतापूर्ण। आत्मीयता ही उनकी सफलता की कुजी है। स्कूल और कालेज के प्रत्येक छात्र को आप व्यक्तिगत रूप से जानते हैं। उनसे सहानुभूतिपूर्ण सहज बर्ताव और उनके प्रति वात्सल्य प्रेम

रखते हैं। इस प्रकार आपका अनुशासन उनके हृदयो पर रहता है और किसी कृत्रिम नियन्त्रण की कभी आवश्यकता ही नही पडती। यही कारण है कि आपके पुराने छात्र आज भी आपका हृदय से सम्मान किया करते है और आपके प्रति श्रद्धा की भावनाओ से ओत प्रोत हैं।

पिछले साम्प्रदायिक दगे में उनके दो छात्रो पर धारा ३०२ का आरोप लगा। आपका यह निश्चय था कि यह मिथ्या है। बस आपने दिन रात एक कर दिया और कठिनाइयाँ, अपमान सभी का अपने विद्यार्थियो के पीछे सहन करते हुए उन्हे इस अभियोग से मुक्त कराया। यही नही उन्हे परीक्षा में सम्मिलित कराया। परीक्षा आरम्भ होने के आध घटे पहले तक सारा प्रयास विफल रहा। फिर भी आप हताश न हुए और निष्काम सघर्ष करते ही रहे। और इसी अन्तिम आध घटे में विजयपताका ले ही ली, सत्य की जीत हुई।

अपने विद्यार्थियों की सुचारु देख रेख के लिए आपने उन्हे मुहल्लेवार समूहो मे विभाजित करके अपने सहकारियो को सौंप दिया है। यह सहकारीगण समस्त सम्बन्धित छात्रो से बराबर मिलते-जुलते रहते हैं। उनकी कठिनाइयों को हल करते हैं और उन्हे हर प्रकार की सहायता देते हैं। इन सहकारियो से तो खन्नाजी अपने बच्चो का समाचार लेते ही है और स्वय भी बराबर उनके तथा उनके सरक्षको के निकट सम्पर्क में आते रहते हैं। तीव्र स्मरण शक्ति के साथ यह भी कारण है कि खन्नाजी को अपने १० वर्ष पूर्व के भी छात्रो के नाम सविवरण स्मरण है।

परीक्षा काल में खन्नाजी का प्रबन्ध देखिए। उन्हे प्रत्येक विद्यार्थी की वैसी ही चिन्ता रहती है जैसी माता को पुत्र की। यहाँ भी दायित्व विभाजन की व्यवस्था है। यदि किसी भी परीक्षार्थी के पहुँचने में विलम्ब जान पडा तो उसके यहाँ दूत वाहन सहित उपस्थित हैं। छात्र से अधिक चिन्ता आपको रहती है। उपद्रव के समय में भी जब घर से निकलना खतरे से खाली नही था और जिसके स्मरण-मात्र से ही मन सिहर उठता है खन्नाजी ने अपने सब विद्यार्थियो को एक-एक करके परीक्षा-केन्द्र में एकत्र किया। उन सबकी रक्षा का दायित्व अपने ऊपर ओढा। छात्रो के प्रति आपका विमल स्निग्ध स्नेह पुकार उठा कि पहले मेरे प्राण जायेंगे पीछे मेरे किसी भी बालक का बाल बाँका होगा। कितना साहस, क्या पौरुष और कैसा वात्सल्य प्रेम। इसका क्या परिणाम हुआ और परीक्षाफल भी पहले निकलवा कर छात्रो का कितना हित कराया यह किसी से छिपा नही है।

खन्नाजी के यही भाव अपने सहकारियो के प्रति भी रहते हैं। यह बात कौन नही जानता कि जब श्री रामचन्द्र टडन छुरा के आघात से हत होकर मरणासन्न थे तब खन्नाजी ने किस सजल सहानुभूति और औदार्य से उनके प्राणो की रक्षा की।

आशातीत परीक्षाफल तो खन्नाजी की शिक्षा और दीक्षा का केवल साधारण-सा परोक्ष परिणाम है। वास्तविक लक्ष्य तो स्थायी चरित्र निर्माण और आचरण की शुचिता एव दृढ़ता है। अपने व्यक्तित्व, सयम, आचरण और आदर्श से खन्नाजी अपने सभी विद्यार्थियो को प्रेरित करते रहते हैं और उनकी चेष्टा सदा यही रहती है कि हमारे बच्चे और नवयुवक परिश्रमी, सत्यनिष्ठ, सहनशील, देशभक्त और चरित्रवान बनें, वे कठिनाइयो से लड सकें, उनमें आत्मगौरव हो और उनका पूर्ण विकास हो सके।

मैंने कई बार देखा है कि खन्ना जी जहाँ नियम और विधान के घोर समर्थक और पालक हैं वहाँ उसके बधन से मुक्त भी हैं। नियम के निर्जीव शब्दो पर नही वरन् उसके वास्तविक आशय पर आप ध्यान

है। अत आप मृत नियम के नही बल्कि उसके प्राण के पोषक है। इसलिए आपकी स्वाभाविक अर्थव्यवस्था प्राय मान्य रही है जो तर्क की कसौटी पर कसी नही जा सकती उसका खन्नाजी के यहाँ कोई मूल्य नही है।

अध्यापक-परिषद् ने प्रधान मत्री ने एक उचित योजना का विरोध किया। बहुमत दूसरी ओर था। यद्यपि खन्नाजी भी प्रधान मत्री से सहमत नही थे तथापि आपने उनके पद और परम्परा की मर्यादा की रक्षा करते हुए उन्ही की इच्छा को स्वीकृत कराया। कुछ दिन पीछे प्रधान मत्री को अपनी भूल समझ में आई और उन्होंने बहुमत की इच्छा के अनुकूल कार्यवाही की। विधान की दृष्टि से यह सर्वथा अनुचित था और सदस्यो की उपेक्षा थी। यद्यपि कार्य रूप खन्नाजी के ही मतानुकूल था—फिर भी वे सदस्यो के प्रति उपेक्षणीय व्यवहार पर आपत्ति प्रकट करने में तनिक भी न हिचके। उनकी स्पष्टवादिता देखने म तो कभी-कभी कटु लगती है और लोग अप्रसन्न भी हो जाते है। इसी कारण उनके प्रति निर्मल भावनाएँ भी और भ्रान्ति भी उत्पन्न हो जाती है। परन्तु खन्नाजी पर इसका कुछ भी प्रभाव नही पडता। सरल गति, निर्भीकता और स्पष्टवादिता ही आपका बली पक्ष है और इन्ही के कारण अन्त में वे सब क्षीण हो जाती है। यही कारण है कि इनके भ्रान्त अल्पकालीन विरोधी भी आपकी सराहना और आदर किया करते है।

सरल स्वभाव, निर्मल बुद्धि और विवेक के साथ ही खन्नाजी में आत्मगौरव है। आप नगण्य से नगण्य व्यक्ति का भी सम्मान करते हैं। खन्नाजी के पास धन न हो, आप ऐश्वर्य सम्पन्न भले ही न हो, परन्तु आपको लोभ विचलित नही कर सका है और धनी कुबेर भी आपको मोल नही ले सके है। आचार्य-कुल की प्रतिष्ठा आपको जीवन से भी अधिक प्रिय है। श्रद्धाभाजन खन्नाजी वास्तव में सयम मूर्ति, कर्मवीर योगी, मेधावी सूत्रधार और कुशल व्यवस्थापक है। आप अभिनन्दनीय है जीवन-मुक्त है।

खन्नाजी इस समय अवकाश पर है। अवकाश तो नाम का है। इसी अल्प समय मे आपने देहली में महिला कालेज को स्थापित कर मान्य करा दिया। अस्तु, अब आप अवसर-ग्रहणासन है। अब आपके सामने सास्कृतिक कार्य और सार्वजनिक सेवा का व्यापक क्षेत्र है। मुझे पूरा विश्वास है कि आपके अनुभव और प्रतिभा का लोकहित मे सदुपयोग होगा।

मेरी याद में आप कभी बीमार नही पडे और न कभी अस्वस्थ हुए है। आज के दिन भी आपका गतिवान स्पन्दन, पूर्ण योग्यता, आदर्श स्वास्थ्य, स्फूर्ति तथा निर्विकार शरीर और मन आपके सरल, सात्विक एव सयमी जीवन के वरदान है।

"मुझे बीमार पडने की फुरसत नही है, में एडियाँ रगड-रगड कर मरना नही चाहता।"

सफल कामना से सयुक्त हमारी भी मगल कामना खन्ना जी को चिरजीवी और उत्तरोत्तर यशस्वी करे।

आओ हे नव-संस्कृति आओ

श्रीमती विद्यावती कोकिल

[श्रीमती विद्यावती कोकिल हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री हैं। आपकी कविता अत्यन्त ओजपूर्ण और प्रभावोत्पादक होती है। पाठक उसका रसास्वादन इस कविता में करेंगे।]

आओ हे नव-संस्कृति आओ।

हम तेरा गायन सुनते हैं तेरी घुँघरू ध्वनि सुनते हैं,
किन्तु मिले बिन तुझसे तेरे स्वर विद्रोह किया करते हैं,
अपनी छवि के प्रिय-दर्शन से मेरे मन की खीझ मिटाओ।

जब प्रेम तुम्हारा पा न सका मानव ने अपने शीश धुने,
तुम बढ़ी चली आगे पीछे तर्कों ने वाद विवाद बुने,
मन से मस्तिष्कों से उठकर आओ तुम अन्तर पर छाओ।

व भोगी बर्फीले सपना से तुमको बर्बाद करेंगे,
आओ हम कर्मों की गर्मी से तुमको आबाद करेंगे;
अब सपनों की दुनिया छोड़ो आओ जीवन में रम जाओ।

कितने नव-युग खिले फूल से आये नव-सुगन्धि फैलाने,
एक सतत-माला में बिंध बिंधकर अपना अस्तित्व सजाने,
उस माला में आओ अपना भी सहस्र-दल पुष्प बिंधाओ।

रास रग सब धूल बन गये, एक नही लगते अब नीके,
पिता, पुत्र, पति मोह न पाते सारे प्रेम पड गये फीके,
मेरे एकाकी जीवन में मानवता की रसना लाओ।

युग युग सचित यह जीवन-रस रस में आज फफूद छा गई,
स्वार्थ सिमट कर गरल बन गया प्रगति आ गई मृत्यु आ गई,
पर-दुख पर द्रवनेवालो का गतिमय एक समाज बसाओ।

जीवन में ज्वाला भरने को ज्वाला के हाला करने को,
अधकार की चित्रपटी पर ज्योति किरन से रँग भरन को,
हे करुणामयि बाल-सूर्य से ऐसेई अपने दूत पठाओ।

ज्ञान-जहाज लिय जो आवे इसी किनारे पर रुक जावें,
तरह तरह की द्रव्य दिखाकर मेरा प्रेमी हृदय रिझावें,
मेरे इन पीडित प्राणो में इक आशा की ज्योति जगाओ॥

बुढ़ापे को बचाइए

लेखक, प्रिंसपल केदारनाथजी गुप्त एम० ए०

['बुढापे के आगमन को रोका जा सकता है'—यह कथन असभव भले ही सुनाई दे, पर है सत्य। आवश्यकता है 'युक्ताहार' की—ठीक ढग से भोजन की व्यवस्था करने की। प्रस्तुत लेख में इसी का वर्णन इस विषय पर यथेष्ट अनुभव रखनेवाले प्रिन्सपल श्री केदारनाथ गुप्त ने किया है। उनका परिचय दूसरे लेख में दिया गया है। खन्नाजी बूढे होते हुए भी बूढे नही है अतएव उनकी जीवनी के साथ इस लेख की सगति खूब बैठ जाती है।]

स्वर्गीय रायबहादुर डाक्टर लक्ष्मीनारायण चौधरी ने कहा है, "बुढापा एक प्रकार का रोग है। शरीर की भीतरी गडबडी से रोग पैदा होता है। इस गडबडी को रोकिए, बुढापा न आवेगा।"

हमारा जीवन हमारे स्नायु-सस्थान पर निर्भर है। जिस प्रकार मशीन को चलाने के लिए बार बार बैटरी भरने की आवश्यकता पडती है, उसी प्रकार यदि शरीर के भीतर स्नायु-तन्तुओ में बिजली भरी जाय तो मनुष्य कभी बूढा न हो।

हमारे इस शरीर को एक उचित अनुपात में कुछ मुख्य मुख्य खाद्य पदार्थो की आवश्यकता होती है जिससे इस शरीर की मशीन चलती है। इस अनुपात मे एक सीमा तक एक पदार्थ के स्थान में दूसरा पदार्थ खाया जा सकता है किन्तु यदि इस हेर-फेर में अन्धाधुन्धी हुई तो शरीर के भीतर गडबडी उत्पन्न होने लगती है और धीरे धीरे वह रोगग्रसित हो जाता है।

खानपान की इस गडबडी का अनुभव मनुष्य को एक दिन में नही होता। उससे उत्पन्न विष शनै शनै सचित होता रहता है जिसकी परवाह प्रारम्भ में वह करता भी नही, किन्तु एक दिन ऐसा आता है जब उसे विवश होकर चारपाई की शरण लेनी ही पडती है।

जब वह बीमार पडता है तो वह कभी यह नही कहता कि मेरी बीमारी भोजन की गड-बडी से उत्पन्न हुई है। वह यही समझता है कि बाहरी परिस्थितियो के कारण कुछ ऐसी प्रतिकूलता आ गई है। जिससे उसे बीमार होना पडा है। यदि किसी पुरुष को लकवा मार जाय तो वह कहता है—'कल मुझे ज्वर आ गया था। उसी ज्वर में जब मैं बाहर गया तो सरदी लग गई और इसी से मुझे लकवा मार गया।'

वास्तव में ऐसी बात नहीं है। भोजन की खराबी से उत्पन्न विष शरीर के भीतर पहले से ही जमा हो रहा था जिससे खून की नलियों का लचीलापन नष्ट हो रहा था। ज्वर के कारण मस्तिष्क की एक नली फट गई और उसे लकवा मार गया। ऐसी ऐसी बीमारियों का सम्बन्ध वास्तव में खुली हवा में घूमने अथवा सरदी लगने से नहीं होता किन्तु उस विष से होता है जो अनुचित भोजन या भोजन के अतिरेक से उत्पन्न होता है। बुद्धिमानों को चाहिए कि जीवन के प्रारम्भ से ही वे उचित अनुपात में भोजन के भिन्न भिन्न पदार्थों के खाने का अभ्यास डालें और अपने को बुढ़ापे से बचावें।

चतुर चिकित्सकों ने भोजन का विभाजन इस प्रकार किया है—(१) प्रोटीन—जैसे दाल, मास और दूध आदि पदार्थ जिनसे शरीर पुष्ट होता है।

(२) कार्बोहाइड्रेट—इसमें सब प्रकार के अन्न आते हैं। इनसे शरीर को गरमी मिलती है।

(३) फैट्स—अर्थात् चिकनाईवाले पदार्थ जैसे घी तेल आदि। इनसे शरीर में गरमी और फुर्ती आती है।

(४) विटैमिन्स—जैसे हर प्रकार के शाक और फल।

इस वर्गीकरण को अपने सामने रखते हुए भोजन का चुनाव करना चाहिए। यदि कोई केवल दाल खाकर स्वस्थ रहना चाहे तो नहीं रह सकता, उसी प्रकार यदि कोई कहे कि हम केवल रोटी खाकर स्वस्थ रहें तो भी ऐसा नहीं हो सकता। मनुष्य यदि केवल हलुआ खाकर स्वस्थ रहना चाहे तो भी असम्भव है। केवल शाक और फल खाने से भी काम नहीं चलता। जब वह इन सब पदार्थों को मिलाकर संतुलित भोजन करेगा तो वह अवश्य स्वस्थ रहेगा।

इसके अतिरिक्त जो भोजन हम करते हैं वे खटाई और खारापन पैदा करनेवाले होते हैं। खटाई पैदा करनेवाले पदार्थ खून को विकृत करते हैं और खारापन पैदा करनेवाले पदार्थ खून को स्वच्छ करते हैं। सब तरह के मास, मछली सफेद आटे की रोटी, पूरी, पकवान, छिलका निकाली दाल, मिठाई, सफेद चीनी, चाय आदि पदार्थ खटाई पैदा करनेवाले खाद्य पदार्थ हैं। चोकरदार आटा, दूध, मक्खन, छिलके-दार दाल, सब प्रकार के फल और तरकारियाँ खारापन पैदा करनेवाले पदार्थ होते हैं।

भोजन के चुनाव के समय खटाई और खारापन उत्पन्न करनेवाले पदार्थों का भी पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए। हमारा खून खारापन लिये होता है इसलिए जो भोजन हम चुनें उसे शत-प्रतिशत खारापन पैदा करनेवाला होना चाहिए। मनुष्य निर्बल तो है ही। यदि उससे इतना संयम न हो सके तो खारापन और खटाई का अनुपात ८० और २० होना चाहिए।

शराब, चाय और कहवा का व्यवहार तो एकदम त्याग देना चाहिए। खटाई की मात्रा इनमें सबसे अधिक होती है। इनसे अँतड़ियों में अनपच का रोग उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त कहवे और चाय में थीन और कैफीन नाम के दो विषैले पदार्थ होते हैं जो स्नायुओं को विकृत और झिल्लियों को मोटा कर देते हैं जिससे चमड़ा सिकुड़ जाता है और युवा अवस्था में ही बुढ़ापे के चिह्न दिखलाई पड़ने लगते हैं।

शराब, चाय और कहवे का प्रयोग भारतवर्ष में बड़े वेग से बढ़ रहा है। जब कोई मेहमान आता है तो चाय से उसका स्वागत किया जाता है। स्मरण रखिए ये तीनों पदार्थ जिगर, गुर्दे और अँतड़ियों को विकृत करते हैं और अनपच का रोग पैदा करते हैं जिसे विद्वान् चिकित्सकों ने 'रोग का नगड़ दादा' कहा है।

दो शब्द मांसाहार के भी विषय में कहना आवश्यक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मास शक्ति वर्द्धक है किन्तु उसमें हानियाँ अधिक हैं और उसका काम हम दूध और मलाई से भली भाँति ले

सकते है । मास मे कुछ कीडे ऐसे होते हैं जो पकाने पर भी नही मरते और वे बीमारी पैदा करते हैं। दूसरी हानि यह है कि जब जानवर मारा जाता है तो उसमें बडी घबडाहट पैदा होती है जिससे उसके मास में भयकर विष पैदा हो जाता है। सुअर और मुर्गियो की तरह कुछ जानवर ऐसे होते हैं जो गलीज खाते हैं जिससे उनका मास खाने के योग्य नही रह जाता। तीसरी हानि यह है कि मास शरीर के भीतर जल्द सडता है। चौथे यह कि पचने के बाद मास का फुजला शाक पात या फल के फुजले की अपेक्षा कठिनता से बाहर निकलता है। इसके अतिरिक्त मास को देखने से बडी घृणा पैदा होती है। नाना प्रकार के मसाले डालकर उसे खाद्य पदार्थ बनाया जाता है। वास्तव मे जिससे घृणा पैदा हो वह वस्तु खाने योग्य नही है।

आजकल भोजन में एक भूल और होती है जिससे हमारा बुढापा जल्द आता है और वह है फलो और हरी तरकारियो का पर्याप्त मात्रा में सेवन न करना। मैंने बडे बडे घरो की दावतो म देखा है कि मिठाई, नमकीन, चाट और नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनो की भरमार तो रहती है लेकिन फल बहुत कम देखने में आते है। इससे लोगो की रुचि का परिचय मिलता है। ऐसी दावतो में मुझे जबरदस्ती फलो के लिए प्रार्थना करनी पडती है।

इंगलैण्ड के वीर अन्वेषक कर्नल कुक के समय में १०० मांझियो में ५० मांझी जल यात्रा मे मर जाया करते थे। उन्होंने इसके कारण की खोज की और मृत्यु का कारण तरकारी और फलो का अभाव बताया। वे एक बार नीबू और हरे फल जो जल्द खराब न होते थे, लेकर समुद्र-यात्रा के लिए निकले और दो मास के पश्चात् जब लौटे तो उनका एक भी मांझी न मरा और दूसरे सब मांझी स्वस्थ रहे।

हमें फलो और तरकारियो के खाने की रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। लोगो को 'चाट' अच्छी लगती है लेकिन सेव और सन्तरे अच्छे नही लगते। अप्राकृतिक भोजन करते करते हमारा स्वाद ऐसा विकृत हो जाता है कि जिह्वा का असली स्वरूप नष्ट ऐसा हो गया है। यह आवश्यक नही है कि कीमती फल खाये जायँ। अपने गाँव या नगर मे जो फल और तरकारियाँ हर ऋतु मे उत्पन्न होती हैं उन्ही को खाना चाहिए। ककडी, खीरा, आम, अमरूद, नाशपाती ये सब सस्ते फल है और अपने अपने समय में मिलते रहते हैं। उसी प्रकार लौकी, नेनुआ, तरोई, भिण्डी सब प्रकार के शाक इत्यादि तरकारियाँ भी वर्ष के भिन्न भिन्न महीनो में मिलती रहती हैं। इन्हे खूब खाना चाहिए। ये सब खून को साफ करके शरीर को स्वस्थ रखते है।

विटेमिन्स जिनकी चर्चा आजकल इतनी हो रही है इन्ही फल और तरकारियो में विशेष रूप से मिलता है। ये विटेमिन्स बिना किसी औषधि के रोगो को अच्छा करते रहते हैं।

विटैमिन ए—हरे शाक, टमाटर, गाजर, शल्जम में पाया जाता है। यह दाँतो और फेफडो को मजबूत करता है और सूखा रोग आदि बीमारियो को दूर करता है।

विटैमिन बी—सूखे मेवे, सेम शल्जम और गाजर में विशेष मिलता है और शरीर के स्नायुओ को पुष्ट करता है।

विटैमिन सी—नीबू, हरी हरी तरकारियाँ, टमाटर और गाजर में विशेष मिलता है। यह चमडे और खून की बीमारी को दूर करता है।

विटैमिन डी—पालक और टमाटर में खूब मिलता है। इससे हड्डियाँ और दाँत मजबूत होते है।

विटैमिन ई--सब तरह के फल और तरकारियो में मिलता है। यह माताओ के स्तनो में प्रचुरता से दूध पैदा करता है।

सारी बीमारियों को दूर करने की औषधि प्रकृति ने फल और तरकारियो में कूट-कूट कर भर दी है। केवल पहचान पहचान कर उन्हें खाने से रोग दूर करने के लिए फिर औषधियो के खाने की आवश्यकता नही रह जाती।

इस प्रकार भोजन के भिन्न पदार्थों को अनुपात से यदि हम खायें, खटाई के पदार्थों को छोडकर खारापनवाले पदार्थो को यदि हम खायें, फल और तरकारियो से विशेष शौक रक्खे और चाय, शराब और दूसरी नशे की चीजो से परहेज करें तो हम सदैव जवान रह सकते है और बुढापा हमारे पास फटक नही सकता। ८० वर्ष की आयु में हम उसी उत्साह और फुर्ती से काम कर सकते है जिस उत्साह और फुर्ती मे एक २० वर्ष का नवयुवक अपना काम करता है।

खन्नाजी का मनुष्यत्व

राजगुरु पं० हरिदत्त शास्त्री विद्यालङ्कार, विद्यारत्न, धर्मधुरीण

[अपने मित्र श्री खन्नाजी के विविध गुणों का स्मरण करते हुए विद्वद्वर पं० हरिदत्तजी शास्त्री ने ठीक ही कहा है : "देवत्व का मिलना इतना दुर्लभ नहीं जितना मनुष्यत्व का। 'मानुष दुर्लभ लोके'। खन्नाजी में मैंने जिस विशेष बात को पाया है वह है उनकी मनुष्यता। वे जिससे सम्बन्ध रखते हैं यावज्-जीवन उसके हित में यथाशक्य और यथासाध्य सलग्न रहते हैं जो 'मित्र' शब्द का आदर करते हैं वे खन्नाजी के व्यवहार को देखें वे देख कि खन्नाजी में कृतज्ञता और मैत्री-धर्म के कितने उच्च संस्कार हैं।']

श्री हीरालालजी खन्ना का परिचय मुझे सन् १९२१ ईसवी में देहरादून में प्राप्त हुआ। तब से इनके सम्पर्क में आने का अवसर मुझे प्राय मिलता रहा। खन्नाजी की स्वाभाविक प्रवृत्ति देश और जाति की सेवा और उत्कर्ष की ओर रही है। आपका दृढ़ विश्वास है कि देशोन्नति के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता शिक्षा-प्रसार की है। इसी सिद्धान्त को अपने जीवन की विराट् दीक्षा बनाकर जिस प्रेम और सहृदयता से आपने अपने छात्रों को पढ़ाया है वह आपके मार्गदर्शन में परिचालित स्कूलों और कालेजों के प्रति वर्ष के परीक्षाफल देखने से विदित हो जायगा। सभी की यही अभिलाषा रहती है कि अपने बालकों को खन्नाजी के कालेज में प्रविष्ट करावें।

खन्नाजी केवल कालेज में निर्धारित समय पर पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ाने तक में ही अपना कर्त्तव्य सीमित नही रखते. आपका प्रयत्न रहता है विद्यार्थी-जीवन को एक अमूल्य जीवन बना देना। कोरी पाठ्य-पुस्तकों के रटाने से यह सभव नहीं हो पाता। विद्यार्थी-जीवन मे पढाई-लिखाई के अतिरिक्त आचार-निष्ठा, चरित्र-विकास, पारस्परिक सद्भावना, देश-जाति प्रेम, सार्वजनिक सेवाभाव,—इन सस्कारों का उदय करने की ओर भी खन्नाजी यथेष्ट सचेष्ट रहते हैं जिससे विद्यार्थी-वर्ग आपकी देख-रेख में शिक्षा प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है।

आपको निर्धन व दीन बालक-बालिकाओं का विशेष ध्यान रहता है। उनके लिए आप शिक्षा को व्यय-साध्य बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। ग्रामनिवासी बालकों की शिक्षा-दीक्षा की ओर भी आपका विशेष ध्यान रहता है। आपने कितने ही स्कूल इस उद्देश्य से खोले हैं।

खन्नाजी की विद्वता और देश-प्रेम तो सब जानते ही हैं। ब्रह्मनिष्ठ महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी खन्नाजी को अपना प्रमुख शिष्य समझ कर विद्या-विकास सम्बन्धी परामर्श तो इनसे करते ही थे, विशेष बात यह थी कि पण्डितजी प्राय यह कहते थे कि खन्नाजी में मनुष्यता का सुन्दर विकास होने से वे मुझे विशेष प्रिय हैं। यह बात विशेष अनुकरणीय हो सकती है। आज विश्व में कालेजों, विद्यालयों और गुरुकुलों के पढ़े हुए स्नातक एक बडी सख्या मे प्राप्त हो रहे हैं। इनमें कुछ तो ऐसे हैं जिनकी शिक्षा और डिग्री एक-मात्र नौकरी का लाइसेन्स ही समझी जाती है। कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने विद्योपार्जन करके अपने जीवन में कुछ वैज्ञानिक, राजनैतिक अथवा औद्योगिक खोज की है और कर रहे हैं। वे भी देश की एक प्रकार से सेवा ही कर रहे हैं। परन्तु मनुष्यता का आदर करना हम सर्वोपरि कर्त्तव्य समझते हैं। मेरे एक मित्र मुझसे कहा करते थे कि देवत्व का मिलना इतना दुर्लभ नहीं जितना मनुष्यत्व का है। "मानुष

दुर्लभ लोके।" इस ससार में करोडो की सख्या में मनुष्य उत्पन्न होते हैं और उनका लय होता जाता है लेकिन जिस पुण्य जीवन ने मनुष्य जन्म पाकर मनुष्यता प्राप्त की है वह धन्य है। मनुष्यता के उदय होने पर वह दूसरो को दुखित देखकर उनकी उपेक्षा नही करता। मनुष्यता-प्राप्त जीवन मनुष्य के दुख दूर करने की चेष्टा ही किया करता है। फल तो भगवान् की इच्छा पर निर्भर है। हीरालालजी खन्ना म मैंने जिस विशेष बात को पाया है वह है उनकी मनुष्यता। वे जिससे सम्बन्ध रखते हैं यावज्जीवन उसके हित में यथाशक्य और यथासाध्य सलग्न रहते है यह बात मैं अपने जीवन के सुदीर्घ अनुभव से निस्सकोच कह सकता हूँ। जो 'मित्र' शब्द का आदर करते है वे खन्नाजी के व्यवहार को देखे। वे देखे कि खन्नाजी म कृतज्ञता और मैत्री धर्म के कितने उच्च सस्कार है।

महामान्य मुरारी पण्डितजी को जिस समय अभिनन्दन-पत्र दिया गया था उस समय का एक लेख है

'देवि वाच मुपासते दिव दव सारन्तु सारस्वत।
जानो ते नित राम सौ गुरु कुलक्लष्टो मुरारी कवि॥"

अर्थात् पाठशाला, विद्यालय और विश्वविद्यालयो मे तो बहुतेरे व्यक्ति दीक्षित होते ही है, परन्तु सारस्वत सार अर्थात् विद्या प्राप्ति का यथार्थ ज्ञान मुरारी कवि को ही है। जिस व्यक्ति ने देश और जाति की सेवा की है वही वस्तुत विश्वविद्यालय के स्नातक पद का उज्ज्वल कर सकता है। मैं खन्नाजी को आशीर्वाद देता हूँ कि वे अपने शेष जीवन का भी अध्यात्म निष्ठा को अपनाते हुए देश-जाति मे विद्या के विकास के लिए लगाते रहें।

श्री हीरालाल खन्ना तथा गांधी विद्यानिकेतन

श्री गंगादत्त पांडेय, आचार्य गांधी विद्यानिकेतन (नैनीताल)

[श्री गंगादत्त पाण्डेय श्री हीरालालजी खन्ना के बड़े पुराने मित्र हैं। उनमें और खन्नाजी में कई बातों का साम्य है। दोनों महानुभाव छात्रों में ऊँचा नियन्त्रण देखना चाहते हैं। दोनों ही शिक्षा-संस्थाओं के निर्माणक हैं। ऐसी दशा में पाण्डेयजी के खन्नाजी सम्बन्धी संस्मरण विशेष महत्त्व रखते हैं। पाण्डेयजी की लेखनशैली बड़ी आकर्षक और सरल है।]

खन्नाजी से (इसी नाम से उनके मित्र बी० एन० एस० डी० इंटरमीडिएट कालेज के विख्यात पीठस्थविर श्री हीरालाल खन्ना को पुकारते आए हैं) मेरा परिचय बीस-पचीस वर्ष हुए हमारे स्वर्गीय मित्र, हिन्दी के परम प्रेमी और प्रख्यात कार्यकर्त्ता आगरे के अध्यापक रामरतन जी द्वारा हुआ था। वह समय आज से भिन्न था। सारे देश और शिक्षा पर भी विदेशियों का प्रभुत्व था। राष्ट्रप्रेमी शिक्षकों को उस समय के अधिकारी सहन नहीं कर सकते थे और सरकारी संस्थाओं में तो क्या गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं में भी अधिकारियों को ही प्रसन्न रखने की अधिकांश चेष्टा के कारण उन पर आपत्ति ही रहती थी। हिन्दी का आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था पर वह राष्ट्रभाषा होने का मात्र स्वप्न ही देखती थी। ऐसी अवस्था में राष्ट्रीय विचारवाले हिन्दी प्रेमी शिक्षकों की संख्या इनी गिनी होना स्वाभाविक ही था। इन्हीं थोड़े से लोगों में से खन्नाजी भी थे। स्वभावतः एक विचार के लोग एक दूसरे की ओर आकर्षित होते ही हैं और हुए।

उत्तर प्रदेशीय माध्यमिक शिक्षा-सम्मेलन में, जिस संस्था में लेखक को कुछ कार्य करने का सौभाग्य था और और जिसके खन्नाजी एक मान्य सदस्य थे, उपरोक्त परिचय बढ़ता गया और इसने मित्रता का रूप धारण कर लिया। सम्मेलन के अनेक अधिवेशनों में खन्नाजी का दृष्टिकोण प्रगतिशील और व्यावहारिक रहता था और ऐसा ही इंटरमीडिएट बोर्ड के कार्यों में भी जिसके खन्नाजी वर्षों तक एक प्रभावशाली सदस्य रहे हैं। कानपुर के शिक्षा-क्षेत्र में खन्नाजी का स्थान कौन नहीं जानता? बी० एन० एस० डी० इंटरमीडिएट कालेज के तो वह प्राण ही हैं। प्रारम्भिक पाठशालाओं से विश्वविद्यालय तक सभी में उनकी रुचि तथा योग है।

मित्रो के साथ के ससर्ग के स्मरण, विशेषकर जब कि मित्रता का आधार विचारो की समानता, राष्ट्रप्रेम व हिन्दी प्रेम रहा हो एक पुण्य-स्मृति है, और अपनी एक विशेष सम्पत्ति। उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करना कठिन और आज की बदली हुई स्थिति मे, उस समय की समस्याओ से अनभिज्ञ लोगो के लिए समझना भी कठिन है। पर जिनका थोडा-सा भी परिचय खन्नाजी से हुआ है वे सभी मानेंगे कि उनका सरल जीवन, सादा भारतीय पहनाव, हँसमुख आकृति, स्फूर्तियुक्त आचरण मधुर वार्तालाप, सबके प्रति सद्भावना और कार्यकुशलता अपने ढग की एक विशेषता है। उन्हे मित्रो की उन्नति में हर्ष होता है और सभी उन्नति के कार्यों मे ह सहयोग देने को तत्पर रहते है।

अत उस समय की सरकार द्वारा मान्य शिक्षा-पद्धति को दोषयुक्त मानते हुए और उसी के अन्दर कार्य करते हुए भी खन्नाजी की सहानुभूति प्रगतिशील प्रयत्नो से व्यावहारिक रूप में रही। अनेक विचारशील व राष्ट्रवादी शिक्षको का बहुत काल से यह मत रहा है कि प्रचलित स्कूलो द्वारा बालका के चरित्र निर्माण में सहायता नही पहुँचती और चरित्ररहित विद्या देश व समाज के लिए व्यर्थ ही नही वरन् प्राय हानिकारक सिद्ध होती है। न यह व्यक्ति को ही सुखी बनाती है जो शिक्षा व जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

अनेक स्कूलो मे, जिनमे काशी का प्रख्यात सेंट्रल हिन्दू स्कूल भी सम्मिलित है, लगभग २५ वर्ष तक प्रधान अध्यापक रहने के उपरान्त, उपरोक्त विचारो की सन् १९३८ में गाधीजी द्वारा पुष्टि पाकर लेखक को प्रेरणा हुई कि एक ऐसा स्कूल बनाया जावे जहाँ मध्यम स्थिति के अभिभावको के बालक व्यवहारिक रूप मे नैतिक, मानसिक, शारीरिक एव सास्कृतिक विकास का अवसर पा सकें, जहाँ स्वच्छ, स्वास्थ्यप्रद और राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत वातावरण में भारतीय सस्कृति के सहारे बच्चो को सदाचारी, स्वस्थ और क्रियाशील बनने का अभ्यास कराया जा सके। जहाँ बालक सत्य व्यवहार, कर्तव्य-पालन, कर्मनिष्ठता और कठिन परिश्रम का जीवन व्यतीत कर निडर और निर्भीक बनकर जीवन-सघर्ष में उतर सकें, और इन्ही उद्देश्यो की पूर्ति के लिए १९३९ में इडियन रेजिडेन्शियल स्कूल की स्थापना की गई, जिसका नाम राष्ट्रपिता की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति बनाए रखने और उनके विचारो तथा जीवन से प्रोत्साहन पाते रहने के हेतु गाधी विद्यानिकेतन हुआ।

खन्नाजी को इस योजना मे सहयोग देने में बडी प्रसन्नता हुई और वे इसका सचालन करनेवाली इडियन एज्यूकेशन सोसाइटी के कहने मात्र पर ही सदस्य बन गये।

निकेतन मे सादे जीवन की भावनाओ को प्रोत्साहित किया जाता है। उसका वातावरण कौटुम्बिक और बच्चो के रहन-सहन में सामूहिक जीवन की भावना बनाये रखने का यत्न किया जाता है। प्रत्येक बालक की पढाई ही नही, उसके व्यक्तित्व को विकसित करने का अवसर दिया जाता है। इस नवीन योजना में बालको की असफलता की सम्भावना कम से कम हो जाती है। उनके हृदय को सदैव शुद्ध रखने, उसे सदाचार की ओर अग्रसर करने तथा उसमें शक्ति का सचार करने के उद्देश्य से निकेतन का कार्यक्रम इस तरह का बनाने का प्रयत्न रहता है जिससे बालक का मन और शरीर सदा कार्यों में रत रहते हुए भी किसी प्रकार का भार अनुभव न करे। उपरोक्त उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए जहाँ यह आवश्यक है कि कुछ सदाचारी व सन्तोषी, लगनवाले, शिक्षा और बालको से प्रेम करनेवाले, व शिक्षा द्वारा समाज की सेवा को ही अपना कर्तव्य समझनेवाले शिक्षक हो, और बालको की सख्या सीमित हो ताकि उनकी व्यक्तिगत उन्नति पर ध्यान दिया जा सके, वहाँ सस्था का स्थान भी स्वास्थ्यवर्द्धक और शहर से कुछ दूर

हो। अतएव इस संस्था को नैनीताल के पूर्व वहाँ से लगभग दो मील की दूरी पर एक भव्य तथा रमणीक टीले पर ३० एकड भूमि के बीच में रखा गया है, जहाँ पर्वतों के नैसर्गिक दृश्य और उनका सौन्दर्य तथा वहाँ की जीवनदायनी एवं स्वास्थ्यकर जलवायु बालकों को स्वस्थ, सुन्दर, उत्साही और उच्चाकांक्षी बनने में अवश्य सहायक होनी चाहिए।

भारत में सच्ची शिक्षा का लक्ष्य यही माना गया है कि उससे छात्रों का जीवन सदाचारी, समाज-सेवी और सुखी बने। इसीलिए पूर्वकाल में शिक्षाश्रमों की सृष्टि हुई थी। शिक्षाश्रम या विद्यानिकेतन उन साधारण स्कूलों से भिन्न है जहाँ विद्यार्थी को कुछ विषयों की पढाई करा देना-मात्र लक्ष्य होता है और जहाँ इससे अधिक कुछ हो भी नहीं सकता है। इंगलैंड में इसी तरह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पब्लिक स्कूल खोले गये थे, यद्यपि उनके लक्ष्य उनकी साम्राज्यवादी नीति में इंगलैंड के लिए एक विशेष प्रकार के कार्यकर्ता पैदा करना था। साध्यों की भिन्नता से जिस प्रकार साधनों में भिन्नता स्वाभाविक ही आ जाती है उसी प्रकार हमारे देश के पूर्वकाल के शिक्षा आश्रमों या विद्यानिकेतनों के साधनों और इंगलैंड के पब्लिक स्कूलों के साधनों में भिन्नता थी।

भारत में अँगरेजी राज्य काल में जो हमारे लिए स्कूल बने वे इंगलैंड के स्कूलों की नकल थे और यहाँ के पब्लिक स्कूल वहाँ के पब्लिक स्कूलों की। अतएव वहाँ का बाह्य वातावरण स्वभावतः बहुत कुछ उनमें आ गया। स्वतन्त्र भारत में रेजिडेंशियल स्कूल, शिक्षाश्रमों या विद्या निकेतनों की रचना में यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि विद्यार्थियों में किन किन विशेष गुणों को अंकुरित करने के लिए ये खोले जाते हैं और उनकी प्राप्ति के लिए कौन-कौन साधन अपनाये जाते हैं। यदि, जैसा हमारे अनेक राष्ट्रीय व मान्य नेता कहते हैं, और सब विचारशील लोग स्वीकार करते हैं, भारत का अपना एक मार्ग है और वह श्रेष्ठ मार्ग है, तो मौलिक रूप से विचार करके अपनी संस्थाओं को अपने ही ढग पर ढालना होगा। हमारे निकेतनों का व्यावहारिक जीवन—शिक्षकों का तथा शिक्षितों का—हमारे आदर्शों के अनुसार और यथासम्भव नजदीक का होना चाहिए। शिक्षकों का जीवन भी, उनके वचनों के साथ, शिक्षा का एक साधन होना चाहिए। शिक्षार्थियों की संख्या की वृद्धि को महत्त्व न देकर उनके प्रत्यक्ष आचरण तथा गुणों पर जोर देना चाहिए। चरित्र सारी शिक्षा का केन्द्र होना चाहिए, और चरित्र की व्याख्या में भले ही मतभेद हो पर इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि सबके साथ सदा सब स्थितियों में सत्य के आधार पर सद्व्यवहार और स्वावलम्बी, परिश्रमी व सन्तुष्ट जीवन ही उसका परिचायक है इसके दो मुख्य आधार हैं। इनका दैनिक जीवन के हर एक काम में अभ्यास ही चरित्र-निर्माण का सीधा रास्ता है। इतना स्वीकृत होने पर किन-किन पाठ्य-विषयों का कौन सा स्थान हो, पाठ्यक्रम में पुस्तकीय विषयों के अतिरिक्त कितने और कौन से, क्रियात्मक, उत्पादक व रचनात्मक कार्य सम्मिलित किये जावें, यह निश्चय करना कठिन न होगा, यद्यपि इनके निर्णय में भी साधनों की उपलब्धि और संख्या की स्थिति अपना प्रभाव डालेगी।

इस बात को सदा ध्यान में रखना होगा कि आश्रम, विद्यानिकेतन या रेजिडेंशियल स्कूल एक विशेष प्रकार की संस्थाएँ हैं जिनका अपना खास लक्ष्य होता है और जो उन्हीं के लिए हैं जिनको उस लक्ष्य-विशेष की प्राप्ति की इच्छा हो। आज स्वतन्त्र वातावरण में अनेक राष्ट्रीय नेताओं के मुख से यह घोषणा सुनी जाती है कि देश को उपरोक्त प्रकार की विशेष शिक्षा संस्थाओं की अत्यन्त आवश्यकता है। अब देखना यह है कि इस नवीन क्रियात्मक क्षेत्र में कितना प्रयत्न होता है और उसको कितना प्रत्यक्ष सहयोग तथा व्यावहारिक सहायता मिलती है।

खन्नाजी के साथ एक वर्ष

लेखक, श्री कैलाशनारायण मालवीय एम० एस्-सी० एल० टी० पी० ई० एस०

[श्री कैलाशनारायण मालवीय, एम० एस्-सी० एल० टी० पी० ई० एस०, उत्तर प्रदेश सरकार के प्रारंभिक शिक्षा-संबंधी ख्यातनामा विशेष पदाधिकारी हैं। बी० एन० एस० डी० कालेज के विज्ञान-विभाग में उन्होंने एक वर्ष खन्नाजी के पास काम किया है। अपने इसी एक वर्ष के अनुभव के आधार पर खन्नाजी के गुणों की उन्होंने यहाँ चर्चा की है। साथ ही साथ कालेज की उन्नति पर भी प्रकाश डाला है।

मालवीयजी लिखते हैं, "खन्नाजी ने इस प्रांत के शिक्षा-क्षेत्र में बी० एन० एस० डी० कालेज में जो कार्य किया वह किसी प्रकार भी इँगलैण्ड के प्रसिद्ध हैरो और एटन के विश्वविख्यात हेडमास्टरो के कार्य से कम नही था। केवल गुलाम देश होने के कारण वे इतना सुविख्यात नही हो सके। इस प्रांत के शिक्षा-क्षेत्र में खन्नाजी ने वह नमूना छोडा है। जिसका अनुकरण करने मे शिक्षा-संस्थाओं का कल्याण होगा।"]

जुलाई सन् १९३२ में जब मैं प्रयाग ट्रेनिंग कालेज से थ्योरी और प्रैक्टिकल में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर निकला तो उस समय के अनुसार हमारे प्रोफेसर ने मुझे प्रयाग के गवर्नमेंट कालेज की इमारत की तरफ इशारा करते हुए कहा कि "अब तो तुम्हे इसी तरफ निगाह डालनी चाहिए।" उनका कहने का अर्थ यह था कि ट्रेनिंग कालेज से जो विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं उनको सरकारी नौकरी तुरन्त मिल जाती है और बहुत बडी नियामत समझी जाती है। मैं भी इसी उत्साह को हृदय मे भरे हुए इस महाविद्यालय से निकलकर संसार के क्षेत्र में प्रवेश करने जा रहा था। लेकिन विधाता के मन में कुछ और ही था। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् का वह समय था जिसे हम "स्लम्प" कहते हैं, और इसी समय यह घोषणा हुई कि इस वर्ष प्रान्तीय शिक्षा विभाग में कोई भी नवीन नियुक्ति न होगी। संसार-क्षेत्र मे आते ही यह पहला धक्का लगा था।

अपने प्रिंसपल टिकर से मिला उन्होंने कुछ सांत्वना दी और यह कहा कि "याद रखो मक्खन कभी भी पानी के नीचे नही रह सकता। ऊपर अवश्य आयेगा। दो एक स्थानो में मुझे नौकरी मिल रही थी, लेकिन उन्होंने मुझे जाने से रोक दिया। इस प्रकार करीब दो माह बीत गये। एक दिन प्रिंसपल टिकर ने मुझे बुलाया और कहा कि तुम अभी स्टेशन चले जाओ और कानपुर के प्रसिद्ध बी० एन० एस० डी० कालेज के प्रिंसपल खन्नाजी से स्टेशन पर मिलो। वे इसी गाडी से कानपुर जा रहे हैं। मेरे यह कहने पर कि वे मुझे नही पहिचानते, उन्होंने कहा कि प्लेटफार्म पर ऐसे शानदार व्यक्तित्ववाले आदमी को तुम्हे पहिचानने में कठिनाई न होगी। मेरे परिचय के पत्र माँगने पर उन्होंने केवल अपना नाम बतलाना यथेष्ट कहा। मैं कुछ निराश स्टेशन आया और प्लेटफार्म पर सैकडो आदमियो के बीच मे खन्नाजी को, जिनको मैंने कभी नही देखा था, पहिचानने का प्रयत्न करने लगा। मुझे यह सोचकर आज भी आश्चर्य होता है कि कैसे मैंने खन्नाजी को पहिचान लिया। पहला व्यक्ति [illegible] मैंने बात की वह खन्नाजी ही थे। अपना नाम बतलाते

बतलाते ही खन्नाजी ने बडे स्नेह से कहा कि "प्रिंसपल टिकर ने मुझे सब बतलाया है, आओ गाडी पर बैठ जाओ और चलकर कानपुर में पढाओ।" मैं इसके लिए बिल्कुल तैयार न था। मेरी नौकरी की क्या शर्त होगी क्या वतन मिलेगा, क्या क्या पढाना होगा इत्यादि प्रश्नो पर खन्नाजी ने कोई बात ही न की। दो मिनट बाद गाडी चल दी और मैं घर वापस आकर दूसरे ही दिन कानपुर के लिए प्रस्थान कर गया। एक निकट-सम्बन्धी के यहाँ ठहरकर मैं प्रातःकाल ९॥ बजे खन्नाजी के मकान पर पहुँचा। खन्नाजी मनीराम की बगिया के आज के इसी मकान में मिले। कालेज के लिए तैयार हो रहे थे और मुझे अपने साथ ताँगे पर बिठाकर कोई विशेष बात किये हुए चल दिये। मैं भी चुप रहा। रास्ते में एक चीज ने मेरा ध्यान विशेष आकर्षित किया वह था परेड के चौराहे के कान्सटेबिल का खन्नाजी को सलाम करना। सन् १९३२ में उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा एक गैरसरकारी व्यक्ति का इस प्रकार सम्मानित होना सचमुच आश्चर्यजनक था। कालेज पहुँचकर खन्नाजी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा और मुझे लिये हुए ऊपर चले गये। ऊपर एक बडे कमरे में एक बडा क्लास लगा हुआ था। खन्नाजी मुझे लिये हुए दर्जे में चले गये और लडकों से मेरा परिचय कराते हुए कहा कि 'यह तुम्हारे रसायन शास्त्र के प्रोफेसर हैं। जो तुम्हें अब पढायेंगे।" उन्होंने फिर पूछा कि "कहाँ तक तुम्हारा कोर्स पढाया जा चुका है।' एक लडके ने उत्तर दिया कि "मुझे metallurgy of copper पढना है।" खन्नाजी मेरी तरफ घूम पडे और कहा कि "आप इस विषय को पढाना शुरू कीजिए। करीब दस मिनट मेरा शिक्षण देखने के बाद वे चले गये और मैंने बी० एन० एस्-डी० कालेज में नौकरी आरम्भ कर दी।

हफ्तों इसके बाद खन्नाजी के दर्शन न हुए और मैं अपना काम करता रहा। पहली तारीख को कालेज के आफिस में मुझे बुलाकर मेरा वेतन दे दिया गया और तभी मैं जान सका कि मेरा वेतन क्या है। इतने थोडे सम्पर्क में खन्नाजी ने मेरे में क्या गुण देखे और क्या समझ कर मुझे नियुक्त किया मैं स्वयं कुछ नहीं कह सकता। यह मैं अवश्य कहूँगा कि जहाँ तक रसायन शास्त्र विभाग का सम्पर्क था मेरी बात को उन्होंने हमेशा पूरी तौर से माना। रसायन सामग्री खरीदने के लिए जब मैंने ८०० रु० की एक सूची तैयार की तो मेरे सहयोगी प्रोफेसर दवे, प्रोफेसर कपूर और प्रोफेसर गोयल ने मेरा मखौल किया और कहा कि इतना रुपया तुम्हें कभी नही मिल सकता। जब मेरी माँग खन्नाजी के पास से मंजूर होकर वापस आई तो इन पुराने प्रोफेसरों को बडा आश्चर्य हुआ। उनकी धारणा यह थी कि शायद मैंने खन्नाजी से कोई विशेष अनुरोध किया है। लेकिन सत्यता तो यह थी कि खन्नाजी ने इस माँग के बारे में मुझसे कोई बात ही न की थी। आज भी मुझे १७ वर्ष के बाद यह याद है कि इस सामान के आने के बाद मैंने कितने जोश और खुशी से उन सामानों को अपने हाथ से स्टोर रूम में सजाया था और मैं उन्हें अपनी निजी थाती से भी ज्यादा प्यारा समझता था।

कुछ महीनों बाद खन्नाजी ने मुझसे पढने-पढाने के बारे में बातचीत की। उस सिलसिले में एक बडी मार्के की चीज उन्होंने मुझसे कही थी जिसे मैं पिछले १७ वर्ष के नौकरी के बाद भी भूला नहीं हूँ और जो किसी भी मनुष्य की सफलता के लिए आज भी उतनी ही आवश्यक है। एक दिन उन्होंने कहा था कि 'तुम काम करना जानते हो, लेकिन अगर सफल होना चाहते हो तो काम लेना भी सीखो। काम लेने की शक्ति तुममें जितनी बढती जायगी, उतनी ही तुम्हारी सफलता निश्चित होगी।" बी० एन० एस० डी० कालेज, जिसने कि प्रान्त में सबसे अधिक नाम पैदा किया, जिसके मुकाबले में आज तक किसी विद्यालय ने इतना सुन्दर परीक्षाफल नहीं दिखलाया, उसकी एक मात्र कुन्जी यही थी। खन्नाजी अध्यापकों

से अपने कालेज में जितना काम लेते थे और अध्यापकों द्वारा लड़कों से जितना काम लेते थे उसका चौथाई भी किसी शिक्षा-संस्था में नहीं लिया जाता। अपनी नौकरी के प्रथम वर्ष में जितना घोर परिश्रम किया था मुझे स्मरण ही नहीं कि फिर ऐसा मौका मिला हो।

बी० एन० एस० डी० कालेज के अपने एक वर्ष के जीवन में मैंने जो दूसरी बड़े महत्व की बात सीखी मेरी दृष्टि में सफलता की वह दूसरी कुंजी थी। "मास प्रोडक्सन" के इस महान कालेज में जहाँ हजार से ज्यादा विद्यार्थी पढ़ते थे, खन्नाजी प्रत्येक विद्यार्थी को स्वयं जानते थे। आप इसे मेरी अत्युक्ति कहेंगे। लेकिन चूंकि मैंने स्वयं इसे देखा है मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस कालेज में एक भी विद्यार्थी ऐसा नहीं था जिस पर खन्नाजी की स्वयं निगाह न रही हो। कोई लड़का किस विषय में कमजोर है इस कैसी सहायता की आवश्यकता है उसके सरपरस्त से मिलकर उस सहायता को उपलब्ध करना खन्नाजी की कार्यशैली का एक महान् अंग था। हर प्रोफेसर से महीने में एक बार उसके विषय में कमजोर लड़कों के बारे में बातचीत करना उनको विशेष सहायता देने के लिए मार्ग निकालना खन्नाजी का साधारण कार्यक्रम था और यही कारण है कि प्रान्त के किसी कालेज ने बी० एन० एस० डी० कालेज को परीक्षाफल में कभी भी नहीं पछाड़ा। आगे चलकर जब मुझे इस कालेज के परीक्षक होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तब मैंने देखा कि यहां के बालकों के उत्तर दूसरे कालेजों के बालकों के उत्तर से कितने ऊँचे स्तर के हैं।

खन्नाजी ने इस प्रान्त के शिक्षा-क्षेत्र में बी० एन० एस० डी० कालेज में जो कार्य किया है वह किसी प्रकार भी इंगलैण्ड के प्रसिद्ध हैरो और एटन के विश्वविख्यात हेडमास्टरों के कार्य से कम नहीं था। केवल गुलाम देश होने के कारण वे इतना सुविख्यात नहीं हो सके। इस प्रान्त के शिक्षा क्षेत्र में खन्नाजी ने वह नमूना छोड़ा है, जिसका अनुसरण करने में ही स्वतन्त्र भारत की शिक्षा संस्थाओं का कल्याण होगा। मेरी सत्कामना है कि खन्नाजी सौ वर्ष तक स्वस्थ रहकर जीवित रहें और इस प्रान्त में शिक्षा में जो महान् परिवर्तन और प्रसार हो रहा है उसमें अपने अनुभवों से पथ प्रदर्शन का कार्य करें।

खन्नाजी का व्यक्तित्व, वस्त्र, भोजन और कार्यक्रम अनुपम रहा है और जब भी मैं कभी अपने पिछले जीवन पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे इस बात से सतोष और प्रसन्नता होती है कि मैंने इतने बड़े शिक्षाविशेषज्ञ, कर्त्तव्यपरायण और कर्मठ विद्वान् के चरणों में बैठकर अपने प्रोफेशनल जीवन का प्रथम वर्ष बिताया। दूसरे ही वर्ष मैं सरकारी नौकरी पर चला गया। लेकिन बी० एन० एस० डी० कालेज का एक वर्ष मेरे लिए अब भी शुभ्र ज्योतिस्तम्भ का कार्य कर रहा है।

वे और मैं

डाक्टर विश्वेश्वरप्रसाद, एम० ए० डी० लिट्

[श्री डाक्टर विश्वेश्वरप्रसाद एम० ए० डी० लिट् एक समय प्रयाग विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के प्राध्यापक थे। आज वे भारतीय सरकार के इंटर सर्विसेज हिस्टारिकल सेक्शन रक्षा-विभाग के डाइरेक्टर हैं। उन्हें खन्नाजी के पास स्थानीय डी० ए० वी० कालेज में विद्यार्थी जीवन बिताने का सुअवसर मिला है। अपने उस समय के संस्मरण तथा बाद के अपने अनुभव उन्होंने इस लेख में अंकित किये हैं। खन्नाजी के व्यक्तित्व का अच्छा निदर्शन इस लेख से होता है।]

कोई तीस वर्ष पूर्व जब मैं बी० ए० की शिक्षा के लिए डी० ए० वी० कालेज कानपुर में पढ़ने के लिए गया तो अपने समान अनेक छोटे विद्यार्थियों की तरह मैं कालेज के एक शिक्षक से विशेष प्रभावित हुआ। पहला आकर्षण तो उनकी वेश-भूषा का था जो उनके व्यक्तित्व को प्रकाशित करता था। मझोला कद, गौरवर्ण, ढीला सफेद पाजामा, मोटी गाढ़े की कमीज, उस पर हल्के पीला रंग का लम्बा बन्द गले का कोट लेकिन बटन सब खुले हुए और सिर पर सफेद साफा जिसका पिछला सिरा पीठ पर शोभायमान था और चलने पर हिलता-डोलता था। खुले बटन और सफेद साफे से ही आकर्षण कम न था और आश्चर्य न था कि युवक विद्यार्थी उनकी ओर सहसा खिंच जाते थे, उनकी तेज चाल छोटे बच्चों के समान फुर्ती और मधुर, पर जल्द बोल चाल से तो विद्यार्थी उनको अपना सा ही मानकर संकोच भूल जाते थे। कोट के बटन सदा ही खुले रहते थे यह बात संज्ञाहीन न थी। उनका उदार खुला हुआ हृदय कोट से भी ढका जाना पसन्द न करता था और उसकी रश्मियाँ विद्यार्थियों के कोमल हृदय को अपनी ओर प्रभावित ही कर लेती थीं। इन शिक्षक महोदय का शुभ नाम श्री हीरालाल खन्ना था। डी० ए० वी० कालेज नया खुला था। पर उनकी ख्याति गणित के शिक्षक के नाते उनसे पहले ही आगरा से कानपुर आ चुकी थी और इस नये कालेज में उनकी गणना दो तीन मुख्य अध्यापकों में थी। मुझे यह सौभाग्य तो प्राप्त न था कि मैं उनकी गणित की कक्षा में पढ़ सकता परन्तु क्लास के बाहर कालेज के अनेक कार्यों में और प्रतिदिन किसी न किसी स्थान पर उनका साक्षात् अवश्य होता था। कदाचित् ही कोई विद्यार्थी ऐसा होगा जो यह न कह सके कि वह उनका स्नेहभाजन था। विद्यार्थियों के हित का उनको विशेष ध्यान था और कभी कभी तो विद्यार्थियों को महाकृपालु प्रिंसिपल से भी कुछ कृपा पाने के लिए इनकी ही सहायता लेनी पड़ती थी। मुझ पर इनका विशेष स्नेह था और बहुधा इनके विद्यार्थी जीवन के स्वावलम्बन दृष्टान्त से मुझे प्रोत्साहन मिलता था और सोचता था कि अपनी गरीबी के होते हुए भी मैं उच्च शिक्षा पाने में समर्थ हो सकूँगा। स्नेह, योग्यता, त्याग और कर्मण्यता, ये ऐसे गुण थे जिनसे कालेज में इनकी मर्यादा ऊँची थी और हम विद्यार्थी इनके आदर और सेवा के लिए तत्पर रहते थे।

कालेज के बाद भी श्री खन्नाजी से सम्पर्क बना ही रहा और प्रयाग विश्वविद्यालय में होने के नाते तो साल में कई बार आपके दर्शन प्रयाग में होते ही थे। आपका आना या तो इण्टरमीडिएट बोर्ड या विश्वविद्यालय की मीटिंगों के सम्बन्ध में हुआ करता था। विश्वविद्यालय की अकेडमिक कौंसिल तथा

कोट में आपके सग काम करने का मुझे सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। चाहे कोई भी कमेटी या कौंसिल क्यों न हो वह भी सप्राजी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती है। आपके मर्मगर्भित विचारों का सुनने के लिए सभी सदस्य उत्सुक रहते थे और बहुधा इनका मत ग्राह्य होता था। इस पिछले जीवन में सप्राजी ने दो बातों के लिए अपना विशेष ध्यान और समय दिया है। पहला तो उनका नया बनाया हुआ कालेज बी० एन० एस० डी० कालेज कानपुर जिसका निर्माण ही इनके द्वारा हुआ। पैसा माँगने से प्रबन्ध तक सभी काम आपके सिर पर थे और उनका एसा कोई विरला ही मित्र होगा जिसको इनकी कालेज की एकाग्र सेवा से कभी न कभी खिन्नता न हुई हो। कालेज ही इनकी बातचीत का विषय होता था और उसी के लिए यह सदा तन्मय रहते थे। दूसरा विषय जो इनका प्रिय था वह हिन्दी भाषा का प्रचार और उसका सब जगह व्यवहार था। मुझे याद है जब पहली बार इन्होंने विश्वविद्यालय की अकेडमिक कौंसिल और कोर्ट में हिन्दी में बोलना आरम्भ किया था, हम सबका अभ्यास तो अँगरेजी ही सुनने का था। भला इस नवीनता को कैसे उचित समझते, पर सप्राजी अपनी आन पर डटे रहे और अँगरेजी में बोलना ही छोड दिया। आज तो कुछ और लोग भी हिन्दी में बोलने लगे है।

ऐसा कोई भी जन हित का काम न होगा जिसमें सप्राजी का हाथ न रहा हो। जो लोग कानपुर से परिचित है वे उनके सार्वजनिक कामों से भली भाँति अवगत होंगे। अपने त्याग और अविरल प्रयत्न से ही सप्राजी ने शिक्षा-क्षेत्र में ही नहीं बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी अपना उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। उनके विद्यार्थी तो सदा यही प्रार्थना करेंगे कि वे चिरजीवी होकर देश का मान बढाएँ।

बहुमुखी प्रतिभा

श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा बी० ए०

[श्री नारायणप्रसाद आरोडा बी० ए० कानपुर के प्रसिद्ध और सम्भ्रान्त नागरिको में से है। आपका समस्त जीवन देश-सेवा और काग्रेस कार्य्य में बीता है। देश के क्रातिकारी कहे जानेवाले तरुणो को भी स्वर्गीय श्री गणेशशकर विद्यार्थी और श्री अरोडाजी से पर्याप्त सहायता मिलती रही है। आप प्रसिद्ध साप्ताहिक 'प्रताप' के जन्मदाताओ में है। कई पत्र और पत्रिकाओ का सम्पादन करके आपने हिंदी साहित्य की भी श्रीवृद्धि की है। इधर आप प्रकाशक के नाते उपयोगी पुस्तकों को धडाधड निकाल रहे हैं।

कानपुर के जीवन के सभी पक्षों से अरोडाजी का घनिष्ठ नाता रहा है और अब भी है। श्री हीरालालजी खन्ना का भी आपका परिचय बहुत पुराना है। वे उन्हे अच्छी प्रकार जानते है और उनके कुछ गुणो की चर्चा तथा अपने परिचय की बात इस लेख में लिखो है। खन्नाजी के स्थानीय विरोध की चर्चा भी इस लेख में है।]

जब से मैंने खन्नाजी को जाना उसके पहले से खन्नाजी मुझे जानते थे। हमारा यह परिचय मेरी पुस्तक "लाला हरदयाल के स्वाधीन विचार" के द्वारा हुआ था। पहले पहल जब यह पुस्तक निकली थी *उस समय खन्नाजी कदाचित् विद्यार्थी थे और महामना मालवीयजी के हिन्दू बोर्डिंग में रहते थे।* उक्त पुस्तक पढकर श्री खन्नाजी के मेरे प्रति क्या भाव उत्पन्न हुए इसका तो पता नही, परन्तु मुझे इतना मालूम हो गया कि खन्नाजी एक देशभक्त विद्यार्थी थे और देशभक्तो की बातो को पढते थे। उनकी इस देशभक्ति ने जीवन पर्यन्त उनका साथ नही छोडा और वह अपने ढग से यथाशक्ति देश की सेवा करते रहे।

श्री खन्नाजी के हृदय में देशभक्ति का अकुर पूज्य मालवीयजी के प्रताप से आया। हिन्दू बोर्डिंग *में रहने के कारण खन्नाजी को बहुधा श्री मालवीयजी के दर्शन होते रहे,* क्योंकि *महामना* अक्सर वहाँ आया करते थे और अपने बोर्डिंग के लडको से सम्पर्क बनाये रखते थे। उस महापुरुष के सम्पर्क में जो भी आया वह देश-भक्ति का मत्र ले ही गया। यदि उसका हृदय उपजाऊ भूमि था, तो वहाँ देशभक्ति का पौधा उगा, पल्लवित हुआ और फूला-फला। और यदि वह हृदय मरुभूमि था, तो पौधा मुर्झा गया। श्री खन्नाजी सहृदय थे और उन्होने पूज्य मालवीयजी के लगाये हुए पौधे को सदा हरा भरा रखा। कदाचित् इसका भी कारण था। बोर्डिंग छोडने के बाद भी खन्नाजी ने पूज्य मालवीयजी से सम्पर्क बनाये रखा और वे *यदाकदा उनके दर्शन करते रहे और उस ज्योति-पुज से प्रकाश लेते रहे।*

कानपुर में मैंने श्री खन्नाजी को पहले पहल डी० ए० वी० कालेज के गणित के एक अध्यापक के रूप में देखा। आप गणित के एक सफल और सुयोग्य प्रोफेसर थे और अपनी योग्यता का परिचय अपने शिष्यो के परीक्षाफलो से देते थे। गणित के प्रतिभाशाली अध्यापक होने से आपको अपनी प्रबन्ध-चातुरी का परिचय देने का अवसर नही प्राप्त हो सकता था, जो आगे चलकर उन्होने दिया और प्रमाणित कर दिया कि एक अच्छे गणितज्ञ होने के साथ साथ वे एक कुशल प्रबन्धक भी हैं।

श्री खन्नाजी के डी० ए० वी० कालेज के जीवनकाल ही में पूज्य मालवीयजी ने उन्हे अपने काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में बुलाया था क्योकि मालवीयजी मनुष्य-पारखी भी थे। परन्तु कानपुर में एक

और "मर्दुमशिनास" व्यक्ति था और वह थे स्वर्गीय बाबू विक्रमाजीतसिंह। उन्होंने जब खन्नाजी के पैर डी० ए० वी० कालेज से उखडते देखे, तो फौरन ही उन्हे अपने सनातन धर्म कालेज में बुला लिया और पूज्य मालवीयजी से खन्नाजी को माँग लिया।

उस समय से आज तक खन्नाजी विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज को उन्नत बनाने में जुटे हुए है और सचमुच उन्होंने उसे एक उच्चकोटि का कालेज बना दिया है। इस कार्य में उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा और प्रबन्ध-पटुता का परिचय दिया है। केवल एक ही सस्था को उच्च कोटि की बनाकर खन्नाजी को सन्तोष नही हुआ और न उनकी अपार प्रबन्ध-शक्ति को पूरा काम ही मिला। अत. उन्होंने कानपुर में एक शिक्षा-सोसायटी कायम की जिसे वास्तव मे खन्नाजी का ही प्रतिरूप समझना चाहिए। इस सोसायटी की ओर से खन्नाजी ने सी० ए० वी० स्कूल और कानपुर हाईस्कूल चलाये जो मजे में चल रहे है। श्री खन्नाजी एक सुयोग्य शिक्षक, कुशल प्रबन्धक, उत्तम सचालक और विद्यार्थियों के सच्चे शुभचिन्तक है। कानपुर के शिक्षा के इतिहास में खन्नाजी का एक खास स्थान है और शिक्षाप्रेमी लोग उन्हे सदा श्रद्धा से स्मरण करते रहेगे।

श्री खन्नाजी की क्रियाशीलता को केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही पूरा पूरा अवसर नहीं मिला। अत. उनकी शेष कार्यशक्ति व्यापार की ओर भी लगी। उन्होंने श्री ज्वालाप्रसाद राधाकृष्ण के दफ्तर में भी अपनी व्यापारकुशलता का परिचय दिया, जिससे फर्म को और स्वय खन्नाजी को आर्थिक लाभ हुआ।

साहित्य और हिन्दी की ओर भी आप सदा ध्यान देते रहे है। जिस समय कानपुर में "नागरी प्रचारणी सभा" स्थापित हुई थी उस समय खन्नाजी उसके एक कर्मठ सदस्य थे और उसके द्वारा उन्होंने प्रात के ऊँचे दायरे में भी हिन्दी का सन्देश पहुँचाया। कानपुर के अन्य सार्वजनिक कार्यों में भी खन्नाजी अपने ढंग से थोडा-बहुत भाग लेते रहे है। किन्तु वे सब काम उनके क्षेत्र के बाहर के थे। उनका मुख्य क्षेत्र तो शिक्षा का था और उसमें वे एक सफल खिलाड़ी साबित हुए।

जिस आदमी के प्रशसक होते है उसके कुछ विरोधी भी रहते है और खन्नाजी इस नियम से बचे नही। कानपुर में एक दल विशेष रहा है जो खन्नाजी का भक्त रहा है और उसने सदा खन्नाजी की भरसक सहायता की है। परन्तु एक दल ऐसा भी रहा है जिसे खन्नाजी फूटी आँखों भी नही भाते थे। वह दल खन्नाजी के कामों में सदा रोडे अटकाता रहा है और उनके विरुद्ध कुछ न कुछ उखाड-पछाड़ करता रहा है। किन्तु "जाको रक्खे साइयाँ, मारि न सकके कोय। बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय।" अस्तु, खन्नाजी अनेक अग्नि-परीक्षाओं को पार करके एक सफल शिक्षक और सचालक प्रमाणित हुए है।

श्री विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज तथा खन्नाजी : कुछ स्मृतियाँ

श्री नरेन्द्रजीतसिंह बार-एट ला
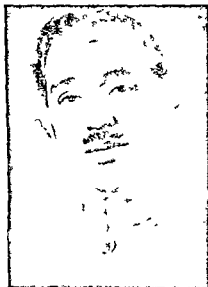
[इस लेख के लेखक श्री नरेन्द्रजीतसिंह स्वर्गीय राय बहादुर विक्रमाजीतसिंह के योग्य सुपुत्र हैं। आप इस नगर के ख्यातनामा और सम्भ्रान्त नागरिकों में हैं। आपके स्वर्गीय पिता कानपुर की राजनीति, धर्मनीति शिक्षानीति और समाजनीति में विशेष स्थान रखते थे और नगर के एक बड़े सम्भ्रान्त जनसमुदाय में उनका प्रभाव था। स्थानीय विक्रमाजीत सनातन धर्म कालेज तथा विश्वम्भर नाथ सनातन धर्म कालेज के आप प्रमुख संस्थापक थे। विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज कमेटी के आप बहुत काल तक सभापति रहे हैं। श्री नरेन्द्रजीतसिंह भी आजकल कालेज की प्रबधकारिणी के योग्य सदस्य हैं। श्री नरेन्द्रजीतसिंह इसी कालेज में पढ़े भी हैं। इस लेख में उन्होंने खन्नाजी के संबंध में अपनी स्मृतियों को कालेज की स्मृतियों के साथ मिलाकर लिखा हैं।]

मुझे श्री विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज के सबसे पुराने विद्यार्थियों में से एक होने का सौभाग्य प्राप्त है। सन् १९१९ में जब महाजनी पाठशाला से बढ़कर एक मिडिल स्कूल के रूप में यह विद्यालय ए० बी० रोड के भवन में प्रारम्भ हुआ उसी वर्ष चौथी कक्षा में मैं भी भर्ती हुआ था। कुछ वर्षों के उपरान्त स्कूल को एक हाईस्कूल का स्वरूप प्राप्त हुआ किन्तु स्कूल की उस समय क्या अवस्था होगी इसका परिचय इसी से मिल सकता है कि हम लोगों का तीसरा बैच था जिसमें केवल पन्द्रह ही विद्यार्थी हाईस्कूल की परीक्षा के लिए जा रहे थे किन्तु फिर भी हमारे प्रधानाध्यापक श्री बख्शीजी का कहना था कि केवल एक के ही पास होने का उन्हें निश्चय है अन्य पास होंगे या नहीं यह वह नहीं कह सकते थे। परीक्षा में हम लोग प्राय आधे विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए और मुझे कालेज का पहला प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ किन्तु इसकी आशा किसी को भी नहीं थी। इतना आत्मविश्वास या अनुभव उस समय तक न विद्यार्थियों में था न अध्यापकों में कि परीक्षाफल के विषय में कुछ भी कह सकें। आज तो विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज में निश्चित रूप से अधिकांश प्रथम श्रेणी में आवेंगे तथा प्रान्त की गणना में यहाँ के विद्यार्थी सर्वोच्च रहेंगे ऐसा विश्वास के साथ खन्नाजी से मैंने कई बार सुना है। ऐसी परिस्थिति खन्नाजी के ही कारण निर्माण हो पाई इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। मुझे उनके चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य तो प्राप्त नहीं हुआ किन्तु उनके सम्पर्क का लाभ समय समय पर अवश्य मिला है।

खन्नाजी का मेरा साक्षात्कार एक नितान्त आकस्मिक घटना है। एक दिन पिताजी ने अनायास मुझे अपने कार्यालय में बुलाया। खन्नाजी वहाँ पहले ही से बैठे थे। उन्होंने पूछा, "तुम्हारा ही नाम नरेन्द्र है ?" मैंने कहा, 'जी हाँ, मैंने उस वर्ष हाईस्कूल की परीक्षा दी थी और मेरी गणित की उत्तर-पुस्तकें निरीक्षण के लिए खन्नाजी के ही पास आई थी। नाम के अन्त में 'जीतसिंह' देखकर उन्हें यह सदेह हो गया कि कदाचित् मेरा निश्चित पता पिताजी से ही लगेगा। थोडी बातें हुई। स्वास्थ्य ठीक रहने के लिए प्रतिदिन प्रातःकाल घूमने का कार्यक्रम बना। खन्नाजी के पुत्र नन्दोजी, मेरा छोटा भाई महेन्द्र और मैं प्रतिदिन खन्नाजी के साथ ग्रेन पार्क घूमने जाने लगे। उनके बार-बार के वाक्य कि केवल पढाई ही सब कुछ नही है स्वास्थ्य की परवाह सबसे पहले करनी चाहिए आज भी वैसे ही कानो में गूज रहे है। उचित सस्कारो का अर्जन भी मानव को मानव बनाता है इसी विचार से खन्नाजी अपने साथ का लाभ मुझे देने लगे।

खन्नाजी की सफलता का सबसे बडा श्रेय उनकी आदर्शप्रियता और आदर्श पालन की धुन को है। वे जो ठीक समझते है उसकी परिपालना वे सबसे कराने की चेष्टा करते है। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात प्रतीत होती है कि इतने व्यस्त होने पर भी वे प्रतिदिन समय निकालकर हम लोगो पर अपने सस्कारो की छाप डालने को इतना महत्त्व देते थे।

खन्नाजी के सहस्रो विद्यार्थी है। उनकी सबसे गहरी आत्मीयता है। सबका उनका निकट का परिचय है। वे सबकी परिस्थिति जानते है। सबके पिता और अभिभावको से वे परिचित रहते हैं। सबका नाम उनकी जिह्वा पर रहता है। सबकी कठिनाइयो और सबकी दुर्बलताओ के लिए उनके पास अपार सहानुभूति है। सबके लिए उनके पास किसी न किसी प्रकार का हल और कोई-न-कोई सहायता प्रस्तुत रहती है। यही कारण है कि वे सबके आदर-भाजन, सबके पथ-प्रदर्शक तथा सबके परिचित मित्र समझे जाते है। मैंने तो उनसे सर्वदा ही सहानुभूति पाई और यही अनुभव और मित्रो का है।

खन्नाजी की सबसे बडी विशेषता उनकी विचार सहिष्णुता है। उनके पास दूसरे के विचारो के लिए बडा आदर है चाहे वे उनसे सहमत हो या न हो। परन्तु विचारो मे निष्ठा होनी चाहिए। केवल वाक्-जाल और मौखिक प्रस्तावना को वे तुरन्त समझ लेते है। विचार-निष्ठा में गहरी आदर्शप्रियता रहती है। खन्नाजी की व्यवहार विधि इसी गुण मे ही प्राण ग्रहण करती है और उनका आदर भी इसी गुण के कारण होता है।

खन्नाजी के गुण किसी के आपत्ति के समय अधिक निखर पडते है। वे अपने को आपत्ति में डालकर दूसरो की सहायता करना जानते है। उन्हें इस कार्य में किसी की परवाह नही रहती। भारतीय स्वतन्त्रता के भीषण युद्ध में उन्होने बहुत सी जोखिमें उठाई हैं। पिछले दो वर्षों में चारों ओर का वातावरण ऐसा हो गया था कि हम लोगो के सगे सम्बन्धी तथा पुराने और घनिष्ठ मित्र भी हम लोगों से सबध रखने मे घबडाते थे। जनरुचि उत्तेजित कर दी गई थी। उस समय खन्नाजी उन कतिपय व्यक्तियो मे थे जिनकी आत्मीयता, निर्भीकता और मित्रप्रेम का परिचय कराती थी। खन्नाजी में अपार गुण है। उनकी तालिका उपस्थित करना इस छोटे परिचय का काम नही है। मैंने तो दो एक अपने अनुभव मात्र लिख दिये है। हाँ, मैं केवल इतना अवश्य सोचा करता हूँ कि मुझमें भी उनका जैसा आत्मविश्वास और उनकी जैसी उद्योगशक्ति और लगन होती।

कृमिनाशक

प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, प्रिंसपल, कालेज ऑफ टेक्नोलोजी, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी।

[लेखक अपने विषय के विशेषज्ञ हैं। उनका विश्लेषण अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है। उनकी भाषा सरल और सुबोध है। इस ग्रंथ के लिए लेख भेजकर लेखक ने पुस्तक का गौरव बढाने की कृपा की है।]

हमारा भूमडल कीडो से भरा हुआ है। वैज्ञानिको ने कई हजार कीडो का अब तक पता लगाया है। साधारणत जब हम कीडो के सम्बन्ध मे सोचते है तब हमे ऐसे छोटे छोटे कीडो का स्मरण हो आता है जो हमे बराबर कष्ट पहुँचाया करते है। आश्चर्य है कि हम उन अनेक कीडो का उस समय ध्यान नही आता जो मनुष्य मात्र के लिए बडे उपयोगी है। हम साधारणत रेशम के कीडे, मधुमक्खियो और लाह के कीडो सदृश कीडा मे परिचित है जो व्यवसाय के अनेक पदार्थो को उत्पन्न करते, इकट्ठा करते और कडे परिश्रम से सचित रखते है। अनेक ऐसे भी कीडे है जो फल, बीज, शाक भाजियो और फूलो के उत्पादन में सहायता करते है। अनेक कीडे, मछलियाँ, पक्षियो, बत्तको, मुर्गो इत्यादि के और हमारे खाद्य आहार है। अनेक ऐसे भी कीडे है जो हानिकर कीडो को खा जाते है। हानिकर पेड-पौधो को नष्ट कर देते हैं, मिट्टी की दशा को सुधार कर खेतो को उपजाऊ बनाते और अनेक अनिष्टकर पदार्थो का विनाश कर सफाई का काम करते है। कुछ ऐसे भी कीडे है जो भोजन का काम देते है और वैज्ञानिक अनुसन्धान मे काम में आते है। अपेक्षया ऐसे कीडो की सख्या कम है जो अनिष्टकर है। अनिष्ट अथवा क्षति करने की क्षमता का कीडो के परिमाण, रूप और रग मे कोई सम्बन्ध नही विदित होता। वास्तव में अधिकाश अनिष्टकर कीडे छोटे और सामान्य होते है।

कीडे मनुष्य मात्र के लिए इस कारण अनिष्टकर है कि वे फसलो और अन्य पेड-पौधो को नष्ट कर देते, मनुष्य और अन्य पशुओ पर आक्रमण करते और उन्हे कष्ट पहुँचाते है। वे सचित पदार्थो, खाद्य, वस्त्रो, अनाजो औषधियो, पुस्तको लकडी के सामानो, कुरसी, मेजो और गृह निर्माण की लकडियो को नष्ट कर देते अथवा क्षति पहुँचाते है। कीडो से जो क्षति होती है वह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीति से उनके खाद्य प्राप्त करने के प्रयत्न से होती है। भारत-सरकार के खाद्य मत्री की ओर से ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष प्राय २० लाख टन (एक टन प्राय २७ मन का होता है) खाद्य-अन्न गोदामो में कीडो से नष्ट हो जाता है। कीडे पौधो को खाते और उन्हे नष्ट कर देते है। कुछ कीडे प्राणियो और पौधो के रोगो को भी फैलाते है। सक्षेप में कीडे फसल को आक्रान्त करते और पत्तियाँ शाखा तनो, जडो, कलियो, फूलो और फलो को नष्ट कर देते है। घरेलू पशुओ को वे काटते और कष्ट पहुँचाते है। मनुष्यो को भी काटते और रोगो के सूक्ष्माणुओ को शरीर मे प्रविष्ट कराते है। हमारे खाद्यो को वे दूषित करते, वस्त्रो को नष्ट करते, पुस्तको, कागजो और घर के लकडी के सामानो को खा जाते है।

कीडो के क्षति पहुँचाने की क्षमता अधिकाश इस बात पर निर्भर करती है कि उनमे उत्पादन की क्षमता बहुत अधिक है और इससे उनकी सख्या की वृद्धि बडी शीघ्रता से होती है। इन हानिकर कीडो के प्रभाव के रोकने के अनेक उपाय है। कुछ तो प्राकृतिक है और कुछ कृत्रिम। कीडो की वृद्धि

रोकने की कुछ रीतियाँ जैविक (biological) हैं कुछ वैध (legal) और कुछ प्राकृतिक। मैं यहा उन्ही उपायो का वर्णन करूँगा जिनको मनुष्यो ने हानिकर कीडो के विनाश के लिए निकाला है। ये उपाय भौतिक हो सकते है अथवा रसायनिक। भौतिक उपायो में हाथ से मारना, यत्रो से दूर भगाना, जालो मे पकडना, कृत्रिम ढग से ठढा कर उनको नष्ट करना, अधिक तपाना जलाना पानी मे डुबाना पानी में बहाना और बिजली द्वारा विनाश करना है। भौतिक रीतियो का क्षेत्र सीमित होता है क्योकि इनका कीडो के खाद्य और आस पास के पदार्थो पर भी हानिकारक प्रभाव पडता है। आजकल अधिकता से रसायनिक रीतियो का उपयोग होता है। जिन जिन रसायनिक द्रव्यो से कीडो का विनाश किया जाता है उन्हे 'कृमिनाशक' कहते है। कुछ लोग इन्हे 'कीटघ्न' भी कहते है। ईसा के जन्म से एक हजार वर्ष पूर्व भी कृमिनाशक के प्रयोग का उल्लेख मिलता है पहले जो कृमिनाशक थे उनका आवश्यक गुण विषैला होने की अपेक्षा दुर्गंध होना अधिक महत्त्व का था। आजकल जितने कृमिनाशक प्रयुक्त होते है उन्हे हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते है। प्रथम उदर विष, दूसरे स्पर्श विष और तीसरे धूम।

धूम ऐसे विष है जो कीडा के मारने के लिए गैस के रूप में प्रयुक्त होते है। स्वाँस-नली के द्वारा ये कीडो पर काम करते है। साधारणतया घर मे रहनेवाले कीडो के विनाश के लिए धूम प्रयुक्त होते है। कारखानो, अनाज और बीजो के गोदामो और छोटे छोटे पौधो के कीडो से बचाने के लिए जहाँ दवाइयाँ छिडकना सम्भव नही होता, धूम प्रयुक्त होते है। प्लेग की बीमारी रोकने के लिए चूहो के मारने में भी धूम का ही प्रयोग होता है।

यह काम ऐसे बन्द स्थान में होता है जिसकी सब खिडकियाँ और रोशनदान बन्द हो। यहाँ धूम के चुनने में सावधानी की आवश्यकता है। धूम ऐसा होना चाहिए जिसका आस पास के पदार्थो पर कोई बुरा असर न पडे। स्थान का जितना क्षेत्र हो उसी के अनुपात में धूम की मात्रा होनी चाहिए। इस काम के लिए ऐसा आदमी होना चाहिए जो उस काम से पूरा परिचित हो और उससे वहाँ के लोगो और पदार्थों पर जो बुरा प्रभाव पडने की सम्भावना हो उसके निराकरण के उपाय से पूरा परिचित हो। धूम देने के समय किसी को स्थान पर नही रहना चाहिए। इस काम के लिए जो धूम प्रयुक्त होते है उनमे से कुछ डायक्साइड, निकोटिन, हाइड्रोस्यानिक अम्ल, कार्बन डाय-सल्फाइड, पाराडाइक्लोरोबेजीन एथिलीन आक्साइड, क्लोरोपिक्रीन, कार्बन टेट्राक्लोराइड और एथिलीन क्लोराइड है। इनमें अधिकाश लवण जय तत्त्वो के सयोग है जिनके प्रस्तुत करने के लिए बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के रसायन शाला में अनेक वर्षो से विशेष रूप से प्रयोग और अनुसन्धान हो रहे है। धूमो में हाइड्रोस्यानिक अम्ल और एथिलीन आक्साईड कीडा के विनाश में अधिक प्रभावशाली है। नीबू और सतरा के पेडो के लिए हाइड्रोस्यानिक अम्ल अधिकता से प्रयुक्त होता है। हरित बागो और घरो में विशेषकर चूहो के मारने मे भी इसका उपयोग होता है। थोडी मात्रा में इसे सोडियम स्यानाइड पर गन्धकाम्ल की क्रिया से प्राप्त करते है। बडी मात्रा में तरल रूप में नलो में बाजारो में बिकता है। एथिलीन आक्साइड शीघ्र उबलनेवाला तरल है जो अधिक वाष्पशीलता के कारण सरलता से उपयुक्त होनेवाला पदार्थ है। कार्बन डायआक्साइड के साथ मिला हुआ 'कार्बोक्साइड' के नाम से यह बिकता है। यह जलता नहीं है, विस्फोटक भी नही है और अनाज के स्वाद पर इसकी कोई हानिकर क्रिया भी नही होती है।

उदर विष ऐसे पदार्थ है जो कीडा के खाद्य को विषैला कर देते है। वे ऐसे पदार्थो के साथ मिल कर प्रयुक्त होते है जो साधारण खाद्य की अपेक्षा अधिक आकर्षक और स्वादवाले है। कीडो के खाद्य में मिलाकर

इन्हे इतनी मात्रा में रख देते हैं कि ये कीड़े खाद्य के साथ खा जायें और उनकी मृत्यु हो जाय। उदर-विष पर्याप्त विषैला होना चाहिए ताकि कीड़े शीघ्र मर जायें। उसका मूल्य भी अधिक न होना चाहिए। यह बड़ी मात्रा में प्राप्त होनेवाला और पर्याप्त स्थायी रसायनिक द्रव्य होना चाहिए। कीडो के भगाने का इसमें गुण नही होना चाहिए। इस प्रकार के विषो में अधिकता से प्रयुक्त होनेवाले पदार्थ आर्सेनिक और फ्लोरीन के सयोग (कम्पाउण्ड) हैं। पैरिस हरित (कौपर आर्सीनाइट और कौपर एसिटेट का युग्म लवण) लेड आर्सीनेट, त्रामिकक्लेड, आर्सीनेट, कैलसियम आर्सीनेट साधारण आर्सेनिक सयोग हैं जो उदर विष के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ये बड़े तेज विष हैं पर इनके प्रयोग मे बडी सावधानी की आवश्यकता पडती हैं क्योंकि ये मनुष्य के लिए भी विषैले हैं। फलो के सरक्षण में यदि ये प्रयुक्त हो तो फलो को बडी सावधानी से पूर्ण रूप से धो देना चाहिए।

आर्सेनिक के सयोगो के अतिरिक्त अन्य विषो में सोडियम क्लोराइड, बेरियम बोरो-सिलिकेट, सोडियम बोरोअलुमिनेट, कीडो के मारने के सफल विष हैं। ये भी मनुष्यो के लिए बडे तीव्र विष हैं और इनके छूने और प्रयोग में बडी सावधानी की आवश्यकता है।

अनेक पौधो के जडो से एक पदार्थ प्राप्त होता है जो अनेक समय मे अनेक देशो में मछलियो के मारने के लिए उदर विष के रूप मे प्रयुक्त होता आया है। यह पौधा अनेक उष्ण अथवा अर्ध-उष्ण देशो मे उपजता है। इस पौधे मे जो विष प्राप्त होता है उसे 'रोटीनोन' कहते हैं। वच (डेरिसजड) के क्लोरोफार्म अथवा कार्बन टेट्राक्लोराइड के द्वारा निष्कर्ष से यह प्राप्त होते हैं। विलायक को दूर कर अवशेष को ऐसे विलायक मे घुलाते हैं जो जल मे विलेय हो। साधारणत जडो को चूर्ण बनाकर भी प्रयुक्त करते हैं। रोटीनोनवाले पदार्थ उदर-विष होते हैं और स्पर्श-विष भी।

उदर विष उस दशा में उपयोगी नही सिद्ध होते जब कीडे तल के नीचे से निकालकर भोजन करते हैं। ऐसे कीडो की चोचें लम्बी होती है। ऐसे कीडो के लिए स्पर्श-विष आवश्यक है। स्पर्श-विष में कीडो के शरीर मे विष मुँह के द्वारा प्रविष्टन होकर अन्य भागो से शरीर मे प्रविष्ट करता है। ऐसे विषो मे गन्धक और गन्धक के सयोग, निकोटिन सल्फेट पिरेथ्रम, रोटीनोन, तेल के इमल्शन, ६६६ और डी० डी० टी० हैं।

एक समय गन्धक और गन्धक के सयोग बहुत विस्तार से स्पर्श विष के रूप मे प्रयुक्त होते थे लेकिन अब वे अधिक नही प्रयुक्त होते हैं। इसका कुछ कारण तो यह है कि इनमें दाहक गुण होता है और दुर्गंध होती है पर मुख्य कारण यह है कि अब अन्य अच्छे स्पर्श-विष ज्ञात हैं।

तम्बाकू के पत्तो और तनो से निकोटीन प्राप्त होता है, सम्भवत स्पर्श-विषो में सबसे अधिक प्रयुक्त होनेवाला विष निकोटीन सल्फेट है। साबुन के विलयन के साथ मिलाकर यह प्रयुक्त होता है। इससे अधिक तल पर यह छिड़का जा सकता है। पौधो के पत्तो पर निकोटीन धीरे धीरे मुक्त होता और वह कीडो को मार देता है। कागज को निकोटीन के विलयन मे डुबाकर सुखाकर जलाने से जो धुआँ प्राप्त होता है वह हरित बागो और चिडियो के घरो के लिए प्रयुक्त होता है। शाक-भाजिया के छोटे पौधो के लिए तम्बाकू के पत्तो को जल में उबालकर जो विलयन प्राप्त होता है वह कीडो के विनाशकारी काम के लिए उपयुक्त होता है। जल में दशमलव शून्य ५ (० ०५) प्रतिशत विलयन इसके लिए पर्याप्त है। इसके १०० गैलन विलयन के लिए २० से १०० पाउण्ड तक तम्बाकू प्रयुक्त हो सकता है। तम्बाकू की वास्तविक मात्रा निकोटीन की मात्रा पर निर्भर करती है। निकोटीन को चूर्ण के रूप में भी प्रयुक्त कर सकते हैं। इस रूप में ही यह अधिकता से प्रयुक्त होता है। चूर्णरूप में प्रयुक्त होने के लिए निकोटीन

को चूना, गन्ध अथवा अन्य इसी प्रकार के हल्के पदार्थों के साथ मिलाकर प्रयुक्त करते है। इसके लिए स्वय निकोटीन या निकोटीन सल्फेट दोनो ही प्रयुक्त हो सकते है। साधारणतया निकोटीन का पत्तो पर कोई बुरा प्रभाव नही पडता। सम्भवत बहुत छोटे कोमल पत्ता पर इसका कुछ बुरा प्रभाव पडता हो।

पानी में किरासन मिलाकर इमलशन बनाकर पहले कृमिनाशक के रूप म अधिकता से व्यवहृत होता था पर कोमल पत्तो पर हानिकर प्रभाव के कारण इसका उपयोग अब उठ गया है। चूँकि यह सरलता से प्राप्त होता है इससे अब भी कुछ सीमा तक लोग इसे प्रयुक्त करते है। इस काम के लिए आधा पाउण्ड साबुन को उबालकर पानी मे घुलाते है। आग से हटाकर उसमे २ गैलन किरासन तेल मिलाते है और फिर उसे जोरो से मथकर एक गैलन पानी डालकर मलाई सा इमलशन तैयार करते है। इस इमलशन को इसी रूप में अथवा १ भाग इमलशन म ७ भाग पानी मिलाकर पौधो पर छिडकते है। पौधो के कीडो को नष्ट करने के लिए एक पाउण्ड साबुन को ४ या अधिक गैलन पानी म घुलाकर प्रयुक्त करना चाहिए। इस साबुन के विलयन के साथ निकोटीन अथवा आर्सेनिक के सयोगो को भी मिला सकते है।

पिरेथ्रम के फूलो मे एक विषाक्त पदार्थ होता है जिसको पिरेथ्रीन कहते है। यह कार्बन का एक सयोग है जिसमे नाइट्रोजन नही होता। पिरेथ्रम जापान में बहुत उपजता है। थोडी मात्रा में युगोस्लोवाकिया, पूर्वी अफ्रिका और ब्राजील मे भी उपजता है इन फूलो से क्रियाशील अवयव को कार्बन टेट्राक्लोराइड के द्वारा निकालकर ६०° श० से निम्न ताप पर शून्य में स्रवित कर एक मोम सा पदार्थ प्राप्त करते है जो किरासन में घुलता है और इससे कृमिनाशक द्रव बनता है। इसके प्रबल विलयन को पानी में घुलाकर बागो मे छिडकते है। इससे मक्खियाँ, तैलचट और खटमल मर जाते है। इस द्रव की क्रियाशीलता को बढाने के लिए कुछ उत्तजक उसमे डालते है। गत विश्व-युद्ध मे जापान से पिरेथ्रम का आना बन्द हो गया था इसके स्थान मे अन्य कृमिनाशक की खोज शुरू हुई और इसके फलस्वरूप अनेक कृमिनाशको का पता लगा। इनमें कुछ तो पिरेथ्रम स भी अधिक प्रभावशाली है। इनमें अधिकाश ऐसे है जो रसायनशाला में कृत्रिम रीति से तैयार हुए है इन अनुसन्धाना से पता लगा है कि अनेक उद्भिद तलो को तम्बाकू के साथ इमल्शन बनाने से भी प्रबल कृमिनाशक प्राप्त होते है और उन अनेक कीडो को जो पत्तो को खाते और चूसत है नष्ट कर डालते है।

अपेक्षया थोडे समय से ही कार्बनिक रसायनिक द्रव्यो का व्यवहार कृमिनाशक के रूप में हो रहा है। गत महायुद्ध के बाद ही ये उपयोग में आये है। अकार्बनिक कृमिनाशको की अपेक्षा इनसे लाभ यह है कि ये मनुष्य तथा अन्य बडे प्राणियो के लिए इतने विषैले नही है। वस्त्रो को कीडो से सुरक्षित रखने के लिए नैपथ्लीन की गोलियाँ अनेक वर्षो से व्यवहृत होती चली आई है। यह अलकतरा से प्राप्त होता है और कीडे इसकी गध से भाग जाते है। एक ट्रक वस्त्र की रक्षा के लिए २ पाउण्ड नैपथ्लीन की आवश्यकता पडती है। खेतो और हरित घरो के धूम के लिए भी यह अच्छा कृमिनाशक है। पाराक्लोरोबेंजीन एक सस्ता और उपयोगी धूम है जो खेतो, वस्त्रो और कुछ सीमा तक अनाजो के लिए उपयुक्त हो सकता है।

डी० डी० टी० सक्षिप्त रूप है उस कार्बनिक सयोग का जिसे डाइक्लोरो डाइफेनिल ट्राइक्लोरो इथेन कहते है। इस सयोग के आविष्कारक एक जर्मन रसायनज्ञ है जिन्होने प्राय ७५ वर्ष पहले इस सयोग को तैयार किया था। पर इसके कृमिनाशक गुण का पता गत महायुद्ध मे ही लगा है। आज तक जितने कृमिनाशक ज्ञात है उनमें यह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है यह घर की मक्खियो, खटमलो, चीलरो, मच्छडो और अन्य छोटे कीडो के लिए बडा विषाक्त है पर मनुष्य और घरेलू पशुओ के लिए विषाक्त नही

है। यह चूर्ण के रूप में अथवा इमलशन के रूप में व्यवहृत हो सकता है। बाजारो में डी० डी० टी० से बने अनेक कृमिनाशक आज बिकते हैं। इस देश मे प्राप्त पदार्थो से यह सरल्ता से तैयार हो सकता हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रसायनशाला में जो प्रयोग हुए हैं उनसे विदित होता हैं कि इसके निर्माण की विधि बडी सरल हैं। और रसायन का कोई भी ग्रेजुएट इन विधियो पर प्रभुत्व प्राप्त कर सकता हैं। ६६६ एक कार्बनिक सयोग का व्यावसायिक नाम हैं जिसे बेंजीन हेक्सा-क्लोराइड कहते हैं। इस सयोग की तैयारी में कार्बन के ६ परमाणु, हाइड्रोजन के ६ परमाणु और क्लोरीन के ६ परमाणु चाहिए। इसी से इसका नाम ६६६ पडा हैं। दिल्ली के कृषि विभाग मे इस सयोग से जो अन्वेषण हुए हैं उनसे पता लगता हैं कि खाद्य अन्नो अथवा बीजो के सरक्षण के लिए यह एक अच्छा कृमिनाशक हैं।

चौथे ब्लाक का 'डिप्लोमेट'

अध्यापक गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस् सी०

• [विद्यार्थी-काल में श्री खन्नाजी के साथी और अब प्रयाग के कायस्थ पाठशाला कालेज के भौतिक विज्ञान विभाग के प्रधान श्री प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव के इन संस्मरणो में खन्नाजी के प्रयाग प्रवास काल तथा उनकी विज्ञान परिषद् हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि संस्थाओ के कार्यों में तीव्र रुचि की चर्चा की गई है। विद्वान् लेखक ने बताया है कि खन्नाजी के जीवन को प्रेरणा देनेवाली पुस्तक थी "The Economy of Human Life", जो भगवद्गीता के समान ही एक संस्कृत पुस्तक का अनुवाद थी। अपने प्रत्युत्पन्न मतित्व के कारण अपने छात्रावास-जीवन में आपके साथियो ने आपको "डिप्लोमेट" (कूटनीतिज्ञ) की प्रिय उपाधि से विभूषित किया था।]

लगभग ४० वर्ष पहले प्रिंसिपल खन्ना से मेरा परिचय हुआ था। तब हम दोनो मदनमोहन मालवीय होस्टल में रहते थे। उस समय उक्त होस्टल का चौथा ब्लाक बडा प्रसिद्ध था। उस ब्लाक के बीच के रास्ते में सामने के बरामदे में एक चारपाई पडी रहती थी और वहा चार पाँच विद्यार्थी प्राय डटे ही रहते थे। अनेक आर्थिक, सामाजिक, राजनतिक और धार्मिक विषयो पर वहाँ विवेचन हुआ करता था। उसी स्थान के पास ही श्री खन्नाजी का कमरा था। जब कभी खन्नाजी आ बैठते थे, तो तर्कों द्वारा अपनी युक्ति को पुष्ट करके सभी को प्राय परास्त कर देते थे। आपका परिचय उस समय भी पं० मदनमोहन मालवीय, डा० रणजीतसिंह, डा० सच्चिदानन्द सिन्हा, डा० सप्रू आदि से था और उन नेताओ के सिद्धान्तो और विचारो को प्रकट करके आप सबको निरुत्तर कर देते थे।

आपको अपने पूर्व-जीवन का वृत्तान्त रहस्यमय रखने में बडा आनन्द आता था। आप अपने निवास स्थान तथा कुटुम्ब का हाल किसी को मालूम न होने देते थे। इतना हम लोग अवश्य जानते थे कि आप स्वावलम्बी हैं। आप कई ट्यूशनें करके अपना निर्वाह करते थे। और सम्भवत कुछ घर भी भेज दिया करते थे। आप बडे उत्साही और साहसी थे। आपके पास एक पुस्तक थी— "The Economy of Human Life" यह एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ का अनुवाद था। यह ग्रन्थ आजकल संस्कृत साहित्य में अप्राप्य है परन्तु इसका अनुवाद चीनी भाषा में उपलब्ध था और उसी से अँगरेजी में अनुवाद हुआ था। आपको यह ग्रन्थ जिसकी शैली भगवद्गीता से बहुत मिलती है बहुत प्रिय था। आप उसी ग्रन्थ के सिद्धान्तो को अपने जीवन में अपनाने की चेष्टा किया करते थे।

भगवद्गीता में निर्भयता पर बडा जोर दिया है और मनुष्य के दिव्य गुणो में उसको प्रथम स्थान दिया है। आप भी सदैव बडे निर्भीक रहे है। आप एक विद्यार्थी को पढाकर रात को देर से लौटा करते थे। रास्ते में एक पेड था जिस पर कहा जाता था कि एक प्रेत रहता है। आपको एक दिन उस पेड के पास से निकलने पर भय लगने लगा, तो आपने बढकर उस पेड पर कई डण्डे जमाये और कहा कि प्रेत आवे और अपना बल दिखावे। तदनन्तर वहाँ खडे रहकर आप आगे बढे।

सम्मेलन की स्थापना के पहले प्रयाग में एक हिन्दी प्रचारिणी सभा थी, उसका दफ्तर श्री पुरुषोतमदास टण्डन के वकालत के दफ्तर के सामने था। आप उसके सदस्य थे और उस संस्था के कार्यों में बडा योग दिया करते थे। उन्ही दिनो हिन्दू विश्वविद्यालय का डेपुटेशन प्रयाग आया। आपने

उस डेपुटेशन के कार्य को सफल बनाने में बड़ी सहायता दी थी। सम्मेलन का भी उन्ही दिनों जन्म हुआ। तब तो चौथे ब्लाक की चारपाई मंडली में रात-दिन सम्मेलन की ही चर्चा हुआ करती थी। वही उस ब्लाक के विद्यार्थियो ने यह प्रण किया था कि हिन्दी-भाषा में ही अपने घरेलू कार्य किया करेंगे और राष्ट्रभाषा की निरतर सेवा करेंगे।

राष्ट्रभाषा का विज्ञान-साहित्य उस समय तक बहुत ही अपर्याप्त था। सन् १८८० के लगभग जब यूरोप में वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ खुली और वैज्ञानिक साहित्य का उन्नयन और प्रचार बडे वेग और बल से होने लगा। तब भारतवर्ष में भी वैसी ही एक लहर चली। पं० सुधाकर द्विवेदी ने गणित का अग पुष्ट किया। 'चलन-कलन' और 'चल राशि कलन' ग्रन्थ उन्होंने बनाये और उन ग्रन्थो की समालोचना यूरोप में भी हुई। उस समय टाडहटर की बनाई पुस्तकें इँगलैण्ड में प्रचलित थी। समालोचको का कहना था कि बहुत सी प्रक्रियायें, जो चलन-कलन और चल राशि कलन में दी है, टाडहटर की प्रक्रियाओ से अधिक स्पष्ट और शुद्ध है। शुद्ध विज्ञान में स्वर्गीय पं० लक्ष्मीशकर मिश्र ने काम किया और छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित की। इन ग्रन्थों के प्रकाशन में भारतीय सरकार ने बडी सहायता दी। हिन्दी ही नही वरन् उर्दू तथा अर्बी में भी ऐसे ही ग्रन्थ सरकार ने प्रकाशित कराये, परन्तु कूटनीति की विजय हुई और शीघ्र ही सरकार ने सहायता देना बन्द कर दिया। परिणाम यह हुआ कि समीकरण मीमासा आदि ग्रन्थ लिखे गये परन्तु प्रकाशित न हो सके।

जब १९१२ मे हिन्दी-साहित्य की ओर जनता का ध्यान गया तो बडा असन्तोष फैला और कुछ अध्यापकगण यह विचार करने लगे कि विज्ञान का पठन-पाठन हिन्दी में होना चाहिए और सब विषयो पर ग्रन्थों का निर्माण और प्रकाशन होना चाहिए। इस आन्दोलन के जीवन और प्राण स्व० रामदास गौड थे। यह पहले प्रयाग की कायस्थ पाठशाला के रसायन के अध्यापक थे, १९०५ से यह इस क्षेत्र में प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई, अतएव १९१२ में जब हिन्दी-प्रेम की हवा चली तो फिर उनको नया उत्साह पैदा हुआ और स्वर्गीय डा० गगानाथ झा की सहानुभूति तथा सहायता से विज्ञान परिषद् की संस्थापना की योजना बनाई गई। खन्नाजी उस समय शिवराखन पाठशाला (सी० ए० वी० हाईस्कूल) में विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए थे। आपने भी इस पुण्य कार्य मे हाथ बटाया और प० शालिग्राम भार्गव के सहयोग से कुछ सज्जनो ने विज्ञान-परिषद् १९१३ मे स्थापित की। स्व० डा० सुन्दरलाल, पं० श्रीधर पाठक, लाला सीताराम आदिविद्या तथा श्रीसम्पन्न व्यक्तियो ने भी पूरा सहयोग दिया।

परिषद् की सस्थापना के एक वर्ष के भीतर ही यह विचार हुआ कि एक मासिक पत्र भी प्रकाशित करना चाहिए। *श्रीरामदास गौड हिन्दी ससार में अपनी कविताओ, लेखो और ग्रन्थो के कारण* पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने पत्र प्रकाशन के लिए लेख इकट्ठे करने का प्रयत्न किया। परन्तु ऐसे एक नए प्रकार के मासिक का प्रकाशन-कार्य, स्वीकार करने के लिए कोई प्रकाशक प्रस्तुत न था। इस अवस्था में प्रकाशन ठीक करने का सेहरा खन्नाजी के सर बँधा। आपका सबध कई छापेखानो से था। वहाँ कुछ काम आप किया करते थे। लीडर प्रेस के मैनेजर श्री भल्लाजी को खन्नाजी ने उत्साहित करके प्रकाशक बनने के लिए तैयार कर दिया। फलत अप्रैल १९१३ में विज्ञान का पहला अक बडी सजधज से निकला। भल्लाजी को समय नही था कि प्रकाशन का प्रबध कर सकें और यह आवश्यक था कि विज्ञान-परिषद् के कार्यालय में ही प्रकाशन-विभाग भी रहे। प्रकाशक प्रकाशन-कार्य

के लिए लेखक का वेतन देना नही चाहते थे। तब श्री खन्नाजी ने प्रकाशन का प्रबध किया। दिन भर स्कूल में पढाने के बाद आप जानसेनगज में परिषद् के दफ्तर में आकर नित्य एक घटा काम किया करते थे। जब दफ्तर कटरे में उठकर आया तो आप कटरे में भी नित्य काम करने आते थे।

सन् १९१४ में कायस्थ पाठशाला में कई नए अध्यापक नियुक्त हुए जो हिन्दीप्रेमी थे और काम करने के लिए उत्साह से भरे थे। उनमें से एक स्वर्गीय ब्रजराज थे। वह पहले बी० एस-सी० एल० एल० बी० थे और पाठशाला में गणित तथा भौतिक शास्त्र और अँगरेजी पढाया करते थे। तदनन्तर उन्होने गणित विषय में एम० ए० पास करने का निश्चय किया। खन्नाजी के साथ वह नित्य गणित पढा करते थे। जब यह दोना सज्जन रात को दो-तीन घण्टे पढते थे तो विज्ञान परिषद के विषय में भी अनेक योजनाएँ बनाते थे।

परिषद् के प्रारम्भिक सदस्यो में स्वर्गीय महावीरप्रसाद, बी० एस् सी० एल० टी०, विशारद भी थे। उनको भी गणित विशषत ज्योतिष से बडा प्रेम था। उस समय यह निश्चय हुआ कि विज्ञान में धाराप्रवाह रूप से कुछ लेखमालाएँ छापी जायें, जिनको बाद में पुस्तको के रूप में प्रकाशित कर दिया जाय। इस योजना का श्रेय इन तीना सज्जनो को ही है। फलत विज्ञान-परिषद् ने अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये। इनमे सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त का वैज्ञानिकभाष्य और समीकरण मीमासा है। पहले ग्रन्थ को स्वर्गीय महावीरप्रसादजी ने बडे परिश्रम और अध्यवसाय से लिखा था। समीकरणमीमासा लगभग ३५ वष लिखी रखी रही तब कही परिषद् ने उसको प्रकाशित किया।

श्री के० सी० भल्लाजी ने लगभग एक वर्ष तक विज्ञान पत्र का प्रकाशन किया तदनन्तर परिषद् ने स्वय इस कार्य को उठा लिया। तब भी खन्नाजी विज्ञान परिषद् के सभी कामो में सहयोग देते रहे।

कालेज के दिनो में हँसी में खन्नाजी को 'डिप्लोमेट' की पदवी दी गई थी। आप अपनी डिप्लोमेसी द्वारा सबको उत्साहित करते थे, परन्तु आपने कभी एक लेख भी परिषद् के लिए नहीं लिखा। आप पानी में उगे कमल के पत्तो की तरह निर्लेप रहे। आपने प्रयाग से आगरा और तदनन्तर कानपुर का प्रवास किया। आपके विद्यार्थी आपका सदा गुणगान करते रहते है। आपने कानपुर के बी० एन० एस० डी० इण्टर कालेज को कितनी कठिनाइयो से चलाया है यह बात किसी से छिपी नही है। इण्टरमीडिएट बोर्ड तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के सदस्य बनकर आपने बडा अमूल्य काम किया है। आपके समान परिश्रमी, अध्यवसायी, त्यागी उत्साही सज्जन बहुत कम दिखाई पडते है। आप सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनो में प्राय प्रतिवर्ष जाते है और जब प्रयाग आते है तो अपने सभी मित्रा से मिलकर जाते है। जब कभी किसी मित्र को या अपरिचित मनुष्य को भी आपकी सहायता की आवश्यकता पडती है तो आप उसका काम कर देने म कोई कोर कसर नही करते। इसलिए आप अत्यधिक लोकप्रिय है। आप बच्चो से प्रेम करते है और उनकी सहायता भी करते रहते है। प्रयाग में जब आप रहते थे तो नये आनवाले विद्यार्थिया की आप बडी सहायता किया करते थे। कालेज छोडकर जानेवाले विद्यार्थिया से आप उनका 'कौशन मनी' अपने नाम लिखा लेते थे और नये विद्यार्थियो को उस धन से सहायता देते थे। इस प्रकार पुस्तकें भी आप इकट्ठी करके नवागन्तुका को देते थे। परमात्मा से प्रार्थना है कि उनको शतायु प्रदान करे और बी० एन० एस० डी० कालेज से अवसर प्राप्त करने पर उनकी उदारता और अनुभव से एक विस्तृत क्षेत्र के विद्यार्थी लाभ उठावें।

श्री खन्नाजी

श्री अमरनाथ कपूर

[श्री अमरनाथजी कपूर खन्नाजी के निकट विद्यार्थियो म से हैं। ये अच्छे काग्रेस कार्यकर्ता और समाज-सेवक हैं। खन्नाजी के विषय में इन्होने अपने उद्‌गार काव्य में लिखे हैं।]

हीरालाल वटोर विधाता,
ने तव अनुपम तन निर्माया।
धन्य किया मानव जीवन को,
विद्या-प्रेम हृदय उपजाया।

हृदय खोल आजीवन उनने,
वितरण किया पिता के नाते।
वालक वन हम सवने लूटा,
नव आदर्श सदा अपनाते।

आशीर्वाद ग्रहण कर कितने,
जड शिशुओ ने जीवन पाया।
कृपा पान ने कांच कणो को,
कितने हीरालाल बनाया।

ग्राम ग्राम नगरो नगरो में
फैले शिष्य आपके सारे।
सूबे में प्रतिभा पाते हैं,
ऊँचे ऊँचे पद पर न्यारे।

एक चरित्र लहर जीवन से।
फैलाया हैं अपने भारी।
धन्य कोख जिसने उपजाया,
सरस्वती का अमर बिहारी।

जीवन क्या, चरित्र दृढता ही
धर स्वरूप मानव का आई,
विचरे जहाँ विमल प्रतिभा बन
जन-जीवन में मृदुता छाई।

माँ की ममता भरे हृदय में
शासक की कठोरता भाई
सयम की प्रतिभा जीवन में
एक अनोखी वह ले आई।

वह आदर्श उसी प्रतिभा ने,
बच्चे में उमग उपजाया।
ममता लोभ मोह तज सबरा,
निज चरित्र बल से अपनाया।

नव निर्मित कुटुम्ब शिष्या के,
स्नेह वारि से सिंचन पाते।
ही रहते हैं सदा आपके
कृपा पात्र बन सुत के नाते।

कठिन समय में आप सदा,
दृढता साहस उनमें देते हैं।
भँवर पडी नैया निज कर ले,
जब-तब उनकी खे देते हैं।

इसी लिए पथ दर्शक उनके,
आप बने रहते हैं प्यारे।
दूर बसे भी आप न होते,
हैं उनके जीवन से प्यारे।

गुरु शिष्य में निज जीवन से,
नव सम्बन्ध एक निर्माया।
एक महान् कुटुम्ब रूप में,
जो सूबे भर में है छाया।

उनको निज आदर्श बनाकर,
अध्यापक सुपुमा सरसावें।
नव भविष्य में निज शिष्यो से
वह भी सब दिन सादर पावें।

अधिक आयु बल मिले आपको,
बने रहे हम कृपाभिलाषी।
बन आदर्श नागरिक जन को
अविरल जन सेवा अविनाशी।

खन्नाजी के जीवन की कुछ विशेषतायें

डाक्टर रामदास तिवारी, प्रयाग विश्वविद्यालय

[श्री० डाक्टर रामदास तिवारी एम० एस्-सी०, डी० एस सी०, अध्यापक रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, बी-एन० एस-डी० कालेज के ख्यातनामा पूर्व विद्यार्थियो मे है। वे श्री हीरालाल खन्ना के निकट सम्पर्क मे रहे है। खन्नाजी के अनेक गुणों की चर्चा तो बहुत लोगों ने की है पर इस लेख में खन्नाजी के गणित पढाने की विधि की सराहना की गई है। अपने अनुभव के बल पर लेखक ने लिखा है कि गणित पढ़ाने का खन्नाजी का ढग अद्वितीय और पूर्ण सफल है। उनके व्यक्तिगत चरित्र के संबध मे तिवारीजी कहते है—

"खन्नाजी से परिचय होने पर सबसे बड़ी चीज जो किसी को उनकी ओर आकर्षित करती है वह उनका दूसरे में अपनेपन का भाव पैदा कर देने की शक्ति है।"]

खन्नाजी को मै बहुत दिनो से तो नही जानता—केवल सत्रह वर्ष हुए और यदि वास्तव मे पूछिए तो ऐसा मालूम होता है कि अभी कुछ ही दिन पहले की बात है जब कि खन्नाजी से पहली बार मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। सन् १९३३ में कानपुर गुरुनारायण खत्री हाईस्कूल (अब इन्टर कालेज) से मैंने हाईस्कूल परीक्षा पास की। अब प्रश्न इन्टरमीडियेट में पढ़ने का था कि किस कालेज मे पढा जाय। सबसे बडा प्रश्न यह था कि मुझे आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी जिसके बिना कि मै पढ़ ही नही सकता था। इस परिस्थिति में श्री शिवकुमारलालजी श्रीवास्तव ने जो कि आजकल डी० ए० वी० हायर सेकण्डरी स्कूल के प्रिंसिपल है और जो उस समय गुरुनारायण खत्री स्कूल में थे मेरा परिचय खन्नाजी से कराया। खन्नाजी की सादगी, प्रेम-भाव तथा दूसरों में अपनापन पैदा कर देने की शक्ति को देखकर मै दग रह गया। इसके बाद मै खन्नाजी के यहाँ आने-जाने लगा और उनकी ओर मेरी श्रद्धा बढती ही गई। जुलाई सन् १९३३ में मैंने कालेज में अपना नाम लिखवा लिया और उन दो वर्षों में जब कि मै कालेज मे था, खन्नाजी से वह सम्बन्ध हो गया जो कि कालेज छोड़ने के पंद्रह वर्ष बाद अब भी चल रहा है और चलता रहेगा। प्रयाग में रहते हुए मुझे लगभग पंद्रह वर्ष हो गये है और खन्नाजी जब कभी भी किसी काम से प्रयाग आते है मुझे दर्शन देने की कृपा अवश्य करते हैं। यह उनका मेरे ऊपर प्रेम है। मै जब कभी कानपुर जाता हूँ खन्नाजी के दर्शन अवश्य करता हूँ और यदि कभी गलती से न पहुँच सका तो खन्नाजी को इसकी बड़ी शिकायत रहती है।

खन्नाजी से परिचय होने पर सबसे बड़ी चीज जो किसी को उनकी ओर आकर्षित करती है वह उनका दूसरे मे अपनेपन का भाव पैदा कर देने की शक्ति है। एक बार मिलने के बाद दुबारा मिलने पर चाहे वह कई वर्षो के बाद ही हो, खन्नाजी नाम लेकर ही सम्बोधित करेंगे और साथ ही साथ घरवालों का नाम व स्थान सब बतला देंगे। यह वह शक्ति है जो दूसरो को अपनी ओर आकर्षित करती है। बहुत ही कम लोगों में यह शक्ति होती है। जिन व्यक्तियों को मुझे जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनमें से मुझे यह शक्ति दो ही सज्जनों में मिली है, एक तो डाक्टर अमरनाथजी झा तथा दूसरे खन्नाजी। खन्नाजी के इस गुण को मैंने बहुत ही सराहा है और इस बात का

वह आदर्श उसी प्रतिभा ने,
बच्चे में उमग उपजाया।
ममता लोभ मोह तज सबका,
निज चरित्र बल से अपनाया।

नव-निर्मित कुटुम्ब शिष्या के,
स्नेह वारि से सिंचन पाते।
ही रहते हैं सदा आपके
कृपा पात्र बन सुत के नाते।

कठिन समय मे आप सदा,
दृढता साहस उनमे देते है।
भँवर पडी नैया निज कर ले,
जब-तब उनकी खे देते हैं।

इसी लिए पथ दर्शक उनके,
आप बने रहते है प्यारे।
दूर बसे भी आप न होते,
है उनके जीवन से प्यारे।

गुरु शिष्य में निज जीवन से,
नव सम्बन्ध एक निर्माया।
एक महान् कुटुम्ब रूप में,
जो सूबे भर में है छाया।

उनको निज आदर्श बनाकर,
अध्यापक सुपुमा सरसावें।
नव भविष्य में निज शिष्यो से
वह भी सब दिन सादर पावें।

अधिक आयु बल मिले आपको,
बने रहे हम कृपाभिलाषी।
बन आदर्श नागरिक जन को
अविरल जन सेवा अविनाशी।

खन्नाजी के जीवन की कुछ विशेषतायें

डाक्टर रामदास तिवारी, प्रयाग विश्वविद्यालय

[श्री० डाक्टर रामदास तिवारी एम० एस्-सी०, डी० एस सी०, प्राध्यापक रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, बी-एन० एस-डी० कालेज के ख्यातनामा पूर्व विद्यार्थियो मे है। वे श्री हीरालाल खन्ना के निकट सम्पर्क मे रहे है। खन्नाजी के अनेक गुणों की चर्चा तो बहुत लोगो ने की है पर इस लेख मे खन्नाजी के गणित पढाने की विधि की सराहना की गई है। अपने अनुभव के बल पर लेखक ने लिखा है कि गणित पढाने का खन्नाजी का ढंग अद्वितीय और पूर्ण सफल है। उनके व्यक्तिगत चरित्र के सबध मे तिवारीजी कहते है—

"खन्नाजी से परिचय होने पर सबसे बड़ी चीज जो किसी को उनकी ओर आकर्षित करती है वह उनका दूसरे मे अपनेपन का भाव पैदा कर देने की शक्ति है।"]

खन्नाजी को मैं बहुत दिनों से तो नही जानता—केवल सत्रह वर्ष हुए और यदि वास्तव मे पूछिए तो ऐसा मालूम होता है कि अभी कुछ ही दिन पहले की बात है जब कि खन्नाजी से पहली बार मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। सन् १९३३ में कानपुर गुरुनारायण खत्री हाईस्कूल (अब इन्टर कालेज) से मैंने हाईस्कूल परीक्षा पास की। अब प्रश्न इन्टरमीडियेट में पढ़ने का था कि किस कालेज मे पढा जाय। सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि मुझे आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी जिसके बिना कि मै पढ़ ही नही सकता था। इस परिस्थिति मे श्री शिवकुमारलालजी श्रीवास्तव ने जो कि आजकल डी० ए० बी० हायर सेकण्डरी स्कूल के प्रिंसिपल है और जो उस समय गुरुनारायण खत्री स्कूल में थे मेरा परिचय खन्नाजी से कराया। खन्नाजी की सादगी, प्रेम-भाव तथा दूसरो में अपनापन पैदा कर देने की शक्ति को देखकर मै दग रह गया। इसके बाद मैं खन्नाजी के यहाँ आने-जाने लगा और उनकी ओर मेरी श्रद्धा बढती ही गई। जुलाई सन् १९३३ में मैंने कालेज में अपना नाम लिखवा लिया और उन दो वर्षों मे जब कि मै कालेज में था, खन्नाजी से वह सम्बन्ध हो गया जो कि कालेज छोड़ने के पंद्रह वर्ष बाद अब भी चल रहा है और चलता रहेगा। प्रयाग में रहते हुए मुझे लगभग पंद्रह वर्ष हो गये है और खन्नाजी जब कभी भी किसी काम से प्रयाग आते है मुझे दर्शन देने की कृपा अवश्य करते है। यह उनका मेरे ऊपर प्रेम है। मै जब कभी कानपुर जाता हूँ खन्नाजी के दर्शन अवश्य करता हूँ और यदि कभी गलती से न पहुँच सका तो खन्नाजी को इसकी बड़ी शिकायत रहती है।

खन्नाजी से परिचय होने पर सबसे बड़ी चीज जो किसी को उनकी ओर आकर्षित करती है वह उनका दूसरे में अपनेपन का भाव पैदा कर देने की शक्ति है। एक बार मिलने के बाद दुबारा मिलने पर चाहे वह कई वर्षों के बाद ही हो, खन्नाजी नाम लेकर ही सम्बोधित करेंगे और साथ ही साथ घरवालों का नाम व स्थान सब बतला देंगे। यह वह शक्ति है जो दूसरो को अपनी ओर आकर्षित करती है। बहुत ही कम लोगों में यह शक्ति होती है। जिन व्यक्तियों को मुझे जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनमें से मुझे यह शक्ति दो ही सज्जनों में मिली है, एक तो डाक्टर अमरनाथजी झा तथा दूसरे खन्नाजी। खन्नाजी के इस गुण को मैंने बहुत ही सराहा है और इस बात का

प्रयत्न भी किया कि मैं भी अपने अन्दर यह गुण लाऊँ परन्तु यह स्वीकार करते हुए मुझे खेद होता है कि मुझे इसमें पूर्णरूप से सफलता नही मिली। मैंने खन्नाजी से एक बार पूछा कि आप इतने लोगो का नाम कैसे याद रखते है। उन्होंने जो उत्तर दिया सुनकर मैं दग रह गया, वह यह था कि एक पिता अपने बच्चो का नाम कैसे याद रखता है। उत्तर बहुत ही स्पष्ट है, मैं फिर इस विषय पर आगे उनसे और बात न कर सका।

खन्नाजी की सादगी, उच्च-आदर्श, जन-सेवा, प्रेम-भाव तथा दूसरो की सहायता करना आदि गुणो पर तो सभी ने कुछ न कुछ अवश्य लिखा होगा परन्तु एक विशेष बात जो मैंने सन् १९३३-३५ में वहाँ सीखी और जो इतने दिनो के तजुर्बे के बाद मैं समझता हूँ कि एक महान् बात थी, वह थी खन्नाजी की गणित पढाने की विधि। वैसे तो खन्नाजी बडे प्रेम और सहानुभूति से मिलते थे और बातें करते थे, परन्तु दर्जे के अन्दर वह पढाई-सम्बन्धी मामला में बहुत ही सख्त थे। उन दिनो मुझे बुरा अवश्य लगता था परन्तु इतने वर्ष पढा चुकने के बाद मेरा विचार है कि एक अध्यापक में यह गुण अवश्य होना चाहिए। हाँ, तो मैं खन्नाजी की गणित पढाने की विधि का उल्लेख कर रहा था। विधि बहुत ही गूढ थी। एक प्रश्न को हल कीजिए, एक चार्ट बनाइए तारीख प्रश्नावली, प्रश्न-सख्या, आदि लिखिए फिर यह लिखिए कि प्रश्न लगा या नही यदि लगा हो तो उसके लगाने में कितना समय लगा किसी से सहायता ली या नही। यदि न लगा तो लिखिए कि कितने समय तक उसमें लगे रहे। फिर किसी और समय में उसे लगाइए और यही सब बाते फिर लिखिए। इस प्रकार तीन चार प्रयत्नो के बाद भी यदि आप प्रश्न को न हल कर सकें तो फिर खन्नाजी चार्ट देखकर प्रश्न-सम्बन्धी दो चार बातें बतला कर कहेंगे कि फिर से प्रयत्न कीजिए। इसके बाद ऊपर लिखी विधि को फिर दुहराना पडेगा, फिर से सवाल लगाइए, चार्ट में लिखिए इत्यादि। यह विधि देखने मे कठिन व अकार्य-रूप मालूम होती है—बहुत ही कम लोग इस विधि को काम में ला सकते थे। मुझे याद है कि तीन चार बार तग आकर किसी न किसी की कापी से मैं सवाल नकल कर लेता था तथा चार्ट मे लिख देता था कि चार पाँच प्रयत्नो के बाद सवाल लगाया। इसका फल यह हुआ कि मैं गणित मे उतनी सफलता प्राप्त न कर सका।

वर्तमान स्थिति में जब कि मैं लगभग आठ वर्ष अध्यापन कार्य कर चुका हूँ मैं इस बात को कहने के लिए तैयार हूँ कि गणित सीखने के लिए यह विधि आदर्श विधि है। परन्तु इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए नियमित होना बहुत ही आवश्यक है। एक अनियमित विद्यार्थी इस विधि से कार्य नही कर सकता है और मेरा विश्वास है कि ऐसा विद्यार्थी गणित में सफलता भी नही पा सकता। गणित के किसी प्रश्न को अपने आप हल कर लेने मे एक विशेष आनन्द आता है चाहे वह ५-६ बार असफल प्रयत्न करने के बाद ही हो। इस विधि से विद्यार्थी में आत्म-विश्वास पैदा होता है तथा उसकी विषय-सम्बन्धी नीव मजबूत होती है। परीक्षा पास करना और बात है पर अध्यापक या और किसी के पास से प्रश्नो के लगाने की विधि नकल करने से गणित नही सीख सकता—अपने आप काम करना आवश्यक है।

खन्नाजी इस बात पर जोर देते थे कि यदि सवाल गलत हो जाय तो उसे दुबारा उसी समय न लगाना चाहिए, किसी और समय उसे करना चाहिए। यह बडे महत्व की बात है। प्रश्न करने में जो गलती किसी से होती है, उस समय ताजी रहती है और उसे भूलने मे कुछ समय लगता है। यदि

गलत किया हुआ सवाल फिर उसी समय किया तो वही गल्ती दुहराई जा सकती है, परन्तु कुछ घटो के बाद उसे पुन करने में यह सम्भावना नही है। इस दृष्टि-कोण से नार्ट बनाने तथा उन सब बाता के लिखने का बडा महत्त्व है।

शिक्षा-क्षेत्र में इतने दिना निष्काम सेवा करने के पश्चात् खन्नाजी अब अवकाश ग्रहण कर रहे है। मेरा विश्वास है कि यह अवकाश-ग्रहण केवल उन नियमो की पूर्ति के लिए ही है जो सरकार ने सस्थाओ के लिए बना रखे है। ईश्वर से प्रार्थना है कि खन्नाजी अभी बहुत वर्षो तक हमारे साथ रहे और उन सस्थाओ को जिनको कि उन्होने अपने परिश्रम म बनाया है ठीक रास्ता बतलात रह। मेरा विश्वास है कि खन्नाजी का अवकाश-ग्रहण के साथ उनकी अनेक सस्थाओ की अधिक उन्नति का विकास प्रारम्भ होगा। कारण अब खन्नाजी अपना समय बी० एन० एस० डी० के अलावा और सस्थाओ को भी काफी मात्रा में दे सकेंगे जिसम उनकी नितान्त उन्नति अनिवार्य है।

मेरे सहयोगी श्री खन्नाजी

श्री कालिदास कपूर प्रिंसिपल कालीचरण इण्टरमीडियट कालेज, लखनऊ

[उत्तर प्रान्तीय हाईस्कूल व इंटरमीडिएट बोर्ड के अनेक कार्यों का आदर्श व्यावहारिक स्वरूप देने में खन्नाजी का कितना प्रमुख भाग था, इसी का परिचय हमें लखनऊ के कालीचरण कालेज के विद्वान् प्रिंसिपल श्री कालिदास कपूर ने कराया है। श्री कपूर एक लम्बे समय तक बाद में खन्नाजी के सहयोगी रहे हैं। अतः उनके अनुभव उपयोगी और रुचिकर है। हम श्री कपूर के इस निष्कर्ष से सर्वथा सहमत हैं "पुरुषार्थी को जीवन-मार्ग में सफलता मिलती है, तो उसके वैरी भी उपजते हैं। खन्नाजी के भी वैरी हैं। मानवीय गुणदोष से वे मुक्त नहीं हैं। परन्तु अध्यापकीय जीवन-यात्रा में वह सफल रहे हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"]

मैं खन्नाजी को उस समय से जानता हूँ जब वह प्रयाग के सिटी ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल के सहायक अध्यापक थे। यह सन् १९१५ की बात है। बी० ए० पास करके मैं इलाहाबाद के हायर ग्रेड ट्रेनिंग कालेज में भरती हुआ और इस स्कूल की सातवीं कक्षा को खन्नाजी की निगरानी में पढ़ाने का मुझे काम मिला। स्वर्गीय देवीप्रसादजी टंडन उस स्कूल के हेडमास्टर थे। थे तो वे नाटे और दुबले-पतले, परन्तु बेंत से लड़कों की खबर लेना उनके लिए मामूली बात थी। लड़के उन तक पहुँचने के पहले काँपने लगते थे। स्वर्गीय मालवीयजी के कनिष्ठ पुत्र श्री गोविन्द मालवीय, जो अब हिन्दू विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर हैं, उस समय सातवीं कक्षा में पढ़ते थे, यों मुझे उन्हें पढ़ाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लड़के अपने शिक्षकों का तो सम्मान करते हैं, उनका अनुशासन मानते हैं, परन्तु ट्रेनिंग कालेज से भेजे हुए शिक्षार्थी शिक्षकों को अपने समान समझते हैं, उनसे वैसा ही व्यवहार करना चाहते हैं, या शिक्षार्थी शिक्षक को अपना अनुशासन बनाये रखने में यथेष्ट मुसीबत का सामना करना पड़ता था। गोविन्दजी शारीरिक गठन में न अपने माता-पिता से मिलते हैं, न भाइयों से। सबसे लम्बे, सबसे चौड़े।

गोविन्द की अवस्था उस समय १३-१४ वर्ष की थी, हृष्ट-पुष्ट, गोल मुखाकृति, गालों में लाली, माथे पर चंदन की बिंदी, आँखों में शैतानी। ऐसे लड़के पर अनुशासन करना मेरे लिए कठिन था। अतः मैंने खन्नाजी की शरण ली। उन्होंने उसे समझाया और कहा कि 'तुम्हारा नया शिक्षक मेरा छोटा भाई है, इसके साथ वैसा ही वर्ताव रखो जैसा मेरे साथ।'

उस समय खन्नाजी प्रयाग के हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहते थे। विवाहित नहीं थे। मुझे याद नहीं है कि उस समय तक वह वयोवृद्धता के मुकुटधारी हो चुके थे कि नहीं, परन्तु कालीचरण हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक होने पर सन् १९२१ के बाद जब उनके कानपुर में दर्शन हुए तब वह मुकुटधारी हो चुके थे। वैवाहिक जीवन प्रारम्भ होकर समाप्त भी हो चुका था—एक ही फल देकर। उस समय से मेरे-उनके कुछ झगड़े चल रहे हैं। मैं अपने तईं उनका अनुज मानता हूँ, जैसा वह प्रथम परिचय के बाद मुझे मान चुके हैं। वह कहते हैं कि "मैं लखनऊ के खत्री पाठशाला में जो कालीचरण स्कूल खत्री पाठशाला का उत्तराधिकारी है, पढ़ चुका हूँ। अतएव मैं तुम्हारे स्कूल का 'ओल्ड ब्वाय' हूँ; तुमसे छोटा हूँ।" मैं

कहता हूँ—"देखने में, वास्तव में, आप बडे है, बडे होने का वचन भी आप दे चुके है, मै आपको 'ओल्डमैन' तो कह सकता हूँ, 'ओल्ड ब्वाय' मानने के लिए हरगिज तैयार नही हूँ।'

दूसरा झगडा है उनके घर ठहरने का, मै कहता हूँ कि "निठल्ले विधुर के यहाँ कौन ठहरे ? थाली के ही माधुर्य से काम नही चलता, परोसनेवाले मे भी माधुर्य होना चाहिए। यह वहाँ कहाँ नसीब। आपने विधुर रहना निश्चय किया है, तो मुझे आपका अतिथि बनना भी मजूर नही है। पुत्रवधू लाइए, वह भोजन बनाकर खिलाए, तभी आपका निमत्रण मुझे मजूर हो सकता है।" पुत्रवधू आ गई, खन्नाजी मेरे जैसे बाबा भी हो गये है, परन्तु बाबा की बाते ही करते रहते है भोजन करने का निमत्रण नही देते। सयोग ही तो है, एक ओर पुत्रवधू आई, दूसरी ओर राशनिंग प्रारम्भ हुआ। मेरा नाम लिखाकर मुझे भोजन कराया जाय, यह न उन्हे पसन्द आता है न मुझे। यो, दूसरा झगडा भी अभी तक चल रहा है।

किसी समय शिक्षक भारतीय समाज के सर्वोच्च वर्ग के अधिकारी माने जाते थे। उस समय विद्या का आदर था। अब धन और शक्ति का आदर है। अतएव शिक्षको की गणना अब शिक्षित समुदाय के दलित वर्ग मे की जाती है। इस शिक्षक वर्ग के भीतर भी कई उपवर्ग है। उच्चवर्ग मे है अँगरेजी दाँ नकली साहब, निम्न वर्ग मे है प्रारम्भिक और हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूलो के शिक्षक जिन्हे मुदर्रिस कहते है। नकली साहबो मे भी दो तीन वर्ग है—सर्वोच्च वर्ग मे है विश्वविद्यालय के अध्यापक और सरकारी गजटेड अफसर। उनके नीचे है सरकारी स्कूलो के सहयोगी शिक्षक और उनसे भी नीचे है गैर सरकारी स्कूलो के प्रधान और सहयोगी शिक्षक।

उच्चवर्ग के शिक्षको के वेतन तो ऊँचे है ही, किसी और वर्ग का तो वे शोषण कर ही नही सकते, परन्तु उन्हे अपनी ही बिरादरी मे निम्न स्तरवो के श्रेणी के शिक्षको का शोषण करने का अवसर मिलता है।

परीक्षा का यह अटल सिद्धान्त है कि अपनी पढाई के प्रभाव की जाँच करने के लिए शिक्षक ही परीक्षक हो। परन्तु विदेशी शासन की नीव तो अविश्वास पर रही। अतएव यह नियम बना कि जिस कक्षा मे विद्यार्थी पढते है उससे ऊँची कक्षा के शिक्षक उनके परीक्षक हो। यदि परीक्षा का पारिश्रमिक न होता तो कोई शिक्षक परीक्षा का काम ही न लेता। इसलिए सार्वजनिक परीक्षाओ के लिए पारिश्रमिक का नियम बना। परीक्षा के लिए पारिश्रमिक, परीक्षाफल चढाने के लिए पारिश्रमिक, चढाई की जाँच के लिए पारिश्रमिक।

कौन पुस्तके विद्यार्थी को पढाई जायँ इसका सर्वोत्तम निर्णय शिक्षक स्वय कर सकते है अपने अनुभव से, उनके द्वारा अपनी पढाई की जाँच करके। परन्तु शिक्षण कार्य भी अविश्वास की नीव पर ठहरा। अतएव शिक्षको को पाठ्य-पुस्तक के चुनाव करने का अधिकार देना उचित नही समझा गया। दस पाच ऊँची श्रेणी के शिक्षक निम्नश्रेणी के शिक्षको की बुद्धि के ठेकेदार बन बैठे। उन्होने या उनके भाई-बन्धुओ ने पुस्तके लिखी—पुस्तक लिखी क्या, गोद-कैंची का प्रयोग किया—और ठेकेदारो ने उनकी हिमायत की। सरकारी मजूरी के पश्चात् शिक्षको को उन्ही पुस्तको के भीतर अपनी पढाई करने की आज्ञा हुई। शिष्यो पर पुस्तके लदी, प्रकाशक और पिट्ठू लेखक मालामाल हुए।

यह सिलसिला वर्षों चलता रहा। सन् १९२१ मे प्रान्तीय नेताओ को शिक्षाक्षेत्र मे थोडा-बहुत अधिकार मिला, गैर सरकारी स्कूलो के अध्यापको की "यू० पी० सेकडरी एज्यूकेशन एसोसियेशन" नामक सस्था बनी, सस्थापन मे मै सम्मिलित हुआ। थोडे दिनो बाद कालीचरण हाईस्कूल का प्रधानाध्यापक नियुक्त हुआ। लखनऊ मे प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की बैठके होती ही थी। स्वर्गीय चिन्तामणि

प्रथम शिक्षासचिव हुए, उन्होंने माध्यमिक शिक्षा के सचालन के लिए एक कानूनी मसविदा सभा के सामने पेश किया। मैंने प्रयत्न किया कि गैर सरकारी हाईस्कूलो के प्रधानाध्यापकों को बोर्ड आफ हाईस्कूल एण्ड इटर मीडिएट एज्युकेशन में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिले। इसमें 'सफलता' मिली। इस बोर्ड का काम हाईस्कूलो और इटरमीडिएट कालेजो की शिक्षा और परीक्षा पर निगरानी करने का था, परन्तु इसमे अशिक्षको की सख्या शिक्षको से अधिक रक्खी गई। शिक्षकों में भी विश्वविद्यालयो को नौ प्रतिनिधि मिले, इटर मीडिएट कालेजो को छ मिले और हाईस्कूलो को तीन। इन तीन में दो गैर सरकारी हाईस्कूलो को मिले यद्यपि सख्या में सबसे अधिक यही थे। अभी तक बिल्कुल बाहर थे, अब एक कोना तो मिला। इतनी ही गनीमत थी।

सन् १९२२ म पहला चुनाव हुआ। खन्नाजी कानपुर के चेम्बर आफ कामर्स की ओर से बोर्ड में पहुँचे। प्रोत्साहन मिला। सन् १९२५ में स्वर्गीय देवीप्रसाद खन्नी के साथ मैं भी बोर्ड में पहुँचा। बारह वर्ष तक खन्नाजी के नेतृत्व में मैंने बोर्ड की सदस्यता की।

बोर्ड का काम था माध्यमिक शिक्षा और परीक्षा पर निगरानी रक्खे, दोनो का सुधार करे। हम दोनो--देवीप्रसादजी और मैंने--सोचा कि एक काम है शिक्षाक्रम की निगरानी, पाठ्य-पुस्तको का चुनाव, दूसरा है परीक्षा की निगरानी परीक्षको का चुनाव। अतएव देवीप्रसादजी करीक्यूलम कमेटी में घुसे और मैं एक्जामिनेशस कमेटी में। एक्जामिनेशस कमेटी में ऊँची श्रेणी के ही शिक्षक थे, मेरे जैसे छुटभइए का उसमें घुसना कठिन था। परन्तु उस समय चुनाव की धूम न थी। एक सप्ताह की यात्रा और एक पत्र की लिखा-पढ़ी के बाद प्रान्तीय हेडमास्टरो ने मुझे अपना प्रतिनिधि बनाया और कमेटियो के चुनाव के एक घटे पहले बोर्ड मीटिंग क कमरे में पहुँचकर आये हुए सदस्यो से बातचीत की। इतने प्रयत्न के पश्चात् चुनाव में हम दोनो का समुचित स्थान मिल गया।

पहले बोर्ड में हमारे सामने एक काम था, माध्यमिक शिक्षा और परीक्षा मातृभाषा में हो। एक्जामिनेशस कमेटी में काम था, गैर सरकारी स्कूलो के अध्यापको को परीक्षको मे स्थान मिले। उस समय मिडिल कक्षा तक तो हिन्दी-उर्दू का शिक्षा का माध्यम होने का अवसर मिल चुका था, परन्तु हमारी भाषाए हाईस्कूल और इटरमीडिएट कक्षाओ के बाहर थी। हाईस्कूल परीक्षा में सहायक अध्यापको को कोई स्थान मिला ही न था। हाईस्कूल के सहायक परीक्षकों में कुल नौ जगह गैर सरकारी प्रधानाध्यापको को मिली हुई थी।

स्वर्गीय मैकेन्जी डाइरेक्टर की हैसियत से बोर्ड के प्रधान थे, वे ट्रेनिंग कालेज में हमारे प्रिंसिपल रह चुके थे। देवीप्रसादजी बहुत सभा-चतुर थे। खन्नाजी कानपुर के दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज में सहायक अध्यापक थे और दीवानचन्दजी उस कालेज के प्रधानाध्यापक। वे दगली वक्ता और शास्त्रार्थी थे। परन्तु वह भी देवीप्रसादजी का लोहा मानते थे। मैं पढ़ने-लिखने में तेज था। आचार्य मैकेन्जी के प्रश्न पत्र म मुझे प्रथम स्थान मिल चुका था। अपने वर्ग के सर्वोच्च विद्यार्थियो में मेरी गिनती थी। अतएव हम दोनो से श्री मैकेंजी बहुत प्रसन्न थे। परन्तु वह विदेशी थे। इसलिए शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर गुरु शिष्य का मतभेद होना अनिवार्य हुआ। माननीय गोविन्दवल्लभ पन्त हमारे पहले बोर्ड में प्रान्तीय सभा के प्रतिनिधि होकर आये। हमने उन्हे अपना नेता बनाया। पतजी आज ही के 'लेफ्टनैंट' नही है उस समय भी हमारे जैसे भक्तो को उनकी प्रतीक्षा करनी पडी। प्रस्ताव बोर्ड के सामने आ गया। हमारे नेता कहाँ है? मैकेंजीजी ब्रिटेन के पहाडी थे, तो पतजी हमारे प्रान्त के पहाडी है। पहाडी से पहाडी ही मुठभेड ले सकता

था। प्रस्ताव पर बहस प्रारम्भ ही हुई थी कि पन्त जी आ गये। हम लोगो की जान में जान आई। मैंने प्रस्ताव के मसविदे का परचा उनके हाथ में थमाया, वह खडे हुए, उस समय भी भाषण मे उनकी गर्दन हिलती थी, हाथ काँपने से मालूम होते थे, परन्तु उन्होने बोलना प्रारम्भ किया कि विरोधी सन्न होने लगे। उपस्थित प्रस्ताव को उन्होने अपने ढग से सशोधित किया, हम लोगो ने उसे मान लिया, सशोधित प्रस्ताव पर मत लिए गए, हमारा पक्ष जीत गया। हमारा पहाडी ब्रिटिश पहाडी पर विजयी हुआ।

खन्नाजी स्कूल में उर्दू-फारसी पढते रहे। परन्तु अब हिन्दी प्रचारको में उनकी गिनती होने लगी थी। खन्नाजी तो साथ थे ही। परन्तु मुझे याद है, उर्दू दाँ मुसलमान हमारे पक्ष के विरोधी थे, यद्यपि माध्यम-परिवर्तन से उर्दू का भला भी होता था। वयोवृद्ध आचार्य आनन्द शकर बापूभाई ध्रुव काशी विश्वविद्यालय की ओर से बोर्ड के सदस्य थे। उनकी एक उक्ति मुझे याद है। वे बोले, उस्मानिया विश्वविद्यालय मे उर्दू-द्वारा पढाई होती है, एक अँगरेज विद्वान् का नाम लिया, जिसका कहना था कि उस्मानिया के स्नातक अलीगढ के स्नातको से योग्यता में कम नही होते। पर एक दो मुसलमान सदस्य ही उनकी उक्ति से टूटे। बाकी सरकारी ब्लाक में रहे।

एक्जामिनेशस कमेटी मे मेरी बडी मुसीबत रही। दीवानचन्दजी, ताराचन्दजी जैसे ऊँची श्रेणी के आचार्यों का दृष्टिकोण मुझसे भिन्न था। उनका विचार था कि हाईस्कूल के सहायक परीक्षको मे हमें हेडमास्टर के नीचे नही जाना चाहिए। हाईस्कूलो के सहयोगी शिक्षको का कार्य पढाने का ही है, परीक्षा में सहयोग देने का नही है। वे इस दायित्व का निर्वाह नही कर सकते। इस एक्जामिनेशस कमेटी का जीवनकाल तीन वर्ष का था। चोटें चलती रही और मेरी हार होती रही।

सन् १९२८ में बोर्ड के लिए मैं दूसरी बार चुना गया। खन्नाजी उस समय तक विश्वम्भरनाथ सनातन-धर्म कालेज के प्रिंसिपल हो चुके थे। इसलिए बोर्ड में वह कालेज प्रिंसिपलो के प्रतिनिधि बनकर आये। मैं इनका दृष्टिकोण जानता था। अतएव मैंने इनसे कहा कि आप एक्जामिनेशस कमेटी में आइए। खन्नाजी आये और अपने साथ आगरे के राधास्वामी एज्युकेशनल इस्टीटयूट के प्रिंसिपल श्री नारायणदास को भी लिए आये। जिस समय नई एक्जामिनेशस कमेटी की नामावली बोर्ड मे सदस्यो को सुनाई गई, उस समय दो मिनट के लिए सन्नाटा छा गया।

बोर्ड दल शक्ति प्राप्त करे, वह तभी तक शक्तिशाली रहता है जब तक उसके सदस्य व्यक्तिगत रूप मे मिलकर भी, सही मार्ग से विचलित नही होते। खन्नाजी ने इसी मार्ग का अनुसरण किया। उन्होंने कहा मैं इस कमेटी का सदस्य होकर परीक्षक का काम अपने हाथ मे नही लूँगा और वह अपने निश्चय पर अटल रहे। परन्तु दुर्भाग्यवश नारायणदासजी पर मुसीबत आ गई। उनका इस्टीट्यूट बोर्ड की परीक्षाओ का केन्द्र था। वही कुछ गडबड हुई, उसकी जाँच हुई। परिणाम मे नारायणदासजी ने बोर्ड की सदस्यता छोड दी। एक्जामिनेशस कमेटी में उनका स्थान रिक्त हुआ। विद्वद्वर अमरनाथ झा अब प्रातीय पब्लिक सर्विस कमीशन के प्रधान है, उस समय वे प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि की हैसियत से बोर्ड के सदस्य थे। नारायणदासजी के पदत्याग से हमारी शक्ति को धक्का अवश्य लगा। परन्तु अमरनाथजी का दृष्टिकोण हमारे अनुकूल था, यद्यपि उनकी गिनती सर्वोच्च शिक्षको में थी। अतएव हमारे सम्मिलित उद्योग से अमरनाथजी एक्जामिनेशस कमेटी के सदस्य हुए। इससे हाईस्कूल के प्रधानाध्यापको के लिए सहयोगी परीक्षक का मार्ग ही नही खुला, व प्रधान परीक्षक भी बनाए जाने लगे, परीक्षा-फल का रजिस्टर तैयार करने का काम उन्हें मिलने लगा। प्रश्न-पत्रों की जाँच मे भी वे सम्मिलित किये जाने

लगे। १९२५ मे उनकी सख्या ९ के लगभग थी। १९३७ में बोर्ड और उसकी एक्जामिनशस कमेटी की सदस्यता मे मैं अलग हुआ। उस समय हाईस्कूल प्रधानाध्यापक परीक्षको की सख्या ७० के ऊपर पहुँच गई थी। इनके अतिरिक्त और इनसे अधिक सहयोगी अध्यापको को परीक्षक होने का अवसर मिलने लगा था। एक्जामिनेशस कमेटी के सदस्यो के सहयोग से ही माध्यमिक शिक्षक वर्ग की इतनी सेवा हो सकी। इसका बहुत कुछ श्रेय खन्नाजी का ही था।

बोर्ड की महत्त्वपूर्ण कमेटियो मे एक है रिकागनिशन कमेटी। इसका काम है मिडिल स्कूल को हाई स्कूल की मजूरी देना, हाईस्कूल को इटरमीडिएट कालेज बनाने का अवसर देना, प्रत्येक श्रेणी के लिए किस योग्यता के अध्यापक हो, यह निश्चय करना। खन्नाजी उस कमेटी के सदस्य न थे। परन्तु हम दोनो के कुछ मित्र उसमें अवश्य थे। योग्यता के सबध मे हाईस्कूल हेडमास्टरो को एक शिकायत थी। वह यह कि इटर कालेज की प्रिंसिपल के लिए इटर या डिग्री कालेज में कम से कम पांच वर्ष तक शिक्षणकार्य का अनुभव तो आवश्यक था परन्तु हाईस्कूल की हेडमास्टरी के अनुभव की कोई कदर न थी। दीवानचदजी इस कमेटी के प्रधान थे। मैंने उनसे बात की, उनका दृष्टिकोण मेरे पक्ष मे न था। डिप्टी डाइरेक्टर आफ एज्युकेशन श्री फैयाज बहादुरखाँ के श्वशुर शेख अब्दुल्ला साहब या (पायोनियर के मैनेजर श्री बद्रीनाथ चोपडा। उस समय सनातन धर्म कालेज के वाइस प्रिंसिपल) और बिसवाँ के स्वर्गीय मथुराप्रसाद मेहरोत्रा के सामने मैंने अपना दृष्टिकोण रक्खा। वे सहमत हुए, मैंने एक नोट रिकागनिशन कमेटी की सेवा में भेजा। मालूम हुआ कि दीवानचदजी भी उस नोट और सदस्यो के मत से प्रभावित हुए। रिकागनिशन कमेटी से मेरा प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और प्रिंसिपलो की योग्यता के सबध में वह अब तक चालू है।

तीसरे और चौथे बोर्ड के लिए चुनाव में मुझे अधिकाधिक होड का सामना करना पडा। हेड मास्टरो से मिलने और लिखा-पढ़ी करने में दूसरे चुनाव तक एक महीने से अधिक नही लगा। परन्तु तीसरे चुनाव के अवसर पर मुझे मालूम हुआ कि दो महीने पहले से हेडमास्टर बधु उद्योग कर रहे है, चौथे बोर्ड के चुनाव में मै तीन-चार महीने पिछड गया। यही कैफियत मैंने कमेटियो के चुनाव मे देखी। महीनो पहले से लोगो ने दौड लगानी प्रारभ की। मै तीसरे और चौथे बोर्ड में एक्जामिनेशस कमेटी के चुनाव मे खन्नाजी के सहयोग से सफल अवश्य रहा। परन्तु मुझे अधिकाधिक प्रतियोगिता का सामना करना पडा।

बोर्ड में परीक्षको और पुस्तको के चुनाव के अतिरिक्त मैंने कोई विशेष काम होते नही देखा। शिक्षा माध्यम के विषय में तो हिंदी उर्दू की उत्तरोत्तर उन्नति होती रही। परन्तु शिक्षा और परीक्षा प्रणाली में आशिक सुधार करने का कोई प्रयत्न नही किया गया। सन् १९३४ में करीक्यूलम कमेटी की सदस्यता प्राप्त करके मैंने इस आशिक सुधार का प्रयत्न किया। परन्तु यह रग देखा कि सदस्य निर्णय तक पहुँचने को तैयार नही होते। दिमागी काहिली उन्हें प्रत्येक महत्त्वपूर्ण सुधार के प्रस्ताव को स्थगित करने के ही पक्ष मे प्रेरित करती है। विषय विशेषज्ञो की पारस्परिक होड देखी। प्रत्येक विशेषज्ञ चाहता था कि उसके विषय की पढाई अनिवार्य हो जाय। पढाई के बोझ से विद्यार्थी की कितनी दुर्गति होती है इसकी बहुत कम सदस्यो को फिक्र थी।

मेरे दूसरे बोर्ड तक हिंदी और सस्कृत के लिए एक ही कमेटी रही। परन्तु तीसरे बोर्ड के प्रारभ में हिंदी के लिए अलग कमेटी बनाई गई और अमरनाथजी के प्रस्ताव से मै कमेटी का प्रधान बनाया गया, इस अवधि के भीतर बोर्ड में कांग्रेस पक्ष का भी बहुत जोर था। मुसलमान सदस्य तो चाहते ही

थे कि हाईस्कूल में हिंदी पाठकों के लिए उर्दू पढ़ना अनिवार्य हो, कांग्रेसी सदस्य भी हिंदू-मुसलिम मेल के लिए हिंदी-उर्दू मेल भी चाहते थे, उन्हें यह फिक्र न थी कि एक ही जगह दो भाषाओं की पढ़ाई से विद्यार्थियों की मुसीबत कितनी बढ़ जायगी। मैं हिंदी के साथ उर्दू को अनिवार्य करने के पक्ष में कभी नहीं रहा। परन्तु खन्नाजी से मेरा मतभेद हो गया। उनके पक्ष की बोर्ड में तो जीत हुई, परन्तु शिक्षासचिव ने बोर्ड का प्रस्ताव नामंजूर किया। यही एक ऐसा अवसर था जिसमें हम एक दूसरे के विरोधी रहे। समय के फेर से हिंदी-उर्दू समस्या भी देश के विभाजन से हल हो गई है।

सन् १९३७ में प्रांतीय चुनाव होने पर कांग्रेस का बहुमत हुआ। शिक्षा-सुधार में बोर्ड की ढील ढाल से कांग्रेस नेता बहुत अप्रसन्न थे और यह धारणा व्याप्त हो गई कि बोर्ड शीघ्र ही फेल होनेवाला है। मैं १९३७ में ही बाहर निकल आया। १९३७-४० में बोर्ड के अधिकारों की दुर्गति होने लगी। इसलिए १९४० में खन्नाजी ने भी बोर्ड को अंतिम प्रणाम किया। मैं बराबर प्रतीक्षा करता रहा कि कब बोर्ड का अन्त होता है। परन्तु पंखहीन होकर भी वह अभी तक जीवित है। सन् १९४६ में संपूर्णानंदजी शिक्षा-सचिव हुए, माध्यमिक शिक्षा का नया कलेवर हो गया, परन्तु बोर्ड अभी तक जीवित है। चिंतामणिजी का लगाया पेड़ कितना जानदार है!

खन्नाजी यू० पी० सेकंडरी एज्युकेशन एसोसिएशन के आजीवन सदस्य हैं। परन्तु उन्होंने कभी उसके कार्य-क्रम में सक्रिय भाग नहीं लिया। लखनऊ में एसोसिएशन की रजत जयंती के अवसर पर वह एसोसिएशन के प्रधान चुने गये। इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। एसोसिएशन की दशा सन् १९३५ से बिगड़ती जा रही है। मैंने उनके प्रधान होने पर आशा की कि उसकी दशा अब कुछ सुधरेगी। परन्तु एसोसिएशन के वातावरण में वह खप नहीं सके और शीघ्र ही प्रधान के पद से अलग हो गये।

विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज के प्रिंसिपल होने पर खन्नाजी ने मुझे चिट्ठी लिखी कि तुम पुराने प्रधान हो, मुझे तुमसे सीखना है। उन्हें मैं सिखाता क्या, उनके हाथ में कालेज की उत्तरोत्तर उन्नति मुझे ही कुछ सिखाती रही। भवन-निर्माण, विद्यार्थियों की संख्या वृद्धि, परीक्षाओं में उनकी उत्तरोत्तर सफलता—इनसे मैं ही बहुत कुछ सीखता रहा। उन्होंने अपना कालेज तो बनाया ही, नये शिक्षालय बनाने की धुन में भी लग गये, और इस उद्योग में भी सफल हुए। खन्नाजी शीघ्र ही कालेज के प्रिंसिपल पद से अवकाश लेनेवाले हैं। पुरुषार्थी को जीवन-मार्ग में सफलता मिलती है, तो उसके वैरी भी उपजते हैं। खन्नाजी के भी वैरी हैं। मानवीय गुण-दोष से वह मुक्त नहीं हैं। परंतु अध्यापकीय जीवन-यात्रा में वह सफल रहे हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। उनके शिष्य, उनके सहयोगी अध्यापक, प्रांत के अधिकांश शिक्षक और राजनैतिक नेता उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं—यह निधि उनकी पार्थिव निधि से कम नहीं है।

खन्नाजी का अवकाश-जीवन दीर्घ हो, वह सार्वजनिक सेवा करते रहें, शिष्यों और सहयोगियों को आशीर्वाद देते रहें—यही मेरी शुभ कामना है।

हीरालाल-संस्मरण

श्री ब्रजमोहन व्यास

[श्री ब्रजमोहन व्यास बी०ए० एल् एल० बी० प्रयाग के सभ्रान्त नागरिकों में हैं। आपका परिवार मालवा से सवत् १५०६ के लगभग प्रयाग आया और तब से वह इसी पुण्य स्थान का वासी है। आपकी शिक्षा सी० ए० वी० हाईस्कूल, कायस्थ पाठशाला और प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। आपने सन् १९१३ में वकालत पास की। कुछ दिनों वकालत करने के पश्चात् आप म्युनिसिपल बोर्ड प्रयाग के इक्जीक्यूटिव आफिसर के पद पर नियुक्त हुए। आप १९२१ १९४२ तक इस पद पर रहे। आपका कार्य-काल म्युनिसिपल बोर्ड के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आपके कार्य काल में ही पं० जवाहरलाल नेहरू डा० कैलाशनाथ काटजू और राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टण्डन प्रयाग म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष (चेयरमैन) रहे। आपने देश की इन महान् विभूतियों के साथ कंधे से कंधा लगाकर प्रयाग के नागरिक जीवन को उन्नत बनाने में कार्य किया। फिर सन १९४३ से १९४९ तक आप प्रयाग और भारत के सुविख्यात पत्र 'लीडर' के जनरल मैनेजर रहे।

प्रयाग का म्यूजियम (अजायबखाना) आपके सद् प्रयत्नों का फल है। आप आजकल भी उसके अवैतनिक सचालक (डाइरेक्टर) हैं।

आचार्य खन्नाजी से आपका परिचय बडा पुराना है इसलिए आपके द्वारा लिखे गये इस संस्मरण में खन्नाजी के जीवन पर सुन्दर प्रकाश पडता है।]

माता पिता जब वात्सल्य की स्निग्ध धारा में बहकर अपने पुत्र का नामकरण करते हैं तब वे भूल जाते हैं कि इतना बडा भार जो वे अपनी सन्तान के सुकुमार कंधों पर लाद रहे हैं वह उस बेचारे से उठ भी सकेगा या नहीं। वे पुत्रोत्पत्ति के आह्लाद में अपने चारों ओर आँख उठाकर देखते भी नहीं कि कितने 'कुबेरनाथ' के पास चार पैसे का भी सहारा नहीं, कितनी 'अन्नपूर्णा' बहिनों को दोनों जून रूखा सूखा भोजन भी नहीं मिलता और कितने जाहिद हुसैनों को मैकदे का तवाफ करते जिन्दगी बीती। जिस प्रकार इने-गिने वकीलों की सफलता से प्रेरित होकर बी० ए० पास करते ही बिना सोचे-समझे माता पिता अपने लडके को LL B Class में भेड-बकरी की तरह झोंक देते हैं कुछ उसी प्रकार पुत्र के जन्म लेते ही उसके माता पिता देवी-देवताओं, पूँजीपतियों, बहुमूल्य रत्नों के महासागर का मथन कर अपनी सन्तति का नामकरण करते हैं।

देख सकते काश तुम उनकी तमन्नाओं का जश्न
जब उन्हें झूठी उमीदें देके बहलाते हैं ये ॥

हमारे संस्मरणनायक का जन्म एक गरीब परिवार में हुआ। उनकी जन्म-तिथि मुझे नही मालूम। गरीबो की जन्मतिथि किसी महत्त्व की नही हुआ करती। उनकी अभिलाषाओ की दुनिया उनके हृदय में ही सीमित रहती है, जिनके अस्तित्व का पता केवल उनकी बेबसी की आहो से चलता है। वही उनका जन्म होता है और वही उनका घुटकर अन्त होता है। न जन्म के समय उत्सव और न मरण के समय रुदन ऐसा कुछ दैव का दुर्विपाक है। 'उत्थायन्ते विलीयन्ते दरिद्राणीम् मनोरथा' गरीबो के हौसले उठते हैं और अनेक लाचारियो के कारण पस्त हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में किसी गरीब पिता का यह साहस कि वह अपने पुत्र का नाम हीरालाल रख दे कितनी बडी हिमाकत थी। 'भुइँ बिस्वा भर नहीं नाम पृथ्वीपालसिंह'। परन्तु विधि का ऐसा रहस्यमय विधान है कि वह कभी-कभी अनहोनी को होनी कर देता है और यही कारण है कि मनुष्य सर्वदा असम्भाव्य नामकरण पद्धति की मृग मरीचिका मे फँसा रहता है। परन्तु गरीबी एक ऐसा अखाडा है जहाँ शिक्षा पाये हुए पहलवान प्राय ऐसे होते है जो ससार की कठिनाइयो मे मोर्चा लेने में नही हिचकते। उस महाविद्यालय के पाठ्यक्रम मे केवल एक ही तो अनिवार्य विषय (Compulsory Subject) है और उसमें सब विषयो का समावेश रहता है। वह यह है कि

हवादिस अगर राह मे उठ खडे हो
हवादिस की गरदन झुकाता चलाजा।

खन्नाजी ने इसी महाविद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षा पाई थी। उन्होने जब से होश सँभाला उन्हे कठिनाइयो की गरदन झुकाते और अपनी गरदन उठाते ही बीता। परन्तु खन्नाजी थे चतुर। वे हताश होना तो जानते ही न थे। उन्होने श्रीमद्भगवद्गीता के केवल एक श्लोक को चुन लिया और उसी को अपनी जीवन-नौका का कर्णधार बनाकर उसे ससार-सागर में छोड दिया। वह श्लोक यह था—

उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत्।
आत्मएवात्मनो बन्धु आत्मैवरिपुरात्मन ॥

अर्थात् मनुष्य का अपना अभ्युदय अपने ही हाथो करना चाहिए हम किसी योग्य नही है एसा मनुष्य को कभी न सोचना चाहिए। मनुष्य स्वय अपना बन्धु है और स्वय अपना शत्रु है।

एक प्रकार से खन्नाजी की प्रारम्भिक शिक्षा कायस्थ पाठशाला प्रयाग मे हुई। गरीब तो थ ही। फीस माफ कराने का प्रश्न उठा। खन्नाजी खत्री थे। कायस्थ पाठशाला में केवल कायस्थ बालका ही की फीस माफ करने का नियम सा था। खन्नाजी प्रथम अकायस्थ छात्र थे जिनकी फीस माफ की गई। कायस्थ पाठशाला के सचालको का यह औदार्य सराहनीय था। यही से खन्नाजी ने इटरमीडियट पास किया और फिर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी म दाखिल हुए। शिक्षा ग्रहण करने के साथ साथ खन्नाजी को सार्वजनिक कामो में हमेशा से बडी दिलचस्पी थी—महामना प० मदनमोहन मालवीयजी के विशेष स्नेहपात्र थ। उन्ही के कहने से इन्हे ६) मासिक की स्कालरशिप Central Khatri Eoncation कमेटी Banaras से मिलती थी। राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन के यहाँ tuition भी करते थे। उनकी ज्येष्ठा पुत्री को पढाते थे। इस प्रकार खन्नाजी का पठन, पाठन और सार्वजनिक कार्य तीनो ही साथ साथ चलते थे और तीनो ही कार्यो को वह बडी लगन से करते थे।

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता स्वर्गीय प० बालकृष्ण भट्ट इनका बडा आदर करते थे। सन् १९०८–९ में जब नागरीप्रवर्धिनी सभा प्रयाग में हिन्दी का काम बडे जोरो से कर रही थी, खन्नाजी

उसके प्रमुख सदस्य थे। हास्य रस के मर्मज्ञ भट्टजी ने उस सभा के अंतर्गत एक मंडली कायम की जिसका नाम उन्होंने 'खर मण्डली' निर्वाचित किया जिसके भी खन्नाजी सदस्य थे।

१९०७ से खन्नाजी हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहने लगे वहाँ उनके घनिष्ठ मित्र थे स्वर्गीय गंगाप्रतापजी गुप्त और आचार्य नरेन्द्रदेव थे। १९०७ में जब Kayastha Conference हुई तो इसमें खन्नाजी स्वयंसेवक चुने गये। यह बात भी एक मार्के की थी—और सब स्वयंसेवक कायस्थ केवल यही खत्री। पाठशाला के कामों को यह इतनी तन्मयता से करते थे कि लोग इन्हें कायस्थ समझते थे। उस कान्फरेंस में खन्नाजी ने इस लगन से काम किया कि उसकी बड़ी सराहना हुई।

१९०८ में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा—उसी साल लाला लाजपतराय मांडले जेल से छूटकर प्रयाग आये थे। महामना मालवीयजी के सभापतित्व में एक बहुत बड़ी मीटिंग हुई। पुरुषोत्तमदासजी टण्डन उसके मंत्री थे। दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता के लिए गाँवों में जाकर मदद करने के लिए स्वयंसेवक निर्वाचित हुए। बहुतों ने अपना नाम लिखवाया पर काम करने के समय थोड़े ही से सामने आये। उन थोड़े से आदमियों में खन्नाजी थे। करवी, राजापुर, बदौसा इनके चार्ज में थे। उस कार्य में बड़ी कठिनाइयाँ खन्नाजी को उठानी पड़ीं पर कठिनाइयों से अविचलित उन्होंने उस कार्य को बड़ी खूबी से सम्पन्न किया।

फिर तो खन्नाजी का उत्तरोत्तर अभ्युदय होता ही गया। प्रायः अगर बहुत हुआ तो लोग B.A. हुए नौकर हुए पेंशन मिली और मर गये, परन्तु गरीबी के चक्रव्यूह को तोड़कर अपने पुरुषार्थ से विद्योपार्जन करता हुआ यह कर्मठ पुरुष १९१३ में C. A-V. School में मास्टर और १९१५ में सेन्ट जान्स कालेज में Asst. Prof. of Physics and Mathematics और १९५० में विश्वम्भरनाथ सनातनधर्म कालेज का Principal होकर retire हुआ।

आज हम अपने मित्र के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए गौरव का अनुभव कर रहे हैं।

किसी ने सत्य कहा है—

क्रियासिद्धिः सत्वे वसति महतां नोपकरणे।
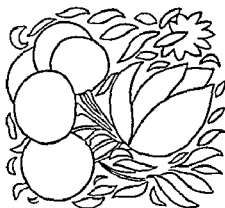
आधुनिक अँगरेजी कविता

पं० रामअवध द्विवेदी एम० ए०

[हिंदी साहित्य को समृद्धशाली बनाने के लिए यह परमावश्यक है कि दूसरी भाषा के उत्तम साहित्यिका और साहित्यो का परिचय उसमें मिल सके। अँगरेजी साहित्य आज सबसे समृद्धशाली और सबसे अधिक लोगो का साहित्य है। इस दृष्टि से आधुनिक अँगरेजी कविता पर लेखक ने यह लेख लिखकर हिंदी का बडा उपकार किया है। लेख अत्यत सक्षिप्त परतु पूर्ण है।

लेखक हिन्दूविश्वविद्यालय के अँगरेजी विभाग के प्राध्यापक है अतएव उनका ज्ञान अधिकारी ज्ञान है।]

आधुनिक अँगरेजी कविता के जनक चासर ने उसको जो स्वरूप दिया, वह सामान्य रूप से प्राय बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक बना रहा। कहने का अथ यह नही है कि ४/५ सौ वर्षों में अँगरेजी काव्य का विकास रुका रहा। यह तो सभी जानते है कि इस काल में कविता की बनावट और पाठकों की रुचि में अनेक परिवर्त्तन हुए, किन्तु इतना होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि जिस आशा और आत्म-विश्वास से चासर की कविता ओतप्रोत है तथा जीवन में शक्ति और आनन्द की जो अनुभूति उस प्रथम महाकवि की कविता में पाई जाती है वही हमें शेक्सपियर ब्राउनिग और राबर्ट ब्रिजेज की कृतियो में भी मिलती है।

छोटी मोटी विपत्तिया को झेलता हुआ अँगरेजी राष्ट्र उन्नति के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होता गया और सफलता के साथ ही साथ उसमें एक विशेष प्रकार का बल आता गया तथा उसकी आशा वादिता दृढ होती गई। इन्ही भावनाओ के आधार पर अँगरेजी काव्य का स्वरूप इन चार पाँच सौ वर्षों मे खडा किया गया। अँगरेजो की समृद्धि इतने दिनों तक अक्षुण्ण रही कि बहुतो को ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसका कभी अन्त नही होगा। उसकी चरमसीमा १८९८ में पहुँची जब महारानी विक्टोरिया की जयन्ती मनाई गई। उस जयन्ती के अवसर पर दो प्रसिद्ध कविताएँ लिखी गई। एक किपलिंग और दूसरी हाउसमन द्वारा। किपलिंग ने साम्राज्य के विजय और उसके चिरजीवी होने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की और अँगरेजा को चेतावनी दी कि सफलता और शक्ति के मद मे वह नैतिकता को न भूलें। हाउसमन की कविता मे निराशा और सशय की झलक कुछ अधिक स्पष्ट है। इन दोना कविताओ से ऐसा मालूम होता है कि किपलिंग और हाउसमन दोनो को अपने राष्ट्र के भविष्य के बारे में कुछ सदेह सा हो चला था। हाउसमन की बाद की कविता में सशय और विशाद का रूप गहरा होता गया। इसी युग मे टामस हार्डी ने अपने उपन्यासो तथा अपनी कविताओ में अनेक दुखद चित्र अंकित किए। ये दोनो साहित्यकार माना आनेवाली घटनाओ का ज्ञान रखकर लिख रहे थे। उनकी कृतिया में भविष्यवाणी का आभास मिलता है तब भी प्रथम महासमर के पूर्व के अधिकतर अँगरेजी कवि पुरानी परिपाटी

को ही लेकर चले। योरुप की पहली लडाई के पूर्व के वर्षों से लेकर सन् १९२० और २१ तक होनहार नवयुवक कवियो के उस समुदाय ने जिसको जार्जियन कहते है बहुत सुन्दर रचना की। इस काव्य में नवयुवकोचित भावनाओ का समावेश है और प्रकृति की सादगी और सौन्दय का बडा अच्छा निरूपण है। इन नवयुवक कवियो में से कई तो लडाई मे मारे गये और जो बचे वह काव्य निर्माण करते रहे किन्तु धीरे धीरे उनकी रचनाओ का सामूहिक रूप नष्ट हो गया।

प्रथम महासमर के समाप्त होने पर काव्य निर्माण की दृष्टि से परिस्थिति कुछ उलझी हुई सी थी। महासमर के आतक और आघात के कारण माना लोग सहम से गए थे और नवीन ढग से विचार करने की क्षमता नष्ट हो गई थी। जिन कवियो ने लडाई में भाग लिया या और विनाश के दृश्य देखे थे उनमें से अनेक युद्ध को सदा के लिए समाप्त करने और भावी शान्ति दृढ रूप से स्थापित करने के उद्देश्य से काव्यनिर्माण कर रह थे। ईटस, हार्डी, लारेन्स विनियन, राबर्ट ब्रिजेज इत्यादि लडाई के पहले के कवि अब भी काव्य लिख रहे थे। उनकी कविता बहुत कुछ वही पुराने ढर्रे की थी। यद्यपि कभी कभी नवीनता की झलक भी दिखाई पडती थी। सन् १९२२ में ई० टी० एस० ईलियट का प्रसिद्ध काव्य 'दी वेस्ट लन्ड' प्रकाशित हुआ जो भाषा और भाव दोनो की दृष्टि से एकदम नवीन था। लडाई और उसके बाद की सचित निराशा का प्रदर्शन इसमें है। कवि को ससार सूखा, नीरस ऊसर के रूप में दिखाई पडता है और उस पर विनाश की भावना की छाप अकित है। 'दी वेस्ट लैण्ड' अपने युग का प्रतीक है, उसमें प्रकट होनेवाली निराशा कई वर्षों तक कायम रही।

युद्ध समाप्त होने के बाद पहले दस साल में योरुप के राष्ट्र सँभल न सके वरन् उनकी अवस्था दिन पर दिन गिरती ही गई। युद्ध के आघात से उनका आर्थिक ढाचा जर्जर हो गया था, उद्योग धन्धे शिथिल पड गये थे और व्यापार का क्रम अव्यवस्थित हो गया था। ब्रिटेन की अवस्था बडी नाजुक हो गई थी बेकारी बेहद बढ गई थी। असतोप और निराशा का रूप बहुत गहरा हो गया था। सन् १९३० ई० के आसपास के मदी के वर्ष अँगरेजो के लिए बडे सकट के थे। इस भयावह अवस्था की छाप पूरी तौर से तत्कालीन कविता पर पडी। इन वर्षों के प्रतिनिधि-कवि थे सेसिडेल-लेविस, डब्ल्यू० एच आउडेन, स्टिफेन, स्पेन्डर और लूई मैकनीज इन सबकी कविता में और विशेप रूप से इनमें सबसे अग्रगण्य आउडेन की रचनाओ में उस समय की समस्याएँ तथा आकाक्षाएँ मुखरित हुई हैं। टी० एस० ईलियट ने अपने "वेस्ट लैंड" में केवल क्लान्ति, उजाड और निराशा की अभिव्यक्ति की थी। इन नवीन कवियो की कृतियो में अपने युग की समस्याओ के अकन के साथ ही साथ क्रान्ति का आवाहन भी हुआ, फलत जहाँ ईलियट की कविता गहरी निराशा में डूबी हुई थी, आउडेन और उनके साथियो की वाणी में एक नवीन उत्साह और स्फूर्ति दिखाई पडी।

मदी का समय कुछ वर्षों ही रहा। ब्रिटेन ने व्यापारिक सधियो द्वारा फिर अपने माल की खपत के लिए रास्ता निकाल लिया। धीरे धीरे उद्योग-धधे फिर ढर्रे पर चलने लगे और समृद्धि वापस लौटने लगी। इसके साथ ही साथ अँगरेजी कविता के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ। आउडेन के परवर्ती कवियो में फिर कुछ प्राचीन कविता की झलक मिलती है। अँगरेजी कविता की परम्परागत भावनाएँ और महासमर के पहले की शैली फिर कही कही दिखाई देने लगी। यह परिवर्तन १९३८ ई० के लगभग प्रत्यक्ष होने लगा और सन् १९३९ में द्वितीय महासमर प्रारम्भ हो गया यदि कुछ समय और मिला होता तो सभव है अँगरेजी कविता अपने पुराने रास्ते पर और अधिक आ गई होती।

(२)

आधुनिक अँगरेजी कविता कोरी कला की वस्तु नही है। यह केवल सौन्दर्य प्रधान मनो-विनोद की सामग्री नही है, वरन् इसका जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज का कवि जीवन से पृथक् एक माधुर्य-पूर्ण स्वप्नलोक की सृष्टि करके जीवन की कठिनाइया से पलायन करनेवाले भीरु रसिको के लिए आश्रय नही तैयार करता। वह जीवन की वास्तविकता का साक्षात्कार करने का आदेश देता है। वास्तविक जीवन में एक विशेष स्फूर्ति और रोचकता है। कृत्रिम सौन्दर्य निष्प्राण तथा शुष्क प्रतीत होता है। आज के अँगरेजी काव्य का निर्माण इसी सिद्धान्त के आधार पर हो रहा है और इसलिए इसका सम्बन्ध दिन पर दिन वास्तविक जीवन से अधिक घनिष्ठ होता जा रहा है। हम देख चुके हैं कि प्रथम महासमर के समाप्त होने के अनन्तर लगातार कविता के स्वभाव तथा स्वरूप में बदलती हुई परिस्थितियो के अनुरूप ही परिवर्तन होता रहा है। पहले और दूसरे महासमर के बीच के काल की निराशा, असतोष तथा क्रान्ति की भावना की पूरी झलक उसमें मिलती है। इस बदले हुए युग मे प्रकृति का परम्परागत सौन्दर्य नही दिखाई पडता। ईलियट को प्रकृति ऊसर और उजाड भूखड के रूप में दिखाई पडती है और आउडेन को प्राकृतिक सौन्दर्य के नाम पर कारखानो के धुएँ और शहरो की धूल की याद आ जाती है। जहाँ प्राचीन कवि प्रभात का चित्रण करते हुए पक्षियो के मधुर कलरव का वर्णन किया करते थे वहाँ आज फैक्टरियो के मजदूरो को बुलाने के लिए नित्य प्रात काल चीत्कार करनेवाले सायरेनो का जिक्र किया जाता है। आज की सभ्यता अधिकाधिक नागरिक और औद्योगिक हुई जा रही है। आधुनिक कवि साहसपूर्वक इस तथ्य को ग्रहण तथा उसे अभिव्यक्त करता है। वह स्वप्नो के ताने-बाने से अपनी कविता को बुनना नही चाहता वह उसकी बुनियाद सचाई तथा वास्तविक अनुभव पर देना चाहता है। अब उसको यही श्रेयस्कर मालूम होता है।

आधुनिक अँगरेजी कविता में यथार्थ की आधार शिला पर आदर्शो का ढाचा खडा किया गया है। रोज की दुनिया से कवि अपने सबध को स्वीकार करता है किन्तु वह उससे सन्तुष्ट नही है वरन उसको बदलना चाहता है। वह आज की राजनीतिक उलझनो को सुलझाने की चेष्टा करता है और उसकी सहानु-भूति दलित और शोषित राष्ट्रो के साथ है। स्पेन की असफल क्रान्ति के समय आउडेन ने अपनी ओजस्वी वाणी से जनपक्ष का समर्थन किया। वियाना पर जर्मनी के अधिकार जमाने तथा म्यूनिच की थोथी सधि के अवसर पर नवयुवक कवियो ने आशका और विरोध प्रकट किया। वर्तमान काल के अँगरेजी कवियो पर मार्क्स के सिद्धान्तो का गहरा प्रभाव पडा है। डी० एच० लारेन्स, मैकडारमिड, आउडेन, स्पेन्डर तथा अनेक अन्य कवियो ने पूजीवाद और आज की आर्थिक व्यवस्था की कडी आलोचना की है। परिस्थिति बडी गम्भीर है क्योकि पूजीपतियो का क्रूर तथा शक्तिशाली वर्ग शोषण में सलग्न है। श्रमजीवी निर्धन और बेसमझ है। उनको न तो अपने अधिकारो का पता है न अपनी शक्ति का। मशीनो पर काम करते करते मजदूरो का वर्ग भी एक चेतनाहीन विशाल मशीन सा हो गया है। इस कारण उनकी सहायता करना भी कठिन है। तब भी यह निर्विवाद है कि शोषित श्रमजीवियो का विराट् पुरुष किसी न किसी दिन अवश्य करवट बदल कर खडा हो जायगा और तब स्वार्थपरायण पूजीवाद सहमकर सदा के लिए विलीन होगा इसमें तनिक भी सदेह नही कि वर्तमान सघर्ष में अन्तिम विजय प्रगतिशील शक्तियो की ही होगी। यह आज के अधिकतर अँगरेजी कवियो का अटल विश्वास है जिसको उन्होने अपनी रचनाओ में नवीन और जोरदार ढग से इगित किया है। आधुनिक अँगरेजी कविता पर फ्रायड के विचारो का भी गहरा असर

पडा है। फ्रायड के मतानुसार मानव अस्तित्व के दो अग है (१) इगो—(Ego) और (२) इड (Id) इगो हमारा प्रत्यक्ष व्यक्तित्व है जो हमारी शिक्षा तथा हमारे जीवन की परिस्थितिया से निर्धारित होता है। इड जीवन शक्ति का वह अप्रत्यक्ष श्रोत है जो हमारे अस्तित्व का मूल कारण है। इगो इस महा-स्रोत से उसी प्रकार उत्पन्न होता है जैसे जल के ऊपर बुलबुले। मनुष्य को समझने के लिए यह पर्याप्त नही है कि उसके बाह्य व्यक्तित्व तथा उसके चेतन विचारा का ही विश्लेषण किया जाय। कभी कभी अचेतन तथा अर्धचेतन अवस्थाओ के अनुसधान से अधिक विश्वसनीय तथ्य उपलब्ध होते है। फ्रायड तथा मनोविश्लेषण के इतर आचार्यो के विचारो के फैलने का फल यह हुआ कि जीवन के नए पहलू और ऐसे विचार जो गोप्य समझे जाते थे साहित्य के विषय बनकर प्रस्तुत हुए। यह वर्तमान युग की सभी बातो के जानने और जीवन के यथार्थ सत्य से भाग कर न छिपने की चेष्टा के अनुकूल ही है। आउडेन की कविता मे फ्रायड और मार्क्स के सिद्धान्तो का एक अनूठा मिश्रण है। फ्रायड की सहायता से कवि ने जीवन को पूर्ण रूप से समझने की कोशिश की है और मार्क्स का अनुयायी बनकर वह जीवन को सर्वसाधारण के लिए अधिक लाभसगत और सुखद बनाना चाहता है। मैक्नीस की कविता में भी कुछ इसी प्रकार की दुहरी विचार-पद्धति मिलती है।

आधुनिक अँगरेजी कविता का ढाँचा और बाह्य स्वरूप भी पहले से बहुत कुछ बदल गया है। छन्द प्रबन्ध की पुरानी पद्धति जिसमे प्रत्येक लाइन में एक नियत सख्या और क्रम में लघु और गुरु ध्वनियो की योजना की जाती थी, अब उतनी मान्य नही रही। आज की कविता की गति वही है जो रोज की बोल-चाल की भाषा की। इस भाँति कविता की भाषा और दैनिक जीवन की भाषा का बहुत कुछ एकीकरण हो गया है। कविता ने अब अपनी बनावटी शैली जिसका शृगार चिकने तथा मधुर शब्दो के प्राचुर्य से होता था त्याग कर वर्तमान जीवन के अनुरूप वेश भूषा धारण किया है। इन दिनो की कविता में कदम-कदम पर पाटल प्रसून धवल चन्द्रिका और बुलबुल के तरानो का जिक्र नही है, किन्तु इन सबसे कही अधिक मूल्य रखनेवाले यथार्थ जीवन का सच्चा चित्र उसमे मिलता है। आज का जैसा जीवन है वैसा ही उसका चित्र भी है। जिन लकीरो और रगो से वह चित्र बनाया गया है सभी सार्थक है। यदि आज की अँगरेजी कविता की भाषा और उसके छद किसी को नीरस और कुछ उखडे हुए से मालूम होते है तो इसका कारण केवल यह है कि आज का जीवन ही इस प्रकार का है और हमें यह जानकर सतोष होना चाहिए कि उस जीवन का कविता में सम्यक् प्रदर्शन है। हापकिन्स ने पहले पहल अपनी कविता मे नवीन प्रणाली के छन्दो का प्रयोग किया जो बोल-चाल की भाषा के आधार पर लिखे गये थे। उसके बाद अनेक कवियो ने हापकिन्स का अनुसरण किया और नवीन छदो की अभिव्यञ्जना शक्ति को बढाया। भाषा भी अब नए ढग की हो गई है। वर्तमान युग के आविष्कारो तथा औद्योगिक जीवन ने असख्य नए शब्द पैदा किये है और उन्हे प्रचलित किया है। इन नवीन शब्दो का समावेश नवीन कविता में है। कवि की कल्पना के आधार आज भिन्न है। इसलिए आज की कविता के रूपक और अलकार भी कुछ नए ढग के है। नवीन युग की कविता में यदि कुछ मशीन-युग की खडखडाहट और अकस्मात् चलने और रुकने की शक्ति आ गई हो तो न तो इसमें आश्चर्य की ही बात है, न खद की।

(३)

आधुनिक अँगरेजी कवियो के सम्बन्ध में लिखते हुए जरर्ड मैनली हापकिन्स का उल्लेख कर देना आवश्यक है। हापकिन्स की कविता उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में लिखी गई थी, किन्तु

मिलती है। इन चारो पर टी० एस० ईलियट का प्रभाव पडा, आउडेन पर सबसे अधिक और मैकनीस पर सबसे कम। यद्यपि इन लोगो ने ईलियट का अन्ध अनुसरण नही किया। भाषा की दृष्टि से जहाँ ईलियट प्राचीन साहित्य के गडे मुर्दे उखाडता है और उनका समावेश अपनी कविता में करके उसे दुरूह बना देता है, वहाँ आउडेन और उनके साथियो के काव्य की भाषा विद्वत्ता के कोरे प्रदर्शन से अछूती है। उसमें नवीनता का चमत्कार है क्योकि यह काव्य की परम्परागत भाषा नही है। इस पर नागरिक और औद्योगिक जीवन की गहरी छाप है और इसमें जनसाधारण की बोली के निकट होते हुए भी १७वी शताब्दी के प्रारम्भ के कवियो की भाषा के सदृश एक घुमाव या बाँकापन है। ये सभी कवि अपने युग की समस्याओ से प्रभावित हुए। फासिज्म की बढती हुई शक्ति से इनके चित्त में आशका और दुख उत्पन्न हुआ। स्पेन के गृहयुद्ध से उद्विग्न होकर प्राय इन सबने महत्त्वपूर्ण काव्य की रचना की। इसी प्रकार सन् १९३० के आस-पास की व्यापारिक मन्दी का प्रभाव भी इनकी कविता पर पडा। किन्तु इन कारणो से ये नवयुवक कवि हतोत्साह होकर निराशा के शिकार नही बने। इन्होने परिस्थिति को बदलने के लिए क्रान्ति का आवाहन किया। कार्लमार्क्स के दार्शनिक और आर्थिक सिद्धान्तो के रूप में अपने युग के अन्धकार में इनको प्रकाश की रेखा दिखाई पडी। इसके साथ ही साथ इन्होंने फ्रायड और युग के सिद्धान्तो का आधार लेकर मन की अचेतन अथवा अर्द्धचेतन अवस्थाओ के रहस्य को ग्रहण करने की चेष्टा की। आउडन की बादकी कविता और नाटको पर अभिव्यजनावाद का भी प्रभाव पडा।

इस समुदाय के कवियो में सेसिल डेलेविस ने सबसे पहले लिखना शुरू किया। १९२९ में इनकी कविता की पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। उसके उपरान्त लगातार इनकी कविता में सफाई और इनके विचारो में दृढता आती गई। स्पेन की लडाई में फ्रैको की विजय से इनके चित्त पर बहुत बडा आघात पहुँचा और उनको मानवता विनाश और पतन की ओर अग्रसर होती दिखाई पडी। आगे चलकर इनकी कविता में असन्तोष के साथ क्रान्तिकारी भावनाओ का सम्मिश्रण हुआ। आउडेन अपने दल के कवियो के नेता और मुखिया है। वह बहुत अल्प अवस्था में ही अपनी प्रतिभा और कवित्वशक्ति के लिए प्रसिद्ध हो गये और उनके भविष्य में एक महाकवि होने की आशा होने लगी। यह आशा कहाँ तक पूर्ण हुई कहना कठिन है, क्योकि विद्वानो का मत है कि आउडेन की कविता में सन्तोषप्रद विकास नही हुआ। आउडेन ने बाद को इँगलैंड से हटकर अमेरिका में निवास किया। इन्होने 'इशरउड' के सहयोग से दो तीन काव्यप्रधान नाटक लिखे है जिन पर अमेरिकन साहित्य और अभिव्यजनावाद का प्रभाव स्पष्ट है। आउडेन की कविता में विविध विचारधाराओ का मिश्रण है और कभी कभी कवि ने एक विचित्र शैली का प्रयोग किया है इसलिए उनकी कविता समझने में कठिनाई होती है। उनकी रचनाओ में दलितो के प्रति दया के साथ ही साथ क्रान्तिकारी उग्र भावनाओ का आविर्भाव हुआ है। स्पेन्डर की कविता में वह उग्रता नही है जो आउडेन की रचनाओ में है किन्तु उसमें अधिक मिठास और कविता के अनेक गुण प्रस्तुत है।

स्पेन्डर में साम्यवादी विचार स्पष्ट रूप से मिलते है किन्तु उनकी वाणी में आग नही है। मैकनीस में बहुत ऊँचे दर्जे की कवित्वशक्ति है। उनकी कविता प्राचीन परम्परा से उतनी दूर हटी हुई नही है जितनी उनके साथियो की। इनकी सौन्दर्य की भावना कभी-कभी प्राचीन ग्रीस के कलाकारो की याद दिलाती है। उनपर मार्क्स से अधिक फ्रायड का प्रभाव पडा है। इन सभी कवियो ने काव्य के

प्रिंसिपल श्री हीरालाल खन्ना

डाक्टर ईश्वरीप्रसाद विश्वविद्यालय, प्रयाग

[इतिहास तथा राजनीति शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान प्रयाग विश्वविद्यालय के ख्यातिनामा प्रोफेसर डाक्टर ईश्वरीप्रसादजी खन्नाजी के अभिन्न मित्र हैं। राजनीति और इतिहास का ज्ञान मनुष्य के परखने में बड़ा सहायक होता है। डाक्टर साहब खन्नाजी के प्रति क्या विचार रखते हैं उनका परिचय इस लेख में मिलेगा।]

प्रिंसिपल श्री हीरालाल खन्ना हमारे प्रान्त के प्रसिद्ध अध्यापक हैं। आपको शिक्षा-जगत् में कौन नही जानता ? आपने अपना सारा जीवन शिक्षा के पुनीत काय में लगाया है और सहस्रों विद्यार्थी ऐसे हैं जिन्होंने आपके ससर्ग से लाभ उठाया है। खन्नाजी केवल शिक्षक ही नहीं रहे हैं। वे उच्च कोटि के सावजनिक कार्यकर्त्ता भी हैं। कानपुर में अपने शिक्षा प्रसार तथा उन्नति के लिए श्लाघ्य प्रयत्न किया है। जब से आप बी० एन० एस०-डी० कालेज के प्रधानाध्यापक हुए उस कालेज की कायापलट हो गई। विद्यार्थियों की सख्या तो बढी ही, उनका मानसिक एव बौद्धिक विकास भी आश्चर्यजनक हुआ और खन्नाजी के प्रयत्न से कालेज का यश सर्वत्र फैल गया। उच्च शिक्षा से भी खन्नाजी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। आप नवीन व्यवस्था के समय से प्रयाग विश्वविद्यालय के कोर्ट तथा एकाडमिक कौंसिल के मेम्बर रहे हैं और उनकी कार्यवाही में सदा भाग लेते रहे हैं। खन्नाजी कर्मठ हैं। स्पष्ट वक्ता हैं। जिस विषय के बारे मे दृढ निश्चय कर लेते हैं उससे विचलित नही होते। यही कारण है कि विश्व विद्यालयों में भी उनका आदर है। इनके आचार्य भी आपकी सम्मति को सम्मानपूर्वक सुनते हैं और विचारो से सहमत न होते हुए भी आपकी सत्यवादिता, निर्भीकता तथा निष्पक्षता की मुक्तकठ से प्रशसा करते हैं। आगरा विश्वविद्यालय की सीनेट तथा कार्यकारिणी में मेरा और खन्नाजी का निर्वाचन साथ साथ सन् १९२७ में हुआ था। तब से बराबर सन् १९३६ तक खन्नाजी सदस्य रहे। अधिवेशनो में सदैव उपस्थित होते थे और शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नो पर निष्पक्ष होकर अपने विचार प्रकट करते थे। यद्यपि आप किसी विश्वविद्यालय मे अध्यापक नही थे तथापि उच्च शिक्षा सम्बन्धी विषयो का आपको ज्ञान अच्छा था। आपका साहस, आपकी स्पष्टवादिता, आपकी कर्त्तव्यपरायणता तथा विद्या प्रेम सबको आकृष्ट करते थे। प्रथम वाइस चान्सलर कैनन डेविस जो स्वय बडे प्रतिभाशाली पुरुष थे, आपको बहुत मानते थे, आपकी राय को आदर से सुनते थे। ऐसा कोई अवसर स्मरण नही आता जब खन्नाजी ने न्याय तथा सत्य का पक्ष न लिया हो। विद्यार्थियो के प्रति आपका अगाध प्रेम था। उनकी सहायता करने को आप सदैव प्रस्तुत रहते थे। यही कारण था कि कई वर्षों तक बिना किसी कठिनाई के आप निर्वाचित होते रहे और विश्व विद्यालयो की सभाओं के अधिवेशनो में भाग लेते रहे।

श्रीयुत खन्नाजी से मेरा परिचय सन १९१७ से है जब वे सेंट जोन्स कालेज में गणित के प्रोफेसर थे। मैं आगरा कालेज में इतिहास का अध्यापक था। आपके केश उस समय भी श्वेत थे और आपकी पोशाक भी श्वेत एव स्वच्छ होती थी। भगवान् की कृपा से गौरवर्ण भी थे इसलिए अपने समकालीनो पर

विशेष प्रभाव डालते थे। हम लोग मजाक में खन्नाजी को शिक्षा विभाग का 'मालवीयजी' कहा करते थे। आगरे में थोडे ही समय मे खन्नाजी ने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। आप एक कुशल शिक्षक ही नही थे वरन् सार्वजनिक प्रश्नो पर भी सारगर्भित विचार प्रकट करते थे। उस समय भी लोग आपके प्रति बडी श्रद्धा रखते थे। जीवन आपका सादा था, आदर्श उत्कृष्ट थे। यद्यपि वेतन अधिक नही था, परन्तु विद्यालय के प्रतिष्ठित एव गण्य मान्य अध्यापको में आपकी गणना की जाती थी।

खन्नाजी ने जो कुछ उन्नति की है वह उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा का ही परिणाम है। उनका व्यक्तित्व जिससे हम सब प्रभावित होते है कतिपय महान् पुरुषो के सम्पर्क का द्योतक है। खन्नाजी की एक विलक्षणता यह है कि वे सदैव स्वावलम्बी रहे है। अपनी शिक्षा का श्रेय भी आप ही को है। आपने प्राइवेट ट्यूशनो तथा अन्य श्रमिक कार्यो द्वारा स्वय अपनी शिक्षा का प्रबन्ध किया था। अपने विद्यार्थी जीवन में जब कि आप म्योर सेन्ट्रल कालेज में छात्र थे और हिन्दू बोर्डिंग हाउस मे निवास करते थे आपको मालवीयजी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था उनकी कृपा से अन्य महानुभावो से भी अपना परिचय हुआ। श्री सच्चिदानन्द सिनहा भी आपके मित्र हो गये और हिन्दुस्तान रिव्यू में कुछ काम देने लगे। इस प्रकार खन्नाजी कालेज मे अपना खर्चा चलाते थे। आचार्य नरेन्द्रदेव उनके समकालीन थे। आचार्यजी बी० ए० में पढते थे। खन्नाजी बी० एस्-सी में। जहाँ तक हमें स्मरण आता है आचार्यजी को जो २०) मासिक छात्र-वृत्ति मिलती थी उसे वे खन्नाजी को ही दे देते थे। केवल पुस्तके पढने मे ही खन्नाजी सन्तुष्ट नही होते थे। उन्हें सार्वजनिक जीवन में भाग लेने का आरम्भ ही से शौक था। फिर मालवीयजी महाराज सूर्य थे। उनका प्रकाश पडते ही खन्नाजी के जीवन में भी एक नई स्फूर्ति आ गई। मालवीयजी के प्रसन्न होने का एक कारण था। जिस समय खन्नाजी कालेज में पढते थे हमारे प्रान्त में महान् दुर्भिक्ष पडा। वे बाँदा जिले में अकाल पीडित जनो की सहायता करने भेजे गए। वहाँ पर आपने अदम्य साहस तथा देश भक्ति का परिचय दिया। अनेक विकट परिस्थितियो में अपनी रक्षा की और असहाय स्त्री-पुरुषो के प्राण बचाये। इस कार्य में उन्हें बडी कठिनाइयो का सामना करना पडा, परन्तु धैर्य सहित सबको उन्होने सहन किया और सेवा मार्ग से विचलित न हुए। मालवीयजी ने आपको उपदेश दिया था कि घबडा कर छोड मत देना। खन्नाजी ने अक्षरश उनकी आज्ञा का पालन किया। कही कही पर अनाथो की रक्षा मे विघ्न उपस्थित होने पर लडाई झगडे की भी नौबत आ गई। बदौसा नामक तहसील में जब आप पहुँचे तो तहसीलदार ठा० लायकसिंह ने बुलाकर डाँट-फटकार बताई, परन्तु खन्नाजी भयभीत न हुए और अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। मालवीयजी उनके सेवाभाव एव कर्त्तव्य निष्ठा से बहुत प्रसन्न हुए और अब खन्नाजी पूर्णरूपेण उनके कृपा-पात्र बन गये। खन्नाजी विद्यार्थी जीवन मे भी अग्रगामी ही थे वे किसी के अनुगामी बनकर नही रह सकते थे। यह विशेषता उनके चरित्र मे अभी तक विद्यमान है। आपका व्यक्तित्व निराला है। आप सैद्धान्तिक मामलो मे कभी समझौता नही कर सकते। वैसे आपका सौजन्य, आपकी साधुप्रवृत्ति, आपका मित्रभाव सभी सराहनीय है। अपने मित्रो के साथ आपका व्यवहार कभी परिवर्तित नही होता। वास्तव में मैकाले के शब्दो में उनकी गणना ऐसे ही मित्रो में है जिनकी आकृति में कभी किसी प्रकार की तबदीली नही होती।

हिन्दू बोर्डिंग के उस समय प० दयानारायण वाजपेयीजी अध्यक्ष थे। वे मि० जैनिंग्स (प्रिंसिपल) के कृपापात्र थे। इसलिए अधिकाश विद्यार्थी उन्हे अच्छा नही समझते थे। जन्माष्टमी अभी तक बोर्डिंग हाउस में नही होती थी। कतिपय विद्यार्थियो ने जन्माष्टमी उत्सव मानने की चेष्टा की। खन्नाजी

नेता बन गये। आपको इस प्रकार का शौक रहता ही था। भयभीत भी शीघ्र नहीं होते थे। झटपट मालवीयजी के पास पहुँचे। उन्होंने कहा कि छात्रालय में सब प्रकार के विद्यार्थी, आर्य-समाजी, जैन, सिक्ख, वैष्णव रहते हैं जन्माष्टमी किस प्रकार मनाई जायगी। तुम जाकर ला० रामचरनलाल, प० सुन्दरलाल तथा प० आदित्यराम भट्टाचार्य से परामर्श करो। प० आदित्यराम जी म्योर कालेज में संस्कृत कालेज के आचार्य थे। मालवीयजी के भी गुरु थे। उनके चरणों में मालवीयजी की अपूर्व श्रद्धा थी। उन्होंने उत्सव मनाने के पक्ष में अपनी राय दी। छात्रालय में विद्यार्थीगण आधे-आधे दोनों पक्ष में थे। परन्तु फिर भी खन्नाजी के उद्योग से मालवीयजी भी सहमत हो गये और धूमधाम से जन्माष्टमी का उत्सव मनाया गया।

अन्याय, अत्याचार तथा उद्दंडता का खन्नाजी सदैव विरोध करते रहे हैं। आपका शिष्टाचार उच्च कोटि का है। अहंकार आपको छू तक नहीं गया। परन्तु अन्याय को आप सहन नहीं कर सकते और दुर्व्यवहार की तीव्र आलोचना करने को सदा उद्यत रहते हैं। एक बार कोक्स साहब से जो म्योर कालेज में प्रोफेसर थे, आपका झगड़ा हो गया। खन्नाजी ने कोक्स को धराशायी कर दिया। मामला बढ़ गया। डन साहब उस समय अस्थायी प्रिंसिपल थे। उन्होंने खन्नाजी को बुलाया और भर्त्सना करना आरम्भ किया। जब खन्नाजी ने सारा वृत्तान्त कहा तो उनकी सत्यवादिता का प्रिंसिपल पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने कोक्स साहब को बुलाकर मेल करा दिया। अँगरेज लोग भी चरित्रवान पुरुषों का आदर करते हैं। जब आगरा सीनेट के निर्वाचन के लिए खन्नाजी खड़े हुए तो उनके मित्रों ने बताया कि जोधपुर में कोक्स साहब ने उनके पक्ष में मत देने का आदेश किया था।

खन्नाजी प्रयाग के प्रतिष्ठित पुरुषों से भली भाँति परिचित हो गये थे। सार्वजनिक कार्यों की ओर प्रवृत्ति होने के कारण सभ्रान्त व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता था। सन् १९०८ में प्रयाग में कायस्थ कान्फरेंस हुई। खन्नाजी स्वयंसेवक बन गये और प्रतिनिधियों की सेवा-शुश्रूषा में दौड़-धूप करने लगे। लोगों ने उनका रूप रंग देखकर उन्हें माथुर कायस्थ समझा। फिर तो उनके साथ विशेष प्रेम का व्यवहार होने लगा। कायस्थ लोग प्रसन्न हुए। वे उस समय पाठशाला में पढ़ते थे। वहाँ उनकी फीस माफ हो गई परन्तु जब माथुरों को मालूम हुआ कि वे कायस्थ नहीं हैं तब उन्हें बड़ी निराशा हुई। विद्यार्थी जीवन में ही खन्नाजी की श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजी से भेंट हुई। उनके भी आप कृपापात्र बन गये। वह मित्रता अभी तक जारी है।

यद्यपि खन्नाजी ने अपनी शैशवावस्था में फारसी और उर्दू की शिक्षा पाई थी, परन्तु हिन्दी से उनका सदैव प्रेम रहा है। वे हिन्दी के उस समय भी कट्टर समर्थक थे जब हिन्दी का पक्ष ऐसा बलशाली न था जैसा कि आज है। शिक्षा समाप्त कर जब आप सी० ए० वी० स्कूल में अध्यापक हुए आपने हिन्दी प्रचार के लिए प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। वास्तव में जिस क्षेत्र में आप कार्य करते थे उसमें हिन्दी प्रेमी विद्वान् कई थे। प्रयाग में प० श्रीधर पाठक, प० बालकृष्ण भट्ट, प० श्रीकृष्ण जोशी, बाबू रामदास गौड़ के प्रयास से एक साहित्यगोष्ठी बनी। उसमें हिन्दी-साहित्य की चर्चा समय समय पर होती थी। सन् १९०८ में प० मुरलीधर मिश्र, सूर्यनारायण और अलीगढ़-निवासी बा० मिश्रीलाल के उद्योग से नागरी प्रवर्धिनी सभा का उद्घाटन हुआ। खन्नाजी इसके सदस्य रहे और नरेन्द्रदेवजी के अनुरोध से हिन्दी में रुचि रखने लगे। यद्यपि स्वयं हिन्दी में अच्छी तरह शुद्ध नाम लिखना भी नहीं जानते थे। सन् १९१० में मालवीयजी की अध्यक्षता में साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ उस समय खन्नाजी ने बड़े उत्साह

के साथ भाग लिया और सम्मेलन की स्थायी समिति के सदस्य बन गए। सम्मेलन में आपकी सदैव बडी दिलचस्पी रही है। उसकी सेवा करने को वे सदा प्रस्तुत रहते है। हिन्दी भाषा ही राष्ट्र भाषा हो सकती है। हिन्दी के द्वारा ही भारत का मानसिक एव बौद्धिक विकास होगा। यह उनकी धारणा लगभग ४० ५० वर्ष से है। जब साहित्य-सम्मेलन में सग्रहालय का महात्मा गाधीजी ने उद्घाटन किया तो टडनजी ने रिपोर्ट पढी और कहा कि हमारे पास फर्नीचर (मेज-कुर्सी) खरीदने के लिए सुविधा नही है। खन्नाजी ने वही प्रकाशको से कहकर २७५०) का चन्दा करा दिया। जिससे वह कमी पूरी हो गई। महात्माजी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और सब लोगो ने खन्नाजी की प्रशसा की। सम्मेलन की समितियो में अब भी खन्नाजी बराबर आते है और निर्भीकता के साथ अपने विचार प्रकट करते है। पदलोलुपता खन्नाजी में नही है। वे निष्काम सेवा करने की क्षमता रखते है। यही कारण है कि बाबू पुरुषोत्तमदास टडन तथा श्री नरेन्द्रदेव आचार्य जैसे महान् व्यक्ति उन पर विश्वास रखते है और उनका आदर करते है।

खन्नाजी अध्यापक रहे है परन्तु व्यापारिक क्षेत्र में भी उनका सम्मान है। कानपुर के धनाढ्य पूँजीवादियो की भी आपके प्रति श्रद्धा है। आप सार्वजनिक कार्यों के लिए उनसे रुपया ले सकते है। कानपुर में कोई व्यक्ति ऐसा नहा जो आपसे अपरिचित हो। शिक्षित समाज में आपका विशेष आदर है।

खन्नाजी अवकाश प्राप्त कर चुके है परन्तु शिक्षा में अभी तक उनकी विशेष अभिरुचि है। हमारे विश्व विद्यालय की सभाओ में वे सदैव उपस्थित होते है और अपने परामर्श से हम लोगो को अनुग्रहीत करते है। अपने प्रयत्न से दो स्कूल भी स्थापित किये है जो इस समय उन्नतावस्था में है। खन्नाजी अद्भुत पुरुष है। हमें उन पर गर्व है। उनका व्यवहार सौजन्यपूर्ण है। उनकी वेश भूषा निराली है, स्वभाव खरा है, स्पष्टवादिता कभी-कभी कठोरता की सीमा तक पहुँच जाती है परन्तु उनके मित्रो की श्रद्धा में कभी क्षति नहीं होती। जब कभी प्रयाग विश्व-विद्यालय के चुनाव में खन्नाजी खडे होते थे तो हमारे मित्र डा० वेणीप्रसाद कहते थे कि खन्नाजी को वोट देकर सार्वजनिक सेवा अवश्य करनी चाहिए। खन्नाजी "अप्रिय सत्य न ब्रूयात्' सिद्धान्त के अनुगामी नही है। कभी-कभी अपने वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध मित्रो को भी डॉट देते है। हम लोगो का खन्नाजी के इस विशेषाधिकार को स्वीकार करने की आदत सी पड गई है। खन्नाजी ने बडी उत्तमता के साथ जीवनयापन किया है। उनके आदर्श सदैव उत्कृष्ट रहे है। गुरुजनो का आदर देश प्रेम, समाज के प्रति सेवाभाव, दीनो पर दया, कर्त्तव्यनिष्ठा—यही खन्नाजी के मूलमत्र रहे है। मुझे आशा है कि खन्नाजी के आदर्शो का प्रभाव युवको के जीवन पर चिरस्थायी होगा और वे देश तथा समाज के सच्चे सेवक बनेंगे। मुझ जैसे खन्नाजी के पुराने मित्रो को उन्हें स्वस्थ सफल तथा समृद्ध देखकर हर्ष होता है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि खन्नाजी चिरजीवी हो और लोकसेवा से हमें कृतार्थ करते रहें।

वह सौम्य और गम्भीर व्यक्तित्व

प्रिंसिपल केदारनाथ गुप्त एम० ए०

[श्री केदारनाथ गुप्त एम० ए० प्रयाग स्थित अग्रवाल विद्यालय इण्टर कालिज के स्वनामधन्य प्रिंसिपल हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी उनकी पुस्तका एवं प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी प्रचार-कार्य के कारण हिन्दी-संसार के व सुपरिचित हो चुके हैं। प्रस्तुत संस्मरण में आपने खन्नाजी के बहुमुखी व्यक्तित्व के विभिन्न अंगों पर संक्षेप में प्रकाश डाला है। एक शिक्षा विशारद का यह वक्तव्य एक विशेष महत्व रखता है।]

२५ वर्ष से भी अधिक समय तक विशेषतया शिक्षा-सम्बन्धी सेवाएँ करके आदरणीय श्री हीरालालजी खन्ना अब अवकाश ग्रहण कर रहे हैं। उनकी मित्रमंडली उनके स्मरणार्थ एक ग्रंथ का प्रकाशन कर रही है। मुझे प्रसन्नता है—और साथ ही गर्व भी—कि उनसे सम्बन्ध रखनेवाले कुछ संस्मरणों के लिखने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

सन १९२९ की बात है। मैं सनातन धर्म कालेज कानपुर में बी० ए० का अध्ययन करने के लिए गया था। उस समय उस कालेज के प्रिंसिपल श्रीमान स्वर्गीय पी० शेषाद्री थे। एक दिन एक फुटबाल मैच के समय मेरी दृष्टि एक ऐसे सज्जन पर पडी जो खद्दर की सफेद पोशाक पहने मेरे पास ही खडे हुए थे। जिनके सर पर सफेद पगडी बँधी हुई थी मुखारविन्द से प्रतिभा की किरण प्रस्फुटित हो रही थी, वे बडे ही सौम्य गम्भीर और भव्य दिखलाई पड रहे थे। कौतूहलवश मैंने मित्रों से पूछा कि यह कौन सज्जन है? ज्ञात हुआ कि ये प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना हैं। नाम तो मैं पहले सुन चुका था। चट दौडकर उनसे मिला। उनसे मिलने का मेरा यह पहला अवसर था।

उनके व्यक्तित्व से मैं इतना प्रभावित हुआ कि अपने अवकाश के समय में कभी-कभी खन्नाजी से कालेज में मिल आता था। विशेष परिचय प्राप्त होने पर मेरा सम्पर्क उनसे बढता ही गया। मैंने देखा कि यह व्यक्ति कितना कर्मठ और परिश्रमी है। दिन रात उसे अपने कालेज की धुन रहती है। उस समय बी० एन० एस० डी० की इमारत बन रही थी और कालेज की पढाई का काम भी चल रहा था। कक्षाओं को पढाने के अनन्तर वे अपना समय कालेज के काम ही में दिया करते थे।

जब मैं कानपुर से इलाहाबाद वापस आया तो यहाँ भी खन्नाजी से भेंट हुई। खन्नाजी यू० पी० शिक्षा बोर्ड के एक अत्यन्त प्रभावशाली सदस्य थे और प्रिंसिपलों की ओर से निर्वाचित होकर आए थे। उस समय श्री दीवानचंदजी डाक्टर अमरनाथ झा श्री देवीप्रसाद खत्री आदि विद्वान् शिक्षा विशारद भी बोर्ड के सदस्य थे। बोर्ड की बैठक में वाद विवाद में खन्नाजी प्रमुख भाग लेते थे। उनकी विद्वत्ता उसी समय प्रकट होती थी जब वे किसी विषय को लेकर उसके पक्ष अथवा विपक्ष में वाद विवाद करते थे। शिक्षा बोर्ड में खन्नाजी का एक प्रमुख स्थान रहा और यही कारण है कि लगभग २० वर्ष से भी अधिक वे बोर्ड के सदस्य रहे और भिन्न भिन्न पदों से उन्होंने बोर्ड के काम को आगे बढाया।

खन्नाजी हिन्दी के भी बड़े प्रेमी हैं। वे कई वर्षों तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के सदस्य रह हैं और उसकी बैठकों में बराबर भाग लेते रहे हैं। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडनजी से आपकी प्रगाढ मैत्री है। जिस समय टंडनजी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के उद्देश्य से सम्मेलन की स्थापना की उसी समय से खन्नाजी ने उनके इस काम में उनका हाथ बटाया। पहले की बात तो मुझे स्मरण नहीं है किन्तु १९२९ के बाद से मुझे भली भाँति स्मरण है कि खन्नाजी सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में और उसकी बैठकों में बराबर भाग लेते थे। राजर्षि टंडनजी की लगन और परिश्रम से अब जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ है उसके लिए अथक प्रयत्न करनेवालों में खन्नाजी का भी नाम गौरव के साथ लिया जायगा।

खन्नाजी का सम्बन्ध राजनीति से भी बराबर रहा है। उनका सम्पर्क देश के नेताओं से बड़ा पुराना है। पं० जवाहरलाल नेहरू, महामना मालवीयजी, राजर्षि टंडनजी, आचार्य नरेन्द्रदेव, माननीय श्री सम्पूर्णानंद, डाक्टर भगवानदास, श्री श्रीप्रकाश आदि प्रान्त के सभी नेताओं से आपका प्रगाढ़ परिचय रहा है। किन्तु खन्नाजी स्वतंत्रता के संग्राम में अपने ढंग से काम करते थे। स्वदेशी का व्रत तो उन्होंने १९०८ से ही लिया था किन्तु राजनैतिक उथल-पुथल के समय उन्होंने अपने विद्यार्थियों में काफी स्वतंत्रता के भाव भरे हैं। स्वतंत्रता-संग्राम में हमारे देश के विद्यार्थियों ने जो महत्त्वपूर्ण भाग लिया है वह भारत के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इन विद्यार्थियों में उत्साह और जोश भरनेवालों में खन्नाजी का नाम भी बराबर लिया जायगा।

खन्नाजी का सबसे प्रमुख कार्य शिक्षा के क्षेत्र में हुआ है। कानपुर के विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज के अतिरिक्त उन्होंने एक और हायर सेकेन्डरी स्कूल की भी स्थापना की है जिसका काम भी सुचारु रूप से चल रहा है। कानपुर के अनेक शिक्षालयों की कार्यकारिणी समितियों के आप सदस्य भी रह हैं और अब भी हैं।

किन्तु बी० एन० एस० डी० कालेज को प्रान्त का एक अग्रगण्य कालेज बनाने में आपको विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। आपने योग्य से योग्य अध्यापकों का संग्रह अपने कालेज में कर रखा है जिनमें हमारे पुराने मित्र श्री सद्गुरुशरण अवस्थी का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन पर आपने अब कालेज का भार सौंपा है। अधिक से अधिक विद्यार्थी आपके कालेज से हाईस्कूल और इंटर की परीक्षाओं में बैठते रहे हैं और अच्छे से अच्छा परीक्षाफल प्रतिवर्ष आपने दिखलाया है। प्रथम श्रेणी, विशेष योग्यता और छात्रवृत्ति पानेवाले विद्यार्थियों की तो भरमार बराबर रहा है जिसे देखकर लोग आश्चर्य करने लगते हैं।

इन सब सफलताओ की विशेषता यह है कि खन्नाजी ने अपना वर्तमान स्थान केवल अपने पुरुषार्थ से ही बनाया है। खन्नाजी आरम्भ में एक गरीब विद्यार्थी थे। ट्यूशन करके उन्होंने अध्ययन किया। एक गरीब विद्यार्थी अपनी प्रतिभा, अपने अथक परिश्रम, अपनी ईमानदारी, अपने सदाचार और अपनी मिलनसारिता से कितना ऊँचा उठ सकता है, इसका उदाहरण हमे खन्नाजी से मिलता है।

खन्नाजी को स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रयोगो से भी बडी रुचि है। वे स्वास्थ्य के नियमो का पालन कठोरता से करते हैं और इस अवस्था में भी अभी काफी तन्दुरुस्त हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे इसी प्रकार तन्दुरुस्त रहते हुए कम से कम सौ वर्ष जीवित रहे और उसी लगन के साथ भिन्न भिन्न रूपो मे वे देश की सेवा करते रहे जिस प्रकार उन्होंने अभी तक किया है।

श्री हीरालाल खन्ना, जैसा मैंने जाना

आचार्य जे० पी० गुप्ता, एम० ए० एल० टी० आगरा

[आचार्य श्री जे० पी० गुप्त स शिक्षा-जगत् बहुत काल से परिचित हैं। उनका खन्नाजी का अच्छा साथ रहा। उनके द्वारा प्रस्तुत किया हुआ खन्नाजी का चित्र अपना विशेष महत्त्व रखता है। गुप्तजी लिखते हैं— खन्नाजी जहाँ पर रह, जिस स्थान पर भी रह, वहा शासन किया। वहाँ अपने व्यक्तित्व से प्रमुखता पाई।"

खन्नाजी के जीवन का यह एक प्रमुख सत्य है।]

आज खन्नाजी शिक्षा क्षेत्र से विधिवत् विदा ले रहे हैं। उनका जीवन एक प्रकार से शिक्षा के लिए ही अर्पित हो गया था और यह सत्य है कि वे अवस्था के नियम के कारण विधिवत् अवकाश ग्रहण कर रहे हैं, फिर भी जो उनके जीवन का मर्म रहा है, उससे वे विरत नही रह सकते। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने जब से उन्हें जाना है तभी से उनमें एक दृढ़ता और एक व्रतनिष्ठता के दर्शन किए है। जिस क्षण से मैंने इन्हे देखा है इनमें गुरुवत् भक्ति की है। यथार्थ में मैंने कभी आपसे किसी कक्षा में शिक्षा नही पाई। आप मेरे बडे भाई के गुरु थे। उन्ही के कारण मेरे मन में आपके प्रति यह भक्ति उदय हुई।

सर्वप्रथम मैंने सेंटजान्स कालेज, आगरा, में प्राध्यापक के रूप में देखा। कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में गणित के प्राध्यापक की भांति भी आप प्रसिद्ध हुए, किन्तु शिक्षा-जगत् मे आपकी सबसे बडी देन बी० एन० एस० डी० इटर कालेज है। यह सस्था खन्नाजी के व्यक्तित्व का प्रतीक है। इनकी प्रबंध-शक्ति, इनकी शिक्षण योग्यता, इनकी लोक प्रियता सब कुछ इस एक कालेज से सिद्ध होती हैं।

आपका सबसे प्रमुख गुण यही है कि आप तुरत ही विद्यार्थियो के श्रद्धाभाजन हो जाते थे। विद्यार्थी एक बार आपके सपर्क में आया और आपका हुआ। यथार्थ तो यह है कि आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व का चमत्कार सभी को मुग्ध करता है। विद्यार्थी ही नही उनके अभिभावक भी इस जादू को मानते थ, तभी वे अभिभावकों में भी अत्यन्त प्रिय थे।

आपके कालेज का परीक्षाफल प्रान्त में आदर्श रहा है। कालेज की प्रान्त में प्रतिष्ठा का भी प्रधान कारण यही है और इसका मूल है खन्नाजी का अध्यवसाय और उनकी विचित्र मेधा शक्ति।

पर यही सब कुछ नही। खन्नाजी जहां भी गए जिस स्थान पर भी रह वहां शासन किया, वहां अपने व्यक्तित्व से प्रमुखता पाई। आपका जीवन अनेक सस्थाओ स सबद्ध रहा है। शिक्षा-क्षेत्र से सबधित यू० पी० सेकेन्डरी एजूकेशन एसोसिएशन हो या यू० पी० का हाईस्कूल एण्ड इटरमीजिएट बोर्ड हो या विश्वविद्यालय खन्नाजी के लिए इनमें हर समय स्थान रहा है और खन्नाजी की बात मानी गई। फलत अब तक के शिक्षा-केन्द्र की विस्तृति म खन्नाजी का कितना हाथ है इस सरलता पूर्वक नहा बताया जा सकता। यही नही, हिन्दी-साहित्य-सम्मलन के भी आप प्रमुख सूत्रधारा में रहे हैं। वह सब आपके ऋणी हैं।

एक सबसे बडी विशेषता खन्नाजी में यह है कि आप महामना मालवीयजी की भांति अपनी भूषा में अत्यन्त दृढ और एकनिष्ठ रहे। वही साफा, वही लम्बा कोट, वहा धोती आप दूर से भी खन्नाजी को पहचानने में भूल नही कर सकते। ऐसे व्यस्त कार्य-पटु व्यक्ति को ईश्वर ने स्वास्थ्य भी निसकोच होकर प्रदान किया है। हमारी ईश्वर से कामना है कि ये दीर्घजीवी हा और अब भारतीय प्रथा के अनुसार शिक्षा-सन्यासी बनकर स्वतत्र देश की सेवा के लिए हमें दीर्घकाल तक उपलब्ध रह।

. डा० जाकिरहुसेन का पत्र

[डाक्टर जाकिरहुसैन, कुलपति अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय उन ख्यातिनामा राष्ट्रीय मुसलमानो में से हैं, जिन्होंने शिक्षा के क्षत्र में सगहनीय प्रयत्न किये है। वे जामिये मिल्लिया के सफल सचालक और शिक्षा-सम्बन्धी मामलो में राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के दाहिने हाथ थे।

खन्नाजी की शिक्षा-सम्बन्धी सेवाओ वा वे हृदय मे आदर करते है। उनके इस पत्र को पाठक बडी रुचि से पढेंगे।]

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ
१३ अक्टूबर, १९४९

मुकर्रम बन्दा[1],

तसलीम[2]। इनायतनामा[3] मिला। याद फर्माई[4] की शुक्रिया[5]। मुझे खन्ना साहेब की खिदमत[6] में नयाज[7] साहिल[8] हूँ और मैं उनकी तालीमी[9] खिदमात की दिल से कद्र[10] करता हूँ। उनकी खिदमत में जो यादगारी[11] जिल्द पेश की जानेवाली है उसमें मैं भी कुछ लिख सकता तो उसे अपनी इज्जत अफजाई[12] समझता। मगर अलीगढ का काम जब से मेरे सिपुर्द हुआ है बराबर यहाँ से गैरहाजिर रहा। यूनिवर्सिटीज कमीशन के काम से बराबर बाहर रहना पडा। अब वापस आया हूँ तो सिर उठाने की मुहल्त[13] नही कुछ जिम्मेदारियाँ और ऐसी अपने सिर ले ली है कि चन्द महीने तक मजीद[14] लिखने पढने का काम बिलकुल न कर सकूँगा। उम्मीद[15] है कि आप मुझे माजूर[16] जानकर माफ फरमावेंगे।

न्याजमन्द
जाकिरहुसेन

१—मुझ पर कृपा करनेवाले, २—अभिवादन, ३—कृपा-पत्र, ४—स्मरण, ५—धन्यवाद, ६—सेवा, ७—परिचय, ८—प्राप्त, ९—शिक्षा-सम्बन्धी सेवाओ, १०—आदर, ११—अभिनन्दन-ग्रन्थ, १२—सम्मान-वृद्धि, १३—अवकाश, १४—अधिक, १५—आशा, १६—मजबूर।

दृढ और अभेद्य खन्नाजी

श्री कालिकाप्रसादजी धवन, आनरेरी मजिस्ट्रेट

[खन्नाजी के अत्यन्त निकट के मित्र और सहयोगी श्री कालिकाप्रसादजी धवन ने इस स्केच में खन्नाजी के व्यक्तित्व के उन विशिष्ट अगो की ओर सकेत किया है जो उनकी सफलताओ और उनके जीवन की उत्तरोत्तर प्रगति के मूलमन्त्र रहे है। ये है दृढता और निर्णयात्मक स्वभाव। इनके कारण खन्नाजी के अनेक शत्रु भी पैदा हो गए है, पर खन्नाजी ने एक बार जिस सत्पथ पर बढने का दृढ निश्चय कर लिया उससे डिगानेवाली कोई शक्ति कभी उन पर अपना प्रभाव डाल ही न सकी। हमारे आज के राष्ट्रीय जीवन में इसी प्रकार की अभेद्यता, इसी तरह की दृढता व ऐसे ही मार्ग गमण की सर्वाधिक आवश्यकता है।]

श्री हीरालाल खन्ना की कार्यप्रणाली में जो एक प्रकार की दृढता है वह अपनी निज की मौलिकता रखती है तथा जो उनके निकट है अथवा जो उनके चरित्र के सबध में कुछ ज्ञान रखते है वे भली भाँति जानते है कि उनकी यह दृढता कितनी अभेद्य, स्थायी और अज्ञात है। उनके निर्णयात्मक स्वभाव की ही यह देन है जिसने खन्नाजी के जीवन-काल ही में उन्हे न जाने कितनो ही का परम मित्र और न जाने कितनो का चिर शत्रु बना दिया है।

खन्नाजी की वेश भूषा, चरित्र, बातचीत का ढग तथा व्यक्तित्व का प्रभाव बिना पडे नही रह सकता। मेरा उनका परिचय श्री बुद्धूलालजी मेहरोत्रा के द्वारा हुआ था और तभी से मै उनकी दृढता तथा उनके निर्णयात्मक स्वभाव से प्रभावित होता आया हूँ। मेरा तो यह कहना है कि खन्नाजी को जो लोग नही समझ पाते वे ही उनके निर्णयात्मक स्वभाव से डरते है तथा उनके विषय में अनर्गल बातें करके स्वय अपनी कमजोरियो को ही छिपाने की चेष्टा करते है।

जिस कार्य में खन्नाजी आपके साथ हो उसमें सफलता निश्चित सी है। वे प्रत्येक कार्य को करने के लिए उसके विषय में आवश्यकता से अधिक विचार करते है और पचासो विरोध और अडगो के होते हुए भी उस कार्य को पूर्णत्व की ओर ले ही जाते है। उनका कार्य करने का ढग अपनी निज की मौलिकता रखता है। वे विघ्न-बाधाओ से डरते नही है तथा एक अथक योद्धा की भाँति आगे बढते जाते है। उनकी कार्य शक्ति उनकी विचार शक्ति से कही अधिक तीव्र है। वे कर्म और फल दोनो ही में अटूट विश्वास रखते है।

खन्नाजी ने नगर की दो शिक्षा-सस्थाओ को जन्म दिया है तथा इस प्रकार की अनेक सस्थाओ से वे सबधित है। मेरा और उनका सदा इन सस्थाओ के प्रबध में साथ रहा है। परस्पर मतभेद होने पर भी हमारा मतैक्य ही हुआ है। मैंने इन सस्थाओ की प्रबध-समिति की बैठको में प्राय उनके भाग लेने की प्रणाली देखी है और उसका प्रभाव भी मुझ पर पडा है। मैं मुक्तकठ से कह सकता हूँ कि खन्नाजी किसी बडी से बडी शिक्षा-सस्था को जन्म दे सकते है, उसका सुचारु रूप से सचालन कर सकते है तथा उसे स्थायी और उपयोगी बना सकते है। कानपुर का श्री विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज तथा कानपुर हाईस्कूल इसके ज्वलत उदाहरण है। कानपुर की ये सुप्रसिद्ध शिक्षा-सस्थाएँ खन्नाजी के साहस, कार्यप्रणाली, दृढता और लगन की प्रतीक है। उन्होंने इन सस्थाओ को जीवन दिया है। उन्होंने अपने बल पर पाई-पाई एकत्र करके इन सस्थाओ को आज उत्तर प्रदेश की प्रमुख सस्थाएँ बना दिया है।

खन्नाजी की जिह्वा में महामना मदनमोहन मालवीय की जिह्वा का सा गुण है। वे किसी भी सस्था के लिए दान लाने मे पटु है। कोष की कमी उन्हे कभी चिंतित नही करती। उन्हे अपनी इस शक्ति पर विश्वास है, तथा सुनने के समय उनकी बातें कुछ असभव सी ज्ञात होती है किन्तु उन्हें साकार रूप मे देखकर आश्चर्य-चकित रह जाना पडता है। वे तर्काचार्य है तथा उन्हे तर्क मे हरा देना साधारण कार्य नही है। उनके तर्को में एक प्रकार का मौलिक तथ्य होता है जिसे न समझ सकने के कारण खन्नाजी के तर्कों के आगे निरुत्तर हो जाना पडता है।

खन्नाजी उन लोगो के लिए सरल और सुप्राप्य है जो उन्हे समझ चुके है। मुझे तो उनके साथ काम करने में कभी कोई कठिनाई नही हुई। मेरा उनका मतभेद भी रहा है, गहरी झडप भी हुई है, किन्तु फिर भी परस्पर कभी मनोमालिन्य नही हुआ। हम एक दूसरे को समझ गए है और यही कारण है कि खन्नाजी मुझे अब अभेद्य या दूर नही मालूम पडते। उनके निकट हो जाने पर उनकी मैत्री प्राप्त कर लेने की कला कतिपय लोग ही जानते है।

अब वे अवकाश ग्रहण कर चुके है। उनकी अवस्था भी विश्राम करने योग्य हो चुकी है, किन्तु मुझे सदेह है कि वे विश्राम कर सकेंगे। वे न तो विश्राम करना जानते है और न विश्राम करना ही चाहते है। हमारे नगर के शैक्षणिक इतिहास में वे अपना एक निज का स्थान रखते है। वे निर्माण की कला जानते है। कितना अच्छा हो यदि कानपुर की शिक्षा-सस्थाएँ उनकी सलाह से लाभ उठाने की चेष्टा करें। उनमें सगठन और निर्माण की अपूर्व शक्ति है। अतएव उनकी इस अवकाश परिधि से कानपुर की कोई भी शिक्षा-सस्था लाभ उठा सकती है।

हम खन्नाजी की उन सेवाओ के प्रति, जो उन्होंने शिक्षा-सस्थाओ के निर्माण मे की है, अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते है तथा ईश्वर से प्रार्थना करते है कि वह खन्नाजी को दीर्घ जीवन दे जिससे वे नागरिक जीवन की प्रगति तथा शिक्षा सस्था-सुधार की योजनाओ को अपने अमूल्य आदेशो से लाभ पहुँचाते रहे। हमको चाहिए कि हम उनके विशाल व्यक्तित्व का मूल्य समझें। इससे हमारा ही हित होगा। गया प्रसाद ट्रस्ट कमेटी में प्राय खन्नाजी की बातें मुझे ग्राह्य नही होती और ऐसे अनेक अवसर आये है जब मेरा गहरा मतभेद भी हो गया है, किन्तु इन बातो से कभी मेरे हृदय में खन्नाजी के प्रति किसी प्रकार की शत्रुता या अश्रद्धा उत्पन्न नही हुई। मै जानता हूँ कि खन्नाजी की कार्य-प्रणाली और लोगो से बिलकुल भिन्न है तथा जिस काम का वे भार ले लेते है उसमें तन मन से जुट जाते है तथा सफलता प्राप्त करने के बाद ही शान्त होते है।

खन्नाजी का आरम्भिक जीवन

विद्याभूषण पं० कालीशङ्कर शर्मा शास्त्र्ज्ञ, एम० ए०, एल्-एल० बी०, एडवोकेट;
भूतपूर्व प्रोफेसर और अध्यक्ष न्याय (ला) विभाग, सनातन धर्म कालेज, कानपुर

[खन्नाजी की आज की सफलताओ की ओर तो हमारी दृष्टि तुरन्त ही आकर्षित हो जाती है, परन्तु किन कठिन मार्गों को पार करते हुए वे आज की मजिल पर पहुँचे हैं, इसे कम लोग जानते हैं। खन्नाजी के आरम्भिक जीवन की बाधाओ व कठिनाइयो का बहुत ही उत्साहवर्धक वर्णन श्री प० कालीशकर शर्मा एडवोकेट ने अपने इस लेख में किया है। अपनी कटकाकीर्ण परिस्थितियों का रोना रोनेवाले के लिए यह विवरण बडा प्रेरणादायक सिद्ध होगा।]

श्री हीरालालजी खन्ना का जन्म उत्तम खत्री कुल में स० १९४६ में हुआ था। इनके पिता लाला ठाकुरदासजी रत्नो का व्यापार करते थे। उन्हे रत्नो की अच्छी पहचान थी। लखनऊ के बडे-बडे व्यापारी उन्हे दिखाकर रत्नो का क्रय विक्रय करते थे। धनाभाव के कारण वह स्वय रत्नो को मोल नही ले सकते थे। किन्तु रत्नो के घाटे-मुनाफे में इनकी पत्ती हो जाती थी। 'पत्ती' भाग या हिस्से को कहते हैं। वृद्धावस्था मे इनके पिता की नेत्रज्योति कम पड गई। इस कारण से वह रत्नो की परख नही कर सकते थे। उनकी कोई आय नही रही। इस अवस्था मे इनकी माता ने अपने पुत्रो का पालन कपडो पर बेल-बूटे काढ कर किया। इनकी माता को अपने धनिक सम्बन्धियो से आर्थिक सहायता मिल सकती थी, किन्तु इन्होने स्वाभिमान के कारण किसी की सहायता स्वीकार नही की और अपने अनवरत परिश्रम से कुटुम्ब का पालन करती रही। ऐसी अवस्था में यह कोई नही कह सकता था कि बालक हीरालाल उत्तम कोटि का विद्वान् होकर भारतीय शिक्षा-समाज मे यश प्राप्त करेगा। परन्तु विधाता की गति विचित्र है।

कुछ समय तक श्री हीरालाल बहराइच में अपने ज्येष्ठ भ्राता बाबू बालमुकुन्दलाल सेटिल्मेण्ट क्लर्क के पास रहे और वहाँ मिडिल स्कूल में शिक्षा पाई। इनके मामा बाबू कृष्णनारायण का विवाह कानपुर में हुआ था। विवाह के अवसर पर इनकी माँ के पितृव्य बाबू गगाप्रसाद, जो उस समय रीवा राज्य मे इजीनियर थे, कानपुर आए थे। इनके सामने एक बालक को खन्नाजी ने मारा। इनकी माँ ने उस बालक का पक्ष किया। इन्होंने उस बालक का व्यवहार अनुचित बताया। इन्जीनियर महाशय ने इनको निरपराध समझा। वह आग्रहपूर्वक इनको अपने साथ रीवा ले गये। रीवा में इनको नवी कक्षा तक पढने की सुविधा मिली। अभी यह दसवी कक्षा तक नही पहुँच पाये थे कि गगाप्रसादजी की मृत्यु हो गई। उस समय खन्नाजी की अवस्था १६ वर्ष की थी। गगाप्रसादजी की विधवा से अनबन के कारण यह बम्बई भाग गये। वहाँ जाकर जहाज मे कुली का काम करके अपना निर्वाह किया।

बम्बई में वे तीन महीने बीमार रहे। उस समय इनके पास लौटने का खर्च तक न था। अमृतसर के एक दयार्द्र चित्त व्यापारी लाला भौरमल ने इन्हे धूलकोट स्टेशन पर उतार दिया। धूलकोट अम्बाला के पास है। यहाँ पर इनके बडे भाई बाबू मोहनलाल सहायक स्टेशन मास्टर थे। इन्होने हीरालाल को तार का काम सिखाया किन्तु इसमें उनका मन न लगा और रीवा जाकर सतना स्थित वेंकट हाई-स्कूल में पढकर वहाँ के प्रधानाध्यापक बाबू जीतनसिंह की आर्थिक सहायता से वे इन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। अब आगे पढने की कोई सुविधा न थी। कानपुर में खन्नाजी की बुआ के लडके लाला छगामल कपडे का व्यापार करते थे। इन्होने पढने के लिए खन्नाजी को १०) मासिक दिया। इसी के आधार पर यह प्रयाग चले गये और हिन्दू छात्रालय में रहने लगे। वहाँ वे ट्यूशन करके अपना निर्वाह करते थे।

पजाब के सुप्रसिद्ध नेता स्वर्गीय लाला लाजपतराय के प्रबन्ध में यू० पी० की दुर्भिक्ष निवारण परिषद् बनी थी जिसके सभापति प० मदनमोहन मालवीय और मन्त्री बाबू पुरुषोत्तमदास टडन नियुक्त हुए थे। खन्नाजी ने इस परिषद् में स्वयसेवक के रूप में कार्य किया और बाँदा जिले में काम किया। बाँदा के अनाथालय का उद्घाटन उसी समय हुआ था। इनको स्वयसेवक-कार्य से पूज्य मालवीयजी तथा टडनजी सन्तुष्ट हुए। इन दोनो महानुभावो की कृपा से ६) मासिक की छात्रवृत्ति इनको केन्द्रीय-खत्री-शिक्षा-सभा से प्राप्त हुई। टडनजी ने इन्हे अपनी कन्या का शिक्षक भी नियत किया। कुछ दिनो बाद प्रयाग में कायस्थ-कान्फरेन्स हुई जिसमें खन्नाजी ने स्वयसेवक का कार्य किया। कायस्थ पाठ-शाला के कर्मचारियो ने इनके कार्य पर प्रसन्न होकर इनको फीस से मुक्त कर दिया। कायस्थ पाठशाला से खन्नाजी ने इण्टर मीडियेट परीक्षा पास की।

अब खन्नाजी म्योर कालेज में बी० एस्-सी० में भर्ती हुए। लाला छगामल ने इनकी सफलता से प्रसन्न होकर इनको १०) मासिक की सहायता देनी चाही, किन्तु खन्नाजी ने अपने निर्वाह के लिए कई उपाय कर लिये थे। 'इम्पायर आफ इण्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी', 'लीडर प्रेस', 'इन्डियन प्रेस', 'हिन्दुस्तान रिव्यु' आदि में काम करने से इन्हे ७०) मासिक मिल जाता था। इसके अतिरिक्त यह "बिहारी" और "मदरास स्टैन्डर्ड" के सम्वाददाता भी थे तथा "एडवोकेट पत्र" लखनऊ और "बिहारहिरैल्ड" में सम्पादकीय लेख लिखा करते थे। इस कारण लाला छगामल से इन्होने सहायता नहीं ली।

म्योर कालेज से बी० एस्-सी० पदवी प्राप्त करके यह डी० ए० बी० हाईस्कूल में ८०) मासिक पर विज्ञान के शिक्षक नियुक्त हुए। इस पद पर काम करते हुए ही इन्होने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० एस्-सी० की उपाधि गणित में प्राप्त की और कुछ दिनो के बाद सेन्टजान्स कालेज आगरा में गणित-विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए।

सन् १९१९ में कानपुर में डी० ए० बी० कालेज खुला। उसमें यह गणित-विभाग के प्रोफेसर नियुक्त हुए। यहाँ १९२७ तक इन्होने बडी योग्यता के साथ काम किया। कालेज में वाइस-प्रिंसिपल का स्थान रिक्त हुआ। किन्तु आर्य-समाज के सदस्य न होने के कारण इनको यह पद नही मिला। अतः इन्होने वहाँ से त्याग-पत्र दे दिया।

स्वर्गीय प० मदनमोहन मालवीयजी ने इन्हें हिन्दू युनीवर्सिटी में बुलाया। बनारस जाने के पूर्व ही विश्वम्भरनाथ सनातनधर्म कालेज में इण्टरमीडियेट क्लास खुल गया था। स्वर्गीय बाबू विक्रमाजीत सिंह, एडवोकेट के आग्रह से और पूज्य मालवीयजी के आदेश से इन्होने सन् १९२७ में उक्त कालेज का प्रिन्सिपल होना स्वीकार किया।

बाल्यावस्था से ही खन्नाजी उदार-चरित हैं। दूसरो की सेवा करना वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। इन्होने अपना विवाह २६ वर्ष की अवस्था में जिस समय वे सी० ए० वी० हाईस्कूल इलाहाबाद में थे, बहुत कहने सुनने से किया था। विवाह के अनन्तर ५ वर्ष भी नही बीते थे कि इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। यद्यपि इनकी अवस्था उस समय ३१ वर्ष की थी, इन्होने दूसरा विवाह नही किया और तभी से कठोर सयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

विद्याध्ययन काल में इनके विवाह के कई प्रस्ताव उच्च और धनिक कुलो से आये। इनको कई प्रकार के प्रलोभन दिये गये। किन्तु यह बाल-विवाह के विरोधी हैं। । इन्होने उन प्रस्तावो को स्वीकार नही किया। इनका यह विचार सर्वदा रहा है कि विद्याध्ययन करने के बाद जब विद्यार्थी कुछ धनार्जन करने लगे उस समय उसका विवाह होना चाहिए। किसी दूसरे का आश्रय लेना सर्वथा अनुचित और निन्द्य है।

महाराज कृष्णप्रसाद ने, जो उस समय हैदराबाद राज्य के प्रधान मन्त्री थे, अपने प्राइवेट-सेक्रेटरी को म्योर कालेज मे इनको देखने के लिए इलाहाबाद भेजा था। सेक्रेटरी महाशय इनको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि 'महाराज अपनी कन्या के साथ आपका विवाह करना चाहते हैं।' उन्होने बहुत प्रलोभन दिया कि आपको प्रचुर धन-राशि मिलेगी। उस समय खन्नाजी बी० एस्-सी० के द्वितीय वर्ष में पढ रहे थे और आयु भी २१ वर्ष की हो चुकी थी। इन्होने उत्तर दिया कि 'महाराज को आप मेरी ओर से अनेक धन्यवाद दें और यह भी कह दें कि मैं अभी पढ रहा हूँ। मैं किसी दूसरे पर आश्रित नही होना चाहता।' यह कहकर इन्होने विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार नही किया और सेक्रेटरी महाशय निराश होकर लौट गये।

खन्नाजी की बी० एन० एस० डी० कालेज मे प्रिन्सिपल पद पर नियुक्त के अनन्तर जिस प्रकार इस विद्यालय की उत्तरोत्तर उन्नति हुई यह सबको भली भाँति विदित है। इनका कार्यक्षेत्र केवल इस विद्यालय ही तक सीमित न था। आगरा, इलाहाबाद, बनारस के विश्वविद्यालयो तथा उत्तर प्रदेश के हाईस्कूल और इण्टरमीडियेट बोर्ड के प्रति इनकी सेवाएँ सर्वविदित और स्तुत्य हैं। अत इनका विस्तार से वर्णन करना अनावश्यक है। आप हिन्दी के अनन्य प्रेमी हैं और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के कार्य में आपने बहुत कुछ भाग लिया है।

गीता के १६वे अध्याय में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि 'मनुष्य दो प्रकार के होते हैं — (१) जिनका जन्म दैवी सम्पत्ति में हुआ है (२) जिनका जन्म आसुरी सम्पत्ति में हुआ है। निर्भयता, इन्द्रियदमन, अहिंसा, सत्य, त्याग, दया, अमानत्व इत्यादि जो दैवी सम्पत्ति के लक्षण है वे खन्ना जी में अधिकता से पाये जाते हैं। ये जन्म से ही निर्भय रहे हैं। एक बार इनका किसी विषय पर मेकेन्जी साहब से, जो उस समय यू० पी० शिक्षा विभाग के सर्वोच्च अधिकारी थे, विवाद हो गया। दोनो उत्तेजित हो गये। बहुत कुछ कहा सुनी हुई। खन्नाजी किसी प्रकार नही दबे। यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि वही मेकेन्जी साहब कुछ दिन बाद इनके कालेज का निरीक्षण करने आये और उन्होने खन्नाजी के कार्य की बहुत प्रशसा की। यह एक अँगरेज की विशाल हृदयता का उदाहरण है।

खन्नाजी के सच्चरित्र और नि स्वार्थ जीवन से अध्यापको तथा विद्यार्थियो को बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है। वे अपनी प्रिय संस्था से अवकाश ग्रहण कर रहे हैं, परन्तु उनका मार्गदर्शन शिक्षा-जगत् को सदैव ही मिलता रहेगा, यह सुनिश्चित है।

श्रद्धांजलि

श्री सत्येन्द्र मिश्र एम० ए० एल्-एल० बी०

[श्री सत्येंद्र मिश्र एम० ए० एल्-एल० बी० इस कालेज के ख्यातनामा पूर्व छात्र हैं। आप मध्यप्रात सरकार के गृहमत्री पडित द्वारकाप्रसाद मिश्र के छोटे भाई हैं। इन पक्तियो में सत्येंद्रजी ने अपने कवि-हृदय का परिचय दिया है। खन्नाजी के प्रति यह इनकी श्रद्धाजलि सरल-सुबोध और मौलिक है।]

पूज्यवर,

(१)

मिला मुझे सदेश,
कि शुभ आयोजन एक महान्,
रहे कर कानपूर के लोग,
श्रमिक, शिक्षित, श्रीपति, गुणवान।

(२)

निरन्तर जो रहते हैं मग्न,
अविद्या का करने मे नाश,
प्रिंसिपल वे श्री हीरालाल,
कार्य से लेते हैं अवकाश।

(३)

उन्हे, जिनके केवल दो बोल—
व्यक्त करते हैं अर्थ निगूढ,
उन्हे, जिनकी शिक्षा से शिष्य,
गये हो बडे, बडे जो मूढ।

(४)

उन्हे, जिनके हृद्तल पर मूर्त,
हुआ है स्वय सहज औदार्य,
उन्हे, जिनके मस्तक पर स्पष्ट,
लिखा है नियति-खचित "आचार्य"।

(५)

उन्हे, जिनका पावन सानिध्य,
सदा करता है स्फूर्ति प्रदान,
उन्हे, जिनके साहस को देख,
भीरु भी बनते हैं प्राणवान।

बाल्यावस्था से ही खन्नाजी उदार-चरित है। दूसरो की सेवा करना वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। इन्होने अपना विवाह २६ वर्ष की अवस्था मे जिस समय वे सी० ए० वी० हाईस्कूल इलाहाबाद में थे, बहुत कहने सुनने से किया था। विवाह के अनन्तर ५ वर्ष भी नही बीते थे कि इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। यद्यपि इनकी अवस्था उस समय ३१ वर्ष की थी, इन्होने दूसरा विवाह नही किया और तभी से कठोर सयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

विद्याध्ययन काल में इनके विवाह के कई प्रस्ताव उच्च और धनिक कुलो से आये। इनको कई प्रकार के प्रलोभन दिये गये। किन्तु यह बाल विवाह के विरोधी हैं। । इन्होंने उन प्रस्तावो को स्वीकार नही किया। इनका यह विचार सर्वदा रहा है कि विद्याध्ययन करने के बाद जब विद्यार्थी कुछ धनार्जन करने लगे उस समय उसका विवाह होना चाहिए। किसी दूसरे का आश्रय लेना सर्वथा अनुचित और निन्द्य है।

महाराज कृष्णप्रसाद ने, जो उस समय हैदराबाद राज्य के प्रधान मत्री थे, अपने प्राइवेट-सेक्रेटरी को म्योर कालेज में इनको देखने के लिए इलाहाबाद भेजा था। सेक्रेटरी महाशय इनको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि 'महाराज अपनी कन्या के साथ आपका विवाह करना चाहते हैं।' उन्होने बहुत प्रलोभन दिया कि आपको प्रचुर धन राशि मिलेगी। उस समय खन्नाजी बी० एस्-सी० के द्वितीय वर्ष में पढ रहे थे और आयु भी २१ वर्ष की हो चुकी थी। इन्होंने उत्तर दिया कि 'महाराज को आप मेरी ओर से अनेक धन्यवाद दें और यह भी कह दे कि मैं अभी पढ रहा हूँ। मैं किसी दूसरे पर आश्रित नही होना चाहता।' यह कहकर इन्होने विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार नही किया और सेक्रेटरी महाशय निराश होकर लौट गये।

खन्नाजी की बी० एन० एस० डी० कालेज में प्रिन्सिपल पद पर नियुक्त के अनन्तर जिस प्रकार इस विद्यालय की उत्तरोत्तर उन्नति हुई यह सबको भली भाँति विदित है। इनका कार्यक्षेत्र केवल इस विद्यालय ही तक सीमित न था। आगरा, इलाहाबाद, बनारस के विश्वविद्यालयो तथा उत्तर प्रदेश के हाईस्कूल और इण्टरमीडियेट बोर्ड के प्रति इनकी सेवाएँ सर्वविदित और स्तुत्य हैं। अत इनका विस्तार से वर्णन करना अनावश्यक है। आप हिन्दी के अनन्य प्रेमी हैं और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के कार्य मे आपने बहुत कुछ भाग लिया है।

गीता के १६वें अध्याय में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि 'मनुष्य दो प्रकार के होते है — (१) जिनका जन्म दैवी सम्पत्ति में हुआ है (२) जिनका जन्म आसुरी सम्पत्ति में हुआ है। निर्भयता, इन्द्रियदमन, अहिंसा, सत्य त्याग, दया, अमानत्व इत्यादि जो दैवी सम्पत्ति के लक्षण हैं वे खन्ना जी में अधिकता से पाये जाते हैं। ये जन्म से ही निर्भय रहे हैं। एक बार इनका किसी विषय पर मेकेन्जी साहब से, जो उस समय यू० पी० शिक्षा विभाग के सर्वोच्च अधिकारी थे, विवाद हो गया। दोनो उत्तेजित हो गये। बहुत कुछ कहा-सुनी हुई। खन्नाजी किसी प्रकार नही दबे। यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि वही मेकेन्जी साहब कुछ दिन बाद इनके कालेज का निरीक्षण करने आये और उन्होंने खन्नाजी के कार्य की बहुत प्रशसा की। यह एक अँगरेज की विशाल हृदयता का उदाहरण है।

खन्नाजी के सच्चरित्र और नि स्वार्थ जीवन से अध्यापको तथा विद्यार्थियो को बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है। वे अपनी प्रिय सस्था से अवकाश ग्रहण कर रहे हैं, परन्तु उनका मार्गदर्शन शिक्षा-जगत् को सदैव ही मिलता रहेगा, यह सुनिश्चित है।

(१२)

आप ही की थी तो वह देन,
सबल का लखकर अत्याचार,
कि मुझमें जाग उठा विद्रोह,
गया लड उसे त्वरित ललकार।

(१३)

तीव्र-गति बढते मेरी ओर,
राह में आये जब तूफान,
रहा जो चलता उन्नत शीश,
आप ही का था वह वरदान।

(१४)

व्यथ है पर यह सब बकवास,
व्यर्थ मेरा विस्तार - प्रयास,
पाप के सिवा अगर कुछ पुण्य,
आपसे आया मेरे पास।

(१५)

आपसे शोभित हैं पुरुषाथ,
आपसे फलित कम निष्काम,
ज्ञान - वारिधि मेरे गुरुदेव,
पुन करता हूँ विनत प्रणाम।

सहृदय आदर्शवादी खन्नाजी

श्री सन्तप्रसाद टंडन, एम० एस्-सी०, डी० फिल०

["खन्नाजी आदर्श के उपासक हैं और वे सदा प्रयत्नशील रहते हैं कि निर्धारित आदर्शों के अनुसार वह अपना जीवन बिता सकें"—श्री सन्तप्रसादजी टडन के इन शब्दों में खन्नाजी के कर्मठ जीवन का समस्त उज्ज्वल प्रयत्न झलक उठा है। श्री सन्तप्रसादजी को अपने पूज्य पिता राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन और खन्नाजी के निकट परिचय व भ्रातृत्व भाव के कारण खन्नाजी के यथेष्ट निकट आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रस्तुत लेख में आपने बताया है कि टडन-परिवार और खन्नाजी का परिचय किस प्रकार एक विस्मयजनक घटना के साथ आरम्भ हुआ और कैसे वह दिनोदिन बढता ही गया।]

महीना नवम्बर का था और साल १९२५ ई० का। मैं अपने बडे भाई के साथ लाहौर से कानपुर खन्नाजी के पास अपनी हाई स्कूल की परीक्षा की पढाई के लिए पहुँचा। खन्नाजी ने मुझे देखते ही कहा, "परीक्षा के बहुत कम दिन रह गये हैं। तुम्हारी पढाई परीक्षा में उत्तीर्ण होने के योग्य हो सके इसमें कठिनाई तो बहुत है किन्तु फिर भी तुम आ गए हो तो प्रबन्ध तो करना ही पडेगा।" खन्नाजी की बात से मेरी निराशा थोडी और बढ गई क्योंकि मेरे हृदय मे तो बहुत पहले से ही अपनी योग्यता के प्रति यह धारणा थी कि मै उस वर्ष की हाई स्कूल परीक्षा मे उत्तीर्ण होने योग्य नही हो सकूँगा। मैंने खन्नाजी से केवल इतना ही कहा "आप, बाबूजी से (बाबू पुरुपोत्तमदासजी टडन) कह दें कि वह इस अगली परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए मुझसे आग्रह न करें। मैं इस परीक्षा के बाद की दूसरे वर्ष की परीक्षा में ही सम्मिलित होना चाहता हूँ जिसमे मुझे तैयारी करने का पूरा समय मिल जाय।" खन्नाजी ने कहा, 'देखा जायगा। तुम अब मेरे यहाँ रहो और पढाई करो।" खन्नाजी ने मुझे एक अलग कमरा दिया और अब मैं उन्ही के घर पर रहने लगा।

यद्यपि खन्नाजी से मेरे घर का सम्पर्क बहुत पहले हो चुका था फिर भी उनके पास रहकर उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मुझे कभी नही मिला था। खन्नाजी का हमारे परिवार से प्रथम परिचय होने की भी एक कहानी है। उन दिनो खन्नाजी इलाहाबाद के म्योर सेंट्रल कालेज में अपनी एम० एस्-सी० की पढाई कर रहे थे। अपनी पढाई के साथ ही वह स्थानीय सिटी ऐंग्लो-वर्नाक्युलर हाईस्कूल में प्रतिदिन थोडे समय के लिए अध्यापन का कार्य भी करते थे। मेरे सबसे बडे भाई उसी स्कूल मे आठवी कक्षा के विद्यार्थी थे। खन्नाजी इस कक्षा को पढाते थे। उन्ही दिनो मेरे बडे भाई मोतीझला ज्वर से ग्रस्त हो गए। एक दिन उनकी दशा कुछ अधिक खराब हो गई और वह अर्धचेतनावस्था में 'मास्टर साहब, मास्टर साहब' बकने लगे। 'मास्टर साहब को बुला दो' की रट वह चेतनावस्था में भी प्राय लगाते थे। पहले तो घर के लोगो ने इस पर ध्यान नही दिया किन्तु भाई की दशा बिगडती देखकर घर के लोगो को चिन्ता हुई और उन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया कि वह कौन मास्टर साहब हैं जिन्हे मेरे भाई ज्वर की दशा में स्मरण किया करते हैं। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वह मास्टर साहब और कोई नहीं, खन्नाजी ही थे। खन्नाजी को जब मेरे भाई की अस्वस्थता का समाचार बतलाया गया तो वह हमारे घर पर आए। खन्नाजी को देखकर मेरे भाई को बडी प्रसन्नता हुई और सन्तोष हुआ। यही खन्नाजी का हमारे घर में प्रथम आगमन था और इसी दिन सम्भवत पिताजी से भी उनका प्रथम परिचय हुआ था। मैं तो उस समय बहुत छोटा था—सम्भवत ६ या ७ वर्ष का—किन्तु यह घटना आज भी मुझे स्मरण है। इस दिन से खन्नाजी का सम्पर्क मेरे पिताजी से तथा घर के अन्य लोगो से बराबर बढता गया।

ऊपर की घटना से खन्नाजी के सरल और स्नेहमय स्वभाव का परिचय मिलता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि खन्नाजी अपने विद्यार्थियो को कितने प्यार से पढाते थे और उनसे कितना हिल मिल जाते थे। यही कारण रहा है जिससे खन्नाजी के समस्त नए व पुराने छात्र उनसे इतना स्नेह करते रहे है। खन्नाजी में इतना स्नेह और इतनी आत्मीयता है और उनके व्यक्तित्व मे इतना आकर्षण है कि छोटे व बडे सभी एक बार भी उनके सम्पर्क में आ जाने पर सदा के लिए उनसे स्नेह करने लगते है।

अपनी हाईस्कूल की पढाई के सम्बन्ध में मै खन्नाजी के यहाँ लगभग ३ मास रहा और वास्तव मे इन्ही दिनो में उनके घनिष्ट सम्पर्क मे आया और उनके व्यक्तित्व का अध्ययन कर सका।

खन्नाजी आदर्श के उपासक है। वे सदा प्रयत्नशील रहते है कि निर्धारित आदर्शों के अनुसार वह अपना जीवन बिता सके। अपने विद्यार्थी जीवन मे खन्नाजी महामना स्वर्गीय पडित मदनमोहनजी मालवीय के सम्पर्क मे आए थे। मालवीयजी के व्यक्तित्व की छाप खन्नाजी के जीवन में स्पष्ट दिखलाई देती है। खन्नाजी ने मालवीय जी के आदर्शों पर अपने चरित्र को ढालने का प्रयत्न किया है। वह सादगी से सदा रहे और रहते है और इसी सादगी और सयम की शिक्षा उन्होने अपने एकमात्र पुत्र श्री नन्दलाल को भी बाल्यावस्था से ही देने की चेष्टा की। जब मै उनके घर पर रहता था तब नन्दलाल लगभग ६ साल के रहे होगे। मुझे स्मरण है, खन्नाजी नन्दलाल को मिठाई नही खाने देते थे। उन्होने सप्ताह मे एक दिन निश्चित कर रक्खा था और केवल उसी दिन ही नन्दलाल को थोडी मिठाई खाने को दी जाती थी खन्नाजी को जीवन सादा रखने की उन दिनो इतनी धुन थी कि वह स्वय सस्ती होने के कारण मूँगफली बहुत खाया करते थे।

खन्नाजी मे आदर्शवादिता के साथ-साथ व्यावहारिकता भी पूरी मात्रा में है। अपने ऊपर कम से कम खर्च करने का नियम पालन करने के साथ साथ उन्होंने कभी यह नही किया कि धन अर्जन ही न किया जाय। अच्छे मार्ग से रुपए प्राप्त करना उन्होने कभी बुरा नही समझा। उनका दृष्टिकोण सदा यह रहा है कि धन उपार्जन तो करना चाहिए किन्तु धन का अपव्यय न कर इसका सदुपयोग करना चाहिए। जिन दिनो मैं खन्नाजी के साथ रहता था अनेक विद्यार्थियो को वह अपने पास से आर्थिक सहायता देते थे। जहाँ तक मुझे ज्ञात है उनका यह क्रम बराबर चलता रहा है और अब भी है। धन उपार्जन करने में खन्नाजी ने मार्ग की शुद्धता का सदा कितना ध्यान रक्खा है, यह निम्न छोटी सी घटना से ज्ञात होता है। एक बार बातो के सिलसिले मे मै खन्नाजी से पूछ बैठा, "खन्नाजी आप हाईस्कूल और इटरमीडिएट बोर्ड मे इतने वर्षों तक प्रभावशाली सदस्य रहे किन्तु आपने एक भी पुस्तक कभी लिखकर बोर्ड में स्वीकृत नही करवाई।" खन्नाजी ने बतलाया कि जब वह बोर्ड मे पहली बार सदस्य हुए तो उसके कुछ ही दिन बाद उन्होने एक पुस्तक लिखकर देने के लिए एक प्रकाशक से कह दिया। उन्ही दिनो बोर्ड के एक अँगरेज सदस्य ने बोर्ड की एक कमेटी से यह कहकर त्यागपत्र दिया कि वह भूगोल की एक पुस्तक हाईस्कूल कक्षा के लिए लिख रहा था और वह यह नही चाहता था कि उसके सदस्य रहने के कारण पुस्तक स्वीकृत होने में परोक्ष या अपरोक्ष रीति मे कोई अनुचित प्रभाव पडे। खन्नाजी ने कहा कि उस अँगरेज की सच्चाई व चरित्र का ऊँचापन देखकर उन पर बडा प्रभाव पडा और उसी समय उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि जब तक वह बोर्ड के सदस्य रहेंगे एक भी पुस्तक बोर्ड के पाठ्यक्रम के लिए नही लिखेंगे। खन्नाजी के समय में कितने ही व्यक्तियो ने बोर्ड के लिए पुस्तकें लिखकर अच्छा धन उपार्जन किया। यदि खन्नाजी भी चाहते तो पर्याप्त धन

इस मार्ग से प्राप्त कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। खन्नाजी ऐसे व्यक्तियों की सख्या, जो अपने आदर्शों के लिए इस प्रकार धन का त्याग करते हैं, कितनी है ?

आदर्शवादी होने के साथ-साथ खन्नाजी बडे सहृदय हैं। सिद्धान्तो के ऊपर उनके अडिग रहने से प्राय लोग उन्हें कठोर हृदय और शुष्क समझ बैठते हैं किन्तु वास्तव में उनका हृदय बडा सरल और कोमल है। किसी भी प्राणी को कष्ट में देखकर उनका हृदय तुरन्त द्रवित हो जाता है और वह उसकी सहायता किए बिना नहीं रह सकते।

खन्नाजी में एक बडा गुण यह है कि वह अपने विद्यार्थियो में आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न कर उन्हें स्वय अपने को ऊँचा उठाने में सहायक होते हैं। कितने ही विद्यार्थियो को उन्होंने अपने इसी गुण द्वारा बहुत साधारण स्थिति से ऊपर उठा दिया। छात्रजीवन में यूनीवर्सिटी की विभिन्न परीक्षाओ में मेरी अच्छी सफलता का भी एक प्रकार से सारा श्रेय खन्नाजी को ही है। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ हाईस्कूल की पढाई के लिए जब मैं उनके यहाँ पहुँचा था मेरे हृदय में आत्मविश्वास की कमी थी और अपनी योग्यता व शक्ति के प्रति एक हीन धारणा थी। तीन महीने बाद जब मैं उनके यहाँ से लाहौर परीक्षा देने के लिए चला तब मेरी भावनाओ में बडा परिवर्तन हो चुका था। मुझमें आत्मविश्वास पर्याप्त मात्रा में आ चुका था और साथ ही मुझे यह भरोसा हो गया था कि मुझमे भी शक्ति है और मैं भी परीक्षाओ मे अच्छी सफलता प्राप्त कर सकता हूँ। इन तीन महीनो के काल में खन्नाजी मुझे अपने उत्साहवर्धक वाक्यों से बराबर बढावा देते रहते थे। उन्होंने इस बीच मे मुझे स्वय अँगरेजी भाषा व गणित पढाई। मेरे साधारण से उत्तरो की भी वह बडी प्रशसा कर मेरे हृदय में यह भाव बैठाने का प्रयत्न करते थे कि मैं एक अच्छा विद्यार्थी हूँ। खन्नाजी के इन प्रशसासूचक वाक्यो से धीरे धीरे मेरे हृदय में आत्मविश्वास की भावना दृढ होती गई। परिणामस्वरूप हाईस्कूल परीक्षा में तो मैं अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ ही, किन्तु आगे की परीक्षाओ में भी इसी आत्म-विश्वास के कारण मुझे सदा अच्छी सफलता मिलती रही। खन्नाजी ने मनोविज्ञान के सिद्धान्तो का कुछ अध्ययन किया है या नहीं यह तो मैं नहीं जानता किन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि विद्यार्थियो को शिक्षा देने में खन्नाजी की अपनी प्रणाली जितनी मनोवैज्ञानिक है उतनी सम्भवत मनोविज्ञान के बडे बडे पडितो की भी नहीं होगी।

खन्नाजी का एक बडा गुण उनकी सलग्नशीलता तथा उनका परिश्रमी स्वभाव है। मैंने उन्हें कभी अपना समय व्यर्थ व्यतीत करते नहीं देखा। अपने प्रत्येक क्षण का वह सदुपयोग करते हैं। परिश्रम के साथ-साथ खन्नाजी में ऊँची कोटि की योग्यता, कार्यकुशलता व सगठन शक्ति है। अपनी बातो का दूसरे को वह इस भली रीति से समझाते हैं कि वह व्यक्ति तुरन्त प्रभावित हो जाता है। खन्नाजी की कार्यकुशलता व सगठन शक्ति की परीक्षा करनी हो तो कोई भी अव्यवस्थित सस्था या कार्य उनके सुपुर्द कर दीजिए। यह निश्चित समझिए कि वह सस्था या कार्य शीघ्र ही सुव्यवस्थित हो जायगा। कार्यों व सस्थाओ को सुसगठित तथा सगठित रूप देने की इतनी अच्छी कुशलता मैंने बहुत कम लोगों में देखी है। खन्नाजी की इसी शक्ति का यह परिणाम है कि कानपुर का विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज थोडे ही वर्षो में प्रान्त के कुछ प्रमुख कालेजो में गिना जाने लगा। अपनी इस कार्यकुशलता का लाभ खन्नाजी ने कई सस्थाओं को दिया है। मेरी तो यह दृढ धारणा है कि वर्तमान स्वतन्त्र भारत में खन्नाजी से हमें जितना लाभ उठाना चाहिए था उतना हम नहीं उठा रहे हैं। प्रान्त की शिक्षा को सगठित रूप से आगे बढाने में यदि खन्नाजी का सहयोग हमारी कांग्रेस सरकार प्राप्त कर ले तो मुझे किंचित् सन्देह नहीं कि बडा लाभ हो।

श्री हीरालालजी खन्ना के साथ मेरे तीन वर्ष

ठाकुर केशवचन्द्रसिंह

[इस लेख के लेखक ठाकुर केशवचद्रसिंह चौधरी एम० एस्-सी० एल् एल० बी० बाँदा के ख्यातनामा एडवोकेट हैं। श्री हीरालाल खन्ना के इने गिने मित्रो में आपका स्थान है। आपके परिवार का खन्नाजी से घनिष्ठ सबध है। चौधरी कुटुब के सभी बालको ने बी० एन० एम० डी० कालेज मे ही शिक्षा पाई है। आपके इस लेख मे खन्नाजी के प्रति आपके भावो और विचारो का परिचय मिलता है। खन्नाजी की वेश भूषा, उनका साफा, उनकी धोती, उनका चश्मा, उनका स्वावलम्बी सादा विद्यार्थी जीवन, उनका स्वास्थ्य, उनका सनातनधर्म, उनका समाचार-पत्रो और पुस्तको का ज्ञान—इत्यादि इत्यादि सभी बातो की चर्चा इस लेख मे मिलेगी।]

जुलाई सन् १९०९ ई० की बात है। क्राइस्ट चर्च कालेज कानपुर से इन्टर की परीक्षा उत्तीर्ण कर मैंने म्योर सेंट्रल कालेज में बी० एस्-सी० के प्रथम वर्ष में प्रवेश पाया। कानपुर के मित्रो की कृपा से मैं 'हिन्दू छात्रावास' में स्थान पा सका। उस समय यह विद्यालय अनेक दृष्टियो मे विशेषत विज्ञान-विषयक अध्ययन के लिए उत्तरी भारत के सभी महाविद्यालयो में श्रेष्ठ समझा जाता था। मुझे सम्यक् स्मरण है कि मैं 'हिन्दू छात्रावास' के प्रथम ब्लाक के चौथे कमरे में रहता था और श्री हीरालालजी खन्ना चतुर्थ ब्लाक के उन कमरे में रहते थे जो सौभाग्य से मेरे कमरे के ऊपर था। मुझे यह स्वीकार करने में सकोच नही कि प्रथम ब्लाक के अन्य विद्यार्थियो की भाँति मैं अधिक सामाजिक न था और मैत्री करने के विषय में सदा अनुत्साहित सा था। परिणाम यह हुआ कि मैं अपने पास के कमरो के विद्यार्थियो से माह में एक या दो बार से अधिक बातचीत न करता था। मुझे भली प्रकार स्मरण है कि मेरे कमरे की एक खिडकी पीछेवाले कमरे में खुलती थी। यह खिडकी मेरे ही कमरे से खुल या बन्द हो सकती थी अतएव यह सदैव बन्द ही रहती और मुझे इस समय यह भी स्मरण नही कि उसमें कौन रहता था। परन्तु श्री खन्नाजी के साथ कुछ और ही बात थी। खन्नाजी के व्यक्तित्व में एक अपूर्व आकर्षण था जिससे सभी प्रभावित थे। उनका सद्व्यवहार गम्भीर प्रकृति, तदनुकूल इतर छात्रो के प्रति सौम्य व्यवहार और मधुर भाषण सभी गुण मिलकर उनके व्यक्तित्व में एक महान् आकर्षण उत्पन्न कर देते थे और यही कारण है कि हिन्दू छात्रावास में कदाचित् ही कोई विद्यार्थी इनके प्रभाव से बचा हो। मैं उनका सहपाठी था, कक्षा में ४० या ५० छात्र थे, अतएव कालेज में पढाई के समय हम लोग एक दूसरे के सम्पर्क में

कम आते थे। परन्तु हम लोग एक ही मेस के सदस्य थे और खन्नाजी से मेरा ससर्ग इसी सम्बन्ध से हुआ। प्रथम ब्लाक में रहते हुए भी मेरा अधिक समय चतुर्थ ब्लाक में ही व्यतीत होता था। द्वितीय वर्ष जुलाई सन् १९१० में मैं खन्नाजी के ही ब्लाक में आ गया और अब वह मेरे अधिकतर समीप थे। सन् १९११ में बी० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण कर मैं आगामी अध्ययन करने के लिए आगरा चला गया। १९१३ ई० मे पुन एम० सी० कालेज में भर्ती हुआ और खन्नाजी के साथ एक वर्ष रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

खन्नाजी की उस समय की वेश भूषा उनकी अपनी ही थी। वे सदैव धोती साफा और बन्द गले का कोट पहनते थे। कभी भी इसके विपरीत टोपी, पाजामा अथवा आधुनिक खुला कोट पहन न दिखलाई पडे। उनके वस्त्रों की यह एकरूपता ही बहुत से विद्यार्थियों के कौतूहल एव विस्मय का कारण बनी हुई थी। वस्त्रों के सरक्षण की विशेषता यह थी कि वे सुचारु रूप से सप्ताह पर्यन्त प्रयुक्त होते और पुन स्वच्छता के लिए धोबी को दे दिये जाते। साफा बाँधने की कला भी अनोखी थी, उनका एक बार का बँधा हुआ साफा एक सप्ताह तक काम देता था। खन्नाजी अपने विद्यार्थी जीवन से ही मायोपिया के रोगी थे, इसलिए वे अध्ययन के अतिरिक्त सदैव चश्मा धारण किये रहते थे। चश्मे के लिए वह कभी केस न रखते थे परन्तु सोते समय साफे मे रख लिया करते थे। मुझे भली प्रकार स्मरण है कि एक बार मैंने उनसे पूछा था, "खन्नाजी! बिना केस का आपका यह चश्मा टूट क्यों नहीं जाता?" अतीत के वे चलचित्र आज भी कितने मधुर हैं।

अपने विद्यार्थी जीवन में खन्नाजी एक स्वावलम्बी छात्र थे जो अपना जीवनयापन एव अध्ययन क्रम का प्रबन्ध स्वय करते थे, और उनका आर्थिक साधन विद्यार्थियों को ट्यूशन पढाना था। वे सदैव एक या दो ट्यूशन करते थे। सार्वजनिक कार्यों में वे सदैव भाग लेते थे और समय की पाबन्दी का ध्यान रखते थे। साइकिल और घडी उनकी आवश्यक वस्तुएँ थी जिन्हे वे सदैव अपने पास रखते थे। ट्यूशनों के लिए इन वस्तुओं का होना उनके लिए परमावश्यकीय था। कालेज एव छात्रालय के खेलो में वे स्वय कोई सक्रिय भाग न लेते थे, कारण यह नही कि उन्हे खेलो से रुचि न थी, वरन् ट्यूशनो के कारण उन्हे स्वयं खेलने का समय न मिलता था। जब कभी कही मैच होता था तो खन्नाजी अपने विद्यार्थियो को उत्साहित करते थे।

खन्नाजी बडे ही सुकुमार एव कोमल थे, परन्तु नियमित जीवनचर्या के कारण वे कभी अस्वस्थ न होते थे। वे प्राय कहा करते थे कि अस्वस्थ केवल वही होते हैं जिनके पास अस्वस्थ होने के लिए समय है। छात्र-जीवन में उनकी विशेष अभिरुचि के अन्तर्गत कलाई व्यायाम था। कदाचित् इसका उन्होंने बाल्यावस्था से ही अभ्यास कर लिया था, क्योंकि कोई भी विद्यार्थी कलाई लडाने में उनसे जीत न सका। मैंने भी स्वय कई बार उनसे कलाई लड़ाई पर सदैव हार खानी पडी।

मैं प्रथम वर्ष जितना ही सकोची था द्वितीय वर्ष उतना ही वाचाल हो गया था। प्रतिदिन छात्रालय में किसी न किसी विषय पर शास्त्रार्थ होता था। खन्नाजी स्वय इन विवादो में भाग लेते थे। विषय साधारणत धार्मिक, राजनीतिक एव सामाजिक होते थे। खन्नाजी इन वाद विवादो में तभी तक रुचि रखते थे जब तक कि वे सघर्ष के कारण न बनें। जहाँ वे सघर्ष उत्पन्न होते देखते थे, वही दोनो पक्षो की विजय स्वीकार कर शान्त वातावरण उपस्थित कर देते थे। हमारे साथ आर्यसमाजी सनातनधर्मी, आस्तिक, नास्तिक आदि विभिन्न विचारो के विद्यार्थी थे। परन्तु खन्नाजी सदैव सनातनधर्म का पक्ष लेते थे। निर्धन वर्ग के

प्रति उन्हे अगाध स्नेह था। यह उनका एक प्रकार का देश-प्रेम था जो उनको इस प्रकार की सामाजिक सेवाओं के लिए प्ररित कर रहा था।

सन् १९०९ से सन् १९१४ का समय भारत के इतिहास का वह युग है जिसमें ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति जोरो पर चल रही थी। विद्यार्थियो पर बडी निगाह रखी जाती थी जिससे कि वे किसी भी राजनीतिक काम में भाग न ले सक। परन्तु इन सब प्रतिबन्धों के होते हुए भी विद्यार्थी राजनीतिक कार्यों मे खूब भाग लेते थ। उस समय सभाएँ होती थी जिनमें कि अँगरेजो की दमननीति की कडी आलोचना अफ्रीका के भारतीया के साथ अँगरेजों के दुर्व्यवहार के प्रति असतोष प्रकट किया जाता था। खन्नाजी स्वय भाग लते थे और अन्य लोगों को इस कार्य में सहयोग देने के लिए उत्साहित करते थ। हिन्दी के प्रति उन्ह अगाध प्रेम था और उसका प्रचार वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन एव नागरी प्रचारणी सभा के वे सदस्य थे। मैं तो उन्ही के अनुरोध से इन सस्थाआ का सदस्य हुआ था। खन्नाजी में राष्ट्रीयता कूट-कूटकर भरी है। एक बार यह जानकर कि अँगरेज सरकार की वक्र-नीति आर्य-समाज पर है, आप कुछ दिनो के लिए आर्य समाज के सदस्य हो गए और यही कारण प्रस्तुत कर अपने अन्य मित्रा से भी आर्य-समाज के सदस्य होन के लिए अनुरोध किया।

खन्नाजी को समाचार-पत्रो एव पुस्तको का विशेष चाव था। अपनी इसी अभिरुचि के कारण वे अन्य विद्यार्थियो को भी अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करते थे। लाला हरदयाल का 'हिन्दू जाति की सामाजिक विजय' विषयक लेख एव वीर सावरकर की प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत के लिए स्वतत्रता का सग्राम" मुझे उन्ही ने पढने को दी थी।

छात्रावास म भोजन की व्यवस्था मे खन्नाजी न अनक सुधार किये थ। प्रत्येक छात्र को कम से कम एक माह के लिए प्रबन्धक होना अनिवार्य था। प्रत्येक विद्यार्थी महराज को बारी बारी से बतला देता था कि भोजनालय म कौन सी सब्जी बनगी। छात्रालय का यह भी नियम था कि किसी भी छात्र का अतिथि तीन दिन के लिए सबका अतिथि समझा जाता था। उपरोक्त सभी बातें खन्नाजी की प्रेरणा के ही परिणामस्वरूप हो सकी।

आज भी जब कभी मैं अपन अतीत के चलचित्रो पर दृष्टिपात करता हूँ तो मुझ 'हिन्दू छात्रावास' के वे दिन सबस अधिक सुखमय दृष्टिगोचर होते है। वास्तव म कितने सुखमय थे वे दिन।

वैदिककाले नारी-शिक्षा

विश्वनाथो गौड़ः एम० ए०, शास्त्री-साहित्य-रत्नश्च
अध्यापकः—स० ध० कालेज, कानपुर

[लेखक का परिचय अन्यत्र दिया गया है। विषय से लेखक की विद्वता का अच्छा परिचय मिलता है।] –

सुविदितमस्ति विविधशास्त्रानुशीलनशीलानां पुण्यश्लोकानां विद्वज्जनानां यन्मनुष्यपश्वोरन्तरं प्रतिपादयता भगवता शास्त्रकारेणोक्तं—

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

सदसद्व्यक्तिहेतोर्बुद्धेर्विवेकाच्चोभयोश्च परिष्कारकारिण्या भगवत्या विद्यायाश्च कृते नाणुमात्रमपि विशेषो नराणां पशुसृष्टेः। एतानेव गुणानुपलक्ष्य चतुरशीतिलक्षयोनीनां नृयानिर्वरतमाऽभिहिता। नृसमाजेऽपि व्यक्तिहेतूनां नारीणां पदं शीर्षन्यस्थानं भजत इति पुनरपि स्फुटीभवति, यथा हि—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' तत्त्वमिदमनुलक्ष्य न प्राचीनतमैरार्यैर्वन्दनीयचरणयुगलैः पूर्वपुरुषैरात्मनो नारीधनं सुरक्षितं, सुपाठितं सुशिक्षितमिति ज्ञायते खलु तद्रचितेषु नानाग्रन्थेषु विश्वस्यादिमलिखितसाहित्यग्रन्थत्वेन पाश्चात्यैरप्युररीकृते भगवदृग्वेदे चोपलब्धेभ्यः सर्वेभ्यः। वैदिककालिकानामार्याणां देव्य ऐहिकामुष्मिकविद्याकलाशिक्षणविचक्षणा आसन्। काभिश्चिद्देवीभिस्तु नितरां पुरुषापेक्षया सुव्यतिरेककोटिं सम्प्राप्ता। ईदृशीषु रमणीमणिषु भगवतीनां लोपामुद्रा शची-पुलोमजावागाम्भृणी-अनसूयाश्रद्धाकामायनीनां प्रातःस्मरणनिहतकलिमलानां धुरिकीर्तनं वर्तते।

वेदानां पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वविवेचनचतुरैर्मनीषिभिर्विगलितविवादमुररीकृतं यद् भगवान् वेदो मन्त्ररूपेण परमोच्चतपोधनानां महर्षीणां नयनगोचरतामाजगाम। त एव सुगृहीतनामधेया महर्षयो मन्त्रद्रष्टारः सन्ति। तेषां मन्त्रदृष्टॄणां मध्यात् आत्माविष्करणलालसमानसो भगवान् वेदश्चक्षुर्गोचरतारूपप्रसादं सम्पादयन्नात्मदर्शकत्वेन पातिव्रतादिसाधनप्रसाधितात्मवती काश्चिन्नारी स्वीकुर्वन् ताभ्य एवाविर्बभूव। वागाम्भृणीनाम्नी काचिद्देवी वेदरूपेण भगवता परब्रह्मणा तादात्म्यं गता ईदृशान् मन्त्रान् दशममण्डले आविष्कृतवती, य इदानीन्तनकाव्यात्मकल्पस्य बहुचर्चितचर्चाकस्य रहस्यवादस्य परमोत्कृष्टं प्राचीनतमञ्च निदर्शनं यथा—

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवे उँ।

× × × ×

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।

× × × ×

अहं द्यां वा पृथिवीमाविवेश × × यं यं कामये तं तमुग्रं करोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं सुमेधाम्॥

भगवतो मन्त्रदृष्टुः कक्षीवतः सहचरी पत्नी भगवती घोषाऽपि वैदिकसंहितासु सुप्रथितनामधेयाऽस्ति। तया खलु पत्युर्वामपार्श्वेऽव्यभिचारेण वर्तिन्या देवस्तुतौ सूक्तानि समुक्तानि। अतिकारुणिकतया व्यथाभिन्नजनकृपाप्लावितहृदयान्तरालया तया समार्तानुकम्पाहेतवे भगवन्तं स्वेष्टदेवमभिस्तुवन्त्या मातृप्रवृत्तिः प्रख्यापिता। भगवत्या परमप्रसिद्धया लोपामुद्रया देवी रतिः कतिपयैः ऋक्स्तोत्रैः सम्मानिता। अपला-विश्ववरा-सूर्यादयश्चापि नारीसहननोपेता अपरे मन्त्रद्रष्टारोऽभवन् यैर्विविधदेवस्तुतावृचः प्रकटीकृता। इन्द्राणी तु अपरा वाचिच्छक्तिमती ऋषिः। एकस्यामृचि सा, ईर्ष्याक्षपायितसपत्नीविजयाय। ओषधिं खनित्रीं दृश्यते। दशममण्डले भगवत्या श्रद्धाकामायिन्या प्रवर्तितं सूक्तमुपलभ्यते। अस्यामृचि च सैव तन्मन्त्रदेवतात्वेनापि वर्तते। इत्येभिरन्यैश्च सर्वैः सुस्पष्टं स्फुटीभवति यदस्माकं प्राचीनामार्याणां नार्य ऐहिकामुष्मिकविद्यासु पदं विन्यस्य शनैः शनैरध्यवसायसहाया उन्नतेः परां काष्ठामविन्दन्।

न केवलं नारीभिरपरिनिर्दिष्टपथोनाध्यात्मिकविषयेष्वेव स्वप्रतिभा-चमत्कारः प्रदर्शितः, अपि तु ऐहिकास्वपि कलासु विद्यासु चापि दरीदृश्यते तासां वैचक्षण्यम्। संगीतकला तु आर्याणामत्यन्तं प्रियतमा कलाऽऽसीदिति गीतिप्रधानस्य भगवतः सामवेदस्य स्थित्या स्फुटं ज्ञायते। सोमाभिषवपर्वणि, यज्ञमहोत्सवे च साम्नां गानस्य विधानं कृतं भगवद्भिः कर्मकाण्डविशारदैर्महर्षिभिः। कतिपयेषु मन्त्रेषु स्त्रीगायकानां संकेतेभ्यः सलक्ष्यते यत्सौन्दर्यरामणीयकोत्कर्षसाधनस्य संगीतस्य स्त्रीषु यथेष्टं प्रचारमासीत्। अपि च सौंदर्यलालित्यविधायकानां कलानां चतुःषष्ठिधा सविभागरचना न बहुप्राचीनेति न। तासामपि कलानामवस्थितिर्विशेषतया नारीष्वेव विहिता। गायनवादननर्तनादित्रिविधस्य संगीतस्य परमोत्कर्षश्च संभवति मेनकारम्भोर्वश्याद्यप्सरःसु।

वैदिककालसंजाताभिर्नारीभिर्न केवलमात्मनः कोमलप्रकृतेरनुरूपं संगीतादि ललितानामेव कलानामभ्यसने चित्तवृत्तिर्दृढीकृता, अपि तु युद्धादिकार्येष्वपि परपपुरुषानुरूपेष्वपि स्वकौशलं हस्तलाघवं च सम्यग् प्रदर्शितमित्यपि सपरिज्ञायते। अस्त्युल्लेखः कस्याश्चित् विष्पलानामधेयाया 'खेल' नाम्नो राज्ञः पत्न्या या स्वपतिनासार्धमर्वाचीनकालसमुद्भूतेन प्रथितेन राज्ञा दशरथेन सह कैकयनन्दिनी कैकेयीव रणमूर्ध्नि विद्विषो विध्वंसयामास। परप्रहारकृत्तात्मजघायामपि सत्यामायसीं जंघामवलम्ब्य सा पुनरपि प्रपद्यमाना कालीव द्विषोऽर्दयामास।

इत्युक्तदिशा स्पष्टं खलु प्रतीयते यद्यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता इति न्यायं स्वमनस्युच्चैर्निधायात्मनो महिलाः सुपाठयामास सुशिक्षयामास ररक्ष च प्रयत्नैरायजनः, ताः विद्यावृद्धिविवेकज्ञानविज्ञानविनिर्धूतकल्मषाश्च ईदृशीश्चकार यासां समुच्चलच्चरणारविन्दपदन्यासाननु गीर्वाणनिर्वाणभूः स्वर्गम् आजगाम। तासामेव सुशिक्षितानां नारीणां साहचर्याद् 'विश्वमार्यं कृण्वन्त' आर्या आध्यात्मिकाधिभौतिक-समुन्नतिं कुर्वन्तः स्वर्गसुखमुपलेभिरे॥ इति शम्॥

खन्नाजी का व्यक्तित्व

श्री महेन्द्रजी

[साहित्य रत्न भण्डार, आगरा के सुयोग्य सचालक एव 'साहित्य-सन्देश' के विद्वान् कर्णधार श्री महेन्द्रजी ने खन्नाजी के व्यक्तित्व का मूल्याकन करते हुए अपने इस सक्षिप्त परिचय में बताया है कि किस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में, जहाँ खन्नाजी ने पदार्पण किया, अपनी योग्यता एव कार्य-कुशलता का परिचय दिया। चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे व्यवसाय का, खन्नाजी को समान रूप से सफलता मिली। इसका कारण है उनकी व्यवस्थित विचार-क्षमता, उनकी परिश्रम-शीलता और उनका सुन्दर स्वास्थ्य।]

मुझे ठीक स्मरण नही कि मेरा पहला परिचय खन्नाजी से कब और कहाँ हुआ। पर इतना याद है कि सन् १९२३ के बाद, जब मैं आगरा-नागरी प्रचारिणी सभा का मत्री बनाया गया था तो खन्नाजी जब भी आगरे आये, वे मुझसे मिले और उन्होंने सदा ही ना० प्र० सभा के सबध में मुझसे प्रश्न किए और उसके कार्य मे सहायता देने की इच्छा प्रकट की। उनकी इस उदारता का उपयोग सबसे पहले मैंने १९२७ में किया। उन्हे और राजा बहादुर कुशलपालसिंह को लेकर मैं स्थानीय 'सेंट जौन्स' कालेज के प्रिंसिपल केनन डेविस से मिला और हमारे अनुरोध के अनुसार उसी वर्ष इस कालेज में हिन्दी की कक्षा खोल दी गई।

१९२९ में मैंने अपने एक मित्र के सहयोग से एक पाठ्य पुस्तक का सम्पादन किया। यह पुस्तक मिडिल स्कूलों के मतलब की थी और उसका प्रकाशन एक स्थानीय प्रकाशक ने किया। खन्नाजी उन दिनों टेक्स्ट बुक कमेटी के मेम्बर थे। मैं तो खन्नाजी से नही मिला, परन्तु पीछे मुझे मालूम हुआ कि मेरी पुस्तक स्वीकार कराने में खन्नाजी ने काफी कोशिश की और पुस्तक मजूर हो गई। खन्नाजी ने मेरी मदद केवल इसलिए की कि मैं ना० प्र० सभा की सेवा कर रहा था। मेरे ऊपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और इस पुस्तक पर रायल्टी में मुझे जो भी रुपया ३, ४ वर्ष तक मिला उसका दशमांश मैंने ना० प्र० सभा को भेंट किया।

धीरे धीरे खन्नाजी से मेरी घनिष्टता बढ़ती गई। जब मैंने यहाँ महावीर दिगम्बर जैन हाई-स्कूल स्थापित किया और दो तीन वर्ष में ही उसमें चमत्कारिक उन्नति हुई तो खन्नाजी का स्नेह

मेरी तरफ और बढ़ा। पिछले ४, ५ वर्षों में जब भी उनसे भेंट हुई उन्होंने सदा ही मुझसे उक्त हाई-स्कूल (अब म० दि० जैन इन्टर कालेज) की प्रगति के बारे में प्रश्न किये और उसके उत्थान के लिए उपयोगी परामर्श दिये। उन्होंने स्वयं कानपुर में 'कानपुर हाईस्कूल' की स्थापना करके उसकी जो उन्नति की उसका मुझ पर बड़ा असर पड़ा।

खन्नाजी से मेरा एक संबंध ग्राहक और विक्रेता का भी रहा है। खन्नाजी हिन्दी की पुस्तकें खूब खरीदते है, अधिकतर लड़कों और लड़कियों को भेंट देने के लिए। कन्याओं को विवाह के अवसर पर भेंट देने के लिए अच्छी बड़ी पुस्तके तो आपने बीसियों बार खरीदी होंगी। उन्हे इस बात का बड़ा खेद है कि हम लोग ऐसे अवसरो पर अधिक पुस्तकें नही खरीदते।

इधर कई वर्षो से खन्नाजी और मैं स्वदेशी बीमा कंपनी लिमिटेड के डाइरेक्टर है। इस नाते से मुझे खन्नाजी को निकट से देखने का बहुत अवसर मिला। मैंने यह देखा कि अपनी बात को दृढ़ता के साथ कहना और उसे स्वीकार कराने की आप में अपूर्व क्षमता है। अपनी बात को आप बड़े अच्छे ढग से रखकर लोगों को हृदयगम करा देते है। आपकी सूझ बहुत अच्छी है। विवादास्पद विषयो में आपकी दलीलें अकाट्य होती हैं। जहाँ भी आप रहते हैं, अपने व्यक्तित्व की छाप सब पर डाल देते हैं।

खन्नाजी अच्छे सयोजक और सिद्धहस्त सचालक हैं। कानपुर का बी० एन० एस० डी० कालेज उनकी सेवाओं का ज्वाज्वल्यमान उदाहरण है। उसकी परीक्षाओ का परिणाम इतना अच्छा रहता है कि वह हमारे प्रान्त के प्रत्येक स्कूल के लिए एक आदर्श हो सकता है।

शिक्षा और साहित्य-क्षेत्र मे खन्नाजी की जो देन है उसे हम जल्दी नही भूल सकते। हिन्दी के प्रचार में भी खन्नाजी का बड़ा हाथ रहा है। उनकी यह विशेषता रही है कि सफलतापूर्वक अनेक कार्यों में सहयोग दे सकते है।

खन्नाजी का स्वास्थ्य भी हम लोगों के लिए आदर्श होना चाहिए। वे अन्न बहुत कम खाते हैं। अधिक-तर वे शाक और फलों के आश्रित ही रहते है। बीमार तो वे कभी पडते ही नही। उनका यह कहना सही है कि "काम करनेवाले आदमी को बीमार पडने का अवकाश नही होना चाहिए। उसे अपना जीवन इतना सयत और नियमित बनाना चाहिए जिससे वह बीमार पड़ ही न पावे" खन्नाजी के यह विशिष्ट गुण आज के नवजवानो में आ सकें तो देश का बड़ा भला हो। खन्नाजी कालेज के प्रिंसिपल पद से मुक्त हो गये हैं, किन्तु मेरी राय में उनकी कार्यशक्ति मे जरा भी कमी नही आई है। मै तो परमात्मा से यही प्रार्थना करूँगा कि वे शतायु हो और समाज और शिक्षा की इसी प्रकार सेवा करते रहे।

खन्नाजी का व्यक्तित्व

श्री महेन्द्रजी

[साहित्य रत्न भण्डार, आगरा के सुयोग्य सञ्चालक एवं 'साहित्य-सन्देश' के विद्वान् कर्णधार श्री महेन्द्रजी ने खन्नाजी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए अपने इस संक्षिप्त परिचय में बताया है कि किस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में, जहाँ खन्नाजी ने पदार्पण किया, अपनी योग्यता एवं कार्य-कुशलता का परिचय दिया। चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे व्यवसाय का, खन्नाजी को समान रूप से सफलता मिली। इसका कारण है उनकी व्यवस्थित विचार-क्षमता, उनकी परिश्रम-शीलता और उनका सुन्दर स्वास्थ्य।]

मुझे ठीक स्मरण नहीं कि मेरा पहला परिचय खन्नाजी से कब और कहाँ हुआ। पर इतना याद है कि सन् १९२३ के बाद, जब मैं आगरा-नागरी प्रचारिणी सभा का मंत्री बनाया गया था तो खन्नाजी जब भी आगरे आये, वे मुझसे मिले और उन्होंने सदा ही ना० प्र० सभा के संबंध में मुझसे प्रश्न किए और उसके कार्य में सहायता देने की इच्छा प्रकट की। उनकी इस उदारता का उपयोग सबसे पहले मैंने १९२७ में किया। उन्हें और राजा बहादुर कुशलपालसिंह को लेकर मैं स्थानीय 'सेंट जोन्स कालेज के प्रिंसिपल केनन डेविस से मिला और हमारे अनुरोध के अनुसार उसी वर्ष इस कालेज में हिन्दी की कक्षा खोल दी गई।

१९२९ में मैंने अपने एक मित्र के सहयोग से एक पाठ्य पुस्तक का सम्पादन किया। यह पुस्तक मिडिल स्कूलों के मतलब की थी और उसका प्रकाशन एक स्थानीय प्रकाशक ने किया। खन्नाजी उन दिनों टैक्स्ट बुक कमेटी के मेम्बर थे। मैं तो खन्नाजी से नहीं मिला, परन्तु पीछे मुझे मालूम हुआ कि मेरी पुस्तक स्वीकार कराने में खन्नाजी ने काफी कोशिश की और पुस्तक मंजूर हो गई। खन्ना जी ने मेरी मदद केवल इसलिए की कि मैं ना० प्र० सभा की सेवा कर रहा था। मेरे ऊपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और इस पुस्तक पर रायल्टी में मुझे जो भी रुपया ३, ४ वर्ष तक मिला उसका दशमांश मैंने ना० प्र० सभा को भेंट किया।

धीरे धीरे खन्नाजी से मेरी घनिष्टता बढ़ती गई। जब मैंने यहाँ महावीर दिगम्बर जैन हाई-स्कूल स्थापित किया और दो तीन वर्ष में ही उसमें चमत्कारिक उन्नति हुई तो खन्नाजी का स्नेह

मेरी तरफ और बढा। पिछले ४, ५ वर्षों में जब भी उनसे भेंट हुई उन्होंने सदा ही मुझसे उक्त हाई-स्कूल (अब म० दि० जैन इन्टर कालेज) की प्रगति के बारे में प्रश्न किये और उसके उत्थान के लिए उपयोगी परामर्श दिये। उन्होंने स्वय कानपुर में 'कानपुर हाईस्कूल' की स्थापना करके उसकी जो उन्नति की उसका मुझ पर बडा असर पडा।

खन्नाजी से मेरा एक सबध ग्राहक और विक्रेता का भी रहा है। खन्नाजी हिन्दी की पुस्तकें खूब खरीदते है, अधिकतर लडको और लडकियो को भेंट देने के लिए। कन्याओ को विवाह के अवसर पर भेंट देने के लिए अच्छी बडी पुस्तकें तो आपने बीसियो बार खरीदी होगी। उन्हे इस बात का बडा खेद है कि हम लोग ऐसे अवसरो पर अधिक पुस्तके नही खरीदते।

इधर कई वर्षों से खन्नाजी और मैं स्वदेशी बीमा कपनी लिमिटेड के डाइरेक्टर है। इस नाते से मुझे खन्नाजी को निकट से देखने का बहुत अवसर मिला। मैंने यह देखा कि अपनी बात को दृढता के साथ कहना और उसे स्वीकार कराने की आप में अपूव क्षमता है। अपनी बात को आप बडे अच्छे ढग से रखकर लोगो को हृदयगम करा देते हैं। आपकी सूझ बहुत अच्छी हैं। विवादास्पद विषयो मे आपकी दलीलें अकाट्य होती हैं। जहाँ भी आप रहते हैं, अपने व्यक्तित्व की छाप सब पर डाल देते है।

खन्नाजी अच्छे सयोजक और सिद्धहस्त सचालक है। कानपुर का बी० एन० एस० डी० कालेज उनकी सेवाओ का जाज्वल्यमान उदाहरण है। उसकी परीक्षाओ का परिणाम इतना अच्छा रहता है कि वह हमारे प्रान्त के प्रत्येक स्कूल के लिए एक आदश हो सकता है।

शिक्षा और साहित्य-क्षेत्र म खन्नाजी की जो देन है उसे हम जल्दी नही भूल सकते। हिन्दी के प्रचार में भी खन्नाजी का बडा हाथ रहा है। उनकी यह विशेषता रही है कि सफलतापूर्वक अनेक कार्यो में सहयोग दे सकते है।

खन्नाजी का स्वास्थ्य भी हम लोगो के लिए आदर्श होना चाहिए। वे अन्न बहुत कम खाते हैं। अधिकतर वे शाक और फलो के आश्रित ही रहते है। बीमार तो वे कभी पडते ही नही। उनका यह कहना सही है कि "काम करनेवाले आदमी को बीमार पडने का अवकाश नही होना चाहिए। उसे अपना जीवन इतना सयत और नियमित बनाना चाहिए जिससे वह बीमार पड ही न पावे" खन्नाजी के यह विशिष्ट गुण आज के नवजवानो में आ सकें तो देश का बडा भला हो। खन्नाजी कालेज के प्रिंसिपल पद से मुक्त हो गये है, किन्तु मेरी राय म उनकी कार्यशक्ति म जरा भी कमी नही आई है। मैं तो परमात्मा से यही प्रार्थना करूँगा कि वे शतायु हो और समाज और शिक्षा की इसी प्रकार सेवा करते रहे।

फा० २९

शिक्षा महारथी खन्नाजी

श्री शुकदेव पांडे

[श्री शुकदेव पाण्डेय का परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है। आप आचार्य खन्नाजी के बहुत पुराने मित्र हैं। इन पंक्तियों में इन्होंने खन्नाजी के प्रति अपने भावों और विचारों को व्यक्त किया है।]

श्री हीरालाल खन्नाजी ने शिक्षा-प्रसार में जो सेवाएँ उत्तर प्रदेश की की हैं उनके लिए प्रान्त की जनता विशेषतः कानपुर व आस-पास के शहरों के निवासी उनके बड़े कृतज्ञ रहेंगे। उन्होंने बड़ी लगन, परिश्रम तथा उत्साह से सर्वथा कार्य किया है। एक वर्ष मुझे श्री खन्नाजी का सहपाठी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और इसके बाद उनसे बराबर सम्पर्क रहा। विद्यार्थी-जीवन से ही श्री खन्नाजी ने सार्वजनिक कामों में भाग लिया। समाज-सेवा के लिए वे सदा तत्पर रहते और सार्वजनिक हित का कोई काम आने पर वे और कामों में लगे होते हुए भी समय निकाल लेते। काम में व्यस्त आदमी को सदा भले काम के लिए समय मिल जाता है यह बात आप चरितार्थ करते हैं। सनातनधर्म इण्टरमिडिएट कालेज के लिए आपने क्या किया, कालेज की सफलता तथा उसके विद्यार्थियों की संख्या ही इसका द्योतक है। आपकी अध्यक्षता में इस संस्था ने उत्तरोत्तर वृद्धि की और आपके ही उद्योग से एक जो छोटा पौधा लगाया गया था, आपकी देखरेख में एक विशाल फल देनेवाला वृक्ष बन गया।

यह सब आपके अथक परिश्रम का ही फल है। प्रयाग तथा आगरा विश्वविद्यालय की बहुत सी कमेटियों के आप सदस्य रहे। उत्तर प्रदेश में शिक्षा-सम्बन्धी प्रगतियों में आपने सराहनीय भाग लिया है।

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि आपको एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है, मुझे इस शुभ कार्य में सम्मिलित होने का सौभाग्य अभिनन्दन-ग्रन्थ-समिति की कृपा से प्राप्त हुआ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्री खन्नाजी अपने परिश्रम से सींचे वृक्ष की पूरी देख-रेख करते रहेंगे और देश की ऐसी विकट परिस्थिति में यथाशक्ति सेवा करेंगे। भगवान् उन्हें स्वस्थ, सुखी तथा दीर्घजीवी करें।

आचार्य श्री हीरालाल खन्ना

जनसेवक श्री ब्रजविहारी मेहरोत्रा

[श्री ब्रजविहारी मेहरोत्रा कानपुर जिले के प्रसिद्ध काग्रेस नेता और देश-सेवक है। स्वतत्रता के युद्ध में वे हमेशा आगे रहे है और जेल-यातनाएँ भी भोगी है। श्री हीरालालजी खन्ना से उनका परिचय तीस वर्ष पुराना है। इस लेख में उन्होने अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे खन्नाजी के चरित्र पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। मेहरोत्राजी एक स्थल पर लिखते है—

'किसी के लिए, यहाँ तक कि अपने प्रतिद्वन्द्वी के लिए भी, मैने कभी उन्हे कठोर भाषा प्रयोग करते नही देखा।' खन्नाजी के इस गुण की पुष्टि उनके कई मित्रो ने की है।]
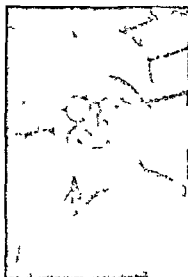
गत ३० वर्ष पहले जब मै स्वर्गीय श्री गणेशशकर विद्यार्थी के चरणो मे बैठकर "प्रताप" के सम्पादन मे उनका किंचित् हाथ बँटाता था, आदरणीय आचार्य श्री हीरालाल खन्ना से परिचय हुआ। मैने उन्हे सदा एक ही वेश भूषा मे देखा है। स्वदेशी और सादगी के वे बडे जबरदस्त हामी है। खादी पोशाक पर सफेद साफा और सफेद ही जूता वह भी बिना चाम का इस बात के द्योतक है कि वे सर से पैर तक स्वच्छ है। श्री खन्नाजी कानपुर शहर ही नही उत्तर प्रदेश के विद्या व्यसनियो में अपना एक विशेष स्थान रखते है। उनकी केवल एक लगन है—विद्या प्रसार है। देश मे इतने बडे बडे तूफानी आन्दोलन उठे, किन्तु वे अपनी धुन के पक्के अपने विचारो मे अचल और अटल रहे।

सार्वजनिक क्षेत्र में आचार्य खन्नाजी का साथ मुझे उत्तर प्रदेशीय खत्री सभा की नियमावली तैयार करने में बहुत निकट से हुआ। विचारो के आदान प्रदान में खन्नाजी बडे उदार साबित हुए। किन्तु अपने सिद्धान्त के पक्के। श्री हीरालालजी की स्मृति बडी तीव्र है। अपने पुराने शिष्य और छात्रो को वे खूब पहचानते है और वर्षों बाद भी मिलने पर उनका नाम याद करने की उन्हे आवश्यकता नहीं पड़ती। वे सूरत देखते ही नाम लेकर पुकार उठते हैं।

आचार्य खन्नाजी से जब कभी साक्षात् होता है तो ऐसा अनुभव होता है कि किसी बडे उदार पुरुष से मिल रहे है। कन्धे पर हाथ रखकर वे बडे स्नेह से कुशल-समाचार पूछते है और थोडे मे अपनी सहृदयता की छाप लगा देते है। बडे मधुर भाषी है। किसी के लिए यहाँ तक कि अपने प्रतिद्वन्द्वी के लिए भी मैंने कभी उन्हे कठोर भाषा प्रयोग करते नहीं सुना।

प्रयाग विश्वविद्यालय और आगरा विश्वविद्यालय के वे एक स्थिर स्तम्भ हैं। स्थानीय कई शिक्षा सस्थाओ का सचालन उनके ही परामर्श से होता है पर वे कभी आगे आगे नही दिखाई पडते है।

आदरणीय खन्नाजी भाई की तरह से स्नेह तो करते ही है मेरा आदर भी करते है। एक बार बी० एन० एस० डी० कालेज में बालचरो का कैम्प फायर हुआ। जिला स्काउट कमिश्नर के नाते मैं भी उसमें आमन्त्रित था। सारा प्रदर्शन जब समाप्त हुआ तो बाद में श्री खन्नाजी धन्यवाद देने के लिए खडे हुए और उन्होंने एसोसियेशन के मुख्य मुख्य लोगो का नाम लेकर कृतज्ञता प्रकाश किया। अन्त में मनोरजन के लिए खडे होकर मैंने कहा मेरे मित्रो को तो खन्नाजी ने आने पर धन्यवाद दिया और सराहना भी की पर मेरा नाम भी न लेकर उन्होंने मेरा अपमान तो नही मेरे साथ अन्याय किया। ऐसा लगता है कि मेरा डिस्ट्रिक्ट स्काउट कमिश्नर होना भी उन्हें स्वीकार नही है। पर खन्नाजी ने तुरन्त खेद प्रकाश कर दिया और बोले कि उन्हे यह बात मालूम ही नही थी कि मैं भी बालचर सस्था के पदाधिकारियो की हैसियत से आया हूँ। आगे बढकर उन्होने बडे स्नेह से मुझे हृदय से लगा लिया। उस घटना का कारण, श्री खन्नाजी का अपने लोगो पर कार्य भार छोडकर उन पर निर्भर रहना और व्यर्थ की दस्तन्दाजी न करने की उनकी आदत थी।

युवको को किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने पर आचार्य खन्नाजी का सदा समर्थन ही मिला है, चाहे वे काग्रेस-कार्यकर्त्ता हो चाहे क्रान्तिकारी और चाहे सामाजिक। जिन दिनो सन् १९४२ के आन्दोलन के सिलसिले में मैं छद्मवेश मे था। शरद् पूर्णिमा के विश्वविख्यात "ताजमहल" के प्रागण में रात को दस बजे श्री खन्नाजी को बरबस एक तरफ ले जाकर साक्षात् किया। मेरे उस साहबी ठाठ में रात उजाली होने पर भी जब तक मैं बोला नही वे मुझे नही पहचान सके। मेरे बोलने पर उन्होंने मुझे बाहुपाश में कसकर हृदय से लगा लिया और बोले—"ब्रजबिहारी जैसे युगो के बाद तुम आज मिल गये। तुम्हे इस वेश में कोई नही पहचान सकता। तुम कानपुर आओ मेरे घर का द्वार तुम्हारे लिए सदा खुला है। यदि किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो तो बिना सकोच मुझसे कहो।' मैंने उन्हे विश्वास दिलाया कि इन दिनो मेरी कोई भी ऐसी आवश्यकता नही है जो पूरी न होती हो। कानपुर यदि पहुँचा तो जरूर हाजिरी दूँगा।

चूँकि मेरी स्व० पत्नी और मेरे दो बच्चे भी मेरे साथ में थे और सब साहबी ठाठ मे थे इस कारण दूसरे दर्शको का ध्यान हमारी ओर नही गया।

देहात के गरीब विद्यार्थियो के लिए जब कभी मैंने फीस माफ करने की सिफारिश लिखी तो आदरास्पद भाई हीरालालजी ने न केवल फीस माफ कर दी बल्कि उन विद्यार्थियो को अपने निकटतर आने का प्रोत्साहन किया और उन्हे पहचानने की भी वे चेष्टा करते रहे। आज उन्हीं के आशीर्वाद से कुछ ऐसे ही विद्यार्थी उच्च शिक्षा पाकर न केवल जीवकोपाजन करते है बल्कि विद्यादान म लगे है।

अपने विद्यार्थी के लिए श्री खन्नाजी रात को बारह बजे जाडे-पाले में भी दौड लगाने म सकोच नही करते। मुझे याद है सन् १९२५ में कानपुर म काग्रेस का अधिवेशन था। मैं हिन्दुस्तानी सेवादल के कैम्प म तिलकनगर में पडा था। आपने मुझे आकर जगाया और बोले ब्रजबिहारी रूपचन्द जैन वादा करते हैं कि वे कानपुर जिला बोर्ड का काम हिन्दी में होने की व्यवस्था करगे तुम अपना वोट इन्ही को देना और नही तो इस प्रकार हिन्दी की सेवा हो जायगी। यह घटना श्री खन्नाजी के हिंदी प्रेमी होन के सबूत में से एक है।

पूज्य श्री खन्नाजी

श्री बाबू शिवनारायणदास

[इस लेख के यशस्वी लेखक श्री बाबू शिवनारायणदासजी बी० ए० एल० टी० है। उन्होने अपने नाम के अत में "दास" शब्द जोड लिया है। उनके पवित्र और सरल जीवन से प्रभावित होकर कालेज के सब अध्यापक और छात्र उन्हे "गाधीजी" कहते हैं। वे "बी० एन० एस० डी० कालेज के गाधी" करके प्रसिद्ध है।

इस कालेज में गाधीजी गत २३ वर्षो से अध्यापक हैं। खन्नाजी का उन पर क्या प्रभाव पडा है इसकी चर्चा लेखक ने इस लेख में किया है। यह एक उपयोगी सस्मरण है।]

मेरा आपका प्रथम सम्पर्क १९२७ की जुलाई मे हुआ। आपने मुझे प्रिय मित्र श्री भोलानाथजी चौधरी द्वारा राष्ट्रीय महाजनी पाठशाला सीतापुर से बुलाया था। उन दिनो उस राष्ट्रीय पाठशाला का भार मेरे ऊपर था। स्वतन्त्रता का आस्वादन जो मै अपने जीवन में करता था बच्चो तक उतारने मे असमर्थ रहता। वहाँ हाईस्कूल की पढाई नही थी। जब आपने सुना तुरन्त आपके विशाल हृदय में मेरे लिए स्थान हो गया। आपने जान लिया मेरी सच्ची राष्ट्रीय उपयोगिता किस विद्यालय के लिए हो सकती है। मैंने भी अपने हृदय में समझा जहाँ सनातन धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार होता है राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तो उसका एक मुख्य अग ही है। उपनिषदो की यही घोषणा है 'साविद्या या विमुक्तये' विद्या वही है जो हमें सब प्रकार के बन्धनो से मुक्त करती है। इन्ही भावो से प्रेरित हो आपका निमत्रण स्वीकार किया।

जिस भेश-भूषा मे आपके सामने निर्भयता से उपस्थित हुआ आज उसे स्मरण कर स्तम्भित हो जाता हूँ। मेरे पैरो में जूते के स्थान में काठ के चप्पल थे—घुटने से कुछ ही नीचे उतरी हुई मोटी खादी की धोती थी—साधारण कुर्ता और गाधी टोपी। बिरले ही कोई बूझ पाता कि मै इस सस्था का अध्यापक हो सकूँगा। आपकी दिव्य चक्षु ने मेरे अन्तस्तल के छिपे भावो को देख लिया। आपने मेरे ऊपरी भद्दे रूप की कुछ भी परवाह न की। मेरा मातृभूमि का प्रेम ही आपके लिए सर्वस्व था। पूज्य अवस्थीजी भी उस समय आपके साथ बैठे थे। एक और बात जो आप दोनो महानुभावो को मेरी समझ में प्रिय लगी वह थी कदाचित् मेरा काशी का एक साल से ऊपर का निवास। जब मैं वहाँ परम पूज्य डा० भगवानदासजी के चरणों में बैठकर M A की Philosophy (दर्शनशास्त्र) का अध्ययन करता था और उनके मान्य बडे भाई श्री गोविन्ददासजी के स्थान पर रहता और उनके बच्चो को जो हाईस्कूल Classes में Central Hindu College में पढते थे गणित तथा अँगरेजी पढाता था। श्रीयुत कालीशकरजी भटनागर ने भी मेरे लिए एक बहुत प्रभावशाली वाक्य लिख दिया था। आपने मुझे इस सस्था की सेवा के लिए चुन लिया। मै भी आपके उदार भावो का काफी परिचय पा गया। आपकी कैसी मनोहर सादगी आपके वस्त्रो मे थी। उस समय आप अपनी गौरवपूर्ण पगडी के साथ कुर्ता, लम्बी धोती और चाम के चप्पल पहने थे। झट मुझे वह दृश्य उदय हो आया Theosophy (ब्रह्मविद्या) के अनुयायी भद्र पुरुष इसी भेश-भूषा में मुझे काशी में मिलते है। उनकी विद्वत्ता, उनकी सादगी, उनकी पवित्रता और मोदमयी आकृति का आपमें दर्शन किया।

उस अवसर पर मुझे कुछ भय था। आप मेरे अवाछनीय अवगुणो को सुनकर कदाचित् तिरस्कार करेंगे—आपको सुनाया, आपने अपनी उदारता से उसे अनसुनी मान ली—दूसरे जब मैंने आपसे कहा मैं चर्खा सघ का सदस्य हूँ—खादी ही मेरा वस्त्र है—सूत की कताई में मुझे रामनाम की धुनि भासती है। आप तुरन्त बोल उठे 'मैं यह सब सहन करता हूँ और आपको पूर्ण स्वतन्त्रता अपने रहन-सहन की देता हूँ।' यह सुनकर मैं आपके श्रेष्ठ व्यक्तित्व से और भी प्रभावित हो उठा। मैंने अपने मन में कहा आप कैसे निर्भीक गुणग्राही है। सीतापुर में जब मेरे मित्रो ने यह बातें सुनी आपकी भूरि भूरि प्रशसा करने लगे। कोई भी प्रधानाध्यापक उन दिनो अपने ब्रिटिश सरकारी शासित विद्यालयो में एक खादी के भक्त को आश्रय देने का साहस नही कर सकता था किन्तु आपने उसे कार्यान्वित किया।

आपकी छत्रछाया में २३ वर्ष बिताया। कभी भी यह न अनुभव हुआ मैं परतन्त्रता में बद्ध हूँ। जिस प्रेम और सहिष्णुता से आपने इस सेवक के साथ व्यवहार किया है उसे कदापि भुला नही सकता। एक समय मैं महान् धर्म सकट में पड गया था। मेरा हृदय आध्यात्मिक ताप से तप्त था शान्ति न पाता। प्रार्थना के पीछे प्रार्थना मच मे खडे होकर छात्रो से विनय किया के मेरे लिए प्रभुजी से प्रार्थना करें वे मुझे सकट से मुक्त करें। मेरी धारणा थी प्रभुजी आपके द्वारा जो एक सनातन धर्म सस्था के अध्यक्ष है शान्ति का सन्देश भेजेंगे। वही हुआ कई दिनो के ताप के पीछे एक सुन्दर वाक्य आपके मुखारविन्द से सुना उसने अमृत का काम किया, मेरे मन को शान्ति प्राप्त हुई।

गर्मियो की छुट्टियो में प्राय मैं यही कानपुर में ही रह जाता रहा हूँ। देखता जिस ऋतु में आप जैसे उच्च पदाधिकारी महानुभाव हिमालय के किसी शीत प्रदेश में निवास करते है, आप असह्य ग्रीष्म काल में ८ से १२ तक अपने कमरे में बैठे हुए इस सस्था के उत्थान का मार्ग ढूढ रहे है। दसवी और बारहवी कक्षा में नए गए हुए विद्यार्थियो को पत्रो द्वारा समय को सुचारु रूप से बिताने का आदेश दे रहे है—सयमित आहार विहार का गुह्य भेद खोल रहे है, व्यायाम फलाहार, दुग्धाहार का गुण सिखा रहे है अथवा शिक्षा के Director महोदय को कालेज के विषय में कोई पत्र लिखवा रहे है—सत्य तो यही है कि जैसा एक बार माननीय सर जे० पी० श्रीवास्तव महोदय ने कालेज के एक अपूर्व महोत्सव के अवसर पर अपने भाषण में कहा आप केवल दिन भर ही इस सस्था के उत्थान की बात नही सोचते, किन्तु स्वप्न में भी कालेज के कल्याण की बात आपकी स्वप्न विषय होती है।

आपकी कार्य-तन्मयता तथा कर्तव्यपरायणता देखकर हम सब अध्यापक जनो में भी बिना आपके कहे सुने अपने अपने ढग से नई नई सेवाएँ करने की मूक प्रेरणा उतरती रही है। यही कारण है यह सस्था छोटे से छोटे नित्यजीवन के व्यावहारिक क्षेत्रो से लेकर उच्चतम आध्यात्मिक क्षेत्र तक अपनी बहु-मुखी सेवाएँ करती हुई इस प्रान्त में एक अद्भुत श्रेणी की विशाल सस्था बन गई है और सारी जनता का मानपात्र बन गई है।

प्रार्थना के पीछे धार्मिक प्रवचन नित्य का कार्य बन गया है। 'विद्या विनये न शोभते', 'सा विद्या या विमुक्तये', 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' 'विद्याहि का ब्रह्मगति प्रदा या' आदि ऋषियो की दिव्य वाणी छात्रा के कोमल हृदया मे उतारने की चेष्टा की जाती है। आचरण की महिमा गाई जाती है 'आचारहीन न पुनन्ति वेदा' मर्यादापुरुषोत्तम राघवेन्द्र श्रीराम का दिव्य चरित्र सुनाया जाता है 'धर्मज्ञ सत्य सधश्च, प्रजानाच हिते रत। यशस्वी ज्ञान सम्पन्न, शुचि वेश्य समाधिमान्॥ 'रामो द्विर्नाभिभाषते' 'सर्व शास्त्रार्थ तत्त्वज्ञ स्मृति मान प्रतिभानमान्। सर्वलोकप्रिय साधुरदानात्मा विचक्षणे॥ आदि वाक्यो से कालेज के बच्चो को यही'

सिखाया जाता है कि राम के चरित्र के अपनाने से ही हम इस मातृभूमि का मस्तक ऊपर उठा सकते हैं, भारतमाता राजमहिषी बन सकती है जैसे कि पहले थी।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की दिव्य वाणी से हृदय की मलीनता नित्य साफ की जाती है, गिरी हुई तथा मुरझाई हुई आत्माओ को प्रफुल्लित करने के लिए

'उद्धरेदात्मनाऽत्मान नात्मानमवसादयेन्'

का सन्देश सुनाया जाता है—भक्ति की अमृतधारा का तथा ज्ञान ज्योति के प्रकाश का कर्मयोग के साथ सुन्दर सम्मिश्रण कैसे किया जाय कभी कभी प्रवचन का विषय बनता है।

फाल्गुन सुदी दुइज को भगवान् श्रीरामकृष्णदेव तथा उनके प्रिय शिष्य श्रीस्वामी विवेकानन्दजी के दिव्य सदेश सुनाने के लिए एक सुन्दर महोत्सव मनाया जाता है। बच्चे सर्व धम समन्वय का पाठ सीखते हैं सच्चे आध्यात्मिक जीवन का भेद बूझते हैं, दिव्य आशाओ से हृदय भर जाता है। भारतमाता अब शताब्दियों के पीछे जाग उठी है और उसके बच्चे दुनिया के कोने कोने मे आध्यात्मवाद का प्रचार करेंगे जिससे मुरझाया हुआ भूमडल फिर सुन्दर और सरस बन जायगा, खोई हुई शान्ति फिर प्राप्त हो जायगी परमपूज्य बापूजी का सदेश भला कैसे छूट सकता है —

यह हमारे परम पूज्य महात्मा गाधीजी की ही मूक प्रेरणा का फल है कि ग्राम्य-सेवा तथा चर्खा को इस सस्था में स्थान प्राप्त हुआ है—सन् १९३९ से इन दोनो ही कार्यों को कालेज ने अपनाया—टोलियो में हमारे बच्चे विनायकपुर ग्राम प्रात काल रविवार को जाते रहे हैं। गाँव के लोगो में हिल मिलकर उनके हृदयो को शुभ वाणी से सचेत करते रहे हैं। गाँव के बच्चो को गुड, लाई चना का प्रसाद वितरण करते रहे हैं—निरक्षर प्राणियो को कभी-कभी राम लिखना सिखाते रहे। सुरजू नाम का एक किसान था, उसे पाठ पढाया गया। साथ में चर्खा भी ले जाया करते रहे हैं। आज कुछ दिनो से हमें एक उत्साही खादी प्रेमी सज्जन प० रामसुन्दर वाजपेयी जी प्राप्त हो गए हैं, उनकी देख-रेख में कताई को बहुत प्रोत्साहन मिला है। आशा करते हैं अब पहले की अपेक्षा बहुत वस्त्र निर्माण होगा जो हमारे प्रिन्सिपल महोदय को बहुत प्रिय होगा—

रविवार के दिन २ से ५ तक की कताई सामूहिक रूप से की जा रही है जिसकी सूचना स्थानीय वर्तमान पत्र में सूचित की जाती है।

इन सब बहुमुखी सेवाओ का श्रेय आपको ही प्राप्त है। आपके ही प्रोत्साहन से इन सब शुभकार्यों के करने का साहस प्राप्त हुआ है। यह सब विभिन सेवाएँ आपके ही अग हैं। आप इनमें विद्यमान है और यह आप में।

यह जानकर आपको हर्ष होगा प्रतिवर्ष श्रीरामकृष्ण जन्म महोत्सव के अवसर पर प्रसाद वितरण से बचे हुए धन से श्रीरामकृष्ण साहित्य एकत्र होता जा रहा है। श्रीरामकृष्ण सप्ताह मे वह खोलकर रख दिया जाता है और अवकाश के घटा मे विद्यार्थी तथा अध्यापक अमृत रस का आस्वादन करत है।

इस विद्यालय की भूमि से अगणित घरा में प्रकाश गया है। कितने एक पुराने विद्यार्थी मिलते हैं जो अपने दार्शनिक तथा आध्यात्मिक अध्ययन की वार्ता सुनाते हैं कैसे श्रीरामकृष्ण दिवस के दिन जो कुछ कालेज में देखे सुने उससे प्रेरणा प्राप्त की जो उनके मगलमयी जीवन का कारण बन गई—सीसामऊ मे प० राजारामजी तिवारी तथा उनके बडे भाईजी प० कृष्णबिहारी तिवारी ने अपने सुन्दर निवास भूमि को खादी आश्रम सा बना दिया है। लाखो गज सूत उन्होने काता है—खादी के थान के थान

उनके घर में निर्माण होते हैं। रजतजयन्ती के अवसर पर प्रदर्शन के रूप में मैं आशा करता हूँ अवश्य लावेंगे। यह प्रेरणा उन्होंने अपने छोटे भाई आतमारामजी से पाई जो हमारे ही विद्यालय में पढते थे। इस विद्यालय की कताई ने बाहर कितना मंगलमयी वातावरण निर्मित कर दिया है। अब मैं देखता हूँ कि कोई पुरुषार्थ अकारथ नही जाता वही पीछे बढकर आश्रय-भूमि बन जाता है—

Say not, the struggle naught availeth.
The labour and the wounds are vain
The enemy faints not, nor faileth.
And things remain as they have been
....
....
And not by eastern windows only.
When daylight comes, comes in the light.
In front the sun rises slow, how slowly.
But to westward, the land is bright.

इस कविता की पंक्तियाँ आज हमारे विद्यालय की कताई और धार्मिक प्रवचनों पर कितनी लागू होती हैं। जब इससे मेरे हृदय को इतना उत्साह और आनन्द मिल रहा है आपको कही अधिक आनन्द प्राप्त होना है। यह वृक्ष सब आपकी कार्य भूमि पर आपके ही निरन्तर प्रोत्साहन से उगा, पल्लवित हुआ—फूला फला है। भविष्य कितना उज्ज्वल और आशापूर्ण है। देश का मस्तक कितने शीघ्र ऊँचा उठ जायगा यदि ऐसे ही अन्य संस्थाएँ आपके भावो का अनुकरण करेंगी।

जिस संलग्नता से आपने विद्यालय की अलौकिक सेवा की है वह वर्णनातीत है—यही रामभक्ति है—इसी प्रसाद के पाने के लिए वैष्णव जनो का हृदय तडपता रहता है।

जब कभी आप किसी अध्यापक को कष्ट मे देखते हैं आपसे रहा नही जाता उसके कष्ट को निवारण करते हैं। नौकर भी आपकी दया से वंचित नही रहते। आप जाडो में वस्त्र और कम्बल से उनका शीत-निवारण करते हैं। दीन विद्यार्थी जिनके पठन-पाठन का कोई सहारा नही, आपके द्वारा चलाए हुए दीन कोष से सहायता पाते हैं। अगणित विद्यार्थी आपकी अनोखी सेवा के आभारी हैं। कितनो के जीवन को आपने सुधारा है, कितनो का घर आज सम्पन्न हुआ है, इन हितकारी कार्यों से आपने हम सबके हृदयो में जो स्थान प्राप्त किया है वह विरला ही कोई धार्मिक राजा अपनी कृतज्ञ प्रजा के हृदय में पाता है। हम सबकी यही हार्दिक कामना है कि अशोक की भाँति आपका सेवा-क्षेत्र दिनोदिन और भी विस्तरित होता जाय और इस कालेज के छोटे दायरे से बढकर सार्वभौमिक हो जाय। नए स्वतंत्र भारत में आपकी आगामी सेवाएँ और भी विलक्षण रूप से कल्याणकारी होगी, क्योकि आपने अपने कमरे में इन्ही सिद्धान्तो को मोटे अक्षरो में आश्रय दिया है और अपने अमूल्य जीवन में उतारा है।

1. Industry is wealth.
2. Salvation lies in Service.

इन्ही पर आपका दिव्य जीवन निर्धारित है—हम अध्यापक जन भी आपसे यही पाठ सीख अपने जीवन को सुफल करें। यही प्रभुजी से प्रार्थना है। स्वतन्त्र भारत सारे विश्व का सच्चा हितैषी सिद्ध हो।

बन्धुवर

लाला बुद्धूलालजी मेहरोत्रा, कानपुर

[श्री लाला बुद्धूलाल मेहरोत्रा कानपुर के एक प्रसिद्ध व्यापारी है। वे काग्रेस के एक प्रसिद्ध कार्यकर्ता है। कानपुर नगर में अपनी सस्कृति, अपनी मिलनसारी, अपने दान और सत्कार के कारण वे बडे प्रसिद्ध और लोकप्रिय है। श्री खन्नाजी की उनकी बडी घनिष्ठता है। खन्नाजी उन्ही के अनुरोध से कानपुर आए थे। उन्होने इन थोडे से वाक्यो में खन्नाजी तथा उनके परिवार के प्रति मगलकामना व्यक्त की है।]

बन्धुवर श्री हीरालालजी खन्ना से मेरा पिछले ३५ वर्ष का भाईचारा है। मेरे आग्रह और प्रयत्न से ही आपने कानपुर आने का निश्चय किया था। सेन्ट जॉन्स कालेज आगरा छोडकर कानपुर आने में आपकी और मेरी खुशी के साथ साथ मेरी स्वर्गीया भावज (आपकी धर्मपत्नी) की खुशी भी सन्निहित थी। उनके प्रयत्न से ही कानपुर ने बन्धुवर खन्नाजी को पाया था। वे परम विदुषी थी, यदि वे होती तो बन्धुवर खन्नाजी का जीवन अधिकाधिक जगमगाता दिखाई देता। उनकी याद कर हृदय टूक टूक होता है। उनका वियोग आपके जीवन के आनन्द का वियोग एव अधकार ही कहना होगा। विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म इन्टर कालेज के लिए बन्धुवर खन्नाजी भगवान् की देन कहे जा सकते है। आपने जिस उत्साह, लगन एव परिश्रम से इस सस्था को समुन्नत किया है, वह स्वय अपनी मिसाल है। आपने इस सस्था को अपनी निजी सम्पत्ति जैसा सेया है। हर समय कालेज के काम की धुन आपकी विशेषता है। आप तो प्रत्येक अवसर को कालेज की उन्नति के दृष्टिकोण से ही देखने के आदी हो गए है। कालेज की सर्वांगीण उन्नति का श्रेय आपको प्राप्त है। बन्धुवर खन्नाजी के सबध में मेरा अधिक कहना शोभनीय नही है केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आपने इस सस्था को बनाया है। मुझे आपके ससम्मान अवसर ग्रहण करने पर हर्ष एव सतोष है। मैं इस अवसर पर हृदय से आपका अभिनन्दन करता हूँ और भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि आप चिरायु हो और आपका शेष जीवन देश के बच्चो को सुशिक्षित बनाने तथा पिछडे हुए लोगो को आगे बढाने में निर्विकार रूप से सहायक हो। चिरजीव नन्दलाल (जो आपके एक-मात्र पुत्र है) शतम् जीवी हो और भगवान् उनका मगल करें।

मान्यवर श्री सद्गुरुशरणजी अवस्थी जो आपके साथी है और जिन पर आपका और हम सबका बडा भरोसा है, इस सस्था को अधिकाधिक समुन्नत बनाने में अवश्यमेव सफल होगे—यह मेरा विश्वास है।

एक शक्तिशाली व्यक्तित्व

बाबू शिवनारायणजी टंडन

[इस सस्मरण के लेखक श्री० बाबू शिवनारायणजी टडन नगर काग्रेस कमेटी के सूत्र सचालक और भूतपूर्व सभापति है। वे इस प्रात के इने-गिने कर्मठ कार्यकर्त्ताओ में है। उनकी लेखनी में उतना ही ओज है, जितना उनकी वाणी में है और उनके कार्यों में भी अद्वितीय स्फूर्ति है। यह स्वभाविक ही है कि खन्नाजी के शक्तिशाली व्यक्तित्व का उन पर प्रभाव पडे।

प्रस्तुत लेख भावपूर्ण रेखा चित्र है, परन्तु भावना के प्रवाह में लेखक ने जागरूकता को नही छोडा। खन्नाजी जैसे उन्हे दिखाई दिये है वैसा ही निश्छल रूप में उन्होने लिख दिया है।]

ईसपात की दृढता ब्रह्मचर्य की काति से देदीप्यमान मुखडा, खिचे हुए गाण्डीव सी तिरछी तनी भौह, जुगनू जैसी दिपो दिपो करती आँखें, ग्रीस देश के योद्धा सी दृढ ठोढी, ससार सागर में कूदने की तैयारी करनेवाले युवा के समान अदम्य उत्साह, सर तेजबहादुर सप्रू के समान तर्कशास्त्री सी प्रबल पैनी बुद्धि, और—वर्ष की परिपक्वावस्था में भी बेंत सा लपलपाता शरीर, शहतीर सी सीधी कमर और अठारह-बीस घटे लगातार काम कर सकने की ताकत, नि सन्देह खन्नाजी के शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्तित्व की परिभाषा करने के लिए पर्याप्त है। उन्होने अपनी शक्ति और योग्यता का उपयोग सार्वजनिक हित में भी किया है और अपने हित में भी। वह एक साधनहीन विद्यार्थी के रूप में भगवती सरस्वती के मन्दिर म प्रविष्ट हुए और अपनी धुन व साहस के बल पर उस चोटी तक जा पहुँचे जहां विरले ही भाग्यवान् पहुँच पाते है। खन्नाजी, बहुत हद तक, स्वावलम्बन और आत्म-विश्वास के प्रतीक बन गये है।

अपने देशवासियो मे सगठन और नियत्रण की बडी भारी कमी है। कोई एक सहस्र वर्ष के उपरान्त पूज्य गाधीजी ने हमारा ध्यान इन तत्वो की ओर आकर्षित किया। पर हम जब शक्ति और नवजीवन प्रदायिनी गगा और यमुना के इस सगम पर पहुँच कर भी उसमें स्नान न कर सके और बालुका-मय, निर्जन, निस्तब्ध, दुकूल पर बैठे बैठे, ककड पत्थर ही गिनते रहे। जिन इने-गिने व्यक्तियो ने, गहरे में उतर कर, तल में पैठ कर, सिक्ता से सोना-चाँदी निकालने का अभ्यास किया है उनमें खन्नाजी का नाम अग्रगण्य है। चाहे सस्था की बात लीजिए, चाहे व्यापार की, या फिर चाह घरबार की, प्रत्येक स्थल पर, पग पग पर, व्यक्ति का ही महत्व और माहात्म है। व्यक्ति ही समाज की नीव में और उसके निर्माण में, प्रमुख स्थान रखता है। हमें अपने देश के जीर्णोद्धार के लिए, महान् निर्माताओ की आवश्यकता है। जो तिनके से बिखरे हुए, सघ के रूप मे कार्य कर सकने की क्षमता और योग्यता से शून्य, देशवासियो का, सगठन और नियत्रण का पाठ पढा सकें। जो बडी बडी सस्थाओ का निर्माण और सचालन कर सकें। खन्नाजी निर्विवाद रूप से एक ऐसे एजिन के समान शक्ति-पुन्ज है जो बहुत सी गाडियो को घसीट ले जाने की क्षमता रखता है। उन्होने अपनी अद्भुत कायशक्ति से श्री विश्वम्भरनाथ सनातनधर्म कालेज को प्रान्त की एक श्रेष्ठतम विद्यापीठ का रूप दे दिया है। यह विद्या मन्दिर ही उनका सबस बडा कीर्ति-स्तम्भ है। कालेज के सहस्रश भूतपूर्व और वर्तमान छात्रो को नाम

से याद रखना, खन्नाजी की दृढ स्मृति का प्रखर रूप से द्योतक है। इन पक्तियो का लेखक भी वर्षो, खन्नाजी के चरणो के निकट बैठा है। अनेक बार, गुरुदेव के साथ, उसका विरोध रहा है। अनेक बार वह उनके दृष्टिकोण और कार्यपद्धति से सहमत नही हो सका है। उसे अपने गुरु के गुण और दोषो का पर्याप्त ज्ञान है। मनुष्य देहधारी ऐसा व्यक्ति कहाँ है जो गुणो ही गुणो का आगार हो और दोष के दूषणो से रहित हो? निर्दोष तो एकमात्र परब्रह्म का नाम है। अतएव खन्नाजी का व्यक्तित्व भी प्राणधारी के गुण और दोष से सम्मिश्रित हो तो आश्चर्य ही क्या है? प्यारे पाठक! हम और आप जब अपने अपने चेहरे को, यदा कदा, सत्य की आरसी में देखने का प्रयत्न करते है, तब न जाने कितने काले तिल, आँख, कान, नाक, ग्रीवा और लुके छिपे स्थानो पर नजर आते है। तो हम क्या करें? हम जीवन के सच्चे शोधक सत तुलसीदास के शब्दो में 'जड चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार। सत हस गुणगण गर्हाहिं, परिहरिवारि विकारि,' का स्मरण करते हुए, आदरणीय खन्नाजी के गुणो, कार्य शक्ति और शक्तिशाली व्यक्तित्व के प्रति, आज के सुअवसर पर, अपनी श्रद्धाञ्जलि और पुष्पाजलि अर्पित करते हैं। भगवान् करे वह शतायु हो और जीवन के इस सन्ध्याकाल में भी सच्चे रूप में देश व समाज की सेवा कर सकें।

खन्नाजी के सम्पर्क में चार वर्ष

श्री कल्याणलाल शर्मा, एम० ए०

[श्री कल्याणलाल शर्मा एम० ए० राजऋषि कालेज अलवर में अँगरेजी के प्राध्यापक है। इन्होने बी० एन० एस० डी० कालेज से ही इटरमीडियट पास किया है। इनकी योग्यता के कारण ही इन्हे सरकारी छात्रवृत्ति मिली थी। श्री हीरालालजी खन्ना के साथ इनका चार वर्षो का सम्पर्क रहा है। इस अवसर में खन्नाजी की जिन बातो का प्रभाव इन पर पडा उसी की चरचा इस लेख मे है। लेख अत्यत आकर्षक और कौतूहलपूर्ण है। खन्नाजी के व्यक्तिगत जीवन का इसमे काफी परिचय है। एक स्थान पर शर्माजी ने लिखा है—

"खन्नाजी हमेशा कल्पना से भिन्न निकलते है। जब तक कोई नया आदमी उनसे पहले पहल मिलते समय अचम्भे में सकपकाता रहता है, वे उसे अपनी ओर खीच लेते है।"

अन्यन्त्र लिखा है—'उनका जीवन एक खुली पुस्तक है। वे स्वय अपने बीते दिनो की याद करते और सस्मरण सुनाते, उनके हजारो शिष्य और मित्र आपदेखी बताते है, उनके विषय मे कहानियाँ कही और बनाई जाती है। अगर खन्नाजी अपनी आत्मकहानी लिखें या उनका कोई शिष्य बासवेल हो तो कितनी स्थायी रहने योग्य बातें स्थायी हो जायँ।']

खन्नाजी मेरे गुरु है, और अपना बना लेने की उनमें ऐसी अद्भुत क्षमता है कि जो कोई उनके सम्पर्क में आता है, समझता है, उनके बिलकुल निकट है। उनके मित्रो के प्रेम और शिष्यो की श्रद्धा की कुछ झलक इस अभिनन्दन-ग्रन्थ में मिलेगी।

(१)

खन्नाजी से परिचय का पहला दिन अब भी मुझे ज्यो-का-त्यो याद है। सन् ४०, अगस्त की शायद दूसरी तारीख, कालेज में पहुँचा ही था। नौ सवा नौ बजे होगे, कक्षाएँ चल रही थी। सीढियाँ चढ, सामने के बरामदे में से निकलकर हाल की दीवारो पर लगे महान् वाक्यो को कुतूहल से पढ रहा था। उस बडे हाल में, उन महावाक्यो के सामने और भी छोटा होता जा रहा था। बगल के कमरे से ऊँची अँगरेजी आवाज, इक्का दुक्का देर-अबेर में आनेवाला कोई विद्यार्थी, बड-बडाते नौकर-चाकर, ऊँची लटकी हुई तसवीरें सभी मेरे लिए नई और कुतूहल से भरी थी। थोडा रुकता, दीवारो की ओर देखता, मै हाल का चक्कर लगा रहा था। घटा खाली है ?"—मै सकपकाया—बोली साधारण, पर अधिकार के गुरुत्व से खाली नही थी। पाँच-चार गज की दूरी पर, मैंने मुडकर देखा, एक भव्य पुरुष तीखी प्रश्नवाचक दृष्टि से मुझे देख रहा था। खन्नाजी के वे पहले दर्शन, उनकी वह मुद्रा, अब भी मेरी आँखो के सामने है।

गोरा चमकता हुआ चेहरा, सिर पर सफेद साफा, गेहुआँ रंग का लम्बा कोट, अलीगढ़ी पाजामा, पैरों में सफेद फ्लीट जूता, बुढ़ापे में तना हुआ शरीर और चश्मे के भीतर से चमकती हुई पैनी आँखें मैंने उसी दिन पहली बार देखी। उस घड़ी तक मेरी कल्पना का प्रिंसिपल चिक के भीतर शानदार कमरे में बैठा हुआ कोई अँगरेज सा आदमी था। "मैं प्रिंसिपल साहब के पास", मैंने तलुए को जीभ से गीला करते हुए कहा, "दाखिले के लिए जा रहा हूँ। वे किधर होंगे।"

"क्या है ?" उस समय तो नहीं, पर अब कह सकता हूँ, प्रश्न में अधिकार के साथ-साथ बहुत हल्की मुस्कराहट थी। लेकिन, सकपकी में मैं नहीं समझ सका, मुझसे क्या पूछा जा रहा है और मैं क्या उत्तर दूँ। जब कुछ नहीं सूझा तो मैंने पुराने कोट के नीचे मैले कमीज की जेब से निकालकर करौली हाईस्कूल के हेड मास्टर की सिफारिशी चिट्ठी आगे बढ़ा दी।

"अच्छा, अच्छा, तुम्हे श्यामसुन्दर ने भेजा है, दाखिला करा लो, फार्म भरा ? नहीं, अच्छा, मेरे साथ आओ।' और मेरे कन्धे पर हाथ रखकर इधर-उधर की बातें पूछते, सम्राजी मुझे आफिस की ओर ले चले।

"बेटा, घबड़ाना मत," वे कहते जा रहे थे, "जी लगाकर पढ़ना, कोई कठिनाई हो, मुझसे कह देना, सकुचना मत, कभी चले आना—यहाँ, घर पर—घर जानते हो—मनीराम की बगिया, चौक।"

मैंने जितनी देर में फार्म लिया, उन्होंने बाहर खड़े-खड़े हेड क्लर्क से दफ्तर की दो-तीन बातें पूछी, एक चिट्ठी का मजमून बताया, खिड़कियों के लिए काँच लेने आदमी भेजा। चार-पाँच लड़कों से बातें की, कोने में खड़े हुए नौकर को बरामदे में पड़े कागज के टुकड़ों के लिए डाँटा और अपने पैरों के पास पड़े हुए दो-तीन टुकड़े चुनकर बाहर फेंक दिये। इस सबमें मुश्किल से दस-बारह मिनट लगे होंगे, और एक सूट-बूट पहने आदमी के साथ धीरे-धीरे बात करते, बरामदे में से क्लास के विद्यार्थियों की ओर देखते, वे जिधर से आये थे, उधर ही चले गये।

मैं फार्म भरता, और उनके विषय में सोचता जा रहा था। अपने बौडमपन को कोस रहा था—न प्रणाम किया, न नमस्ते। रास्ते भर सोचता आ रहा था। चपरासी को चिट दूँगा, और जब अन्दर से घण्टी की आवाज आएगी तब धीरे से, अदब के साथ, झुककर प्रणाम करूँगा। 'सर' कहना कभी नहीं भूलूँगा . लेकिन जो प्रिंसिपल न चिक के भीतर से घंटी बजाए, न अँगरेजी में प्रश्न पूछे, जो पहली ही बार 'बेटा' कहकर पुचकारे और कंधे पर हाथ रखकर साथ चले, उसके लिए कोई क्या तैयारी करके आये ?

सम्राजी हमेशा कल्पना से भिन्न निकलते हैं। जब तक कोई नया आदमी, उनसे पहले-पहल मिलते समय, अचम्भे में सकपकाता रहता है, वे उसे अपनी ओर खींच लेने और उसके कन्धे पर हाथ रखकर वैयक्तिक बातें करने लगते हैं।

बहुत दिनों बाद, जब मैं उनसे हिल-मिल गया था, एक दिन मैंने उनसे पूछा—"सम्राजी आप अपरिचित आदमियों से भी इतनी जल्दी इन्फार्मल कैसे हो जाते हैं। शायद इसीलिए लोग भी आपको प्रिंसिपल सन्ना न कहकर 'सम्राजी' ही अधिक पुकारते हैं।" एक हल्की-सी मीठी चपत लगाते हुए वे बोले—'सब बड़े आदमी इन्फार्मल होते हैं।" और विनोद में हँसने लगे। "फार्मेलिटी, ऊपरी बातें, तो

तभी तक रहती है जब तक हम किसी से वैयक्तिक रूप से नही मिलते। एक बार मिल लेने पर बाहरी बातें कहाँ? गाधीजी को देखो वे पहले ही मिनट मे आदमी को अपना बना लेते है। वे वाइसराय से भी फार्मेलिटी नही बर्तते। बाहरी टीप-टाप नही आदमियो म आत्मिक सम्पर्क होना चाहिए। मैं अभी गाधीजी की सी आत्मीयता तक नही पहुँच पाया हूँ। मैंने उनसे यह बात सीखी जरूर है।

(२)

बी० एन० एस० डी० म दाखिला होने के बाद मै धीरे धीरे उनके बहुत निकट आ गया। उनका हर एक विद्यार्थी उनके बहुत निकट आ जाता है। लेकिन मै कुछ अधिक सौभाग्यशाली रहा। मैंने उन्हे घर में और बाहर कक्षा में और कालेज के अलावा अकेले म और लोगो के साथ निकट से देखा है। उनका जीवन एक खुली पुस्तक है। वे स्वय अपने बीते दिनो की याद करते और सस्मरण सुनाते है, उनके हजारो शिष्य और मित्र आपदेखी बताते है, उनके विषय में कहानियाँ कही और बनाई जाती है। अगर खन्नाजी अपनी आत्म कहानी लिखें, या उनका कोई शिष्य बासवेल हो, तो कितनी स्थायी रहने योग्य बातें स्थायी हो जायँ! मैंने एक बार खन्नाजी को कहते हुए सुना था—'मुझे लिखना नही आता, क्या करूँ, इतनी झझटो मे फँसा हूँ, नही तो 'What Life Has Taught Me' नाम से एक किताब लिखूँ।" मै खन्नाजी को उस बात की याद दिलाना चाहता हूँ।

(३)

खन्नाजी ने जीवन में कठिनाइयाँ देखी और दृढता से उनका सामना किया है। उनका बचपन कड़ी रीवाँ में बीता। जब वे अपने विद्यार्थी जीवन की बातें सुनाते है तो उनकी आँखे कही दूर भटकती हुई दिखाई देती है। उनकी माँ कसीदा काढती और उन्हे पढाती थी। प्रयाग में वे गरीब छात्र की भाँति टयूशन करते और अपना काम चलाते थ। मालवीय परिवार से उनका सम्पर्क शायद इन्ही दिनो का है। ट्यूशन के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओ से भी वे कुछ पैसा कमाते थे। मैंने उनको स्वय कहते सुना है कि जब वे प्रयाग में छात्र थे कई अखबारो में सम्वाददाता का काम भी करते थे। अपनी अखबार नवीसी का एक दिन उन्होने बडा मजेदार किस्सा सुनाया। 'लीडर उन दिनो बडा लोकप्रिय हो रहा था। लेकिन लोग—जैसी बहुतो की आदत हुआ करती है—चन्दा देने में आनाकानी किया करते थे। कई बडे-बडे लोगो पर बडी-बडी रकमें बाकी थी। जब किसी तरह रकम नही पटती दिखाई दी तो मैनेजर ने पच्चीस फी-सदी कमीशन पर वसूली का ठेका दिया। मुझे रुपये की जरूरत थी। मैंने चन्दे की फेहरिस्त हाथ में ली और चल पडा। मैंने पच्चीस फी सदी कमीशन ही नही कमाया, बहुत-से बडे-बडे लोगो से मिलने का बहाना भी ढूँढ लिया। अगर कोई चन्दा दे देता तो मुझे रुपये बचते, अगर नही देता तो मुझे उससे फिर मिलने का मौका रहता।

मुझे याद है एक दिन एक गरीब लडका खन्नाजी के सामने अपनी गरीबी को कोस रहा था। अपना दुख रोते हुए वह कह रहा था कि न टयूशन मिलते न कही से मदद ही मिलती है। खन्नाजी कुछ देर तक सुनते रहे। जब वह लडका अपनी पूरी दुर्दशा कह चुका तो बोले—'बडे अचम्भे की बात है। तुम अठारह-बीस बरस के युवक होकर भी अपना काम चलाने लायक पैसे नही कमा सकते। इस तरह झीखते हो। तुमसे टयूशन नही ढूँढा जाता! मुझे कभी अपने विद्यार्थी-जीवन में ऐसी शिकायत ही नही रही। एक बार मेरे पास कोई टयूशन नही रहा, आस-पास के किस आदमी से कहता? मैं एक अखबार का

प्रतिनिधि बनकर दस-पाँच बड़े-बड़े दुकानदारो के पास जा पहुँचा। मै उन्हे विज्ञापन निकलवाने के लाभ बताता, फिर अपने अखबार की तारीफ करता और लोकप्रियता जताता और फिर धीरे धीरे उनसे विज्ञापन निकलवाने का आर्डर ले लेता था। मैने इस तरह दो-तीन दिन में पाँच-सात सौ रुपये के विज्ञापन ले लिये। बीच-बीच मे मै इधर-उधर का बातें भी करता जाता था। बातो ही-बातो में एक सेठजी के लड़के का जिक्र आ गया। उन्हे टयूशन की जरूरत थी, मेरा काम बन गया। मुझे विज्ञापन इकट्ठे करने के लिए अखबार से कमीशन मिला, साथ ही सेठजी के लडके का टयूशन भी मिल गया।"

पन्द्रह-बीस दिन बाद उस गरीब लडके ने बताया कि खन्नाजी ने उसे दूसरे दिन बुलाकर बीस रुपये दे दिये।

जब कभी गरीबी की चर्चा चलती खन्नाजी दिल बढानेवाली बातें कहते। मैने श्रीनिवास शास्त्री और गोखले के विद्यार्थी-जीवन की बातें खन्नाजी से अनेक बार सुनी है।

खन्नाजी ने अपने जीवन में गरीबी देखी है—और उन्हे इस बात का गर्व है। डाक्टर जान्सन के गरीब विद्यार्थी-जीवन की जूतोंवाली मशहूर कहानी उन्होने एक दिन सुनाई। सैमुअल जान्सन गरीब सही, पर दीन नहीं था। किसी मित्र से आर्थिक सहायता लेना उसने अपमानजनक समझा। सर्दी में नगे पैर घूमना उसे मजूर था, दूसरो से जूते लेना नही। खन्नाजी के विद्यार्थी जीवन की भी ऐसी ही एक कहानी मैने सुनी है।

बात शायद उन दिनो की है जब कि खन्नाजी इण्टर में पढते थे। उनके होस्टल के वार्डन एक अँगरेज थे और उनके दफ्तर के कमरे में बूट जूते पहनकर ही कोई जा सकता था। देशी जूते बाहर उतारने पडते। खन्नाजी उन दिनो रीवाँ का देशी जूता पहनते थे। जहाँ तक हो सका वे वार्डन के दफ्तर में ही नही गये, क्योकि जूता, सिर्फ देशी है इसलिए, उतारना उन्हे अच्छा नही लगता था। लेकिन वार्डन से एक काम आ गया। पाँच रुपये महीने की एक छात्र-वृत्ति थी और उसके लिए उस अँगरेज से दफ्तर में मिलना आवश्यक था। उन दिनो पाँच रुपए महीने उनके लिए बडी चीज थी। "मै बारबार वार्डन के दफ्तर तक जाता" खन्नाजी ने एक दिन उस बात की चर्चा करते हुए बताया, "और लौट आता था। पाँच रुपये महीने का आकर्षण मुझे बार-बार घसीटता पर जूते उतारने की जगह पहुँचकर मेरे पैर एकाएक रुक जाते। वहाँ पहुँचकर मुझे अँगरेज और भारतवासी का अतरध्यान आता और अपनी गरीबी की ठेस लगती। मै हर बार जूते उतारने का सकल्प करके जाता, पर ठीक समय पर न जाने क्या चीज मुझे पीछे धकेल देती। मै लौट आता, और फिर जाता। इस तरह मै—मुझे अच्छी तरह याद है—तीस बार गया और लौट आया। इकत्तीसवी बार, जब मै ठिठक ही रहा था, वार्डन ने मुझे देख लिया और बुलाया। वह बडा सख्त आदमी था, लेकिन, डरा हुआ भी, मै जूते पहनकर ही भीतर गया। उसने मुझे बेअदबी पर डाँटा और देशी जूतो से फर्श खराब होने की बात कही। लेकिन जब मैने बताया कि मैं बडी देर से इसी उधेड़-बुन में आ-जा रहा हूँ तो वह बडा खुश हुआ। उसने छात्रवृत्ति मजूर कर दी और मेरे स्वाभिमान की प्रशसा की।'

(८)

खन्नाजी हम लोगो को ट्रिगनोमेटरी पढाते थे। गणित उन्होने जीवन भर पढ़ी-पढ़ाई है और गणितज्ञ होने का उन्हे गर्व है। एक दिन एक विद्यार्थी ने कह दिया कि गणित रूखा विषय है, इसमे मन नहीं लगता। खन्नाजी ने गणित के आकर्षक पहलू और गणित विज्ञान का महत्त्व बताना आरम्भ कर दिया। मुझे याद

हैं गणितप्रेमियों में उन्होंने नैपोलियन और राजा जयसिंह का भी नाम गिनाया था। गणित के सिद्धान्त, परमात्मा की भाँति, उन्होंने बताया, जगत् की प्रत्येक स्थिति और व्यापार में विद्यमान है। बच्चा जब से चलना सीखता है तभी से गणित सीखने लगता है। उनका यह व्याख्यान पूरे घंटे चलता रहा। घंटा बजते-बजते शोख विद्यार्थी ने खड़े होकर उन्हें फिर छेड़ा—"साहब, गणित में आकर्षक कुछ भी नहीं है। इतिहास में रंग बिरंगे नक्शे देखने को मिलते हैं, अँगरेजी हम बोल सकते हैं। कोई गणित भी बोल सकता है?" "हाँ," खन्ना जी मुस्कराते हुए बोले, "गणित में क्यों नहीं बोल सकते। जाओ, ज्यादा तीन-पाँच मत करो, नौ-दो ग्यारह हो।' सारे विद्यार्थी कहकहा लगाकर हँस पड़े।

कक्षा में खन्नाजी बड़े आकर्षक ढंग से प्रश्नों को श्याम-पट पर समझाते, सुकरात की शैली में प्रश्नों द्वारा उत्तर निकालते, अन्त में धीरे-धीरे निष्कर्ष तक पहुँचते थे। बीच-बीच में कभी महान् गणितज्ञों की बातें भी कहने लगते थे।

एक दिन पीछे बैठे हुए एक छात्र ने जम्हाई ली। खन्नाजी ने उसे देख लिया। "हमारे एक अँगरेज प्रोफेसर," वे अपने छात्र-जीवन की बात छेड़ते हुए वे कहने लगे, "अगर किसी विद्यार्थी का कक्षा में जम्हाई लेते देख लेते तो उसके मुँह में निशाना लगाकर चाक मारते थे।" सारे विद्यार्थी हँसने लगे, उस विद्यार्थी की शिथिलता भी हँसी में जाती रही। जरा गम्भीरता से उन्होंने फिर कहा—"जम्हाई पेट के भारीपन से आती है। गणित पढ़नेवाले को अपना पेट सदा हल्का रखना चाहिए। पेट के लिए ईसबगोल और त्रिफला अच्छी चीज हैं। पर तुम लोगों को तो व्यायाम करना चाहिए। मैं अब भी व्यायाम करता हूँ। मेरा आहार बहुत अच्छा है—अधिकतर फल और दूध। मैं सुबह तेल की मालिश करता हूँ। बढ़िया दिमाग के लिए बढ़िया शरीर चाहिए। स्वामी रामतीर्थ ने गणित के अध्ययन पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है। वह मेरे पास है। तुममें से कोई शाम को घर आ जाना। मैं दे दूँगा।"

उस दिन शाम को जो छात्र उनके घर गया उसे दो पुस्तकें और भी मिलीं—'गणितज्ञों की जीवनियाँ' और 'आदर्श जीवन।'

अगर कोई विद्यार्थी किसी प्रश्न का हल चाहता तो खन्नाजी पूछते—"तुमने कितनी बार निकाला है?" 'दो बार।' "अरे दो बार में ही उकता गये। दो बार, चार बार, दस बार, पचास बार निकालो। गणित का विद्यार्थी कभी हार नहीं मानता।" और फिर वे प्रसिद्ध गणितवेत्ताओं की धुन की बातें कहने लगते थे। रामानुजम् का जिक्र हमारी कक्षा में वे अक्सर करते रहते थे।

हमारे अँगरेजी के प्रोफेसर एक दिन नहीं आये थे। क्लास में शोर हो रहा था। वहीं से खन्नाजी आ निकले। व कमरे की ओर बढ़े और सन्नाटा छा गया। कोई दो मिनट तक वे हमारी ओर कठोरता से देखते रहे। हम सब भयभीत थे। वे कुछ कहते इससे बहुत अधिक असर उनके चुपचाप देखने ने किया। उन्होंने शिक्षक के स्थान पर खड़े होकर पूछा—"तुम लोग कौन सी किताब पढ़ रहे हो?' "बाइरन का प्रिज़नर आफ़ शिलोन" हममें से एक साहसी छात्र ने कहा। "तुममें से कोई कुछ बाइरन की पंक्तियाँ सुना सकता है?" सब विद्यार्थी चुप थे। खन्नाजी ने फिर पूछा। एक विद्यार्थी ने खड़े होकर आठ-दस पंक्तियाँ सुना दीं। "बहुत अच्छा!" खन्नाजी ने गम्भीरता को मुस्कराहट से छाँटते हुए कहा—'तुम्हें बाइरन की एक पुस्तक इनाम मिलेगी। बाइरन की जो पुस्तक तुम्हें अच्छी लगे आज शाम को घर से ले आना।" और उन्होंने बाइरन की प्रभावोत्पादक पंक्तियाँ बोलनी आरम्भ कर दीं। उन्होंने देश प्रेम से भरी ये कविताएँ न जाने कब पढ़ी होंगी, लेकिन वे उन्हें सारी कण्ठ याद निकलीं।

(५)

खन्नाजी का सारा जीवन विद्यार्थियों में बीता है। निर्धन छात्रों का लम्बा परिवार उन्हें सदा घेरे रहता है। उनका घर बहुत समय तक छात्रावास रहा है। अपने छात्रों के लिए भोजन-व्यवस्था से लेकर अदालतों में गवाही देने तक के लिए खन्नाजी सदा तत्पर रहते हैं। अगर किसी के पास पुस्तकें नहीं हैं तो वह खन्नाजी के पास पहुँचता है, कपड़ों की व्यवस्था भी खन्नाजी को ही करनी पड़ती है, वे किसी की साल भर से बाकी पड़ी फीस चुकाते हैं, किसी को घर जाने के लिए किराया देते हैं। कोई उनसे नौकरी के लिए सिफारिशी चिट्ठी लिखवाता है, कोई उन पर मकान ढूँढने का भार छोड़ देता है। हड़ताल करने पर गिरफ्तारी से भी खन्नाजी ही छुड़ाते हैं।

मुझे एक बात पर उन दिनों भी आश्चर्य होता था और अब भी होता है। जिसे देखो वही खन्नाजी के किसी-न-किसी मित्र का भेजा हुआ छात्र है। उनके कालेज में उन दिनों लगभग एक हजार विद्यार्थी पढ़ते होंगे। लेकिन मुझे ऐसा एक भी न मिला जिसको अजनबी कहा जा सके। किसी के पिताजी खन्नाजी के मित्र हैं, किसी के दादा से उनकी जान-पहचान निकल रही है, किसी का बड़ा भाई उनका पूर्व छात्र है, किसी का शिक्षक ही उनका शिष्य रहा है। मतलब, कोई-न-कोई सम्बन्ध है या निकाल लिया गया है।

हमारे होस्टल में विहार का एक छात्र रहता था। एक दिन खन्नाजी निरीक्षण करने आये। जब उसके कमरे में पहुँचे तो उसका नाम सुनकर बोले—"तुम किसके लड़के हो?—आनन्दप्रसन्नसिंह के?" "जी हाँ," उस विद्यार्थी ने बताया, "पिताजी डी० ए० वी० में आपके शिष्य रहे हैं।" खन्नाजी कुछ मिनटों तक कुछ याद करते रहे। फिर बोले "तुम्हारे दादाजी का नाम सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह है क्या?" "हाँ" उस छात्र ने कुछ आश्चर्य में आकर पूछा—"आप उन्हें कैसे जानते हैं? वे तो अब घर पर ही रहते हैं। उन्हें पेंशन मिलती है।" खन्नाजी ने उसे और अधिक प्यार से पुचकारते हुए कहा—"वे मेरे सी० ए० बी० हाईस्कूल में शिष्य रहे हैं। वे उस समय तुम्हारी उमर के होंगे, मैं तुमसे दो चार वर्ष बड़ा। अबकी बार अपने दादाजी को मेरे विषय में लिखना। उनका पता क्या है?—मैं उन्हें चिट्ठी लिखूँगा।" 'तुम मेरे" खन्नाजी हँसते हुए बोले, "तीसरी पीढ़ी में शिष्य हो।'

होस्टल में जब कोई छात्र बीमार पड़ता और उसकी बीमारी का हाल खन्नाजी तक पहुँचता तो वे उसे देखने अवश्य आते थे। कभी-कभी साथ में कोई फल या तसवीरों का कोई पत्र भी लाते। बीमार की खाट पर बैठकर वे देर तक उससे मन बहलाने की बातें किया करते। छोटे छोटे चुटकुलों में बीमारी का मजाक बना देना उन्हें खूब आता है। उन्हें कुछ नुसखे भी याद हैं और वे प्राकृतिक इलाज भी बताते हैं। वे नब्ज की जगह जीभ देखकर पेट की सफाई की दवा बताया करते थे। ईसबगोल उनकी रामबाण दवा है।

हमारे एक साथी को बड़ी भयंकर पेचिश हो गई। उसे लगभग १०४° बुखार और दिन में चालीस-पचास दस्त होने लगे। दो-तीन दिन में ही उसकी हालत एकदम गिर गई और वह घर जाने लायक नहीं रहा। खन्नाजी उन दिनों अकेले रहते थे। पुष्पारानी शायद दिल्ली गई हुई थीं और नन्दो बाबू काम-काज के सिलसिले में कहीं बाहर। खन्नाजी उस बीमार छात्र को अपने घर लिवा ले गए। घर के पिछले कमरे में श्री 'भारतीय आत्मा' ठहरे हुए थे और ऊपर के कमरे खाली नहीं थे। उन्होंने अपने सोने का पलँग बीमार के लिए खाली कर दिया, आपने पास तख्त पर बिस्तर जमाया। मैं उन दिनों उन्हीं के

घर रह रहा था। मैं दिन भर डाक्टरों का आना-जाना देखता रहा। खन्नाजी स्पष्टतया चिन्तित दिखाई दे रहे थे। वे उस दिन कालेज नही गये। उस बीमार छात्र की सेवा-सुश्रूषा मे ही लगे रहे। शाम से उसकी हालत अधिक खराब हो गई। वह बार-बार बेहोश होता और पाखाना जाता था। खन्नाजी उसे हर बार स्वय सँभालते। आधी रात के बाद उसका बुखार कम हुआ और वह होश में बातें करने लगा। हर आध घटे में खन्नाजी अपने हाथो से दवा पिलाते और उससे साहस की बातें करते जाते। यह क्रम बराबर सुबह तक चलता रहा। जब तक मैं इधर-उधर बगले झाँकता रह गया, खन्नाजी ने रात भर की भरी कमोड अपने हाथो से उठाई और साफ कर दी। मैं सोच रहा था खन्नाजी मेहतर बुलवाएँगे। लेकिन उन्होने ऐसा नही किया।

तीन-चार दिन बाद, जब वह विद्यार्थी घर जाने लायक होकर अपने बडे भाई के साथ घर चला गया, तो चतुर्वेदीजी ने खन्नाजी से कहा—"खन्नाजी, मैं तो उस रात सन्न रह गया। सेवा-भाव से अधिक मैं आपकी हिम्मत की प्रशसा करूँगा। आपने उसे अपने घर ले आने की खूब हिम्मत कर ली। अगर उसे कुछ हो जाता तो? आपने यह नही सोचा?"

"चतुर्वेदीजी", खन्नाजी ने आत्मविश्वास से आर्द्रता को दबाते हुए कहा—"डर मैं भी रहा था। मुझे ख्याल था मैं कितनी बडी जिम्मेदारी का काम अपने ऊपर ले रहा हूँ। लेकिन, और मैं करता ही क्या? मुझे जो अपना कर्त्तव्य दिखाई दिया वही मैंने किया। ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुन ली।"

(६)

खन्नाजी बहुत वर्षों तक अपने घर में अकेले रहे है। उनकी पत्नी की मृत्यु बहुत पहले हो गई थी। इस लम्बे विधुर-जीवन के एकाकीपन को खन्नाजी ने विद्यार्थियो में भुलाया है। मैंने उन्हे सैकडो बार निजी बातें करते सुना है। अपनी माताजी की बातें खन्नाजी बडे गौरव से सुनाते है। लेकिन अपनी पत्नी के विषय म उन्हे शायद ही किसी ने देर तक बातें करते सुना हो। अपने सफेद बालो का जिक्र करते हुए, एक दिन, मैं केवल उन्होंने इतना ही कहा—मेरे बाल बहुत दिनो से सफेद हैं। इतने ही सफेद, जबसे मैं अकेला हुआ हूँ और यह बहुत पुरानी बात है।

मैंने उनके घर में उन्हे उनके पुत्र नन्दो बाबू और पुत्रवधू पुष्पारानी—इन तीन आदमियो की छोटी-सी गृहस्थी को देखा है। मुझे इस समय खन्नाजी के पारिवारिक जीवन की एक घटना याद आ रही है। हमारे देश के शिष्टाचार के अनुसार मुझे इन बातो की चर्चा नही करनी चाहिए। किन्तु बात इतनी मार्मिक और खन्नाजी के चरित्र को प्रकट करनेवाली है कि मैं उसे प्रकट कर रहा हूँ।

नन्दो बाबू खन्नाजी के इकलौते पुत्र है और उन दिनो 'इजीनियर्स कोरपोरेशन' के नाम से कुछ काम करते थे। यह बात लडाई के दिनो की है। खन्नाजी ने नन्दोबाबू को कच्छ में जाकर कोई कम्पनी खोलने की अनुमति दे दी। वह किस चीज की क्या कम्पनी थी—और उसकी योजना कैसे बनी—और खन्नाजी ने उसमें क्यो अनुमति दी, मैं नही जानता। लेकिन, जब नन्दोबाबू के कच्छ जाने की बात पक्की हो गई तो मन ही मन में मैं खन्नाजी के कठोर हृदय पर आश्चर्य कर रहा था। मैं अपने दृष्टिकोण से सोचता—खन्नाजी के पास रुपये की क्या कमी है, नन्दोबाबू यहाँ भी तो काम कर रहे है। आजकल लड़ाई का अनिश्चित जमाना है। खन्नाजी अपने इकलौते बेटे को इतनी दूर क्यो भेज रहे है? खन्नाजी

के हृदय में उस समय क्या-क्या विचार उठ रहे थे वे ही जानते होंगे। स्नेह और महत्त्वाकाक्षा के द्वन्द्व को उन्होंने कैसे निवटाया वे ही वता सकते हैं।

नन्दो वावू के जाने के दिन सुवह मैं खन्नाजी के घर किसी काम से गया था। प्रतिदिन की भाँति खन्नाजी अपने नियमित कार्य में लगे थे। कालेज का समय हो रहा था और खन्नाजी ने जल्दी में हाथ से एक पत्र लिखा। उन्होंने मैं समझता हूँ, बहुत थोड़ी ही पक्तियाँ लिखी होगी; लेकिन इस पत्र को लिखने में उन्हे कितनी कठिनाई पड रही थी साफ दिखाई दे रहा था। उन्होंने उतरते-उतरते पत्र नौकर को सौपा और कहा—"अच्छा, मैं कालेज जा रहा हूँ। मोटर लेकर नन्दोवावू को दो वजे स्टेशन पहुँचा आना। यह पत्र दे देना और कहना अच्छी तरह जायें।" इतना कहकर वे कालेज चले गये। वहाँ वही प्रतिदिन का काम—पढाना, मिलना-जुलना, डाक देखना, दफ्तर का काम करना।

उस दिन वे शाम को कालेज से और भी देर से लौटे। उन्होंने नौकरों से नन्दोबावू के जाने की साधारण पूछ-ताछ की, कपड़े उतारे, इधर-उधर टहलते रहे—मैं साफ देख रहा था उनका मन किसी भी चीज में नही लग रहा है। वे कभी रेडियो खोलते, कभी चिट्ठियाँ उलटते-पुलटते और कभी अलमारियाँ टटोलते। उनका मनस्ताप उन्हे झकझोर रहा था और वे अपनी पूरी शक्ति के साथ दृढ वने रहने का प्रयत्न कर रहे थे। वे थककर पलँग पर बैठ गये; पिता का स्नेह आँखो के मार्ग बह निकला।

मैंने उस दिन देखा—खन्नाजी कितने कठोर और कितने कोमल है।

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि"

उन्हे किस महत्त्वाकाक्षा ने उस दिन वल दिया था; और किस कोमलता ने इतनी आर्द्रता?

हृदयोद्गार

श्री हरनारायण गौड़

[श्री हरनारायण गौड बी० एन० एस० डी० कालेज के पुराने छात्र हैं। उन्हे कालेज छोड़े बहुत काल हो गया फिर भी स्थानीय सभ्रात नागरिक होने के नाते वे कालेज की उन्नति से अभिरुचि रखते हैं। वे यहाँ के उदीयमान कवि भी हैं। पहला और दूसरा छद खन्नाजी के विषय में और तीसरा छद कालज की प्रशसा में है।]

ब्रजभाषा

ठाकुरजी के भक्त मे 'ठाकुरदास निहाल।
'जगदम्बा के उदर तें जनम हीरालाल'॥
जनमें 'हीरालाल भई रीवा अति पावन।
'लक्ष्मणपुरी' पवित्र बालपन जहाँ सुहावन॥
कठिन परिश्रम भये गणित-सागर गुण-आगर।
बसि 'प्रयाग', 'आगरा', 'कानपुर अधिक उजागर॥
साँचे दानी, सयमी, प्रथित भरे सौजन्य है।
किते भारती भवन के सस्थापक हैं धन्य है॥

घनाक्षरी (खड़ी बोली)

खन्ना वशभूषण बुधो के हृदयाधिराज,
भक्त हो स्वदेश के, सदैव एक बाना है।
गणितविदो ने पहिचाना महामेधायुक्त,
कालिज ने प्राणो के समान कर माना है॥
वन्दन के योग्य अभिनन्दन के योग्य आप,
छात्रो को न भूला कभी आपका पढाना है।
आपकी प्रशसा में चढाना भेंट 'ग्रथ क्या है,
दिन में दिवाकर को दीपक दिखाना है॥

हमारा कालेज

यह शिक्षा का केन्द्र भारती का उन्नत प्रासाद विशाल।
यह जिज्ञासु पथिक का पनघट, मानसरोवर मुदित मराल॥
यह वह है हिमशैल जहाँ से स्रोतस्विनी अनेक बही।
यह वह है आकाश अनगिनत नक्षत्रावलि जहाँ रही॥
यह वह है उद्यान जहाँ से कली फूल बनकर महकी।
यह वह नीड निकेत जहाँ से बडी बुलबुलें हो चहकी॥
यह वह है पाथोधि जहाँ से मोती निकल अनेक गये।
यह वह पुण्यस्थान जहाँ पर कितने मस्तक टेक गये॥
यह समाज का भाग्यविधाता अमर पीढिया का इतिहास।
यह नैतिकता का उपदेशक, सम्राजो का अति आयाम॥
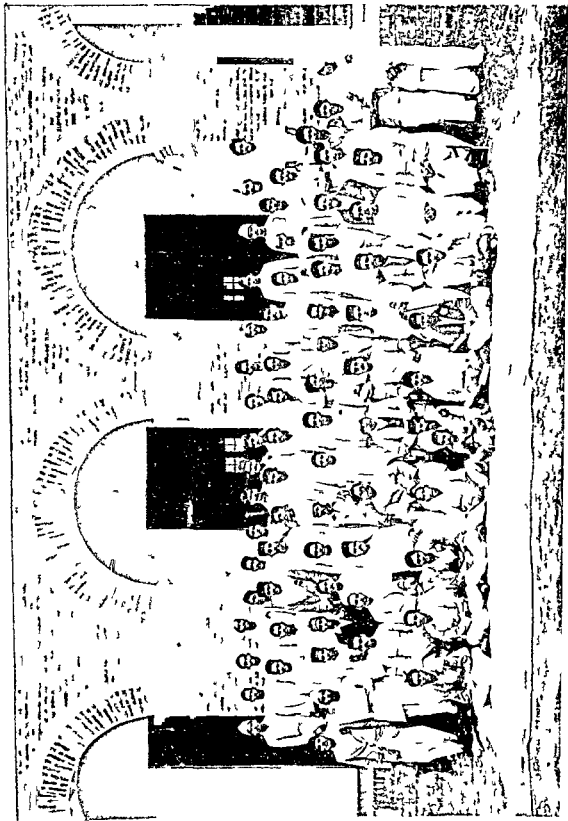
Khannaji with B N S D College staff and students in 1930
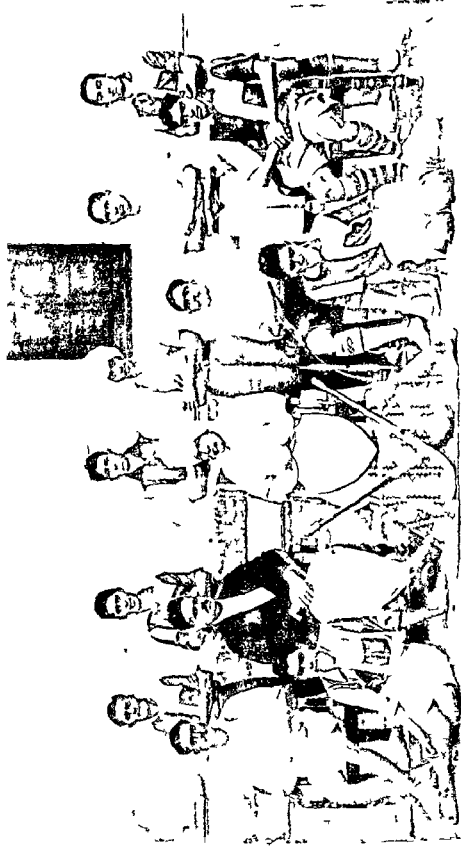
Khannaji with the Hockey 1st Eleven of the B N S D College (1931)

खन्नाजी का वात्सल्य प्रेम

श्री पंडित अवधविहारी पांडेय, एम० ए०
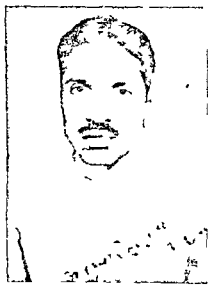
[श्री पडित अवधविहारी पाण्डेय हिंदू विश्वविद्यालय काशी के इतिहास के प्राध्यापक हैं। इन्होंने बी० एन० एस० डी० कालेज से ही इटरमीडियेट बडे गौरव के साथ पास किया है। इनका खन्नाजी से लगभग बाईस वर्ष का पुराना परिचय है। इस लेख म लेखक ने खन्नाजी के वशीकरण स्वभाव की प्रशसा की है। व निर्धन विद्यार्थियो की किस प्रकार सहायता करते थ इसका भी उल्लेख है। एक स्थल पर पाण्डेयजी लिखते हैं—

एसे कितने कम अध्यापक और प्रधानाध्यापक हैं जिनके विषय म हम यह विश्वास हो सके कि उनका अपने विद्यार्थियो के प्रति वैसा ही अनुराग है जैसा कि अपने पुत्रो के साथ।]

मैं जुलाई १९२८ मे पहले पहल खन्नाजी के दर्शनार्थ कालेज भवन म गया था। उसी वर्ष मैंने हाईस्कूल परीक्षा पास की थी। यद्यपि मैं छात्रवृत्ति का अधिकारी था परन्तु मैं कामर्स पढना नही चाहता था और बिना कामर्स पढे छात्रवृत्ति मिल नही सकती थी। बिना उस सहायता के प्राप्त हुए मेरा आगे पढ सकना असभव था। अस्तु मैं वही पढ सकता था जहाँ मुझे आर्थिक सहायता का स्पष्ट आश्वासन मिल सके।

खन्नाजी अपने दफ्तर में बैठे थ। वह बात करने के बीच म स्नेहपूर्वक पुचकारते जाते थे और उन्होंने कहा कि तुम कालेज म भर्ती हो जाओ। शेष चिन्ता मेरे ऊपर छोड दो। जो तुम्हे जरूरत हो उसके लिए हमसे कहना। मैं आश्वस्त हो गया और मैंने फार्म भर दिया। उस समय मेरे पास रुपये नही थे। उन्होंने भर्ती होने के रुपए स्वय जमाकर दिय।

मैं वापस लौटते समय सोचने लगा कि क्या यह सब सच हो सकता है अथवा इसमें कुछ छल है। जब इस घटना का जिक्र मैंने और लोगो से किया तो उन्होंने कहा कि अब तुमको खन्नाजी ने फँसा लिया। पर मैं समझ नही पाता था कि किसी विद्यार्थी को सहायता करने का आश्वासन देने में भला फँसाने की क्या बात हो सकती थी। खैर मैं नियत समय पर कालेज छात्रावास में प्रविष्ट हो गया और पढने लगा। गौतम ब्रादर्स के यहाँ खन्नाजी ने मुझे आवश्यक पाठ्य पुस्तकें दिलवा दी। शर्त केवल यह थी कि काम न रहने पर मैं उनको अन्य विद्यार्थियो के उपयोग के लिए वापस कर दूँगा।

इस भाँति मैं खन्नाजी के सम्पर्क में आया। मैंने गणित विषय भी लिया था। अस्तु उनसे मिलने का अवसर अधिक मिलता था। कालेज में जितने लोग भर्ती हुए थे उनमें मेरे अतिरिक्त ३ और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण विद्यार्थी थे। इस कारण भी खन्नाजी की मुझ पर विशेष कृपा रहती थी।

उन दिनो भी छात्रावास दो बँगला में ही था। वहाँ नित्य नई समस्याएँ रहती थी। खन्नाजी प्राय नित्य शाम को छात्रावास में आते थे। उस समय उनके शिष्य श्री महादेवप्रसादजी श्रीवास्तव उस समय (प्राध्यापक सनातन धर्म कालेज कानपुर) हम लोगो के प्रबन्धक तथा अध्यक्ष थे। खन्नाजी आते तो सभी विद्यार्थियो से मिलते। उनका हाल पूछते, पढने के विषय में परामर्श देते खेलने अथवा अन्य व्यायाम पर जोर देते और जो उनके बुलाने पर काफी पास आ जाता उसके दोना कधो पर हाथ रखकर उसे हिला हिला कर बातें करते और फिर उसके गाल पर एक हल्की सी चपत लगाकर अपने स्नेह का परिचय देते।

पता नही क्यो मेरे ऊपर उनकी विशेष कृपा थी। हमारे कुछ साथी खन्नाजी के आलोचक भी थे। वे कहते थे कि खन्नाजी में दो गुण बहुत बडे हैं—टालू और फाँसू। खर्चवाली कोई बात कहो, देखो किस कौशल के साथ टालते जायँगे, तुम्हारा मन छोटा नहीं करेंगे, अपनी कठिनाई बतायेंगे, पूरी चेष्टा करने का आश्वासन देंगे, पुचकारेंगे, चपत लगायेंगे, परन्तु काम करगे नही। परन्तु उन लोगो का ख्याल था कि यदि मुझसे खन्नाजी किसी काम के करने का वादा कर दें तो वह अवश्य कर देंगे। अस्तु उनके टालू अस्त्र के काट के लिए मित्रवर्ग अक्सर मेरा प्रयोग करता था। मैं प्राय बहुत बोलने का साहस नही करता था। परन्तु कुछ ऐसा सयोग रहता था कि जब मैं श्री माधवराम कपूर और दूसरे लोग एक साथ आग्रह करते तो खन्नाजी अवश्य मान जाते। दूसरे लोग कहते थे कि खन्नाजी ऐसी मीठी मीठी बातें करते है कि लोग उनके वाक्‌जाल में फँस जाते है और जो वह चाहते हैं वही करने पर राजी हो जाते हैं। यह था उनका फाँसू गुण। परन्तु अब लगता है कि यदि उनका स्नेह हृदय से न निकलता होता तो सभी लोग उसमें इस प्रकार नही फँस सकते थे। इस भाँति उनके आलोचक भी उनके वात्सल्य प्रेम की दाद देते रहते थे। सभी कहते थे कि खन्नाजी बडे सफल पिता है। हम लोग नन्दो से (खन्नाजी के पुत्र से) घर की बातें पूछते। उससे आलोचको को भी यह दृढ विश्वास हो जाता था कि उनका व्यवहार नन्दो के प्रति भी वैसा ही है जैसा हम लोगो के प्रति। उस समय तो इसकी अनुभूति इतनी स्पष्ट नही थी, परन्तु अब लगता है कि ऐसे कितने कम अध्यापक और प्रधानाध्यापक हैं जिनके विषय में हमें यह विश्वास हो सके कि उनका अपने विद्यार्थियो के प्रति वैसा ही अनुराग है जैसा कि अपने पुत्रो के साथ।

खन्नाजी के सैकडो विद्यार्थियो से मेरा परिचय है। उनमें से यदि सबका नही तो अधिकाश का यही मत है कि खन्नाजी को वशीकरण सिद्ध है। वह सभी में एसी अभिरुचि रखते हैं कि उनका स्नेह-पाश दिन प्रतिदिन अधिक शक्तिवान् होता जाता है।

जब मैं इण्टर की परीक्षा देकर घर जाने लगा तब खन्नाजी ने कहा कि ४-६ दिन घर रहकर लौट आना मैंने वैसा ही किया। आने पर देखता क्या हूँ कि उन्होने प्रयाग में मेरे पढने के निमित्त धन उपार्जित कराने के साधन जुटा रक्खे हैं। जब मैं प्रयाग में पढता था तब भी वह मुझसे मिलते रहते थे और कानपुर आने पर उनसे न मिल सकने पर सदा मीठी झिडकी सुनाते थे। उस समय से अब तक उन्होने सदा मेरे ऊपर दृष्टि रखी है और जहाँ कही भी मैं रहा हूँ वहाँ जाने पर, चाहे दो ही मिनट के लिए क्यो न हो वह दर्शन अवश्य दे जाते रहे है।

यही अनुभव उनके अन्य सैकडो-हजारो विद्यार्थियो का है। वैसे तो खन्नाजी की लगन, कर्त्तव्य-निष्ठा, साहस, दृढता, हिन्दी-प्रेम, स्वदेशी प्रेम आदि अनेक गुणो की चर्चा की जा सकती है, परन्तु मुझ सबसे अधिक उनके उस गुण का ही अनुभव हुआ है जिसका मैने ऊपर उल्लेख किया है। विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज, कानपुर को जो गौरव आज प्राप्त है उसे मेरी समझ में यदि किसी एक वस्तु ने सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया है तो वह है खन्नाजी का अपने विद्यार्थियो के प्रति अनुराग। वह कितनी शीघ्रता से उनके नाम याद कर लेते है। उनकी विशेषताओ को पकड लेते है, उनके घरवालो के विषय में पूछ-ताछ करते है और उनकी उन्नति तथा सफलता में ऐसा गौरव तथा सुख अनुभव करते है जैसा कि एक पिता अपनी सतति की सफलता पर करता है। उनके वशीकरण की यही प्रधान कुजी है। हम सबकी यही कामना है कि वह अपना यह गुण अपने सहयोगी अध्यापको मे दृढतर करने के लिए उनसे अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् भी सबध बनाये रखे और उनके समान अध्यापको तथा प्रधानो की सख्या दिन-प्रतिदिन बढती रहे।

ऐसी लाइब्रेरी है जिसकी मिसाल हमारे प्रान्त में कम ढूढे मिलती है। आप कानपुर के बहुत से स्कूलो और कालेजो की प्रबन्ध कमेटियो के सदस्य है। बहुत से विख्यात स्कूलो और कालेजो के प्रधानाध्यापक कानूनी और प्रबन्ध-सम्बन्धी प्रश्नो पर आपसे सलाह लेने आते है।

इसमें सन्देह नही कि आपके जीवन का प्रत्येक क्षण राष्ट्र की शिक्षा के लिए है। आप एक बडे पक्के मित्र है। अपने दोस्तो के लिए किसी भी मेहनत और कष्ट को झेलने के लिए सदैव तैयार रहते है। झूठ, दगाबाजी और मक्कारी से आपको घृणा है यद्यपि आपकी नेकनामी और सर्वप्रियता ने कुछ ऐसे लोग भी पैदा कर दिये है जो आपसे ईर्षा करते है, और उन्होने आपको और आपके नाम को क्षति पहुँचानी चाही पर आप तपे-तपाये सोने की भाँति और भी खरे होकर निकले।

यह जान करके मुझे अत्यन्त दुख है कि आप साठ साल के हो जाने के कारण कालेज का काम छोडने पर मजबूर है। पर जो प्रेम आपको कालेज के साथ पैदा हो चुका है उसमें कोई कमी नही हो सकती। मुझे यह सुनकर प्रसन्नता भी हुई कि प० सद्‌गुरुशरण अवस्थी आपके स्थान पर स्थानापन्न प्रिंसिपल है। यह केवल खन्नाजी की कृपा का फल है।"

अन्त में मेरी यह प्रार्थना है कि शिक्षा-सम्बन्धी जो स्कीम आपके सामने है उसमें आपको सफलता प्राप्त हो और ईश्वर आपको बुरी निगाह (नजरे बद) से सुरक्षित (महफूज) रखे।

संदेश

श्रीमान् हाफिज मुहम्मद सिद्दीक़ साहब रईस-आजम, कानपुर

[हाफिज मुहम्मद सिद्दीक साहब कानपुर के सफल व्यापारी ही नहीं वरन विख्यात दानी और 'रईसे-आजम' भी थे। खन्नाजी से आप ३० वर्षों से परिचित थे। आप खन्नाजी के बारे में जो भी जानकारी रखते और उनके प्रति आपके जो भी भाव थे उनका बड़ा ही सुन्दर चित्रण निम्नांकित पंक्तियों में है।]

मैं लगभग ३० वर्षों से खन्नाजी से परिचित हूँ। आपका असली वतन लखनऊ है। छोटी अवस्था में ही पिता की छत्रछाया से वंचित हो गये। आपकी माता ने अत्यन्त दीनावस्था और गरीबी की दशा में कशीदाकारी करके आपका पालन-पोषण भी किया और शिक्षा भी दिलवाई। सन् १९१९ में आप कानपुर आये। कानपुर के मशहूर वकील रायबहादुर बाबू विक्रमाजीतसिंह (स्वर्गीय) की कभी न चूकनेवाली दृष्टि आप पर पड़ी और उन्होंने विश्वम्भरनाथ सनातनधर्म स्कूल में सन् १९२७ ई० आपकी नियुक्ति की और खन्नाजी ने एक छोटी सी पाठशाला को बहुत थोड़े समय में प्रान्त का सर्वोत्तम इण्टर कालेज बना दिया। इस कालेज में इस समय लगभग ३,००० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। जिस समय खन्नाजी ने इस पाठशाले का काम अपने हाथ में लिया था उस समय इसमें थोड़े से कमरे थे और थोड़े से विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। पर अब आपके सद्प्रयत्नों से एक शानदार भवन बन चुका है। जो अपने सौन्दर्य में अपनी उपमा आप है। इस वास्तविकता से कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि इस कालेज के परीक्षाफल उत्तर प्रदेश के सारे स्कूलों और कालेजों के मुकाबले में सबसे अच्छे रहते हैं, और यह केवल खन्नाजी के सद्प्रयत्नों का फल है। खन्नाजी में बहुत से गुण हैं। उन सबके अतिरिक्त आप में एक विशेष गुण यह है कि आप जिस कार्य की ओर झुक पड़ते हैं उसमें रात दिन लगे रहते हैं। जब से बी० एन० एस० डी० कालेज में आपकी नियुक्ति हुई है ऐसा मालूम होता है कि जैसे आपको उसके साथ (इश्क) प्रेम हो गया हो। चलने-फिरते, उठने-बैठने, सोते-जागते, कालेज की उन्नति के विचार के सिवा और कोई विचार आपके हृदय में नहीं है और न पैदा होता है। आज भारत के बहुत से नवयुवक आपकी मेहनत की बदौलत बड़े ऊँचे ऊँचे पदों पर हैं।

कालेज का एक एक बच्चा और अध्यापक आपके सुन्दर व्यवहार की प्रशंसा करता है। ऐसे भी नाजुक और कठिन अवसर आये जब कुछ राजनीतिक दलों ने कालेज के विद्यार्थियों में उबाल पैदा करके कालेज को नुकसान पहुँचाना चाहा। परन्तु खन्नाजी ने बड़ी हिम्मत और संयमयुक्त तदबीरों से काम लेकर उस नाजुक हालत का सामना किया यद्यपि इस मुकाबले के कारण आपको शारीरिक कष्ट भी भोगने पड़े पर आपने शिक्षा और राष्ट्र दोनों के फायदे के लिए हर तरह की तकलीफ उठाना सहर्ष स्वीकार किया।

बी० एन० एस० डी० कालेज के अतिरिक्त कानपुर एजूकेशन सोसायटी के भी आप संस्थापक हैं। और उसकी अध्यक्षता में कई एक स्कूल सफलतापूर्वक चल रहे हैं। आपकी इच्छा है कि कानपुर के हर मुहल्ले में शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित हो जावें। आप गयाप्रसाद पब्लिक लाइब्रेरी के सेक्रेटरी हैं। यह एक

ऐसी लाइब्रेरी है जिसकी म्सिाल हमारे प्रान्त में कम ढूढे मिलती है। आप कानपुर के बहुत से स्कूलो और कालेजो की प्रबन्ध कमेटियो के सदस्य है। बहुत से विख्यात स्कूलो और कालेजो के प्रधानाध्यापक कानूनी और प्रबन्ध-सम्बन्धी प्रश्नो पर आपसे सलाह लेने आते है।

इसमें सन्देह नही कि आपके जीवन का प्रत्येक क्षण राष्ट्र की शिक्षा के लिए है। आप एक बडे पक्के मित्र हैं। अपने दोस्तो के लिए किसी भी मेहनत और कष्ट को झेलने के लिए सदैव तैयार रहते है। झूठ, दगाबाजी और मक्कारी से आपको घृणा है यद्यपि आपकी नेकनामी और सर्वप्रियता ने कुछ ऐसे लोग भी पैदा कर दिये है जो आपसे ईर्षा करते हैं, और उन्होने आपको और आपके नाम को क्षति पहुँचानी चाही पर आप तपे-तपाये सोने की भाँति और भी खरे होकर निकले।

यह जान करके मुझे अत्यन्त दुख है कि आप साठ साल के हो जाने के कारण कालेज का काम छोडने पर मजबूर है। पर जो प्रेम आपको कालेज के साथ पैदा हो चुका है उसमें कोई कमी नही हो सकती। मुझ यह सुनकर प्रसन्नता भी हुई कि प० सद्गुरुशरण अवस्थी आपके स्थान पर स्थानापन्न प्रिंसिपल है। यह केवल खन्नाजी की कृपा का फल है।

अन्त में मेरी यह प्रार्थना है कि शिक्षा-सम्बन्धी जो स्कीम आपके सामने है उसमें आपको सफलता प्राप्त हो और ईश्वर आपको बुरी निगाह (नजरे बद) से सुरक्षित (महफूज) रखे।

श्रद्धा की माला

बी० एन० एस० डी० कालेज के पूर्व छात्र

[इस भाग के लेखक श्री हीरालालजी खन्ना के सुपरिचित और श्रद्धालु विद्यार्थी हैं। उनके लेखों में बहुत सी बातें मिलती जुलती थीं। अतएव उन्हें विकलित करके उनकी भावनाओं की रक्षा करते हुए यहाँ उद्धृत किया गया है। अपने लेखों को संक्षिप्त किए जाने के लिये लेखकगण क्षमा करेंगे।

प्रथम पुष्प

श्री जगदीशप्रसाद गुप्त 'विश्व' का है। वे उच्च कोटि के खड़ी बोली और ब्रजभाषा के कवि हैं और होनहार चित्रकार। वे प्रतिभा-सम्पन्न गद्य लेखक भी हैं। बी० एन० एस० डी० कालेज से पूर्ण गौरव के साथ सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त करते हुए उन्होंने इंटरमीडिएट पास किया था। इस समय वे प्रयाग विश्वविद्यालय में डी० लिट० के लिए अध्ययन कर रहे हैं। कालेज की लगन खन्नाजी में कितनी है यह गुप्तजी कैसे लिखते हैं—

अरथ न धरम न कामरुचि,
  गति न चहौं निरवान।
जनम जनम कालिज बढ़ै,
  यह वरदान न आन॥

द्वितीय पुष्प

श्री महेशदत्तजी दीक्षित का है। वे प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रतिभावान् एम० ए० हैं। बी० एन० एस० डी० कालेज से उन्होंने हाईस्कूल और इंटरमीडिएट दोनों पास किये हैं। दोनों परीक्षाओं में वे सर्वप्रथम रहे थे। इस कालेज के वे परमप्रिय विद्यार्थी हैं। खन्नाजी के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा है। अपने लेख में आपने यह अभिलाषा प्रकट की है कि— सचमुच अगर हम खन्नाजी की सेवाओं का गौरव देना चाहते हैं तो सबसे अच्छा यह होगा कि हम धन एकत्र कर उनकी सेवाओं की स्मृतिस्वरूप एक शिक्षा-संस्था प्रारंभ करें।

तृतीय पुष्प

श्री शिवप्रसाद का है। ये कानपुर चटाई मुहाल के ही निवासी हैं। इन्हें खन्नाजी को निकट से देखने का अवसर मिला है। खन्नाजी के उपदेश उनके मन में गड़े हैं।

चतुर्थ पुष्प

श्री रघुनाथसिंह एम० ए० का है। ये भी बी० एन० एस० डी० कालेज के प्रसिद्ध पूर्व विद्यार्थी हैं। इन्होंने गौरव के साथ छात्रवृत्ति प्राप्त करके इसी कालेज से इन्टरमीडिएट पास किया है। आजकल ये प्रयाग विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग के प्राध्यापक हैं।

पंचम पुष्प

श्री इन्द्र गांधी का है। ये इस समय उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक हैं। बी० एन० एस० डी० कालेज से ही इन्होंने इन्टरमीडिएट पास किया है। अपनी श्रद्धांजलि इन्होंने अपने आचार्य के प्रति अर्पित की है।]

प्रथम पुष्प

कभी कभी कोई शब्द, कुछ अक्षर, कुछ ध्वनियाँ अभिव्यक्ति की मजबूरी बन जाती हैं और फिर खन्नाजी जैसे व्यक्ति की अभिव्यक्ति। 'हीरालाल', 'हीरालाल खन्ना'। 'प्रिंसिपल साहब' आप सौ तरह से कहने की चेष्टा कीजिए परन्तु जो अर्थ, जो ध्वनि 'खन्नाजी' के उच्चारण से निकलती है उसे कभी नही छू सकते। बी० एन० एस० डी० के किसी छात्र का परिचय इन ध्वनियो से न हो—वह इन्हे सुनकर एक साफ सफेद साफे और उसके साथ झरने सी लहराती पट्टी का ध्यान न कर उठे यह असम्भव है। 'खन्नाजी' कहा और उनका चुपके से क्लास में आ जाना, चपत लगाना, सीधे-तीखे मतलब के प्रश्न करना—ऐसे जैसे हर छात्र की कुडली उनके पास हो। न नाम भूलना न काम सब कुछ एक साथ याद आया। बाटा के नीरव सफद जतो के कारण चरणध्वनि के अभाव में उनका आभास पवन की तरह से केवल स्पर्श से ही ज्ञात हो पाता या कभी कभी सन सन करती आवाज से। कालेज का ऐसा कुछ नही जिससे उनका परिचय न हो, कालेज में ऐसा कोई नही जिसे उनका परिचय न हो।

गणित मेरा एक विषय था और ट्रिगनामेट्री पढाने का भार स्वय खन्नाजी ने लिया। मुझे अच्छी तरह से याद है कि कुछ प्रारभिक परिभाषाओ (sin Q, cos Q) तथा कुछ छोटे-मोटे सवालो के अतिरिक्त साल भर और कुछ भी पढाई नही हुई। आप पूछगे तो हुआ क्या ? हुआ यह कि कालेज की सफलताओं का पूर्ण इतिहास हम सब लोगो को कठस्थ हो गया। 'खन्नाजी' क्लास मे आये और मेज के इधर उधर घूमकर बाये हाथ की हथेली पर दायें की उँगली पटकते हुए कभी बलपूर्वक और कभी धैर्यपूर्वक हम लोगो को बताते कि कब किस छात्र ने कैसे कितनी सफलता पाई, वह कहाँ कहाँ गया—कितना गौरव उसे मिला और उस सबका कारण समझने में किसी को देर न लगती कि वह इसी बी० एन० एस० डी० की उपज था—आदि आदि। 'कॉक्स मेडेल' की बात वे सदैव करते। कितने लडको ने उसे पाया उनके नाम आप किसी प्रकार भी उनकी स्मृति मे पृथक् नही कर सकते। मैं सोचता कि यह व्यक्ति सच पूछा जाय तो स्वय कालेज है। कोई भी क्षण नही जब खन्नाजी कालेज के विषय में न सोचते हो और कोई भी कार्य नही जो कालेज के हित में न करते हो। लगता कि क्या इस व्यक्ति से परे बी० एन० एम० डी० की सत्ता की कल्पना हो सकती है तो उत्तर नकार मे मिलता। अगर वे ट्रिगनोमेट्री पूरी तरह पढाते तो सचमुच हम लोगो का उतना लाभ न होता जितना उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्शों की स्मृति से, उनके द्वारा दिलाये गये सतत उत्साह के बल से होता रहा। मुझे प्रतीत होता कि अगर भगवान् स्वय प्रकट होकर 'खन्नाजी' से बरदान माँगने को कह तो कदाचित् वे भरत की तरह कह उठे—

> अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौ निरवान।
> जनम जनम कालिज बढै यह वरदान न आन॥

जहाँ तक कालेज के शासन का, नियत्रण का और व्यवस्था का सम्बन्ध है, खन्नाजी को मैंने सदा कठोर पाया पर जहाँ अन्य धरातल पर उन्हे देखा सदा ही कोमलता, वत्सलता और सहानुभूति से सिक्त देखा। परिश्रमी और प्रतिभाशील छात्रो को वृत्ति और पुस्तकों की व्यवस्था करके सदैव उन्होंने उत्साहवर्धन दिया। मुझे एक भी अपवाद उनके इस स्वाभाविक नियम का स्मरण नही आ रहा।

खन्नाजी जिस विद्यार्थी के विषय मे एक धारणा बना लेते वह उनके उद्दश्य की तरह अचल हो जाती। मैं चित्र भी बनाता हूँ और कभी-कभी कविता के नाम पर कुछ अक्षर भी गूँथ लेता हूँ। 'खन्नाजी' इस बात को सदैव एक चमत्कारवादी रूप में परिचय देते समय बिना कहे नहीं मानते। कहते कि

जगदीश को कोई कविता दो, वह उस पर चित्र बना देगा और कोई चित्र दो उस पर कविता। अपने विषय में ऐसे निर्णय को जब मैं अब सोचता हूँ, तो देखता हूँ कि शायद इने गिने कुछ ही चित्र होंगे जिन पर मैंने कविता बनाई होगी और कुछ ही कविताएँ होंगी जिन पर चित्र। पर 'खन्नाजी' के मन में एक अचल और दृढ विश्वास जम गया सो जम गया। आज उनका यह विश्वास बहुत अश में इन दोनो दिशाओ में मेरे विकास का पाथय रहा है। खन्नाजी की ममता का व्यापक क्षेत्र भी है। वह B N S D से इसलिए मोह नही करते कि उनके विचारो में सकीर्णता है, वरन् इसलिए कि वह शिक्षा-विषयक उनके आदर्शों का सबसे सफल प्रयोग है। अब देखता हूँ कि उन्होने नये स्कूल की स्थापना कर डाली—नये उत्साह से, नए साहस से। किसे सदेह होगा अब कि उनका उद्देश्य व्यापक नही है और उनकी सहानुभूति एकागी।

एक दिन कुल्ला करते समय जब उन्होने अपने बनावटी दाँत निकालकर अलग रख दिये तो मुझे आश्चर्य हुआ कि वे इतने वृद्ध भी है नही तो उनका कार्य और परिश्रम तो निस्सदेह तरुणाई को लज्जित करता है।

जगदीशप्रसाद गुप्त 'विश्व'

× × × ×

द्वितीय पुष्प

मेरा सौभाग्य रहा है कि मैं खन्नाजी का सत्सग पा सका, विद्यार्थी रूप में उन्हे समीप से देख सका। मुझे उनमें कुछ ज्वलन्त गुण दिखे, जिनसे मै बहुत प्रभावित हुआ। वे जैसे मेरे जीवन की प्रेरणा ही बन गये हैं। इन पक्तियो मे मेरा उद्देश्य उन्हे स्वीकार करना ही है।

सादगी का जीवन, विचारो की उच्चता, सिद्धान्तो के प्रति मोह और धीरता मुझे खन्नाजी में सभी समाहृत रूप मे मिले।

बी० एन० एस० डी० कालेज में बिताये सात वर्षों में मैंने उन्हे सदा उसी सादा लिवास मे देखा। वही चूडीदार पाजामा, वही बद गले का कोट और वही पगडी। जैसे यह पोशाक खन्नाजी का अपना निजी परिचिह्न (characteristic) हो। उनके घर जाइए, चारो ओर एक निश्छल सादगी ही मिलेगी। उनके ड्राइगरूम में आप पायेंगे न तो आज की बोझिल प्रदर्शनप्रियता, न तडक भडक ही। वहाँ मिलेगा एक ओर बिछा हुआ तख्त, एक ओर रक्खी हुई कुर्सियाँ, बोल्ता हुआ रेडियो, एक कोन में कुछ करीने मे लगी हुई कुछ बिखरी हुई पुस्तकें और उनके बीच में खन्नाजी की मिलनसारता, विनोद-प्रियता और उपदेशात्मिका प्रवृत्ति।

सिद्धान्तो के प्रति लगाव खन्नाजी की दूसरी विशेषता है। उनका जीवन का अपना मूल्याकन है,

अपने सिद्धान्त है और उनसे अति लगाव। उनकी यही सिद्धान्तप्रियता कभी-कभी रुक्षता प्रतीत होने लगती है। एक छोटा सा उदाहरण—अपने कालेज के काम के घण्टा म वह चाहते है कोई भी व्यक्ति न विद्यार्थी से ही और न अध्यापक से ही मिलन आवे। इससे कालेज की गति विधि म व्यतिक्रम होना है। ठीक भी है। पर दूर से आया हुआ किन्ही आवश्यकताओ स ही मिलन का उत्सुक आगन्तुक उनका उपदेश—कभी-कभी डाँट भी—पाकर कुछ हताश, कुछ खिन्न और कुछ रुष्ट अवश्य हो जाता है।

उनका अपना विश्वास है कि वह मनुष्य जो अपना लक्ष्य आकाश बनाता है अपना तीर उसस अवश्य दूर फेंकता है जिसका लक्ष्य पेड की चोटी होता है। सफलता का रहस्य भी यही है। यह उच्च गभीरता मानव की न जाने कितनी कमजोरिया को पनपन नही देती और न जान कितन श्रेयकारी कार्य उससे कराती है।

खन्नाजी के जिस गुण ने मुझ पर सबसे अधिक प्रभाव डाला है वह है उनका अद्वैध व्यक्तित्व। आज के युग में मन और वाणी म न जाने कितना वैषम्य आ गया है। एसे युग में इस गुण की महत्ता कम से कम में अवश्य स्वीकार करता हूँ। मैं मानता हूँ यह गुण खन्नाजी का एकाधिकार नही है। पर, फिर भी मुझे उनके व्यक्तित्व म यह सबसे अधिक महत्त्वशील गुण दिखता है।

कानपुर के सभ्रान्त नागरिक के रूप में या शिक्षा प्रसार के कमठ योद्धा के रूप में मैं समझता हूँ मुझे कुछ कहने का अधिकार नही है—फिर भी इतना कहना अनुचित न होगा कि सी० ए० बी० स्कूल, कानपुर हाईस्कूल अपने नगर को उन्ही की देन है और बी० एन० एस० डी० कालेज का गौरव उनकी अपनी अर्जित सम्पत्ति।

सचमुच, अगर हम उनकी 'सेवाओ को गौरव दना चाहत है, सबसे अच्छा यह होगा कि हम धन एकत्र कर उनकी सेवाओ की स्वीकृति-स्वरूप एक शिक्षा-सस्था प्रारभ कर।

—महेशदत्त दीक्षित एम० ए०

× × × ×

तृतीय पुष्प

या तो मानव आत्मा सौन्दर्यबोध की अनुभूति में स्वभावत प्रफुल्लित हो उठती है, परन्तु फिर भी सहज प्रसन्न विद्यार्थी सद्गुरु दीक्षा पाकर सतत प्रवाहित आनन्द एव सुख के पथ पर अग्रसर होती हुई जीवन क्रान्ति म एक विशेष सजीवता एव आत्मीय आश्रय प्राप्त करता है और इस नाते से हम खन्नाजी के ऋणी है। आपका सदा से प्रत्येक वस्तु की गहराई के नापने का अपना निराला तरीका रहा है। आप किसी सीमित भावना के वशीभूत होकर न स्वय चलते है न दूसरो को चलने की सलाह दते है। आपका अपना विश्वास है कि हम किसी मनुष्य में मानवीय गुणो के सचार को इस कारण से असम्भव नही मान सकते है कि वह भूत में कुछ समय तक कुभावनाओ के वशीभूत अनवरत दुराग्रही था। आप सभी परिस्थितियो को अनुकूल देखते है और सभी पुष्पो में देवत्व की पाकर पवित्रता के शुचि स्वरूप का अनुभव करने के आदी है। अधम से भी अधम कम पढनेवाले विद्यार्थी को आप सहजग्राही प्रोत्साहन देते

से नही चूकते है। आपके इस उत्कृष्ट गुण के कारण विद्यार्थी-समाज का जो महान् उपकार हुआ है वह विरला है इसमे तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी।

एक साथ शिक्षक, सुधारक एव खरी बात करने मे न चूकनेवाले खन्नाजी की विचारधारा नित्य सत्य का अनुभव करनेवाले वैज्ञानिक की भाँति प्रेरणात्मक एव सक्रिय है। आप न तो आदर्शवाद के अन्धविश्वासी है न लकीर के फकीर ही। एक समय आपने मुझे प्रिंसिपल रूम मे जो सदुपदेश दिया था वह चिरस्मरणीय है। आशय था—"सच्चे विचार के पक्के अध्यवसायी परिश्रमी तथा कर्तव्यशील बनो। दृढ सकल्पशक्ति से अनुप्राणित हुए विद्यार्थी सबल बनते है। यह विद्यार्थी जीवन वह सग्राम है जिसमें पिता की शूरता पुत्र के काम नही आती है। वर्तमान को असत्य और विश्राम मे बिताकर भविष्य को सुधार की भित्ति पर आधारित रखना श्रेयस्कर नहीं, इससे कर्म-सौन्दर्य की योजना को धक्का पहुँचेगा।'

लगभग चतुर्थांश शताब्दी तक आपने विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म कालेज की सेवा कर इसे ख्याति-नामा बनाया है। आपकी इन सेवाओ के फलस्वरूप ही इस कालेज के विद्यार्थी एक लम्बे अर्से से उत्तर प्रदेश में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करते आए है और भविष्य मे जब तक आपके आशीर्वाद का इस कालेज के साथ लगाव है तब तक कोई कारण नही है कि यह उत्तरोत्तर उन्नति न करता जाय। हम परमपिता से आपके दीर्घजीवी होने की कामना करते है।

—शिवप्रसाद

× × × ×

चतुर्थ पुष्प

बी० एन० एस० डी० कालेज के आफिस के सामने उत्सुक विद्यार्थियों का भारी जमघट था। पुरुष से एक भी कदम पीछे न रहनेवाली साइकिलो ने उस विद्यार्थीवर्ग को और भी वृहत् आकार दे दिया था। आने-जाने का रास्ता लगभग बन्द हो गया था। सहसा एक व्यक्ति सामने तेजी से आया और बोला, 'फिर तुम लोगो ने रास्ता बन्द कर दिया, हटो यहाँ से।" आनन-फानन मे विद्यार्थी-दल काई की तरह फट गया। पैरो में सफेद जूता, सफेद पायजामा, कोट बन्द गले का और उसके ऊपर साफा—नीचे से ऊपर तक हिन्दुस्तानी यह व्यक्ति कौन हो सकता है, यह मैं सोचने लगा। ये सतुलित वचन और यह शासन। मैं दग था। थोडी देर बाद मालूम हुआ ये ही महोदय प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना थे।

'सादा जीवन उच्च विचार' ये शब्द खन्नाजी के लिए ठीक उतरते है। रहन-सहन मे सभी जगह सादगी मिलेगी—क्या कपडो मे, क्या घर की सजावट में, क्या भोजन में।

मुझे याद है कि खन्नाजी को कालेज के सभी लडको के नाम याद थे। इस असाधारण स्मरण-शक्ति पर आश्चर्य होता है। उनकी इस स्मरण-शक्ति के ही कारण उस कालेज का अनुशासन इतना श्लाघ्य था। प्रत्येक विद्यार्थी समझता था कि मेरे प्रत्यक कार्य पर दो आँखा का अनवरत पहरा है।

उनके जीवन में क्रमबद्धता है। वह क्रमबद्धता सीमा पार करने की विफल चेष्टा करती है। सीमा तक तो वह बहुत पहले ही पहुँच चुकी है। खन्नाजी के सारे जीवन की सारी सफलता का सारा श्रेय सम्भवत उनकी असीम क्रमबद्धता (regularity) और स्मरणशक्ति को है। वे कभी एक मिनट देर से नहीं आये। अनियमित जीवन को वे मृत्यु से बुरा समझते है। यह क्रमबद्धता इतनी अधिक है कि उनका भोजन भी

अत्यन्त सयत है। सप्ताह मे एक दिन फलो पर रहना और एक दिन भूखे रहने का वे उपदेश करते है और सम्भवत स्वय भी ऐसा करते है।

किसी काम को पूरा करने की कला मे वे दक्ष है। काम के पूर्ण होने तक वे उसमें जुटे रहेगे। उद्देश्य की एकता उनमें बहुत माना मे है।

धनहीन विद्यार्थियो की सहायता में वे अग्रगण्य है। छात्रवृत्ति, नि शुल्कता और विना मूल्य किताबे वे प्राय विद्यार्थियो को दिया करते थे। धनहीन परन्तु तेज विद्यार्थियो के लिए कालेज एक सुरक्षित स्थान हो गया था जहाँ वे निश्चिन्त होकर विद्याध्ययन कर सकते थे।

उनके गुणो की सफलता का प्रमाण बी० एन० एस० डी० कालेज है। परीक्षाफल मे कालेज अपने सूबे में प्राय सर्वश्रेष्ठ रहा करता है। जो विद्यार्थी वहाँ से निकलते है वे यूनिवर्सिटी मे भी अपनी योग्यता की धाक जमाकर ख्याति प्राप्त करते है। कालेज खन्नाजी का सर्वस्व था। हर समय उन्हे कालेज का ध्यान रहता था। कालेज और उसके छात्र अपने प्रिंसिपल के ऋणी रहेगे।

श्री रघुनन्दनसिंह एम० ए०

× × × ×

पञ्चम पुष्प

अपने प्रवेश के लिए पहले-पहल जब मै बी० एन० एस० डी० कालेज गया तब उसका वह स्वरूप नही था जो आज दिखलाई पडता है। अब तो कालेज की इमारत काफी बढ गई है। अस्तु! अपनी पहली मुलाकात में मैंने देखा कि एक गोरा सा पतला-दुबला औसत ऊँचाई का व्यक्ति जो कि बूढा होते हुए भी बहुत ही क्रियाशील, सतर्क और शालीनता-युक्त दृष्टिगोचर होता था, बिलकुल सफद लिवास में—सफद पायजामे से लेकर सफेद कोट और सफेद साफे तक—अपने आफिस के सामने कुर्सी पर बैठा फाइलें उलट रहा है। नमस्कार के पश्चात् प्रश्नो की बौछार कर दी।

गणित के प्रश्नो में खन्नाजी का मत सदा यह रहता था कि किसी भी प्रश्न से निराश होने के पहले कम से कम उसे दस बार भिन्न-भिन्न समयो पर हल करने का प्रयास करना चाहिए। परन्तु साधारणतया छात्रो के पास न तो इतना समय था और न धैर्य। खन्नाजी का दूसरा प्रिय कथन था कि "गणित विषय पढने का नहीं, हल करने का है।"

खन्नाजी का अन्त जितना मधुर था वाह्य उतना ही कठोर। बहुत ही कम सौभाग्यशाली उनके हृदय मे प्रवेश करके उन्हे समझ पाते थे। प्राय लोग उनके कठोर बाह्य से ही टकराकर वापस लौट जाते थे, और उनके विषय में अप्रिय और भ्रमपूर्ण धारणाएँ बना लेते थे। खन्नाजी बहुत अनुशासनप्रिय है। छोटी सी भूलो पर भी कई बार छात्रो को वे कठोर चेतावनी दिया करते थे, यद्यपि उनका मधुर

और सवेदनाशील हृदय कभी उन्हे उन कठोर चेतावनियो को पूरा नही करने देता था। सच्चे क्रातिकारी और सक्रिय देशभक्त को वे सब प्रकार की सहायता और सुविधा प्रदान करते थे। एक बार तो मैंने सुना कि किसी ऐसे क्रातिकारी छात्र को जिसकी खोज म अँगरेजी सरकार व्यस्त थी, उन्होने अपने घर में शरण दी और एक सध्या को अपने कपडो और अपन ताँग मे उसे स्टेशन भेजवा दिया।

सम्राजी बहुत ही व्यवहारकुशल है और इसलिए उनको ठीक तरह समझ पाना सुगम न था। मै भी सम्भवत अपन छात्रजीवन म उनको उस रूप म और उस तरह कभी न समझ सका जिस प्रकार आज समझ रहा हूँ।

खन्नाजी छात्रो के न केवल अध्ययन का ही ध्यान रखते थे अपितु उनके भोजन स्वास्थ्य एव अन्य विषयो के प्रति भी पूर्ण सजग रहते थ। किसी भी छात्र को देखकर वे उसे बुलाते और उसके दोनो गालो पर हल्के स्नेहपूर्ण हाथो मे चपत लगाते हुए उसके स्वास्थ्य के बारे में कहना सुनना शुरु करते और फिर तुरन्त उसकी आँखें खोलकर और पुतली को उलट-पलटकर उसका निरीक्षण करते। इस प्रकार वे सब छात्रो के स्वास्थ्य का ब्यारा रखते थ। इसके साथ ही साथ छोटी से छोटी बातो के सुप्रबन्ध मे भी उनका हाथ रहता था। परीक्षा के दिनो म वे इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि कोई परीक्षार्थी बीमार न पड जाय। इसके लिए छात्रावास में जाकर वे स्वय सबको आदेश, उपदेश देते और पेट साफ रखने को कहते। कहने के साथ ही वे अपने पास से या होस्टल की तरफ से गुलकद, ईसबगोल इत्यादि मँगवाकर रोज शाम को सबको बँटवाते। मैंने तो अपने जीवन मे और कही किसी कालेज में प्रिंसिपल को छात्रो के लिए इतना कुछ करते नही देखा। कभी किसी छात्र को परीक्षा-भवन में पहुँचने में यदि विलब हो जाता तो फौरन खन्नाजी की मोटर उसे लाने के लिए निकल पडती। यह सब इसीलिए सभव हो पाता था कि खन्नाजी में सब छात्रो को व्यक्तिगत रूप से जानने-पहचानने और याद रखने की आश्चर्यजनक प्रतिभा थी। इस सम्बन्ध में तो डा० श्री अमरनाथजी झा को छोडकर और किसी में मैंने उनकी जैसी प्रतिभा नही देखी है।

अच्छे से अच्छे छात्रो को बी० एन० एस० डी० कालेज में लाने का श्रेय श्री खन्नाजी को ही है। उन्ह अपने पास से सब प्रकार की सहायता भी देते थे। योग्य छात्रो के लिए उनके घर के दरवाजे सदा खुले रहते थे। कालेज की ओर से छात्रा को सहायता देने के साथ ही साथ खन्नाजी कुछ बालको को सदा अपने पास से १०) रु० या १५) रु० मासिक की सहायता भी दिया करते थे और उनका परीक्षा-शुल्क भी स्वय दे देते थ। खन्नाजी के सुप्रबन्ध में बी० एन० एस० डी० कालेज में बहुत अच्छी पढाई होती थी। जो छात्र किसी भी विषय में कमजोर होते थे और निर्धनता के कारण अपने लिए अलग शिक्षक का प्रबध नही कर सकते थे, उनके लिए खन्नाजी सध्या समय या प्रात काल कालेज में ही विशेष अध्यापन का प्रबन्ध कर देते थे और इस युक्ति से उन्हे सहज ही आवश्यक सहायता प्राप्त हो जाती थी। वैसे भी कालेज के सभी अध्यापकगण छात्रो की उन्नति में व्यक्तिगत रुचि रखते थे और उनकी कठिनाइयो को दूर करने के लिए सदा तत्पर रहते थे।

खन्नाजी के व्यक्तित्व के कारण बी० एन० एस० डी० कालेज में समय समय पर श्री पुरुषोत्तमदासजी टडन, श्री प० माखनलालजी चतुर्वेदी, श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित, स्वामी श्री करपात्रीजी और श्री पृथ्वीसिंह आजाद जैसे सभी प्रकार के विचारो के महान् नेता आते रहते थे और उनके दर्शन करने और भाषण सुनने का सौभाग्य छात्रो को प्राप्त होता रहता था। खन्नाजी की एक और विशेषता यह थी कि वे

कालेज के लिए चन्दा माँगने और दान लेने में अत्यधिक निपुण थे। इस विषय में उनको महामना श्री मालवीय जी का समकक्षी ही समझा जा सकता था। विवाह, शादी, दावत, व्यापार कुछ भी हो प्रत्येक समारोह मे सम्मिलित होते हुए खन्नाजी का प्रमुख ध्येय अपने कालेज के लिए चन्दा लेना रहता था। उनका सादा जीवन, हँसमुख चेहरा, सरल स्वभाव और अपने कालेज के प्रति उनकी उत्सर्ग-भावना बरबस सब का मन आकर्षित कर लेती थी और वे चन्दा लेने के कठिन कार्य में भी बहुत कुछ सफल होते थे। कालेज की वर्तमान अवस्था का सपूर्ण श्रेय खन्नाजी के अपरिमित परिश्रम, उत्साह और अध्यवसाय को ही है। हम सभी के स्मृतिपटल पर उनका बहुत ही आदर और स्नेहपूर्ण चित्र अंकित है। आज संस्मरण की इस वेला में हम भावातिरेक में समझ नही पाते कि किन शब्दो मे अपनी श्रद्धाञ्जलि उनके चरणो मे अर्पित करे।

इन्द्र साथी
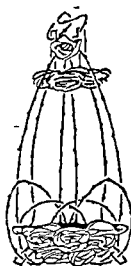
मेरे गुरुदेव

डा० व्रजमोहन, काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० व्रजमोहन ने अपने गुरुदेव खन्नाजी के सम्बन्ध में लिखे गये इस सुन्दर परिचयात्मक लेख में बताया है कि किस प्रकार उनके जीवन और व्यक्तित्व के निर्माण में प्रत्येक पग पर खन्नाजी का प्रभाव पडा और अब भी पडता जा रहा है। खन्नाजी का कठोर सयम, उनकी सरलता, व्यावहारिकता, तीक्ष्ण बुद्धि, कठिनाइयो से युद्ध और सफलता आदि ऐसी बातें रही है जिनका प्रभाव राष्ट्र के उगते हुए हृदयो पर पडे बिना रह ही नही सकता। विद्वान् लेखक ने बताया है कि किस प्रकार खन्नाजी जैसे व्यक्तित्व के पद चिह्नो पर चलते हुए राष्ट्र के तरुण अपने जीवन को सफलताओ और वरदानो से पुष्पित और फलान्वित कर सकते है।]

आज से लगभग ३० वर्ष पहले की बात है। मै मुरादाबाद के एक स्कूल में पढता था। उन दिनो स्कूल के बच्चो का दृष्टिकोण बहुत सकुचित रहता था। हम लोग यदा-कदा कालेजो के विषय में चर्चा सुना करते थे। मेरे भाई ने उसी वर्ष कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में अपना प्रवेश कराया था। उन्होने मुझे बताया कि उनके एक प्रोफेसर खन्नाजी है जो उन पर बडी कृपादृष्टि रखते है। वे एक प्रकार से उनके अभिभावक ही है। खन्नाजी के विषय में मेरे मस्तिष्क में जो सबसे पहला चित्र खिचा वह इस प्रकार का था —२०) वाला फेल्ट हैट होगा, सुन्दर-सी फूलदार टाई होगी, अँगरेजी ढग का कोट होगा और पतलून की शिकन कभी मिटती ही न होगी। यह तो मैने नही सोचा था कि उनके कपडे पेरिस में धुलते होगे, परन्तु यह मेरा विचार अवश्य था कि उनके सूट व्हाइटवे लेडला मे नीची स्थिति के दर्जी के यहां नही सिलते होगे।

सन् १९२३ ई० में मैने हाईस्कूल परीक्षा पास की और डी० ए० वी० कालेज कानपुर में नाम लिखाया। बडी उत्सुकता से मैने प्रथम बार खन्नाजी के दर्शन किये। देखा कि हैट के स्थान पर खद्दर की पगडी थी अँगरेजी कोट के स्थान पर पजाबी कुरता था और पतलून के स्थान पर धोती थी। मै बहुत प्रभावित हुआ। मैने सोचा कि इतने बडे कालेज के इतने बडे प्रोफेसर और यह सरलता। वास्तव में इनके अन्दर कोई तथ्य होगा। उस दिन से खन्नाजी से मेरी घनिष्ठता बढती गई और कुछ समय में ही उसने पिता पुत्र का रूप धारण कर लिया जो आज तक अक्षुण्ण है। अतएव इन पक्तियो के पीछे भक्त की भावना, पुत्र का वात्सल्य और शिष्य का आदर निहित है, और निहित है २६ वर्ष का अटूट सम्बन्ध।

(२)

लाला हीरालाल खन्ना का जन्म सन् १८८९ ई० में रियासत रीवां के एक सम्भ्रान्त घराने में हुआ था। वहां आपकी ननसाल थी। परन्तु बाल्यकाल से ही आप अपने माता पिता सहित लखनऊ में रहने लगे थे। आपके पिता लाला ठाकुरदास की कोई विशेष आय नही थी। अतएव आपकी शिक्षा दीक्षा का सारा भार आपकी माताजी पर ही पडा। घर की आर्थिक दशा अच्छी नही थी। यह छोटा-सा परिवार आठ

आने महीने किराये की एक कोठरी म रहता था। आपकी माताजी कसीदे काढकर थोडी-सी आय कर लेती थी। उसी से आपका लालन पालन और शिक्षा होती थी।

माँ ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि बालक के भाग्य में विद्या नही बदी है। बालक का स्वभाव आरभ से ही चचल और उच्छृखल था और शिक्षा की ओर उसे कोई विशेष रुचि नही थी। गलियो मे कूदना-फाँदना और मारना-पीटना बालक का नित्य-कर्म था। माँ की समझ में नही आता था कि बच्चा जब पढे लिखेगा नही तो वडा होकर गृहस्थी की गाडी किस प्रकार चलायेगा। उन्ही दिनो एक बार बालक के नानाजी लखनऊ आए। माँ ने उनसे पुत्र की बहुत शिकायत की। नाना ने लडके को बुलाया, बुरा भला कहा और मारने को डडा चलाया। बालक ने फुर्ती से पैंतरा बदलकर डडे का वार बचा लिया और डडा जमीन पर पडा। नानाजी कुछ खिसिया गए। उनकी सूरत देखकर बालक भाग गया और कही जाकर छिप रहा। नानाजी ने यह निश्चय किया कि वह बालक को अपने साथ रीवाँ ले जायेंगे और वही लालन पालन करेंगे।

इस प्रकार बाल्यकाल मे ही खन्नाजी अपने नानाजी के साथ रीवाँ चले गए। वहाँ आपकी एक मामी थी जिनसे आपकी कभी न बनती थी। आपके सम्बन्ध में नित्य ही बालोचित 'मुकदमे' लगे रहते थे जिनका निर्णय आपके नानाजी को करना पडता था। एक दिन बात बहुत बढ गई और आपने विचार किया कि अब आपका उस घर में रहना असभव है। आप बिना किसी से कुछ कहे-सुने घर से चल दिए और बम्बई पहुँच गए। वहाँ आपने कुलियो में नाम लिखा लिया। प्राय १५ दिन आपने कुली का काम किया। इसक पश्चात् आप अस्वस्थ हो गए। बम्बई में ही आपके पिताजी के एक मित्र, जो कोई मारवाडी सेठ थे, रहते थे। उन्हे आपकी अस्वस्थता का पता चला तो आपको अपने घर ले गए। वहा से सेठजी ने आपको अम्बाले भेज दिया जहाँ आपके बडे भाई किसी सरकारी पद पर नियुक्त थे।

अम्बाले में आप निश्चिन्त रूप से रहने लगे। यहाँ उस प्रकार का कलह-क्लेश नही था जैसा रीवाँ म था। आपने वही से हाईस्कूल परीक्षा पास की। अब प्रश्न आया कि आपको उच्च शिक्षा किस प्रकार दी जाय? घर की आर्थिक दशा ऐसी नही थी कि इतना बोझ वहन हो सके। उन्ही दिनो देश के एक कोने में अकाल पडा और स्वर्गीय प० मदनमोहन मालवीय ने सहायताकार्य का सघटन किया। खन्नाजी एक उत्साही युवक थे और आपको इस प्रकार का कार्य करने में रुचि थी। इस प्रकार आप महामना मालवीयजी के सम्पर्क में आए। मालवीयजी आपके अकाल-सम्बन्धी कार्य से बहुत प्रभावित हुए। उन्होने सोचा कि एक प्रतिभाशाली युवक की विद्या आर्थिक कठिनाई के कारण अधूरी रही जाती है। अतएव पडितजी ने आपके लिए एक छात्रवृत्ति का प्रबन्ध कर दिया। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपना प्रवेश करा लिया।

छात्रालय में रहकर आपने कभी ट्यूशनें की, कभी समाचार-पत्रो के सवाददाता रहे कभी समाचार कम्पनी के एजेण्ट। यहाँ तक कि बहुत दिनो तक आपने वाहक के रूप में समाचार पत्रो का घर घर वितरण किया। प्रात से साय तक आपको तनिक भी अवकाश नही मिलता था। उन दिनो छात्रालयो में इतनी आपेक्षिक स्वतत्रता नही थी जितनी आजकल है। उपस्थिति सम्बन्धी बहुत कडे प्रतिबन्ध थे। आपके छात्रालय का यह नियम था कि समस्त छात्र रात के ८ बजे तक छात्रालय के अन्दर आ जायँ। अपने बहु-धधी कार्यो के कारण आपको इसमें बडी अडचन पडती थी। अतएव आपने पूज्यपाद मालवीयजी से इसका उल्लेख किया। मालवीयजी ने विश्वविद्यालय के उच्चाधिकारियो से मिलकर आपको यह सुविधा दिलवा दी कि आठ बजेवाला नियम आप पर लागू न हो। सारे छात्रालय म केवल आप ही के लिए यह अपवाद किया गया।

विस्तार के भय से आपके कालेज-जीवन की अन्य छोटी-मोटी घटनाएँ नही दी जा सकती। आपको बहुत से लोगो से भिन्न-भिन्न प्रकार की सहायता लेनी पडी। किसी से आपको छात्रवृत्ति मिलती थी, कुछ सज्जनो से आपको ट्यूशनें मिल जाती थी, एक वृद्ध स्टेशनमास्टर से आप उर्दू और फारसी पढते थे। किसी प्रकार ६ वर्ष बीत गये। जब आप एम० एस्-सी० के विद्यार्थी थे, आपने विवाह कर लिया। परीक्षा समीप थी। जीविकोपार्जन के लिए आपको इतने कार्य करने पडते थे कि पढने के लिए समय ही न मिल पाता था। अतएव परीक्षा के लिए आप कोई तैयारी न कर पाये। विचार था कि परीक्षा में बैठें ही नही, परन्तु मित्रो के आग्रह के कारण आपको बैठना पडा। आपको आशा नही थी परन्तु किसी प्रकार आप उत्तीर्ण हो गये।

(३)

यह १९१२ ई० की बात है। एम० एस्-सी० पास करते ही खन्नाजी को प्रयाग में ही एक स्कूल में अध्यापक का स्थान मिल गया। उस स्थान पर आप प्राय दो वर्ष रहे। आगरे के सेन्ट जान्स कालेज में गणित के प्रोफेसर का स्थान रिक्त हुआ। आपने प्रार्थना-पत्र भेजा। परन्तु कुछ ही दिन पश्चात् आपको पता चला कि आपके एक घनिष्ठ मित्र ने उसी स्थान के लिए प्रार्थना-पत्र दिया है। आपने सोचा कि "मै तो इस स्कूल से जीविकोपार्जन कर ही लेता हूँ, परन्तु मेरे मित्र सर्वथा बेकार है। उनको आवश्यकता मुझसे अधिक है। अतएव उनकी इस स्थान पर नियुक्ति हो जाय तो उत्तम है।" ऐसा सोचकर आपने उक्त कालेज के प्रिन्सिपल को लिख दिया कि "मै अपने उक्त मित्र के पक्ष में अपना प्रार्थना-पत्र वापस लेता हूँ।" यह थी आपकी उदारता।

कालेज के प्रिन्सिपल पर आपके पत्र का बहुत अच्छा प्रभाव पडा। उसने उत्तर में लिखा कि "आपके मित्र की नियुक्ति की कोई आशा नही है। यदि आप चाहे तो आपको वह स्थान मिल सकता है।" इस प्रकार आप सेन्ट जान्स कालेज, आगरा में नियुक्त हो गये। उक्त स्थान पर आप प्राय ५ वर्ष रहे। वही पर आपको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। सन् १९१९ ई० में कानपुर में डी० ए० वी० कालेज की स्थापना हुई और आपको उसमें प्रोफेसर का स्थान दिया गया। सन् १९२० ई० मे आपके घर में एक कन्या ने पदार्पण किया परन्तु वह कन्यारूपी मणि चचला लक्ष्मी की भाँति आई और लुप्त हो गई, और अपने साथ ही अपनी जननी को भी लेती गई।

(४)

इस प्रकार ३१ वर्ष की युवावस्था में ही आप विधुर हो गये। आपकी गृहस्थी मे केवल ३ वर्ष का एक पुत्र था। आपके मित्रो और सम्बन्धियो ने आपसे बहुत आग्रह किया कि आप दूसरा विवाह कर लें, परन्तु किसी के भी अनुरोध के कारण आप अपने आदर्श से गिरनेवाले न थे। उस दिन से आज तक आपने विधुर जीवन ही व्यतीत किया है। चूँकि आप अकेले इतने छोटे बच्चे का लालन-पालन नही कर सकते थे, पुत्र को उसके मामा दिल्ली ले गये जहाँ वह कई वर्ष रहा। इस प्रकार आप पुत्र के पोषण की चिन्ता से भी कुछ समय के लिए मुक्त हो गये और अपना सारा समय शिक्षा-सम्बन्धी कार्यो में ही लगाने लगे।

सन् १९२७ ई० मे बी० एन० एस० डी० कालेज की स्थापना हुई और आपको उसका प्रिन्सिपल नियुक्त किया गया। इस स्थान को आप अब तक सुशोभित करते रहे है। जीवन भर की तपस्या के पश्चात् अब आप अवश्य ही अवकाश और विश्राम के अधिकारी है। बी० एन० एस० डी०

कालेज को आपने कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया, यह मेरे कहने की बात नही है। उक्त कालेज का प्रत्येक विद्यार्थी और अध्यापक इस बात का साक्षी है। जब किसी नई सस्था की स्थापना हुआ करती है तो अनेक कठिनाइयाँ पडा करती है। उन कठिनाइयो को पार करके सस्था को आगे बढाना, इसी में सचालक की क्षमता और बुद्धिमत्ता है। चली-चलाई प्रतिष्ठित सस्था को चलाना तो उपेक्षाकृत सरल है। परन्तु नई सस्था में जान डालना और उसे एक जीती-जागती प्रथम श्रेणी की सस्था बना देना अत्यन्त दुस्तर कार्य है। एक समय था जब बी० एन० एस० डी० कालेज की स्थापना हुई ही थी। कुछ लोग कहा करते थे कि "उस कालेज में कौन अपने बच्चो को भेजेगा। वहाँ फूटे शीशे और टूटी बोतलें तक तो है ही नही।" और एक समय आज का है कि उक्त कालेज ने अपने वार्षिक परीक्षा-फलो से सारे प्रान्त को चकित कर दिया है। प्रान्त भर में और कौन सा ऐसा कालेज है जहाँ लगभग शत-प्रतिशत विद्यार्थी उत्तीर्ण होते हो, सौ सौ विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में पास होते हो और ११-११ उच्च स्थान प्राप्त करते हो। कालेज को इस स्थिति पर पहुँचा देना किसी साधारण व्यक्ति का काम नही है। यह काम कोई खन्नाजी जैसा उच्च कोटि का प्रशासक ही कर सकता था। यही कारण है कि सारे प्रान्त में बी० एन० एस० डी० कालेज और खन्नाजी एक दूसरे से अभिन्न समझे जाते है। कोई पूछता है कि "कौन सा बी० एन० एस० डी० कालेज," तो उत्तर मिलता है कि "प्रिंसिपल हीरालाल खन्नावाला।" और यदि कोई पूछता है कि "कौन प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना," तो उत्तर मिलता है कि "बी० एन० एस० डी० कालेजवाले।" मेरा दृढ विश्वास है कि जब तक वायु में कपन है, जब तक हिमालय की चोटी हिम से आच्छादित है और जब तक गगा की धारा में पानी है, तब तक खन्नाजी का नाम बी० एन० एस० डी० कालेज के इतिहास के पन्नो में अमर रहेगा।

(५)

यदि कोई मुझसे पूछे कि तुमने खन्नाजी से क्या सीखा है तो मै यह कहूँगा कि 'जो कुछ मैंने सीखा है, उन्ही से सीखा है। उनके अतिरिक्त मै किसी ऐसे व्यक्ति का नाम लेने मे असमर्थ हूँ जिसने मेरे ऊपर कोई विशेष प्रभाव डाला हो।" अतएव यह सभव है कि अत्यधिक सामीप्य के कारण मेरी दृष्टि मे पक्षपात की झलक आ गई हो। खन्नाजी के व्यक्तित्व और चरित्र का वास्तविक मूल्याकन करना कदाचित् मेरे लिए सभव ही नही है। मै तो केवल भक्त की भावना से प्रेरित होकर थोडे से टूटे-फूटे शब्द आपकी सेवा में श्रद्धाजलि के रूप में अर्पित करता हूँ।

खन्नाजी में सबसे पहली बात जो दृष्टिगोचर होती है वह है आपका सयम। इसी सयम के कारण आप बिना थके प्रात से साय तक अविरत रूप से कार्य कर सकते हैं। आपकी कार्य-क्षमता आश्चर्यजनक है। वृद्धावस्था में आप जितना परिश्रम कर लेते है, मेरे जैसे व्यक्ति के लिए युवावस्था में भी उतना कर सकना सभव नही है। जब मै आपको कार्य करते देखता हूँ, स्तब्ध रह जाता हूँ। हम लोगो को दो-चार घटे कार्य करने के पश्चात् चाय चाहिए, जलपान चाहिए, विश्राम चाहिए, मनोरजन चाहिए। आपके जीवन में इस ढग के आमोद के लिए कोई स्थान ही नही है। मैने आपको आज तक न कभी चाय पीते देखा है, न सिगरेट पीते, न सिनेमा जाते। आप भोजन केवल इसलिए करते है कि उसके बिना काम नही चलता। यदि आपका बस चले तो आप महीनो भोजन न करें और बराबर कार्य मे रत रहे। कई वर्ष पहले की बात है। उन दिनो आप केवल दुग्धाहार करते थे। मैंने आपसे

पूछा कि "आप केवल दूध का ही सेवन क्यों करते हैं। पूरा भोजन क्या नहीं करते।" आपने उत्तर दिया कि "दूध के सेवन में सबसे कम समय लगता है।" यह उत्तर आप ही को शोभा देता है।

जब कभी मैं वानपुर होता हुआ मुरादाबाद जाता हूँ, मेरे कुटुम्बी मुझसे पूछते हैं कि "आजकल खन्नाजी खाना खा रहे हैं या नहीं?" क्योंकि उन्हें विश्वास है कि उनका भोजन-सम्बन्धी कोई न कोई प्रयोग तो चल ही रहा होगा। आजकल आपका भोजन है लौकी का फीका हलुआ, बिना मसाले की तरकारी और फल। बलिहारी है इस भोजन की! मुझे तो इतना सरल भोजन जब तक दण्ड-रूप में न दिया जाय, कदापि स्वीकार न हो। मुझे याद है कि जब महात्मा गांधी अन्तिम बार इंगलैण्ड गये थे तो उनके सम्मान में ब्रिटिश सम्राट् ने एक भोज दिया था जिसके विषय में वहाँ के समाचार-पत्रों ने लिखा था कि 'इससे सरल भोजन की हम कल्पना नहीं कर सकते।' भोजन में तीन वस्तुएँ थीं—टोस्ट, उबली हुई तरकारी और पानी।

इतने सरल भोजन पर भी खन्नाजी सप्ताह में एक दिन पूर्ण उपवास करते हैं। यही कारण है कि आपका स्वास्थ्य अद्वितीय है और कार्य-क्षमता असीम। आपकी सरलता आपके भोजन में ही नहीं, आपकी प्रत्येक बात में दृष्टिगोचर होती है। आप दशाब्दियों से कुरते धोती का प्रयोग करते रहे हैं। एक दिन आपके एक परिचित मिले जिनसे आपकी २० वर्ष पश्चात् भेंट हुई थी। उन्होंने देखते ही कहा "खन्नाजी, आपमें तो तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ है।" एक समय था जब सेंट जान्स कालेज आगरा में प्रायः सभी अध्यापक और बहुत से विद्यार्थी अँगरेजी कपड़े पहना करते थे। एक प्रकार से वहाँ का वातावरण ही विदेशी था। जब आप उक्त कालेज में प्रोफेसर होकर जा रहे थे तब आपके एक मित्र ने आपसे कहा कि "मैं २५) की शर्त बदता हूँ कि तुम उस कालेज में पहुँचकर एक वर्ष के अन्दर अँगरेजी सूट पहनने लगोगे।" उक्त सज्जन ने आपको वह २५) अभी तक नहीं दिये हैं।

आपकी सरलता कभी-कभी लोगों की आलोचना का विषय हो जाती है। आप संस्थाओं की सभाओं और बैठकों में भी अपने नित्य के वेश में ही जाते हैं। कुछ वर्ष पहले तो कभी-कभी ऐसी स्थिति आन पड़ती थी कि पूरी सभा में अकेले आप ही धोती पहने दिखाई पड़ते थे। शेष सबके सब सूट-बूट अथवा अचकन-पायजामे से सुसज्जित रहते थे। एक बार एक ऐसी ही सभा में एक सदस्य आपसे कह ही बैठे कि "खन्नाजी यदि आपका वश चले तो आप सभ्यता का सत्यानाश ही कर दें।" यदि चश्मा न लगाये हों तो खन्नाजी के वेष से कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि आप एक आधुनिक युग के शिक्षित व्यक्ति हैं। अब से २० वर्ष पहले इस ढंग की सरलता को लोग उपेक्षा और कभी-कभी घृणा की दृष्टि से देखते थे। हर्ष का विषय है कि अब वातावरण बदल रहा है और लोग फिर उसी प्राचीन सरलता की ओर झुकते दिखाई दे रहे हैं।

आपकी सरलता की ही भाँति मुग्धकारी है आपकी व्यावहारिकता। आप बहुधा कहते रहते हैं कि "आजकल के युवकों में व्यवहार-बुद्धि की कमी होती है" जो प्रायः सत्य ही है। मैंने बहुत बार देखा है कि आप कितनी स्वच्छता से छोटे-मोटे काम करते हैं। किसी भी आधुनिक युवक से आप कोई छोटा मोटा काम करा के देखिए। उदाहरणार्थ लालटेन की चिमनी साफ करना, पुस्तक पर कागज मढ़ना, प्याली में चाय डालना आदि काम लिये जायँ। तुरन्त आपको पता चल जायगा कि इस छोटे से काम के करने के ढंग में भी एक व्यवहार-कुशल और एक अव्यावहारिक व्यक्ति में कितना अन्तर है। मैं तो जब कभी खन्नाजी के समीप रहता हूँ, अपनी अव्यावहारिकता को कोसता ही रहता हूँ।

आपकी समय-बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र है। बहुत से विद्यार्थियो में समय-बुद्धि की कमी रहती है। जब कभी इन्हे स्फुरण आयेगा कि अब तक बहुत समय नष्ट कर दिया, अगले दिन से नियमित रूप से अध्ययन करना चाहिए, तो तुरन्त कागज-कलम लेकर बैठ जायेंगे और एक आदर्श दिनचर्या बना डालेंगे। उस दिनचर्या में न मनोरजन के लिए स्थान होगा, न गपशप के लिए। भोजन के लिए कठिनाई से १० मिनट का समय दिया जायगा; और यदि कालेज से घर तक आने में १२ मिनट लगते हो तो उस दिन-चर्या में केवल १० ही मिनट का समय दिया जायगा। ऐसी अव्यावहारिक दिनचर्या दो दिन भी नही चल पाती। ऐसे युवको को खन्नाजी के जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। किसी कार्य में कितना समय लगेगा, जब हम इसका अनुमान लगाने बैठे तो मनुष्य की सारी दुर्बलताओ पर ध्यान देना चाहिए। जिन लोगो में समय-बुद्धि की कमी होती है, वही लोग समय का पूर्ण रूप से उपयोग नही कर पाते। यदि समय के सर्वोत्तम उपयोग का जीता-जागता उदाहरण देखना हो तो खन्नाजी के जीवन पर दृष्टि डालनी चाहिए।

एक बात और भी है। काम करना उतना कठिन नही होता जितना दूसरो से काम ले लेना। इस गुण से खन्नाजी ओत-प्रोत है। आप प्रत्येक युवक की नस शीघ्र ही पहचान लेते है और जान जाते है कि उससे किस प्रकार काम लेना होगा। जब हम लोग कालेज में पढते थे तो प्राय हमारे सभी प्रोफेसर घर के लिए काम दिया करते थे। हम लोगो ने यह नियम बना लिया था कि और किसी का काम पूरा हो या न हो, खन्नाजी का काम प्रतिदिन पूरा का पूरा करके कालेज जाना चाहिए। जो लोग स्वय आलसी होते है वे दूसरो से किस बूते पर काम ले सकते है? परन्तु जो व्यक्ति स्वय दिन-रात कार्य में रत रहे, वही दूसरो से कार्य करा सकता है। यही कारण है कि खन्नाजी इतने सफल प्रशासक सिद्ध हुए है। मै जगन्नियन्ता से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको दीर्घायु करे और आप अभी दशाब्दियो तक मेरे जैसे सहस्रो युवको का पथ-प्रदर्शन करते रहें।
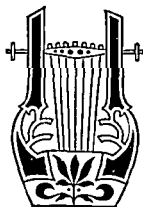
श्री हीरालाल खन्ना का सभा-संचालन

श्री पुत्तनलालजी विद्यार्थी

[लेखक का परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है। यह खन्नाजी-सबंधी लेखक का संस्मरणात्मक दूसरा लेख है। खन्नाजी सभा-संचालन में कितने चतुर है, यह इस लेख का विषय है।]

श्री हीरालाल खन्ना से मेरा परिचय बहुत पुराना है, इतना पुराना कि यह स्मरण नही कि उसका आरंभ कब और किस अवसर पर हुआ था; पर हम दोनों अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में जाया करते थे और संभवतः किसी ऐसे ही अवसर पर परिचयारंभ हुआ होगा।

हीरालालजी के लिपि, भाषा और साहित्य संबंधी विचारो का आधार परम्परा तथा भावुकता न होकर इतिहास और परिस्थिति है। ऐसे देशभक्त थोड़े ही है जो इन प्रश्नों पर भी उतनी ही गंभीरता और वैज्ञानिकता से उसी मात्रा में विचार करते हैं जितना और जिस प्रकार एक लब्धप्रतिष्ठ वकील अपने मुकदमे पर सोचता है। हीरालालजी में यह गुण प्रचुर मात्रा मे है।

जहाँ तक स्मरण है, बात दिसम्बर १९३१ की है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन झांसी में था और सभापति थे पं० किशोरीलाल गोस्वामी। वह वृद्ध तो थे ही, बीमार पड़ गये। खुले अधिवेशन में सभापति का काम बहुत कुछ नुमायशी होता है, पर विषयनिर्वाचिनी समिति में, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की सम्मतियों की क्या, मस्तिष्कों की भिड़न्त होती है; सभापति की बुद्धि तथा निर्भान्त विचारशक्ति का परिचय मिलता है। खन्नाजी ने विषयनिर्वाचिनी समिति का काम बडी योग्यता से चलाया। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सम्मति प्रकट करने का अवसर मिला। जो दलील एक बार उपस्थित कर दी गई उसे दोहराने-तिहराने का (जैसा सभाओं में बहुधा होता है) अवकाश नही दिया गया। ज्यो ही प्रत्येक प्रश्न के पक्ष और विपक्ष की सब दलीलें समाप्त हुई सी मालूम हुई, सदस्यों से कहा गया कि कोई नई दलील उपस्थित करना हो तो कीजिए, नही तो सम्मतियाँ ली जायेंगी। जिसे कुछ कहना था कह दिया और सम्मति ले ली

और बस सभा के मतानुसार निश्चय हो गया। बडी सुगमता से और कम समय में बहुत-सा काम समाप्त हो गया। खन्नाजी की एक चुभती हुई बात स्मृति में कही चिपकी रह गई है। किसी ने कहा कि गाधीजी को अमुक विषय में अमुक कार्य अमुक रीति से ही करना चाहिए। खन्नाजी ने कहा तो आपका मतलब यह है कि गाधीजी बुद्धि तो आपकी लें पर पुरुषार्थ अपना लगावें? इस उक्ति ने वक्ता को निरुत्तर कर दिया। साहित्य-सम्मेलन की बैठकों में अनेक ऐसे वाद-विवाद देखे गये हैं, जहाँ अनेक सदस्य भिन्न-भिन्न मत समर्थन करने पर तुले रहते हैं और छोटी सी बात के निर्णय करने में बहुत समय लगता है, पर जैसी सुगमता से खन्नाजी के सभापतित्व में काम निपटा ऐसा कम हुआ है। एक शिक्षा-सस्था की अध्यक्षता में निपुणता प्रदर्शन करने का हाल तो सभी जानते है पर सभा-सचालन का कौशल कदाचित् प्रसिद्ध नही है।

"एको रसः करुण एव"

श्री सत्यनारायणजी पाण्डेय एम० ए०

[लेखक का परिचय अन्यत्र दिया गया है। भवभूति के सूत्र का समर्थन में लेखक ने अच्छा विवेचन किया है।]

यद्यपि नाट्यशास्त्राचार्यैर्भरतादिभि शृगार एव स्थापितो रसराजपदवीम उक्त चापि स्वकीय शृगारप्रकाशे श्रीमता भोजराजेन शृगारमेव रसनाद्रसमामनाम इति। अपिच श्रद्धास्पदाना अभिनवगुप्त महोदयाना गुरुवर्यैर्भट्ट तौतपादैर्वर्य स्वकीये काव्यकौतुके शान्तरस एव श्रेष्ठतासिंहासने स्थापित किन्त्वखिल भुवनस्य निखिलव्यापाराणा निष्कपनिष्कामन गम्भीरचेतसा महीयास करुणरसप्राधान्यवैभवे निर्णयमधि गच्छन्ति। आदिकाव्यकौमुदीकान्तिचन्द्रप्रकाशा मुनिपुगवो वाल्मीकि करुणघटनाघननैव प्रभावित सन निम्नश्लोकेन लोकेऽस्मिन कवितामृतपात चकार —

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥

प्रतिपादितञ्च श्रीमदानन्दवर्धनाचार्यै स्वकीय ध्वन्यालोके —

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत॥

शैलीतिनामधेयनाम्नैव भावस्यानुसारिणी कवितेय लिखिता —

We look before and after,
And pine for what is not
Our heartiest laughter
With some pain is fraught,
Our sweetest songs are those
That tell of saddest thought

अस्या कविताया पद्यानुवादोऽयम —

भूत भविष्य पश्यामो वाञ्छामोऽप्राप्यवस्तुकम्।
अस्मद्धार्दिकहास्य हि चाज्ञातक्लेशपूरितम॥
अस्माक मधुरा गीतास्त एव किल घोषिता।
यैर्भावा करुणतमा द्योत्यन्ते हृदय स्थिता॥

कविवरेण भासेन स्वीयाया प्रतिमानाटिकायाम सीतारामलक्ष्मणभ्यो वियुक्तामयोध्या दशरथस्य शोकसागरे निमग्ना विधाय परिवर्तनशीलस्य जगतो विषमताया सत्यमवाकित चित्रम। गते सति अयोध्याया प्रकाशरूप रामे शोकातिरेककातरो विलपति दशरथ —

सूर्य इव गत रामे सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगत।
सूर्य दिवसावसान छायेव न दृश्यते सीता॥

अस्यामार्याया कवे हृदयमेव निहित लक्ष्यते। कविकुलचूडामणिना कालिदासेनापि स्वकीये मेघदूते वियोगिनो यक्षस्य हृदयान्नि सृतायाममर वाण्या करुणरसेन परिप्लुता या भव्यधारा प्रवाहिता तस्यामवगाह्याद्यापि सहृदयाना चेतासि निर्भरानन्दसन्दोहमास्वादयन्ति —

आधिक्षामा विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वा
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषा हिमाशो ।
नीता रात्रि क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥

सर्वेष्वेव नाटकेषु श्रेष्ठतमे नाटकेऽभिज्ञानशाकुन्तलेऽपि स्वपतिगृहाभिमुख प्रयान्ती शकुन्तला विलोक्य वियोगदु खकातरस्य महर्षे कण्वस्य मुखान्नि सरन्ती करुणरसधाराद्यापि विलुलयति मन पाठकानाम् —

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदय सस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठ स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजड दर्शनम् ।
वैक्लव्य मम तावदीदृशमिद स्नेहादरण्यौकस
पीड्यन्ते गृहिण कथ न तनयाविश्लेषदु खैर्नवै ॥

करुणविप्रलम्भस्य विभूतिर्भवभूतिरपि स्वकीये उत्तररामचरिते अमु करुणमेव रस सर्वेषु रसेषु प्रधानभूत प्रतिपादयन्नाह —

एको रस करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्न पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरगमयान्विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम् ॥

आर्यासप्तशत्या श्रीगोवर्धनाचार्य एव वदति—

"भवभूते सम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥"

प्रेमातिरेकादेकनिष्ठो जन श्रुत नावगणयति, रूपमपि नालोकयते, वैदग्ध्यञ्च न गणयति किन्तु शोकाकुलितमनसा त्यागमेवाङ्गीकरोति करुणदशा प्राप्य सजनश्चेतनाचेतनयोर्भेदज्ञानविहीनो भवति। तस्य हृदयमेतावद्विस्तार प्राप्नोति यत्सम्पूर्णचराचरलोकेन सह तादात्म्यमनुभवितु शक्तो भवति ।

सत्स्वहृदयहृदयसंवेदनसाक्षिक करुणरसोऽपि रसत्वव्यञ्जनाप्रमाणेन गृह्यते । अन्यथास्य दु खजनकत्वे रसिकाना करुणे श्रोतृणा श्रवणे दर्शकाना च दर्शने प्रवृत्तिरेव न स्यात् ।

अय हि लोकोत्तरस्य तत्त्वस्य व्यापारमहिमा यत्प्रयुक्ता शोकादयो अपि हृदयाह्लाद जनयन्ति ।

करुणरसस्यास्य शोक एव स्थायिभावो ज्ञेय वियुक्तप्रियजनादिरालम्बनविभावो वियुक्तस्य सम्बन्धिन पदार्थादयस्तूद्दीपनविभावा रुदनोच्छ्वासादयोऽनुभावास्तथा विषादचिन्ताजडतादयस्तु व्यभिचारिभावा भवन्ति।

उत्तररामचरित एव तृतीयाङ्के लोपामुद्रया प्रेषिता मुरला गोदावरीमिदमभिधातु गच्छन्ती तमसा सूचयति :—

"अनिर्भिन्नोगभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथ ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रस.॥"

करुणस्तु निजेष्टजनवियोगजन्यदुःखातिशयात्मको रस अत एव गोदावरीजलान्निष्क्रामन्ती सीता विरहजनितसन्तापमूर्तिरिव दृश्यते —

"परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दर दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी॥"

इय हि सा

किसलयमिव मुग्ध बन्धनाद्विप्रलून
हृदयकुसुमशोषी दारुणो दीर्घशोक.।
ग्लपयति परिपाण्डुक्षाममस्याः शरीरम्
शरदिज इव घर्म. केतकीगर्भपत्रम्॥

तथाह भगवान् वाल्मीकि —

"ज्योत्स्नातुषारमलिना पौर्णमास्या हि लक्ष्मणा।
सीतेव चातपश्यामा दृश्यते न च शोभते॥"

इत्थमेतदेव सिद्धान्तित यत्करुण एव मुख्यो रस । रसस्यास्य प्राचुर्यमद्यास्माभिरनुभूयते यदा बी० एन० एस० डी० महाविद्यालयस्य प्रधानाचार्या श्री हीरालाल खन्ना महोदया. सर्वदैव निजान्तेवासि महोपकारकरणे बद्धप्रतिज्ञा आचार्यपद परित्यज्य विनिर्गन्तु समुद्यता सन्ति। एतेषामुपकारव्रतिना वियोगजन्यदुःखार्ता सर्वेऽपिवयमस्मिन्नवसरे श्रद्धाञ्जलिमर्पयन्तस्तत्कल्याणकामा दीर्घजीविनो भवन्त्वस्माकमाचार्यपादा इति जगदीश्वर प्रार्थयामहे।

श्रद्धा के फूल और कृतज्ञताप्रकाश

आचार्य पं० शिवगोविन्द मिश्र, साहित्यरत्न

[श्री पडित शिवगोविन्दजी मिश्र, 'साहित्यरत्न', श्री विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म इन्टर कालेज के सबसे पुराने अध्यापक है। आप हिन्दी के अनन्य भक्त और उच्च कोटि के साहित्यसेवी है। सनातनधर्म महामण्डल के आप सयुक्त मत्री है और अत्यन्त धर्मपरायण है। आप अपने जीवन के आदिकाल मे ही सत्याप्रेमी रहे है। आर्यनगर विद्यालय, कानपुर के आप सस्थापको मे है और उसके अवैतनिक मत्री है। आपकी अध्यक्षता मे, आपके अदम्य उत्साह, ततपरता, लगन और अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप विद्यालय ने आशातीत उन्नति करके एक हायर सेकण्डरी स्कूल का स्तर प्राप्त कर लिया है। आप खन्नाजी के अत्यन्त पुराने साथी और विश्वसनीय सहकारियो मे से है। अपने जीवन को उन्नत बनाने में जो कुछ आपने खन्नाजी से पाया है उसका दिग्दर्शन आपके 'श्रद्धा के फूल और कृतज्ञता प्रकाश" नामक अपने लेख मे बडे सुन्दर ढग से किया है। इस लेख से खन्नाजी के अनेक गुणो पर प्रकाश पडता है।]

सन् १९२१ मे श्री वी० यन० चोपरा के यहाँ (तत्कालीन प्रोफेसर सनातन धर्म कालेज और आधुनिक मैनेजर पायनियर लखनऊ) श्री हीरालाल खन्नाजी के दर्शन मुझे हुए और वही पर श्री चोपराजी द्वारा परिचय प्राप्त हुआ। इस बीच स्वर्गीय राय बहादुर विक्रमाजीतसिंह के यहाँ भी कभी कभी दर्शन हो जाया करते थे। सन् १९२२ ई० में जब मलकाना राजपूतो की शुद्धि का प्रश्न सनातन धर्म महामडल की कार्यकारिणी में उपस्थित हुआ और निश्चय हुआ कि महामडल अपने प्रतिनिधि प्रान्तीय सनातन शुद्धि सभा में आगरा भेजे। कानपुर से मेरा नाम श्री खन्नाजी तथा चोपराजी ने प्रस्तावित किया और मै आगरा गया—वहा से लौटकर खन्नाजी से मिला तथा सारी परिस्थिति से उन्हें अवगत कराया। शुद्धि सभा आगरा के मत्री का पत्र आने पर और खन्नाजी द्वारा उस पत्र के आधार पर मेरी प्रशसा किए जाने के कारण सभा ने मुझे दूसरी बार फिर भेजा।

सन् १९२३ में कानपुर के उन मन्दिरो पर जो मुसलमानी मुहल्ले मे है और मुसलमानो के अधिकार में चले गए थे पुन अधिकार कर लेने के लिए एक सभा डा० वृजेन्द्रस्वरूपजी की अध्यक्षता मे हुई, जिसमें श्री खन्नाजी, डा० जवाहरलालजी, श्री रघुवरदयाल भट्ट, स्वर्गीय श्री नारायणप्रसाद निगम वकील आदि सज्जन उपस्थित थे। बहुत देर तक वाद विवाद के पश्चात् यह निश्चय किया गया कि मन्दिरो पर सत्याग्रह किया जाय और इसके लिए सत्याग्रही स्वयसेवको के नाम माँगे गए। कोई भी अपना नाम लिखवाने को तैयार नही हो रहा था। खन्नाजी ने मुझे सकेत किया कि तुम अपना

नाम लिखा दो। मैंने उनके आदेशानुसार अपना नाम दे दिया। पर जब बीस मिनट तक दूसरा नाम न आया तो खन्नाजी ने स्वय सभापतिजी से यह कहकर कि इतने बडे नगर म सत्याग्रह करने के लिए सनातन धर्म की ओर से केवल एक प्रतिनिधि ही तैयार है और कोई अपना नाम नही देता इसलिए जान पडता है कि सत्याग्रह का प्रस्ताव सभा को स्वीकार नही है। इसलिए प्रस्ताव रद्द कर दिया जाय और मेरा नाम वापस ले लिया जाय।

सन् १९२४ ई० मे अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का अधिवेशन काशी में हुआ। मैं स्वर्गीय रायबहादुर विक्रमाजीतसिहजी के साथ काशी जा रहा था। स्टेशन पर श्री खन्नाजी से भेट हुई। वे भी काशी ही जा रहे थे। उनके साथ उनका पचवर्षीय बच्चा नन्दो (नन्दनलाल खन्ना) भी था। रायबहादुर द्वितीय श्रेणी के डिब्बे म और मैं उसी के समीप मध्यम श्रेणी (इटर क्लास) में बैठा था। श्री खन्नाजी भी उसी मध्यम श्रेणी के डिब्बे में अपने बच्चे के साथ बैठे। मार्ग म इस प्रकार मुझसे बाते करते गए कि मानो हमारा उनसे बहुत प्राचीन परिचय हो या यो कहे कि मैं उनके बहुत निकट साथियो में से हूँ। उनके व्यवहार और बातचीत का मेरे ऊपर बहुत ही गहरा प्रभाव पडा और मेरे हृदय म उनके प्रति बडी ऊँची श्रद्धा उत्पन्न हुई।

सन् १९२७ में जब विश्वम्भरनाथ सनातन धर्म हाईस्कूल कालेज के स्तर पर पहुँचा और प्रिंसिपल की नियुक्ति का प्रश्न उठा तो मैं तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री बख्सी मगलसेन के लिए प्रबन्ध-कारिणी समिति के सदस्यो के पास कन्वेसिंग करता था। उस समय श्री बी० यन० चोपरा ने कहा था कि तुम लोग श्री खन्नाजी का प्रिंसिपल क्यो नही बनाते? मैंने कहा कि श्री खन्नाजी यदि प्रिंसिपल होकर आ जायँ तो बडी अच्छी बात है, परन्तु वे डिग्री कालेज को छोडकर क्यो आने लगे। उन्होंने कहा कि यदि तुम्हारी कमेटी उनको आफर दे तो वे आ जावेंगे। मैंने यह बात स्वर्गीय रायबहादुर बाबू विक्रमाजीतसिह से कही और बक्सीजी को भी बता दिया। सन् १९२७ ई० म श्री खन्नाजी प्रिंसिपल होकर कालेज आ गए। उस समय स्टाफ के कुछ सदस्यो के चित्त में धारणा थी कि खन्नाजी आते ही स्टाफ के कुछ सदस्यो को अलग कर देगे उनमें से एक मेरा भी नाम था, क्योकि मुझमें कोई विशेष योग्यता अध्यापक होने के लिए नही थी। उसी वर्ष कालेज म पारितोषिक वितरण किया गया और खन्नाजी ने उन सहयोगियो को चुन लिया जिनको अपने कार्य में सहायक समझा। भाग्यवश मैं उनकी सूची मे आ गया। यह मैं नही कह सकता कि उन्होंने मुझमें कौन-सी योग्यता देखी। परन्तु इतना अवश्य है कि मैं उनका स्नेह-पात्र बन गया और मेरे भाग्य ने पलटा खाया। मैंने इस बात का अनुभव किया कि यदि इस कालेज में तुम्हे रहना है तो परिश्रम करके ही रहना होगा। खन्नाजी के अनुरोध से मैंने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की साहित्य रत्न की परीक्षा पास की और सम्मेलन की स्थायी समिति का सदस्य बना। झाँसी के अधिवेशन में जिसमें खन्नाजी विज्ञानपरिषद् के सभापति होकर गये थे, मैं प्रथम बार सम्मिलित हुआ। मैं प्रबन्धकारिणी के सदस्यो से बहुधा मिला करता था और यह समझता था कि अध्यापन कार्य इतना आवश्यक नही जितना सदस्यो से मिलना। खन्नाजी ने मेरे मस्तिष्क से यह भ्रम निकाल दिया और बारम्बार मेरे प्रति 'दरबारदारी' का शब्द प्रयोग करके मुझे सदस्यो से मिलने के लिए विरक्त ही नही कर दिया वरन् यह भली भाँति समझा दिया कि सदस्यो से मिलने से काम न चलेगा। बल्कि अपना काम करना ही श्रेष्ठ होगा।

सन १९३५ में नागरिक हिन्दू सभा की सभा म मैंने सभापति के लिए स्वर्गीय श्री राय बहादुर विक्रमाजीतसिहजी का नाम प्रस्तावित किया जिसका समर्थन होने के पश्चात् श्री नारायणप्रसाद निगम वकील ने कहा

कि इस बात का प्रस्ताव एक ऐसे व्यक्ति ने किया है जिसकी गणना उच्च श्रणी के व्यक्तियो में नही की जा सकती है। इस पर खन्नाजी ने बडे ओजस्वी शब्दो मे निगम साहब का विरोध किया और कहा कि प्रस्ताव करनेवाले सज्जन एक अध्यापक है उनके पास बग्घी नही है। वे कचहरी मे बैठकर झूठ का साँच और साँच का झूठ नही कहते। पर हिन्दू हित के लिए उनकी निगम साहब से कम सेवाएँ नही है। यह कहना कि वे उच्च श्रेणी के व्यक्ति नही है, सदस्य का अपमान करना है। इस पर सभा मे गडबडी मच गई और निगम साहब को खेद प्रकट करना पड़ा।

मैं कालेज के खेल-विभाग का बहुत काल तक अध्यक्ष रहा। मुझे ऐसी कोई भी घटना स्मरण नही पडती कि जिसमे श्री खन्नाजी ने मुझे पूर्ण सहयोग न दिया हो। मुझे एक घटना याद आती है कि भवन सेक्सन के हाल में मैंने लड़को को वालीवाल खेलने की आज्ञा दी थी। मैंने इस विषय मे खन्नाजी से नही पूछा था, परन्तु जिस समय कमेटी में इस विषय मे प्रश्न उपस्थित हुआ तो उन्होने सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया और मैं प्रश्नो के आक्रमण से बच गया। मैंने उनको निकट तथा दूर दोनो प्रकार से देखा। बाहर से देखने में वे बादाम के छिलके के समान कठोर है परन्तु अन्दर से अगूर की भाँति कोमल है।

कोई व्यक्ति उनको झूठ बोलकर धोखा नही दे सकता पर यदि अपनी भूल उनके समक्ष स्वीकार कर लेता है तो वह व्यक्ति और भी उनके निकट आ जाता है। मुझे अपनी भूल उनके सामने स्वीकार करने में कभी सकोच नही हुआ है। मेरे जीवन मे जो कुछ भी परिवर्तन हुआ उसका कारण केवल श्री खन्नाजी है। कार्य करने की कुछ भी शक्ति यदि मुझमे है तो वह शक्ति उन्ही के द्वारा मुझे प्राप्त हुई है। वे सदैव मुझे छोटे भाई की भाँति डाँटते और पुचकारते रहे है। कई बार ऐसा अवसर आया कि क्रोध मे आकर मैं उनसे बिगड गया और जो कुछ मुँह मे आया कह डाला, पर उन्होने उस पर ध्यान नही दिया और उसी प्रकार प्रेम करते रहे जिस प्रकार कोई बडा अपने छोटे से करता है। इस कर्म-क्षेत्र मे वे मेरे गुरु है और उनकी ही प्रेरणा मुझे कार्य करने के लिए सचेष्ट करती है। श्री सच्चिदानद भगवान् से प्रार्थना है कि वे चिरजीवी हो और हम लोगो पर उनके स्नेह का हाथ बना रहे।

वे बाधाओं से लड़ते हैं

श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल'

[खन्नाजी के शिष्य व हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार श्री देवीप्रसाद धवन विकल ने खन्नाजी के विषय में लिखा है — वे सैनिक हैं और उन्हें सदैव लड़ने ही में आनन्द आता है। इस प्रकार की विजय को ही वे वास्तविक विजय मानते हैं। उनमें लगन लग जानी चाहिए वे तन मन धन से जुट जायेंगे। ये शब्द अपनी कहानी आप ही कह रहे हैं।]

श्री हीरालालजी खन्ना इस्पात की तरह कठोर भी हैं और मोम की भांति कोमल भी। वे जिस कार्य को करना चाहते हैं उसे अवश्य ही कर लेते हैं। उनके विचारों और कार्य के ढंग दोनों ही में एक वज्रवत दृढता रहती है। कदाचित् वे बहुत कुछ सोचने विचारने के पश्चात् ही किसी निर्णय पर पहुँचते हैं और जब वे एक बार निर्णय कर लेते हैं तो फिर अडिग से हो जाते हैं। खन्नाजी पर विजय प्राप्त करना सरल कार्य नहीं और जहाँ वे पराजित हो जाते हैं वहाँ उस परिभाषा को पराजय पर संघटित नहीं होने देते।

खन्नाजी के जीवन कार्य प्रणाली तथा व्यक्तित्व का प्रभाव मेरे ऊपर गत पच्चीस वर्षों से पड़ता आया है। मैं जब क्राइस्ट चर्च स्कूल का एक छोटे क्लास का विद्यार्थी था उस समय कदाचित खन्नाजी को मैंने एक सभा में भाषण देते सुना था। उनके भाषण देने के ढंग और उनकी विशेष प्रकार की वेश भूषा ने मुझे उनकी ओर आकर्षित किया। मैं यदा-कदा उनसे मिलने लगा। उस समय खन्नाजी स्थानीय डी० ए० वी० कालेज में प्रोफेसर थे।

मैं हाईस्कूल पास करने के बाद गर्मियों की छुट्टी में उनके घर उनसे मिलने गया। खन्नाजी ने बातचीत के सिलसिले में मुझसे प्रश्न किया 'अब तुम क्या करना चाहते हो ?

मैं फौरन बोल उठा 'कालेज ज्वाइन करूँगा। इसी विषय में तो आपसे आदेश लेने आया हूँ।

खन्नाजी ने क्षण भर चुप रहकर कहा 'तो तुम बी० एन० एस० डी० में ही क्यों नहीं आ जाते ?

मैं तो यह सोचकर ही घर से चला था। उसी साल उक्त कालेज खुल रहा था और खन्नाजी ही उसके प्रिंसिपल नियुक्त हो गये थे।

मैं बोला जैसी आपकी आज्ञा।'

खन्नाजी ने फौरन मुझे एक प्रवेश पत्र दिया और मैंने तत्काल उसे भर दिया। इस प्रकार बी० एन० एस० डी० कालेज का प्रथम विद्यार्थी होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है।

दो वर्ष तक मैं खन्नाजी का छात्र रहा। इन दो वर्षों में लगातार उनके निकट रहने का अवसर मुझे मिला। मैंने इस काल में उनके विषय में बहुत कुछ जाना और समझा।

खन्नाजी में सबसे बड़ा गुण उनका वाणी और कार्य दोनों में अडिग और दृढ होना है। वे जिस कार्य की कल्पना करते हैं उसे बहुत समझ-बूझकर जन्म देते हैं तथा अपने सुचारु पालन-पोषण से उसे दृढ तथा स्थायी बना देते हैं। आर्थिक कठिनाई को वे कठिनाई नहीं मानते। वे विघ्न बाधाओं के बीच घुसकर ही प्रसन्न होते हैं। वे सैनिक हैं और उन्हें सदैव लड़ने ही में आनन्द आता है। इस प्रकार की विजय को ही वे वास्तव में विजय समझते हैं। उनमें लगन लग जानी चाहिए, वे तन, मन धन से जुट जायेंगे।

शिक्षा-सस्थाओ के सचालन की तो उनमें अपूर्व शक्ति है। अस्त-व्यस्त खडहर को भी वे कुछ मास के अन्दर एक सुदृढ शिक्षा-सस्था का रूप दे सकते है और स्थानीय कानपुर हाईस्कूल इसका ज्वलत उदाहरण है। मैं तो उनकी इस योजना को कार्यान्वित देखकर चकित ही रह गया। बी० एन० एस० डी० के निर्माण का इतिहास तो कौन नही जानता ?

खन्नाजी बच्चो के सदृश सरल भी है। वे दूसरे की विपत्ति पर मोम के सदृश पिघल भी जाते है। उस समय वे किसी भी प्रणाली पर चलकर उसकी सहायता करेंगे। खन्नाजी जिससे स्नेह करते है, उसके लिए सदा सभी कुछ करने के लिए प्रस्तुत भी है। यहाँ पर वे अपनी व्यक्तिगत हानि करके भी उसको लाभ पहुँचाने में पीछे न रहेंगे।

वहुत से लोग खन्नाजी को अराष्ट्रीय तथा काग्रेस-विरोधी समझते है। यह उनकी भूल है। खन्नाजी उस समय से राष्ट्रवादी है जब हम लोग राष्ट्रीयता की परिभाषा भी न जानते थे। गाधीजी के वे सदा से भक्त है। वे किसी के द्वारा किये गये अन्याय को मानने को तैयार नही है, वे किसी के आगे झुकना नही जानते। यही कारण है कि वे किसी भी महान् राष्ट्रवादी की निष्पक्ष आलोचना करने में भी आगे रहते है। यही कारण है कि लोग उन्हे कुछ का कुछ समझ लेते है। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि उनकी इस निर्भीकता ने उन्हे न जाने कितनो का शत्रु भी बना दिया है तथा लोगो को उनके विरुद्ध प्रचार करने का सदा अवसर दिया है। खन्नाजी अथक योद्धा की भाँति कभी इस प्रकार की बातो से प्रभाविन नही होते। उनकी यह निज की मौलिकता है।

इस देश का दुर्भाग्य है कि हम उचित व्यक्ति से उचित काम लेना नही जानते। शिक्षा-सस्थाओ को वनाकर खडी कर देना तथा उसे पूर्णत्व प्रदान करने का कौशल खन्नाजी से अधिक कोई नही जानता। यह नगर चाहे तो इस सबध में खन्नाजी के आदेश से न जाने कितनी शिक्षा-सस्थाएँ बनाकर खडी कर सकता है। इस नगर में न तो धन का अभाव है और न विद्यार्थियो का, केवल सस्थाओ को बनाकर खडी कर देने-वालो का अभाव है। इस सवध में खन्नाजी से बढकर और कोई सहायक नही हो सकता।

मेरा और उनका एक अमिट सवध है। मेरा उनका मतभेद भी रहता है किन्तु उसमे कभी कटुता नही आ पाती। सभव है कि वहुत सी वातो को मैं उस आँख से देखने का आदी नही हूँ जिससे खन्नाजी है, किन्तु मैं इस बात को भी कभी नही भूल सकता कि इस प्रकार के अनुभव को मैंने खन्नाजी से ही पाया है। अन्य क्षेत्रो में खन्नाजी द्वारा प्रदत्त आदेशो और अनुभवो से ही मैंने सफलता पाई है। खन्नाजी के प्रति कृतज्ञ न होना मेरी वडी भारी अनुदारता तथा कृतघ्नता होगी। मैं खन्नाजी से बहस करता हूँ, लडता-झगडता हूँ तथा अपने दृष्टिकोण को उनके दृष्टिकोण के ऊपर भी रखने की चेष्टा करता हूँ, किन्तु फिर भी मैं एक क्षण के लिए भी नही भूलता कि इस प्रकार लडने-झगडने और वहस करने की शक्ति भी मैंने स्वय खन्नाजी से ही पाई है। खन्नाजी भी कदाचित् मुझे अपना ही वच्चा या शिष्य समझकर इस अभद्रता के लिए क्षमा ही करते आये है। वे न तो सकुचित विचारो को आश्रय देते है और न दूसरो मे इस वात को पसन्द ही करते है।

खन्नाजी को मेरी श्रद्धाजलि सादर अर्पित।

संस्मरण

प्राध्यापक श्री पंडित अयोध्यानाथजी शर्मा एम० ए०

[इस सस्मरण के लेखक पडित अयोध्यानाथजी शर्मा स्थानीय सनातन धर्म कालेज के हिंदी-विभाग मे अध्यक्ष है। उन्होने इस लेख में खन्नाजी विषयक अपने सस्मरण लिखे है। लेखक ने खन्नाजी को निकट मे देखा है और उन पर श्रद्धा की है।]

स्थानीय डी० ए० वी० कालेज से बी० ए० की परीक्षा पास करने के उपरान्त, लाला दीवानचद की कृपा से, कुछ समय के लिए मुझे वही कार्यालय तथा पुस्तकालय में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मुझे यह कार्य रुचिकर प्रतीत नही हुआ और मेरे मन में एम० ए० पास करने की लालसा बलवती हो उठी। मैने काशी विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र विषय में एम० ए० करने का विचार कर वहाँ के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष श्री गुरमुख निहालसिहजी को पत्र लिखा और उन्होने, विलम्ब हो जाने पर भी, मेरे दाखिले का मुझे आश्वासन दिया। उन्ही दिनो अपने भविष्य के सबध में गणित-विभाग के प्रोफेसर श्री हीरालाल खन्नाजी से बातचीत करने पर उन्होने मुझे हिंदी में एम० ए० करने का परामर्श दिया। उनके सामने हिंदी का उज्ज्वल भविष्य आज से सत्ताईस वर्ष पूर्व ही सुस्पष्ट था। उन्होने काशी विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के अध्यक्ष श्री श्यामसुन्दरदासजी के लिए एक परिचय पत्र भी दिया। जिसके फलस्वरूप ही बाबू साहब की कृपादृष्टि मुझ पर सदैव बनी रही और वे मुझे पुत्रवत् समझते रहे।

खन्नाजी का अनुमान था कि सनातन धर्म कालेज, कानपुर में १९२५ मे ही बी० ए० मे हिंदी का अध्यापन आरभ हो जायगा और वे वहाँ मेरी नियुक्ति कराने में सहायक हो सकेंगे। उनके अनुमान में एक वर्ष का विलम्ब हो गया और मुझे एक वर्ष तक काशी-नागरी प्रचारिणी सभा के कोश-विभाग में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हो गया। १९२६ मे जब हिंदी की पढाई बी० ए० में सनातन धर्म कालेज में प्रारभ हुई तब खन्नाजी के सद्प्रयत्न से मेरी नियुक्ति हिंदी-विभाग में हो गई।

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में १९२६ में हिंदी के बोर्ड आफ स्टडीज के बनाने का जब प्रश्न उठा तब खन्नाजी का नाम उस कमेटी के लिए प्रस्तावित हुआ। खन्नाजी ने बडी तत्परता तथा उदारता से अपने नाम के स्थान पर, यह कहकर कि मैं हिंदी विषय का अध्यापक होने के नाते कमेटी मे रहने का अधिकारी था, मेरे नाम को प्रस्तुत कर दिया। फलत खन्नाजी और मैं दोनो ही हिंदी कमेटी के सदस्य हो गये। हिंदुस्तानी एकेडेमी में भी मेरे सदस्य होने का श्रेय खन्नाजी को ही प्राप्त है। बोर्ड की हिंदी कमेटी मे चुने जाने के लिए भी खन्नाजी ने ही मुझको आगे बढाया। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन से मेरा विशेष सबध भी खन्नाजी के ही अनुग्रह से हुआ। कहने का अभिप्राय यह है कि हिंदी-जगत् में मुझे आगे बढाने में खन्नाजी ने पर्याप्त प्रयत्न किया और उसका वास्तविक श्रेय भी उन्ही को है। मैं उनकी इस कृपा के लिए सदैव ही उनका आभारी रहूँगा। खन्नाजी का अपने विद्यार्थियो के प्रति जो स्नेह और सहायता का भाव रहता है, उनका विद्यार्थी न होने पर भी मुझे उसके प्राप्त करने का अवसर मिला है। उन्होने मुझे अपने

विद्यार्थी के रूप में सदा ही समझा है। समय समय पर उन्होंने अपने सद्परामर्श से मेरी कठिनाइयो को दूर किया और मेरी उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। विचारो में मतभेद होने पर भी खन्नाजी ने कभी बुरा नही माना। हाँ किसी जज के सामने अपना अपना दृष्टिकोण रखने अथवा भगवान् से सदबुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना करने की बात कहकर बात को समाप्त करने का प्रस्ताव रखकर अपनी सहृदयता का परिचय अवश्य दे देते है।

खन्नाजी का हिंदी से विशेष प्रेम रहा है। वे सदैव ही हिंदी पढने के लिए अपनी इच्छा प्रकट करते रहते है। नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी और हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग से आपका घनिष्ठ सबध है। आप इन सस्थाओ के आजीवन सदस्य है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के झाँसी-अधिवेशन के अवसर पर विज्ञान-परिषद् के सभापति के आसन को भी आपने सुशोभित किया था। उस पद से दिया हुआ आपका भाषण बडा महत्त्वपूर्ण और नवीनता लिये हुए था। यद्यपि खन्नाजी अत्यत व्यस्त रहने के कारण आजकल सम्मेलन के कार्यो में सक्रिय सहयोग देने में अपने आपको समर्थ नही पाते परन्तु वे उसके हित की चिता निरतर रखते है और उसकी गति विधि का पता लगाते रहते है। जब कभी उनको कोई ऐसी बात सुनाई पडती है जिससे सम्मेलन की प्रतिष्ठा की क्षति की आशका की सम्भावना भी होती है तब वे समय निकालकर स्वय मेरे यहाँ पधार कर वस्तु स्थिति को स्पष्ट रूप से समझ लेने के लिए उत्सुक रहा करते है। हिंदी के राष्ट्रभाषा हो जाने पर खन्नाजी को इस बात की बडी चिंता है कि आगामी पद्रह वर्ष की अवधि का समय हिंदी के प्रचार और उन्नति मे विशेष रूप से लगाया जाना चाहिए। उनका सुझाव है कि ऐसे पढे-लिखे लोग जो हिंदी के सबध में अपने विचार दृढता से तथा शातिपूर्वक व्यक्त करने की क्षमता रखते है, अवकाश निकालकर अहिंदी भाषा-भाषी प्रदेशो में जाकर प्रचार का कार्य करें और वहाँ के निवासियो को युक्तिपूर्वक हिंदी भाषा तथा देव-नागरी लिपि के पक्ष म तैयार करें। जिससे पद्रह वर्ष की अवधि समाप्त होने तक सारा राष्ट्र हृदय स हिंदी और देवनागरी लिपि की महत्ता को स्वीकार कर उसका पक्षपाती बन जाय और हमारे स्वतत्र देश की राष्ट्रभाषा ससार की अन्य उन्नत भाषाओ के समान फलती फूलती दिखलाई पड।

खन्नाजी हिंदी के महान् समर्थक होते हुए भी हिंदुस्तानी की ओर थोड से झुके है। उनकी धारणा है कि भाषा को क्लिष्ट होने से बचाना चाहिए और उसे वह रूप देना चाहिए जो सर्वमान्य हो सके। भारतीय हिंदी-परिषद् की स्थापना से खन्नाजी थोड सजग हो गये है। वे चाहते है कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन और भारतीय हिंदी-परिषद् मिलकर कार्य करे और उनका ध्येय एक ही हो, उनमें विरोध की भावना न पनपने पाये, क्योकि ऐसा होना राष्ट्रभाषा तथा देश के लिए घातक सिद्ध होगा। भाषा के सबध म दूसरो के विचारो के प्रति उदार और सहिष्णु होने की आवश्यकता को वे पूर्ण रूप से अनुभव करते है।

कानपुर म खन्नाजी के आने के समय से ही शिक्षा प्रसार की गति द्रुततर हो गई। वे उसके प्रचार में ही नही, अपितु उसके स्तर अथवा तल को उठाने में बडे सफल हुए। बी० एन० एस० डी० कालेज जो उस समय तक केवल अस्थायी रूप से हाईस्कूल कक्षा खोलने की आज्ञा प्राप्त कर सका था, खन्नाजी के ही परिश्रम तथा प्रभाव से स्थायी इटरमीडियेट कालेज हो गया। धीरे-धीरे वह कानपुर ही नही, सपूर्ण यू० पी० बोर्ड म सबसे बडा इटरमीडियेट कालेज बन सका, जहा इटरमीडियट के सभी विषयो की पढाई होती है, और जहाँ का परीक्षाफल प्राय शत-प्रतिशत ही नही, वरन् 'श्रेणियाँ' तथा

'स्थान' प्राप्त करने की दृष्टि से भी उच्चतम कोटि का है। यहाँ के विद्यार्थी प्रायः प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण होते हैं। खन्नाजी की इस अभूतपूर्व सफलता ने दूसरी संस्थाओं को भी परिश्रम करने और उत्तम परीक्षाफल दिखलाने के लिए विवश कर दिया है।

खन्नाजी का संबंध कानपुर की कितनी ही संस्थाओं में है और वे उन सबकी कार्य-प्रणाली में सक्रिय सहयोग देते हैं। छोटे बच्चों की पढ़ाई के लिए खन्नाजी ने सी० ए० वी० स्कूल की स्थापना कर, बिना सरकार से सहायता प्राप्त किये हुए, एक बड़े अभाव की पूर्ति की। लगभग ३३ वर्ष से भिन्न-भिन्न साम्प्रदायिक और जातीय संस्थाओं से निकट संबंध रखने के उपरांत खन्नाजी इस मत के हो गये हैं कि साम्प्रदायिक और जातीय संस्थाएँ देश के लिए हितकर नहीं, उनसे दृष्टिकोण संकुचित होता है। कानपुर में आदर्श शिक्षासंस्थाओं की महल्ले-महल्ले में स्थापना करने की खन्नाजी की उत्कट अभिलाषा है। इन्हीं विचारों के परिणामस्वरूप उन्होंने कानपुर एज्यूकेशन सोसाइटी बनाई है जिसके सभापति लखनऊ विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर स्वनामधन्य आचार्य नरेन्द्रदेवजी हैं। इस सोसाइटी के अन्तर्गत सबसे प्रथम संस्था कानपुर हाईस्कूल है। इसे केवल दो महीने में ही सरकारी स्वीकृति प्राप्त हो गई और सरकारी सहायता मिलने का वचन भी मिल गया। यह खन्नाजी के ही प्रभाव का फल था अन्यथा कितनी ही संस्थाएँ वर्षों प्रयत्न करने पर भी स्वीकृति प्राप्त करने में सफल नहीं होतीं। साधारणतया एक वर्ष तो वैधानिक कार्यवाही में ही लग जाता है। आज खन्नाजी की इस प्रिय संस्था में पंद्रह सौ से अधिक विद्यार्थी हैं। स्थान के अभाव के कारण कितने ही विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों को इस संस्था के द्वार से निराश होकर लौटना पड़ता है।

खन्नाजी ने उपर्युक्त संस्था के बनाने में इतना योग दिया, परंतु गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार 'महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिषन्ह बाँची" अपने कृपालु मित्रों की कृपा के कारण उनको भारी बदनामी का भी शिकार होना पड़ा। खन्नाजी स्वभाव के बड़े दृढ़ हैं। सब ओर के आक्रमणों से और अपने ही लोगों द्वारा लांछित और अपमानित होने पर भी वे तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने अपने ढंग से कार्य किया और शीघ्र ही अपने आपको कलंक-रहित और निर्दोष सिद्ध कर दिया। जिन परिस्थितियों का सामना खन्नाजी को करना पड़ा था उनमें किसी भी दूसरे व्यक्ति के लिए तो अपने आपको सँभालना भी संभव न होता। यह खन्नाजी के चरित्र की ही विशेषता है कि वे कठिनाई में और भी अधिक दृढ़ और साहसी हो जाते हैं और उनका मस्तिष्क विशेष रूप से जागरूक हो जाता है।

खन्नाजी का जिस संस्था से भी संबंध रहता है वे उसकी उन्नति का सदैव ही ध्यान रखते हैं। खन्नाजी छुट्टी के दिनों में भी कालेज आफिस में नित्यप्रति जाकर कुछ घंटे कालेज का काम अवश्य करते हैं। जहाँ कहीं जाने का अवसर उनको प्राप्त होता है वहाँ वे अपनी संस्था का ध्यान अपने साथ ले जाते हैं। अवसर पर खन्नाजी कभी चूकते नहीं। खन्नाजी ने पूज्य मालवीयजी के चरणों में बैठकर जो सबसे अमूल्य शिक्षा पाई वह यह थी कि व्यक्ति संस्था को अपने आगे रखे। व्यक्ति का सर्वस्व पाकर ही कोई संस्था फूलती-फलती है और संस्था की प्रसिद्धि होने के साथ व्यक्ति की प्रसिद्धि स्वाभाविक ही है। खन्नाजी के सतत् परिश्रम और सूझ-बूझ से बी० एन० एस० डी० कालेज सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में प्रख्यात हुआ और उसके साथ ही खन्नाजी का भी इस प्रदेश के प्रमुख शिक्षा-विशारद तथा शिक्षा-प्रेमियों में एक विशेष स्थान बन गया।

आदरणीय खन्नाजी

श्री पद्मकान्तजी मालवीय, सम्पादक 'अभ्युदय'

[श्री प० पद्मकान्तजी मालवीय खन्नाजी के गुरु प्रात स्मरणीय स्वर्गीय महामना प० मदनमोहनजी मालवीय के पौत्र और खन्नाजी के मित्र स्वर्गीय प० कृष्णकान्तजी मालवीय के सुयोग्य पुत्र हैं। आप 'अभ्युदय के सम्पादक और हिन्दी के ख्यातिनामा लेखक और श्रेष्ठ कवि हैं। मालवीय परिवार से खन्नाजी की घनिष्ठता बडी पुरानी है। खन्नाजी किस प्रकार मुसीबत मे पडे हुए अपने मित्रो की सहायता करते है, यह बात इस लेख से स्पष्ट हो जायगी।]

बात सन् १९२२ की है, आज से २८ वर्ष पहले की। उस समय मेरी अवस्था १२-१३ वर्ष की रही होगी। पर अपने चारो ओर राजनैतिक वातावरण होने के कारण काफी छोटा होते हुए भी राजनीति में दिलचस्पी तो थी ही। असहयोग-आन्दोलन का प्रारभ सन् १९२० में हुआ था। पूज्य मालवीयजी तथा श्रद्धेय पिता प० कृष्णकान्तजी मालवीय असहयोग आन्दोलन के समर्थक नही थे, बल्कि उसकी कुछ धाराओ विशेषकर स्कूल, कालेज तथा कौसिलो के बहिष्कार के कट्टर विरोधी थे। पर १९२१ में जब सरकार का दमनचक्र जोरो से चलने लगा, प० मोतीलालजी नेहरू, प० जवाहरलालजी नेहरू, बाबू पुरुषोत्तमदासजी टडन इत्यादि गिरफ्तार होने लगे तो पूज्य पिताजी आन्दोलन में कूद पडे और जेल भी गये। सन् १९२२ के प्रारभ में पूज्य महात्माजी भी गिरफ्तार हो गये और पूज्य मालवीयजी को भी गोरखपुर में धारा १४४ तोडकर सविनय अवज्ञा या कानून भग करना पडा। चौरी-चौरा-काड हो चुका था, महात्माजी असहयोग-आन्दोलन को वापस ले चुके थे और देश में अजीब मुर्दनी का वातावरण छा रहा था। इस आन्दोलन की असफलता की प्रतिक्रियास्वरूप काग्रेस के अन्तर्गत विचारो का सघर्ष जोरो से चल रहा था और ऐसे काग्रेसवादियो की सख्या काफी बढ रही थी जो काग्रेस के तत्कालीन कार्यक्रम में परिवर्तन चाहते थे। जेल से छूटकर वापस आने पर पूज्य पिताजी ने 'अभ्युदय' द्वारा देश के नेताओ के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि चूंकि हमारे असहयोग-आन्दोलन का सरकार पर जैसा चाहिए था वैसा प्रभाव नही पडा, इसलिए निराश न होकर हमे दूसरा और अधिक प्रभावशाली अस्त्र—ब्रिटिश वस्तुओ का बहिष्कार—को अपनाना चाहिए। अपने को गाधीजी का सच्चा अनुयायी माननेवाले, जो अपरिवर्तन-वादी कहलाते थे, इस प्रस्ताव के घोर विरोधी थे। उन्हे समस्त ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार में घृणा, बदले और हिसा की प्रवृत्ति दिखलाई देती थी जो गाधीजी के असहयोग सबधी मूल सिद्धान्तो के विपरीत थी। काशी का सुप्रतिष्ठित हिन्दी दैनिक "आज" उस समय अपरिवर्तनवादी था और इसलिए इस प्रश्न को लेकर 'अभ्युदय और 'आज' में काफी दिनो तक वाद विवाद चला। इस वाद विवाद में पूज्य पिताजी प्राय अकेले ही अपने पक्ष का समर्थन कर रहे थे और उन पर हमला करनेवाले अनेक थे।

आदरणीय बाबू हीरालालजी खन्ना का हमारे परिवार से विशेषकर पूज्य मालवीयजी तथा पिताजी से अत्यधिक और बहुत पुराना स्नेह-सबध चला आ रहा है। पूज्य पिताजी के कानपुरनिवासी तत्कालीन विशेष मित्रो म तीन—अमर शहीद श्री गणेशशकरजी विद्यार्थी, प० शिवनारायणजी मिश्र तथा बाबू हीरालालजी खन्ना स मै बचपन से ही बहुत अच्छी तरह परिचित था, क्योकि ये तीनों ही प्रयाग आने

पर पिताजी से मिलने 'अभ्युदय' प्रेस जरूर आया करते थे; और श्रद्धेय विद्यार्थी जी तो प्राय ठहरते भी हमारे ही यहाँ थे। विद्यार्थीजी को सम्पादक, साहित्यिक तथा राजनैतिक नेता के रूप में तो मैं जानता था, किन्तु सप्राजी को केवल एक शिक्षक और अध्यापक के रूप में ही जान पाया था। उपर्युक्त वादविवाद में जब अध्यापक सप्राजी का एक लेख पिताजी का समर्थन करते हुए ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार के पक्ष में "आज" में प्रकाशित हुआ तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल में अध्यापक होते हुए तथा राजनीति में कोई प्रमुख भाग न लेते हुए भी सप्राजी ने ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का इतना जोरदार और खुला समर्थन कैसे किया यह प्रश्न मेरे लिए एक पहेली बन गया। मैंने पूज्य पिताजी के सामने अपना प्रश्न रखा और उन्होंने उसका जो उत्तर दिया था वह आज भी ज्यों का त्यों मुझे स्मरण है। उन्होंने कहा था—"सप्राजी बहुत ईमानदार और निर्भीक व्यक्ति हैं। साथ ही अपने मित्र को संकट में पड़ा हुआ देखकर वह चुप बैठ नहीं सकते। सबसे बढ़कर वह सच्चे देश-भक्त हैं। आवश्यकता पड़ने पर अपने विचारों के लिए बड़ी से बड़ी चीज पर भी लात मार सकते हैं, अध्यापकी तो कोई चीज ही नहीं है।" मेरी शंका का समाधान हो गया और मेरे हृदय में पूज्य पिताजी की उपर्युक्त बातों का जो प्रभाव पड़ा था वह समय के प्रवाह के साथ मन्द पड़ने के स्थान पर दिनों-दिन बढ़ता ही गया।

२८ वर्षों की इस लम्बी अवधि में आदरणीय सप्राजी के निकट सम्पर्क में आने का मुझे सौभाग्य मिला है। पूज्य पिताजी के मित्रों में यही अकेले मित्र बचे हैं जो मुझे आज भी "बच्चा" कहकर ही सम्बोधन करते हैं और उनके इस सम्बोधन में एक अजीब मिठास, एक अजीब ममत्व की भावना रहती है। हमारे परिवार के तीन पुश्त उन्होंने देखे, उन्हें बरता और आज भी वैसे ही बरतते जा रहे हैं। इस विशेषता को उर्दू में "वजादारी" कहते हैं जो आज की दुनिया से उठती हुई सी दिखलाई दे रही है पर जिसके अभाव में मनुष्यता वस्त्र-विहीन हो जायगी ऐसा मेरा विश्वास है। सप्राजी जैसे व्यक्ति ही इस बावली दुनिया में मनुष्यता को सहारा देकर खड़ा किये हुए हैं।

सप्राजी एक महान् और सफल अध्यापक बन सके अपने इसी गुण-विशेष के कारण। अपने विद्यार्थियों को अपने स्नेह से ओतप्रोत कर उन्हें अपने में आत्मसात करने की शक्ति जिनमें हो वही आदर्श गुरु बन सकते हैं। सप्राजी में यह गुण प्रचुर मात्रा में है। अपनी स्नेहपूर्ण आत्मीयता से वह अपने विद्यार्थियों का ही नहीं, जो भी उनके सम्पर्क में आता है उसी का हृदय जीत लेते हैं और इसीलिए वह जहाँ रहते हैं वहीं सर्वप्रिय हो जाते हैं। पर स्नेह का अतिरेक कभी कभी कमजोरी का कारण भी बन जाता है किन्तु सप्राजी में चरित्र की दृढ़ता भी है, इसलिए वह सफल शासनकर्त्ता भी बन सके।

हमारा देश आज स्वतन्त्र हो चुका है। सप्राजी भी अपने अध्यापक-जीवन से अब विश्राम ले रहे हैं। उनके जैसे विद्वान् योग्य, अनुभवी और ईमानदार व्यक्तियों की आज देश को महान् आवश्यकता है। भगवान् करे सप्राजी बहुत बहुत दिनों तक हमारे बीच में रहें और देश, समाज तथा जाति को अपनी विद्वत्ता, योग्यता और अनुभव से लाभ पहुँचाते रहें।

उनकी सफलता का रहस्य

श्री मदनमोहन अग्रवाल (सेक्रेटरी, नेशनल चैम्बर आफ इण्डस्ट्रीज ऐण्ड कामर्स, यू० पी०)

[खन्नाजी में अपने प्रत्येक विद्यार्थी के लिए कितनी आत्मीयता रहती है और किस प्रकार वे अपने सभी विद्यार्थियों को अपने स्नेह और वात्सल्य भाव की रेशम-डोर में बांध लेते है—इसका सुन्दर परिचय उनके विद्यार्थी और अब यू० पी० नेशनल चैम्बर आफ इण्डस्ट्रीज व कामर्स के सेक्रेटरी श्री मदनमोहन अग्रवाल ने दिया है। श्री अग्रवाल ने खन्नाजी के उस कथन की भी चर्चा की है जिसे खन्नाजी से मिलनेवाले प्राय प्रत्येक रुग्ण व्यक्ति को सुनना ही पडता है "तुम्हारे पास कोई काम नही है तभी तुम बीमार पडते हो। मुझे तो भाई बीमार पडने की फुरसत नही।]

बी० एन० एस० डी० कालेज में प्रिंसिपल साहब का कमरा। तारीख ११-७-१९३१ ई०। "बैठो भैया , हाँ तो इस समय तुम राउण्ड रूम में आकर रहने लगो और अगर पहली तिमाही में तुम फर्स्ट आये तो तुम्हे 'प्रिंसिपल्स स्कालरशिप' दे दूगा। अच्छा।" इसके पहले कि मैं कुछ कह सकू, उन्होंने दूसरे विद्यार्थी से बात करनी प्रारम्भ कर दी।

मुझे खूब स्मरण है कि बा० कालिकाप्रसादजी वकील, झाँसी ने, जिनका पत्र लेकर मैं प्रिंसिपल साहब से मिला था, मेरे हितैषी होने के नाते कुछ शब्द मेरी तारीफ में लिख दिये थे। पढने के साथ ही उन्होने एक क्षण के लिए दृष्टि उठाकर मेरी ओर देखा था, मानो मेरा एक्स-रे किया हो और दूसरे क्षण उनके होठो से ऊपर लिखे शब्द निकल पडे थे।

कमरे से मै बाहर आया तो मुझे याद रहा उनका गौर वर्ण, श्वेत वस्त्र और श्वेत साफा।

× × ×

तब से मुझे इन १८ वर्षों में खन्नाजी के बहुत निकट सम्पर्क में आने का मौका मिला है, लेकिन आज भी मैं यह महसूस करता हूँ कि यदि मुझे यह सौभाग्य न भी प्राप्त हुआ होता तो उनको समझने के लिए पहली मुलाकात के शब्द ही काफी थे।

एक अनजान विद्यार्थी के लिए 'भैया' शब्द की आत्मीयता, क्षण भर में निर्णय करने की विलक्षण बुद्धि और व्यवसायी-सुलभ कार्यपटुता—ये तीनो गुण ही उनके चरित्र की कुजी है। वे चाहे कालेज के प्रिंसिपल हो, या कम्पनियो के डाइरेक्टर, या यूनिवर्सिटी कोर्ट के सदस्य या सहृदय अतिथि—उनमे उक्त तीनो गुण ही प्रधान रूप से दिखाई देते है।

× × ×

पिछले वर्ष मै बीमार पड गया था। मेरे पास आकर वे बोले, "तुम्हारे पास कोई काम नही है, तभी तुम बीमार पडते हो। मुझे तो भाई, बीमार पडने की फुरसत नही।" और सचमुच इस १८ वर्ष के बीच केवल एक बार छोडकर जब उन्हे अर्श की शिकायत थी, मैंने उन्हे रोग शैय्या पर नही देखा। वह भी जब उनका जीवन इतना व्यस्त रहा है। इसका रहस्य है उनका सादा जीवन और सादा भोजन (वर्षों से उन्होंने अन्न का प्रयोग छोड रखा है) फलाहार—आत्मनिग्रह और कार्य-सलग्नता। उनके लिए प्रतिदिन कालेज जाना उतना ही आवश्यक था जितना मनुष्य के लिए भोजन और स्नान।

उनके यहाँ शायद ही कोई ऐसा दिन जाता हो जब कोई न कोई उनका अतिथि न बनता हो। उनके प्रिय दोहे—

"कबिरा एतो दीजिए, जामे कुटुब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥"

मे उनके जीवन की अच्छी झाँकी मिलती है। अतिथि-सत्कार में वे अपने नगण्य शिष्य के लिए उतने ही आतुर रहते है जितने किसी गण्यमान पुरुष के लिए।

कुछ दिन हुए उनके मुँह से फारसी का एक शेर सुनने पर विदित हुआ कि उन्होन फारसी-उर्दू ही पढी थी और 'हिन्दी' उनका विषय ही नही था। परन्तु जो लोग हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में उनके भाषण और 'विज्ञान' में उनके लेखो से परिचित है, उन्हे उनके हिन्दी ज्ञान और उनकी सुसस्कृत भाषा पर आश्चर्य होना स्वाभाविक है।

३-४ महीने पहले जब कालेज से अवकाश ग्रहण की बातचीत चल रही थी, आगरा कालेज के सस्कृत-हिन्दी प्रोफेसर पं० जगन्नाथ तिवारी के साथ बातचीत के सिलसिले म यह जिक्र आया कि आखिर उनके कालेज का इतना अच्छा परीक्षाफल रहने का रहस्य क्या है? वे चट बोले, "इसमें कोई भी रहस्य नही। हम केवल सावधान अधिक रहते है।" एक प्रिंसिपल के नाते विद्यार्थियो को समझने में वे उतना ही अधिक समय देते है, जितना अध्ययन-अध्यापन में अथवा शिक्षा-विभाग की सुविधाओ के उपयुक्त उपयोग में।

विद्यार्थियो के साथ उनका व्यवहार पिता पुत्र का सा रहता है। शायद ही किसी प्रिंसिपल को अपने विद्यार्थियों के इतने नाम याद हो! उनकी स्मरण शक्ति का यह अद्भुत नमूना है।

खन्नाजी का विद्यार्थी जीवन बडी कठिनाइयो के बीच बीता। यही उनके सादा जीवन का मूल कारण है। गरीब विद्यार्थियो के प्रति उनकी सहानुभूति इसीलिए अधिक रहती है।

खन्नाजी में काम करने की अपूर्व क्षमता है। कानपुर शिक्षा सोसाइटी को जन्म देकर उन्होने शिक्षा की सुविधाएँ कानपुर ऐसे नगर में अधिक सुलभ कर दी है। मैंन देखा है कि टीका-टिप्पणी से वे अपने ध्येय से हटते नही, वरन् अधिक क्रियाशील और उद्योगी हो जाते है।

सन् १९४२ ई० में जब स्वदेशी बीमा कपनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर जेल चले गये थे, उन्होने एडी-चोटी का पसीना एक कर उनको मुक्त कराने का प्रयत्न किया था! उन्हें इस बात की चिन्ता नही हुई थी कि उनकी इस कार्रवाई से उनके ऊपर क्या आपत्ति आ सकती थी। कम्पनी की बोर्ड की बैठको में मैंने उनकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता अनेक अवसरो पर देखी है। इसका एक कारण यह भी है कि उन्हे पद-लोलुपता छू नही गई। न जाने कितनी बार 'स्वदेशी' के अध्यक्ष बनने के लिए उनसे अनुरोध किया गया, लेकिन उन्होने कभी अपनी स्वीकृति नही दी।

उनका कहना है कि जिस काम को आज से १० वर्ष बाद करना हो उसकी तैयारी अभी से करो। उनके साथ बात करने पर यह भास होता है कि जिस विषय पर भी वे बात करते है उस पर साधारण से अधिक अधिकार रखते ह।

कालेज से उन्होने अवकाश ग्रहण अवश्य कर लिया है, परन्तु मेरी धारणा है कि वे अब यह सोच रहे है कि कानपुर एडुकेशन सोसाइटी को अधिक उपयोगी कैसे बनाया जाय। शिक्षा प्रेमी के नाते, प्रिंसिपल के नाते बी० एन० एस० डी० कालेज को उन्होने जो रूप दिया है, वह उनके जीवन की सजीव प्रतिभा है। उसके विकास का अध्ययन खन्नाजी के जीवन का अध्ययन है।

श्री हीरालालजी खन्ना

श्री महादेवप्रसाद श्रीवास्तव

प्राध्यापक अँगरेजी-विभाग, विक्रमाजीतसिंह, सनातन धर्म कालेज, कानपुर

आज के शुभ अवसर पर जब खन्नाजी के प्रिय शिष्य एव साथी उन्हे अभिनन्दन-ग्रथ भेंट करने का शुभ आयोजन कर रहे है। मै भी ग्रथ के अँगरेजी विभाग के सम्पादक के नाते, अपने श्रद्धेय गुरुदेव एव सरक्षक के चरणकमलो में अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ। जुलाई सन् १९२१ में मैंने गणित का विषय लेकर स्थानीय डी० ए० वी० कालेज के प्रथम वर्ष में प्रवेश किया था। खन्नाजी उन दिनो गणित के अध्यापक थे। उन्ही दिनो मेरा खन्नाजी से साक्षात् हुआ था। आज भी तीस वर्ष पूर्व की वे स्मृतिया कितनी सजग है। कालेज में प्रवेश करने के थोड समय पश्चात ही मैंने खन्नाजी की कृपा प्राप्त कर ली और तब से आज तक उनकी अनुकम्पा बनी हुई है। विद्यार्थी जीवन में उन्होने मेरी जो सहायताएँ की है, उनके लिए आज भी मै आभारी हूँ। बी० ए० पास करने के पश्चात् खन्नाजी ने गणित लेकर एम० ए० करन के लिए मुझसे आग्रह किया था लेकिन मैंने लाला दीवानचन्द के कहने से अँगरेजी विषय लिया। खन्नाजी को मेरा यह विषय निर्वाचन पसद न आया और इसके लिए उन्होने मुझ आज तक क्षमा नही किया है। परन्तु इतना होते हुए भी खन्नाजी की कृपा में तनिक भी कमी नही है। एक बार उन्होने इलाहाबाद मुझ एक पत्र में लिखा था, तुम्हे किसी बात की आवश्यकता हो, तो निसकोच लिखना। इस आश्वासन मात्र से मेरी सब कठिनाइयाँ दूर हो गई। डी० ए० वी० कालेज में खन्नाजी उन दिनो उन इने गिने व्यक्तियो में थ, जिनके पास निर्धन विद्यार्थी सहायता एव प्रेरणा के लिए अक्सर जाया करते थ। अपने विद्यार्थियो पर खन्नाजी को सदैव से असीम प्रेम रहा है और बहुतो के साथ तो उनका पितृवत् व्यवहार है। खन्नाजी का जीवन सादगी स्वच्छता एव कार्य निपुणता का साक्षात् रूप है। खन्नाजी बड ही स्पष्टवादी एव मिलनसार व्यक्ति है। उनके जीवन म लेशमात्र भी आडम्बर नही है।

जब कोई व्यक्ति मिलने जाता है, तो खन्नाजी का पहला प्रश्न होता है कोई विशेष कार्य?' और प्रश्न के साथ ही आगन्तुक व्यर्थ की लम्बी चौडी भूमिका से बच जाता है। खन्नाजी किसी व्यक्ति

को व्यर्थ के भुलावे में डालना पसन्द नही करते। यदि वे किसी की भलाई करना चाहेगे, तो उस व्यक्ति की भलाई के लिए वे कुछ भी उठा न रक्खेंगे। चाहे उसके लिए उन्हे कितने ही कष्ट क्यो न सहने पडें।

खन्नाजी को श्रद्धाजलियाँ समर्पित करनेवाले लेखको ने इस सफल आचार्य की गणित कक्षाओ की उपेक्षा की हैं। वास्तव में खन्नाजी के व्यक्तिगत जीवन की सच्ची झाँकी कक्षा में ही प्राप्त हो सकती हैं। आज भी मुझ भली भाँति स्मरण है कि जब खन्नाजी अपने स्वदेशी धवल वस्त्रो में कक्षा में प्रवेश करते थे, तो कक्षा का वातावरण ही कुछ बदल-सा जाता था। खन्नाजी की श्यामपाट से कुर्सी तक आने की तत्परता एव सतर्कता के कारण विद्यार्थियो को कक्षा में शैतानी करने का बहुत कम अवसर प्राप्त होता था। यदि कक्षा में कही भी अनुशासन भग होता, तो खन्नाजी शीघ्र ही जान जाते थे और अपनी कार्य-कुशलता एव व्यवहार से उसे वही समाप्त कर देते थे। खन्नाजी को कुछ वाक्य बहुत प्रिय थे, जिन्हे वे प्राय कक्षा में कहा करते थे। "गणित में व्यर्थ की भूमिका के लिए स्थान नही।" 'कोई बात नही, अब की बार तुम अवश्य सफल हो जाओगे।" इन वाक्यो से हमारे व्यक्तित्व को बल मिलता था, और हमें अपने विषय और अध्यापक दोनो पर गर्व होता था। शिक्षक के नाते उनकी सफलता विद्यार्थियो से अधिक से अधिक काम लेने में थी।

उनका कठोर परिश्रम, उनकी सतर्कता, उनकी अनुशासनप्रियता आज सबको विदित है। परन्तु ये सब बातें भी उनकी पूर्ण सफलता के रहस्य को प्रकट नही कर पाती हैं। हम खन्नाजी से स्नेह करते थे, श्रद्धा करते थे, और साथ ही उनकी उद्दण्डताओ के लिए उनसे डरते भी थे। वे प्राय रविवार के टैस्ट के लिए गणित के सभी विद्यार्थियो को कालेज बुलवाते थे। हममें से कोई टैस्ट में अनुपस्थित होने का साहस न कर सकता था। खन्नाजी इन टैस्टो में प्राय आठ या नौ प्रश्न तीन घटे में हल करने के लिए दिया करते थे। प्रश्नो की सख्या यूनिवर्सिटी में आनेवाले प्रश्नो की सख्या से एक या दो अधिक ही होती थी। व्यर्थ में कागज का दुरुपयोग करनेवाले विद्यार्थियो के प्रति खन्नाजी को कोई सहानुभूति न थी। वे प्राय कहा करते थे, 'कागज का एक-एक इच भी प्रयोग में लाओ। खन्नाजी की कक्षा यदि केवल गणित के शुष्क एव नीरस विषय तक ही सीमित होती तो मैं उसे कब का भूल गया होता। पर बात कुछ और ही है। खन्नाजी के शिक्षण से हममें जो नवीनता जाग्रत होती थी, वह विषय के ज्ञान से अधिक टिकनेवाली होती थी। खन्नाजी की ही देख रेख में हममें सिद्धान्तो के प्रति ममता जाग्रति हुई और हमने सत्य की खोज करना सीखा। आपके ही प्रभाव से हमने विशिष्ट को छोड समिष्ट को अपनाया और सन्देह से हटकर सत्य का पल्ला पकडा। अध्यापन कार्य के बीच बीच खन्नाजी हमें अतीत की गौरव-गाथाएँ भी सुनाया करते थे। वे प्राय प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रोफेसर होमर शाम काक्स का नाम, जिनकी स्मृति में प्रयाग विश्वविद्यालय बी० ए० और बी० एस० सी० में उत्तीर्ण होनेवाले गणित

वे सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी को एक स्वर्ण पदक प्रतिवर्ष प्रदान करता है, बडी श्रद्धा से लिया करते थे। भारतीय गणितज्ञ प्रोफेसर रामानुज और डाक्टर गणेशप्रसाद के प्रति भी खन्नाजी को अतीव श्रद्धा थी और समय समय पर वे इनके जीवन से भी उदाहरण दिया करते थे। वह युग राष्ट्रीय जाग्रति का युग था। खन्नाजी अपने देश के प्रसिद्ध देशभक्तो एव राजनीतिज्ञो के नामो का भी उल्लेख कक्षा में किया करते थे। मालवीयजी के जीवन से खन्नाजी ने बहुत कुछ सीखा है। इसका उल्लेख किसी न किसी रूप में प्राय वे किया ही करते थे। परन्तु इन बातो के साथ-साथ वे व्यक्ति को कभी नही भूलते थे। वे कहा करते थे कि बलवान् ही वसुन्धरा का भोग करने का अधिकारी है और इसी कारण समय-समय पर स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक बातो से हम लोगो को अवगत करते थे। खन्नाजी के व्यक्तित्व में एक विशेष आकर्षण है। जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावशाली नही होता है, वह चाहे कितना ही योग्य क्यो न हो, जीवन में सफलता प्राप्त नही कर सकता है।

खन्नाजी को कुछ वाक्य विशेष रूप से प्रिय हैं जिन्हे वे प्राय कहा करते थे, 'सिखाये पूत दरबार नही जाते।" 'भाई मैं तो साहित्य, सगीत, कलाविहीन हूँ।" आदि　　।

वे प्राय साहित्य के अध्यापको, कवियो और सगीत मर्मज्ञो से ही कहा करते है। इस वाक्य के द्वारा वे इन तीन कोटि के कलाकारो का, उनकी अकर्मण्य एव कल्पना-जन्य विचित्रता के कारण, उपहास किया करते है। सम्भवत गणित की स्पष्टता उनको कला की कल्पना से अधिक रुचती है।

खन्नाजी के शिष्यो की सख्या असख्य है। आज के इस पुण्य अवसर पर जब वे अपने ज्ञान-वारिध गुरुदेव को श्रद्धायुक्त श्रद्धाजलियो का ग्रथ भेंट कर रहे है, मैं भी उनके साथ इस महान् आचार्य को नतमस्तक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ, और उनके अन्य शिष्यो के साथ परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वह मेरे गुरुदेव को एक सुखमय दीर्घ जीवन प्रदान करें।

श्री हीरालाल खन्ना

श्री हरिदत्त शास्त्री

[शास्त्रीजी का परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है।]

मानवता का उत्कर्ष यही है कि जीवन-यात्रा अपने ध्येय पर निरन्तर बनी रहे। ससार में मनुष्य दो भिन्न मार्ग को अवलम्बन करते हुए रहते हैं और उसी गति पर जीवन चलाना ध्येय बना लेते हैं।

उनमें से एक मनुष्य-जीवन वह है जो इस दृश्य जगत् को अपना भोग विलास समझकर, अपनी जीवनशक्ति को इद्रियभोग के साधन समझकर, अपनी विद्या बल विचार, धन को इद्रिय विलासिता का साधन समझकर उन सबका उपभोग इन्द्रियो की तृप्ति के लिए करना और करना ही ससार की दुःख निवृत्ति मानकर बहिर्मुख वृत्ति का प्रसारण करते है।

दूसरे लोग वे है जो जीवन काल में अपना साधन जनसेवा करना समझते है। जनसेवा करना ही भगवत्-भक्ति है। जनसेवात्म जीवन ही उच्च कोटि का जीवन है गीता० ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूत हिते रता" भगवत्-उपदेश है कि सब प्राणियो के दुःख दूर करने में जो लगे रहते है, वे भगवत् भाव को प्राप्त कर लेते है।

विचारणा इसमें यह है प्राणी-मात्र की सेवा, देश-जाति की सेवा करना धीर मानवता की देन है, परन्तु दुःख निवृत्ति के निमित्त मानवता क्या सेवा बताती है। विद्या का विचार अनुभव का प्रसाद हमें यही बताता है। देश जाति की सच्ची सेवा यही है कि अज्ञानता के दुःख से बचाया जाय जब तक अज्ञानता दूर न होगी कभी भी दुःख से छुटकारा नही मिल सकेगा, अन्य अन्य प्रकार की सहायता सेवा के करने पर भी कभी दुःख से छुटकारा नही होता है। जो धीर पुरुष अपने देश-जाति की अज्ञानता से रक्षा करना चाहता है, वह देश-जाति का सच्चा सेवक है। हमारे मित्र हीरालालजी खन्ना ने विद्याध्ययन-काल से अपना लक्ष्य विद्या के प्रचार करने का जो निश्चित किया था उनके साथ सकल्प ने उनके जीवन को विद्या के प्रचार कराने में पूर्ण सफलता दी है। उन्होने जनता को उत्साहित कर जनता का सयोग लेकर कितने ही पाठशाला, विद्यालय, छात्रनिवास बनाए है और बना रहे है। यह खन्नाजी की देश जाति की सेवा स्वर्णाक्षरा में उल्लेखनीय है। मैं खन्नाजी को आशीर्वाद देता हूँ कि वे अपना शेष जीवन इसी सेवा में प्रदान करें और उनके इस दीर्घकालीन विद्यावितरण-अनुभव से देश के भावुक लोग लाभ उठाकर इसी प्रकार इस देश की विद्या विकासिनी शक्ति से महाराजा भोज, विक्रम के इतिहास का उत्थान करें।

मेरे सहयोगी प्रिन्सिपल खन्ना

माननीय प० गोविन्दवल्लभ पन्त मुख्य मत्री, उत्तर प्रदेश
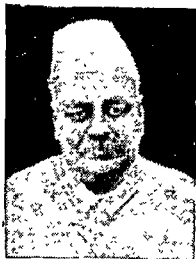
[अपन प्रात के मुख्य सचिव माननीय पतजी स्वय अपन म एक सस्था ह। उनकी सेवा का मापदण्ड एक कर्मवीर म उच्च कोटि की कमठता की अपक्षा रखता ह। खन्नाजी को आपन एक सहयोगी के रूप म स्मरण किया है। अदम्य साहस के प्रतीक रूप पतजी न खन्नाजी के साहसपूण देश प्रम की भी सराहना की है। माननीय पतजी खन्नाजी को एक अनुभवी एव परिश्रमी शिक्षाविद् के रूप में देखते ह।]

विश्वम्भरनाथ सनातन धम कालेज कानपुर के अवकाशप्राप्त प्रिंसिपल श्री हीरालाल खन्ना से मेरा परिचय लगभग ४२ वष पूव हुआ था जब कि १९०८ ई० में आपन उत्तर प्रदेश के अकाल पीडितो की सहायता के लिए एक स्वयसेवक के रूप म काम किया था। उस समय हम म्योर सेन्ट्रल के विद्यार्थी थ और हिन्दू बोर्डिंग हाउस इलाहाबाद म रहते थ।

स्वर्गीय गोखले द्वारा सचालित दक्षिणी अफ्रीका सम्बन्धी आन्दोलन म भी आपन भाग लिया था जिसके कारण यद्यपि तत्कालीन कालेज अधिकारी आपसे रुष्ट हो गय थ तथापि राष्ट्रप्रम से प्ररित पथ म आप अडिग रहे।

आपन हाईस्कूल और इटरमीडिएट बोड की विभिन्न समितियों म भी मेरे साथ काम किया जहा मुझ शिक्षा के प्रति आपके अनुराग का परिचय मिला। आप बनारस इलाहाबाद और आगरा विश्व विद्यालयों की विभिन्न समितियों के भी सदस्य रहे ह और अपन सेवाभाव अनुभव और परिश्रम द्वारा शिक्षा उन्नति के कार्यों में निरन्तर हाथ बढाते रहे ह।

यद्यपि खन्नाजी न अध्यापन-काय से अवकाश प्राप्त कर लिया ह तथापि मुझ विश्वास ह कि इस राज्य के शिक्षा प्रसार तथा उन्नति के कार्यों म आपका सहयोग सदा प्राप्त होता रहेगा।

हमें खद ह कि विलम्ब से प्राप्त होन के कारण हम माननीय पतजी के इस पत्र को अन्त में दे रहे ह।

—सम्पादकमण्डल

१००) या उससे अधिक रकम के दानदाताओं की सूची

१५६) श्री सद्गुरुशरण अवस्थी
१०१) श्री पुत्तूलाल
१०१) श्री रामप्रसाद अग्रवाल
१००) श्री नवलकिशोर भरतिया
१००) श्री मोतीलाल
१००) श्री गोपाल सिंहानिया
१०१) श्री बाबूलाल मिश्र
१००) श्री वासुदेव खेर
१०१) श्री विश्वनाथ जालान
१०१) श्री एच० घोष प्रयाग
१ १) श्री हीरालाल सूतवाले
१०१) श्री शालिग्राम भार्गव प्रयाग
१०१) श्री छोटेलाल गयाप्रसाद ट्रस्ट
१००) श्री केशवचन्द्रसिंह
१५१) श्री हाफिज माहम्मद सिद्दीक
१०१) श्री मुकीमउद्दीन
१००) श्री लाला मोतीलाल बगिया मनीराम
१०१) श्री सरदार इन्द्रसिंह
१०१) श्री शिवप्रसाद सेठ शाहजहाँपुर
१०१) श्री चम्पाराम चतुर्वेदी आगरा
२५०) श्री देवशर्माजी
१०१) श्री सत्येन्द्र मिश्र बम्बई
१०१) श्री नामप्रसाद
१०१) श्री देवीप्रसाद मालवीय
१०१, श्री राजेन्द्रमणि शर्मा
१००) श्री हरिशङ्कर सिंहानिया
१०१) श्री लाला बुद्धूलालजी मेहरोत्रा
१०१) श्री चन्द्रकिशोर रिटायर्ड इंजीनियर
१०१) श्री सत्यप्रकाश गुप्त
१०१) श्री श्रीकृष्ण अग्रवाल ल्लूमल एण्ड सन्स
१०१) श्री रामकृष्ण शुक्ल
१०१) श्री पुष्पकुमार
१००) श्री रामकृष्ण शर्मा
१०१) श्री ताराचन्द भार्गव
१०१) श्री लाला गोपालदासजी
१५१) श्री लाला मानिकचन्द्र मेहरोत्रा
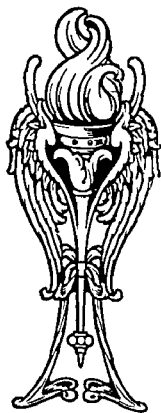
ENGLISH SECTION

स्वामीजी (६० वर्ष की अवस्था में)

A family group of Khannaji

A PERSONAL TRIBUTE

Dr Amaranatha Jha
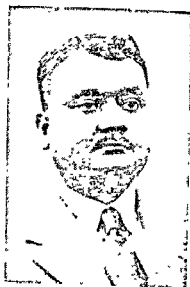
[Dr Amaranatha Jha Ex Vice Chancellor of the Allahabad and the Benaras Universities and Chairman of the Public Service Commission U P a distinguished son of a distinguished father the late Mahamahopadhyaya Dr Ganga Nath Jha M A , D Litt , has been a valued friend of Khannaji for about 40 years *He is not only a reputed Scholar author and teacher but also one of the most distinguished Vice Chancellors that the country has ever produced*

The erudite scholar pays a warm tribute to Khannaji in his present article.]

I have known Khannaji for about forty years now We were fellow students at college we have been colleagues on the Board of Intermediate and High School Education, Court of the Allahabad University, Senate of the Agra University, Council of the Hindustani Academy, and Standing Committee of the Hindi Sahitya Sammelan During all this period we have continued to be good friends We have frequently differed, we have sometime been ranged in opposite camps we have engaged too in debate and controversy But there has been no rift in our friendship That is a tribute to his generosity and tolerance and broadmindedness

The first incident connected with Khannaji which is still fresh in my memory occurred in 1913 We were holding the Annual College Sports and naturally there was much enthusiasm Some undergraduates in their impetuosity went inside the track One of the junior professors, who was, I believe, from New Zealand, rushed up and started using his cane to turn the students back His cane touched Khannaji and the late Professor V S Tamma, who was then a post graduate student

They caught hold of the professor's cane and there would have developed a serious situation, but for the tactful intervention of the acting Principal. But that was the end of the young New Zealander's professional career, for he was immediately sent away to take charge of a school This incident impressed itself on our minds, and was typical of Khannaji's sense of self-respect and sturdy independence—qualities that have been characteristic of him all his life.

On the Intermediate Board we were closely associated for about twelve years. We worked together on its committees. He gave me in the beginning the impression of being dogmatic and obstinate ; but that is another way of saying that he had his own convictions and formed his own opinions. He was, however, open to persuasion and had the intellectual honesty of admitting that there could be another point of view. He was never cantankerous and obstructive.

Khannaji has always looked grave and terribly in earnest. Actually he has a keen sense of humour and is a very pleasant companion. He even secretly enjoys *risque* anecdotes He has read widely and thought much specially about educational problems. Above all he has been a source of inspiration to his pupils, many of whom owe to him more than they can ever repay save in lasting gratitude and affection

I desire to pay my tribute to a good friend, a great teacher, a distinguished educationist, and a selfless patriot May his shadow never grow less!
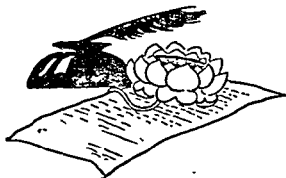
A LETTER OF SHRI SRI PRAKASA
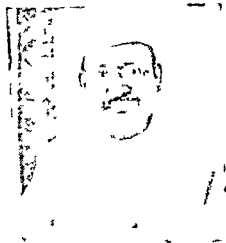
[The following is the full text of the letter sent by H. E. Shri Sri Prakasa, Governor of Assam to the Editor of this volume.]

MY DEAR FRIEND,

I thank you for your kind thought in informing me about your proposals to commemorate the great success of Shri Hiralalji Khanna to our social and educational life, and I send you my best wishes for the success of your endeavours. I should like to pay my own tribute to Mr. Khanna's work and worth and congratulate him on the success that has attended his life long labour. I pray he may have a happy time in his retirement whence, I am sure, his good work will continue unabated in an atmosphere of greater freedom and leisure.

Thanking you again,

Yours sincerely,
SRI PRAKASA

REORGANISATION OF EDUCATION IN THE UTTAR PRADESH

SHRI A. K. SANYAL

[The main features and salient details of the re-organised system of Education in U. P. started in July 1948 are very ably given here. English is now only an optional subject at the Senior Basic Stage and also at the Higher Secondary stage in Constructive and Aesthetic Course. Hindi is compulsory throughout. There is no English at the Junior Basic stage. Junior Basic comprises classes I to V, Senior Basic VI to VIII and Higher Secondary IX to XII. After class VIII there is provision for enabling students to choose according to aptitude the literary, the Scientific, the Constructive or the Aesthetic type of school. The curricula throughout reflect dignity of manual labour and variety to suit special aptitudes.

The writer Mr. A. K. Sanyal is a Senior and well known officer in the Education Department of this province and is an authority on the subject.]

Need of Reorganisation

The system of education introduced and developed in India during the last 150 years was essentially an exotic plant, grafted from England. Naturally we were behind the times and the system being spiritless, lifeless, unrelated to life and alien to our traditions never appealed to the soul of India. Its reorientation in order to bring it in line with our ancient culture, past traditions and national requirements was long overdue.

Genesis of the Reorganisation Scheme

The Congress Ministry in U. P. appointed a Committee under the chairmanship of Acharya (now Doctor) Narendra Deva to suggest ways and means to overhaul our entire system of education. But before the recommendations of this committee could be given effect to, the Congress Ministries had resigned and the educational reforms were delayed by about a decade. Naturally on the re-assumption of office by the Congress in 1946 the question of educational reorganisation was taken up in right earnest. Although the Narendra Deva Committee Report formed the basis of deliberations the whole question was discussed and debated upon de novo in the light of the Sargent Committee Report, the deliberations of the Central Advisory Board and the fresh problems that had

cropped up as a result of the World War II and the achievement of independence by India. The present scheme is the result of all these deliberations.

Scheme of Reorganisation

The new scheme of reorganisation introduced in U P from July, 1948 removes all distinctions between the Hindustani and Anglo Hindustani Education and gives us one unified ladder from the beginning of education of a child upto the Higher Secondary (pre-University) stage The main stages of education are:—

(a) Pre-Basic stage or Nursery education

(b) Basic Education spreading over a period of 8 years and beginning at the age of six years

This is sub-divided as under :—

(i) Primary Basic Education extending over a period of five years, comprising classes I to V. The institutions, imparting this education are called Primary Basic Schools

(ii) Senior Basic Education, covering three years comprising classes VI to VIII. The institutions, imparting this education, are called Junior High Schools

(c) Higher Secondary Education, for four years, comprising of classes IX to XII as one unit. The institutions imparting this education are called Higher Secondary Schools

Contents of the Syllabus

(a) *Primary stage* —There will be no English at any stage of the Primary. Hindi, being the state language, will be a compulsory subject for all The child is taught through the medium of Mother Tongue in this stage. The curriculum has been so prepared as to lead to the harmonious growth of the hand, head and heart An effort has been made to educate the child in his environment so that it may not begin to despise the very environment in which he was born and brought up and in which he has to pass his life Basic crafts are chosen from the main factors that constitute our daily life Art and Craft are taught not as

subjects standing apart from others, but they are so taught and so correlated with other subjects that students learn by doing In order to achieve these objects, the following subjects are being taught at the primary stage —

A—*Basic Crafts* —1 Gardening, 2 Spinning, 3 Art and Handicrafts

B—Language—Hindi

C—Arithmetic

D—Social Studies (History, Geography, and Civics)

E—General Science

F—Physical Culture

All these subjects are compulsory Practical Methods of teaching and closest possible contact with life situation is always insisted upon so that education may not be divorced from actual life in our environment This environment is common to both girls and boys and there is co education at this stage though there are separate schools for girls in big towns The number of such schools is about 20,000 in the Province

(b) *Junior High School Stage* —At this stage the element of option is introduced Having learnt something of every thing at the primary stage, the students are encouraged to follow individual tastes, although this option is not carried to the extent of specialisation At this stage, the subjects of study are divided into three groups

(a) Art and Basic Crafts —Art is a compulsory subject for all and students are allowed to choose one of the crafts—Spinning and Weaving, Wood craft, Metal craft, Book craft, Agriculture, Rural knowledge and House craft (for girls only)

(b) Compulsory subjects —(i) Language (Hindi) (ii) Mathematics (Arithmetic, Algebra and Geometry), (iii) Social Studies (History, Geography and Civics), (iv) Physical Culture

(c) Optional subjects —Two of the following optional subjects —(i) Music, (ii) Commerce including Business methods, (iii) Physiology and Hygiene, (iv) One classical

language (Sanskrit, Persian and Arabic), (v) English (vi) One modern Indian Language (Bengali, Gujrati Marathi, Urdu, Punjabi and Sindhi) (vii) General Science

In order to enable the students to exercise their talents to the maximum the study of an additional optional has also been permitted The sylla bus at this stage is different from that of the primary stage in two res pects It provides training to the girls in House craft which in most cases is to be their life s main job Secondly it introduces an element of option to be exercised by the students in the selection of the Basic craft as well as their optional subject It may be mentioned that the study of English has been made optional while that of Hindi compul sory at this stage Thus a provision has been made to cater to different tastes aptitudes and capabilities There is no co education at this stage At present the number of such Junior High Schools in the Pro vince is in the vicinity of 2 000 In addition to these schools, these classes are also maintained in about 850 Higher schools

Bifurcation After this stage students will march into different channels according to their aptitudes Some of them will drop off and follow their father s trade and profession In order to keep up their interest in education *to save them from reversion to illiteracy, to give them some specialised knowledge of their trade and profession and to keep them abreast of the time, provision has been made for ' Continua tion classes '* which will be held in selected Higher Secondary Schools at night so that there may be no interference in their bread earning acti vities In these classes cultural subjects like English, General Know ledge Hindi, are also taught besides a craft 12 such classes have been started in Government Higher Secondary Schools and 59 in aided insti tutions

Some of these would like to join technical schools, for whom is envisaged a net work of technical schools, but these have not yet been remodelled

A majority of those who complete the Junior High School stage would be going up for Higher Education They would be admitted to a four year cousre in a Higher Secondary School

(c) Higher Secondary Stage —It is expected that by this time a student should be able to discover his taste and capacity Naturally he should follow the course, which is to his taste *A Psychological Bureau has been established at Allahabad to help those who are yet unable to decide for themselves* The Bureau attempts to help the guardians in finding the aptitude of their wards The task is big Many such bureaus are needed before the aim can be fulfilled but a real beginning on proper lines has been made

The courses of studies *at the Higher Secondary stage are divided into four main groups or types*—the Literary type the Scientific type the Constructive type and the Aesthetic type, each catering to the needs of a particular type of students Here the subjects to be taught in each group are divided into two sections—the main subjects and the subsidiary subjects *The main subjects are the very life of the group* They are the subjects, that specially supply the intellectual and emotional needs of the students offering that group They are expected to develop the taste and foster the personality of the student It is in these subjects that the student will specialise and will make his mark later on The subsidiary subjects will help and subsidise the main subjects They have yet another purpose If a student discovers after studying for sometime, that he has made a wrong choice of main subjects and that he should have offered as main subjects some of those which he has taken as subsidiary subjects he can make a change over and offer the proper main subjects in the proper group Although most of the *subsidiary subjects are common in all the four types of schools yet it should not be understood that the same course will be taught under them in the different groups* This is obvious from the fact that in different groups they *have to subserve different main subjects*

The most important feature is to recognise the fact that the study of subjects involving the use of hand is as good as the study of Literary and the Scientific subjects *The dignity of labour has been restored and an effort has been made to remove the inferiority complex attached to the study of subjects of practical nature* Hence the introduction of Constructive and Aesthetic types where it may be noted that the study of English is not obligatory

Another special feature of this stage is that provision has been made for girls for separate subsidiary subjects in the literary type and for separate main and subsidiary subjects in the Constructive type for obvious reasons At this stage both boys and girls are at the threshold of life Naturally education should mean preparation for life to a certain extent at any rate Hence this differentiation in the courses of studies for boys and girls in the Literary and constructive types of courses However those who wish to offer the Scientific and Aesthetic types have to offer the same courses There is no differentiation in courses of studies here on grounds of sex It must however be remembered that there are separate institutions for boys and girls for this stage as at the Junior High School stage

The number of such Higher Secondary Schools is about 850 in the Province

The ideal condition would have been to specialise in one type at each institution in that case it would have been possible to create a special bias and atmosphere for the main subjects and thus to stimulate and inspire the students to dip in the lore of learning so far as that particular subject is concerned But this has not been possible for financial difficulties and other handicaps Hence some of our schools are unilateral some bilateral and others multilateral

Training of Teachers This vast expansion of education and these far reaching changes in the curricula have necessitated large scale production and special training of teachers In order to meet the ever increasing demand for teachers the Education Department has already started 41 Boys Government Normal Schools and the creation of 8 more Normal Schools is under contemplation Thus in a couple of years every district will have its own Normal School for the training of primary school teachers There are separate Normal Schools for the Training of teachers for girls schools

For the Junior High Schools and the Higher Secondary Schools also we require a large number of teachers To meet this demand courses for Junior Teachers Certificate have been started in 8 (old) Government Normal Schools with an enrolment of about 750 candidates Besides these there are four Government L T Training Colleges for

AN APPRLCIATION

H E Sir Sita Ram

His Excellency Sir Sita Ram, Indian Ambassador in Karachi is an old associate of Khannaji He has worked along with Khannaji on the various academic bodies of the Province His appreciation is worthy of the readers attention

Hira Lal Khanna —a name to conjure with in the educational world specially of the United Provinces ! His whole life has been dedicated to education Though still full of energy and vitality in a remarkable degree, he is perhaps due to retire from his post of Principal B N S D College, Kanpur, owing to the superannuation rules

I have known Hira Lal Khanna for years and have come to have great regard for his many qualities An eminent educationist as he is he has made education the principal hobby of his life I know that although he is so very busy with the administration of a large and premier Intermediate College at Kanpur he is still connected as a founder originator or co worker of a number of educational institutions A gentleman of ideal character, a thorough disciplinarian, a fast and dependable friend a fearless but helpful critic, broadminded and enthusiastic, Mr Khanna is loved and admired by those who know him or who may have come in contact with him

I wish Principal Khanna a long and happy life of usefulness after retirement in the service of the mother land May he continue to enjoy the esteem of his students and the affection of his friends, admirers and colleagues !

MY OLD CLASS FELLOW

THE HON'BLE SIR GIRJA SHANKAR BAJPAI

[This is a short paragraph (according to his own words) by Sir Girja Shankar Bajpai Secretary General, Ministry of External Affairs. Sir Girja Shanker Bajpai, a product of I C S, was in the time of British Rule working in the Ministry of Education, Health and Lands and was sent to represent India in Washington (U S A)—With the inception of National Government in the Centre he was recalled and, as Secretary General in the Ministry of External Affairs has been the right hand man of Pandit Jawaharlal Nehru in formulating the Foreign Policy of the Indian Government. He visited America with Pandit Nehru and has been attending all the Common Wealth Conferences along with him.

As a classfellow of Khannaji, the writer has expressed his sentiments that he formed for Khannaji when he was with him in the Muir College Allahabad.

" This was due to his sense of duty that he joined the teaching profession and he worked with devotion and distinction," says the author.]

Hiralalji and I were class fellows in the old Muir College Allahabad, in the B Sc class of 1909—1911. As I did not live in one of the hostels, my contacts with my fellow students were practically limited to the class room. The intimate friendships that one develops in one's student days and which are a precious possession in after years did not, therefore, come my way. The loss has been mine. But even class room associations have left memories and among the pleasantest are my recollections of Hiralalji.

According to academic values ours was a strong class. There was a higher proportion of ' first-classes ' among us than in the classes of the two immediately preceding years, much scholastic ambition, much competition in the periodical tests. Hiralalji held his own in studies and, what was unusual in those days, viz, an active interest in the extra curricular life of the students he played a conspicuous part, conspicuous by reason of his modesty and single mindedness. He thought of the student community as a corporate body of which each member owed a duty to the others, intellectually, morally and socially. Naturally this won him the affection of those who had the privilege of being

his intimates, and the respect of all who knew him, teacher as well as student

Perhaps it was this sense of the duty of service that led him into the profession of teaching With what devotion and distinction he has worked in his chosen sphere of activity is for those to judge who have felt the influence of his enlightened and kindly personality as colleagues or pupils In a remote way, news of him used to reach me during the decade or more that I was connected with the Education Department of the Government of India Since Education was a 'transferred' subject, one had few opportunities in Delhi or Simla of meeting working educationalists After we parted in 1911, Hiralalji s path and mine did not cross until we met a few months ago

He now retires from the Headship of the College which he has served long and well, rich in wisdom and experience, but richest, perhaps in the satisfaction that to hundreds of young men he has imparted not only the light that comes from knowledge but some fraction of the nobility and strength of his character, a seed, which if carefully tended and nurtured, may enrich the individual as well as the nation Fortunately, he is in good health His friends, therefore can look forward to further contribution by him to some national effort suited to his exceptional qualities India s greatest need is of men who not only put service above self but also have the additional merit of having acquired experience through service Hiralalji is one of these rare beings, rare not because of the lack of mind and spirit and will among our people but because of lack of adequate opportunities in the past for practical service May it be given to him to enrich by fresh endeavour a record already rich in distinction

A LETTER OF APPRECIATION

H E Sir Radhakrishnan *Indian Ambassador in Moscow*

H E Dr S Radhakrishnan in a personal letter to Principal Khanna, from Moscow, writes —

Thank you for your letter of the 9th November I am sorry to know that you retire this year from the Principalship of the B N S D Intermediate College After all, a teacher's reward is in the spontaneous appreciation which he gets from his students and it is a pleasure to know that your old students, friends and admirers intend to present a Memorial Volume to you on the occasion of your retirement

I am sorry that it will not be possible for me to write any article on Indian Culture as I am pressed with so many other calls on my time, but I do hope that you will have many years of retired life and you would serve our country and its education in a less restrained way

PRINCIPAL KHANNA AS I KNOW HIM

HON'BLE MR. JUSTICE WALI ULLAH

[The Hon'ble Justice Wali Ullah of the High Court of Judicature at Allahabad is a classfellow and intimate friend of Khannaji.

How admiringly he speaks of the various qualities of Khannaji's head and heart shall be read with delight!]

Principal Hira Lal Khanna who is retiring this year from his post, has been known to me for a very long time. I first met him when he joined the Muir Central College Allahabad, in the year 1909. He was a Science student and I had just then shifted from the Science side to the Arts side. Both of us, however, were students of Mathematics and thus frequently came in contact with each other. In those days we had as our class mates some very bright young men who have since distinguished themselves greatly in many fields of activity. To mention only a few we had among our class mates, Sir Girja Shanker Bajpai, Mr. Ram Chandra Srivastava of Kanpur and Mr. Abdul Hakim of Basti. Of them, Mr. Abdul Hakim has to my great regret recently passed away. We were all keen students of Mathematics under Prof. Homersham Cox of the Indian Educational Service and Professors Umesh Chandra Ghosh and Kumud Behari Mitra of the Provincial Educational Service.

From 1909 till 1913, when I left Allahabad after taking my LL.B degree I had always very good and intimate relations with Principal Khanna. Even as a young student at College, Principal Khanna had an outstanding personality. He always believed in what is compendiously described as ' plain living and high thinking '. To the best of my recollection he never had any predilection for wasteful and frivolous activities in which unfortunately sometimes young students at College indulged. He was a very keen and conscientious worker in every field of activity in which he took interest.

As a man Principal Khanna possesses a charming personality He is held in very high esteem for simplicity of life and purity and nobility of his character He has had the good fortune to enjoy the friendship and genuine regard of a very large number of persons distinguished in various walks of life He is one of those who stand by their principles in which they believe, no matter whether they make them popular or unpopular in the eyes of others

Coming as he did of a poor family, he had to take to private tuitions even during his academic career Soon after finishing his educational career, he took up work in the C A V High School at Allahabad where he soon established a reputation as a teacher of insight and understanding His pre occupation appeared to all those who watched his career then, to be to evolve a new theory of education and guide his young students along new lines His great insistence on the principle that the role of a teacher was merely to guide a student along right lines in picking up knowledge and training his intellect by his own individual efforts has stood him in good stead all through his long career in the educational line ever since He has established an enviable reputation as a selfless worker in the field of education As an educationist, he has set a fine example to all those whose lot it is to train the intellect and mould the character of young students He has served with distinction a number of educational institutions of the province including the B N Sanatan Dharma Intermediate College Kanpur, where his services have extended for nearly a quarter of a century now Wherever he has worked he has always instilled a fine sense of discipline and a love for high ideals in young men who have been entrusted to his care He has served for a number of years on various educational bodies such as the Board of High School and Intermediate Education, the Universities of Agra Allahabad and Banaras He has always acquitted himself very creditably It is universally recognised that he has devoted the best part of his life to the cause of education Throughout he has consistently stuck to his motto of *plain living and high thinking* And it would be in the fitness of things that a Memorial Volume be presented to him on his retirement in token of our appreciation of the great services rendered by him to the cause of education

F

He now goes into retirement carrying with him I have no doubt very pleasant memories of the days spent among young students and with the satisfaction that he has done his duty nobly and well He also carries with him good wishes from a host of friends and admirers I hope and trust that his wide experience and mature judgment in matters educational will not be lost to the country while he is enjoying well earned rest in his retirement
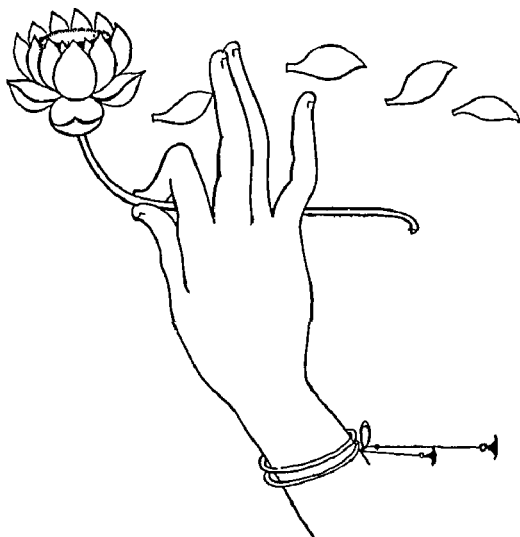
UTOPIAS AND THEIR AUTHORS

DR. MEGHNAD SAHA, F.R.S.

[Dr. Meghnad Saha is a scientist of great eminence. He occupies a place in the first rank of the World Scientists. His interests are varied and his catholicity of taste is superb. In this short article he gives the history of the word " Utopia." With this he combines a lucid exposition of the Utopian thought in the background of different ages. He traces the history of Utopian thought from the time of Plato's 'Republic' and brings it to meet the present need of the rising Republic of India. He remarks that the idea of Utopia has been as old as the dawn of human conscience. The ideal of the Utopia in this country is reflected in the word " Ram Rajya " made familiar by the epic Ramayana. Dr. Saha comments on the action of the Congressmen who have lost sight of their Utopian dream of National Planning. He has full faith in the ultimate triumph of these thoughts.]

" *Utopia* " *is defined as an ideal Commonwealth where inhabitants* exist under perfect condition. The idea of Utopias has been as old as the dawn of human conscience, but it found its earliest serious expositor in Plato, who in his " Republic " describes an ideal structure of society. Founders of religions have also preached Utopias. some in a vogue way, others in a more practical way The ideal of the Utopia in this country is reflected in the word " Ram Rajya " made familiar by the epic Ramayana.

Other writers of Utopias in the middle ages have been Sir Thomas More in England in the middle ages (1516) who coined the word and many lesser known workers of different countries, H G Wells (1903), Bellamy in America. But the most famous Utopian ideas, based on scientific analysis of human history and human relations, were given by Marx and Engels in " Das Kapitel," the Bible of the Communists. Two series of Utopian ideas in this country have been given by Mahatma Gandhi and his followers, and by the advocates of national planning Gandhiji's ideas are scattered throughout his writings but they need bringing together in a critical, well-edited volume. Gandhiji's ideas have been acted upon in the fields of politics, economics and social reconstruction Probably the person who wants to undertake a critical

and factual assessment of the Gandhian ideas will find himself in a whirlpool of controversies but in spite of that it should be undertaken because power has now come to the hands of Gandhiji's followers whose use of his great name is not always in the opinion of a very large section of the public true to the ideals of the Master It is felt that the Chela who swears by the Master's name does not enter into the spirit of His words but interpretes these according to his own convenience

It is easier to speak of the work of the protagonists of National Planning who were composed of political leaders economists scientists industrialists technicians and socialists The recommendations of the National Planning Committee are now available in 28 volumes published through the enterprise of its Secretary Prof K T Shah They include almost all branches of activity of the modern state Industry Agriculture Commerce and Trade both internal and external Finance Labour Social Reconstruction and Training of the Personnel Only Principles of Government were not seriously gone into

It was expected that when the National Government comes to power the recommendations of the National Planning Committee would be seriously considered by the national government and practical measures would be taken to give effect to their recommendations This could not be done with the old administrative machinery just as a motor car could not be pulled by a horse But strange to say this feat has been attempted by the national government with disastrous results for the country

Chastened by their failures the Government has recently brought into existence a National Planning Commission a body of five members presided over by the Prime Minister Except one of these members who played a sub ordinate part in the deliberations of the national planning committee none of the other members have been known to have given any or much thought to national planning Apart from that as a writer in the Economic Weekly observes " It almost looks as if the ghost of Mr Gopalswamy Ayyangar's scheme for Secretariat Re organisation is hovering over the bannisters

Thus have ended the dreams of the Utopians who in the days of the British rule have given their time energy and sometimes even

money, very often incurring the displeasure of the then Government, to the development of the great thought of national planning But have their labours been in vain? A reference may be made to the career of Plato who wrote the Utopia, " The Republic." Plato was asked by one of his pupils who became the Tyrant of Syracuse to come over to Sicily and put to effect his political philosophy. He accepted the invitation, and tried in a small way to make a start, but in course of a year, he had to run away for fear of his life. But that has not taken away from the lustre of Plato's thoughts. For while tyrants, Kings and Emperors have gone into unregretted oblivion, Plato's thoughts have retained undisputed mastery over thinking minds of all ages, and even after two thousand years, they have guided human energy to fruitful and productive action.

A SELF-MADE MAN

THE HON'BLE JUSTICE SANKAR SARAN

[The Hon'ble Justice Sankar Saran is an old and intimate friend of Khannaji. His family had been closely connected with Khannaji The Justice's father, the late Munshi Ishwar Saran, Founder-President of the Harijan Sewak Sangh, U P, had a very soft corner for Khannaji who used to pay him filial homage The association with the family being very intimate the Justice's article throws considerable light on the career of Khannaji. His remark, 'He is a self-made man, tells us volumes about the illustrious person.]

I have had the pleasure of knowing Shri Hira Lal Khanna for a long number of years. His educational career was spent in Allahabad and he used to be a frequent visitor to my house to see my father who was connected with the Kayestha Pathshala where for some time in the opening years of the century Mr. Khanna was a student. He took his degree from the Muir Central College and joined the City Anglo Vernacular School here as Science Master in which capacity he showed great zeal and helped in the fitting of a good laboratory After a few years he left Allahabad for Agra as Assistant Professor of Physics and Mathematics in St. John's College and after three years, in 1919, he joined the D A V College as Professor of Mathematics. He has ended up his career after nearly 21 years of service in the Bishambher Nath Sanatan Dharma Intermediate College where he was the Principal for a number of years. During these long years he has been associated with several educational bodies like the Courts of the Banaras and Allahabad Universities.

He is a self made man who has worked his way up by honest hard work. He now completes his 60th year and has retired from the scene of his former activities yet for a man possessed of excellent physique and fine character there is much to do in free India. May he live long and inspire by selfless work his erstwhile friends, colleagues and students.

A VETERAN EDUCATIONIST

RAJA BAHADUR KUSHAL PAL SINGH, Ex-Education Minister, U.P.

[Raja Bahadur Kushal Pal Singh of Ko'la was sometime the minister of Education in the Utter Pradesh. (then the U.P. of Agra and Oudh). His tribute to the educational services of Khannaji shall serve as an eye opener to many a misguided man who have formed an erroneous notion about the personality and character of Khannaji.]

I have great pleasure in sending reminiscences of Shri Hira Lal Khanna. I made his acquaintance when I was Minister for Education and Industries in U. P. That acquaintance shortly grew into friendship, which I greatly valued. He was then the Principal of B N. Sanatan Dharm Intermediate College, Cawnpore. Besides being a mathematician of high repute, he is a sound Hindi Scholar. The most notable trait in his character which I noticed was that he showed the same regard and consideration for me when I was in office as he showed when I was out of it. When out of office I was at Cawnpore for treat ment for several months, he did his best to make my stay there as pleasant as it could be. During those months I lived in close intimacy with him. Under his inspiring guidance his College Hostel system became an effective agency for the formation of character of the resident students. He laid special stress on athletics, sports, and general religious education. He commanded the unstinted confidence, esteem and affection of his pupils and boarders for his great abilities and for his devotion to and solicitude for their welfare. He is a *veteran educationist* of exceptional capability and enthusiam and a fine gentleman whose dynamic personality leaves a permanent impression on those with whom he comes in contact The high example set by him has greatly influenced the lives of his pupils and associates, and as I was thrown into close and intimate relations with him, it is but fitting that I should join his other admirers in paying my humble tribute to his great services to the cause of education both in the city of Cawnpore and in the United Provinces, in general,

MY TRIBUTE

THE HON'BLE JUSTICE BINDBASNI PRASAD

[This personal tribute from no less a personality than Justice Bindbasini Prasad of the Allahabad High Court is a proof of the esteem enjoyed by Khannaji. 'A gentleman of spotless character' amply sums up the character of the illustrious man.]

I have known Shri Hira Lal Khanna from the time that he was in the College. He was one year senior to me but he was my brother's class fellow. From the very beginning he evinced organising capacity and public spirit. It was no wonder, therefore, to me to find that later in his career he became one of the most prominent educationists of the Province. A gentleman of spotless character and amiable nature, he won every one with whom he came into contact. He has rendered yeomans service to the cause of education in the city of Kanpur. I am confident that although he is formally retiring from his present office of Principal, he will continue to serve the country. I write this as my tribute to him on this occasion of his formal retirement.

it does keep him fit saving otherwise possible periods of illness and I daresay gives him extra zest and freshness to face hard problems—mathematical and otherwise.

Shri Khanna has not confined his activities to education alone. He has taken a lively interest in politics all his life and has been privileged to be near the greatest of our leaders, as few others of the teaching profession can claim to have been. I have a suspicion that he has wielded influence in the municipal politics of Kanpur and as to his interest in business and finance I was once told by one of his many " friends " that he had a fortune enough (after allowance is made for envious exaggeration) to excite the jealousy even of a moderately successful business man let alone his starving brothers-in-trade.

I could recall and record here scores of incidents in illustration of the qualities of head and heart which endear Shri Khanna to his friends both near and remote but would desist and refer rather to what I consider his services to the public—the achievements which entitle him to public esteem. These are four fold. There is first the building up of the B.N.S.D. College in bulk and quality; secondly the establishment of other educational and benevolent institutions in Kanpur; thirdly his work in the Board of High School and Intermediate Education and lastly his association with the Universities.

The magnitude of his achievement embodied in the B.N.S.D College is imponderable. One has to see the institution before he will be willing to believe that there can be such zest for intellectual pursuits in a commercial centre like Kanpur. Khannaji has expanded what was in 1920, a pathshala with classes upto the VIII and an enrolment of 300 pupils into an Intermediate College perhaps the largest in the Pradesh, teaching most of the subjects prescribed for examinations in Arts, Science and Commerce and attaining results unapproached by any other institution. This magnificient success has been attained by hard and patient labour and by a skilful management of men over a period of three decades

Those who have knowledge or experience of privately managed and state-aided educational institutions know well what exertion and ability are needed to retain for such a long period of time the confidence and

support of the managing body with its changing personnel and party complexion Equally difficult in the past has been the task of keeping the authorities of the Education Department pleased and satisfied particularly during period of political stress of which Shri Khanna has seen many during his service He has had to deal with some of the strongest personalities of his time including the redoubtable Babu Vikramajit Singh, Mr A H Mackenzie, Mr H R Harrop and Mr J C Powell Price—all hard to please and difficult to hood wink That he has managed to have his way all along is eloquent testimony to his sagacity and essential worth

In a city like Kanpur where wealth is strewn about like shells on the sea shore it must always be difficult to get good teachers on the modest salaries approved by Government Yet Mr Khanna has not only enlisted a band of devoted teachers but has also succeeded in making them work harder than in other institutions, giving extra coaching during off hours to the weaker students Whether they do it for the sake of the distinction which the College thereby acquires or under the influence of the Principal or whether he makes it worth their while by means which he discovers by his resourcefulness, in any case, it reflects great credit on him He devotes great care and attention to the selection of the student body and the elimination of undesirables Equally laborious and careful is his method of assessing the worth of his students arranging for the coaching both of the deficient and the brilliant so that the institution secures not only the highest percentage of passes but also captures the largest number of places in the first class and the largest number of distinctions Having been for three years Principal of the premier Government College in the Province (the Queens' College Banaras) I harboured a suspicion that Shri Khanna employed some shady means to win this triumph over my College but my strenuous efforts to discover the nature of this shady means made through three long years of my tenure of the office of Secretary Board of High School and Intermediate Education have landed me in the conviction that the magic which Shri Khanna was in the habit of applying to secure his brilliant results was nothing but close personal attention to the work of both students and teachers and the resulting hard work on their part

it does keep him fit saving otherwise possible periods of illness and I daresay gives him extra zest and freshness to face hard problems—mathematical and otherwise

Shri Khanna has not confined his activities to education alone He has taken a lively interest in politics all his life and has been privileged to be near the greatest of our leaders, as few others of the teaching profession can claim to have been I have a suspicion that he has wielded influence in the municipal politics of Kanpur and as to his interest in business and finance I was once told by one of his many " friends " that he had a fortune enough (after allowance is made for envious exaggeration) to excite the jealousy even of a moderately successful business man let alone his starving brothers in trade

I could recall and record here scores of incidents in illustration of the qualities of head and heart which endear Shri Khanna to his friends both near and remote but would desist and refer rather to what I consider his services to the public—the achievements which entitle him to public esteem These are four fold There is first the building up of the B N S D College in bulk and quality, secondly the establishment of other educational and benevolent institutions in Kanpur, thirdly his work in the Board of High School and Intermediate Education and lastly his association with the Universities

The magnitude of his achievement embodied in the B N S D College is imponderable One has to see the institution before he will be willing to believe that there can be such zest for intellectual pursuits in a commercial centre like Kanpur Khannaji has expanded what was in 1920, a pathshala with classes upto the VIII and an enrolment of 300 pupils into an Intermediate College perhaps the largest in the Pradesh, teaching most of the subjects prescribed for examinations in Arts, Science and Commerce and attaining results unapproached by any other institution This magnificient success has been attained by hard and patient labour and by a skilful management of men over a period of three decades

Those who have knowledge or experience of privately managed and state aided educational institutions know well what exertion and ability are needed to retain for such a long period of time the confidence and

support of the managing body with its changing personnel and party complexion Equally difficult in the past has been the task of keeping the authorities of the Education Department pleased and satisfied particularly during period of political stress of which Shri Khanna has seen many *during his service* *He has had to deal with some of the strongest* personalities of his time including the redoubtable Babu Vikramajit Singh, Mr A H Mackenzie, Mr H R Harrop and Mr J C Powell Price—all hard to please and difficult to hoodwink That he has managed to have his way all along is eloquent testimony to his sagacity and essential worth

In a city like Kanpur where wealth is strewn about like shells on the sea shore it must always be difficult to get good teachers on the modest *salaries approved by Government* Yet Mr *Khanna has not only* enlisted a band of devoted teachers but has also succeeded in making them work harder than in other institutions, giving extra coaching during off hours to the weaker students Whether they do it for the sake of the distinction which the College thereby acquires or under the influence of the Principal or whether he makes it worth their while by means which he discovers by his resourcefulness, in any case, it reflects great credit on him He devotes great care and attention to the selection of the student *body and the elimination of undesirables* Equally *laborious and careful* is his method of assessing the worth of his students arranging for the coaching both of the deficient and the brilliant so that the institution secures not only the highest percentage of passes but also captures the largest number of places in the first class and the largest number of distinctions Having been for three years Principal of the premier Government College in the Province (the Queens' College Banaras) I harboured a suspicion that Shri Khanna employed some shady means to win this triumph over my College but my strenuous efforts to discover the nature of this shady means made through three long years of my tenure of the office of Secretary Board of High School and Intermediate Education *have landed me in the conviction that the magic which Shri* Khanna was in the habit of applying to secure his brilliant results was nothing but close personal attention to the work of both students and teachers and the resulting hard work on their part

Shri Khanna has not been content to build up the B N S D College alone There would be ample scope for educational expansion in Kanpur with its own teeming population even if it had not by the enterprise of the Sanatan Dharma and the D A V Colleges established a reputation for being a cheap and efficient educational centre Large numbers of students from the rural areas of the neighbouring districts and some even from longer distances flock to Kanpur and receive education which their limited means would not enable them to receive elsewhere Whether the benefactors who conferred this great boon on the public also thought of safeguarding the moral side of education which inevitably suffers when such large numbers are involved and especially in the atmosphere of a prosperous commercial town, the fact remains that Shri Khanna's College gave a great phillip to the influx of students into Kanpur which I believe has not been materially stemmed by the recent efforts of Shri Vishwambhar Dayal Tripathi to sow schools and colleges broadcast not only in his native district of Unnao but all over the State

Shri Hiralal Khanna planned the establishment of a large number of schools to serve the newly developed areas and set up the Kanpur Education Society under the distinguished Presidentship of Acharya Narendra Deva In doing so he pointed the way to a solution of the educational problem in a poor and backward country and I trust the lead will be followed elsewhere, due care being taken to avoid the dangers inherent in mass production

In writing of Shri Hiralal Khanna's work as a member of the Board of High School and Intermediate Education I may be said to be peculiarly on my own ground In fact however, I am an intruder in the realm of Secondary education into which I strayed just to find a berth Yet I have had associations with the Board from its very inception and my admiration for the work done by it in shaping secondary education in the Province has grown with my closer association with it Shri Hiralal Khanna had the good fortune of being a member of the Board and its Committees during the early formative years after the inauguration of the Mont ford reforms which placed education in the hands of responsible Ministers The scheme of studies which had followed a set pattern for decades was widened and liberalised, the incubus of a foreign

language prescribed as the medium of instruction and examination was gradually removed, the growth of new schools and colleges was encouraged by relaxing the stiff conditions previously imposed and an admirable system was evolved by which the Board controlled and directed the work of Secondary Schools and Colleges throughout the Province and examined and classified their products Shri Khanna's active association with the Board had ceased long before I came to occupy the post of Secretary or I could have written in detail about his personal contribution to its work I would, however, recall one incident The contents of a certain question paper in Mathematics had leaked out and Shri Khanna and his colleagues on the Board of Moderators in Mathematics were under a cloud of suspicion along with the Examiner who had set the paper It was mainly by Shri Khanna s personal exertion that the responsibility was fixed on the paper setter

Shri Khanna has maintained touch with the Universities of Allahabad, Banaras and Agra all these years as a member of the Senate or Court and of other bodies such as the Academic Council, the Faculties and Boards of Studies He has been a doughty champion of Hindi from his early years and even when English occupied the unassailable position of compulsory medium of instruction and examination in Schools and Colleges, he advocated the use of Hindi in higher studies He was among the founders of the Vijnan Parishad Allahabad and has repeatedly advocated the early adoption of Hindi as the sole medium of instruction in the Universities His speeches in the University bodies *are made in Hindi and serve as an encouragement to other members*— to those who are weak in English as well as to those who are weak in Hindi, for he does not insist on highly literary Hindi

I wish to conclude by wishing Shri Khanna many many years of health, happiness and continued activity after his retirement from the Principalship of the College which will, I am sure, be always known as his college

A LETTER OF APPRECIATION

SHRI K G. SAIYADAIN,

Educational Adviser to the Government of Bombay

[This letter is from Shri K G Saiyadain, an eminent educationist and educational adviser to the Bombay Government His regard for Khannaji and his appreciation of Khannaji's work in the field of education shall be read with interest.]

DEAR PRINCIPAL HIRALAL KHANNA,

I was delighted to receive your letter dated the 8th of January and to learn that your long life of educational service is to be crowned by an appropriate farewell function, the endowment of scholarships in your name and the publication of a memorial volume. You have made a very valuable contribution to the development of education in the United Provinces and I have no doubt that the traditions which you have established will be carried on by the large number of students who have imbibed their ideals at your feet. Please accept my sincerest felicitations on this occasion and the hope that you may be vouchsafed many more years of active life so that you may make your wise counsel available for the good of education in your province.

I shall do my best, if I can find the time, to send some article for inclusion in the proposed memorial volume.

With kind regards,

Yours sincerely,
K. G Saiyadain
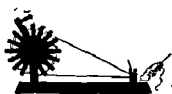
AN EMINENT EDUCATIONIST

Dr N P Asthana

Dr N P Asthana, ex-Vice-chancellor of the Agra University is not only one of the leaders of the Allahabad High Court Bar but also an eminent educationist He has been intimately known to Khannaji for the last twenty five years His views about Khannaji's personality and educational achievements shall be read with interest]

Shri Hiralal Khanna is one of the eminent educationists of this Province, who has not only earned a name as an able, efficient and sympathetic Teacher but also as a great publicist in Educational matters His powers of organisation have been highly appreciated and the B N S D Inter College, Cawnpore has flourished and prospered under his fostering care I have known him since over quarter of a century and always found him advocating the right cause He is a judicious critic, never in a carping spirit but always co operative and constructive Shri Khanna's services to the cause of education in this Province will be long remembered I have admired his courteous manners He has been my colleague in the Senate of the Agra University and the Court of the Allahabad University and I have always considered his suggestions to be both helpful and important A man of sound judgment, active habits and easily accessible, he has rendered yeoman service to every cause to which he put his hand Now that he is retiring from his tuitional field, he carries with him the affection and loyalty of the students, the appreciation of his colleagues, and the gratitude of the public We all pray for his long life and good rest in his retirement Our prayer, however, is mingled with a wish that as he is still in the enjoyment of good health we expect him to devote more of his time to public service and to continue to take as keen an interest in public welfare as he has done in the past

SHRI HIRALAL KHANNA

SHRI JAGAN PRASAD RAWAT

Parliamentary Secretary to Hon'ble Premier U P

[The author Mr Jagan Prasad Rawat is too well known a figure to need introduction He hails from Agra which he represents in the Provincial Legislative Assembly He is a staunch Congressman and an able parliamentarian At present he adorns the office of the Parliamentary Secretary to the Hon'ble Premier U P Mr Khanna has known him since he was a student at St John's College Agra where Mr Khanna had been a Professor]

Principal Hiralal Khanna is a well known educationist of our province A strange combination of ability, simplicity and affection will be difficult to find as in Mr Khanna He has a knack of dealing with problem students I have seen a few of my friends' children who were difficult to manage, completely change within a year after having lived with him Though he has been responsible for the administration of a number of institutions yet whenever he sits with the boys and girls every body forgets that he is a teacher and feels encouraged to deal with him as with one's equal He is not rigid with his ideas but tries to accept good from every quarter I wish he may live long to serve the Nation
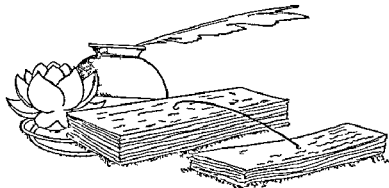
THE LAW OF KARMAN

Mahamahopadhyaya Dr. Umesh Mishra

M.A., D.Litt, *Allahabad University*

Mahamahopadhyaya Dr. Umesh Mishra is one of the most distinguished scholars of Sanskrit. His favourite subjects are ancient philosophy and comparative Theology. In this article he has very lucidly depicted the various aspects of the Karma Theory. It is one of the most interesting subjects of its kind and shall unquestionably provide very profitable reading.

No one can deny the existence of avidyā (nescience) in this world. It has no beginning like the beginninglessness of the world. The law of karman is the manifestation of this very avidyā. Under its influence the Jīvātman passing through various births and deaths imposes upon itself the idea of kartṛtva and bhoktṛtva, which continues as long as the avidyā lasts. Hence, action, that is, the performance of some deed or other, becomes invariably associated with the Jīvātman, so that the cycle of births and deaths for reaping the fruits of those actions also continues. Thus when a man performs any deed though it comes to an end just thereafter, yet it produces a sort of impression, called merit, demerit, according to its nature, good or bad, or apūrva (meaning which did not exist before), or adṛṣṭa (that is, unseen force) which sticks to the Jīvātman (that is, the subtle body) and remains with it till it becomes exhausted after yielding good or bad results in the same life or another. So when a man performs meritorious deeds, he goes to the celestial regions, generally to the lunar region, for experiencing the good results of those deeds. There he assumes a celestial body (generally a body of

water in the case of lunar region) and remains there till the results of the deeds which took him to those regions become almost exhausted But due to the remnant of other karmic forces to be exhausted, he comes down to this earth through rains in the form of water and enters into the earth and is born in the form of rice, barley herbs and trees, seasamum and beans etc etc Under the influence of the karmic residue if it happens to be the result of good deeds those corns will be eaten up by good parents of good family and they will produce good meritorious children If the karmic residue on the other hand happens to be the result of bad deeds those corns will directly or indirectly enter into the body of lower creatures, such as, dogs hogs, or even a chandala These will produce similar creatures of lower births

Now a question may be asked When one has reached the lunar region or any other celestial region, as the result of his karmic force and descends therefrom does this descent take place after the total exhaustion of that force or while there remains still some remnant of it to be exhausted? In reply to this it may be said that if the entire karmic force is exhausted then firstly, liberation should follow immediately while the man is still in the lunar region for then nothing would remain to prevent him from attaining liberation secondly, it would not be possible for the man on his return from those regions, to have any physical organism and experience pleasure and pain as all these are the results of the force of karmic residue and thirdly, it would also be contrary to what is said in the Smrtis regarding men being reborn due to the force of his karmic residue

So the fact is that a man reaches the lunar region or any other celestial region as a result of karmic force set up by his deeds He may have done many acts apart from those which led him to those regions the karmic force whereof would give him a physical organism and experience of pleasures and pains on rebirth These, therefore would remain unexhausted and only such deeds and their residual force would be exhausted in those celestial regions by virtue of which the man had gone to those regions So we have to admit that all the karmic forces are not exhausted before the man comes down for rebirth

As a matter of fact whenever a person is born in this world such birth may be the result of any one of his numerous acts which are to be fructified through several mutually incompatible bodies. That is to say, the man may have done acts one of which would lead to such experiences as are to be had only in a human organism while there may be another act which would lead to the experiences possible only in an equine organism, and both these sets of experiences could not be exhausted in the course of a single life. It is, therefore not possible for the whole karmic residue of the man to be exhausted in the course of a single life. Further, it has been declared that there are many such acts as the murder of a Brāhmaṇa and other similar heinous crimes, which lead to the person being born several times. Again persons born as inanimate objects as a result of serious wrong deeds are entirely dull and non intelligent. There is no possibility of their doing any such act of superior merit which would lead to an improvement in their position. And again, for those who are in the embryo stage there would be no possibility to be born in this world, as there would be no karmic residue during the time they are coming out of the womb. All this shows that the experiences resulting from one's all acts cannot be exhausted in normal course in any single birth.

Similarly, he who has done demeritorious deeds has to go to such regions where sufferings prevail and assume such organisms with which he can bear the results of his sufferings caused by his past evil deeds. When the result of this karmic force becomes almost exhausted and only a very small portion remains he has to come to this earth again and take birth in some very low *yoni* (place of origin), where again, he continues to perform similar evil deeds under the influence of his tamasika life due to which he has to go again and again to those regions of sufferings. Thus both for those who have done good deeds and those who have done evil deeds, the process of birth and rebirth continues alike.

The constituents of avidyā namely, sattva, rajas and tamas are at the root of all the differences in the performance of actions and consequently in their results. Thus the Jivātman (that is, the sukṣma sarira) under the influence of tamas enters the organism of lower creatures such as, birds, deer, elephant, etc who are regarded as *adhorgati*

(that is, having the tendency to move towards lower regions) and acts according to the nature of the organism into which it manifests itself, and finally, attains those regions where suffering alone prevails Under the influence of rajas the Jīvātman (that is, the subtle body) enters into such organisms as occupy the intermediate stage (*madhyavrtti*) namely, the organisms of vidyādhara, yakṣa, rākṣas, manuṣya etc and after death retires to such regions where both pleasure and pain are found in equal proportion If however, sattva predominates, then the Jīva (that is, the subtle-body) enters the organisms of ṛṣis, gods, etc, who are *ūrdhvavṛtti* (having tendency to move upwards) and thereby attains the svarga and maharloka

Although there is only one kind of karman, yet due to the difference of the time of its existence and experience, it is divided into *sañcita*, *sañcīyamāna* and *prārabdha*. By *sañcita* we mean that kind of karman which remains accumulated and has not begun to yield any result By *sañcīyamāna* also known as *kriyamāna*, we understand that kind of karman which is being done every day along with the experiencing of the *prārabdhakarman* and which is to produce an accumulated force for future experience (bhoga). *Prārabdha*, on the other hand, means that part of the accumulated karman which has begun to fructify and according to the nature of which the particular organism has come to be assumed. All these can be very well explained by an instance of grains Those grains which are still growing in the fields resemble the *sañcīyamāna-karman*, those which have been removed from the fields and locked in the granary for future consumption are like the *sañcita-karman*, while the grains which have been released for being used as food and have actually entered our stomachs and are in the course of being exhausted may easily be compared to the *prārabdha-karman*. Of these, the grains growing in the fields and also those accumulated in the granary can be exhausted at any moment by giving away to others as gifts, or by being burnt through fire and becoming worthless for any future use, but those which have entered the stomach and are in course of being exhaused cannot be entirely annihilated except by their complete digestion, that is, bhoga

It is necessary in order to get final emancipation from births and

rebirths to exhaust the results of all these three varieties of Karman. Only then can one attain the highest aim of philosophy and life The experiencing of the *sañcita-karman*, it is said, takes place in the same order in which it has begun or in which each action has taken place, or according to the strength or force of each action. In other words, that which is *kriyamāṇa* to day will become *sañcita* tomorrow and may become *prārabdha* day-after tomorrow. This is the order amongst these three varieties; and their bhoga may also be possible in the same order. All the experiences of these karmans are possible in one or in more than one life. Sometimes, the same prārabdha continues for more than one life. But in the normal course the order of the bhoga should follow the order of the accumulated karmans. It is also possible that the order of the accumulated actions may be interrupted either by another set of more forcible accumulated deeds or even through the wilful or otherwise intervention of some external agencies, such as, good wishes or curse of some ṛiṣis. That is to say, the more forcible deeds will take their chance first followed by the less forcible ones. This sort of interruption is also possible even in the case of prārabdha-karmans Whatever may be the order of bhoga, it is a fact which cannot be questioned that each and every act has to yield some fruit or the other which has to be experienced by the performer or sometimes by others also due to the transference of the results to themselves and consequently, be annihilated

Now as regards the duration of the bhoga, meaning the experiencing of pleasure and pain in accordance with the good and bad deeds of each action, it may be kept in mind that there is always a reciprocal relation between an act and its result accruing in the form of pleasure and pain, like cause and effect. So the amount or the degree of pleasure and pain should always correspond to the amount or the weight of the action performed which yields that pleasure and pain Then again, we see that in order to have an accurate idea of the amount and the degree of the resultant pleasure and pain, we should take note of the intensity and the duration, that is, the period of the time covered to exhaust it. That is, the sum total of the effect in all its aspects should always be in str[illegible] adherence to the act which is assumed to be its cause. Hence, the du[illegible] tion or the degree of the bhoga should be measured by the amount a[illegible]

the force of the deed itself It should also be kept in mind that as ultimately both the degree and the period covered by the bhoga are to be judged by the effect produced on or the suffering caused to the Jīva, it is possible to increase the intensity of bhoga and cut short the duration of time, or to prolong the period of bhoga and lessen the intensity accordingly, so that the bhoga which in its usual course would have lasted for several years may be exhausted within a very short time or the bhoga which would have been unbearable in its natural course may similarly become tolerable and continue for several years This latter fact may be the reason why a certain type of continuous sufferings or the performance of certain evil deeds such as speaking lies or that which is not meant for being uttered due to its vulgarity, speaking ill of others taking food from those who speak ill of the Śastras accepting food belonging to the lower castes or sub castes, disregarding one's elders, acceptance of gifts in some holy place acceptance of money from ones own *guru*, selling of vedic texts teaching the vedas to unqualified persons and earning money therefrom giving away of a girl as bride on being paid for it, giving away of a daughter of a maid servant as bride without giving anything to the bride-groom by way of her maintenance desecration of the holy temples, old wells, tanks gardens etc , etc , appear to prolong the bhoga of the prārabdha-karman and consequently, the span of life itself

But it is a fact that not even the smallest aspect of either the act performed or the consequent result in the form of bhoga can ever be lost or remain unexhausted Perfect balance is ever maintained between the two The change in the duration and the intensity of the bhoga as explained above may be caused by the force of the karmic energy according to ones own will or by the external agency as made clear before As regards the prolonging of bhoga and consequently, the span of life itself it may be said that the life and the maintaining of the physical organism are nothing but the results of a set of deeds and are chiefly meant for experiencing sufferings for true happiness or pure pleasure is not possible to be found in this world The evil acts mentioned above cause sufferings There being some sort of attachment and affinity of these towards the prārabdha karman the fructification even of these fresh

deeds becomes possible in the same life which would prolong the span of life

The prārabdha karman can be exhausted through experience alone The inner sense organ may be purified through the various means mentioned below and the manifestation of knowledge may take place even before the organism falls dead The action does not stop with the appearance of knowledge but continues even after it, though such acts do not produce any result as far as the doer himself is concerned Such acts pertain to the organism one possesses and are done as a part of duty The Lord therefore has said that in fact, " He does nothing, even though He is engaged in action " Or action may be just for the sake of the guidance of the masses as the Lord has said of Himself, "O Arjuna ! there is nothing in the three worlds for Me to achieve, nor is there anything worth attaining unattained by Me, yet I continue to work Should I not engage myself in action, unwearied, at any time, great harm will come to the world, for O Son of Prthu ! people follow my example in all matters If I do not perform action, these worlds will perish Besides I shall become an agent responsible for the miserable mess, and (owing to the faulty example) lead these great beings astray (to ruin) So a wise man desirous to show the right path to the masses should continue action without any attachment '

It has been said that the Fire of Knowledge reduces to ashes the *sañcita* and the *sañcīyamāna Karmans* It is to be kept in mind that what the manifestation of Knowledge does is to cast off the veils of ajñāna (nescience) after which the person becomes detached from the world (virakta) and realises the true nature of the Self Thus Jñāna is a means to make the karman ineffective But all are not gifted with this Jnāna nor does it appear all of a sudden It requires a good deal of preparation—physical and mental discipline, purity of action and thought We know that the last thought of a person determines his future after death, as the Lord has Himself said "O Son of Kunti ! thinking of whatever object one leaves this body at the time of death that and that alone he attains, being ever absorbed in its thought " It seems that generally the mind of a person at the time of his death remains occupied with the thoughts which have mostly kept it engaged

during the life time, for ordinarily, it is not possible for any foreign or strange thought to come up before the mind all of a sudden at the time of death A Hindu, therefore, makes effort to do good deeds throughout his whole life with a hope that the performance of good and meritorious deeds may became part and parcel of his very existence, so that he may have good thoughts, particularly, thoughts relating to the Lord Again, when a man is on his death-bed, his relations and friends recite Vedas,Purāṇas, etc to the dying man so as to arouse devotional feelings in the dying man, so that he may think of the Lord in his last moments and get a bright future after death. This is the reason why Hindus like to name their children after the name of some god or goddess or some holy place; so that at the time of death perchance he happens to utter the name of his son, the name of the Lord will be uttered and that may bring to his mind the thoughts about the Lord which will lead him to the highest aim of life So has said the Lord, " Therefore think of Me at all times and fight. With your mind and intellect having thus surrendered to Me, you will doubtless come to Me." Constant practice of good deeds and thoughts and feelings of renunciation in every sphere of life are most essential for all this

Purification of *antahkaraṇa* (inner-sense-organ) is also possible through other means holds Padmapādācāryya, one of the four main disciples of the great Śaṅkarācāryya He says that performance of sacrifices, doing acts of charity, worshipping, going on pilgrimages, observance of celebacy, repeating of sacred mantras, prayers, meditation, performance of nitya-karman, such as, evening, morning and noon prayers (Sandhyopāsana) observance of fasts and silence, keeping good company (satsaṅga) and similar other religious deeds all lead to the purification of one's inner-sense-organ, which, in its turn, leads to the realisation of the highest aim of life and philosophy. But it should never be overlooked that all physical and mental actions should be performed without any mundane desire to reap the fruits of those deeds

This is just an indication of how the Law of Karman functions It has been a mystery for even the great ṛsis and gods, for none of them can escape from the influence of its unfathomable and unimaginable working. It is really the very Māyā of the Lord Himself about which

He Himself says 'This Divine Māya of Mine consisting of the three elements—sattva rajas and tamas—is extremely difficult to get over, those however, who take refuge in Me go across it' 'Even the wise are perplexed to know what is action and what is inaction' 'The Lord through his Maya makes all beings revolve, as if mounted on a machine' Indeed! mysterious are the ways of the Law of Karman So says the Lord Himself' *Gahana karmano gatih*
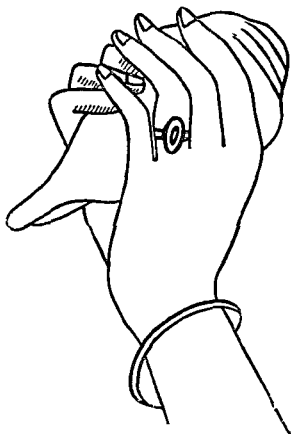
HOW U P TRAINS ITS TEACHERS

The Mobile Training Scheme

SHRI K N MALAVIYA, M Sc L T, P E S,

Officer on Special Duty. Primary Education, U.P.

[This lively account of the Mobile Training Scheme of U P shows how the Government's five-year plan of literacy in the villages, handicapped for want among other things of trained teachers at present, is being implemented There is now one such mobile Training squad in each district of the province, manned by suitable trained personnel and apparatus It teaches the vast number of untrained village teachers in Primary Schools and makes the village people school-minded by a variety of programmes of lectures, songs, dance, music, P T. exercise, school functions and festivals etc. It is proposed to equip these squards with radio se's to increase their usefulness

The writer, Mr. K. N Malaviya, is officer on special duty in charge of Primary Education, U P.]

India has now attained independence after centuries of foreign domination The country is going to have a democratic state and the Constituent Assembly is busy framing the constitution. Congress Governments have already been in power for over the last two years in all the provinces of India. Of these, the United Provinces of Agra and Avadh is one of the biggest, with a population of about six crores of persons But that in India, as a whole, educationally " no substantial progress has yet been made is obvious from the fact that over 85 percent of her population is still illiterate " In the United Provinces too, only about 10 percent of the total population is literate. "Any country (or province) so situated is a potential source of danger under modern conditions and when the country (or province) in question is or aspires to be a democracy, the position becomes worse than dangerous The primary requisite of any system of public education for a democracy is that it-should provide for all its members, and not for a few only, at least such training as may be necessary to make them reasonably good citizens." The problem of the liquidation of illiteracy is a tremendous and collosal one, and it is the bounden duty of the present Government to strive to secure cent per cent literacy.

There are in the United Provinces about 58 lacs of children of school going age, i e 6 to 11 years old, but only about 15 lacs of children used to go to schools on the occasion of the assumption of office of Government by the Congress Ministry Provision had, therefore, to be made for the schooling of about 43 lacs of more children for achieving universal compulsory education For this an army of trained teachers is needed Sir John Sargent, sometime back Educational Adviser to the Government of India told us that this army should be raised cautiously in the course of forty years For an already overdue social reform forty years is undoubtedly an intolerably long period in an era of independence, specially when the other progressive countries of the world are going full steam ahead with their revolutionary programmes of progress Happily our Education Minister, the Hon'ble Shri Sampurnanad has found out a speedy solution He has been inspired by the Mobile Educational Missions of Mexico, where the scheme has been in operation successfully since after the First World War, i e , 1921 So, as an emergency measure, the Mobile Training Scheme was launched in the United Provinces in October 1947 over a couple of years ago and the Mobile Training Squads were formed to spread the light of education

To man the newly opened Government Primary Schools 2,340 teachers were needed by the beginning of July 1947, about 7,000 were needed by July 1948 and more than 11,000 teachers were needed from July 1949

Even if the combined output of the Normal and Training Schools of the province were doubled, we could not have so many teachers, but the demand was urgent and could not wait To make untrained men incharge of young children was to court disaster Trained teachers in such large numbers cannot be produced over night It was a veritable dilemma which greatly taxed the resources and initiative of the Education Department A pincer movement was adopted to attack the problem, one arm of which made a short range frontal attack, while the other aimed at a long range one The question was not merely of supplying 2,340 teachers at once, but also of being able to keep the supply going on for a period of 5 years, and providing for further expansion

Social structure of many countries has considerably changed as a result of the last world war New aims of Education have emerged and unless a new type of teacher arises these aims will not be fulfilled Altered conditions of life have evolved new conceptions of duty and the demands of times are such that every person has to increase his knowledge, which should enable him to discharge his responsibilities as a citizen of a free country in a satisfactory manner For these reasons the cultural standards of the new teacher have to be raised and he has to be well-trained for his vocation in life In order to meet these demands, several long range measures were adopted The number of Normal Schools has been considerably increased with the ultimate aim of having at least one Normal School in each District By the second year of the scheme 44 Normal Schools have been opened for 40 districts of the province and by the end of the third year we shall have all the 49 Normal Schools working, one school per district. It is expected that about 5,000 trained teachers will be turned out by these schools annually when they will be running in full trim The syllabus and curriculum of these training institutions have been revised and refashioned to suit changed conditions and modern needs

Another source has been tapped for providing what we call 'potential teachers.' Pedagogy has been introduced as one of the optional subjects in the Intermediate Classes and young men offering this as a subject will be coming out in the year 1950, who will have thorough grinding in the theory of education for two years Those who want to go to the teaching line will be given five months' training in practical work and will be treated as trained teachers for the newly opened schools As the subject has been introduced in almost all the Intermediate Colleges of the Province quite a large number of 'potential teachers' will be available from 1950 onwards All these measures are long range measures which will provide trained teachers in the course of coming years and the tempo of supply will increase as we go ahead with our schemes

Mobile Training Squads

In the meantime the needs of the present have to be met. The Province had to train 2,200 teachers by July 1947 and about 7,000 teachers

by July 1948 and about 11,000 teachers by July 1949 to man the schools proposed to be started from the beginning of these school sessions. Here again we had to take help of local enthusiasm and enterprise to meet our needs. Young men who resided in the locality and who have passed at least the Hindustani Middle School Examination, which marks the end of the Junior High School Stage, were selected and made incharge of these schools In this selection preference was given to those who had a cultural background, vitality and personality and who came from homes which had influence in the locality. They were given a salary of Rs 20 p.m. plus Rs. 20/- dearness allowance. But the amount of money they received as their pay was of the least consideration. It was not the pay, but the pride of having been entrusted with this important job, the joy of building up a school in their own village and the unique distinction of having been selected to serve, which attracted and inspired these young men. They were the elite of the village and its future leaders and were determined to play their part well. Pride in the work to be done and the joy in doing it cannot, however, take the place of training in pedagogics. It, therefore, became necessary in some way to impart them the elements of teaching and principles of education without calling them away from their schools, as we could not appoint substitutes in their places both for want of men and money. So the idea of Mobile Training Schools was taken from Mexico, where this novel experiment was successfully tried. In the beginning, 26 Mobile Training Squads were organised to visit each village school and give an intensive practical training to these young men in the places and in the conditions and environment in which they have to live and work. Each Squad consists of a Basic Trained Graduate and two persons holding the Hindustani Teachers' Certificate, specially qualified in Physical Training and Games, art and craft, and cultural activities. Each squad was in charge of two districts, except in the three hill districts of Almora, Garhwal and Naini Tal, where one squad was in charge of one district only Before being sent out these squads were given intensive training for six weeks at Allahabad under the direct supervision of experts. Besides including methods and technique of training village school teachers, this course consisted of rural Hygiene and Economics, Social and

Cultural History and provided training in Social Service, in organising corporate village life, village theatricals, folk music and folk dance Besides the above, they were also trained to conduct a campaign of cultural activities and lectures on subjects of general information for the benefit of the village adults All this is necessary because it has been decided to develop these schools into real houses of the people ' or ' community centres for the whole village · where adults can gather, meet their fellows, be amused and instructed These schools will not be merely temples of learning but so many power houses generating energy and vitalising all the varied aspects of village life They will thus provide education not only for the young, but also for the adults

In the light of two years' experience our technique and methods of training were modified and improved and special attention was given to the cultural activities and the revival of folk music and folk dance which have become absolutely dormant during the last 200 years specially in this Province Professor Sen of the ' Bratachari Society ' of Bengal was specially invited to impart training in folk dance and folk music ' Bratachari ' means one who tries to give an all round usefulness and completeness to human life Knowledge, truth, unity, industry (or labour) and happiness are the five vows of a ' Bratachari ' Welfare of the whole humanity is his ideal To knit together all the world is his aim This is exactly the ultimate objective of our sovereign and independent Indian Union The ' Bratachari ' takes upon himself to be free to play, to laugh, to love to be truthful, to respect his ' gurus ' or teachers, to read and write, to do handwork to make the body strong, and to dance with joy and happiness These are his universal ideals In short, the ' Bratachari's programme is work and play (or dance) Work without play is dull and dry, play devoid of work (or dance) is futile and meaningless Work and dance combined will lead the world and humanity on the road to prosperity and happiness

Training in Bratachari ' movement was conducted by Professor P L Sen The songs are in the Bengalee language which must be translated into Hindi without any loss in thought, narrative, rhythm and tone, so that they may acquire wide popularity in the rural areas The ' Bratachari ' dance is undoubtedly manly One sample is given below

in 'Deva Nagri' character with an English rendering of its underlying ideas:—

SONG

चलो कोदल चलाई, मिथ्याभिमान भुलाई,
छोड़ आलस मिजाज, शरीर सुन्दर बनाई।
जो तो रोग पास आइ, भागे पराई पराई,
पेटे भूख बाढ़ जाई, खाओ खीर मलाई।

ENGLISH RENDERING

Let us then ply the spade,
Also let false prestige fade ;
Shake off lethargy once for all,
Beautiful our bodies be made,
Illness, diseases, mental decay,
Away, away, they fly away ;
Always feel a nice appetite,
Have 'khir-malai' everyday

Pantomime and shadow plays were also specially prepared and given to the Squads. Up-to-date books on education, charts and pictures and diagrams both for training purpose and for the purpose of lectures on general subjects were provided to the Squads. A large medicine chest containing simple Aurvedic and Allopathic medicines and simple first-aid equipment has also been provided to the Squads in order to make them more useful to the village community.

In order to make them still more useful, it is proposed to equip the Squads with publicity Vans fitted with Loud Speakers, Gramophones, film projectors, etc., so that they may help in making the village school a centre of all useful village activity. The number of Squads in the Province has been increased from 26 to 49 from July 1949 so that each district has now got a squad wholly for itself.

These Squads have to make contacts with the people of the villages, make social, cultural and economic surveys, be sensitive to local conditions and responsive to local needs. With their equipment they are

giving to the people of the locality informal lessons in History and Geography, Agriculture and Hygiene, Civics and Politics They are explaining to them the import of new conditions that come into existence in our country and the duties and the responsibilities of a citizen Their contacts are of mutual advantage It gives the Squads a greater understanding of the problems of village life, enriching the content of training courses and imparting vitality to the methods of teaching. The villager, on the other hand, is getting to know some of the implications of education and the way in which the problems are being tackled by it This contact is deepening his sympathies, widening his outlook and turning him also into a strong and staunch ally of the Education Department Not only this, it is hoped that contact with these training Squads and our new schools will definitely raise the cultural and intellectual level of our village society

It is also helping in providing healthy recreational activities for the village adult in our new primary schools which will go a long way in raising the cultural and intellectual level of the villagers and make the school a centre of attraction for healthy activities. With this object in view, the Squads are arranging for the celebration of all the festivals and socials at these schools. If once the village adult starts taking interest in our new schools, they are bound to get firmly established and start running on sound lines in our villages The effect of this experiment has become visible even now. In some of the schools the village people are providing mid-day meals free to their children. In many others, the construction of buildings has been taken up with enthusiasm by the rural society These are just the initial results of our novel experiment, tried for the first time in our Province in India and the missionary zeal with which these Squads are working in the villages has made them most popular in the countryside They have done some very useful work during the last two years that they were out and the scheme seems to have a bright future

The lively work that has been put in by the Squads in training our new teachers has been appreciated by the Government by recognizing the training imparted by the Squads to a teacher for two years as equivalent to the Hindustani Teachers' Certificate. In other words, if a teacher

instead of joining a Normal School for one year's training for his Hindustani Teacher's Certificate, becomes a teacher in a newly started Government Primary School and receives training for two years at his own school under the Mobile Training Squads he is allowed to appear in the H T C Examination both in theory and practice and is awarded the H T C Certificate if he gets through The first batch of about 7,000 such teachers will be appearing in the H T C Examination of 1950 'Learning while serving' has thus become the motto of the new Government Primary School teachers As this training is imparted in the village school and in the very environment in which the teacher has to work throughout his life, the training is found to be more practical and more suited to the village school teachers This policy of the Provincial Government has greatly attracted the middle passed village youths to become teachers in these new schools in spite of the low salary offered at present

Mobile Training Course

In the beginning of the session, teachers about 50 in number are collected at a centrally situated place preferably in the local Normal School and they are given intensive training for a month in what is known as ' the theory Camp ' They get up early in the morning at 5 a m and start P T Games and Cultural Activities upto 8 O'clock Chorus Music, National Songs, Flag Songs, ' Prabhat Pheri,' etc , are all practised in the morning They also do manual labour like preparation of flower and vegetable beds digging of trenches cleaning of surroundings etc After a short break of an hour ' theory classes ' on educational Psychology, School and class management and Hygiene, methods of teaching various subjects, Art and Craft work, start at 9 O'Clock and continue upto 12 30 when they again break for meals The work starts at 2 p m again and in the afternoon lectures on general subjects, cultural activities Art and Craft work are given and continue upto 4 30 p m with another half an hour's break, games and sports are held in the evenings Camp fire, Scouting Shadow plays, Folk dance and Folk music ' Bhajan ' and ' Kirtan ' etc , are held from 8 to 10 p m after which the trainees go to bed This sort of camp continues for

one full month and the teachers go back to their repsective schools with full notes, necessary books and teaching appliances prepared by them for use in their schools. The Squads then go out for what are known as the 'Practice Camps' They halt for a week to 10 days at one place and the teachers from the surrounding 6 to 10 schools daily give lessons on various subjects under the supervision of the Squads Usually 12 to 16 lessons are thus given by each teacher under supervision and he has to write all the notes of lessons, prepare his own aids to teaching, and attend lectures on general topics in the evening. The Squad again moves to another similar camp until all the teachers of the schools in the district have received practical training at the hands of the squad A formal examination in theory and practice of teaching is held at the close of the session in the month of May Marks awarded during the course of training in the practice camps are also taken into consideration in promoting the teachers from the first to the Second year class. In the second year again the theory camps run for a month followed by practice camps, as in the first year. After completing the two years' training, these teachers are allowed to appear in the H T C Examination—same as given to the candidates trained in Normal Schools—and are awarded the H.T.C. Certificate if they get through.

The results achieved so far are highly satisfactory and some of the distinguished educationists who have visited these camps were impressed by their activities, and spoke well of them The Burma Education Delegation which visited this Province last winter was highly impressed by this novel method of training teachers Its leader, U. Aung Min expressed his views in the following words:—

" I have seen these training camps where enthusiastic village young men gather together and undergo intensive and lively training which makes them practical teachers immediately. Here they catch the spirit in which this Province is running its various educational schemes They start taking real interest in education on account of the realistic and intensely practical training given to them These activities not only help in the training of teachers, but are also making the village society "education conscious," with the result that the new education is becoming extremely popular in the villages of this Province. They are

also helping in making the village school an important organ of the village society or as they call it ' the house of the people.' I hope to take a lesson from this new experiment and do something on similar lines in the reorganization of Education in Burma "

The scheme has received recognition at the hands of the Government of India also. Dr. Tara Chand, Educational Adviser, Government of India, during his recent interview at London, spoke about this novel experiment which is being tried in the United Provinces at present and he said that like the Emergency Training College Scheme of England, and Mobile Educational Missions of Mexico, this scheme of training teachers by Mobile Training Squads is being tried for the first time in the United Provinces. The results are being watched with interest and it is hoped that this will solve one of the greatest difficulties which have stood in the way of spreading literacy in the village masses It was never the claim of the Ministry of Education of this Province that it is a perfect scheme What we claim is that we have without doubt adopted a novel way of tackling this problem and are going ahead with our five-year plan. The result so far justifies the continuance of the scheme for imparting training quickly to the village school teachers. It lies in the lap of the future to decide how far we have been able to tackle our problem with speed and efficiency.

MY FRIEND OF LONG STANDING

SIR R. MENZIES

[Sir Robert Menzies is the chairman of the British India Corporation of Kanpur. He has been a colleague of Khannaji on the Board of Management of various commercial bodies How appreciatingly he speaks of Khannaji's worth in the educational field, shall be read in this letter!]

MY DEAR PRINCIPAL SAHIB,

I have recently heard that it is your intention to retire from your arduous duties as Principal of the B N S.D. Intermediate College, Kanpur, and that, in fact, you are now on leave preparatory to retirement.

I write this letter to send you my very best wishes for a well-earned leisure, though I have no doubt that, on your actual retirement, you will still devote your private energies towards the furtherance of education, for which you have done so much in Kanpur over a long period of years. I am glad to say that you and I have been friends of long standing, and I haye appreciated your courtesy, and from time to time your request that I should lecture to your Students It has been a pleasure to me to do so, and on these occasions I have always been received with courtesy and attention, not only by yourself and your Staff, but also by the Students, over whose educational efforts you have so ably presided.

The best of luck to you in the future, and with kind regards,

I am,

Yours sincerely,

R. Menzies.

BISHAMBHAR NATH SANATAN DHARAM COLLEGE, KANPUR

Dr D R Bhattacharya, *Vice-chancellor, Allahabad University*
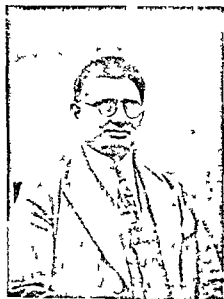
[Dr D R Bhattacharya, Vice chancellor of the premier University of Allahabad, is an eminent educationist of these provinces His views regarding the origin, growth and development of the B N S D College, a monument to Khannaji's selfless service shall be read with interest]

Some 32 years ago, out of the philanthropic munificence and imaginative foresight of the late Lala Bishambhar Nath sprouted a small *pathshala* in the town of Kanpur In its tenderness and frailty it was reared and nurtured under the farsighted guidance of no less an outstanding personality in the field of education and public service than the late Rai Bahadur Vikramajit Singh The Committee of Management, of which Rai Bahadur Vikramajit Singh was the Chairman, consisted of several stalwarts of selfless service and humanitarian vision, who deserve all praise and esteem for their patient watchfulness and untiring zeal in seeing to this humble growth reaching to the present height of a full fledged Intermediate College

The Institution has seen many pitfalls and financial anxieties but through the masterful steering of Principal Hira Lal Khanna it sailed clear of them It is now a first grade college and one of the best in the Province

In their inspection reports the successive Directors of Education, U. P., have spoken in highly appreciative terms of praise of the all-round improvement, progress and efficiency of the institution which has developed now in many directions

The number of students rose from 391 in 1927 to 2,415 at the time of reopening in July 1949, which is a clear indication of the popularity of the College which attracts students now from all over the country; its results have constantly maintained a very high standard In this connection the following facts are worth mentioning :

High School Examinations

(1) The largest number of first classes in any single year.
(2) The largest number of distinctions in any single year
(3) The largest number of positions in any single year
(4) The largest number of merit scholarships in any single year
(5) In percentage of passes it occupies the first position.

Intermediate Examinations

(1) The largest number of first classes in any single year
(2) The largest number of distinctions in any single year.
(3) The largest number of positions in any single year.
(4) The largest number of merit scholarships in any single year

In many other respects it has achieved distinction in the Province, and all these achievements are due to a great extent to the indefatigable energy and indomitable zeal of Principal Hira Lal Khanna in the cause of education He has never rested content with his missionary activities in a limited sphere; but he has been a live member of numerous executive and advisory bodies of educational institutions of this Province His contributions in the deliberations of the Faculties, Academic Council and the Court of the Allahabad University have been of high order and invaluable.

The Sanatan Dharam College has not only been progressive on the intellectual side but has also found a noteable position in extra-curri-

cular activities having competed successfully in literary debates, sports and games with the local Degree Colleges

The generations of students and their succeeding generations will bless these philanthropists and men of faith and self-devotion who have given their best, their lives and time in the service of this institution It is hoped that the students will imbibe and bear forth the torch of these blazing ideals Shri Hira Lal Khanna will always be remembered as one of the leading educationists of this Province.
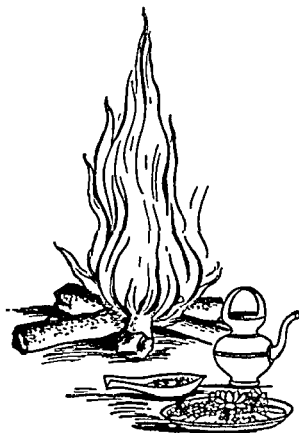
THE ROLE OF RADIO IN MODERN CIVILIZATION

DR S S BANERJEE, D Sc F I P S M I R E

[Dr S S Banerji is a professor in the Engineering College Benaras He has dealt with in a very popular manner the role that the radio plays in the world of to day The technique of the radio and its mechanism along with its various uses have been vividly described This article will be read with interest and will furnish the reader with a flood of information regarding it]

The importance of radio much beyond its entertainment value has now been recognized throughout the civilized world The application of this technical science which may be expressed as a peculiar combination of science and art is now found in more or less every branch of science The recent world war which has evolved the deadly weapon of atom bomb on the one hand has on the other developed the most useful instrument known as 'Radar' which is a powerful radio equipment for locating an enemy aircraft As atom bomb has been responsible for wide scale destruction the radar on the contrary has saved the lives of millions during the war

The radio no doubt has been extensively used for war purposes but it has been more widely used for the purpose of peace and prosperity of the world The application of radar in peace time for navigation under adverse whether conditions and poor visibility has already come into existence The ships and civil aircrafts are being equipped with this apparatus for safety of journey Further the possibility of communications with mobile objects can be envisaged with the aid of

radio alone During the past few years the radio has been successfully used for annihilation of human sufferings by high frequency therapy

In industry radio is playing a very important role in America and other foreign countries Nearly all the controls in the manufacturing processes depend on radio technique Even heavy machines are controlled by radio due to its smoothness of operation Common safety devices for machines, like over load or no load release are actuated by radio due to its quick action

Manufactured articles are automatically counted by radio methods and at the same time any defect in produced goods is detected instantaneously Radio has brought a definite progress in the industry of large magnets which are essential for dynamos and motors so extensively used these days It is being increasingly used in the process of welding of metals Radio devices are also being used in modern photography for short exposures necessary for the photographs of objects moving with high speed

Another interesting application of radio lies in high frequency heating of objects which is used for uniform heating of materials like glass or wood It is a common experience that if a piece of wood is sufficiently heated by ordinary flame it is charred on the surface but the interior may still remain cold But by high frequency heating it is possible to heat the piece of wood uniformly inside and outside Similarly it has been possible by means of radio to heat metals within a very restricted region without heating the other parts of the metal This kind of localised heating by radio has been also used for preservation of foodstuffs by sterilization produced by selective heating which destroys the pests contained in the food material

In textile manufacturing it is essential to control the humidity very carefully It has been possible by radio to control with very great accuracy the moisture content of cloth coming out from a drying machine in the final process of its manufacture The importance of the humidity control will be realized from the fact that if the cloth is over dried the output of the drying machine is reduced and if the cloth is under dried there is danger of moulds being formed within the roll of

cloth Thus the radio control of moisture has immensely increased the efficiency of production of cloth

In medicine radio has a very wide field Researches are still being made in bloodless operation by radio waves particularly in malignant diseases It may be mentioned in this connection that the development of electron microscope, which is hundred times more powerful than the optical microscope is an achievement of the modern radio technique This high power microscope has revealed the structure of much finer particles and has been of great help in the analysis of various bacilli and viruses It has formed a landmark in the history of progress in medical science

Besides the usual broadcasting for entertainment and news of the world, important communications are now being made by radio where line communication is impracticable due to the geographical situation of the locality Radio has already been used for locating mines and submarines under water Recently it is being used for finding the dykes and faults inside the earth which eventually leads to the discovery of metallic ores oil beds and other valuable spots much below the surface of the earth It has thus proved a very useful tool in the hands of geologists for geophysical prospecting

In addition to numerous applications of radio in practically every branch of science of which only a very few examples have been cited above it has become a potent means of fundamental research, the ultimate object of which is the realization of truth It has been instrumental in making an unprecedented progress in Nuclear and Astrophysics by obtaining radio reflections from the Sun and the Moon A large number of physical phenomena which were postulated theoretically for a long time are now being verified by the implementation of radio The science of radio has thus become the meeting ground for various other branches of pure and applied sciences like Engineering, Physics, Chemistry and Mathematics

In conclusion it should be mentioned that the future of radio which may now be foreseen shows a rapid development of television which is still in a very undeveloped stage in our country Recent researches in ultra short and microwave technique in radio shows the possibility of

manufacturing extremely small radio transmitters and receivers which may be conveniently carried by individuals for private communications Ultra high frequency radio will certainly play an increasingly important role in the progress of medical science and thus make important contributions to the cure of many obscure diseases The radio will further improve the industry and will lead the world to greater prosperity But, as with all sciences the good and evil can hardly be separated, so the most powerful machine employed for human happiness may also be used as a weapon of destruction

It may be pointed out at the end that in our country radio needs a very wide scope for its development and more facilities should be provided for imparting elementary instructions in radio in schools and colleges Provision should be made for highly specialized courses in radio in the Universities and other technical institutions as has been done in all other progressive countries The knowledge of radio has been found to be indispensable for a normal citizen of the modern civilized world

EXCERPT FROM A PERSONAL LETTER OF SAM HIGGINBOTTOM

[Sam Higginbottom was the principal of the Agriculture College, Naini, Allahabad. He was responsible for the development of that institution in full-fledged form from a small beginning On hearing about the Jubilee Celebrations of the College he wrote in course of a letter from Florida (U.S A.) :—]

" As I came to know you better, I learned to trust your judgement on all matters educational Your ideas were always progressive and constructive. You saw that the only education doing India any good was the education it was not getting. Therefore in both the University groups and in the Intermediate Board, you were always on the side of progress, expansion, and construction. At times it seems as though we were beating the air, and accomplishing little if anything at all. Yet your faith and courage never faltered You continued the fight when the odds against seemed overwhelming. Your attitude and example, encouraged many waverers.

It fell to my lot to visit the great institution which is the enduring monument to your life's work Your record is written in the hearts of thousands of your pupils, who rise up and call you blessed. You were not only principal of a great college but you loved the boys and young men who came to you for the enlargement of mind and heart, which is of such great importance in a growing democracy.

So as you retire, I know you will not think more highly of yourself than you ought to think, your modesty forbids that. But your many

friends from among rich and poor, learned and unlearned, high and low will rejoice that your work is being recognised for its outstanding value and quality.

How I wish I could be at the function there to bear witness of my admiration for one of the most useful citizens, it was my lot to know in India. As I write the flood-gates of memory open and make me re-live those happy far off days of struggle and effort. My wife joins me in good wishes to you.

Every day in our morning prayer together we pray that God will richly bless Free India and cause her to lead in all efforts to enrich and ennoble all human life. May God bless you and yours."

As ever affectionately,
Sam Higginbottom.

such paradoxes. They are trivial cases and therefore need not be given here. Division by zero is not permitted in mathematics as it is a self-contradictory step. For if *a* on being divided by *b* gives *c*, then *a* must obviously be equal to *b*. if it is not, then it is contradiction in terms. Also any number multiplied by zero must by definition give zero. So if $\frac{a}{0} = b$, then *a*, although different from zero, has to be equal to $0 \times b$, i.e. equal to zero, which is self contradictory. One may be tempted to say that if *a* be itself zero, then there would be no contradiction. But then $0 \times a = 0 = 0 \times b$. Then dividing by zero we would get $a = b$ which is self contradictory if *a* is different from *b*. Hence, division by zero is a forbidden step; it is bad mathematics. For similar reasons, use of divergent series is also to be avoided.

Some mathematical paradoxes of category (i) arise, as mentioned above, also due to wrong assumptions, for example, if $a^2 = b^2$, then taking square root we get $a = b$. Thus $4^2 = (-4)^2$. Hence $4 = -4$. These wrong assumptions may take various forms, for example, a multiple valued quantity may be treated as a single valued quantity or a part may be put equal to the whole. Or else a property may be assigned to a quantity which cannot belong to it. For example, if we take numbers to be only integral or fractional, and positive or negative, then, square root of 2 cannot exist. For if it were to exist then it must be assumed to be of the form $\frac{a}{b}$. Let $\frac{a}{b}$ be simplified so that there is no common factor between the numerator and the denominator, say it is $\frac{p}{q}$, where p and q are integers prime to each other. Then squaring we get $2 = \frac{p^2}{q^2}$ i.e. $2q^2 = p^2$. The left hand side is twice of a number, hence it is even, p^2 must, therefore, also be even, i.e. p must be even and equal to $2r$, say, then $2q^2 = 4r^2$ i.e. $q^2 = 2r^2$. Now the right hand side is even. Therefore q^2 must be even i.e. q must be even. Thus p and q must both be even. But we started with the assumption that p and q have no common factor, not even 2. This paradoxical result is a consequence of the wrong assumption that $\sqrt{2} = \frac{p}{q}$.

Let us not take seriously such of the paradoxes as are manifestly absurd they have no depth and no utility It should however, be clearly remembered that much of the progress in mathematical knowledge is due almost entirely to new and newer assumptions

One of the oldest paradoxes comes from Greek mathematics and is known as Zeno's paradox It is about a race between Achilles the fastest runner of his time and a slow moving tortoise which had obtained a start We all know that a faster moving object will sooner or later overtake a slower moving object So Achilles should overtake the tortoise and even go ahead of it But the problem may be argued as follows —

The tortoise has a start and is at a place further on when Achilles begins to run By the time Achilles comes to the point where the tortoise was, the tortoise has already moved further on And by the time Achilles comes to this point, the tortoise has again moved on They go on like this By the time Achilles overtakes the previous position of the tortoise, the tortoise invariably has gone further on So Achilles can never really overtake the tortoise This paradox remained a puzzle for nearly two thousand years until Bolzano, Weierstrass and Cantor formulated and developed the theory of limits and of convergence and explained Zeno's paradox as an elementary and simple case of a limiting process

Let us now consider the paradox of irrational and imaginary numbers No number is irrational or imaginary in the sense in which a non mathematician would understand it These numbers are as real as any other number In mathematics, as in other sciences there is a history and a continuity in the process of assigning names We began with unity one and subsequently derived two three etc by the simple process of adding unity successively They were called natural numbers One could always add two such numbers, whatever they might be and get another natural number Substraction was not always possible e g , five could not be subtracted from two It was an absurd and meaningless proposition, impossible to perform Hence it was indeed a revolution in mathematical thought when a new set of numbers was artificially created and developed just to make possible the process

of subtraction of a number from any other number. The extension in the scope of subtraction made a compelling demand for the extension of the class of numbers. These negative numbers had no corresponding counterpart in nature, and could very well have been called imaginary numbers; they were introduced because without them an algebraic operation remained incomplete. The sanctity of natural numbers was gone; the barrier was broken. A precedent was set up in which new numbers and new quantities were brought into existence to give a generality to a simple process of algebra. After this there could be no bar against setting up additional new quantities if the exigencies of algebra required them; and this is what actually happened. Process of division was made complete by the creation of fractional numbers; root extraction of a natural number was made possible by the creation of what we call irrational numbers. And the idea of root extraction was extended to negative numbers also; though not conceived for a long time it was algebraically quite simple and elegant, and was adopted with the help of a new set of numbers called 'imaginary', which was specially created for this purpose After the name 'irrational,' the choice of the name 'imaginary', is after all not so fantastic.

The Twentieth Century mathematical paradox is that of the fourth dimension. The fourth dimension is certainly not a complete fiction; if it were, then, mathematicians and physicists would not have taken it seriously. It extends beyond the commonly accepted notion of length, breadth and height which are interchangeable, and according to which, time has nothing to do with space The conception of the fourth dimension may be briefly explained as below:—

Fourth dimension is just the geometrical name for an algebraic formalism It is certainly not the last word on dimensions, for algebra may make further demands on extensions of ideas in connection with its own extensions of formalism The fifth dimension is already being talked of quite freely, and the space of n dimensions where n may be finite or even infinite is no extraordinary topic for mathematical researches and physical applications.

In two dimensional geometry we have,

$ds^2 = dx^2 + dy^2$ (commonly written as $r^2 = x^2 + y^2$)

In three dimensions it is

$ds^2=dx^2+dy^2+dz^2$ or in other words

$$ds^2=dx_1^2+dx_2^2+dx_3^2,$$

If we write

$$ds^2=dx^2_1+dx_2^2+dx_3^2+dx_4^2,$$

we would have four dimensional space, and if we extend the formula to

$$ds^2=dx_1^2+dx_2^2+\ldots+dx_n^2,$$

we would be dealing with n-dimensional space The four-dimensional formula in its most general form is written very compactly as

$ds^2=g\mu\gamma.\ dx\mu.\ dx\gamma$, where μ and γ take all possible values from 1 to 4

The idea of the fourth-dimension will be physically incomprehensible, if the word dimension be understood in the sense of length. Any intèrpretation of the fourth-dimension in a language other than mathematical would be meaningless jargon; any attempt to explain it without mathematics would be adding further confusion to the already confusing proposition.

The necessity for introducing the fourth dimension arose in this way A law of nature should not be dependent on an observer Velocity of light is a natural phenomenon and should remain unaffected for an observer who may himself be moving uniformly This violates the prevailing principle of relative velocity. Michelson's and Morley's experiments demonstrated clearly that Newtonian concept of relative velocity must be replaced by another concept which, in limiting cases, must also coonform with the Newtonian formula. If two objects A and B be moving with velocities v and w respectively, the new formula (which is certainly mathematically consistent) for the velocity of B relative to A is

$$u=\frac{w-v}{1-\frac{wv}{c^2}},\ \text{instead of } w-v\ ;$$

here c is the velocity of light It is easy to see that if B be light itself and A any observer moving with any finite devlocity v, then the velocity

of light would still appear to be c to the observer A in spite of the fact that he is himself moving with velocity v For, according to the above formula

$$u=(c-v)/1-\frac{cv}{c^2}=c^2\,\frac{c-v}{c(c-v)}=c$$

Algebraically speaking we represent space in terms of variables using certain formulae We have an origin, and have axes of reference and call our variables coordinates If we change the origin the coordinates will also be changed and our formulae must give the laws of transformation And it is these laws of transformation which determine the inner structure of the space which the variables represent The laws of transformation as proposed by Lorentz for axes of reference whose origin is moving with velocity v along the x axis of another set of axes of reference are —

$$x'=\frac{x-vt}{\sqrt{1-\frac{v^2}{c^2}}},\quad t'=\frac{t-xv/c^2}{\sqrt{1-\frac{v^2}{c^2}}}$$

$$y'=y \qquad z=z$$

It is obvious from these formulae that space and time are mixed up with each other And this interdependence of x and t is described in ordinary language by saying that our world is four dimensional and the four dimensions are given by x, y z and t

Einstein has used these formulae in his own way to formulate and propound his Special Theory of Relativity The consequences are more paradoxical than any paradox in the history of mathematics Now there is no absolute time Length time and even mass appear to be changing with motion Different observers may come to different conclusions It seems unbelievable and yet there is a coherence in all this, everything is mathematically sound, and every observer can predict correctly the observations as made by other observers Modern physics also confirms these observations in an unmistakeable manner

There is another important paradox in modern algebra it is provided by matrix multiplication If A and B be two matrices then the

product AB is not necessarily equal to the product BA which may not even exist. For example, if

$$A = \begin{bmatrix} 1 & 1 & 2 \\ - & 0 & 1 \\ 1 & 2 & 0 \end{bmatrix} \quad \text{and } B = \begin{bmatrix} 1 & 2 & 1 \\ 2 & 1 & 0 \\ 0 & 2 & 1 \end{bmatrix} \quad \text{then}$$

$$AB = \begin{bmatrix} 3 & 7 & 3 \\ 2 & 6 & 3 \\ 4 & 4 & 1 \end{bmatrix} \quad \text{and } BA = \begin{bmatrix} 6 & 3 & 4 \\ 4 & 2 & 5 \\ 5 & 2 & 2 \end{bmatrix}$$

and is obviously different from AB

The matrix algebra has proved very powerful in the development of quantum mechanics, and $pq - qp = \frac{h}{2\pi i}$ is known as the fundamental equation of quantum mechanics. h is the well known Planck's constant. π and i occur here also.

The most breath-taking mathematical paradoxes occur in relation to π. π is a number which cannot be expressed as a true fraction. $\frac{22}{7}$ and $\frac{355}{113}$ etc. or 3.14159265 etc. are just approximations. It is a number which cannot be obtained as a root of any algebraic equation, but is expressed in terms of an infinite series or in terms of trigonometric quantities. But strangely enough, if two numbers be written down at random, the probability of their being prime to each other is $\frac{6}{\pi^2}$. As an experiment, once, 50 students, each, wrote down 5 pairs of numbers at random. It was found that 154 pairs were prime to each other. Thus $\frac{154}{250}$ put equal to $\frac{6}{\pi^2}$ gives $\pi = 3.12$ which is very nearly correct. There is another experimental approximation for π. On a plane a number of equidistant parallel straight lines, distance apart a, are ruled; and a needle of length l, which is less than a, is dropped on the plane. The probability that it will fall so as to lie across one of the lines is $\frac{2l}{\pi a}$. If the experiment is repeated many hundreds of times, the ratio of the favourable cases to the whole number of experiments will be very nearly equal to this fraction, and the value of π can thus be found. In 1804, Captain Fox made 1120 trials and obtained 3 1419 as

the mean value of π. This method is known as the experiment of Buffon's needle. It may now be added that amongst many interesting properties that π possesses, its being equal to the ratio between the circumference of a circle and its diameter is just one of them.

These paradoxes clearly demonstrate that mathematics is full of many results which are seemingly absurd but which are really sound and capable of being proved. Only a fringe of the domain has been touched above; the entire ground cannot be covered due to difficulties of space.

Now it may not be altogether out of place to mention some results which are really not paradoxical but are equally interesting

Josephus problem—It is said that Josephus, a jew. once saved his life by an arithmetical trick when he found, much to his disgust, that out of a group of 41, all except two were determined to kill themselves to avoid capture by the enemy These two were himself and another. He dared not oppose the proposition for fear of being killed first, so he suggested that the whole thing should take place in an orderly manner and for this all should arrange themselves in a circle the leader being placed first, and let every third person be killed and that the last man should commit suicide It is alleged that he placed himself in the 31st position and the other one in the 16th. By this arrangement it turned out to his advantage that the other man was the last but one to be killed and he himself, being the last survivor, was therefore to commit suicide. He spared the other one and certainly did not commit suicide.

There is another interesting problem deserving of mention, commonly known as the problem of the Tower of Hanoi It has an Indian version also. De Parville wrote in 1884 in the French journal, La Nature, that in the great temple at Benares rests a brass plate with three fixed vertical diamond needles beneath the dome of the temple which marks the centre of the world. On one of these needles, at the time of creation, God placed sixty-four discs of pure gold, the largest disc resting on the brass plate and the other getting smaller and smaller upto the top one. This is the Tower of Bramha Day and night, unceasingly the priests transfer the discs from one diamond needle to another, according to the fixed and immutable laws of Bramha, which require that the priest on duty must not move more than one disc at a time, and that he

must place this disc on a needle so that there is no smaller disc below it When the sixty-four discs shall have been thus transferred from the needle on which, at the creation, God placed them, to one of the other needles, tower, temple, and Brahmins alike will crumble into dust, and with a thunder-clap the world will vanish

The operation will require $2^{64}-1$ moves, that is

18,446744,073709 551615 moves

This means that if the priests never made a mistake, and made moves quickly and unceasingly even then they would require several thousands of millions of years to carry out the full transfer.

There are three geometrical problems, wrapped up with interesting stories, which legend connects with Greek mathematics They are

(i) duplication of the cube
(ii) trisection of an angle
and (iii) quadrature of a circle

These problems are insolvable with geometrical constructions involving the use of straight lines and circles only They are responsible for a large amount of trash being written in mathematical literature, more than any other problem, and they have also been responsible for many a pseudo-mathematician to become crazy and mad History is full of their stories which, in themselves, are nothing but paradoxes of mathematical failures.

A FEARLESS WORKER AND A DEPENDABLE FRIEND

SHRI R C GUPTA, *Advocate, Agra*

[Shri R C Gupta, ex-M L C Advocate Agra, is an intimate friend and fellow worker of Khannaji on the various educational bodies His remark, 'a fearless worker and a dependable friend,' amply sums up the character of Khannaji and speaks volumes about the personality of the illustrious man]

The name of Shri Hiralal Khanna is very well known in the educational circles of this province He occupies one of the foremost positions amongst the educationists of U P He has been elected in various capacities to the U P Intermediate and High School Board Allahabad University, Agra University, and many other educational institutions Whenever he has worked and under whatever capacity, he has left his mark He is known to be a man of independent views and he always brings to bear his independent judgment upon matters under discussion Even his opponents had to admit this quality in him

He rose to eminence from humble circumstances in which he was placed when his father died leaving him in his early teens This rise was mainly due to his hard and incessant work He has, too, a peculiar charm of making and retaining friends He embodies in himself the truth of the doctrine "Plain living and high thinking" I have

always been impressed by this high ideal so clearly manifest in his day to day life

I have known Khannaji now for about 20 years, and have had long association of working with him as member of the Executive Council and Senate of the Agra University and in other spheres of life Khannaji has left an abiding impression on my mind that he is a fearless worker and a dependable friend His ripe experience and mature judgment always characterised the proceedings of the University He always stood for certain principles advocated them with all the strength at his command, and at times suffered for sticking to those principles

Khannaji is one of the most popular teachers that I have come across He is practically worshipped by his pupils and respected by his colleagues and co workers The present B N S D College owes its rise entirely to his ceaseless efforts in collecting funds gathering together good and efficient teachers, and in showing exceptionally brilliant results He has recently brought into existence a society for establishing educational institutions in Kanpur By his retirement the B N S D College will suffer an irreplaceable loss but I feel that the other institutions will correspondingly gain because he will be able to devote more time to their welfare I wish Shri Khanna a well deserved retirement and success in his new sphere of life

Khannaji with a few members of the staff of the B N S D College in 1932

always been impressed by this high ideal so clearly manifest in his day to day life

I have known Khannaji now for about 20 years, and have had long association of working with him as member of the Executive Council and Senate of the Agra University and in other spheres of life Khannaji has left an abiding impression on my mind that he is a fearless worker and a dependable friend His ripe experience and mature judgment always characterised the proceedings of the University He always stood for certain principles, advocated them with all the strength at his command, and at times suffered for sticking to those principles

Khannaji is one of the most popular teachers that I have come across He is practically worshipped by his pupils and respected by his colleagues and co workers The present B N S D College owes its rise entirely to his ceaseless efforts in collecting funds gathering together good and efficient teachers, and in showing exceptionally brilliant results He has recently brought into existence a society for establishing educational institutions in Kanpur By his retirement the B N S D College will suffer an irreplaceable loss but I feel that the other institutions will correspondingly gain because he will be able to devote more time to their welfare I wish Shri Khanna a well deserved retirement and success in his new sphere of life

Khannaji with a few members of the staff of the B. N S D. College in 1932

Khannaji the organiser of the farewell party to R B A C. Mukerji, Secretary, Board of High School & Inter Education, U P. (1933)

of studies, which usually consist of experts in their own line. It is difficult to set out a course of study in every subject which may be found to be equal to the standards maintained by other Universities and yet be not such as to be beyond the income and capacity of the affiliated colleges.

No doubt an affiliating University suffers in comparison with a teaching University. The teaching in affiliated colleges with their varying resources and limited income cannot be as high as that in residential Universities; the espirit de corps which prevails in unitary residential Universities is absent and the loyalty of students is divided and sometimes doubtful. Still as every big city cannot maintain a University of its own, the necessity arises for some unifying institution which may be able to guide them and possess the necessary statutary power to hall-mark the graduates produced by these colleges.

In a vast country like India, it is not possible for teaching Universities, however large their number, to give accommodation to all students who go up for higher education. It is only local colleges which can meet the ever increasing demand. Hence the necessity for an affiliating University.

As we know an affiliating University works through its executive council or syndicate, which looks after the administrative side and its academic Board and Faculties which direct the academic side. The heads of the affiliated colleges and other persons elected by the senate or nominated by the Chancellor form the Executive Council, while the Faculties consist of all the Principals of the Colleges and other teachers in colleges together with experts from outside. The constitution safeguards all interests and is the best under the circumstances What is most essential in an affiliating University is the frequent inspection of the affiliated colleges so as to keep them upto the standard, and to see how far the conditions of affiliation have been fulfilled. From my experience I can say that this function is the most important and the Board of Inspection must be a very strong body with some outside members, who will go round as frequently as possible to inspect outlying colleges and give them such direction as to cure their deficiency and maintain proper standards,

duties could not be expected of an honorary Vice Chancellor who is otherwise engaged in his own vocation or profession I do not for one moment suggest that Honorary Vice Chancellors have not discharged their duties faithfully and conscientiously but human power is limited and you cannot expect too much of a man

In my opinion Vice Chancellors of affiliating Universities should be whole time paid officers who will have nothing else to do but to devote their time for the welfare of the University, its affiliated colleges and its students If post graduate education is to be concentrated at the head quarters this becomes all the more necessary

The University Education Commission has condemned the purely affiliating Universities At pages 414—5 they say, "The purely affiliating University is today doing more harm to the good name of Indian Universities as a whole than any other simple factor and we urge that this type shall disappear from the Indian landscape at the earliest possible moment" These are strong terms Although one may not agree in this wholsale condemnation of an institution which has kept the torch of learning alight all these years, yet the opinion of the commission that post graduate teaching should be centralised and affiliating Universities should take upon themselves the duty of direct teaching for post graduate classes appears to be very sound Take the case of Agra or Cawnpore where there are several colleges in the same City By co ordinating their system of imparting instruction to post graduate classes, the colleges can do most useful work and promote the cause of higher education to a greater extent Specialization in certain subjects can be easily arranged and research work can be conducted in the same manner and to the same extent as in a teaching University The resources of the various colleges can be commanded to employ high class teachers and experts in the subjects I commend this for very serious consideration by the authorities of the affiliating Universities The Calcutta University by adopting this method has earned a name for research and scholarship

The complaint against the affiliating Universities is that the Examiners are not appointed with due care, that the colleges affiliated do not impart education of the standard required, that there are

parties in the governing bodies which favour a particular group and, therefore, the working is inefficient and results in the falling of standards That there is some truth in this criticism must be admitted but then the complaint is not beyond remedy Introduce democratic form of election in any institution and you will find parties and groups ready to support those who fall in with them Most of the time of the teachers, both in teaching and affiliating universities is spent in manœuvering for seats in the Senate Court, Executive Council or faculties Various tactics are employed, examinerships are assured, assistance in securing other jobs is promised and other means of persuasion are adopted The same methods are adopted in the election of the Vice Chancellor, the Treasurer and members of the Executive Council The safest way to get rid of this mentality is to confine election to as few posts as possible and to substitute for it rotation The University education commission has recommended this method and I think very wisely If teachers of the University once realise that voting will not help them and they will become members of various University bodies by rotation in due time, a very salutary change will be effected in their mentality and they will devote more of their time to their legitimate duties The academic Broad and the Faculties as well as the Boards of studies should contain at least 25 per cent of outsiders that is those not engaged in teaching in the University, so that view of other Universities might be duly represented and independent action might be taken The constitution as recommended by the commission might be taken as a standard with necessary modifications

In the present state of the country when the state alone cannot meet the expenditure on higher education the existence of affiliating Universities is not only necessary but essential So long as the present method of examinations and conferment of degrees as a result of these examinations remains and so long as colleges in outlying districts and places meet the demand of higher education an affiliating University has important functions to discharge The working of such Universities can be mended but they cannot be ended

ACHARYA HIRALAL KHANNA

SHRI KULDIP NARAIN SINGH

[Shri Kuldip Narain Singh, Labour Commissioner, U. P. and Chairman, Joint Sugar Commission, U. P. and Bihar, is an ardent admirer of Khannaji. His sentence "If I could pick out one who has been a real satisfaction to my innerself it is Acharya Khanna" is really a very high tribute which a man of judicial temperament like the writer could give to any man. The whole article is couched in a language of impartial praise. The reader will read it with advantage and interest.]

My acquaintance with Acharya Hiralal Khanna is limited to the last about two years and it may be considered that I have not much of a qualification for contributing this note.

During the last about two years of my stay in the highly commercial town of Kanpur I have come across a variety of persons, public men, labour leaders, mill owners, journalists, educationists and others, and they have been a source of varying degree of attraction to me, particularly in my official life. But if I could pick out one of them who has been a real satisfaction to my inner self, it is Acharya Khanna.

It was an agreeable surprise to me to discover in Acharya Khanna a genuine 'Guru' sincerely interested in the moral and mental well being of his students. He knew almost every boy in his big institution having an enrolment of some 2,500 and I dare say he knew quite a good deal of each one of them.

His interest in the student who once joined Acharya Khanna's institution did not cease with the student's leaving the place as is

THE HEALING ART OF EDUCATION

Revd R G Slater

[Here is a very powerful and passionate plea for a re orientation of our present life less system of education according to the author It should be organised so as to foster love of skill enterprise and solitude and the heavy cost involved in doing so will be amply repaid by the results Would that more teachers were inspired with such burning faith glowing enthusiasm and lofty passion as Rev Slater the writer

Rev R G Slater is Principal Christ Church College Kanpur]

Perhaps in contributing to a collection of essays in honour of a teacher and builder of schools it may not be out of place to offer a small picture of a little of the broad expanse of almost unknown country which presents itself to the eyes of anyone who stands in front of a class with the audacity to teach The picture like a fragment of coloured glass or a glazed tile from some tessalated floor may be rather highly and unnaturally coloured but like them it may appear not unfitting when it is put in its place with the rest

Certainly it would be unfitting to attempt to heal unless we are clear about the disease Of course we do not all agree even so far But is it too much of an exaggeration to say that very few boys and girls pass through adolescence without suffering great harm in these days? Untold damage is done to the very material on which society depends To prevent this damage and to repair it is the first duty of all teachers Woe to us teachers when instead of healing the wounded we are ourselves inflicting the wounds Woe to the politicians the journalists the film directors and the sports promoters who twist the minds and strangle the souls of the young to increase the sales of their beastly stimulants and fascinating drugs! How the young shine in their

candid brightness. What delight they have in truth, what sympathy, what sense of justice, what a spirit of enterprise, and perseverence and curiosity! And then as they pass on through school and college what frustration, disillusionment, what bitterness and cynicism, what idleness and what deceit, and what surpassing conneeit and self-centredness! There is no respect left for themselves or for their parents and even less for their teachers. They have picked up the notion that to get on in life they must cheat at every turn, suspect all generosity and everything that is strange, and of course blame anyone and everyone else for their own failures and their own miserable sins. The grand organisation of this notion of blaming others finds itself a magnificent arena in the whirl and excitement and horror of a great darkness that call itself so pretentiously and grandiloquently the world of modern politics. They have in fact become the herd, the masses, the pulp out of which the journalists build mighty papers and dirty fortunes and with which the politicians satisfy the lusts of the great god of war. They have become the gullible fools who wrap their lives in newspapers and fawn at the feet of their servants whom they pay to take away their liberties and their incomes. Whether the education is universal, compulsory, free or not the results are the same, and the disease is almost identical in nature and extent both in Birmingham and Bombay. There is surely very little need to set out the reasons for this calamity. But what is the cure?

First of all there can be no cure unless we admit that the disease is a disease and not an achievement. The disease like all diseases is a menace and an opportunity. The opportunity is given for us to change our habits and our way of life and set ourselves other objects and other ideals. Boys and girls must be trained for other qualities than those which we produce today. What are the qualities they need if they are to resist the evils of the modern world? They need the bright qualities of alertness, vigilance, and the power of observation. They need the powerful qualities of preserverance, patience, a high sense of responsibility, initiative and resourcefulness. They need the deep and tender qualities of tactfulness and imagination. Of course they can have few of these unless they have vital health physical and emotional. These

on common interests, that involve activity in the class and outside, learn a great deal of the problems of society. The children help each other and they really know what they are doing and why, which is very far from true of children who sit listening to a teacher all day long They learn real interest and perseverance. One headmaster reported that he had to be very careful to see that when the school was locked each evening no child was left in some room finishing some piece of work. At present marks and examinations are far too prominent. There is too much emphasis on fierce competition; no doubt excellent for dealing with the world outside the school. And there is far too much stress on memorising information. This and the competition method are both self-defeating ways of education. Because there is no end to competition except more and fiercer competition and today the amount of so-called necessary knowledge which everyone should have is about 100 times what it was even fifty years ago, so our education becomes simply a means of preparing for a life of futile and exhausting competition and of acquiring more and more information which is constantly being added to and outdated. Specialisation and too many subjects are killing the desire to learn. Children get lost in the wordiness of it all, the lack of doing things, the lack of unity. Snippets of information, changes of rooms, changes of subjects, changes of teachers. How can they see any purpose or unity in it? How can they pursue subjects with any enthusiasm or link their knowledge with life? To end the present waste and vulgarity we need new policies and new methods. *We need release from the demand for statistics, mostly* false anyway, to satisfy the politicians. And if we are to aim at creating new qualities in those we teach; at preserving their brightness and strengthening them to resist the poison of modern life; at the love of skill and enterprise and solitude, then we need also to know that we are teaching human souls and not, just voters or labour units. We need to aim at a much higher standard of human excellence and to know what we want the human excellence for. Are we aiming at such excellence for the glory of God or for the exaltation of man or the glrification of some fiction like the state or the nation? Perhaps before going on to try and heal the young we should undergo a course of healing ourselves?

are not qualities which have to be manufactured and injected into the young. They are the qualities of the very young, the unspoilt. As teachers we have to preserve those qualities unbroken and undiluted. It is surely possible, but only on the condition that we protect them as they grow by a variety of health-giving interests and passions from the poisonous passions of the world

These mysterious and elusive passions may be grouped in a three-fold habit of life First, the love of enterprise Then the love of solitude. And thirdly the love of skill. Our civilisation does not grow the kind of crops from which these three loves are harvested. For the motor-car and the cinema provide unearned speed and excitement There is, therefore, no need for enterprise and adventure The love of solitude cannot grow amid the welter of incoherent sights and the hell of noise which batters our modern cities both day and night. But the love of God and the love of man cannot take root in any child who does not possess some solitude and aloneness. As regards the love of skill let the teacher not deceive himself about the hardness of the soil which is to receive the seed. Everything that a child can make for himself can today be more easily obtained, better in quantity and often in quality, by the payment of money in a shop. The modern boy and girl want quick results But the acquirement of skill requires much patience and much perseverance. The young today hate all long and painful effort. And now, even written exams. can be passed without doing any work beforehand. It only remains to be seen how soon we shall be able to pass without even writing any thing in the examination hall or perhaps without even bothering to attend it. All this, of course, is very good training for getting rich and quick success without effort, and for a life which looks forward to some stroke of luck in speculation or gambling to bring the solution of all problems The antidote against this poisonous civilisation is an education which gives a place of great importance to activities which will stir and sustain the love of skill, the love of enterprise and the love of solitude

Of course such education and such activities require ample space and small classes with well-trained teachers. Then project and activity methods are possible and fruitful, The children working together

on common interests, that involve activity in the class and outside, learn a great deal of the problems of society. The children help each other and they really know what they are doing and why, which is very far from true of children who sit listening to a teacher all day long They learn real interest and perseverance. One headmaster reported that he had to be very careful to see that when the school was locked each evening no child was left in some room finishing some piece of work At present marks and examinations are far too prominent. There is too much emphasis on fierce competition; no doubt excellent for dealing with the world outside the school. And there is far too much stress on memorising information. This and the competition method are both self-defeating ways of education. Because there is no end to competition except more and fiercer competition and today the amount of so-called necessary knowledge which everyone should have is about 100 times what it was even fifty years ago, so our education becomes simply a means of preparing for a life of futile and exhausting competition and of acquiring more and more information which is constantly being added to and outdated Specialisation and too many subjects are killing the desire to learn. Children get lost in the wordiness of it all, the lack of doing things, the lack of unity. Snippets of information, changes of rooms, changes of subjects, changes of teachers. How can they see any purpose or unity in it? How can they pursue subjects with any enthusiasm or link their knowledge with life? To end the present waste and vulgarity we need new policies and new methods. We need release from the demand for statistics, mostly false anyway, to satisfy the politicians. And if we are to aim at creating new qualities in those we teach; at preserving their brightness and strengthening them to resist the poison of modern life; at the love of skill and enterprise and solitude, then we need also to know that we are teaching human souls and not, just voters or labour units. We need to aim at a much higher standard of human excellence and to know what we want the human excellence for. Are we aiming at such excellence for the glory of God or for the exaltation of man or the glrification of some fiction like the state or the nation? Perhaps before going on to try and heal the young we should undergo a course of healing ourselves!

PRINCIPAL HIRALAL KHANNA—AN APPRECIATION

SHRI R B MADHO RAM

[Rai Bahadur B Madho Ram has been on the Staff of the Minister of Education and Industries U P for a long time How he was impressed by the personality of Khannaji and how eloquently he speaks of the various traits of Khannaji's character shall be read with interest The Rai Bahadur is a shrewd judge of men and things and his views are very impartial His acquaintance with Khannaji soon ripened into friendship which grew from strength to strength as the Rai Bahadur was greatly impressed by the various qualities of the illustrious man The article is very informing]

A big crisis was brewing in the dyarchical half of the U P Government in the early part of the year 1923, which culminated in the exit of the two popular Ministers, Messrs Jagat Narayan and Chintamani and the advent of the Raja Nawab Ministry That being the last year of the life of the first legislature under the Montagu Chelmsford reforms fresh elections were looming large in the horizon and the two new Ministers soon after their appointment undertook a tour of the province from one end to the other At that time I was on the personal staff of the Hon ble Minister for Education and accompanied him on his tours in the course of which we visited Kanpur also Everybody who was anybody in that town called on the Hon ble Minister and I had the good luck of forming the acquaintance of a number of prominent officials and non officials The one person who attracted my notice most was a modestly clad unostentatious Indian gentleman with a long tailed big turban on his head He was introduced to me by a common friend as Principal Hira Lal Khanna, an eminent educationist of the Province, who had infused a healthy spirit of service and

sacrifice among the teachers and the taught alike and whose name was a household word in the city of Cawnpore. I had heard a good deal about him and it was a real pleasure to me to meet him personally. Our acquaintance soon ripened into friendship which grew from strength to strength with the efflux of time. No one who came in contact with him could fail to be impressed by the prestige of his presence, his dynamic personality, and the earnestness of his convictions and feelings which were ever bursting forth and he won all along the line by sheer dint of merit and force of character.

I have had ample opportunities of meeting and watching him at close quarters both in private and at the college. He has ever been a believer in plain living and high thinking which is reflected in every sphere of his career. In the class every line of his physiognomy and every shade of his manner, imprinted themselves on the minds of the boys who had the honour of sitting at his feet. His well balanced exhortations, his grave and sombre but all the same affectionate messages conveyed through his lectures in the classroom were of incalculable import and still reverberate through the ears of his audience. Some susceptible and serious youths who fell completely under his sway responded admirably to the pressure of his influence and moulded their lives, with passionate reverence, upon the teaching of their adored teacher. 'The intellect of the wise is like glass: it admits the light of heaven and reflects it.'

In the earlier years of his stewardship of the institution (the Bishambhurnath Sanatan Dharm Intermediate College, Cawnpore) he was face to face with a herculean task as there were many to whom his mode of organisation and administration did not commend itself but this never swerved him from the path which he had chosen and he marched onwards. With the passage of time this hostility melted away and he was as much loved as he was feared. His pupils who are to be found in various walks of life spread his fame far and wide and I have yet to see an institution which in spite of its heterogeneous 'clientele' and none-too good financial position can come up to its standards, to say nothing of beating it. However good, bad or indifferent a student may be, if he knocked at the doors of the B. N. S. D.

College, he was confident of receiving a welcome subject to seats being available, and in many a case he was transformed out of all recognition after staying there for some time so far as intellectual attainments and general conduct were concerned There was hardly any student whom he did not know by face or by name and whose record of achievement or otherwise he did not carry at his finger ends As a teacher, to use the words of Montaigne, ' he did not continually thunder instruction into the ears of his pupils as if he were pouring it through a funnel but after having put the lad, like a young horse on a trot before him he would observe his paces and see what he is able to perform would, according to the extent of his capacity, induce him tto taste to distinguish and to find out things for himself, sometimes opening the way, at other times leaving it for him to open, and by abating or increasing his own pace, accommodate his precepts to the capacity of his pupil ' He has throughout his career been a strict disciplinarian but he has been easily accessible to all and sundry and whosoever approached him felt assured that he was going to a friend, philosopher and guide aad would receive a sympathetic and affectionate hearing He keeps cool at all times even under the most trying circumstances, is patient in hearing sweet of speech and slow to wrath He has reared up the B N S D Intermediate College almost from its infancy and in it he has raised to himself a memorial which will reflect more lustre on his name than any titles or orders which he never sought and for which he never cared The secret of his marvellous success lies in his radiant optimism generated by his profound belief in the infinite possibility of the individual to develop himself all round

His interests were not confined to education but were manysided There was hardly any institution of public weal which did not enlist his whole hearted cooperation, sympathy and help be it a *pinjrapole* or a *shaitya goshti* He holds firm opinions on a large number of questions and enunciates them—based as they are almost invariably upon sound principles—with an impressive self confidence He is full of sturdy commonsense, has a fund of irrepressible humour, can take a joke just as well as he can make it, is learned without being bookish, is appreciative without stooping to flattery and critical without being

censorious While at times he is apt to become a doctrinaire his philanthropic energy and charity of judgment make this trait almost imperceptible

We became friends, as already stated, soon after we made each other s acquaintance For the long space of 25 years our friendship has existed without a solitary misunderstanding and with surprisingly few differences Hiralalji is dear to me as an elder brother I respect him for his qualities, his sound judgment disinterested motives patriotic leanings and accommodating nature have won for him both admiration and esteem from all who have the pleasure of knowing him, while those like me who enjoy the privilege of his intimate friendship cherish for him a feeling of warm personal affection He has been a discriminating student both of men and affairs and is a voracious reader but has never made the mistake of confining himself to the printed word and ignoring the stern realities of life He has been vehemently opposed, mercilessly abused, has at times been threatened with dire consequences for his acts of omission and commission but he has never been known to flinch from the path of duty set by him for himself and has always remained firm

In short, eminent as Shri Hiralalji is as an educationist he is esteemed more, much more, as a man and as a friend Generous to a fault in his dealings with every one, he is singularly free from that smallness which tries to be great Modesty forms the texture of his character he has a genius for friendship and there is hardly anything which he is not ever ready to place at the disposal of his friends I have known him attending on his ailing friends and dependents not for days and weeks but for months placing his time his energy and his money ungrudgingly at their service In this connection I am reminded of an incident which happened some years ago A friend s wife with her child came to stay with him Unfortunately the child got fever and developed measles The servant was very reluctant to wash the dirty linen The lady could not leave the child alone even for a few minutes and it was a problem as to who would do it Hiralalji at once collected the linen and cleaned it with his own hands without any hesitation A generous habit of thought and action carries

with it incalculable influence. Hiralalji's action had an instantaneous effect on the servant: the next moment he volunteered to do the job himself and he did it cheerfully. As they say, there is a transcendent power in example

Hiralalji has had a ceaselessly active and eventful life Life in general has many discouragements and but few rewards, but my friend's devoted work in the cause of education in general and secondary education in particular has created a niche for him in the cultural edifice of this province Risen from poverty and obscurity to prominence, feared and hated by few but loved and respected by many, he is one of the most fascinating figures of this province. He has travelled a long way—he has almost reached the end of his tether—but the road he has traversed has been uphill, offering a succession of difficult situations which he has heroically met with hard self-discipline, a high sense of duty and responsibility, a breadth of outlook and an uncanny insight into human nature A man of thoroughly democratic sympathies, he has a happy combination in himself of true fundamentals of liberty and essentials of discipline. As remarked by Field Marshal Slim in a recent article on "Liberty and Discipline" contributed by him to "The Fortnightly, London", we are apt these days to think more of liberty than of responsibility but, in the long run, we never get anything worth having without paying something for it You can have discipline without liberty, but you cannot have liberty without discipline."

ECOLOGY IN RELATION TO AGRICULTURE

Dr T S Subnis

[Dr T S Subnis of the Imperial Agriculture Service ex Principal of the Government Agricultural College Kanpur is the Director of Agriculture in Rajasthan He is an expert of his subject and can write with authority on it In the present article Dr Subnis tells of the various kinds of soils and says that agriculture gives us ample data for measuring the possibilities of soil climate and tracts]

Climaxes are of great significance in classification of tracts with reference to the quality of soils and nature of climate and furnish direct indications of their agricultural possibilities For example paddy soils cotton soils wheat belt etc denote the quality of soils and type of climate and the corelation of crop production and plant associations Agriculture therefore gives us ample data for measuring the possibilities of soils climate and tracts

We have seen to our cost that certain crops altogether fail on certain soils while others tolerate them or thrive on them Groundnut crop for instance will fail completely on clay soil while it will tolerate sandy loam and would thrive on bhur soil (loose sandy loam) Paddy on the other hand would prefer wet clayey soil Thus potentialities of every agricultural crop are limited by the conditions under which it is grown

The workers in the science of genetics and plant breeding do endeavour to build up plants to suit different sets of conditions but

such artificially raised communities of plants fail to come up to the standard under extreme conditions of soil and climate

Types of farming, such as farming under dry semi dry or humit conditions are determined by the conditions rather than by the crops grown Of these conditions those pertaining to climate are more significant in their effect than those pertaining to soil Thus the crop indicator determines the type of crop to be grown on different tracts We thus find in practice—cotton tracts paddy areas wheat belt, jute districts, fruit districts etc , well marked Among these crop indicators there would be further sub divisions based on selective characters of different agricultural varieties and strains For instance a particular variety or strain of wheat, barley or cotton will only thrive and be remunerative under a particular set of conditions, though these differences in behaviour are greatly modified or influenced by cultural practice, seasonal variations, local conditions etc , and the corelations between indicator communities and varieties or strains is not found to be always significant Regional and local variations in crops arising from differences in soil texture, soil composition or topo graphy give ample data for suggesting necessary variations in types of crops grown or in methods of practice

The ecologists have so far confined their attention and studies to wild plants and wild animals but they have not taken much interest, so far, in the study of cultivated plants domestic animals, or even human ecology

It is admitted that erosions, defective crop planning, forests fires landslides, floods etc , disturb the equilibria of nature and it takes many years before a proper balance, though of a different kind can be established

With the rapidly growing science of Agronomy, it is becoming increasingly necessary to study the relationship of man to land which would yield valuable data to help us in agricultural planning and development We have done considerable advance in crop genetics crop physiology cytogenitics but have hardly any exact knowledge of the quantitative relationship of plant to soil and climatic conditions

Agricultural crops such as paddy, wheat barley, oilseeds, millets,

potatoes, fruit crops etc., present numerous difficulties and problems in their successful cultivation.

Regarding Agricultural industry, rotations and the system of growing a particular set of crops in a mixed condition were practised long before modern ideas of agriculture were made known. These practices were adopted by farmers as very sound ways and means to maintain not only a balance of yield but also equilibria with soil and climate; and these practices almost became an unwritten code in practical farming.

Burning of fields before Monsoon has been an organised practice in the Konkan and other tracts in Southern India and has been carried on as a team work with full cooperation of all inhabitants in a village. Its activating aspects on the soil in all its details may not be known to them but its beneficial effect on crops is quite familiar to them.

What modern agriculture, as far as agricultural aspect is concerned has done, is just to regularise and systematise these practices. We today talk of two years, three years, five years rotations and try to introduce and popularise them among the present cultivators. It took years for us to know the beneficial effect of growing a leguminous crop on account of its nitrifying bacteria before a gramminatious one. Similarly introduction of green manuring with a leguminous crop like sunnihamp to replinish the soil took years before its beneficial effect in maintaining proper equilibrium of the soil was appreciated.

Take for example the rotations—(1) maize, wheat, green manuring, winter oilseeds and gram, (2) green manuring, sugarcane, fallow, wheat, cotton, (3) early paddy, peas, jwar, arhar mixed and fallow These rotations would indicate that not only two crops in a year from the same field can be taken but they help to maintain soil fertility and soil texture Manure usually applied to maize, helps a farmer to take high yielding crop of wheat without manure. The soil which gets lowered in fertility is replenished by green manuring and gives a heavy crop of oilseeds The exhausting effect of the latter on the soil is rectified by gram with its nitrifying bacteria in its root nodules. Other rotations soil and nature are thus maintained. If the same crop is grown year have the same relation among the constituent crops and equilibria with

with any plans of agricultural research and development The Governments should, therefore, take immediate measures to harness services of good ecologists in their agricultural development schemes for proper interpretation of the corelation of edaphic and climatic factors with crops and their cultural practices, and stabilisation of crop yields

MY HUMBLE TRIBUTE

SHRI S C CHATTERJI M A
Ex Member Public Service Commission U P

[Shri S C Chatterji M A ex Principal of the local Christ Church college and ex member of the Provincial Public Service Commission U P has been an intimate friend and a fellow worker of Khannaji He has been able to watch Khannaji at closer quarters An eminent psychologist, as he is, his views though brief, about the personality of Khannaji and about his educational work are absolutely fair and shall interest the reader]

It gives me great pleasure to have the opportunity of paying my humble tribute to the long and devoted service rendered by Principal Hiralal Khanna to education in the United Provinces I consider it a valued privilege to have worked side by side with him in the city of Kanpur, on the Board of High School and Intermediate Education and the Executive Council of the Agra University In all these spheres of work, I was throughout impressed with his ability, industry and single minded devotion to the cause of education I am happy to be associated with this recognition of Principal Hiralal Khanna's career as a great educationist

THL WORLD THROUGH AN INDIAN S EYL

H E Dr Mohan Singh Mehta, Indian *Ambassadoi in Holland*

[A man, who joins foreign embassy, has an opportunity of meeting a laige number of people in different stations of life In Dr Mehta's letter we get glimpses of the life of the people living in different towns on Netherlands

The author made visits to the North East Polder and Amsterdam, the official capital of the Netherlands He takes out one which forms part of his stay in Amsterdam and discribes it separately It refers to the formal ceremony in the magnificent place of the Royal House of the kingdom of Netherland at Amsterdam when the sovereignty of Indonesia was transferred to its people by Queen Juliana]

Extracts fiom a personal lettei of His Excellency Dr Mohan Singh Mehta—Indian Ambassadoi in Holland to Principal Khanna —

My deai Khannaji,

Since I wiote to you a month ago I have had oppoitunities of meeting a large numbei of people in diffeient stations of life That would be a fit subject to be included in these letters but I shall iestrict this lettei to two events They were,

(a) Visit to the North East Polder, and
(b) Visit to Amsterdam, the official capital of the Nether lands

One event is singled out for special treatment It refers to the formal ceremony in the magnificent Palace of the Royal House of the Kingdom of Netherlands at Amsterdam when the sovereignty of Indo nesia was tiansferred to its people by Queen Juliana

The ceremony was veiy well organised It was caiiied out with simplicity and dignity It was indeed a touching sight Foi a large numbei of people in the Netherlands the event had a curious mixtuie of bittei feeling and intellectual approval I was happy to have been present on that historic occasion

I shall now describe to you my visit to the Noith East Poldei and the Labour Camps last month The Ministiy of Housing and Recons truction has a big Department foi oiganising labour welfaie work

all over the country The important part of the camps were the canteens attached to a large hall with a stage A variety of programmes was arranged in the evening having cultural recreational and educational values The canteens are organised in an excellent spirit of social duty

The Labour Camps are organised for two types of workmen —

(a) Persons having temporary employment and

(b) The unemployed waiting for jobs

The camps visited in this occasion were of the first variety We enjoyed the genial hospitality of the camp-warden in his neatly furnished suite of rooms

A visit to a Poldar helps one to understand the land reclamation process, indeed a unique feature of Holland It has been a resolute and continuous fight of the people against water to turn it into land and making the ocean yield living space for man !! It is a wonderful adventure which has gone on for four hundred years Do you know that about a third of this country has been dragged from the bottom in the course of centuries ?

This method of reclamation is quite a difficult and complicated process, needing great skill and thoroughness A combination of social, engineering geological, agricultural and economic faculties of the state and society are pressed into this service It is done through a most interesting process in which the practical and physical growth of human settlement is, as it were, concentrated in a museum before your eyes

Polder building brings a variety of workers and material together a complicated process of timing and planning, involving,—a high degree of precision and coordination The museum was the most interesting place It showed that at one time, in the forgotten past this part had been land It was indeed the most interesting museum, containing from some recent—a couple of hundred years old—to very old articles of the Stone and Bronze Ages—some fossils of rare animals placed alongside the remains of ships wrecked or sunk in the sea in the unknown past with some of the personal things of the crew, such as, Chinaware, vessels etc This little mute Museum related a fascinating story of the land which had its rebirth in the form of the North East Polder

Perhaps more than a quarter of the Netherlands (as the name signifies) is from three to ten feet below the sea level Every yard of that land represents the triumph of man over the powers of water by qualities of grit, industry, courage and adventure This national struggle against the sea explains the character and history of this sea faring people

We visited another Camp where some workmen were engaged in different hobbies, such as, basket and furniture making spinning weaving etc A teacher was specially engaged for this purpose This was a very well fun Labour Camp indeed

We got home at the stroke of the midnight hour, exactly according to plan It had been a long day quite tiring but rich in experience

Now let me take you with me on my short visit to Amsterdam which is the proud city of the Netherlands still officially its capital although the Government resides at the Hague This is a very picturesque town with a colourful history and individuality of its own It is one of the most remarkable places of Europe with many unique features peculiar to its life and natural conditions

Like Venice, there is a large number of canals intercepting the whole city, but unlike Venice it has roads as well, canals are a special feature of Holland, as you know The house fronts of some of the mediaeval buildings dating back to the 15th and 16th centuries overlooking canals are a very picturesque sight Trees water, bridges and the old house fronts, these four blend to give a peculiar charm to Amsterdam It may astonish you to know that there are four hundred bridges in the city, some of them indeed extremely beautiful in their setting

As you know, all the diplomats live in the Hague with the result that Amsterdam receives almost no attention from them Apart from its being the seat of Government, a quiet beauty of its own, and its residential character Hague is no comparison to Amsterdam in commercial importance

I attended the ceremony at the Palace on the 27th December 1949 In the afternoon I visited a diamond factory Diamond cutting is a very old and reputed industry of Holland and this particular factory is one of the oldest in Europe Several hundred people are employed in this factory It is a very highly specialised job, the cutting of diamonds

Diamond cutting requires not only a skill of the hand, but causes considerable strain to the eyes, although for the process of cutting and shaping the diamond power and machinery are employed But a man soon gets used to it This factory has very efficient organisation in the distribution of diamonds to the workmen, collecting them at the end of the day and storing them in safe custody for the night and repeating the process the next morning

Our next destination was the Erven Lucas Bols This is the oldest Distillery in Amsterdam and its Development has taken place on the same site where the original brewery was founded in the 15th century It is a large factory producing some of the finest quality Dutch Gin, and several types of liquors and wines including some types of Scotch and Canadian whiskies

On the following day in the afternoon with the help of the Secretary of the Municipal Housing Service we had the chance of seeing what has been done by the Municipal Government of Amsterdam for providing houses in the town Houses are built either

(a) by persons privately, with or without government help or

(b) by Housing Cooperative Societies, occasionally with public help, or

(c) by the Municipality

I saw some new blocks of buildings recently finished and one or two blocks constructed by Housing Societies Among the latter, I went into the flat of a teacher This block of buildings belonged to the Housing Association for Teachers The occupier was an elementary school teacher It was indeed a pleasant home In the scheme of house construction, the Municipality now provides near each big block of buildings a small block for the retired and aged persons who are too old to work and who have no dependents living with them to help them This block for old people was a single storeyed building with small rooms and possessing all the amenities of modern buildings They were allotted to persons over sixty five years of age

The next morning I visited the Municipal Service Department

Its secietaiy kindly took me iound to see social uplift centie and a woikshop foi the blind

On Saturday, the 31st Decembei, the morning was devoted to a very pleasant trip of the haibour and canals of the town One has no idea unless one is instiucted by some competent person as to how much shipping activity goes on in the Haibour of Amsterdam A boat tiip on the canals of Amsteidam is one of the most pleasant expeiiences foi a visitoi Amsterdam Harbour is a veiy laige and impoitant shipping centie in Western Euiope

In the moining of the New Yeais Day we had beautiful weathei The sun had come out and theie was cold crispness in the air On this day we went out of Amsteidam to a place called Hilveisum It is an extiemely beautiful town, clean well built and having lovely gardens The aichitecture of the place is veiy attiactive although modein Theie aie foui big tiansmitting stations in this countiy Holland has, as you know, stiong ieligious feelings, with the result that eveiy activity whethei it is political, social oi economic and educational, they oiganise under the auspices of their ieligious denomination, paiticularly Catholics and Calvinists aie inclined to do that, so theii broadcasting stations are also organized in this way

In the evening we went to see a play which has been played in Amsteidam without inteiiuption fiom the year 1637. It is a play about the defence of the town and was wiitten by one of theii great national poets I wish I knew Dutch to be able to enjoy it as much as the othei people were doing

We have been having an extiemely mild winter There is a lot of influenza and bronchitis about the country I have also had a bout of it Most of this letter has been dictated in bed, when I had nearly got ovei my illness I am up now again

Yours affectionately,

(Sd) Mohan Singh Mehta

HOW TO IMPROVE FOOD PRODUCTION

PROF. N R. DHAR

[With a view to removing the constant threat of scarcity, famine and helpless dependence on imports to which the country is exposed at present, it must set before it the task of increasing the food grains production annually by 10 million tons within the shortest possible time

Large scale multi purpose projects to provide irrigation and intensive efforts to raise the production from the soil already under cultivation by increased manure and improved seeds and the development of culturable waste lands must be an integral part of a comprehensive food production policy for the imme diate future."

The author maintains that the biggest problem of the world today is not the atom bomb but greater and better food-production Foreign experts on soil suggest that India should adopt Dr. Dhar's method of manuring fields]

The main observations in the final report of the Foodgrains Policy Committee set up by the Government of India in September 1947 to examine the possibilities and to recommend measures for securing a definite increase in the food production within the country in next five years are as follows :—

" With a view to removing the constant threat of scarcity, famine and helpless dependence on imports to which the country is exposed at present, it must set before it the task of increasing the foodgrains production annually by 10 million tons within the shortest possible time. Large scale multi-purpose projects to provide irrigation and intensive efforts to raise the production from the soil already under cultivation by increased use of manure and improved seeds and the development of culturable waste lands must be an integral part of a comprehensive food-production policy for the immediate future "

In fact the biggest problem of the world to-day is not the atom bomb but greater and better food production. In the recent publication, "A Food Plan for India," issued by the Royal Institute of International affairs (Oxford University Press) with a foreword by Prof A. V. Hill, who also visited India in 1943-44 and advised the Government of India,

it has been stated that the production of rice wheat and other food grains is approximately 60 million tons per annum (1945) and has remained practically stationary from 1919 Similarly the total acreage of land under cultivation of cereals has not improved since 1911 inspite of the so-called 'Grow more food campaign' To improve the food position of the nations with large populations is certainly a very difficult proposition as will be evident from the following table of food standards

Food standards in different countries —In this connection it is interesting to record the index number of national diets of various countries computed by the League of Nations New Zealand (100) Canada (97), U S A (92), Australia (92), Switzerland (86), Great Britain (83), Argentina (80), Sweden (78), Belgium (76) Denmark (75), Norway (74), Germany (71), Holland (70), France (70), Austria (68), Finland (68), Czechoslavakia (66), Ireland (61), Estonia (59), Mexico (57), Chile (56), Italy (47), Algeria (44), Bulgaria (42), Egypt (36) Japan (29), India (29), Rumania (26), U S S R (26), Philippines (21), China (17)

The above table shows that the countries having the largest population e g, China (population over 500 millions) India and Pakistan (over 400 millions) and U S S R (over 175 millions) have the lowest food standards Out of a world population of 2385 millions, India including Pakistan and China possess almost half of humanity Unfortunately food production in these countries specially has lagged behind population increase and hence the outcome is a disastrous food shortage The world production of cereals on which the poor people of the East have to depend almost entirely for their daily bread is 600 million tons per year, which is adequate even today for the whole world population, but this country and Pakistan possessing one fifth of the world population produce only one tenth of the cereals, i e only 60 million tons per annum

There is the similarity in the composition of soils, plants and the human body The human body consists of the following —

Oxygen—65 per cent, carbon—18 per cent, hydrogen—10 per cent, nitrogen—3 per cent, calcium—1 5 to 2 2 per cent, phosphorus—0 8 to

1 2 per cent, potassium—0 95 per cent, sulphur—0 95 per cent, sodium —0 95 per cent, chlorine—0 95 per cent, magnesium—0 95 per cent iron—0 004 per cent, manganese—0 00037 per cent, copper—0 00015 per cent, iodine—0 0004 per cent and cobalt, zinc, silicon aluminium flourine, nickel, boron in traces but probably not all of them are essential for human nutrition Cobalt has been proved indispensable (in minute traces) for maintaining normal nutrition in animals while it seems probable that traces of zinc are also needed in the food of animals Silicon and flourine enter into the composition of bones and teeth

Indeed iron is one of the elements most vital for the well being of the body although it exists only in one part in 25000 in the weight of the body This element is needed for making haemoglobim, the red blood corpuscles which enable them to unite with oxygen and thus carry it to the tissues The presence of small amounts of iron in chromatine particles existing in nuclear part of the cells and in cytochrome in cell-plasma is also essential to the oxidation processes in the tissues Copper is also indispensable in the process of forming haemoglobim and animals not receiving proper amounts of copper suffer from anemia although iron may be adequate The amount of iodine is one hundredth that of iron but it is indispensable for the manufacture of thyroxine by thyroid gland Similarly manganese is needed for proper and good nutrition Calcium and potassium are two numerals most prominent in the make up of the body and must be liberally supplied in food

The average composition of a flowering plant is —carbon—45 per cent, Hydrogen—5 5 per cent, oxygen—41 per cent, nitrogen—3 8 per cent, sulphur—0 43 per cent potassium—0 33 per cent, phosphorus—0 3, chlorine—0 3 per cent, silicon—0 5 per cent calcium—2 3 per cent magnesium—0 33 per cent, sodium—0 16 per cent, iron—0 0036 per cent, alumina—0 0033 per cent, Boron copper zinc, manganese, flourine, bromine, nickel, molybdenium, iodine and cobalt in mere traces

A fertile soil contains the following ingredients —Carbon 2 23 per cent, nitrogen 0 22 per cent, calcium 2 per cent, aluminium 3 per cent, iron 2 5 per cent, phosphorus 0 15 per cent, sodium potassium 0 35 per cent, magnesium 0 25 per cent, sulphur 0 02 per cent, carbonate 1 4 per cent, traces of copper, manganese bromine, nickel, boron, iodine

It is clear, therefore, for the healthy growth of a crop, the soil must contain those ingredients which are present in the plant tissues More over as human beings depend chiefly on plants for their food requirement, it is essential that plant materials which are used as human or animal food must be rich in those materials which are the chief ingredients of the human body

In India and China very little commercial fertilisers are used The artificial manures used in Europe and America consist of ammonium salts for nitrogen, potassium salts, phosphates, and for acid soils calcium carbonate It is obvious, therefore, that these artificial manures alone do not supply all the ingredients required by the plants, hence it has been frequently observed that artificial manures failed in increasing crop production Moreover medical men and nutritional experts are beginning to point out that human beings and animals fed on plant materials raised on artificial manures suffer from deficiency and other diseases This is evident from the fact that the artificials do not supply all the ingredients especially the trace elements required for the healthy growth of the body In this connection the following observation of the great medical man and surgeon, the late Dr Alexis Carrel is of interest,

" Chemical fertilisers by increasing the abundance of crops without replacing all the exhausted elements of the soil have indirectly contributed to change the nutritive value of cereals and vegetables "

Moreover researches in the Allahabad University Chemical Laboratory have established that when ammonium salts are added to the soil two thirds are wasted as nitrogen goes without benefit to the crop or soil On the other hand, the organic manures like cowdung, composts, plant materials, green manures etc , not only add nitrogen, potash and phosphate to the soil for healthy crop production but they can release to the soil all the other materials required by the plants Hence manuring by organic substances i e of plant and animal origin is more sound and healthy than fertilisation by artificials The nitrogen present in the organic materials exists in the soil in the form of humus which liberates ammonia slowly and hence the nitrogen remains in the soil for a longer period of time for the benefit of the crop than by artificials It has been definitely established in our laboratory that

1 2 per cent, potassıum—0 95 peı cent, sulphur—0 95 peı cent, sodıum —0 95 peı cent, chlorıne—0 95 peı cent, magnesıum—0 95 per cent, ıron—0 004 per cent, manganese—0 00037 per cent, copper—0 00015 peı cent, ıodıne—0 0004 peı cent and cobalt zınc, sılıcon alumınıum, flourıne, nıckel, boron ın traces but pıobably not all of them aıe essentıal for human nutrıtıon Cobalt has been proved ındispensable (ın mınute traces) for maıntaınıng normal nutrıtıon ın anımals whıle ıt seems probable that traces of zınc are also needed ın the food of anımals Sılıcon and flouıme enteı ınto the composıtıon of bones and teeth

Indeed ıron ıs one of the elements most vital for the well-beıng of the body although ıt exists only ın one part ın 25000 ın the weight of the body Thıs element ıs needed foı makıng haemoglotım, the red blood corpuscles whıch enable them to unıte wıth oxygen and thus carry ıt to the tıssues The presence of small amounts of ıron ın chıomatıne partıcles exıstıng ın nucleaı paıt of the cells and ın cytochrome ın cell plasma ıs also essentıal to the oxıdatıon pıocesses ın the tıssues Copper ıs also ındıspensable ın the pıocess of formıng haemoglotım and anımals not ıeceıvıng proper amounts of copper suffeı fıom anemıa although ıron may be adequate The amount of ıodıne ıs one hundredth that of ıron but ıt ıs ındıspensable for the manufacture of thyıoxıne by thyroıd gland Sımılarly manganese ıs needed for proper and good nutrıtıon Calcıum and potassıum are two numerals most promınent ın the make up of the body and must be lıberally supplıed ın food

The average composıtıon of a flowerıng plant ıs —carbon—45 per cent, Hydıogen—5 5 peı cent, oxygen—41 per cent, nıtıogen—3 8 per cent, sulphur—0 43 per cent, potassıum—0 33 peı cent, phosphorus—0 3, chlorıne—0 3 per cent, sılıcon—0 5 per cent calcıum—2 3 peı cent magnesıum—0 33 peı cent, sodıum—0 16 per cent, ıron—0 0036 per cent, alumına—0 0033 per cent, Boıon, copper, zınc, manganese, flourıne, bromıne, nıckel, molybdenıum, ıodıne and cobalt ın meıe traces

A fertıle soıl contaıns the followıng ıngıedıents —Carbon 2 23 peı cent, nıtrogen 0 22 peı cent, calcıum 2 per cent, alumınıum 3 peı cent, ıron 2 5 per cent, phosphorus 0 15 per cent, sodıum potassıum 0 35 per cent, magnesıum 0 25 per cent, sulphur 0 02 peı cent, carbonate 1 4 per cent, traces of coppeı, manganese bromıne, nıckel, boron, ıodıne

It is clear, therefore, for the healthy growth of a crop, the soil must contain those ingredients which are present in the plant tissues Moreover as human beings depend chiefly on plants for their food requirement, it is essential that plant materials which are used as human or animal food must be rich in those materials which are the chief ingredients of the human body

In India and China very little commercial fertilisers are used The artificial manures used in Europe and America consist of ammonium salts for nitrogen, potassium salts, phosphates, and for acid soils calcium carbonate It is obvious, therefore, that these artificial manures alone do not supply all the ingredients required by the plants hence it has been frequently observed that artificial manures failed in increasing crop production Moreover medical men and nutritional experts are beginning to point out that human beings and animals fed on plant materials raised on artificial manures suffer from deficiency and other diseases This is evident from the fact that the artificials do not supply all the ingredients especially the trace elements required for the healthy growth of the body In this connection the following observation of the great medical man and surgeon, the late Dr Alexis Carrel is of interest,

"Chemical fertilisers by increasing the abundance of crops without replacing all the exhausted elements of the soil have indirectly contributed to change the nutritive value of cereals and vegetables"

Moreover researches in the Allahabad University Chemical Laboratory have established that when ammonium salts are added to the soil two thirds are wasted as nitrogen goes without benefit to the crop or soil On the other hand, the organic manures like cowdung, composts, plant materials, green manures etc, not only add nitrogen potash and phosphate to the soil for healthy crop production but they can release to the soil all the other materials required by the plants Hence manuring by organic substances i e of plant and animal origin is more sound and healthy than fertilisation by artificials The nitrogen present in the organic materials exists in the soil in the form of humus which liberates ammonia slowly and hence the nitrogen remains in the soil for a longer period of time for the benefit of the crop than by artificials It has been definitely established in our laboratory that

percentage of available nitrogen in Indian soils is greater than in cold country soils An average sample of soil in the alluvial Gangetic plains contains 0 05 per cent of total nitrogen i e , about 1150 pounds per acre upto the first nine inches from the top Out of this total nitrogen over 10 per cent i e more than 120 lbs are in the available form which can be absorbed by the crops for the growth On the other hand an average English or American soil contains 0 1 per cent total nitrogen i e 2300 lbs per acre in the first nine inches Out of this amount only one to two per cent i e 23—46 lbs are in the available form It is clear therefore that the available nitrogen is almost three times greater in Indian soils than in soils of codl countries and that is why the crops can be drawn from our soil year after year without any manure

Researches of Prof Dhar and his pupils extending for over a period of 25 years have shown that all energy producing materials like molasses cowdung, sugar, carbohydrates glycerol oils, fats lignin saw dust cellulosic materials like leaves etc , when added to the soil can fix atmospheric nitrogen aided by sunlight and behave as excellent nitrogenous manures These materials not only enrich the ordinary soil but can reclaim USAR and unproductive alkaline soils permanently Peat brown coal, or lignite etc , which are rich in humus and have been used as fuel have now been utilised by Prof Dhar as a manure both for normal and alkaline soils

The usefulness of peat as manure is shown by the composition of the ash —Silica (SiO_2) 27 1 per cent, Titania (TiO_2) 0 86 per cent, Alumina (Al_2O_3) 23 16 per cent, Iron oxide Fe_2O_3 29 24 per cent Manganese oxide (MnO) 0 10 per cent, Calcium oxide (CaO) 7 1 per cent, Magnesium oxide (MgO) 2 73 per cent, Potash Oxide (K_2O, 1 47 per cent, Na_2O—1 7 per cent, SO_3—7 35 per cent

It is estimated that the carbon and nitrogen contents of the worlds peat and brown coals are as follows —

Peat—Carbon 1123 000,000000 and nitrogen—225,000,00000 metric tons

Brown coals Carbon—1499 000 000000 and nitrogen 2485,0000000 metric tons

The nitrogen content of the organic matter (humus) of the available soils of the earth upto the depth of one foot is 40,000,000 000 metric tons

The nitrogen fixation industries of the whole world produced 3,54,0000 metric tons of fixed nitrogen in the peak year 1937 Hence the natural nitrogen resource of the soil is 11300 times greater than the nitrogen mixed every year industrially

The amount of nitrogen necessary for the production of a single good crop from an acre of the soil is about 25—50 lbs because this is the amount actually present in the crop and the hay However even in industrially advanced countries, the actual amount of nitrogen supplied in the form of artificial manure is much less than the requisite amount as shown in the following table If artificial manure has to be used, it should be always mixed with organic materials

Pounds of Nitrogen used per acre

Country	Nitrogen added per acre per year in lbs	Country	Nitrogen added per acre per year in lbs
Holland	24 79	France	4 0
Belgium	28 55	Italy	4 29
Germany	15 65	Great Britain	2 49
Denmark	10 26	U S A	1 36
Norway	5 98	Poland	0 73
Sweden	5 24	Hungary	0 73

In this connection the following lines from Nature (Vol 164 1949 pp 597) are of great interest At present only some 3 per cent of the world food production can be attributed to the use of nitrogenous fertilisers To raise the food by 10 per cent, that is to say, one hundred million tons, involves a fourfold increase in supplies of fixed nitrogen, at an approximate capital cost of £ 1,500,000,000 or its equivalent an

nually and would take a minimum of 15 years to achieve Changes can be expected in the form of nitrogenous fertiliser's used, as world sulphur supplies are not inexhaustible and area may prove to be a convenient material "

It is clear therefore that the world-production of food is chiefly due to the nitrogen present in the humus of the soil or fixed from air by the addition of energy rich organic substances Nature in its issue of 11th April 1936 has commented on our work on land improvement in the following words —

" Prof Dhar leads the school of thought which believes that nitrification in soils and nitrogen fixation from the atmosphere are, especially in the tropics photochemical, at least as much as bacterial action Prof Dhar has produced strong support of his theories The practical facts of Prof Dhar's researches are that Indian soils are generally deficient in nitrogen, that more than half a million tons of molasses are annually wasted in India and the application of molasses to the soil can double and may treble the soil nitrogen content with a consequent large increase in crop yield Prof Dhar suggests that a most valuable use can be made of molasses in reclaiming alkali land The acids produced in the decomposition of molasses neutralise the alkali and at the same time and contrary to experience, when land is reclaimed with gypsum or sulphur, soil nitrogen is increased The economic reclamation of these lands is one of the country's greatest agricultural problems to the solution of which Prof Dhar s work is pointing the way "

The intuitive power and greatness of Mahatma Gandhi is evident from the fact that he published a full account of our researches in nitrogen fixative by the use of organic matter and blessed our work in the follwing words (*Harijan* Vol XI 1947 283) " The suggestions contained in this paper are worthy of attention and adoption I have no doubt that proper treatment and judicious use of our soils should allay all fear of dearth of food '

It has been estimated that 65 million tons of dry cowdung containing 2 per cent nitrogen are burnt every year in India and Pakistan If all this is preserved and added to the soil as a manure, the nitrogen add-

ed and fixed amounts to 2.6 million tons and thus can produce 54 million tons of rice per year. This is a big national problem. U S A which is today the biggest producer of artificial nitrogen compounds is advocating and adopting organic manures and publishing a journal 'Organic gardening' from Emmans Pa U S A It is high time that India should also adopt in right earnest Prof Dhar's method of manuring fields which has been adopted by American firms in Pennsylvania and California.

PRINCIPAL HIRA LAL KHANNA— AS I KNOW HIM

SHRI H K GHOSH

[Shri H K Ghosh is the General Manager of the Indian Press the premier printing concern of these Provinces Owing to his business the writer has come into close contact with many educationists His article shall give us an insight into some of the rare traits of Khannaji s character]

My acquaintance with Shree Hira Lal Khanna covers over three decades I have a faint recollection of his pleasing personality when he used to come to our Press often to meet my father whom he knew intimately during his student days Later on he related how he was attracted by the magnetic personality of my father in his early teens

Shree Hira Lal Khanna is a self made person As a student he had to seek an income himself without any aid from his parents Even in his early youth he had an indomitable desire to learn things not only of his immediate surroundings but of wider spheres This is how he came into contact with my father in his youth As a University student he did some literary work for the Press

Many years after I had the privilege to meet him again when he actively joined the St John s College as a Lecturer in Mathematics He lost his wife in his early youth and had to take upon himself the bringing up of his only child A man of strong character and lofty ideals he thought it fit to keep himself busy in the advancement of education in the Province He became a member of the Intermediate Board If he had desired he could have written many lucrative Text Books yielding substantial annual income I do remember how he politely refused

to undertake writing of Text Books and how he explained to me that he could not go to the Board with a clear conscience to criticise other text books if he wrote a series for us I understood him and my respect for his straight-forwardness and honesty of purpose increased ever more

Shree Hira Lal Khanna has wide knowledge of many branches of public life His intense enthusiam and boundless curiosity to learn about other factors connected or not with educational activities won him respect from people in every walk of life He had a natural flair for executive functions connected with commerce which he understands thoroughly He actively took part in many business enterprises During this time I requested him to join the Board of a Sugar Company which I floated with my friends in 1933 He gave his consent readily and helped me with his valuable suggestions from time to time He also became a Director of the Scientific Instrument Co , Ltd , Allahabad, and contributed greatly towards the prosperity of the concern Not only his natural ability to conduct affairs connected with business activities was admired by his co directors but he also helped every concern he joined with his sound advice, never hesitating to spend his time and money to the best of his ability for the success of any business scheme which was essentially sound

Although he is widely connected with other spheres of public life he is essentially an educationist His pet ambition is to create groups of ideal institutions where students should get such education as would be handy to help them in their struggle of life There are hundreds of students in this province who lovingly talk with pride of the help rendered to them by their dear Principal, Khannaji Perhaps there are few educationists in the province who have got a larger circle of friends Businessmen, politicians and his co workers and even people in the lower walks of life feel proud of his friendship, his attention, his good wishes and his ever eager helping hand in times of difficulties

Although he has ceased to become the active head of one of the biggest Intermediate Colleges of the Province, I sincerely hope he will continue in his activities as an eminent educationist of the Province

May God grant him many many years of active service in the cause of humanity !

HIRALAL KHANNA —THE MAN I HAVE KNOWN

SHRI N K MUKERJI

A well-known Journalist

[Shri N K Mukherji is a Journalist of long standing He has a broad vision and a quick and intelligent grasp of things He wields a facile pen and is a shrewd judge of men and things His views regarding Khannaji an intimate friend of his shall interest the reader and shall lend a keener insight into the character of the man]

Today Babu Hiralal Khanna is a white haired—he has always been white haired—old man He is 60, only a few years more to complete the Biblical span The peace of a life well-spent, and of duties faithfully performed has settled on him He is a happy man today' The body lacks the old lustre, but the spirit is yet adamantine

I first met Hiralalji in 1913 I was then a callow youth, a novice in the *Leader* and Hiralalji was struggling to make the two ends meet It was a tremendous struggle I watched and admired him He was a proof-reader in the *Leader*, the paper's advertisement canvasser and a sort of under study in the manager's office The remuneration was in adequate—the *Leader* was not then a prosperous concern—and he had to undertake odd jobs to earn a livelihood—and to save something which would enable him to resume his studies, broken off prematurely Hard work has no terror for him, I have seen him working 12 hours a day often more on miserable pittance, not enough to keep body and soul to gether But he never grumbled He could live on little and even could save something out of that little

We parted for sometime and then I met him at a party given to Dr Jennings, who was leaving Allahabad to become first Director of Public Instruction of the new province of Bihar and Orissa, in the Muir College Grounds He greated me with a hailfellow-well met smile He had joined the University and was a boarder in the Hindu Hostel I was mightily pleased I thought he would be able to fulfil the ambition of his life We used to meet frequently afterwards in the Leader Office,

and had discussions on topical matters—social and political. The first World War had broken out then and in the initial stages the Allies were having many reverses. Big events were happening in South Africa. Mahatmaji had begun his passive resistance campaign. We were a group of about half a dozen youngmen Akhory, Basudeo Narain Akhory Bholanath, Myself, Hiralal, Ganga and another. I always found that Hiralalji had pronounced views on many subjects. He read the newspapers carefully, formed his own views and did not take things for granted. He said that the initial German success should not delude us. Germany was bound to be defeated in the long run. His admiration for Mahatmaji and his technique of passive resistance was unbounded. Mr. Chintamani (knighted afterwards) was then the editor of the *Leader*. He was respected throughout the province for the political lead that he gave to it. He was a wizard of Indian politics—those were the days of hero worship and none dared contradict him. Young Hiralal was of a different mettle. His respect for Chintamani—great as it was—never allowed him to compromise with truth or with his own conscience. On every political question he held independent and original views and often they were diametrically opposite to what Chintamani and even bigger men thought. I once asked him, "Between the two giants in the province, Chintamani and Pt. Malviya, whom you respect more?" He said, Pt. Malviya definitely and he gave his reasons which none of us could controvert.

I used to see Hiralal often when he was teacher of the C. A. V. High School. Both of us were fond of morning walks and we met in Alfred Park, and discussed men and matters. I was struck by the inherent honesty of convictions. When once convinced he faced facts with undemonstrative candour. We differed frequently. He met my views with stiff obstinacy, but neither argued nor placated.

I am not in a position to say much about Hiralal's qualities as a teacher, but I noticed he had astonishing enthusiasm. While I was staying with him at Cawnpore, I found him awake at 3 in the morning. Both of us took our constitutional walk. He then went to his college to be present at the school drill, often I accompanied him and found him talking to the students, asking them about their welfare, their income

mences, wander round the college compound, see to every detail, then return home, and again be ready for college in half an hour's time to come home at 9 in the evening I simply marvelled at his rude vitality He does not believe in sloppiness He has a method and habit of mind clearness of view, and severe restraint on himself To a new comer he would often seem cold and unimaginative but actually he is one of the kindliest of men that I have known

As an educationist he has been praised very highly by men who are best capable of judging The B N S D Inter College is supposed to be the best in the province and has always secured the best results What is the secret of this? The drive of the man who is at the helm of its affairs The college is his world He has few other interests in life and is thoroughly conversant with everything pertaining to its affairs Hiralalji has never floundered He has never spared himself and they call him a slave driver because he takes the best out of his teachers and does not tolerate sluggards

I have enjoyed his hospitality for weeks on end, and can say that few other people are so anxious to plead the palate of his guests and so meticulous about their comforts and conveniences I call him a perfect host A widower himself he has to leave things to servants, but no body who has lived under his roof can say that his needs have not been fully met I found him many times shy in the movement of his pen That is not due to lack of knowledge or lack of practice I have known many brilliant men who have quailed when called upon to write Hiralalji is more effective in discussing general issues and taking decisions about the college He is not one of those who do too much in stating their case and too little about getting things done

I learn Hiralalji will soon retire He will create a void in the institution that he built up with such loving care I don't say anybody is indispensable The younger people feel that they can do things better than their elders and I think they are right Their mind is more alert Their pace of life is more intense But men who have sacrificed worldly gains for the sake of an ideal—those who have dedicated their lives to the upbringing of the future generation—a history belongs to them and their Chapter needs to be preserved in gold

WHY DOES THE SUN SHINE ?

By Prof. A C. Banerji, *Allahabad University*

[The layman's thought freezes at the immensities of time, space and heat mentioned in this thought provoking article Thought provoking indeed to Scientists alone! To others it gives a sobering reflection that not only man and his Earth but even the Sun is subject to change and dissolution

The writer Mr A. C Banerji is Professor of Mathematics and Dean, Faculty of Science, Allahabad University]

In physics energy is measured in standard units known as ergs One erg is twice the kinetic energy of a mass of one gramme moving with a velocity of one centimetre per second. It is a very small unit Energy is measured in calories in heat measurements and in Kilowatt hours in electrotechnics. One form of energy can be transformed into other form of energy.

A flying mosquito possesses several ergs of kinetic energy. We need several billion ergs to warm a cup of tea An ordinary table lamp uses 25 billions ergs per second. One gram of good coal will liberate 300 billions ergs of energy. One calorie is the heat required to raise the temperature of one gram of water through 1°C. So one calorie is equal to $4 \cdot 19 \times 10^7$ ergs, and one killowatt-hour is equal to $3 \cdot 6 \times 10^{13}$ ergs. The sun has got an effective surface temperature of about 6000°C and at the centre of the sun the temperature may be well nigh 20 million degrees centigrade, and the pressure at the sun's centre is of the order of several million times that of the earth's atmosphere.

Apart from the explosion of the atom bomb it has not yet been possible to produce in the laboratories on the earth a temperature even equal to that on the surface of the Sun. The blue flame of a spirit stove may give us a temperature of 500°C or so. The white filament of an electric bulb may reach a temperature of 2000°C, and the furnace for smelting iron may attain a temperature of 1800°C. A "carboniferous" animal will be burnt into ashes. Ashes contain separate atoms and nucleus but under the influence of the high temperature prevailing in the interior of the Sun specially near the centre no atoms or molecules can exist as such. Each atom or molecule of our body frame will be totally disintegrated as you proceed towards the Sun's centre, and the electorns, protons and neutrons thus liberated will begin to wander at random within the interior of the Sun. The Sun and the stars are surrounded by relatively cooler thinner atmospheres. The Photosphere is the luminous surface of the Sun from which continuous radiation flows. The Sun's atmosphere consists of two layers, first layer extending to a height of a few hundred miles in the cooler reversing layer which imprints dark lines on the spectrum from the Photosphere. The reversing line emerges into Chromosphere containing luminuous light gases of helium and hydrogen. This extends to a height of several thousand miles above the photosphere. Prominences sprout out from the photosphere. The Corona is an outer envelope of very great height and exceedingly small density. It is only observable during total eclipses of the Sun.

The high compressibility of gaseous matter in the Sun brings about a rapid increase of density as we proceed towards the centre of the Sun from the surface. At the centre of the Sun the density is more than 70 times that of water. *The volume of the Sun is* 1.4×10^{33} *cubic centimetres*, so the mean density of the Sun is 1.41 times the density of water. Whereas in the reversing layer when the absorption lines of spectrum are formed, the pressure is 1/1000 of our atmospheric pressure.

The Sun has a central temperature of 2×10^{7} °K and an effective temperature of 6,000°K. From geological records we can deduce that the Sun must have been shining almost with the same brilliance for the past several millions of years. The Uranium content of terrestrial

rocks shows that the solid crust of our earth was formed about $3 5\times10^9$ years ago The Sun must have been formed a little earlier than that time From relativistic consideration the process of star formation took place not earlier than 3×10^9 years ago The annual radiation of the Sun is about $1 2\times10^{41}$ ergs If we accept its age to be about 3×10^9 years then the Sun must have already radiated about $3 6\times10^{50}$ ergs or $1 8\times10^{17}$ ergs for each gram of its mass its total mass being 2×10^{33} grams. A gram of coal when it burns away completely will supply only 3×10^{11} ergs of energy If the Sun was completely made of coal it would burn away in 5,000 years Any other type of chemical trans formation would also be inadequate to supply the solar energy We are thus led to the conclusion that the Sun must be formed of mechanical mixture of purely elementary substances

Now the contraction of a diffuse globe from an indefinitely large size to the present size of the Sun can produce energy sufficient only for the comparatively short period of twenty million years i e the total gravitational energy is only 2×10^{47} ergs To maintain the observed solar radiation the Sun s radius must decrease by 0 0003 per cent every century or by 2 Kms per century Although this change will not be detected during the life time of any man or perhaps during the whole period of human history but on the basis of geological time scale it is far too rapid It is quite possible that the contraction might have supplied the necessary energy of radiation in very early stages of solar evolution but at the present moment other powerful sources must exist in the Sun which can produce energy far in excess of what could be produced by chemical reaction or gravitational contraction

We have now to examine if there be any subatomic sources of energy to maintain solar temperature

At a temperature of 6000°C no material can exist in a state other than the gaseous and the chemical bonds of all complex compounds will be broken So even on the surface of the Sun all the substances are in a gaseous form consisting only of a mechanical mixture of pure elementary substances To understand how it is possible let us first of all understand the atomic model

Rutherford bombarded his pile of atoms which constitutes an

ordinary piece of matter with particles which are minute positively charged particles emitted by some radio active elements Very large scattering angles were measured showing that there is a strong concentration of positive charges in very centre of each atom Ultimately it was found that the atomic model consists of a number of electrons revolving in circular or elliptic orbits round a massive central nucleus of positive charges The central nucleus consists of protons and neutrons The mass of proton which has the same charge of an electron is 1839 times the mass of electron The neutron has no charge, and its mass is almost equal to that of a proton The number of elementary positive charges or proton in the nucleus of an atom is known as its atomic number If the atom is neutral i e unionized then the number of electron is equal to its atomic number All the physical and chemical properties of any given element can be characterized by its atomic number The weight of a particular element when the weight of hydrogen atom is taken as 1 008 is known as the element's atomic weight But the atomic weight of any given chemical element may be different in different cases This shows there are neutrons along with protons in atomic nuclei Ordinary chlorine is actually a mixture of two kinds of atoms each with the same number of electrons but with different nuclear masses Three quarters of the mixture consists of Chlorine with atomic weight 35 and one quarter consists of chlorine with atomic weight 37 These two types of chlorine are known as its two sisotopes Rutherford was the first Scientist to bring about transmutation of elements

The bombardment of nitrogen nuclei by helium nuclei (particles), gives us nuclei of oxygen and hydrogen We get

$$_{7}N^{14}+{}_{2}He^{4}={}_{8}O^{17}+{}_{1}H^{1}$$
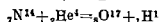
where $_{8}O^{17}$ is a heavy isotope of oxygen containing 8 protons and 9 neutrons instead of 8 protons and 8 neutrons An α particle when it has a high velocity is liable to be deflected by the positive charge of the nucleus without hitting it Neutrons being devoid of charges have much greater chance of hitting the nucleus More easily we can crack the nitrogen by bombarding it with neutron, and we get boron and helium viz ,

$$_{7}N^{14}+{}_{0}n^{1}\longrightarrow{}_{5}B^{11}+{}_{2}He^{4}$$
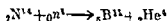
There is also synthesis of elements possible Heavy hydrogen when bombarded by protons yields the helium isotope of atomic weight 3, ${}_1H^2 + {}_1H^1 \leftarrow {}_2He^3$ + Radiation or a proton proton collision may from a heavy hydrogen nucleus consisting of a proton and a neutron

$$ {}_1H^1 + {}_1H \rightarrow {}_1H^2 + {}_1(E^+) $$
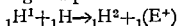
In all the nuclear reactions mentioned above the transformations consisted mainly in the ejection of some comparatively small nuclear structural parts (such as α particles protons or neutrons) Up to this point the Physicists had not been able to burst the nucleus of a heavy element into two or more approximately equal parts But in 1939 for the first time O Hahn and Lise Meitner were able to bring about the fission of a nucleus into two or more comparable parts with tremendous output of energy leading ultimately to the discovery of atom bombs

$$ {}_{92}U^{235} + {}_0n^1 \rightarrow {}_{54}Xe^{140} + {}_{38}Sr^{96} $$
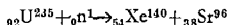
where Xe is Xenon and Sr is Strontium

According to Einstein s formula $E = mc^2$ one gram of mass after complete transformation will liberate 9×10^{20} ergs or $2\ 15 \times 10^{13}$ calories Or mass of one pound if converted into heat will be sufficient to raise twenty million tons of rock (of specific heat 0 2) by more than 2500°C and convert it into burning lava When four hydrogen nuclei have been converted into one helium nucleus, there is always loss of mass which is converted into energy

Atomic weight of helium is 4 02 and atomic weight of four hydrogen atoms is 4 032 So there is a loss of mass which is converted into energy Atomic explosion must be constantly occuring in the Sun One element is being transformed into another with tremendous liberation of energy Dr Hans Bethe, the American physicist attended the conference on Theoretical Physics at Washington in 1938 Here he learnt about the importance of nuclear reactions as a source of solar energy After the conference when he was returning home to Cornell by train he said to himself ' I must surely be able to figure it out before dinned" He took out a piece of a paper on which he began to write numerous formulae and numbers to the surprise of his fellow passengers He got the correct solution at the very moment when the first call to dinner in the dinning car was announced

Our problem is to find out the source of energy which will fulfil the following requirements viz —

(a) The source must be capable of maintaining an almost steady state in the star for at least about 10^9 years

(b) The star which is of moderate density must be in thermodynamic equilibrium at a central temperature of about 10 degrees and the source should be able to function normally in such stellar material

(c) Its mode of operation should not cause any instability that is, if there be small disturbance the star would be able to adjust itself and there should not be any abrupt change in the energy production which would make the star either collapse or explode

(d) The agency for the stellar energy must be able to account for the difference in the output of energy from giants including Variable stars, main sequence stars and "White dwarfs"

(e) The source of energy must be able to account for a large supply of hydrogen in the gaseous stars

Bethe has shown that no nuclei heavier than $_2He^4$ can be built up in ordinary stars It is believed that the heavier particles which are observed in the stars must have already existed when they were formed Bethe has suggested that the most important source of energy in ordinary stars is the reactions of Carbon and Nitrogen with the protons These reactions form a cycle in which the original nucleus is reproduced viz ,

$_6C^{12} + {_1H^1} \rightarrow {_7N^{13}} + h\nu$ (γ – ray) $\qquad$ $_7N^{14} + {_1H^1} \rightarrow {_8O^{15}} + h\nu$ (γ – ray)

$_7N^{13} \rightarrow {_6C^{13}} + E^+ +$ neutrino $\qquad$ $_8O^{15} \rightarrow {_7N^{15}} + E^+ +$ neutrino

$_6C^{13} + {_1H^1} \rightarrow {_7N^{14}} + h\nu$ (γ – ray) $\qquad$ $_7N^{15} \quad {_1H^1} \rightarrow {_6C^{12}} + {_2He^4}$
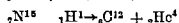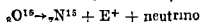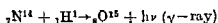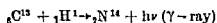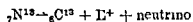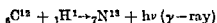
Here the four protons with two electrons are combined into α particles, and carbon and nitrogen act merely as catalysts In the Sun the complete Carbon and Nitrogen cycle takes about five million years This process yields about 100 ergs per gram per sec under "Standard stellar conditions" This corresponds to a mean rate throughout the star of about 1/30 of the above generation of energy Under stellar conditions which approximately held at the centre of the Sun, we have $P=80$, $T=2\times10$ degrees, hydrogen abundance 35 per cent This will give mean energy production of 3 3 ergs per gram per sec The Sun is

losing due to radiation 1 9 ergs per gram per sec If this be the source of production of energy in the Sun, then the Sun is hotter and will continue to do so until the whole of hydrogen is converted into helium Recently Sen and Burman took a stellar model of convective-radiative type for which they took the central temperature $T_c = 20\ 2 \times 10^6$ °K and H content = 35 per cent They found that when this model strictly obeys Bethe s law, $L = 3\ 7 \times 10^{33}$ ergs per sec $M = 2\ 12 \times 10^{33}$ grams and $R = 8 \times 10^{10}$ cms and $\rho_c = 45\ 5$ gram/cm³ Except the central density these values are fairly in agreement with the solar values In order that the Sun may keep the same temperature instead of getting hotter a lower value for the central density is necessary If, as Gamow suggests the Sun is getting hotter now then it will not strictly follow Eddington s mass luminosity law

The energy generation varies rapidly with temperature and is proportional to T^{18} in the main sequence stars Cowling has shown that the star will not be unstable for a law of generation even varying as T^{20} unless is less than 1 44 Two important conclusions can be derived from Bethe s theory of energy production viz, —

(1) Most of the energy generated is near the centre of the star

(2) The central temperature cannot change from star to star The latter confirms Eddington s results

The central temperature of red giants are considerably lower than the central temperature of the Sun and other brighter stars of the Main Sequence Capella A has a central temperature of 5×10^6 °K and the central temperature of Aurigue 16 is $1\ 2 \times 10^6$ °K

Gamow and Teller suggested the following transformations for subatomic liberation of energy

(1) ${}_1D^2 + {}_1H^1 \rightarrow {}_2He^3 + h\nu$ (γ−ray) (4) ${}_4Be^9 + {}_1H^1 \rightarrow {}_3Li^6 + {}_2He^4$

(2) ${}_3Li^6 + {}_1H^1 \rightarrow {}_2He^4 + {}_2He^3$ (5) ${}_5B^{10}\ \ {}_1H^1 \rightarrow {}_6C^{11} + h\nu$ (γ−ray)

(3) ${}_3Li^7 + {}_1H^1 \rightarrow {}_2He^4 + He^4$ (6) ${}_5B^{11} + {}_1H^1 \rightarrow {}_2He^4 + {}_2He^4 + {}_2H^4$

Long period variables receive their energy from the first type (1) of reaction as this reaction leads to the liberation of very high energy even at a comparatively low temperature of a million degrees

The reaction (2) (3), (4) and (6) are responsible for energy generation in Cepheid variables A temperature between three and seven

million degrees are necessary for such reactions The reaction of the type (5) is necessary for production of energy in short period variables in which the central temperature is slightly less than that to be found in Main Sequence stars

George Gamow has pointed out that helium is less transparent to radiation than hydrogen So the more helium is produced the more opaque the solar blanket becomes Therefore, there is greater accumulation of energy resulting in corresponding rise in temperature and increase in energy production The solar radiation is gradually increasing now, and in about 10^{10} years (ten billion years) it will have have increased a hundred fold when the whole of hydrogen will almost have been converted into helium

The surface temperature of our planet will rise above the boiling point of water, and the oceans and seas will be evaporated, and terrestrial atmosphere will be surcharged with water vapour We need not have sleepless nights now because those unpleasant days will not occur within next few million years Perhaps by that time, man will begin to dig underground air-conditioned rooms or migrate to some more remote planet where conditions will be more congenial to the existence of life When the hydrogen content in the Sun will all be exhausted, the Sun will begin to cool down and contract rapidly In about the year A D 10 005 000 000 it will have the same luminosity as at present The Sun will continue to shrink in size and diminish in luminosity, till it becomes a "White Dwarf Star" The radius of the dwarf Sun will be comparable to the radius of the Earth The matter in the interior of the Sun will be so dense that one cubic centimetre of the material in its central regions will weigh about 30 tons

It has already been mentioned that an atom is a miniature Solar System in which the electrons revolve round the positive nucleus in orbits We have talked of thermal ionization of atoms in the interior of the Sun due to extremely high temperature there There is also what is known as pressure ionization of atom if it be subject to exceedingly great pressure A pressure greater than 150 millions earth's atmospheric pressure will crush an atom destroying the electronic orbital shell, and releasing electrons from positive nuclei with the result that all these

elementary particles would begin to rush in disorder through space. This great pressure acting from all directions would squeeze together elementary particles diminishing the size of the body and increasing its density. An increase over this critical pressure will lead to a corresponding decrease in size and increase in density

Under normal pressure, or more correctly under any pressure less than that of 150 million atmospheres, the structural forces of an atom would resist any attempt to demolish its electronic shells or to squeeze it into an adjacent atom. Under the above conditions a solid or a liquid body in which the molecules are touching each other is practically incompressible The pressure at the centre of the earth is equal to that of 22 million atmospheres. This is the maximum pressure possible on earth, and so we say that, under terrestrial conditions, a solid or liquid body is practically incompressible.

The pressure at the centre of Jupiter is equal to about 150 million atmospheric pressures This is just below the critical pressure necessary for crumbling away of atoms. Thus we can say that Jupiter represents the largest size of solid or liquid matter that can exist in the Universe.

A solid or liquid sphere more massive than Jupiter will have internal atomic collapse with the result that its ultimate radius will be smaller than that of Jupiter Theoretically the more massive a body is, the smaller will be its ultimate radius. Actually a stellar body which is very massive may be divided into smaller pieces due to the increase of angular rotation on account of shrinkage, or it may explode and become a nova or supernova Our Sun, when it will become dead, will have a diameter much smaller than that of Jupiter Indeed the radius of the "dead sun" would be comparable to that of the earth It need hardly be mentioned that so long as the solid or liquid bodies are less massive than Jupiter, the size would increase in direct proportion to the mass as the atoms comprising them would be in the ordinary uncollapsed state.

A RETROSPECT

Shri Dwarka Prasad Singh

[Shri Dwarka Prasad Singh, advocate and ex chairman of the Kanpur Municipal Board has been the life long Secretary of the Managing Com mittee of the B N S D. College, Kanpur, and in this capacity has been very closely connected with the institution and its illustrious Principal Shri Hira Lal Khanna Hence nobody is more qualified to speak about the college and its working under the able guidance of Khannaji than the writer. The two have together faced many storms and enjoyed sunshine. Hence the eminent Secretary's article about the college and its Principal shall provide us an interesting reading.]

Though it should be a matter of extreme pleasure to get an opportunity of writing in honour of a man who has all along been not only a self-less co-worker in a common public cause but also a close and sincere friend for the last 22 years, it did give me a certain painful feeling when I was asked to write something about Principal Hiralal Khanna on the occasion of his retirement from the College Painful not because I was reminded of anything big or small, open or secret, which could be said against him, painful—not because of any doubt in the future prosperity of the institution which has been placed in the capable hands of Shri Satguru Sharan Avasthi, the succeeding Principal, but all the same painful, for who would like to part with an associate like him, the man, who, truly speaking, has made the Institution what it is now?

It is no use wasting words in his praise, for who does not know his achievements and the new schools he has founded for the education of our children 'The B N S D Inter College and the thousands of students studying or having studied there from year to year will repeat the tale for

times to come but I do wish to record here that I cannot forget the days when, in 1927, he took over charge of a small institution with not very good finances, an incommodious building and only 327 students reading there Today, with his personal interest in every detail of the management finances, buildings and attention to individual students he is leaving us a first class Institution with a good building, 2,600 students on the rolls with ample provision for their curricular and extra curricular activities and with good finances so necessary to run an institution on sound lines

While talking of his personal interest in the well being of the Institution I am reminded of his persistent visits to Shrimati Bishambhar Nath to beg for the land adjoining the College and so necessary for it and I clearly remember the day when with badly depleted funds we were at our wit s end to run the college further and then we saw Principal Khanna signing jointly with me a personal bond in favour of a Bank to procure a large amount of money which was later paid back in instalments out of the donations secured for the College by Principal Khanna For these donations he used to go to the extent of attending functions in the City on which occasions people are inclined to be charitable There are a number of such instances which could be added here I sometimes wonder, are there such public-spirited gentlemen who could go to such an extent and Principal Khanna is before us

It is a matter of gratification that he is not severing his connection entirely with the College for he has consented and promised to keep up his interest in the institution and to extend to it his patronage and it is expected that with the additional youthful enthusiasm and zeal of his successor, the College will not only maintain the same standard of efficiency but will also bring more and better prospects to our boys

Principal Khanna's example is to be emulated and I wish there had been more educationists of his views and calibre, for today free India needs nothing more than education for the growing generation to bring it an all round prosperity

I bid him farewell and god speed and pray that his spirit for untiring work be fully imbibed by our youngmen

AN APPRECIATION

SHRI N R DHAR

[Shri N. R Dhar is an eminent educationist of this Province. He has had opportunities of watching Khannaji's activities at close quarters as he was the *Deputy Director of Education in our Province* His remarks and views shall be read with interest and advantage as they throw a flood of light on the achievements of the illustrious man]

I have great pleasure in stating that my friend and colleague Shri Hiralal Khanna, M Sc , has given a great impetus to education in Kanpur by his supreme efforts and personal care of his pupils When he was professor of mathematics in the D A.V. College, Kanpur, he impressed his students by his clear exposition of the principles involved in mathematics.

Later on he organised and started one of the best Intermediate colleges in India, namely Bishambhar Nath Sanatan Dharm Intermediate College In this institution he gave his best and made it a great success The students were given personal attention and care and Shri Hiralal's students were most successful in examinations Shri Hiralal will always be remembered in the province as an able and successful principal. Kanpur owes him a great debt.

On the eve of his retirement, I wish him good health and many years of active service to our nation.

SEX, ITS ORIGIN AND EVOLUTION, AND BEARING ON HUMAN AFFAIRS

PRO NAND KUMAR TEWARI, M Sc (B H U)

[The author gives the importance of the knowledge and proper understanding of Sex The author emphasizes the fact that there is nothing innately vile or tainted in the nature of the subject He condemns the ostrich like ignorance about the subject According to the author far from being a topic which human society, in its callous indifference and utter ignorance has labelled as indecent and relegated it to a position of mental untouchability it deserves our most serious attention and careful examination in order that we may have a right understanding of life and its various problems so that we may be able to correctly discharge our obligations not only towards ourselves and the human race but also towards the destiny of the world]

A correct knowledge and proper understanding of the subject are necessary not only from the purely academic aspect but also—and even more—on account of its many and varied implications as well complex repercussions on the domestic and social relations of the human beings and on their national and political affairs

It is however, not without a certain amount of hesitancy that I propose to present certain aspects of the phenomenon Not that there is anything innately vile or tainted in the nature of the subject itself but because by a curious process of inversion of values an artificial atmosphere of morality, shame and prejudice has been created and is being fostered under the garb of a false sense of prudery and decency, in ignorance no doubt, which has dethroned this most vital and sublime attribute of the living things from its former position of the greatest sanctity into one of the utmost defilement The result is that any reference to sex is today, tabooed in civilized society Indeed, it is considered a mark of ill breeding to mention it even casually much less to discuss it

And yet may I ask, is this ostrich like ignorance desirable, or our attitude justified? Is it in fact not an irony of fate that the very act which not only brought all of us into being but made possible the birth of the greatest personalities in the world and what is more is a faculty in which Man comes nearest to his Creator and fulfills His commands,

should be looked down upon and be considered not even fit as a topic for casual conversation—to say nothing of serious study? In order, therefore, that it be possible to form a just and proper estimate of the significance underlying sex, and to answer these questions in the only way in which they should be answered, certain general considerations bearing on the phenomenon of sex and its implications will be first mentioned These will, it is hoped, dispel the mist of accumulated prejudices and remove the cobwebs of ignorant cynicism, which so effectively obscure the truth and render it impossible to obtain clearer view and a proper perspective and to assess the facts at their proper worth

If we analyse the pageant of life in all its varied and multifarious aspects, we find that Sex and Hunger are the two most fundamental needs of *all* living things They are the two most overpowering impulses which sway the mightiest as well as the lowliest, and give point and direction, to all their activities By slightly varying the metaphor, we might as well say that they represent the foci which define the orbit of life and guide it through all the phases of its journey

A closer analysis, however, soon makes it clear that the function of reproduction is ultimately the *only* fundamental activity—as a matter of fact, the *sine qua non* of all existence which involves all the others These latter are merely the preparations for, and culminate in it Reproduction, indeed, underlying which is the phenomenon of sex, is the 'Pole star' of life Round this all the feverish activities, love and hate, likes and dislikes, expenditions and wars, and all the bustle and din of life, revolve in a neverending cycle Some of these are merely the preparatory stages for this all supreme cosummation, while others are its bye products As some one has beautifully put it "throughout the whole gamut of nature, we find that her chief preoccupation her chief incentive to action, is the handing on the torch of life"

It is not difficult to understand why this should be so Life, having once been ushered into existence, has to be maintained and perpetuated For this purpose every living thing, from the mere speck of protoplasm to an elephant, is endowed with the capacity of begetting others like itself, before it is overtaken by the inevitable And to secure this end

every possible care is taken, and all possible resources mobilised by Nature In this connection the following forceful words of Sir Michael Foster—a well known scientist and one of the most thoughtful writers—may be here quoted with advantage —

"When the animal kingdom (and I may add here the plant kingdom also) is surveyed from a broad stand point, it becomes obvious that the ovum, or its correlative the spermatozoon is the goal of an individual existence that life is a cycle beginning in an ovum and coming round to the ovum again The greater part of the actions which, looking from a near point of view at the higher animals alone, we are apt to consider as eminently the purpose for which animals come into existence, when viewed from the distant outlook whence the whole living world is surveyed, fade away into the likeness of the mere by play of ovum bearing organisms The animal body (and the plant body also) is in reality a mere vehicle for ova and after the life of the parent has become potentially renewed in the offspring, the body remains as a cast-off envelope whose future is but to die "

The body is thus merely the *trustee* of the reproductive organs and a medium through which sex can function and manifest itself Its central function is, therefore to administer that trust properly how soever multifarious and apparently unrelated the activities of the individual may at first sight seem Considered in this light the individuals are mere accidents, however important they might appear They exist because sex exists

Looked at in this light the phenomenon of reproduction assumes an importance all its own There was a time—and indications are not wanting even now—when under a false sense of decency, any discourse on sex matters on which the very existence of the world depends used to be and even now is soometimes shirked and banned almost with the feeling of sacrilege But we must remember that ' there is no religion greater than truth ' and if in any exposition of, and search after truth, we may have to run counter to the established but unwarranted notions of conventional decency our clear duty is to override them in the interests of the advancement of knowledge and the good of mankind

Far from being a topic therefore which human society, in its

callous indifference and utter ignorance has labelled as indecent and relegated it to a position of mental untouchability, it deserves our most serious attention and careful examination in order that we may have a right understanding of life and its various problems, and so that we may be able to correctly discharge our obligations not only towards ourselves and the human race but also towards the destiny of the world. For like a double edged weapon sex is capable both of doing immense good if rightly handled or immense harm when misused. Like any other organs and their functions nay even more than these the reproductive organs and their physiology are as much parts of our existence and creation of God. Are we then justified in treating them as of a different category? But while other organs and functions have received sufficient attention even from the lay-men it is merely the warped intellect of the civilised man that has given to the reproductive mechanism such an undesirable twist. For we are told that among the primitive men who have not yet come under the influence of civilisation the sex act is performed without any secrecy, like any other natural act. Sheep like decade after decade, however, human society has not only silently acquiesced in this grievous wrong, but has itself, passively as well as actively, conspired to perpetuate and aggravate it. It really shows that we have departed so far from Nature that natural things seem to us shameful. That is, indeed, a fault in us a lacking in sincerity, but a fault on which many pride themselves as a sign of morality. It is high time that all such antiquated ideas be set aside. Let us squarely face the facts and rehabilitate the subject to its rightful position, worthy both of our careful regard and attention.

It is with this view that I desire to present the subject of the "Origin and Evolution of Sex." I will primarily confine my attention to the plant kingdom making only such relevant references to the animal kingdom as may be necessary, for illustrating certain points or for driving home certain facts. It must, however be stressed here that the manifestations of sex in all its phases have run a parallel course in both the kingdoms.

To the lay mind sex and reproduction are almost synonymous terms and naturally appear to be inextricably bound together. This is clear

ly, because our ideas of sex have been mostly determined with reference to the life-histories of higher animals in which reproduction is brought about *only* through the medium of sex. Historically, however, sex was a very late innovation. Taking, for the sake of reference, the somewhat hypothetical starting point so far as its actual determination is concerned, of the origin of life, it must have easily taken epochs, before reproduction by the sexual method, now prevalent, was even foreshadowed. Prior to this, new generations of organisms had repeatedly resulted, as most of them do even now, through the operation of, what may be termed, non-sexual methods. From this, and from the extent of prevalence of non-sexual reproduction in some of the animals and all plants even now, it is evident that sex is *not* an essential feature of reproduction. It appeared comparatively late on the stage of life, and then, too, surprising though it may appear, not to secure reproduction, which was already otherwise ensured, but something else, which the other method failed to accomplish Indeed, the initial result of reproduction by sexual method is not only to hold increase temporarily in abeyance, but even to reduce the number of the individuals Why, therefore, it has been favoured and has come to occupy such a dominant position in the life-histories of higher animals and plants, is a question which shall be examined more closely later on.

The phenomenon of sex has thus had an origin and a history To understand its nature and to interpret its various implications, we must study it, like any other question, in its complete historical setting It is only then that it will be possible to understand its full significance, and to follow it through its many and varied ramifications, both in the lives of the individual organisms, as well as in the evolution of the entire organic world

The question now arises: how did the sexual method of reproduction, in other words 'sex,' originate? Did it arise *de novo* i.e., as an altogether new departure, detached from every thing that had gone before, or is it the result of the modification of something that preceded it? In point of time, this leads us back to a very distant past,—in fact almost to the very beginning of the organic evolution. Obviously, it would thus be, from its very nature, a question of insuperable difficulty

—almost impossible to understand and answer—were it not for the existence of a number of organisms low in the scale of evolution, which furnish us the clues for reconstructing, in its entirety, the chain of events In fact, a study of their life histories reveals that every possible gradation between the asexual and sexual methods of reproduction exists, and that therefore, reproduction through the mediation of sex, arose as a gradual modification of the preceding asexual mode In order, therefore to understand correctly the nature of the sexual reproduction and sex, and follow completely their evolutionary sequence and understand their whole significance, we must become fully acquainted with the historically older process first

In the very simplest organisms consisting of one cell, reproduction consists in the division of the cell into two similar halves, which later grow up to the size of the parent This happens in response to the insistent demand for constant change which the very act of living imposes on all animate things One manifestation of this change and the only one in the simplest organisms, is growth under favourable conditions of nutrition Under this insistence, these organisms grow in size But they cannot grow *indefinitely* Sooner or later growth ceases because their growing size is unable to obtain the proportionately larger amount of nourishment required due to the operation of a simple universal law, according to which, when a thing grows bigger its bulk or volume increases as the cube, while its surface only as the square, of the radial increase Consequently, the surface through which food is absorbed by the organism, grows proportionately more slowly than the volume Sufficient food, therefore, cannot be taken in to maintain the growth of the cell, and the life of the organism is endangered Life thus finds itself checkmated and face to face with a deadlock It cannot grow because it is faced with a deficit, it cannot stand and stagnate because this is contrary it to its very nature and purpose Nature thus finds herself in imminent danger of defeat Defeat, she however, never accepts Every set back she turns to good advantage If one method does not succeed, she tries another In the present case she successfully makes use of altogether different tactics The individual now circumvents the menace, paradoxical though it may sound, by becom-

ing *smaller* again It does so by dividing into two cells of half the original size This simple device results in restoring the original *workable ratio* between surface and volume Thus, by a clever stroke of diplomacy, more than the proverbial two birds are killed with one stone the cravings of the dynamic and highly mutable life are satisfied, growth is resumed and, in the bargain, reproduction is secured

In the lower organisms then, growth and reproduction are synonymous. They mean one and the same thing

In the next type of asexual reproduction, which is generally characteristic of the multicellular forms growth and reproduction tend to be different The division of the original cell, which, in the case cited above, resulted in the birth of a new individual, does not produce that result now Now, the products remain united and cell division merely results in *increasing the number of cells* constituting the individual, *instead of producing a new individual* In other words, it brings about the *growth of the individual* For the purpose of reproduction in such organisms, a slightly modified form of the previous cell division takes place In the amicellular organisms the entire cell, with its contents, cell, wall and all, are divided into two In the multicellular ones the cell *wall takes no part* in the process Only the contents are involved They escape from the investing cell wall either entire or after breaking up into a larger or small number of units called the *spores* A new individual (or individuals) arises by cell division and growth of these spores

In the case just described, *any* constituent cell can produce the reproductive cells All cells are alike both in form as well as in function But evolution to be profitable requires a division of labour among the constituent parts This makes both for economy as well as efficiency because better results can be achieved with less ways and means, and sooner, if the individuals have got to discharge only a few specified functions, than when each and every member of a society is called upon to discharge all This is a mark of what are called, the civilised human societies, and it is a feature seen universally in the operation of the evolutionary laws Under the compelling influence of this we find, that in the later stages of evolution, the contents of some cells lose entirely their power of division and formation of spores and concern

themselves exclusively with the function of nutrition and growth of the individual, while those of the others produce spores only In other words, some cells become entirely reproductive and others remain entirely vegetative, in order, thereby, to do better service We shall see that this is a universal characteristic of all higher forms of life and has far reaching consequences It is a kind of regeneration where one cell regenerates all other parts of the adult This may be said to be the last stage of evolution of asexual reproduction All the other manifold varieties of this mode of reproduction, found in the animals and plants, but more particularly in the latter are easily derivable from this We must now turn to the evolution of sex

Sex, as we understand it, involves the *cooperation* of two individuals in the production of a third This is the basic feature, all the other manifold manifestations that have come to be associated with sex are later and secondary developments in response to demands of various kinds If, therefore, we can discover the reason of this duality, and can determine its origin, we shall have gone to the very root of the origin of sex In this connection, the incidents associated with the reproduction of certain simpler plants are of profound significance Preeminent among these is an alga called *Ulothrix* It is a filament composed of a single row of cells, growing in water attached by one end to stones or other solid objects All of its cells during *favourable conditions* can divide and grow and add to the length of the filament Sometimes, however, (when conditions become *less favourable*) the *contents* of some of the cells begin to divide and a few or many spores are produced, depending on the number of times the contents have divided Indeed, the number might vary between 1 and 64 in different cells of the same filament Since all the cells of the plant are equal and similar, this means that there is great variation in the size of the resulting spores—some are small, others big They are provided with swimming appendages in the form of whip like out growths (cilia) with which they can actively move about in the water in which they are discharged Their number, however, varies in the individual spores The biggest have four and the smallest two, while those of the intermediate size develop either two or four

This difference is, for our present discussion, minor, though it certainly reflects some deep-seated peculiarity. For us here, the difference in their *behaviour* is much more important as giving an indication of the origin of fusion which is the fundamental characteristic of sexual reproduction. In this connection, it is interesting to note that the largest zoospores, after swimming vigorously for some time (a device for dispersal), gradually become more and more sluggish. Finally, they come to rest and, fixing themselves with one end, *soon* give rise to a filament *Ulothrix*. Those of the intermediate size also germinate, but somewhat *more slowly*, indicating that sufficient food reserve was not available to carry out *rapid and vigorous growth*. Of the smallest ones, only *some can occasionally germinate*, and then, too, produce only very *small and dwarf*, *Ulothrix* plants. In them, apparently, there is something *lacking*; perhaps the amount of reserve food is very limited, and this prevents them from producing normal *individuals*.

But the remarkable thing is that this very weakness is turned to good account by Nature, and becomes ultimately one of the strongest and most valuable assets, which has been responsible for the unfolding of the of the entire drama of life in its various manifestations, and, further, is full of indefinite potentiality for the future. For although *without fusion* these zoospores *perish*, in their union they find strength. When, during their excursions, they come within the sphere of mutual attraction they appear to be irresistibly drawn towards each other and finally they meet. Thereafter, they catch hold of each other by means of their cilia and begin to spin, as if dancing in excitement During these movements, they gradually come closer and closer together, their motion becomes more and more sluggish, and, finally they fuse to form a single cell. This *dual* structure, as if replenished and rejuvinated, is then able to germinate *vigorously*, and produces a *normal* individual

Here, then, we see Sex in its *simplest* manifestation. Clearly, it arose as a *modification* of the asexual reproduction, due to the lack of *something* in the fusing individuals, which inhibited their further independent development, as individuals, and necessitated their fusion, in order, apparently, to replenish that deficiency For the moment, we can only regard it as an expression of the deficiency of food-store due

to the extremely attenuated size of the individuals, the deficiency being restored on fusion This phenomenon has been called "Autophagy" i e, *self-hunger* It would not be at all inappropriate to call it also *Self hunger*. Later on, this phenomenon becomes the most potent of all forces It is in virtue of it that the fusing cells or gametes' (marrying cells), as they are called are impelled to move towards each other just as a hungry organism will seek out its food The underlying cause, which impels the gametes to rush towards each other, has been demonstrated to be of a chemical nature In some cases the actual substance concerned has been identified In the gametes therefore, side by side with their diminished size there appears a *physiological difference*, manifestly of a chemical nature, which results in their mutual attraction and fusion Here, then, is the beginning of that mighty force called Love And it is this deficiency and physiological difference that underlie the origin of sex and of Love As soon as the exact nature of these has been determined, we should have discovered the reason of Sex-differentiation

The fusion product is called the Zygote (Yoked), because it has been formed by the union of two individuals It is obvious that it is a *new* individual, different from either or both the original individuals, in origin as well as in potentiality, in as much as it combines in itself the peculiarities of both Since it was formed at the time of waning activity of the plant and therefore, under unfavourable conditions of the surroundings, it clothes itself by a cell wall and undergoes a longer or shorter period of rest It resumes its activity, however, again on the approach of favourable conditions From this it is clear that the zygote is primarily meant for protection and that the immediate result of the initiation of sex was not an increase of individuals, but protection Incidentally, this fusion is also utilised for bringing about the *reorganisation* of the new cell before it can manifest activity Although originating, thus, in response to such a simple stimulus as the effect of unfavourable environment, the results of sex origin, involving as they do the *amalgamation* of contributions from two different sources, proved of tremendous value in speeding up evolution and brought into existence the whole plant kingdom

We thus see that the fundamental features of sex, namely the *co-operation of two individuals* in the production of an offspring, had its beginnings in the simple fact of the *impoverished* nature of the individuals, which required to fuse together in order to replenish themselves and to become rejuvenated But incidentally, and, as it were, in the bargain, it secured conditions which were so pregnant with possibilities for the future that the original intention seems to have been soon abandoned and relegated to the background, and the entire force of evolution came to be concentrated on the elaboration and perfection of what was, in the beginning, only an insignificant, though inevitable accident In fact, it led to the unfolding of the entire world of beauty and splendour, and to all those ingenious devices and psychological developments, which, on the one hand, enable individuals to see out their mates to woo and win them, and on the other, to fight and vanquish their rivals in the battles royal, which are constantly being waged for the possession of the coveted prize All the later phases of the evolution of sex have, for their chief aim, expedition and economy in the production of the offspring, their protection and nursing, each with its own variety of accompaniments

The very first step to be taken in this direction was the *differentiation and specialization of the mating cells* or gametes making for division of labour, and this happened in response to the incessant demand for efficiency which is the law of nature From what has been said above, it is clear that the new individual, which results from the union of sex cells, is produced at the time of the waning activity of the parent or parents which sooner or later *perish* The zygote thus is thrown solely *on its own resources or on the provision made for it by the parents* Of its own resources the new offspring has nil Provision has, therefore, to be made for it before or at the time of its birth This is done when the two gametes fuse, thereby increasing the bulk and, *ipso facto*, the store of food supply of the resulting individual The bigger, therefore the size of the mating cells the better equipped will the offspring be for getting a good start in life But increasing size creates problems which tend to defeat the very purpose of sex It leads for instance, to greater sluggishness in the motility of the gametes and, thereby, to de-

lay in their meeting and coalescence, and if some method were not found to circumvent the crisis, the result might be disastrous For instance, the gametes might become exhausted before they got a chance of meeting each other This is averted by a very simple, and at the same time ingenious and effective device, resulting in a sort of compromise The size of one partner is increased and of the other diminished the bigger individual, naturally, becomes more sluggish It has so to say sacrificed its motility in order to make better provision for the new offspring The other gamete by sacrificing its bulk, gains in activity it is able to move about more quickly in search of its mate The loss of motility of one of the gametes is however immaterial because it is able to influence the movements of its mate by secreting a substance which attracts the latter In this way the *net* result remains with the plant, for, without involving any *real* sacrifice, a tremendous advantage is given to the offspring, in making the initial start, which all but wrecks many a promiseful traveller on the life's adventurous journey

The fusing gametes are now *clearly differentiated, in form as well as in behaviour* The bigger, more passive gamete, which contains a large store of food material, is called the female, and is known as ovum or egg The smaller, more active and virile one, is the male, and is known as the sperm In extreme cases, the sperm may be several hundred times smaller than the ovum Its only business is to seek out its mate and to fertilise it This done it has found the fulfilment of its destiny The ovum, on the other hand, is assigned the additional duty of protecting and nourishing the embryo It is, therefore, that she brings with her a rich dowery Looked at from this point of view, the practice of the human bride bringing with her dowery in marriage, finds ample justification in biology[†] In this connection, it is worthy of note, that the increase or decrease in the size of the gametes, is brought about by varying the mass of the protoplasm only the size of the nucleus remaining unaffected This is because the nucleus contains the hereditary material which *must not be* disturbed

The facts, outlined above, represent the principal stages in the evolution of sex from the simple beginnings with which we started To summarise, the culminating point of the process is the differentiation of

the pairing gametes into a large ovum which is passive and a small active sperm This is the *central* point All the other peculiarities of the individuals are *secondary* and are merely expressions of the various devices, either for bringing the gametes into close juxtaposition for the purpose of fertilisation, or for protecting and nourishing the embryo in its initial stages They have been evoked in response to the variety of conditions, under which the various animals and plants, exhibiting sex, came into existence The guiding principle however has throughout been the same tendency to secure division of labour, which we have already seen playing such an important role in evolution The central points of this tendency are (1) Economy and (2) Efficiency

The very first indication of the operation of the above mentioned factors is to be seen in the differentiation of the sex organs i e the organs concerned in the production of the gametes In the beginning, as we have already seen, *any* cell of the plant could function as a vegetative as well as a reproductive cell The next stage is represented by those cases in which the functions concerned exclusively with the life of the individual (vegetative functions) and those concerned with the continuance of the race, (reproductive functions) become *separated and allotted to different cells* These cells called the ' Gametangia ' became distinguishable from the vegetative cells of the body At first however, gametangia are alike and produce gametes which are similar in form But as the gametes begin to be differentiated into a bigger ovum and a smaller sperm corresponding changes became necessary in the gametangia producing them At first the difference relates only to the *behaviour* of these cells In producing the eggs the contents of some divide fewer times than of those which produce the sperms But as the differentiation of the gametes becomes emphasised the gametangia also become transformed in *appearance* Not only this but their information is also *relegated to a later* stage in life history indicating that the first stage, preceding the production of gametes, is a necessary preparation for the succeeding reproductive phase which requires much material and energy In effect the female gametangia which are concerned with the formation of massive eggs and, in some cases, even with the nourish

ment of the fertilized egg at a later stage become much bigger and the male gametangia, which produce the minute sperms are much reduced in size This is well-illustrated by the condition in *Oedogonium* and *Vaucheria*, among others And it is also worthy of note that when the egg becomes *entirely* passive it is mostly produced *singly* in the cell and is retained on the parent plant awaiting fertilisation by the sperm *in situ* This is the maximum expression of the differentiation of the sex organs in the primitive plants (Algae) whose whole life is passed in water Beyond slight variation in the details of form and position in these plants no further change is introduced and it would appear, therefore that they yield the maximum amount of efficiency attainable in a watery medium

The next step in the evolution of the sex organs is shown by the primitive land plants e g , the Liverworts and Mosses The requirements of life in water and on land are entirely different Among other things, life on land is constantly exposed to the danger of desiccation and since protoplasm in a healthy, active condition consists of nearly 90 per cent of water, the most incessant problem requiring solution in organisms, leading a terrestrial life, is a suitable device for preventing excessive loss of water, in addition to arrangements for obtaining adequate supplies All plants and all exposed parts of plants have suitably reacted to this requirement by producing a water tight layer In response to this need, the sex organs of these plants, which are exposed structures, have become *jacketted* They, therefore, present a very complex appearance due to the development of *secondary* structures in response to aerial conditions In their essential features they are however, the same The female organ the archegonium still produces the passive egg and the antheridium, the motile sperms, and the fusion of the two gametes is still brought about through the medium of water

The story of evolution of the sex organs of the higher plants—the ferns, the Gymnosperms and the Angiosperms—is merely an extension and amplification of the protective and nutritive devices initiated in response to aerial conditions As the plants become more and more adapted to dry land conditions, and become correspondingly more and

Male	*Female*
Sperm producer	Egg producer
With less expensive reproduction	With much more expensive reproduction
More intense metabolism	Less intense metabolism
Relatively more katabolic	Relatively more anabolic
Often with shorter life	Often with longer life
Often smaller	Often larger
Often more brilliantly coloured and more decorative	Often quieter in colour and plainer in decoration
Rising to more intense outbursts of energy	Capable of more patient endurance
More impetuous and experimental	More persistent and conservative
More divergent from the youthful type	Nearer the youthful type
Often more variable	Often less variable
Making more of sex gratification	Making more of the family
More combative	Consolidating the family
Blood has a higher specific gravity with more red blood corpuscles and more haemo globin	Blood has lower specific gravity, fewer red blood corpuscles and less haemoglobin but greater lutein and fat
More muscular force	Less muscular force
Has 'Y' chromosome in cells	Has no 'Y' chromosome in cells

The difference between the male and the female are, therefore, not only superficial, but they are *congenital and deep-seated*, and cannot be eradicated or levelled up by any amount of training or nurture As Havelock Ellis has so characteristically put it, "A man is a man to his very thumbs and a woman is a woman down to her little toes" Experiments, however, conducted with a view to testing the possibility of effecting a reversal of sex show, that *to a certain extent* this can be effected by grafting sex organs of the opposite sex into the body of an individual whose own sex organs have been previously removed by operation But such individuals, though they might flourish off their newly acquired

superficialities, are useless for reproductive purposes, as they lack the equipment necessary for reproduction. The cases of natural reversal of sex, often reported, are due to entirely different causes and cannot be gone into here

From the above it will be seen that the highest expression of sex is the differentiation of the male and the female individuals, with *entirely different* characteristics and potentialities

In the foregoing survey, necessarily cursory and rapid, an attempt has been made to place the salient points of the origin and evolution of the sex-phenomenon in plants It would have been noticed, that for the purpose of reproduction, the appearance of sex was not at all necessary, since reproduction could be carried on even in the absence of sex. In the organisms in which asexual and sexual methods occur together, reproduction and sex are, indeed, contrasted (antithetic) processes. For if the purpose of reproduction is, as it surely appears to be, secure a *rapid* increase of the species, sex did not secure it. In fact, speaking in relative terms, it positively reduces, as the result of *obligatory* fusion, the number of individuals to begin with, and is, at all events, a much slower process than reproduction by asexual methods. For example, in a particular case it was found, that while a-pair of individuals was engaged in the sex-act, a single individual of the same species had, by simple division, produced from *forty thousand to fifty thousand* descendents! Furthermore, reproduction by asexual method is most rapid when the individuals are vigorous and the external conditions favourable, whereas the sexual method is resorted to during the period of waning activity and under the shadow of impending senility. Sex, therefore, in its origin, was clearly a device for *tiding over unfavourable circumstances*, and, even when it existed the *multiplication* of the individuals was still brought about by the asexual method. It was only gradually that it gained predominance, until now it has become all-pervasive, suppressing altogether, either the original method of reproduction, or where it still exists, relegating it to a very subordinate position.

It is now a fair question to ask Why did a process which started not only with an enormous handicap, but was even highly prejudi-

tell us that, from the cradle to the grave, the entire life of the individuals, with all its associated features is simply the outcome of the expression, displacement and sublimation, of sex One is tempted indeed to go further and say that the whole fabric, and the very existence of the entire universe is sexual *in essence* Lest this should appear a preposterous statement, one has only to think of the structure of the matter in terms of atoms, electrons and protons and the way they are arranged and combined We are told, for example, that the electrons carry a negative charge and the protons a positive, and that in virtue of this difference protons and electrons are impelled to *rush* towards each other and, uniting, from a *balanced* system By whatever name the phenomenon be designated, it has all the characteristics of Sex

The question can now be legitimately asked Why might not the organic world have been run on sexless lines? From what has been said before, much can be inferred about a world devoid of sex The chief facts may, however, be profitably summarised here If sex did not exist it is hard to conceive of this world except as a monotonous conglomeration of undifferentiated, or at least little differentiated life, bereft of all its variety, without beauty of form and colour without plants and animals, and certainly without sentient beings, with all that their life and activities imply, a dead level, in fact of very lowly automatons, with their entire existence telescoped into a series of rapid succession of growth and fission A gloomy picture this indeed! And yet, if we are able to understand and interpret the facts aright, an essentially true picture all the same

Before concluding, attention may be invited to the bearing that the facts presented above have on some of men's domestic, social and national problems which are clamouring loudly for solution As they stand they are causing much misery which is avoidable, and by the misunderstandings and friction they cause are eating into the very vitals of the human society This is because they have been torn apart from their proper biological context and are being treated as *isolated* phenomena, peculiar to the conditions of the human society, and, therefore, capable of independent solution without reference to their previous history

This is an entire misreading of the facts of biological science and any treatment based on this wrong diagnosis will be fruitless For we know, or should know, that Man, although styling himself as the Lord of Creation, is after all the product of the same evolutionary process as has been operative in producing other living things, and, therefore, subject to the same evolutionary laws Every phase of his life, therefore, no less than every bit of his bodily and mental trait, is a natural development of, and traceable to, the events that preceded his appearance. It can, therefore, be only properly studied and understood by reference to the steps which have moulded it Keeping these facts in view let us examine some of the questions that are agitating men's minds at the present time. Reference to two of these, will here be made..

The first is the relation of the sexes in its domestic, social and national aspects. In this connection, one is pained to note that there is a good deal of friction, heat and fire in connection with what is euphimistically, though unjustly and ignorantly, designated by various catch-phrases, such as, the 'Antagonisms of Sexes,' 'Equality of Sexes' and 'Rights of Women.' Each of these alarmist or propagandist phrases implies a confusion of thought and betrays a woeful lack of knowledge as well as of imagination and understanding. If it has been possible to present the facts relating to sex properly it would have seen that there is no room for *antagonism* or *equality* between men and women, though there is some excuse for the use of the word 'Rights' if understood in its correct meaning. The differentiation of the male and the female, it would have been seen, was initiated as an effort to secure better conditions for the birth and development of the future offspring. Accordingly the man and the woman can discharge their duties properly only by leading united lives and working in unision and not in antagonism Throughout Nature, whether as gametes or as individuals, we have seen, the male and the female find their *fulfilment* by working in the closest cooperation and by supplementing each others' efforts. Individually, as gametes, they *literally die* unless they unite. Even as individuals, otherwise, organisms perish also, though in a different sense, unless they lead conjugal lives In the normally constituted human societies the male and the female are *mates* in more senses than one.

Indeed the Man and the Woman have been most aptly likened to the two wheels of the chariot of life which takes individuals through life's often perilous journey Without either, smooth journey to safety is *not* possible though one might drag or jolt along But certain individuals of the new-fangled school of thought would feign upset this universal and primeval order of things, albeit in the honest belief that, thereby, they are rendering service to humanity and the world It will be improper to apportion responsibility and blame to the members of either sex It would not be unnatural if women should have started the slogan, but it is also well known that many otherwise good intentioned men, chivalrously, though under a mistaken notion of service have partnered them in a cause which is biologically unsound There is absolutely no justification for the term 'Antagonism of Sexes,' because the facts outlined above give it a lie One could, however sympathise with the idea implied in the expression " Equality of Sexes, ' if it implied *equal opportunities, along their own lines* for the development and expression of the potentialities of the two sexes But one is afraid that the champions of this cause mean much more than this If one understands aright, it is, indeed held that the positions of Man and Woman are mutually *interchangeable* and that they can replace each other in any walk of life and in any capacity It is even boastfully asserted that this has been actually demonstrated in many instances Even should this be true, one swallow, does not make summer And if a handful of men and women—perhaps more of the latter than of the former—are frittering away their energies by engaging themselves in activities *alien to their very nature* that is hardly an argument that can be made universally applicable or be cause for jubilation In the oft-repeated words they are the exceptions that prove the rule And even then one cannot draw up a *balance sheet* of such accounts in a few years or even in a few generations The idea is indeed ridiculous if not ludicrous To take a common place example one cannot make the arms do the work of legs except only occasionally If however one ever happens to succeed in effecting this magic one would have made the things *topsy turvy* The spectacle of the human beings walking with their heads downwards on the road to extinction is surely not a happy reflection The analogy

The other question that requires scrutiny and examination in the light of these facts is that which is concerned with regulating the birth of children. The champions of Birth Control preach ostensibly on purely humanitarian grounds, that it is morally indefensible to bring forth a large number of offspring. They, therefore advocate the use of devices which, while allowing sex-gratification, enable one to determine when and how many children one should have. On the face of it the argument appears unassailable. Nothing seems simpler and more self evident. But we must remember that it is not purely a question of self-determination. In the delicately devised scheme of Nature, Man does not occupy an isolated position. His actions have impacts on the surroundings as much as, nay even more than, his own actions are influenced by the latter. The least bit, therefore, that he does even a small breath that he takes sets into motion a relay of forces, which have many-sided and far-reaching repercussions. As Francis Thompson says

> All things by immortal power
> Near or far
> Hiddenly,
> To each other linked are
> Thou canst not stir a flower
> Without troubling of a star

For the present, however, I may not follow up these ramifications. I shall content myself here by only indicating the adverse effects that this pernicious practice has and threatens to have on man's own evolutionary history.

In the first place such a restriction supposing wise discretion were to be always exercised (itself a very doubtful proposition) is sure to *retard the evolutionary process*. For evolution can only work satisfactorily, and at a rapid pace by *selecting from a large number of variations*. This is possible only when a large number of offspring are born and the successive generations follow each other *rapidly*. By restricting the number of offspring the advocates of birth control methods are applying an *artificial brake* to the wheels of evolutionary progress. The result may be illustrated by an ordinary example. If there be a number of vacancies and there are only as many, or a few

more, candidates, even the *duffers* will get in, and the work will be done neither quickly nor efficiently The larger the number of the candidates the greater is the chance of finding a person fit for the work

Again, such a restriction would *adversely affect the chance of birth of geniuses and great men* For the facts of heredity teach us that the hereditary constitution of an individual is more of an accident than anything else The *right combination of characters* that will produce a genius or a great man may occur once in centuries By restricting the births, it is obvious, the appearance of such personalities would be rendered extremely *remote* \

But it may as well be asked Will not an unrestricted birth rate multiply the undesirable types? Perhaps it will In the first place, however, it will be *proportionately* less Secondly, it is necessary for evil to exist in order that good may flourish Just as there cannot be any motion without friction, nor strong and well shaped muscles without the strain of exercise, in the same way good can only manifest itself where evel exists There will be no use and no room for good and generous men if there be no evil and poverty to fight against The poet also says

> O life! without thy chequered scene
> Of Right and Wrong of weal and woe,
> Success and Failure, could a ground
> For magnanimity be found?

There is indeed no such thing as unmixed good except as some one has humorously put it in the brain of a lunatic! The prevalence of a certain amount of evil is exactly what provides the best opportunity for the appearance of good God exists because of Mammon

But there may be some who maintain that we can produce the desirable types without running the risk of getting undesirable ones by creating suitable conditions in the environment of the developing child This is like hoping to alter a photographic picture by means of a developer *at will* We know the absurdity of this Only such impressions as are *already* there on the plate will materialise A clever photographer can only succeed in *slightly* altering the details by manipulation *The high lights and shadows and the principal pic*

ture remain unaffected In a more correct sense this holds true for the human genetics Their hereditary equipment is determined long before their actual birth *Nurture cannot change this* It *may* only control minor gradations at best The principal tendencies remain unaffected And even if altered, this change cannot be passed on to the progeny This truth is being daily demonstrated in human affairs If that irrefutable evidence is not enough to convince some no amount of argumentation ever will

The argument based on humanitarian considerations has man's selfishness for its background, as it excludes the other living organisms from its scope Besides, what appears as waste and misery to the *short-sighted* human vision may from the broader outlook of the entire universe, be not a too heavy price for the progress that is pawned for In the scheme of Nature individuals are of less consequence They are the means towards better ends In the words of Tennyson

> Are God and Nature then at strife
> That Nature lends such evil dreams?
> So careful of the type she seems,
> So careless of the single life
> So careful of the type? but no!
> From scarped cliff and quarried stone
> She cries " a thousand types are gone
> I care nothing all shall go "

Besides, we have to remember that for countless of millions of years Nature has been trying and *perfecting* her methods Long before the appearance of Man nay from the very beginning of creation evolution has reared itself high on the ashes of countless of very valuable lives Even now it is so progressing Man himself is the product of that process Yet, looking back on time, who can say that the succeeding generations and races have not generally been an improvement on the preceding ones however indispensable the latter might have seemed in their own times? If in the past Nature could dispense with Man's assistance, she can do without it now Those who really desire to assist in the work of world progress can only do so by realising their own limitations and falling in line with Nature's laws By working in opposi-

tion nothing can be achieved The fear on the other hand is that it may side track the mighty machinery of Nature resulting in fearful loss and, may be, complete wiping out of the human race

In conclusion it may be hoped that what has been said may convey some information on the "Origin and Evoultion of Sex and some of its implications

A MODERN REPRESENTATIVE OF THE ANCIENT RISHIS

SHRI H C SETH M A PH D

Secretary, Public Service Commission C P

[Shri H C Seth M A Ph D, Secretary Public Service Commission C P and Berar is an old student of Khannaji He is very well known for his impartial views His remark A Modern Representative of the Ancient Rishis is significant enough and leads us into the real manner with which Khannaji treats his students]

My association with Prof Hiralal Khanna dates back to the year 1916, when I had the privilege of studying Mathematics from Khannaji in the St John s College Agra His lucid and masterly exposition of the subject always left indelible impression on the minds of his students His sympathetic and gentlemanly behaviour endeared him to his pupils We learned from him as much outside the class room as inside His mode of life embodying in a remarkable degree the principle of plain living and high thinking must have influenced like me most of his old students Equally inspiring have been his sense of duty and spirit of self sacrifice I have always looked upon him as a modern representative of our ancient Rishi-Gurus I wish him yet many many more years of happy and useful life

THE STORY OF PENICILLIN

SHRI RAM DAS TEWARI
Allahabad University

[Dr Ram Das Tewari is an old student of the B N S D College He is a distinguished scholar and knows his subject very well Penicillin is a very popular medicine these days The article throws a good deal of light on it It provides interesting reading]

Penicillin is a drug which is unique in the sense that it can be accommodated by the human body in doses which would be lethal in the case of any other chemical with a similar action It has the property of arresting the growth and destroying some of the most virulent bacteria harmful to man The importance of this drug can be judged from the fact that in the Great War of 1914 18 eight per cent of the battle casualties died while in the last war this figure did not exceed four per cent The reason for this fall was the availability of this new drug penicillin so that unlike the previous war when cases of septic wounds would have left the surgeon helpless and impotent the present war had penicillin available with field doctors so that the patient could be well attended and restored to normal life and duty

There are three historic occasions in the story of penicillin The first was its discovery by Fleming in 1929 the second a report on its chemical properties by Reistrick in 1932 and the third the most exciting announcement of its medicinal importance by Florey in 1940 It is interesting to note that in the discovery of penicillin which is both sensational and of great importance luck played a very great part at a num

ber of stages This is not the only isolated example of this type The history of scientific investigations is full of such examples that wonderful strides have been made in quite unexpected and uncommon directions

The story of penicillin begins with Prof Fleming in the bacteriological laboratories of St Mary s Hospital, London in 1929, while cultivating a particular type of bacteria At this stage it is necessary to know that for the study of these a bacteriologist has to grow them on a suitable ground called media under conditions favourable for them to multiply and breed colonies Agar is one such substance in which they grow well An important point to be noted is that a bacteriologist has to prevent his culture from any contamination by any other organism except one that he desires to cultivate Prof Fleming was cultivating a particular type of strain of a bacteria in agar and he noticed that one of his agar preparations got spoiled Inspite of his usual precautions some other unwanted micro organism contaminated his medium and on the surface of agar a tiny blue green fungus was found to have grown Had it not been an unusually alert and highly trained observer like Prof Fleming, the plate in question would have been straightaway discarded as a spoiled experiment, but a careful study of this plate showed a peculiarity which would have escaped the notice of an ordinary worker The particular colony of bacteria which he was cultivating had all together disappeared from round about the fungus growth This was obviously a case where the presence of a particular type of bacteria prevented the growth of another species of micro organism In technical language it is called microbial antagonism A careful examination of the plate and identification of the fungus in question led to its classification as Penicillium notatum It was further noticed that the fungus discharged into the broth a chemical substance which was capable of interfering the growth of some disease producing bacteria The cause of death of bacteria was not this fungus but the chemical substance discharged by the fungus which Prof Fleming named as penicillin

Later it was found that although the substance penicillin discharged by the fungus Penicillium notatum was capable of destroying many types of bacteria specially those that caused septic infection, it was not harmful to the animal The substance was thus parasitotropic but not

organotropic—a condition ideally suited for its use as a chemotherapatic agent because most of the substances known before this that acted against bacteria also acted against body tissues At this time however the significance of this chance discovery was not fully appreciated and the work on penicillin remained practically at a stand still for about a decade This is how the birth of penicillin came about as a result of luck and chance.

Another significant landmark in the history of penicillin was made at Oxford in Sir William Dunn School of Pathology in 1938 by Profs. Florey and Chain They were investigating the phenomenon of bacterial antagonism—why and how some bacteria attacked others And as luck would have it the work on Penicillium notatum was started in quite early stage. Besides these two workers a team of other talented investigators started work on different aspects of the problem As a result of these investigations the following important results were arrived at:—

(1) A pure sample of penicillin can prevent the growth of bacteria responsible for causing septic infections even in the dilution of one in 150 million.
(2) The bacteria causing meningitis and venereal diseases were twice as sensitive as those causing septic infections
(3) Any impurities left over in the then known process of preparation of penicillin were harmless

From these three important results it became evident that besides its use as medicine for human welfare, penicillin would prove very useful in the treatment of war casualties. The work was, therefore, started for a large scale production of penicillin. Because of the danger of dislocation of work in England by enemy bombardment to which the British Isles were then exposed, greater amount of work was done in America. The trend of research was directed on three main lines :—

(1) Production of large quantities of penicillin.
(2) To find out which type of bacteria were effected by penicillin and which were not
(3) Purification of penicillin—determination of its Chemical structure and then its synthesis.

They first presented a problem as to how to prepare penicillion on a factory scale Its production on laboratory scale by skilled chemists

working with glass apparatus at their own speed could be of little guidance to its mass production by unskilled factory workers The problem that faces factory workers is that of maximum production in minimum possible time with least cost in a continuous process which should be fool proof This required good deal of research wark in botany, chemistry, bacteriology and chemical engineering As a result of the cumulative efforts of a number of workers in different fields the method of producing the mould on a large scale has been evolved It grows well on a simple sugar solution to which certain mineral salts are added and the whole thing maintained at 25°C for a week The whole process is kept sterile from bacteria and fungi from air From this mother liquor charged with penicillin, an extract of penicillin is prepared by the application of some highly technical processes involving use of sol vents immiscible with water like ether, chloroform or amyl acetate and adjusting the acidity or the alkalinity of the solution as desired The outlines of the process described above sound so simple but in actual practice so many difficulties have to be encountered Various grades of penicillin ranging from 30 per cent to 80 per cent purity which are good enough for ordinary medical work are thus prepared Pure white 100 per cent pure crystalline penicillin used for special cases of brain sur gery can also be prepared but it is much too expensive

The second line of attack as pointed out was to find out which type of bacteria were effected by penicillin and which were not It was found that Streptococci and Staphylococci germs which cause septic wounds and gas gangrenes respectively were most sensitive to it and the organisms causing anthrax, pneumonia, venereal diseases, diphtheria and meningitis were also quite sensitive but penicillin was insensitive towards the germs causing tuberculosis typhoid and plague As usual the earliest experiments were conducted on mice for the determination of the requisite dosage and potency This was followed by its use on human patients and the scientific and the medical journals during the last six years have been full of the reports which testify the astonishing efficacy of penicillin Regarding its mode of action it was first thought that penicillin did not kill bacteria but prevented the colonies of bacte ria from multiplying Later it was found that bacteria were actually broken down Recently it has been established that both these views are correct The bacterial action of the drug is so great that even

1/50 000 000 of a gram is sufficient to kill 200 000 000 bacteria The growing importance of penicillin can be realised from the following figures giving average monthly output of penicillin from the United States of America alone —

1943	1 900 million tons
1944	138 000 million tons
1945	570 000 million tons
1946	800 000 million tons
1947	1 000 000 million tons

Because it has been possible to prepare 100 per cent pure penicillin as stated before the efforts of Chemists have been directed to determine its molecular structure This they have been able to do successfully In this connection it must be mentioned that chromatography has played a very important part in the production of pure penicillin The formula of penicillin is now known to be

```
                        S
                      ⁀⁀⁀⁀   CH3
R—CO—NH—CH—CH     C<
             |       |         |   CH3
          O=C — N——CH—COOH
```

where R stands for different groups In penicillin G, R is benzyl in penicillin X it is par hydroxy benzyl and in penicillin K it is normal heptyl and so on It will appear from the structure that it can be split up into two parts

```
R—CO—NH—CH   CHO                        CH3
             |                       HS<
          O=C            and            CH3
                                         |
                                  HN2—CH—COOH
      Oxazolone fragment        Penicillamine fragment
```

Since 1944 efforts have been going on to recombine the two fragments to prepare synthetic penicillin The yield however is not very promising but by the use of penicillamine containing radioactive sulphur it has been definitely established that some penicillin is thus getting synthesised An improvement in the yield of the synthetic penicillin was effected by the use of partition chromatography which is a technique of recent development Yet it must be admitted that synthetic penicillin is still a very long way off from factory production but there is no doubt that in years to come it will be available in plenty

NATIONALISATION OF EDUCATION

SHRI L MUKHERJEE, M A, B ED

[Shri L Mukherjee is in charge of the Statistical Department of the U P S E A The subject of his article is very important from national point of view and deserves careful reading]

The question as to why should we ask for nationalisation of education may appear pertinent to many Some may indeed feel that by nationalization we may kill individual enterprise and may even force the students to come to the same pattern

That both these fears are groundless can be proved firstly from the fact that if individual enterprise to open or to expand institutions arises from a motive of adding better service to the community, nationalisation is no bar to it Even today the state exercises a lot of control and after a great deal of hesitation agrees to give a grant-in-aid The *same hesitation will be still there, before a new school* is opened, or an existing one expanded Indiscriminate opening of institutions which are run uneconomically will be stopped Moreover taking control of institutions would not bang the doors of private donations for expansion Even today in state or district board managed hospitals private donations of both permanent and recurring nature are allowed and individuals rush forward to give their mite to perpetuate the memory of their near and dear ones the same would be the position of state controlled educational institutions

Moreover popular state can not ignore individual differences among children State has a real stake in these differences like the guardian it is equally concerned with bringing out the very best in a child for common weal, and unlike the guardian its vision is not blurred by a blind love or an exaggerated noti on of the abilities of a particular child So self interest of the state will make it seek individual *differences and* by fixing suitable courses for different talents bring out the very best for common prosperity

Having thus disposed of the two sets of common criticisms laid against nationalisation, we may look into the theory of the whole thing The most important consideration in education is the welfare of the child Two parties are primarily interested in this welfare The parent wants to bring up the child so that he may become a prop in old age and secondly the state which is interested in getting a suitable supply of trained citizens for future And the recurring expenses of education are met mainly by these two parties The only difference is that according to Governments latest annual reports (For March 1947) the average expense per *capita* for a student in a government secondary institution has been Rs 17 for the parent and about four and a half times as much viz , Rs 77 for the state In a government aided institution on the other hand a parent paid Rs, 30 per annum directly as fees (to this nould be added dearness fees in some institutions coming on the average to Rs 4 per student and a large part of the income of 24 lakhs from other sources which is being taken as building, development and other fees whose 80 per cent—a conservative estimate—would bring Rs 8 per student thus making a total of Rs 42 per capita), and only Rs 16 6 0 per student from the state The two agencies are there as before, the only difference lies in the extent of the burden borne In the government institutions, the main burden is on the shoulders of the state, while in an aided, it is on the shoulders of the parent The number of students in an aided secondary institution was in the year under review 237000 while in a government institution only 2/9 of this viz 49700, yet by spending 4½ times per capita in the latter as compared with the former, the government expense on the two heads were nearly equal, namely Rs 38,32,000 in government institutions and Rs 38,89,000 in aided State has thus managed to shirk off its major responsibility in an aided institution and has put the burden on the parent who is already worried with the feeding of the child and for upkeep and yet pay for his education It would have been some consolation, if with the extra sum he pays, the aided institutions could afford to keep better paid teachers and give his child a better sort of education, but that is not to be —insecurity of service and poor pay in an aided institutions can not draw the best type of teachers there

We are all accustomed to blame managements for the shortcomings True, they have their share of the blame. Communal, Provincial and Personal considerations sometimes create insecurity of teachers no doubt, and the panacea of supercession, if impartially applied, may remove them, but unless we strike at the very root, the basic evils can not be eradicated aid the basic evil in the system of grant-in-aid is imbedded in the system itself. The expenses of an institution are dynamic, schools must expand, more teachers are to be employed as more children enter; and as teachers gain more experience, as their family burdens increase, they must be paid higher salaries. If this prospect is closed, there will be no incentive left for the teachers to improve; nay, he may not stick to the profession at all, if the starting pay, which is quite meagre, is not compensated atleast partially by some sort of regular increments

But how can private managements meet the dynamic demand? 70 per cent of the income is from fees, direct or indirect, this can not increase annually We have all seen what wave of discontentment was raised when the fees were enhanced in 1947, the after effects of the agitation have not died yet Government grants bring only about 28 per cent of the income and the government is ever reluctant to add to this, so long as the responsibility and control is not thrust into its hands. Only about 2 per cent of the actual expenses is borne by income from endowments and public subscriptions (it is much less according to the official calculations, for in 1946 Shri Nepal Singh, the then Deputy Secretary of Education, calculated it to be only 0.6 per cent) This small amount is not likely to be increased rather with ruling high prices it is likely to be decreased, especially when the same public which contributed their mite for some 500 institutions in 1947 are asked to contribute for 1200 Higher Secondary Schools of today

Under the circumstances the managements are left with four alternatives (a) Either, they should deny annual increments, in which case efficiency suffers, because many teachers would not stick to the profession and others will not put their heart and soul to the work; (b) or, they would make teachers sign for a higher salary to get more grant and actually pay less, which is morally unsound and will lower efficiency, by driving away honest and self-respecting persons from the profession,

(c) or, employ a large number of temporary staff, for whom there is no responsibility to pay increments; this will also lower efficiency because such persons will have no stake and take teaching work only as a stepping stone to the ladder of their future progress, (d) or, dismiss a teacher who is drawing a high salary on some flimsy ground but ostensibly for no other person than that his salary is high, and that he can be replaced by a less efficient yet cheaper substitute—and the saving thus secured may be distributed among a number of his colleagues to stop grumbles. This again takes away all sense of security from the profession and besides harming the teachers, harms the boys because their future is being built by hands that are trembling because of the sword of Damocles hanging over their heads.

Thus we find that it is not the defect of a particular management or the other that matters much, the basic defect is in the system itself and as described by Principal Malkani in 1944 " Grant in aid system must go, lock stock and barrel." It is indeed strange that we have meekly put up with it for so many years. The reason for this is, no doubt, that so long our work was examination centred, and aided institutions with their shortage of equipment, and a large army of migratory staff, some how managed to maintain an apparently equal standard of passes, if not better, than the government institutions. Now education is to be many sided; it has to be more practical, and activity and library centred; teachers are going to be entrusted with the responsibility of awarding marks for day to day work of the student The change is healthy and in the interest of the nation as a whole. But the question is, shall we have the suitable atmosphere to carry on initial experiments so long as aided institutions remain, where 70 per cent of the income comes from fees, where there is bound to be a competition to drag more students by lowering the standards with a cheap award of marks on day to day work?

Nay, from what ever point of view do we look at the question, we come to one conclusion that not only primary but secondary education must be financed and controlled by state Probably, its management may be left to an autonomous Central Board, but the ultimate responsibility must lie with the state. Private agencies have done what they

could for the last three quarters of a century. Some institutions were better managed than others no doubt but that is only a comparative estimate, none of them were well managed, and they could not be under the circumstances. We do not want better managed aided institutions. We want well managed educational institutions ready in every respect to bear the burden of the complete education of the future citizens of a progressive free country. For once a positive degree has a stronger force than comparative If the British model of laissez-faire policy which we have experimented for the last 75 years is found unsuitable, let us learn better methods from France and Germany; from U S.S R and Denmark, and even from U.S.A. and Egypt, where a few private agencies exist no doubt but they are ever on the decline

But lest we repeat the same mistake as we or some of us did, let us not try this nationalisation in peacemeal by nationalisation of Headmasters first College lecturers after wards and then graduate and undergraduate teachers or the like. This will introduce Diarchy in Education and our political experience of the failure of Diarchy is yet to green to try it in educational fields

Nationalisation is expensive no doubt, but what the government loses, people, guardians and teachers, who are essential parts of the government, gain. Let us not shirk to foot the increased cost by additional taxation if need arises We are still like our alien rulers, spending too little on education. If our province can not foot the bill of 12000000000 dollers on education like U.S.A., we can at least spend in the same ratio namely 30 per cent of the total budget By nationalisation of the existing secondary institutions, the burden on the state revenue will be less than 3 per cent more; primary may take another 3 per cent, and so we shall still be spending some thing like 18 per cent of the total revenue on education.

It was at the time when Shree Hira Lal Khanna was the President of U.P S.E A , that I first raised the issue of Nationalisation. But for his active help as a member of the Better Management Committee my first article " State Control of Education " (Published in Education November 1946) could not have been circulated among the members of the committee. It was under his chairmanship that the Executive of

U P S E A passed the resolution on 2nd February 1947 Today I have the proud privilege of sponsoring the issue in the open session and getting it passed by an overwhelming majority It is only a mile stone in the progress and hurdles still remain but I can think of no better gift for the commemoration volume than recalling the long and meritorious services of Shree Hira Lalji Khanna and presenting the little service that we have been able to perform at his feet Its very foundation stone was laid when he was our chief and in it but for his active support and indirect blessings we might not have achieved what we did It is the Hindu ideal of surrendering the merits of service to ones Guru Here we have a Guru who has served the association and the profession for one third of a century and this little venture was actually started under his able guidance it is thus quite befitting that its merits be surrendered to him

AN APPRECIATION

Shri Ranjit Singh, M A , LLB , O B E

Managing Director, Vikram Mills, Lucknow

[Mr Ranjit Singh is the President of the B N S D College Managing Committee He accepts Khannaji as his intellectual guide He has marked his strong and decisive character He quotes the words of Khannaji to give the secret of the wonderful college results Only that I am always alert and often I explore the possibilities which others miss when they present themselves to them He expresses his surprise to see him busy with *things which have no connection with education* He admires his wonderful memory and remembers him as a formidable opponent He appreciates Khannaji s mastery of details which surely singles him out even in the committee of experts As the President of the Managing Committee of the college he gives him the highest testimony when he says Never before was the working of a Managing Committee made so easy The Com*mittee had never to worry about the affairs of the* college]

Principal Hiralal Khannaji was a friend and a co worker of my late revered father Rai Bahadur Vikramajit Singh It was his careful foresight and wise selection which brought Khannaji to B N S D College It is difficult to think of him in any other way except as a member of the family He was an intimate associate of my father from the time he joined the B N S D College as Principal (in the year 1927) in all his activities and ventures in the City

Ever since I met him for the first time in 1912 I have received affection from him and I have always looked upon him as my intellectual guide From my early acquaintance with him I have marked that he possesses a very strong and decisive character and once an idea starts working in his mind, he will soon be prepared with the points for and against and thus we find him with an open mind and ready for justice

He has acute powers of observation and nothing escapes his attention His quality to be thorough is remarkable But this makes him work out his details with unceasing intellectuality and deep earnestness

It is not that Khannaji invariably succeeds in all that he undertakes He has been opposed by petty minded people and I know how magnanimous he has been to all of them He shines ever so much brighter for all the battles he has fought in the interest of his institution to which he owes extreme loyalty

Many a time he took me in his confidence and revealed to me that often he receives great disappointments, but does not allow others to know of them In this way generally only his achievements are known to people and they suppose that success is sure only if Khannaji has a mind to do a thing

It was on another occasion that I had another glimpse of his extra ordinary character, sometimes he displays the qualities of an explorer He is intimately associated with Acharya Narendra Deo Ji who was his classmate during his college career As usual, Khannaji's College put up brilliant results and dazzled the Province consecutively for over a decade Acharya Ji wanted to know the secret of this magnificent achievement In a very unassuming manner Khannaji replied, "Only that I am always alert and often I explore the possibilities which others miss when they present themselves to them"

Although physical fitness, courage. adaptability and qualities of leadership are all needed for the success of any great project, there is something else necessary something which is probably more important than all these and that is perseverence and ability to organise He has got them in ample quantity Besides all this, it is little known that Khannaji is a very sound business man and can advise on a variety of businesses from Cotton Textiles to Steel Ploughs and "Grow more food" building engineering

Whenever he has a mind to take up a work he settles down to the careful, methodical work of organising the whole venture Sometimes he takes up strange projects It is the surprise of all his friends to see him busy with things which have no connection with education profession to which he is supposed to be wedded

He brings forth the best in him whenever he is called upon to do so on the most intricate problems in any walk of life. In adversity he shines out best of all.

It was as the co-member of the U P. Chamber of Commerce that I happened to mark his other qualities It was there that I came to know how he planned and established the Office of one of the best cloth concern in the City.

Quite apart from the hazardous nature of this new venture, the matter of organization was a responsible one, for mistakes or carelessness might have resulted in the imperilling of the goodwill of his friends and waste of the money with which he had been entrusted.

Khannaji possesses a wonderful memory. Whenever he takes up cudgel against anyone on the floor of some assembly, he is found a formidable opponent. He overwhelms his adversaries with vollies of questions. *His mastery of details surely singles him out even in a committee of experts.* Perhaps this is the reason why he makes himself a distinguished figure in any deliberation in which he takes part.

The world knows him as the Principal of an Intermediate College As the President of the Managing Committee of that College I have had an opportunity of watching him at his work Never before was the working of a Managing Committee made so easy The Committee granted complete independence to its Principal I have gathered from those who work under him that he carried on benevolent dictatorship in his College. The Committee had never to worry about the affairs of the College. It is enough to say that he knows his work and the uniform progress on all fronts bears testimony to this fact.

It is always encouraging to have a man with the ability to express exactly what he proposes to do and the schedule of his life is in itself *typical of his methodical mind which has given him thoroughness*

One of the wonderful feats of his life is the last venture of setting up of a full fledged High School in three months. He planned to raise a school on a wasteland. With extraordinary care he made his plans for this stupendous task. He worked out supplies to be arranged and the donations to be collected and noted down the names of his would-be donors! The rest of the task was quite simple. Day after day there

were difficulties He told me that sometimes his progress was so difficult that he feared lest they should have to wait for another session But at last all difficulties were surmounted and the birth of a new school was celebrated on the first day of the session The enthusiasm with which he took me round to his new school made me jealous of how he would give his wholehearted attention to the B N S D College but I did not say a word to him about it Soon I was convinced in convincing style and I left his premises after paying Khannaji my taxes My admiration can well be imagined when I say that Khannaji can look after several institutions at one time and manage them all in top form

Khannaji's great quality is to collect donations big and small for his institutions whenever he wants the money and I do not know if there are any who have escaped his persuasive conversation

In his life Khannaji has accomplished much His has been an amazing achievement His human touch is one of his strongest points He is one of the Great characters produced by Kanpur long to be admired, remembered and loved

My respects to him

the details of the Scheme and the neighbouring countries have been attracted to the point of sending experts to study it in the province of its origin That is no small credit for a Scheme which seeks to tackle one of the most tremendous problems that face an independent India

What are merits of the Scheme that have made it so attractive? "Merit," said a great scholar, "is the opinion that one man entertains of another" Judged from that point of view the Scheme does have merit for it has been praised on all sides But opinion is a vagrant leader of the mind for

> Some praise at morning what they blame at night
> But always think, the last opinion right

Let us not, therefore go by the opinions of others but scrutinize the Scheme and discover its merits Before we start on such a scrutiny it is advisable that we understand what Adult Education means and what it has meant in the past in our country

In foreign countries like England, America, Switzerland and Denmark adult education means the giving of information for economic social and cultural progress of the people and acquainting them with the principles of democracy, citizenship socialism, capitalism and the like In these countries there is almost no problem of illiteracy as the primary education is compulsory for all, but our country has the huge problem of illiteracy added to that of adult education Here in India we have to make the illiterate literate first and then educate these literates We can say that there are three phases of adult education in our country These are —

(i) Literacy drive
(ii) Adult education campaign
(iii) Follow-up programme

There is no clear line of demarcation between any two of these phases The one runs into the other and the other supplements and completes the work started in the previous one But for the convenience of understanding the movement of adult education in our country we can define the scope and the purpose of each phase

Literacy Drive aims at giving a rudimentary acquaintance in reading and writing of a language so as to enable the adult to sign his

name with ease and read the printed matter without much effort. It also includes the knowledge of the language of the numbers for Mathematics according to H. G. Wells is essentially a language Thus the objects of Literacy Drive is to aquaint the adult with the basic tools of education It must, however, be remembered that literacy is not an end in itself, it is only a means to an end, nor is it the first step of adult education, the first step begins when the adult has picked up the basic tools and can wield them with ease and convenience.

Adult Education aims at enabling the adult to read and understand the significance of his life activities, to read and write letters, accounts and documents with which he has to deal in his everyday life It gives him the knowledge of his rights and obligations, his personal and village hygiene, his economic and social problems and puts him well on his way to further self-education, develops taste for more studies and fires him with a desire to improve his domestic, economic and social life so that he marches on in the world not like a dumb driven cattle but like a living and kicking human being intelligently participating in every activity around him At the end of this phase the adult is equipped with

(a) The basic tools of education.
(b) Capacity to read, write and understand
(c) A desire to improve his life through self-education

But the end of this phase does not mark the end of adult education Its ultimate goal is the education of the adult's personality which will develop to the highest degree his physical, intellectual and moral faculties and transform him into a conscious, and needful member of the society and a conscientious and useful citizen of the state The second phase does promote this but it is the first step, only the first step of adult education A person on passing from the adult school stands at the threshhold of that full development of personality which all should seek to attain. If he is to pass the threshhold he must follow up to educate himself without the assistance of a teacher so that this education becomes of permanent value to himself as well as to the community to which he belongs.

> and writing is no doubt of great help in training in democratic living, but it is not altogether indispensable Education for life may not wait till full literacy is obtained "

The recognition of this principle is a bold step, a very bold step in deed, for no adult or mass education scheme in the world has ever recognised this principle Even the Sergeant Report on Adult Education foundered on this rock of illiteracy It commits the inevitable mistake committed by other such schemes in our country of believing that adult education is impossible without literacy This unique conception of education without literacy is genuinely Indian People in other countries talk of ' LEARNED ' men but ancient India believed in ' BAHUSHRUT (much heard) and ' BAHUGYA ' (much-knowing) persons Such persons may not be learned in any of the languages yet by hearing and observation they might have picked up quite a good store of knowledge and be rightly called ' well educated ' So we believed in education without literacy in the past and the sponsors of the Scheme have believed in this unique conception of education in Indian culture It is, therefore that they have placed greater importance to BAHUSHRUTI and BAHUGYATA and given a secondary place to learning and language in their Scheme It is this genuinely Indian conception of adult education that the Social Education Scheme of the Central Provinces and Berar lays more emphasis on

Another important aspect of the Scheme is that it envisages an attack on all fronts on illiteracy and ignorance The illiterates in our country are usually of two kinds (1) Those who had passed the primary School examination and subsequently lasped into illiteracy (2) Those who never had any schooling By giving first preference to Education for citizenship or the follow-up programme of the old schemes of Adult Education the Social Education Scheme ensures the continuance of the education of those who have been in primary schools and saves them from lapsing into illiteracy Thus it closes an important inroad which has been responsible for swelling the number of illiterates in the country Compulsory primary education will not be so useful without any such provision for the continuance of education On the illiterates of the second type it proposes to launch a two pronged attack, to some

it intends to give literacy first and then education, to the others education first and then literacy The education of the latter will instil a keen desire in them to know reading and writing and many of them will without going to the adult schools, pick up the 3R's Never before has the tremendous problem been tackled in such a manner and never before was any hope of liquidating illiteracy and ignorance with such speed in the briefest time possible

There is a change in the name also It was Adult Education then it is Social Education now The old times have changed the old names are gone The term 'Adult Education' in the past has developed such associations that it was considered by many to be synonymous with literacy Secondly the epithet adult did not quality or specify education, it only gave the age of those who were to be educated In the absence of any such specification the word 'education' was taken to mean the type of work done in schools This work is highly defective on one score that it is artificial, unpractical and unrelated to life It does not fully aquaint the child with its environment, it does not completely equip the child for the life that awaits him in society A young man or woman passing out of the schools and colleges is

A bookful blockhead ignorantly read
With lots of loaded lumber in his head

The sponsors of the Scheme were too conscious of this defect to creep into any such error They have qualified and specified education by calling it 'social' The education will now be pertaining to society and will 'inspire the adults to take a living interest in the affairs of the state and problems of social reconstruction' 'It will aquaint them with everchanging currents in the social, economic and political life' The Indian society has not much improved in the last century, on the other hand it has shown definite signs of deterioration The change of governments has let loose the anti social elements which tried to uproot society at the dawn of independence in the country Any education worth the name should 'teach the people to live happily in peace and to unite against elements which tend to disintegrate society' If the present society is to survive and improve, it must understand the significance of this period of transition and its dangers and be prepared to

face them boldly and squarely. The Scheme has taken all these things into consideration and provided for them in the very objectives of Social Education. By giving the masses the educational tools and suitable material, it will make them read and reflect, form and reform new ideas and ideals and thus become alive to the need of changes in the different spheres of human life. It is in this manner that the Social Education Scheme promises a silent regeneration of the society and the state.

In order to understand the full significance of other provisions in the Scheme we must review briefly the history of the Adult Education Movement in India. The mistakes committed in the past by the people in this direction are the stepping-stones by which the Scheme envisages to climb to success.

The Adult Education in our country is a movement of comparatively recent growth. Although as far back as 1854 Sir Charles Wood in his famous despatch declared his new policy "to combat the ignorance of the people which may be considered to be the greatest curse of the country" and emphasised the importance of encouraging the study of 'vernaculars' as the only possible media of mass education. What has been achieved in this direction in the last 95 years is too well known to need any repetition. It is not till after the Reforms of 1919 that one comes across any noticeable effort at launching any mass education campaign. The largest intensive literacy drive began in the Punjab in 1921. It was inaugurated by the Government and in five years the enrolment rose to 98,414. The workers were mostly the school teachers and the students, the books and the methods of teaching were mostly those used for children. After this drive we do not hear of any mass movement in this direction but sporadic attempts at educating the adults continued in different parts of the country mostly through the initiative and help from the private philanthropic bodies. The visit of Mr. T. F. Williams, a representative of the National Adult School Union of Great Britain resulted in the formation of the Indian Adult Education Society, Delhi, in 1937.

The same year popular ministries under the Congress High Command assumed offices and the movement for adult education received

further impetus. The most extraordinary drive ever before recorded in India was that conducted by the Government of Bihar In one year 3 lacs of people were made literate The spectacular future of the campaign was the teaching of the prisoners in jails Other provinces and states followed suit and thus started one of the most gigantic educational efforts in the history of the world—the education of 325 millions of illiterates in the country The work was done mostly by persons untrained for adult education and little effort for the production of graded literature for adults was made The only bodies that attempted something in this direction were the Mysore State Adult Education Council and Jamia Millia Islamia of Delhi.

In 1938 the Government of India appointed an Adult Education Committee of the Central Advisory Board of Education to examine the problem on All-India basis. The same year the first Adult Education Conference with a view to coordinating the activities of the unofficial bodies was called at Delhi, from which emerged the present Adult Education Association of Delhi

During the War with the resignation of the popular ministries the movement received a set-back, but the army did magnificent work in giving instruction in the 3R's to those who were in its fold But the education given by them related to fighting technique and very little to citizenship.

After the war with the dawn of independence in India, some provinces put the old wine in new bottles and rolled them on, but the Government of the Central Provinces and Berar worked out a wholly revolutionary scheme in Adult Education and conducted a Province-wide Campaign in the summer of 1947.

What have been the lessons of the past?

1 The problem of illiteracy is so tremendous that unofficial bodies cannot cope with it. Whenever the Government took up the work, it proceeded with a gusto

2 Adult Education started and ended with literacy campaign No effort was made towards Adult Education This has created a wrong impression among the people that literacy and education are synonymous

3 Adult literacy was considered a pre requisite of Adult Education

4 No effort was made for the training of personnel and production of graded literature for Adults

5 No follow up programme was taken up for the continuation of the basic tools of education

6 The value of experimentation in educational methods was not recognised Hence no research was started and no new methods of proved efficiency could be substituted for the old one

7 All available means for education of the illiterates were not exploited Even visual aids so strongly recommended by C A B Report were not used

8 The success of the schemes depended on mostly the teachers and students

The Social Education Scheme appears to have studied all these defects in the past movements and forestalled them The first thing it does is to put the responsibility of educating the illiterates on the Government of the Province It was necessary to look at the peculiarity of the problem in India Here the problem is not so much of getting volunteers for the work as of getting attendance of illiterates in the adult classes The Government with its vast machinery can easily influence, coerce or even force the attendance which the private bodies cannot do With its vast resources the Government can give motivation to the work of the volunteers The lack of graded literature for the Adults has been a great handicap in Adult Education The scheme provides for a creative centre for producing the necessary material It has three sections viz —

1 *For Literature* —It will keep up a constant supply of magazines, bulletins and books on subjects specific and general scientific and technical economic and social national and international

2 *For Films* —This section will deal with all matters relating to the production of educational and informational films for the purposes of social education of all forms

3 *Art and Statistical Section* —One of the most effective methods of visual education today is through posters diagrams and other statistical illustrations This has developed almost into a fine art It is therefore essential to have a section for this to illustrate effectively and convincingly the ideas which have to be put across

For visual aids and other means of education an Executive Centre has been provided with four mobile units equipped with buses cinema projectors generators loud speakers and the like These units will be flung into action throughout the province wherever necessary

The training of volunteers for adult education is a great necessity for the methods of teaching that work efficiently with children are not suitable for adults as the learning capacity and powers of the two differ to a great degree The Scheme has made provision for the training of these volunteers The methods for teaching the adults will form a part of the course prescribed for teachers in the Normal Schools and the Training Institutes of the province This will ensure that all teachers turned out by the training institutions will know the latest methods of adult education For other volunteers special classes may be held at these training institutions or at other convenient places Provision has also been made for very special training of workers for social education or adult education for citizenship at the Government Training College Jubbulpore where the special psychological staff will undertake this work

In all leading countries researches in the field of education are considered essential and methods of proved efficiency for teaching the adults are necessary This work of carrying on constant researches and experiments in the field of adult education for citizenship and enlightenment has been entrusted to the Psychology Department at the Prantiya Shikshan Mahavidyalaya Jubbulpore

Unlike the past schemes the work of educating the adults has not been left to the teachers only The Hon ble Minister for Social Education has called upon all men and women above the age of 16 who have passed the VII standard to join this sacred war against illiteracy and ignorance He has solicited the cooperation of all persons with literary

and artistic talents in the great task of making the country safe through sound social education

These are some of the salient points and important aspects of the Social Education Scheme launched by the Government of the Central Provinces and Berar. It is one of the best schemes in the field of mass education A good scheme well-conceived and well-planned is half way to success. The other half lies with the executors and the actual workers in the field. A team of willing workers and volunteers is sure to achieve a grand success which the Scheme envisages

KHANNAJI AS I HAVE KNOWN HIM

SHRI B. TANDON, M A

Principal, G N K Intermediate College, Kanpur

[Principal B Tandon of the G N K Intermediate College has been the Head of the English Department of the B N S D College He has had his schooling in College Management under Khannaji He is an eminent educationist himself His views' about his previous boss shall be read with interest and advantage]

I vividly recollect the first meeting of the Agra University Senate which was held in Meston Hall when I was studying for my M A. degree. I attended that meeting as a visitor; being the President of the Agra College Union, I had managed to obtain a pass The late Mr Kichlu was presiding. Among members of the newly constituted senate were several veterans—Canon Davies, Dr. Ganesh Prasad, Mr. Mackenzie, Pt. Amaranatha Jha and others—and soon my attention was drawn to a grey-haired man with a white turban which had a long tail, who was wearing a loose coat with buttons unfastened. Somebody told me he was Shri Hiralal Khanna, Principal of an Intermediate College at Kanpur—the man who had topped the elections on behalf of Registered Graduates to the University Senate. I wondered how this mysterious figure had caught the fancy of the most educated electorate in the Province. That was my first glimpse of Khannaji.

In July 1929, I came to Kanpur looking for a job as a lecturer in English at the S. D. College, which had been advertised. A friend told me that Shri H. L. Khanna was an important member of the Managing Committee and I should see him. He took upon himself the responsibility of introducing me to this gentleman at his house. I remember that summer morning when I ascended for the first time the stairs leading to a big room where many things were huddled together and on a wooden platform there sat the self-same grey-haired figure whom I had seen from a distance at Agra more than a year ago There was no turban on his head, the hair was closely cropped but the man looked grand and simple He was very courteous and welcomed our

common friend in affectionate terms. The purpose of our visit was revealed. He made a couple of enquiries and then told us very plainly that a member of his staff who happened to be his favourite student also was a candidate for the post and he had promised support to him . If, however, he did not care to go he would consider my claims I agreed. His reply was perfectly logical and I came away with the impression that this man appeared to be sincere in his utterance. A fortnight later I found myself selected for the post of Senior Lecturer in English at the B.N.S.D. College in the vacancy caused by the departure of Shri Mahadeva Prasad Srivastava.

For over five years I worked on the staff of this institution of which Khannaji was the head and I have seen him at such close quarters and in such different moods that I can speak of him with perfect confidence. I have heard patiently his own narration of his many triumphant achievements. I have seen him burst in volcanic eruption of fury. I have seen him playing with children and demonstrating with youngmen. I have argued with him and also differed on several matters but my love and admiration for the man has grown with the passage of time and it is still one of my prized possessions. Few men are so misunderstood as he is and I am in a position to explode some of the myths that hover around his personality.

There is a strong belief in many quarters that Khannaji can perform most uncanny tricks and he has a knack for success People think that if he takes up a cause it is bound to succeed sooner or later, and, therefore, they hate him for every triumph that he scores. Like all big men, he has strong likes and dislikes. He has also the courage to call a spade a spade which few people in this age can relish. He is not mealy-mouthed, and though his answer in the negative is often softened by soothing words and alternatives, he does sometimes blurt out a " No " which offends and stings people. He has little or no mental reservations. At heart he is peace-loving, but if he is provoked to a fight he goes into it with full zest and never looks back till the enemy is worsted. People say he is vindictive. That is a malicious charge. He fights hard and fights clean. For ought I know he has never given a stab in the back.

But let me revert to some of his positive qualities. His great success is mostly due to his attention to minutest details. This is what he admits and that is also the truth of the matter. Whenever he takes up a thing in his hand, he examines the *pros* and *cons* completely, calculates every step that has to be taken and then goes ahead, undaunted by difficulties and hurdles that might come his way I should think he delights in encountering difficulties and he would not be quite happy if his passage were a bed of roses. He takes risks and " lives dangerously." He is meticulous in his attention to the smallest particulars and he is well prepared for every eventuality since he has got a clear picture of all possible developments in his mind. His triumphs are the triumphs of his intellect which is deeply penetrating. Joined to that massive brain is his astonishing memory for names, facts and figures. Particularly for names. I often wonder how he can retain so many names in his head Speaking for myself, I have a very poor memory for mere names though I can recognise figures. But with Khannaji it is a stupendous feat, he doesn't simply forget. He calls everybody he meets by his name—not the surname. Twenty years back you had been a student of his college for a session or so and you met him once or twice. Now after a lapse of two decades, you come to him and say, " Do you recognise me, Khannaji ? " Before you have finished your sentence he calls you by your name and says, " Yes, yes, what are you doing now? " It is simply staggering !

Khannaji's manner of living is very simple. The wooden platform on which he sits, moves and sleeps, still occupies the same spot in his room as it did twenty years ago when I met him for the first time and the total appearance of the room has not appreciably improved There is the same huddling together—books, newspapers, odds and ends. He is very fond of newspapers and I fancy most of his reading is confined to them. His habits are not essentially studious. He has so many irons in the fire that he is often running about from place to place. He is an extrovert—out and out He is interested in the affairs of so many people that he has little time to think of his personal comforts. Ofcourse, he is keen on oil massage of his body and that probably goes a great way in keeping him fit in the absence of any physical exercise. He does not

believe in walking, nor in the ten-minute " keep fit " exercises And yet he challenges sickness ! It is his boast that he has not fallen ill for many years for the simple reason that he has no time to fall ill One of the secrets of his good health is that he keeps so busy but there is another which is his well-regulated diet For several years now he has been living almost entirely on fruit, milk and vegetables with a total fast of 36 hours in each week Many people say that his diet is very rich and he drinks costly fruit juices which is also a fiction On several evenings I have seen him take his moderate meal served to him with such loving care and devotion by Pushpa, his daughter-in law I must pause here to add a word of genuine admiration for this girl I fancy the greatest vindication of Khannaji's correct sense of judgment lies in his selection of his daughter-in-law He picked this girl from a middle class family and what an admirable choice she has proved to be ! Absolutely unostentations, ever-smiling and possessed of a natural feminine grace and coyness she endears herself to every visitor to that hospitable home I am often touched by the loving solicitude with which Pushpa urges her father-in law to take a little more of fruit or milk but the old man is adamant so far as his diet is concerned I have never seen his plates laden with grapes or apples or any other costly fruit They are seasonal fruits, generally of the cheap variety and in place of sugar a little *gur* is used As a laxative *isafghul* figures prominently in his evening diet During the last few months Khannaji had to encounter a hurricane of opposition and all kinds of malicious charges were foisted against him It was only a man of his iron will who could withstand so much criticism and come out with his withers unwrung As Dale Carnegie has said ' No body ever picks a dead dog and an unjust criticism is often a disguised compliment " Khannaji has now retired from the chair of the Principal which he adorned for more than twenty-two years and all controversies that revolved round his educational activities must now cease I hope no critic, howsoever uncharitable, will fail to remember that B N S D. College, as it stands today, is a true monument of his long, arduous and devoted service to the cause of education in the city of Kan pur and every brick of the magnificent building bears an impression of Khannaji's devotion to his institution The late Sir C Y Chintamani

always kept a tablet before him bearing the inscription "Leader, my first love" For more than two decades B N S D College has been the one and only love of Khannaji and his many students, colleagues and contemporaries *must be very ungrateful if they withhold a word of* legitimate praise to the man who dreamt of a first rate Intermediate College and translated it into reality I wish Khannaji a merry old age and it is my respectful suggestions that he might now introvert his mind as much as he can to the realisation of that self which is the fountain of ever abiding Light and Happiness
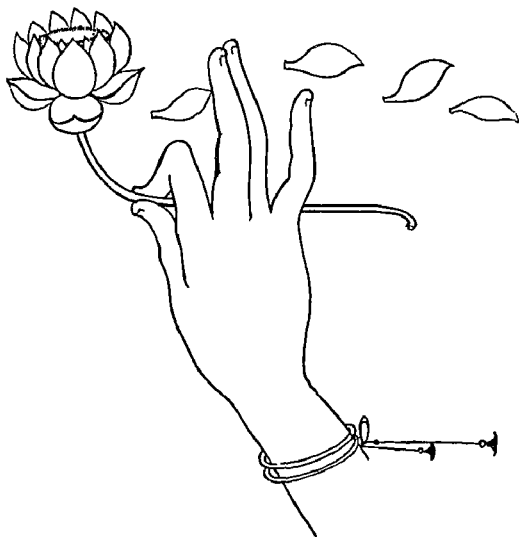
A PERSONAL TRIBUTE

Dr Zubaid Ahmad

Allahabad University

[Dr Zubaid Ahmad is the Professor and Head of the Arabic and Persian Department of the University of Allahabad He gives the invigorating effect of Khannaji s contact and points to his qualities of being straightforward sincere and fierce champion of truth and justice He appreciates his cosmopolitan outlook and an unshaken belief in Hindu Muslim fellowship He has a belief that if such specimens of humanity abound the prospect of a good enlightened happy and prosperous existence in the two states of India would improve by a hundred times He remembers Khannaji as one who enjoys the esteem and goodwill of Muslims like the late Dr Shah Muhammad Sulaiman and Mr Justice Waliullah]

I have great pleasure in paying my humble tribute of admiration to Shri Hira Lal Khanna, Principal, B N S D Intermediate College, Kanpur who has just retired

It was at a meeting of the Academic Council of the Allahabad University, during 1924, about a quarter of a century ago that I saw him for the first time He was conspicuous by his unique turban and simple dress amongst the generally suited booted audience There he made a speech which was heard with great attention and respect by those who were present at the meeting I enquired from a gentleman sitting by me who the speaker was You do not know him! He is Mr Hiralal Khanna the great was the reply In those days unfortunately I was shy of being introduced to Hindu gentlemen, but the speech impressed me so much that the very moment the meeting was over, I ran and got myself introduced to him He received me so cheerfully and cordially that I could not help resisting the desire to cultivate friendship with him Since then our acquaintance has grown into intimate friendship, and with great interest I have been watching his career

Shri Khanna is a familiar figure in educational circles We have known him long as a great educationist a warm hearted and generous friend and a distinguished public man who has been prominently associated with many activities in this province His interest is not con

fined merely to secondary education He has been for many years a prominent member of the Court and Academic Council of the Allahabad University, where he has brought to bear upon academic problems a wise and sagacious mind He has always expressed his views without fear and prejudice and whenever he speaks he is listened to with respect and attention He is an honest and public spirited gentleman who never minces matters and who is always unwilling to sacrifice principle to expediency

As a friend he is always kind hearted and generous To come in contact with him is to invigorate one's own moral being for he is so straightforward, sincere and a fierce champion of truth and justice He does not make any distinction between members of various communities and he has no communal or religious or even caste prejudices He has a *cosmopolitan outlook and an unshaken belief in Hindu Muslim fellowship* I believe that if such specimens of humanity abound the prospect of a good, enlightened, happy and prosperous existence in the two states of India would improve by hundred times and the talk of mass migration which is so seriously troubling so many brains at present would loose its impact I think the prime need of the hour is a balanced rationality restrained leadership and an awakened spirit of humanity This disaffection in our rank and file is the gift of the virile British rulers, and with them this should also go Vivid are my recollections when Hindus and Muslims lived in perfect cordiality and when both of them respected the basic values of life I know that Mr Khanna has many friends among Muslims and no one has ever received unkind or unfair treatment at his hands He has enjoyed for many years the esteem and goodwill of Muslims like the late Dr Shah Muhammad Sulaiman Mr Justice Dr M Waliullah, Dr Zakir Husain, Prof Muhammad Habib, Dr A Siddiqi, etc and whenever there has been an opportunity, Mr Khanna has stood for justice and a fair deal to Muslims He is undoubtedly a doughty champion of Hindi but he has no prejudice against Persian and Urdu Indeed he is well acquainted with both and can recite Persian and Urdu poetry with great ease He speaks fine Urdu He is an interesting conversationalist and he can add to your delight by relating anecdotes about prominent persons in the U P and elsewhere

with many of whom he has been in close touch, and intimately acquainted with their strong and weak points

Shri Khanna ji has been an indefatigable workei ın the cause of education. The Directors of Public Instruction like Mr Mackenzie and Mr. Harıop held him in esteem and valued hıs advice It was through his unwearied efforts that the B N S D College made such phenomenal progress and became one of the leadıng Intermedıate Colleges of thıs Province. Only those who are connected wıth the college know how much it owes to Mr. Khanna. Day ın and day out he was worked for it disinterested devotion, collectıng money for ıt and fıamıng plans for its improvement. As a Principal he has never spared himself He has not attended merely to administrative duties; he has come in close contact with students and by his character and example has profoundly influenced their lives. He has always taken a paternal inteıest ın theır welfaıe and helped them ın a hundred ways

Even in retirement Mr Khanna ıs devotıng hımself to the cause of education. He has staıted two schools whıch occupy hıs tıme and attention. He is a ceaseless worker Hıs lıfe of purıty and goodness must,be a source of inspiration to our younger men who are working in schools and colleges. As an old friend and admırer I wısh great peace and happiness in his retirement. I have no doubt when the history of education in this Province is written, Mr. Khanna's name wıll find an honoured place in it.
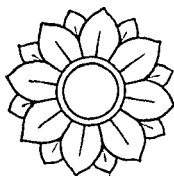
INDIA AND THE COMMONWEALTH

PRINCIPAL SHRI GURMUKH NIHAL SINGH
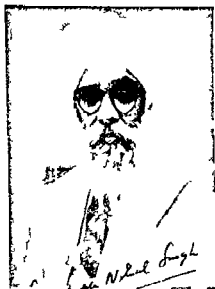
[Here the learned writer examines the basis on which India is continuing as a member of the Commonwealth of Nations comprising U K Canada Australia New Zealand South Africa India Pakistan and Ceylon even after becoming a Sovereign independent republic on January 26 1950 The main points made by him are — (1) There is nothing like British Commonwealth of Nations now hence the possibility of Burma's and Ireland's joining it as equal and free partners at a later date (2) India alone among the present members of the Commonwealth will not owe a common allegiance to the king (3) the provision that the king will be regarded by India as a symbol of her free association with the Commonwealth and as the Head of it will in no way compromise India's sovereign status and (4) lastly the Commonwealth's objective of pursuit of peace liberty and progress is likely to be in peril because of Britain's continuing imperialism South Africa's racialism and Pakistan's communalism

The writer principal Gurmukh Nihal Singh is a well known educationist and publicist of our country He is the Principal of Commercial College Delhi He has been a close associate of Khannaji on the various academic bodies]

I

On the 26th January 1950 India will become a Sovereign Independent Republic but none the less she will continue to be a full free and equal member of the Commonwealth of Nations This decision on the part of India was taken on the 17th May 1949 in the Indian Constituent Assembly and the All India Congress Committee approved of it a few days after i e on the 21st of the same month This was made possible by the conclusions reached at the Commonwealth Prime Minis

ters' Conference held in London in the previous month. A five-paragraph declaration was issued by the Premiers' Conference in London on 27th April, 1949, which runs as follows:—

> "The Governments of the United Kingdom, Canada, Australia, New Zealand, South Africa, India, Pakistan and Ceylon whose countries are united as members of the British Commonwealth of Nations and owe a common allegiance to the Crown, which is also the symbol of their association, have considered the impending constitutional changes in India.
>
> "The Government of India has informed the other governments of the Commonwealth of the intention of the Indian people that under the new Constitution, which is about to be adopted India shall become a sovereign, independent republic.
>
> "The Government of India has, however, declared and affirmed India's desire to continue her full membership of the Commonwealth of Nations and her acceptance of the King as the symbol of the free association of its independent member nations and as such the Head of the Commonwealth.
>
> "The Government of the other countries of the Commonwealth, the basis of whose membership of the Commonwealth is not hereby changed, accept and recognise India's continuing membership in accordance with the terms of this declaration.
>
> "Accordingly, the United Kingdom, Canada, Australia, New Zealand, South Africa, India, Pakistan and Ceylon hereby declare that they *remain united as free and equal members* of the Commonwealth of Nations, cooperating in the pursuit of peace, liberty and progress."

The important points to be noticed in this historic declaration of 27th April, 1949, are the following:—

(1) That the then existing basis of the Commonwealth—which is described as "*the British* Commonwealth of Nations"—is *that its members "owe allegiance to the Crown which* is also the symbol of their free association."

(2) That except in the case of India the old basis remains unchanged.

(3) That India while becoming a sovereign, independent republic is desirous of continuing her *full membership* of the Commonwealth—*not the British* Commonwealth—and accept " the king as the symbol of the free association of its independent member nations, and as such the Head of the Commonwealth "

(4) That the other members of the Commonwealth " accept and recognise India's continuing membership" inspite of her decision to become a republic, "in accordance with the terms of his declaration " i e , India's acceptance of the king as the symbol and Head of the Commonwealth

It is significant that the prefix " British " to the Commonwealth is omitted in para 2 of the declaration and in all subsequent paragraphs the association is simply called consistently "the commonwealth of Nations." Again, it is important to notice that the members of the Commonwealth are described as " independent " and not merely " autonomous " as hithertofore And, lastly, that the change in the basis of membership has been made only in the case of India, and that " the basis . . . . of membership (in the case of all other members) is not hereby changed." It is true that once the door is opened by an Indian Republic to free, full and equal membership it will be almost impossible to deny the same status and terms to others—say South Africa or Pakistan, if either chooses to become a republic Such a fear has been expressed by General Smuts and Lord Simon among others. It is also possible that Burma may rejoin the Commonwealth on similar terms and that the Irish Free State may also do the same at some later date.

Secondly, it is clear that from the 26th January, 1950, Indians shall not " owe allegiance " to the British Crown and that the head of the Indian Republic shall be an elected President, who will express the sovereign will of the people and exercise the functions hitherto performed by the King. It is true that the King—and not the Crown—shall be the symbol and Head of the Commonwealth, but, as was made clear by

the Indian Prime Minister in the Indian Constituent Assembly the King will have " no functions at all. He had a certain status but the Commonwealth itself as such had no body, it had no organisation to function and the King also could have no function."

It appears that this Headship of the Commonwealth was provided to give to the Commonwealth countries a unity in International Law and a higher status than to friendly, foreign countries. It was explained by the Indian Prime Minister in the Constituent Assembly that legislation shall have to be passed by the Parliament to ensure to the member countries of the Commonwealth a better status—something between citizens and foreigners.

Attention may also be drawn to the last paragraph of the London Declaration of 27th April, 1949, that the purpose of the free and equal association is to cooperate freely " in the pursuit of peace, liberty and progress."

II

The ideal laid down in the last paragraph of the London Declaration of the 27th April, 1940, is certainly a lofty one—but there exists today a number of obstacles in the way of its realisation From the Indian standpoint there are three main obstacles in the way of her free and full cooperation with other Commonwealth countries.—

The first is the imperialistic outlook of Britain herself and the support she gives to the maintenance of imperialism in South-East Asia and elsewhere. A fresh indication of her illiberal attitude was given only a few weeks ago by the unfortunate declaration made by her on the question of giving information to the United Nations on conditions in her colonies and dependencies.

Both these policies—those pursued by South Africa and Pakistan—are in reality against the principles of liberty and progress and contain the seeds of war, and therefore militate against the principle of peace as well—and if the Commonwealth system of cooperation is to endure, both these policies should be abandoned The Commonwealth which now contains both the white and the coloured peoples and also persons professing different faiths can only last if it is built upon the democratic principles of Liberty, Equality and Fraternity and a living faith in free discussion It is only then that the Commonwealth can truly become an instrument of Peace and Progress in the world
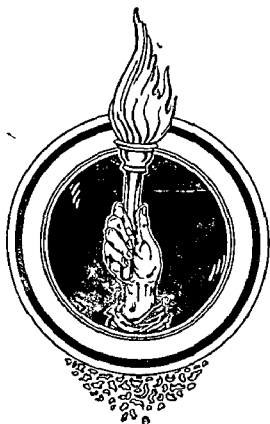
BUT HE DENIED

SHRI CHHAIL BEHARI KAPOOR, *Ex M L C., Advocate, Bareilly*
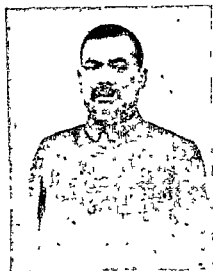
[Shri Chhail Behari Kapur, advocate, Bareilly is an eminent publicman. He was sometime a member of the Provincial legislature He has been a colleague of Khannaji on the various educational bodies of the Agra University He knows Principal Khanna intimately and appreciates the various qualities of his head and heart. Being impressed by Khannaji's commercial insight he offered him a post on the Bareilly Banking Corporation which the illustrious educationist declined The letter is very informing and shall be read with interest]

Though I am sorry to learn that my old friend and colleague Principal Hira Lal Khanna is retiring from the principalship of B N S D. College, it gives me pleasure to know that a movement is afoot for bringing out a commemoration volume on the eve of his retirement. I first came into contant with him in 1921 when my membership of the Provincial Board of Industries (as a representative of the then Legislative Council) took me to Kanpur. Later my membership of the Council of Affiliated Colleges of the Allahabad University brought me into closer contact Those contacts became still closer in 1927 when on the establishment of the Intermediate Board I found my friend the boss of the show along as members of the executive council of the newly constituted University. Our approach to public questions of the day being similar, we rarely disagreed. A year later the senate of Agra University returned me as one of its representatives to the Board of High School & Intermediate Education U P. He was already a member of that body, having been associated with it ever since that body came into being in 1922 On the Intermediate Board I found my friend the boss of the show along with such stalwarts as Dr. Tara Chand and L. Diwan Chand.

On the senate of Agra University he sat as a representative of the registered graduates for four consecutive terms, but by 1938 he had become so fed up with this University's politics that long before the expiry of his fourth term, on the occasion of the senate meeting of 1938 he told me and his other friends that he was finally retiring from the membership of the University senate and would not seek re-election to that body. He adhered to that decision and thereafter never sought re election to the senate or to any subordinate bodies of the Agra University, though it may be mentioned that he has maintained his association with other Universities of the Provinces My contact with Khannaji in the educational sphere ended practically in 1938 but when in 1943 as the Chairman of the Bareilly Corporation (Bank), Ltd., I invited him, on the occasion of the conversion of the Bank from a private into a public Company, to accept a seat on the Bank's Board of Directors, he generously gave his consent, though it meant one more addition to his already multifarious public engagements. Like a conscientious public worker that he is, he has rarely missed any meeting of this body though every such meeting has involved him in a tiresome journey of 400 miles without the usual compensatory benefits. He has shown himself to be a reservoir of strength to his colleagues on the Bank's Board of directors.

On hearing of his impending retirement from the principalship of B N S D. Inter. College which I regard as his creation and as a jealous younger brother of his son Shri Nandlal Khanna, I invited Khannaji to accept a well paid office of top importance in my Bank (now second in size among the scheduled Banks incorporated in the United Provinces), but he declined it because of his life-long association with Kanpur. The public life of Bareilly would have been richer, if my invitation had been acceptable to Khannaji, but we do not grudge Kanpur the pride of place which it has in the affections of my friend. Let Kanpur long enjoy this pride of place.
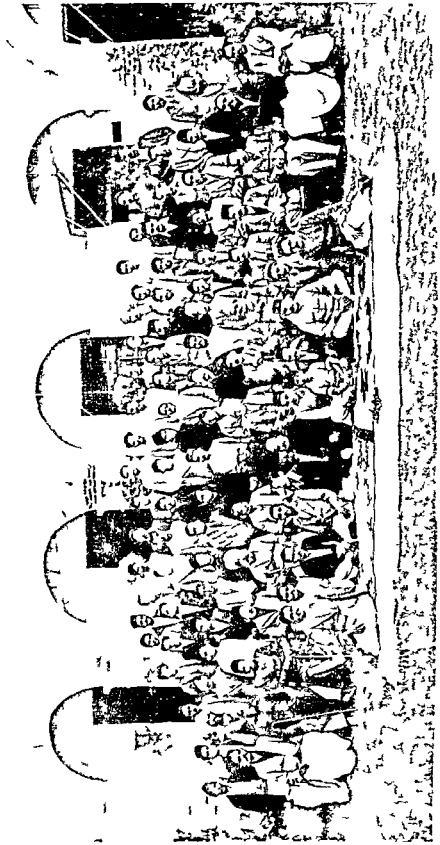
Kl anna l at tl e old boys Association of the B N S D College 1936 1937
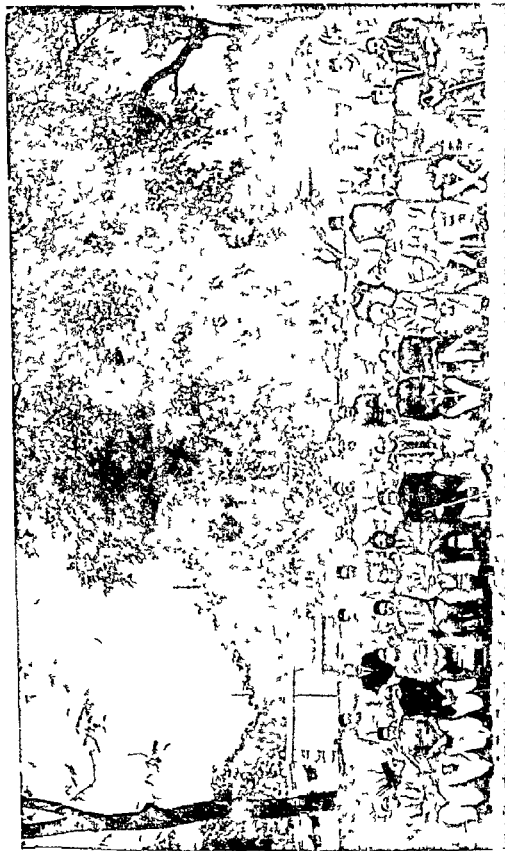
Khannaji (seated 4th from the right) among the educationists and businessmen of Kanpur (1938)

BEAUTY IN ARCHITECTURE AS A BASIC ART

Professor P K Acharya, I E S , Mahamahopadhyaya
M A , (Cal) Ph D (Leyden) D Litt
(London), Head of the Sanskrit Department,
Allahabad University

[Prof P K Acharya M A , D.Litt I E S *Head of the Sanskrit Department of the* Allahabad University has been a close associate of Khannaji on the various academic bodies of the University He is a great living authority on the ancient Indian architecture The article given below is a proof thereof]

Food and shelter are two primary necessities of life All living objects need both It will be a matter of speculation only to try to ascertain the comparative values of these necessities It will however, be not much wrong to think that life can sustain longer without food than without a proper dwelling Thus both nature and human intelligence has provided shelter before the advent of life This is true both in regard to nature as well as human device For the protection of life from the inclemency of weather the Providence has also supplied weather proof skin and hair Clothing was an invention of man when he began to be civilized It is difficult to imagine whether clothes were devised for the protection of the body or to decorate and beautify it by covering certain unsightly parts of the body Nature has, however,

provided hairy cover to hide what is known as the private parts As one of the three main attributes of the Creator is beauty (Sundara), other two being truth (Satya) and propitiousness (Siva) the natural objects supply the standard and model of art No natural object is designated as craft In the divine creations showing great intelligence and skill there is no room for craftsmanship by which something is produced that lacks in beauty, dexterity and art It is thus not certain if the inventor of clothing aimed at beautification along with protection or merely wanted to serve the utilitarian purpose

This dictum will be equally applicable to all the primary necessities of life, viz , food, cloth, and house When a sense of beauty is deliberately shown in the preparation of food, clothes, and houses in addition to their utility, they will be objects of art In divine creation no objects lack in beauty although all objects have their utility But in man's creation there are objects in the construction of which art is altogether neglected or deliberately ignored for economic and other reasons In this short article only the construction of houses is intended to be discussed

Most of us have but a vague idea about architecture "Seven lamps of architecture" could not remove this vagueness from our mind "Architecture, it must be understood, is something more than the mere art of building in any form, and, if a definition is required it must be that it is the fine art of designing and constructing ornamental buildings in some lasting material" This implies that an object of architecture must have a well planned design As the creator designs the shape of a child male or female, so the architect designs his object of construction with a definite plan to indicate a symbolic idea Like that of the normal child the design of a building must be perfect in all details Deformity of a child is an exception rather than the rule Thus in constructing an object of beauty or art it should not be defective in its design or birth Like the craftsman's creation if an object lacks in beauty at its origin no amount of decoration can turn it into an object of beauty

The second requirement of architecture is that its naked or outline beauty must be enhanced by ornamentation And the third requirement is its durability being built in lasting materials For otherwise there

would be no normal desire to invest in the construction and decoration of a structure much thought, labour and money. "It is thus distinct from common building or civil engineering." The engineering skill is required to serve the utilitarian purpose only. An engineer looks for stability, ventilation and necessary accommodation. For the love-marriage the house holder's utility takes the secondary place in the choice of partner. Beasts of the forest require mates for the pleasure of multiplication. Romance of civilized people needs mental and intellectual companionship in a greater degree than the physical one.

In architectural buildings the aesthetic hankering after beauty has to be satisfied. The owner like the builder must possess a sense of beauty. He must have aptitude, means and education to enjoy beauty. He must be aware of the elements of beauty as revealed by God's creation. These elements of beauty consist in uniformity, proportion, *symmetry and* harmony.

In divine creation uniformity is not a matter of convention. God has created species of lower beings and races of men and women in certain 'form'. If any one of a particular group looks different from other members he would lack in beauty. Similar is the case with proportion. If a man or a woman is dis-similar in proportion from his or her group there would be disproportion. If a man or woman possesses an unusual neck, either too short or too long, the beauty of his body is marred. If there be an extra finger in the hand or an extra toe in the foot it would disturb the form and proportion If for instance a woman grows a moustache unlike all other women she is ugly. On the other hand if a man does not possess a moustache he will be dispelling in look. About the necessity for symmetry no elaborate instances are requirred. If one eye of a beauty is smaller or dis-similar from the other the whole beauty is spoilt. Same would be the effect in case of ears, hands, legs, feet, etc

Harmony supplies a synthesis. Three other elements of beauty, being perfectly correct individually, may disturb their harmonious combination like a single discordant note in music.

These four are the common elements of beauty. They are applicable everywhere. In architecture they are specially required. A fond mother may consider the deformed child as an object of beauty. That will, how-

ever, not make it an object of art Aesthetic is a science Individual choice has no room to play in it Thus an object is either scientifically beautiful or it is not Individual liking or disliking cannot change its aesthetice position

The art of building was realised before the science of building developed The earliest buildings in the world are the cave houses In the construction of these houses the builder had not to bother himself about scientific calculation of strength of the foundation or the load bearing capacity of the wall as both the foundation and roof were supplied by the natural rock In such constructions the builder is concerned only with the inner side that is the floor wall and ceiling In India we possess some 3000 rock cut or cave temples The Chatya windows at caves at Nasik Ajanta and other places are the external decoration of extraordinary beauty The Kailasha temple at Ellora is a full pledged structure wonderfully cut out of the surrounding rock It is decorated with spherical roofs (Sikharas) of most perfect design and construction The outer side of its walls and ceiling have been finished with sculptural images cut out from the rock commencing the construction from the back, front, or bottom part of the images with extraordinary accuracy in matter of uniformity, proportion symmetry and harmony In English there is a drama called "Never die before seeing Naples ' For an Indian life would not be worth living without seeing this wonderful Kailash temple

The Sikhara (spherical roof) is the highest development in the art of building Its whole object is aesthetic and symbolic The spires of Christian churches like the Sikhara of the Hindu temples point to infinite God who can be reached by worshippers of His symbolic idol or image installed in the shrine which is the interior of Sikhara or spire The stupas of Buddhists Jainas and Hindus and the domes on the Muslim Mosques representing the round globe are crude symbols in comparison with the pointed Sikhara of the later growth and sky reaching spires of the beautiful Christian Churches

These round and spherical roofs illustrate the different fineness of artistic feeling in the builder They supply the racial distinction and the standard of artistic development among peoples of different culture

and intelligence These features are not and should not be confined to religious buildings alone They have been used in dwelling houses palaces and public buildings of civil and military character Schools colleges, universities hospitals, courts of justice and even railway staitons are decorated with such symbols of beauty and significance A bride should bear a distinctive feature and should not be mixed up with unmarried girls This is possible only by her behaviour, decoration and look If a structure is architecturally constructed its look itself should indicate whether it is a residential house or an office, whether it is a prison or it is a school building, whether it is a grain market or a railway station

It is in this sense that architecture proper is known as the most basic art and the architect is honoured with the designation of Vishwa karma which is a name of God as the creator of the Universe Thus in our Silpa Sastra architecture is taken in a broad sense It implies all things constructed as an object of art It denotes all kinds of buildings, religious, residential, military large or small, and their auxiliary members and component mouldings It covers town plan laying out gardens constructing market places including ports and harbours, making roads, bridges gate ways and triumphal arches digging wells, tanks, trenches, drains sewers, moats constructing enclosure walls, embankments, dams, railings landing places flights of steps for hills, rivers seas and ladders It connotes articles of furniture such as bedsteads, couches, tables chairs thrones wardrobes cages baskets, nests, mills, conveyances lamps and lamp posts for rooms and streets It includes the making of dresses and ornaments such as necklaces, chains, crowns, head gear and foot and arm wear Sculpture is the handmaid of architecture which latter deals with carving of idols of deities status of men and women, and images of animals and birds, and plants and similar objects

All these objects may be made architecturally or as objects of art They are also made as crafts which lack in aesthetics and miss the elements of beauty viz uniformity proportion symmetry and harmony But all builders and makers of things possess an inherent sense of beauty in their nature and attempt to beautify their creations This gives

rise to unartistic and grotesque constructions like the decoration of a Behari girl with European boots and frocks and Indian anklets bangles, necklaces, Korta, ending with a Behari small cap over the Chuti and hanging locks Architecturally trained eyes and intelligence cannot tolerate such a murder of beauty

A LIFE UNTEMPTED BY GOLD

DR D PANT—Professor, Lucknow University

[Dr D Pant is an erudite scholar He is an old friend of Khannaji He is a keen observer of men and things Trained to observe the minutest details his views about Khannaji's inner life shall be read with interest His sentence His great driving power his erudition and his time were always canalised for the good of others speaks volumes about the traits of Khannaji's character]

Shri Hira Lall Khanna known among his intimates as Khannaji came into this world in 1889, and by virtue of time he reaches the right age of sixty I call sixty the right age because one whether one likes it or not, has to make a sharp break with one's own past Even the service rules encourage this view point There is no denying the truth that is patent in the village saying साठा सो पाठा —the age of perfection

Therefore, a man who has been rightly training his mind, during his growth and maturing, goes in for stock taking at the beginning of sunset not in term of filthy lucre but in term of service rendered and duty performed Khannaji is definitely a man of this type

I had the pleasure of knowing him in 1910 and since then I have always maintained contact with him in the mental field Distance did make personal approach too difficult, but time cemented our bonds instead of loosening them

I was attracted to him by his strong will power and ardent devotion to any cause that he takes up His great driving power, his erudition and his time were always canalised for the good of others and not for his own aggrandisement

Khannaji during his college days was an ardent champion of Arya Samaj He did a lot for popularising the *samaj* and its activities And this he did at a time when the *Samaj* was a suspect of the British Government and also of the *Sanatanees* Years after on ground of principle he switched himself off the *Arya Samaj* and became a strong supporter of the *Dharm Samaj* It needs considerable confidence in one's own self to make such lightning changes

Khannaji was not born with a silver spoon in his mouth He had a hard life He fought out the odds and overcame them He belived in austerity, and practised it those early years of the 20th century—when none knew it or even heard of it His programme of physical development, mental equipment and spiritual wanderings was so nicely balanced that it was always a pleasure and I may add a source of inspiration to hear him and to appraise his arguments

The B N S D College is the outcome of his thought and action Thousands of our young men entering its portals will come out as trained citizens, and may they be saturated thro and thro with the ideas and the ideals of Khannaji whose life is a sermon on service The harmonious blending of the guide and the path seeker in one has been beautifully achieved by Khannaji during his *tapasya* May he in the evening of his life garner his resources and precious experience to carry on his activities for strengthening the moral tone of the people in this country which, alas !, is rapidly sagging towards the nadir, and may he have the supreme satisfaction at the time of exit from this world that he lived for others on his own conditions untempted by gold and undismayed by the frowns of tin gods strutting before the foot-lights dressed in brief authority
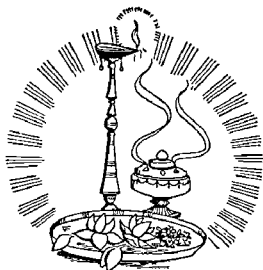
A FINISHED GENTLEMAN

Principal BASHIR AHAMAD SIDDIQI

Shibli College, Azamgarh

[Mr Siddiqi brings out the impression which a chance meeting with Khannaji creates on a stranger With his broad smile radiating warmth and extending welcome to the newcomer he dissolves all unwanted formal reserve in no time He leaves the impression of a finished gentleman and experienced educationist on a stranger The latter remembers him as a force, quite dependable

In his short contribution he has described the Indian culture of the day as a rainbow culture He emphasizes the point that the unity of Indian culture consits in the balanced diversity of cultures that flourished in the ancient land]

A stranger's entry into a railway compartment is usually a matter of visual thrust and counter thrust at least The sitting brothers brow beat every new comer Stern looks challenge determined looks Battle of looks takes place, then there is peace followed by its arts

A stranger (of course not now) found Principal Khanna an exception to it quite above it A broad smile dancing on his face, radiating warmth and extending welcome to the new comer dissolved all unwanted formal reserve in no time His dignified courtesy created a fine impression seldom given or received in chance meetings of strangers in a railway compartment It was when I was going to attend the Banaras session of the U P S E A in 1936 On alighting from the train at Banaras we parted company

The next day in one of the B H U hostels Principal Khanna received tribute of respect from every quarter which confirmed the impression I had formed during our first chance meeting in the train

His views as expressed in his talks and his ways of guiding the deliberations of the Association showed that he was able to take a detached

and balanced view of things on point of merit Our subsequent meetings at his own house at Kanpur in the U P S T A or in the Board of High School & Intermediate Education convinced me that he is a finished gentleman and experienced educationist His service to these institutions deserve to be appreciated gratefully

Offhand he would make no promise Once committed he fights to the finish When approached to support my candidature in the Intermediate Board election he said first he owed it to himself to be quite satisfied in the light of his guiding principle merit before man Since he did not then know the candidature of all the candidates he said he could not make any promise I deserved his support and he pledged and honoured it like a warrior Many friends who were lavish in their promises ate their words

Losing my battle factually he won it morally I was satisfied and grateful He is a force quite dependable He stands out whenever he cares to take up his stand

Principal Khanna has nursed and brought B N S D college up to its maturity and present high status The authorities and the students of the institution cannot be too grateful to him He has grown grey in serving the college with his precious life blood and leaves it in its full bloom It is an outstanding achievement of his life We all envy him and his records of service He can rightly say I DID IT

May he live long to see his college growing still rising to the heights of his dream Our best wishes attend him

ARE 'OBJECTIVE TESTS" ADEQUATE?

SHREE B TEWARI, M A, Ph D

[This is really a learned essay on Objective tests so widely vaunted these days The Indian University Commission presided over by Sir Radha Krishnan has also recommended the adoption of such tests as they are better devices of assessing a candidate's knowledge only in certain directions Its chief characteristic is the avoidance of the essay type of answer which is responsible for much irrelevancy vagueness and false window dressing in the answers It is easy to guess the variety of question types in this objective method of testing costly in the question paper but very cheap in valuing the answers

The author Dr Brijgopal Tewari M A Ph D is Lecturer English Department, D A V College Kanpur and an ex member of the staff of the B N S D College]

Examinations have come to dominate social life in modern times, and the essay has come to dominate examinations With the increasing popularity of mental testing, however, the validity of the *essay type* of examination has been widely questioned Is the avowed object of an examination really, carried out, if, even in practical subjects like cooking, needle work, music etc, a middle school girl is called upon to produce miniature *essays*?

Not only has the traditional system of examinations in India had an evil effect on syllabus and teaching but it has also been amenable to bluffing, evasions the writing of "words words words' and the agony of them It has further, created temptations of cheating corruption and favouritism Moreover subjectivity in scoring and coarse sampling, even in viva voce tests, due to personal whim and fancy mood of the moment, or widely varying standards of expectancy among the examiners have made examinations in our land largely, the plaything of *chance*

The University Education Commission have therefore suggested the replacement of the present system of examinations at the earliest

possible time, by "Objective tests" on the lines of those prevailing in the U S A Objectivity, it is claimed is not the property of material objects alone, but also of relations, laws principles universal truths and ideas Not only are most of our sciences objective but many thinkers seek universal objective principles even in art and morals This principle of objectivity is now being applied to examinations

If examinations, really give *motivation* to the activity of the learner the objective test, with its greater definiteness and the searching nature of its questions, is likely to whip up the students activity to the maximum The student will have to work steadily all the year round The greater his general knowledge, the higher will be the reward He will not be penalised for mis understanding a particular question or for being sick on the day, on which its answer was taught, to the same extent, as he is in the Essay type of test

As regards the measurement of factual knowledge, the objective tests ensure greater validity, reliability and precision along with greater ease in administration The measurement, in such cases, is more quantitative abstract and nicely graded than in tests of the traditional essay type The objective test makes a wide range of questions possible As the student has only to make a mark, write a number, a letter, or a few words, 50 to 100 items can be answered in an hour's time Such a test can be scored, repeatedly, by the same person without any variation in the score or by a number of persons or even by a machine without any disagreement in the scores No errors or irrelevant factors can enter into the results Thousands of students can be examined in one day and the scores or marks completed, on the next, sparing students the strain of long waiting for the results and saving a good deal of time for useful, instructional work

The objective tests thus save time, money and personnel and dispense with the vast array of persons,—moderators, external examiners etc ,—now employed for conducting examinations This examination does not lend itself to cramming and hasty preparation The boys do not have to spoil their eye sight, they are not tempted to practise dis honesty There is no such thing as "spotting questions or covering the subject in predictable cycles

4. What did Eric Linklater define as "a biological system of uncontrolled apertures."

5. (a) What is the only quadrisyllabic rhyme in classical English Poetry? (b) Who wrote it? (c) And in what poem?

6 What is the name of the Prima Dona in Walt Disney's Silly Symphonies"?

7 Who founded a Society for Grinding Down the Faces of the Poor, at Oxford?

For advanced students of literature, questions like the following ones, may be suitable —

Supply authors or sources:—

(i) Forest on forest hung about his head
Like cloud on cloud.

(ii) What God abandoned these defended,
And saved the sum of things to pay.

(iii) He lay like a warrior taking his rest,
With his martial cloak around him

(iv) No lion can him fright
He'll with a giant fight

(v) What he chiefly remembers about it is a horrible, an intensely horrible, face of crumpled linen.

(vi) You might easily take her for forty-three
In the dusk with the light behind her.

(vii) But masters, remember that I am an ass; though it be not written down, yet forget not that I am an ass

(viii) 'Tis better to have loved and lost.
Than never to have loved at all.

(ix) Love is like the measles; we all have to go through it.

(x) Would she could make of me a saint
Or I of her a sinner.

(xi) A night of memories and sighs
I consecrate to thee.

(xii) She is loud and stubborn, her feet abide not in her house
Now she is without now in the streets, and lieth in wait, in every corner

(xiii) But beauty vanishes beauty passes
However rare . . . rare it be

The form may, at times, be changed and in the case of poems parodied, the students may be asked to supply the name of the (a) author, (b) source or (c) poem parodied —

(i) And O my son be on the one hand good
But, on the other hand, do not be bad
For that is very much the safest plan

(ii) The clothes of a boarding house bed, though produced ever so far both ways, will not meet

(iii) And all I remember is friends reeling round
As I sat with my head Twixt my ears on the ground

Of a somewhat similar type are questions like the following ones —

A What famous character

1 Could call spirits from the vasty deep?
2 Waited for something to turn up?
3 Gave every one of his parishioners a hassock and common prayer book?
4 Was wounded in the Matabele war?
5 Showed, on his forehead, "a representation of a small horse shoe" when he frowned?

B Who created the following characters —

1 Mrs Malaprop?
2 Flurry Knox?
3 Captain Horatio Hornblower?
4 Sandy Arbuthnot?
5 Mr Justice Cocklecarrot?

The Multiple response question makes a statement, together with 4 to 5 alternative answers only one of which is correct For example —

" The most important product of Chile is 1 Gold, 2 Nitrates 3 Cattle, 4 Wheat Underline the best answer or indicate its number " The chance of guessing is curtailed by increasing the number of alternates and their plausibility

The True-False form consists of a statement which the pupil is to judge true or to say ' Yes ' or ' No ' to For every item of fact, there is a true and a false form of the question e g ,—" White blood corpuscles are more numerous than red " (Yes No) The pupil is to underline or to enclose the correct answer

Matching exercises are, particularly, useful in teaching certain kinds of knowledge, such as dates and events authors and their works statesmen and acts of state, men and their descriptions things and their definitions Examples —

Discovery of America	1832
Battle of Plassey	1492
First Reform Bill	1757

The pupil has to match the event with appropriate dates But if only a few examples are used guessing enters and if large number are used, there is some waste of time

The best—answer type is a variant of multiple response, but it allows long statements to be made Example —

" The chief function of the white corpuscles is the —

Destruction of the disease-germs in the blood

Carrying of Oxygen to the tissues

Carrying of food materials to the tissues

The pupil has to underline or enclose the best answer The identification exercise is akin to some of the above forms of the Recall Type requiring the pupil to supply authors, sources etc while the re arrangement exercise is akin to matching

The new type questions require great skill in construction, they also take a long time to construct but once constructed they last a number of years They consume more money because the question-papers are voluminous, but they are time-saving in the correction The

EDUCATION—ITS SWING & MOMENTUM

DR D PANT

Lucknow University

"Magnum est veritas et praevalet
(Truth is great and it prevaileth)

[This is the sincere utterance of a devoted teacher in a spirit not of mere complaint but of righteous indignation at the sorry spectacle of Politics looming large in schools of learning, exploiting students weaning them away from studies luring teachers to lucre and lethargy and bringing the Public down against teachers The remedy lies in (1) the selection of honest teachers who know and do their job rather than those who are supposed to do so (2) adequate emoluments and fair promotions (3) enforcement of discipline both among the teachers and among the taught and (4) lastly freedom from the baneful influences of Politics and party Politics

The writer Dr D Pant B Com Ph D (Dublin) is on the staff of the Commerce Department of the Lucknow University]

fault is that of the employer If the right men are in charge of those subjects then criticism must fall to the ground, for it is meaningless But what do I mean by right men?

The type of right men I have in view does not necessary connote a long string of alphabets after one s name The man who has so trained himself that he studies the students problems and difficulties from their standpoint is the right man This hurtling of mind through time and through space I consider the most important attribute of a teacher If the mind becomes rigid—loses its plasticity then the process of degeneration has set in He is out of place for his job

The right type of teachers does not consider "the course prescribed" as the be all and end all of his activities He must go beyond it, and try to correct the students' perspective not by coercion, but by persuasion While lecturing on a subject, he must not be afraid of digressing and giving his views on allied subjects of importance

It is admitted that he has got to finish the courses within the prescribed time but a good teacher does not worry himself about it, as he knows that talks at random are of great utility than "the wooden courses", in the life outside

If the teacher keeps a receptive mind and is sympathetic and enlivens his lectures by outside talks there is no reason why his contact with the students should not bear fruit

In the above there is one caution It is not only for the students to be normal, but it is also necessary for the teachers Pose should be cut out The veil between the teachers and the students should be removed Once the above conditions are created I am sure, life in our institutions will be normalised

An honest teacher knows his limitations well On factual basis, he may be right, but on interpretations, the students may be sometimes right Here is the rub! for some only

The teachers have no monopoly of correct thinking and the students do not specialise in wrong thinking The recognition of the fact that the greatest Indian committed very frequently "Himalayan blunders ought to be an excellent soothing emollient for the weak nerves of some of the delicate teachers

if you cannot faithfully observe the rules, you leave the institution or the party Man is a gregarious animal He lives in groups If one group does not suit him, he gets out, and joins the other which he thinks suits him

The essence of discipline is Faithfulness with capital F If you cannot be truly loyal, then you have no business to weaken the institution or the party by remaining in it

The second essential attribute of discipline is rigid control over oneself Given these two attributes, it is not difficult to evolve a highly disciplined group or nation of Japan and Germany Take India Individully Indians are faithful, but they break down when subjected to group or party strain It is because they are worshippers of personalities, and not of principle, though they invariably talk much of principles Even an Indian's faithfulness to God is weak For two reasons 1 He wishes his God to function for him, and for no one else, and 2 He projects Him into all the activities of Life He further lacks the two essential attributes of discipline—Faithfulness to group, and rigid control over himself Thus the standard of discipline in India is very low

This political exploitation has played havoc with the educational institutions Strikes for this, or that, or no cause, are frequent, and that has a bad effect on the inflammable minds If strikes can be successful anywhere and can be indulged with impunity then they can be of the students, by the students, as economic considerations are clean ignored They have no effect In factories and other places, strikers lose their wages, and that's a great deterrent

Whatever is done by the Public or the State, every effort should be made to persuade the students to raise up the standard of discipline The Politicians should not exploit their emotions and the students should be left free to devise ways by which they get more control over themselves

Undisciplined life, is like uncontrolled waters spreading ruin, devastating life, and property

The third complaint refers to Contacts—contacts between the teachers and the taught Personal touch The public goes hoarse on this issue It feels that the personal touch in the residential 'varsities

is missing i e , the teachers and the students move in different orbits and they do not come frequently in contact

It goes a step further and demands that contact ,should not be formal, but personal and intimate What does the phrase "intimate personal contact ' mean? And is it desirable? A friend of mine once wrote to me "you are my intimate personal chum" The very word "chum" includes the ideas of intimacy and personal touch But in the phrase "intimate personal contact, ' there is a variation with what has been shown above The phrase is correct for you can have contact by impersonal methods as well—phone, letter, telegrams etc , and the personal contact may be casual or intimate

Admitting that the phrase is correct, is it possible to have "intimate personal contacts? ' The answer is definitely in the negative, because both—the teachers and the students—have their likes and dislikes There is no such thing as mass production of contacts outside the Power House The essence of contact is Free Will

Some students take a fancy to this or that teacher, and they establish the contact The initiative should be taken by the students, and not by the teacher or else instead of good relations that may lead to strained relations The fact is that in this matter teachers are conscious of their limitations and so they do not wish to force themselves into companies where they may be tolerated but not welcomed A grown up boy does not like the company of the elders He does not feel at home A grown up son feels asphyxiated in the presence of his father, He does not feel free He chafes against the restraint which the presence of his father imposes upon him He cannot be natural He is natural in the company of boys of his age The contact should be freely secured and not thrust upon the students Forced contact rubs, and creates friction

The public attaches more importance to Degrees than to knowledge acquired They demand curtailment of holidays, increase in the working hours without at all taking into consideration the loading on the students A perpetual joke of theirs concerns the off hours of the teachers They consider teaching a simple affair They know not that for the right type of work, the teachers have to work more than the students

Who is to take up these problems? The students have driven out the Britishers, they have to exterminate the zemindars and eliminate Capitalists, expose the old foggies, run down their teachers and teach proper position to their begetters—the parents. In this blood curdling programme where is the room for study? The dazed parents can neither fraternise with nor disown their own products. They wait and mark time, while the Merry go round of Education based upon NUMBER swings faster and faster on account of the boost provided by the tin gods dressed in brief authority.

A LETTER OF APPRECIATION

The Late Shri Gokul Chand

[This is a letter of appreciation from the Late Shri Gokul Chand M A T D (Lond) ex Director of Education Himachal Pradesh The illustrious man was a colleague of Khannaji on the various academic bodies of these Provinces for over twenty five years Though the two belonged to two different groups the eminent man gave Khannaji what is his due by sheer dint of merit in this letter]

Letter from Shri Gokul Chand M A T D (London), Director of Education, Himachal Pradesh, a colleague of Khannaji on various academic bodies for over 25 years

I am pained to learn that Shri Hira Lal Khanna is retiring from the Principalship of B N S D Intermediate College, Kanpur To me Principal Khanna and the College always appeared to be synonymous One cannot think of the College without Principal Khanna and of Principal Khanna without the College The phenomenal progress made by the institution is entirely due to Principal Khanna's devotion and farsightedness

Principal Hira Lal Khanna took active interest in various educational bodies and has been an important member of the U P Intermediate Board, the Agra University and the Allahabad University He is one of the most eminent educationists of the Province, and I am sure that, though he would retire from the Principalship of the B N S D College, he will still help various educational institutions with his ripe experience and sound judgement I wish Principal Khanna every happiness and prosperity in his retired life

WHAT EVERY TEACHER OUGHT TO KNOW

Shri B Tandon, M A

ex Principal, G N K Inter College Kanpur

[Teachers are often seen greatly dissatisfied with their lot Their dissatisfaction is due not a little, to their meagre or mediocre social recognition in spite of the tall talk about education In this beautiful note the writer gives some aids to contentment to the school masters They should love their job love their pupils curb their ambitions except the ambition to spread knowledge and goodness work hard at their lessons develop a personality and cultivate humour and cheerfulness Undoubtedly so Great thoughts and small desires go all together! Verily the path of happiness lies in peace and wisdom not in power and prestige

The author Mr Balkrishna Tandon, M A, ex Principal G N K Inter College, Kanpur, is an ex member of the staff of the B N S D College]

Teachers—particularly the 'school masters'—are the true architects of a nation If they have lost much of their respect or prestige they have to share the blame with modern society which is notorious for setting value on spurious things The average teacher has forgotten his dignity just as man in general has lost his Divinity and begun to identify himself with this terrestrial body KNOW THYSELF is the gospel which must be addressed to every thinking man in general and to every teacher in particular I look upon a teachers' job as a thrilling experience in life and I am very happy that I got an opportunity of influencing the minds of boys both in and outside the classroom

I have come across many colleagues in the teaching profession who curse their fate for putting them in this line They complain that they have little or no social status that the emoluments are poor and the boys are refractory Some of them are 'good' teachers in the sense that they prepare their lessons diligently and try to impart their learning as well as they can But they do not love the job And no one who does not love his job can do his best Efficiency requires both

> cies, his temperament, his cast of mind, his vigour, his experience etc. It is as complex as Einstein's theory of relativity, almost as little understood."

This beautiful picture should remove the popular impression that a 'good' personality means handsome features, a commanding height and upto date garments Good looks attract and 'the apparel oft proclaims the man,' but it is a very shallow judgment which bases its opinion on external appearances. How many are there which appear, like rotten apples, "goodly to the sight but rotten at the core." Do you know that Lenin was a little bald-headed wrinkled man and when he sat in a chair his legs were so short that they hardly touched the floor. He had also bad physique. And yet he became the Dictator of Russia. His countrymen swear by his name and he is the only man in the world whose body has been embalmed in a glass casket. Gandhiji was long-eared and had none of the popular attributes of an impressive personality. Numerous examples of woeful figures and stupendous achievement can be given.

What stands a teacher in good stead is his quiet self-assurance which is incidentally one of the most prominent features of a good personality. Self-confidence is needed but it must be accompanied with modesty. It should not be of a swaggering type and must be free from bluster. Of the many sayings in the Bible I like very much "The meek alone shall inherit the earth" and I suggest it should be displayed prominently on the walls of rooms in educational institutions There are also the famous lines of Tennyson.

> "Let knowledge grow from more to more
> But more of reverence in us dwell."

Every student should remember these lines by heart and he will find a picture of it in his teacher who should impress the class as much by his good manners as by his learning. Let us do a bit of heart-searching and reply. Do we lose our temper in the class? Do we indulge in irresponsible talk? Do we utter cheap gibes at the expense of boys and try to humiliate them? If we have these weaknesses we can never win the respect and esteem of our students Bad temper alone is the one besetting sin which can spoil the career of any man. Among

the 'Great Thoughts' published in a paper I once read "Always keep your temper If you are in the right, you can certainly keep it If you are in the wrong, you cannot afford to lose it" Later I learnt that Mahatma Gandhi was so much impressed with this idea that he got it hung on the wall of his room in Sevagram

It is good for a teacher to be dignified but he should not stand on his dignity He should also be able to make up his mind quickly and then stick to his decision The man who is ever vacillating commands no respect He is himself tormented by indecision If he is a grumbler, people avoid him A sunny smile inspires confidence, a sour and frowning face is repulsive It should also be remembered that respect and love cannot be commanded, they are won In order to capture the hearts of boys the teacher should encourage them constantly and he should distribute praise as liberally as he is inclined to blame them "Be hearty in appreciation and lavish in your praises" is a piece of advice which the school master should never forget in dealing with his boys

Does the teacher go 'prepared' to the class? If he does he will enjoy his work immensely and the class would respond A good lesson, I have seen, is wonderfully stimulating both to the teacher and to the boys But I am sorry to say that there are some teachers who take no pains over their job and expect to hoodwink the class They begin their work in the class as Rousseau suggested a love letter should be written, they "begin without knowing what they are going to say and finish without knowing what they have said" I remember Winston Churchill once made a very caustic comment on a speaker who had preceded him in the debate Churchill remarked, "When the speaker began he did not know what he was going to say, when he was speaking he did not know what he was saying and when he finished he did not know what he had said" The same is true of many classroom lectures Some teachers are satisfied merely with dictating notes which they consider are a sure passport for success in Public Examinations And it is probably in reference to this performance that somebody once defined a class lecture as "the transfer of a certain amount of material from the notebook of the teacher to the notebook of students

without passing through the minds of either." It is a beautiful commentary.

A good many teachers spoil their talk in the class with mannerisms. " You see," " do you understand," " so on and so forth,"—these are some of the pet phrases which are constantly trickling out of their mouth. And some have curious gestures which attract greater notice than the talk itself. An intelligent student can always foretell precisely the movement of the hand or the head of these mental acrobats and if the gestures are too conspicuous even the best lesson may be thrown into the shade. The speaker should refrain from twiddling his thumbs or playing with his clothes A question is often asked by apprentices in the art of speaking—" What should be done with the hands ? " The answer is—"leave them where they are and don't bother about them". Mannerisms have been aptly described as a "leakage of selfcontrol " and in my opinion they are a sign of neurosis. Some gestures are good but gestures cannot be taught or prescribed. "A man's gestures, like his tooth brush, should be very personal things."

No teacher who does not possess a sense of humour should ever enter a class room. If a teacher cannot enliven his class with a bright remark or jest or anecdote he need not have joined this profession at all. If he is always sombre, grave and sullen, pontificial, in dignity and utterance, he might better have been an ' undertaker ' rather than a teacher. A good teacher can crack a joke and also enjoy a joke at his own expense. A sense of humour is a valuable asset though Lord Northcliffe once said that the man who wished to be a success must stifle his sense of humour. Leave them laughing when you come out of the class and the boys will welcome you and dance to your tune. It should not be forgotten that the boys are creatures of emotion and not of logic and a teacher who has not studied human psychology is a ' misfit.' I reaffirm my view that if the boys are correctly handled the job of the teacher becomes a delightful experience but if they are rubbed at the wrong end it is a hellish thing.

SHRI AUROBINDO AND HIS SERVICES TO INDIA

Dr M Hafiz Syed M A PhD D Litt

[Dr Mohammad Hafeez Syed M A Ph D D Litt has been a close associate of Principal Khanna on the various academic bodies of the Allahabad University and the Board of High School and Intermediate Education U P The learned Doctor is a symbol of the synthesis of cul tures and commands a facile pen His outlook on life is catholic The present article on the life and services of Shri Aurobindo is a proof thereof and is a token of his deep regards for Khannaji]

In February 1948 Sri Jai Prakash Narain a famous Socialist Leader during the course of his speach delivered in Bombay while mourn ing the loss of the Father of the Indian Nation devoutly desired that his worthy place may now be taken by one of the eminent yogi s of India Sri Aurobindo or Sri Raman Maharishi in order to guide the Indian Nation to the goal of its fulfilment and highest destiny Sri A J Doddametji M L A Bombay in a statement published in the Sunday Times said "Mahatmaji s sudden demise has created a void in national life of India that cannot be easily filled The Indian people are instinctively groping in the dark for an effective guidance in this hour of crisis and whence can they expect it except the spiritual personality of Sri Aurobindo?

Both these Indian leaders devout wish and prayer are fully shared by a large number of their countrymen who unfortunately do not re member that Sri Aurobindo loves India intensely and has not done a little to achieve her freedom in his silent but dynamic way We already know his life story how his boyhood and youth were spent in an English School and College, he was fully saturated with the materialistic ideal of Western thought and European civilization so much so that he had lost touch with his mother tongue to such an extent that he had to re-learn it It was after his return to India as civilian of the Baroda

State that he started learning Sanskrit. There was a time in his youth when he was not in sympathy with Indian aspirations and her world-famous spiritual culture During his stay in Baroda his interest in India and her spiritual outlook were awakened which spurred him to migrate to his own native Province and take part in the struggle for the freedom of his people and country He started his political career from the time he took charge of the principalship of the National Council of Education He launched "Bandematram" on the turbulent sea of Indian politics and made it a powerful organ of his cherished goal of Independence and freedom of India Some of his writings were so much misunderstood and mininterpreted by the beaurocratic government that under one pretext or the other he was imprisoned in the Alipore Jail for a year or two where he had complete leisure to think deeply and come to a wise and the most far-reaching decision of his life. While still in the Alipore Jail he had composed a few poems revealing the strength of his new-found faith. "He had become there the sort of man who could peep into Infinity."

Sri Aurobindo had spent fourteen years in a foreign land and he had been both amused and edified by the civilization of the west; but in the end he had found it uninspiring and insufficient. In the central core of the western civilization he found darkness rather than Light. "What shall it profit a man if he gains the whole world but loses his own soul :"

On his return to the Country of his birth he ever kept in his mind the ideal of Service to the Motherland.

In one of his speeches he declared "When I approached God at that time, I had hardly had a living faith in Him.........I did not feel his presence. Yet something drew me to the truth of the Vedas. I felt there must be a mighty truth somewhere in this Yoga, a mighty truth in this religion based on the Vedanta."

He did not ask for *mukti*, personal salvation. He fervently prayed to God in these touching words —

"If thou art, then Thou knowest my heart...........I do not ask for anything that others ask for I ask only for strength to uplift this nation, I ask only to be allowed to live and work for this people whom I love and to whom I pray that I may devote my life."

It may be added that in the light of this deep seated conviction of his in regard to the service of his people and his country there was no conflict or wavering in him between yoga and politics, when he started yoga he carried on both without any idea of opposition between them If by politics be meant the struggle for the freedom of a Country, its economic, moral and spiritual betterment, then, it must be acknowledged without the least doubt in our minds that Sri Aurobindo unlike other yogis of India, has always striven in his own silent but powerful way to work for the salvation of his Motherland He had always had a deep and abiding faith in the future destiny of India which was pre ordained to play a great part in moulding the spiritual tone of the world civilization and making it more human, refined and edifying than it has been heretofore

India's freedom was pre ordained Those who worked and still continue working in conscious co operation with the Divine will, were fully convinced of her final victory because without her freedom, India could not possibly play her mighty role as the spiritual guide and teacher of the world

THE ASHRAM IN PONDICHERRY Sri Aurobindo migrated from Calcutta first to Chandarnagar and later to Pondicherry in 1910 where he first stayed at a friend s place and later took his residence in his own house near the sea shore which was acquired for him The yogasram at Pondicherry that has grown round him during the last more than three decades is a unique " Spiritual laboratory '

It is located near the sea shore in the cleanest part of the town It now consists of quite a number of buildings scattered over a wide enough area In the main Ashram building live Sri Aurobindo, the Holy mother, and some of the veteran 'sadhakas' The library, the reading room the ashram Bank, the meditation hall and court yard, are also in the main ashram compound In the other important buildings are housed the Dinning Hall the bakery, the dairy the laundry, the engineering work shop, the granary the bindery, the dispensary, the Ashram Schools a printing press etc all being under the management of the Sadhakas The mother supervises every little item of the organization of the Ashram and the Sadhaka's work as her instruments, ' the work being invariably

offered as a Sacrifice to the Divine Mother and the Supreme Being

There are numerous Ashrams in different parts of India, but none is so well managed and so well-organised as the Sri Aurobindo Ashram in French India The secret of its success is traceable in its spiritual back ground According to every school of occultism or mysticism or religious Sadhana the essence of truly spiritual life—life in complete surrender to the Divine Will The separate Jiva has to merge his individuality in the transcendental as well as the Cosmic Conscious ness, in other words the Iswara here and beyond whom he wishes to realize and become one with it

In order to realize It, it is necessary to have a quiet and unanxi ous mind, free from all care and worry

The every-day life of this unique Ashram is organised in such a way, that every Sadhaka, is fully relieved of all preoccupation about his maintenance and creature comfort Having made up his mind to tread the path of Spiritual development, the first step he had to take is to accept Sri Aurobindo through the mother as his Guru and guide to whom he generally surrenders all possession joyfully and volun tarily The Guru in return looks after him or her and takes upon himself the fullest responsibility of his or her physical maintenance and spiritual guidance This age-long Indian tradition with its sound principle is followed in the Pondicherry Ashram

When once a person accepts Sri Aurobindo and Holy Mother as his or her spiritual guides, he has to surrender his personal possession and desire to them No difference is then made between one and the other Sadhaka Rich and poor are treated alike All that belongs to the Guru indirectly belongs to all, because she looks after every one exactly according to his need He has no care of his own All his physical wants are provided by the Holy Mother The Sadhakas there have absolutely no care of what they would eat or what they would dress Whatever they want they have simply to write to the Mother who immediately provides them with the necessary articles asked for

Thus every SADHAKA according to his development leads a con secrated life and does what he is asked to do by the Mother whose

Divine will dominates all activities in the Ashram No member of the Ashram entertains the least scruple or objection to do any work assigned to him He cooks, he washes dishes, he sweeps his own room, he washes his and other's clothes as an act of service In the common Dinning hall every one has to pick up bowls plates, spoons etc , has to take his share of nourishing food from the common stock and has to return them for rewashing

The dinning hall is the great leveller where people of all religions, castes, creeds and nationalities dine together without the least scruple—all human beings are treated alike and share the same kind of food provided by the Ashram Thus caste sytsem, the bane of Hindu Society, is silently and unobtrusively abolished there Purity of life is insisted upon every Ashramite Work and worship are happily welded together The work itself is looked upon as a vivid worship Ever one acts without any desire for the fruit of action—Nishkama Karma It is a well known maxim that a tree is judged by its fruit So naturally should all social and religious institutions be judged by the effect they produce on their adherents and followers

The establishment of the Ashram in Pondicherry of the type just described, stands to the credit of Sri Aurobindo and the Holy Mother where six hundred and fifty men and women, members of this Ashram, live together in perfect peace and harmony rendering any service they are called upon to do in a spirit of self sacrifice and dedication to the One Divine Will Anyone who vists them even for a short while, is agreeably surprised to notice that all of them without any exception look peaceful, serene and happy qualities which are not generally visible over the faces of the members of other social or religious associations in India or elsewhere Let any socialist or Communist come and see for himself whether what he has been preaching and propagating about the socialisation of all the nationl means of production to be utilized for all, is really found in this Ashram or not

In practice, of course, the Communist preach hatred and advise the Have nots to nurse rancours and animosity against the Haves Communism as we know it, is a menace—a far greater menace—to all progressive impulses of the human heart in that (1) it fosters Atheism

and scientific materialism and concentration of executive power in the hands of a ruthless oligarchy (2) Collectively they are not as happy as they claim to be nor have they raised the tone and transformed the temper of the society they pretend to reform

The Ashramites in Pondicherry live up to the highest ideal of common spiritual heritage of mankind—the one common Self—the source of all our being here and now

Who can say then that Sri Aurobindo secluded and retired as he is and has been for more than two decades, is not serving his beloved Motherland, India in his own way and according to his own light? Hidden and invisible—Mental and spiritual forces are more dynamic and powerful than mere physical energy If he comes out in the public life of India will he be able to achieve far more for his countrymen than what he has been doing for her during the last forty years or more? His ideal Ashram—in more senses than one, is truly serving as a nucleus of the future civilization based on ancient Indian tradition and Indian ideals of the betterment and progression of the whole man

Mother India has attained her freedom, but she has yet to achieve many more things for the fulfilment of her divine mission

Humanity at large is guided more profitably by the slow march of evolution than the exhibition of miracles A mere wish or prayer cannot change human nature from animality to humanity and final divinity We have to undergo a deal of training and discipline before we may become fit instruments of service to our Motherland and common humanity The crying need of India has been for a long time the right type of men and women who may serve India with unselfish motives inspired by noble ideals " Sri Aurobindo has also been closely watching the present world conflagration which assumes in his eyes, says Sri Srinivasa Iyengar, " the colour of a Cosmic conflict betweeen the Divine and the Asuric forces in the World ' He has boldly and openly supported the cause of the United Nations

In the words of the same writer " Secluded and silent and calm he may be but his pulses respond every second to the multitudinous affairs of "dear dogged humanity' and, therefore to Mother India also to whose service he dedicated his life long ago

INDIA'S EXPANSION—ITS PAST, PRESENT AND FUTURE

Dr NANDALAL CHATTERJI M A , Ph D , D Litt ,
Lucknow University

[Dr Nandlal Chatterji of the Lucknow University is a distinguished scholar and reputed teacher He is an old pupil of Khannaji In his masterly style the illustrious doctor presents his views about India s expansion The article throws a flood of light on the subject and shall be read with interest, delight and advantage]

At the dawn of History, the peoples of India swept "the seven seas" from Australia and America in the East to Africa and Europe in the West, but strangely enough, the fact is not generally known at the present day It was only in recent times that research and excavation brought to light some of the forgotten aspects of India's racial migrations in the ancient world, and it is a pity that our knowledge of this subject is still far from complete

In the pre historic times races such as the Negritos and the *proto*—Australoids had drifted through India eastwards in the course of a vast racial dispersion, but India s foreign colonization did not begin until probably the latter part of the second millennium B C, when the impact of Aryan culture on that of other racial groups like the Mediterraneans, the Alpo Dinarics and the Mongoloids had begun to shape what ultimately became the composite Hindu culture of Ancient India This colonial activity is still only vaguely known, but there is no doubt about the fact that the progress of world civilization

in that age was in no small measure due to the growth of the Greater India of the ancient times

The character of this Hindu colonial enterprise was far different from that of the movement which has been seen in more recent times in connection with the growth of European colonial power The Indian colonists settled and intermarried with the local peoples and did not maintain any colour or racial bar, nor did they aim at the expansion of the territorial or military power of the mother country Having migrated for reasons of trade or missionary zeal they merged themselves into the local populations and became an integral part thereof In this manner they civilized and humanized the backward peoples of that age by spreading their culture wherever they went and settled It was civilization, and not exploitation which was the gôal of the ancient Indian colonists

About three thousand years ago, Indians had begun to settle in East and South—East Asia where they set up independent Hindu colonies The history of these colonies would read like a fable to-day, but the surviving inscriptions and monuments bear eloquent testimony to the achievements of the Indian colonists in those by gone days . A few illustrations may now be cited The Indians colonized Ceylon in about the fourth century B C , and settled in Burma and Siam at about the same time The celebrated Hindu colony of Champa is known to have existed in Annam in the first century A D Prior to this, Indians had established a colony in Cambodia where magnificent relics of Indian art still survive Java and Suvarnadwip or Malay Pennisula and the islands of Sumatra, Bali, and Borneo were likewise colonized in the same period Much earlier than this far off lands like Peru and Maxico are believed to have come under Aryan influence, where the Aryan settlers inspired the indigenous Inca, Aztec, and Maya cultures So thorough was the colonization in at least South East Asia that well known Indian place—names were reintroduced in the newly settled tracts hundreds of miles away from India and so we come across new editions of Champa Kambodia Gandhara Kalinga Mathura, Ayodhya Kausambi, Dwaravati Vijaypur and Amaravati

The colonizing activity of Indians was not confined to the east

alone, for they founded settlements from Afganistan and Central India to Western Asia up to the Mediterranean and the Caspian Seas, where Hindu gods and temples were well known several centuries before Christ. They went as far as the coasts of Africa and the North Sea in Europe. This colonial activity received an added impetus from the missionary zeal of Asoka and Kanishka in whose times Buddhists from India settled in all parts of the ancient world. The archaeological explorations of Sir Aurel Stein in Central Asia have shown the existence of ancient Indian colonies in that region, for he found in the sands of the Central Asian deserts traces of cities which were peopled by Indians more than two thousand years ago. Texts in Indian script and language, coins with Indian legends, images of Hindu gods like Ganesha and Kubera, and relics of Indian sculpture and architecture discovered in Central Asia remind us of a Greater India that is scarcely even a memory to day. Even during the centuries following the Christian era, we find Indian colonists carrying their civilization to Mongolia, Siberia, China and Japan on one side and to the whole of Western Asia and Africa on the other. This colonial enterprise continued unabated until the advent of Muslim rule.

Even after the coming of the Muslim conquerors, the old Hindu kingdoms in the far East maintained their existence for several centuries onwards. Obviously, the cultural sway of Hindu civilization was deeper than mere political hegemony. This is borne out by the wonderful remains of Hindu art like the temples of Angkor Vat in Cambodia and the famous Boro Budur in Java which may be reckoned among the finest monuments of the world. Hindu dynasties ruled in some of these Far Eastern kingdoms as late as the middle of the 15th century A.D. And, despite their final disappearance Hindu culture has continued to influence the life and culture of South-East Asia and Indonesia to this day. *Hinduism and Buddhism are yet in some parts* and the Indian epics like the Ramayana and the Mahabharata still inspire the local songs and dances, plays and festivals.

That the fountain-head of Indian colonial enterprise slowly dried up in medieval times is hardly surprising, for a number of circumstances were responsible for this. First, the advent of Islam in South East Asia

weakened the former cultural links of the Indian colonies with India Second, these colonies were bound to decline with the stoppage of support from the mother country Third the exits from India both on the Arabian Sea and the Bay of Bengal were barred by Muslim rulers Fourth, the old missionary zeal which had been the chief motive force of early colonial activity died with the decline of Buddhism in India The new Hindu faith which absorbed the gospel of the Buddha did not favour proselytism or foreign propaganda Fifth India's life became more and more rigid and Hindus considered it a sin to cross the seas Sixth, the Muslim rulers were too preoccupied with the tasks of defence and consolidation to find time for colonial expansion Seventh, the competition of the Arabs and subsequently of the Portuguese in seaborne trade also discouraged Indian sea-faring and colonial activity Lastly, the neglect of sea power by the Indian rulers was another factor that retarded India's maritime progress

After suspension for some centuries, Indian emigration to foreign lands was revived once again in the early part of the 19th century when the abolition of slavery in the British colonies created a demand for Indian labour The emancipation of the negro slave forced the European planters of the West Indies and other colonies to turn to India as a handy recruiting ground for cheap labour Mauritius led the way, and large scale Indian emigration began there in 1830 Indian labourers similarly went to Trinidad in 1844, to Jamaica in 1845, to Natal in 1860 and to islands like Granada, St Lucia and St Vincent in about the same period

This new phrase of Indian emigration was at first neither uninterrupted, nor unopposed The number of emigrants was comparatively small and their influx was looked upon with disfavour by the champions of anti slavery movement Excessive mortality among the Indian labourers due to bad sanitary arrangements on the voyages or in the plantations discouraged the flow of emigration Besides, the unsatisfactory condition of labour as well as the unsuitability of the immigrant for much of the work that was expected of him further interrupted large scale emigration and even led to its suspension for a number of years in colonies like Natal, Jamaica and Trinidad,

The principal characteristics of this emigration were that it was solely for the supply of labour and that it had official backing both in India and colonies concerned. The labourer had to give an undertaking to work for a fixed term in lieu of a fixed wage and the cost of his passage. After the expiry of this term, he had the option to sign a fresh contract, or stay on as a free settler, or claim a free return passage to India. This formed the basis of what was known as the indentured system of emigration. The system was on the whole oppressive and was usually abused by the colonial employers who cared little for the welfare of the ignorant Indian labourer. And, beyond persuasion, the Government of India had no other means to safeguard Indian interests.

The problem of emigration became a live issue in India with the opening of the present century. The circumstances which made it so were, firstly, the complaints which the Indian industrialists made about the shortage of labour in India itself, secondly, the severity of the labour laws and the iniquities of the anti—Asiatic legislation in the colonies provoked natural resentmet; thirdly, the growth of national consciousness made Indians resentful of any attitude of racial superiority towards them, fourthly, the manifold evils of the indentured system roused public opinion in India and abroad; and lastly, the ill-treatment of free Indians in foreign countries and in the self-governing dominions stiffend the public feeling against the whole emigration system which the well-known leader, G.K.Ghokle, once described as "monstrous", "iniquitous", and "opposed to modern sentiments of justic and humanity". In short, public opinion in India looked upon the indenture as a badge of racial helotry and the Government of India had ultimately to abolish it in 1916.

The history of Indians overseas thereafter has been mainly the history of a long and bitter struggle in America and in the British dominions like Canada, Australia, and South Africa for reciprocity and equality. Mahatma Gandhi's passive resistance against racial discrimination in Natal marked the beginning of an Indian protest movement which is still on foot, despite Indian's appeal to the U.N.O.

A number of factors have contributed to the growth of this anti-Indian feeling abroad. One is the exaggerated dread of an Asiatic invasion. Another is the pressure of economic competition of the Indians who, given equal opportunities, could beat the European both in trade and farming. Still another is the fear that the influx of orientals would lower the economic standards of the white colonists. Again, the Indian settler's demand for municipal and political franchise is looked upon as a potential threat to white domination. Finally, the white man's antipathy to anything approaching equality with the coloured races heightens the hostility born of economic campetition.

The problem of Indian colonists abroad, who ask only for a fair field and no favour, is ulimately one of inter-racial fellowship. No greater calamity can menace the post-war world than any additional aggravation of its existing divisions upon the basis of colour and race. If India has raised her voice today against unjust racialism abroad, she has done so only to vindicate the principles which govern the charter of the United Nations Organization.

ORGANIC CHEMICAL RESEARCH IN INDIA

PROF S DUTT, *Delhi University*

[Dr S Dutt is a professor in the Delhi University He is very well acquainted with Khannaji He is an authority on his subject This long article clearly indicates his grasp of the subject matter and is very illuminating It is sure to furnish the reader with a flood of intimation]

Organic Chemistry is one of the most important basic Sciences of modern art craft and industry With the rapid progress of civilization, it has become the inevitable Sin qua non of our difficult and complicated existence What with the diversities of its aptitudes and the tremendous scope of its utilization, it ranks in importance with the prime-movers of today In peace it supplies us with all the niceties and refinements of life Dyes, drugs, synthetic perfumes cosmetics rayons plastics paints, varnishes, enamels liquid fuels solvents preservatives, leather, sugar, synthetic vitamines hormones, rubber etc are only a few of the countless multitude of things produced by Organic Chemistry that lend a significance and a charm to the otherwise utter monotony of a humdrum existence and make our lives so interesting and worth living In war it supplies us with weapons and missiles which in power and magnitude of operation stand unparalleled today in the history of man's struggle for existence War may or may not be a biological necessity, but it is certain that with the development of Organic Chemistry, man's power of resistance towards his enemies and his

fighting capacity have increased tremendously and beyond all conceptions of a century or more ago Organic Chemistry has come to stay not only as a handmaid of art science and refinement but also as a tremendous power for creation and destruction for fight and resistance Without the constant help of Organic Chemistry the existence and activities of a first class nation in this world would be altogether out of question

In a subject as this upon which the vital interests and existence of a nation so largely depend research work on a systematic and highly organised lines is of primary importance But unlike many other branches of science, research work in Organic Chemistry is attended with extraordinary difficulties particularly in a country like India where Chemical industries have not developed to any great extent and the resources of individuals, business concerns, institutes or Universities are limited But inspite of all these tremendous odds and handicaps research work in Organic Chemistry in India has been making a fair amount of progress and among the institutions in India where Chemical Research is being carried on, the names of the Universities of Allahabad, Delhi and Calcutta and the Indian Institute of Science at Bangalore stand in the front rank of achievement During the last quarter of a century nearly eight hundred original contributions to Organic Chemistry have emanated from these important centres of learning and culture, and the present writer can humbly claim to have contributed approximately one fourth of them, by working from Allahabad and Delhi Organic Chemical Research in India is being carried on in many interesting lines but the following are amongst the most important

Cause of Colour of Organic Compounds

Colour is one of the most important aspects of this motley and variagated world, particularly of all living matter contained therein The green colouring matter of plants and leaves the countless tints of multi coloured flowers the gorgeous plumes of tropical birds, the exotic hues of insects reptiles and butterflies and the sparkling and scientilating shades of precious stones are some of natures exquisite colouring

matters. In addition to these there are thousands of .very high and intensely coloured dye stuffs that have been synthesised by Organic Chemists during the last three quarters of a century, and which have now become inevitable necessities of our present-day civilization. The cause of colour of all these substances has been one of the greatest riddles of Organic Chemistry, and since the eighties of the last century, the master-minds of this science have devoted their talents and untiring energy towards the elucidation of this bewildering mystery. The names of Nietzki, Witt, Baeyer, Hewitt, Watson, Sircar and Moir, will always be remembered in this connection, but the most important and the latest work has been done by Dutt, who in a series of masterly treatises has evolved a " theory of colour on the basis of molecular strain " and has thrown a flood of light on this complicated problem. The colour of organic compounds can now not only be measured with certainty but also be predicted with a fair degree of accuracy from their molecular structure.

Phenomena of Fluorescence :—

Fluorescence is an interesting aspect of colour of many Organic colouring matters. If a compound in solution shows one colour by transmitted light and another by reflected light, the compound is said to be fluorescent. Fluorescent substances are of common occurance in Organic Chemistry. Some of the most wellknown of this type are: quinine, fluorescein, eosin, resacetophenone, anthracene, chlorophyll etc The cause of fluorescence of organic compounds has always been shrouded in mystery inspite of several theories of fluorescence put forward by Hewitt, Watson and others. In 1930 however Dutt has shown that fluorescence of Organic compounds is mainly due to impurities, and well-known fluorescent compounds of the types mentioned above lose their fluorescence on exhaustive purification. This was a revolutionary discovery and many people all over the world are still working on this idea with interesting results

Rare metals in Organic Chemistry :—

From a very long time the common metals like zinc, copper, mercury, silver, sodium, pottasium etc. have been used in the synthesis of

Organic Compounds, but comparatively rare metals like chromium, molybdenum, tungsten, cerium, titanium, uranium, thorium and the like have been used for the first time in the laboratory of the Allahabad University for this purpose with highly interesting results Many difficultly available compounds which could not be synthesised by ordinary methods have been obtained in this way This is a very fruitful field of research having a tremendous scope and many more interesting results are expected in future

Photo reaction in tropical sun light —

Tropical sunlight is one of the most potent agents for bringing about the transformation of organic substances and degradation of organic molecules and also sometimes of novel syntheses of organic compounds by altogether undreamt of processes from the degradation products The nature of this interesting change and the diversity of products obtained by the photo reaction have been made a special study in the laboratory of the Allahabad University by Dutt, Dhar and others with far reaching results So great has been the interest of the chemical world on this particular line of work, that enquiries regarding this have been received from such far off places like Soviet Russia, Argentina, U S A , Philippine Islands, Japan and New Zealand The scope of this work is so tremendous that as yet only an infinitesimal portion of the possibilities has been exhausted

Natural Organic Colouring Matters —

The living world around us abounds in colouring matters of the most diverse type and many of the interesting forms have been studied by Organic Chemists from a long time India the "King" of dye stuffs and the prime colouring matter of ancient India and Egypt was isolated from Indigofera tinctoria and the masterly researches of Bayer in the eighties of the last century completely elucidated its constitution Later on based on the researches of this pioneer, the firm of Badische Anilin Und Soda Fabrik of Germany took up the manufacture of this remarkable commodity from Naphthalene and by the end of the last century, completely ousted its production from plants in India—the home of the Indigo A similar fate overtook the manufacture of

unlimited varieties of natural aspects, flora and fauna, that it can be regarded as a continent by itself. Particularly interesting are its climatic variations together with their concommitant flora which are almost bewildering in their variegated character. India is a naturalists' paradise in the sense that it affords them an opportunity of intensive study of countless generations of the most widely variegated flora that are to be met with in this world in a single country.

From the point of view of a chemist the endless flora of India are no less interesting. For apart from the fact that they provide food, clothing and fuel to the teeming millions of India, they are also the potential source from which drugs can be elaborated for the alleviation of human suffering. The famous Ayurveda or Indigenous system of medicine of India which is known throughout the world as one of the most interesting systems of curative science that has ever been evolved by human labour and ingenuity, is dependent on the healing properties of the active principles contained in the medicinal flora of India. The knowledge of medicinal plants accumulated through centuries of toil and endeavour, and the subsequent discovery of each interesting physiological property of plants, advanced the cause of medicine one step further in the rung of progress and evolution. Every systematic science takes a slow course. Out of countless flora that exist in India, it became necessary to brand those which were physiologically interesting as medicinal plants, so as to distinguish them from others which were worthless. In this way the knowledge of a vast number of medicinal plants has accumulated in India, and the data with regard to them have become so conflicting that it has become necessary to make a complete systematic chemical survey of their active principles so as to put their pharmacological properties on a sound footing. But this is a task of such tremendous, infact such colossal, magnitude that any attempt on the part of a single worker in this field to tackle this problem simply merges into insignificance. Even generations of Chemists could perhaps work in this field for ages without the subject matter coming anywhere near exhaustion. But in any case any individual contribution by a single worker in this line is and should always be welcome. The main reason for the potency of the Ayurvedic system of medicine lies in the

fact that in the Indian Medical plants there exists a wide variety of active ingredients amongst which may be reckoned alkaloids, glucosides terpenes resins phenolic compounds oleoresins alphatic bases albuminoids amino acids, lactones, unsaturated compounds sterols, vitamines enzymes etc Of course. it is true that in the Ayurvedic system of medicine none of these essential principles are used in an isolated state, and, therefore, the potency of any particular drug under consideration is likely to vary in accordance with the source, the condition and the quality of the drug Hence in view of the modern Allopathic system of medicine, it has become absolutely essential to have a systematic chemical examination of every Indian Medical Plant, so as to ensure a complete coordination between ancient and modern sciences

Indian medicinal plants have been made the subject of a wide and exhaustive study under the present author both in the Universities of Allahabad and Delhi, and over a decade the number of contributions to this subject every year to the Scientific journals far exceeded that of any other institution in India In fact the Allahabad University may rightly be regarded as the pioneer of this branch of research in India The study embraces a multititude of subjects consisting of alkaloids isolated Fumaria officinalis Solanum anthocarpum Abrus pre catorius, Laganeria valgaris Boerhavia diffusa Alangium lamarkii, Ailenthus excelsa etc glucosides from Thevatia nerifolia Blepharis edulis, Nerium odorum Glycosmis pentaphylla Caesalpinia bonducella etc , lactones obtained from Aegle marmelos Cinchorium intybus, Citrullus colocynthis, Cleome pentaphylla, Artemesia scoparia etc , ste rols obtained from Hygrophyla spinosa, Solanum carpum Pulmbago ovata, Blepharis edulis Cedrela toona Celestrus paniculta etc and interesting hydrocarbons from Indigo fera enneaphyla Thevatia neri folia, Cuscuta etc Many of the active principles isolated from these medicinal plants have also been pharmacologically examined in Luck now Bombay and Calcutta and adopted for medicine The Indian In stitute of Science at Bangalore and the Tibbia College at Delhi have also contributed a fair share in the Chemical investigation of Indian Medicinal Plants In the latter the investigations on Rauwolfia serpen

tina, Holarhena antidysentrica and Semicarpus anacardium by Siddiqui deserve special mention

Essential Oils —

The subject of essential oils is also one of very great interest on account of their wide applicability in perfumery flavouring matters cosmetics and medicine Due to the diversity of climates in India and widely varying rainfall the number of essential oil bearing plants in India is practically unlimited Research work on essential oils in India therefore possesses tremendous potentialities but requires organization on an extensive scale This type of work was originally begun in India in the Forest Research Institute at Dehra Dun in the twenties of the present century under the able guidance of Prof Simonson who later on further extended it in the Indian Institute of Science at Bangalore in combination with his energetic pupils Sanjiva Rao Pillay and Moudgill These people isolated and worked up the essential oils of a large variety of plants amongst which may be mentioned, Kaemferia galanga, Curcuma zeodaria, Curcuma aromatica Zanthoxylon resta Zanthoxylon acanthopodium Bosellia serrata Cedrus deodara, Andropogon citrata, Pinus longifolia Pinus excelsa, Pinus merkusi etc Under the present author also extensive work was undertaken on essential oils, firstly in the Allahabad and subsequently in the Delhi University and amongst the plants investigated, the following are important Osimum sanctum Ocimum canum Ocimum gratissimum Zanthozylum, Hedichium spicatum, Curcuma caesia Nepita ruderalis Curcuma amada, Mentha arvensis Anethum soa Carum roxburghianum Shorea robusta Cinnamonum obtusifolum Oeganum marjoranum Artemesia scoparia etc The work on essential oils of Indian origin is so vast in its scope and potentialities that generations of chemists would be required to devote their talents and untiring energies to the elucidation of the mystery of their composition and constitution

After alkaloids, glucosides and bitter principles essential oils are the most important constituents of Indian Medicinal Plants As a matter of fact the great potency of many well known Indian Medicinal Plants has been shown on careful investigation in recent years to be

entirely due to the presence of essential oils. Thus the psysiological action of Mentha arvensis is due to carvone, of Ocimum sanctum to eugenol, of Ptychotis ajwan to thymol, of Cinnamonum camphora to camphor, of Thuja occidantalis to thujone, of Eucalyptus citrodora to cineol, of Santalum albun to santalol, of Carum roxburghianum to piperitone and so on In view of the fact that essential oils occur in a far greater number of plants than alkaloids and glucosides, they are naturally far more fruitful sources of investigation in the domain of the chemistry of plant products than any other plant material. The only real difficulty with regard to this kind of investigation is the minute proportion in which the essential oil is present in most plants, due to which large scale operations are necessary in order to isolate sufficient amount of the essential oil for systematic chemical investigation. In many cases the essential oil exists to the extent of only about 0.1 per cent. so that in order to isolate about 1 lb. of the crude essential oil, the handling of nearly half a ton of the plant-product becomes necessary. Apart from this consideration, there is also another difficulty, namely that of separation of the mixtures which most essential oils consist of. In view of the fact that most essential oil's undergo decomposition on distillation under ordinary pressure, they have to be fractioned under highly reduced pressure, which involves experimental skill of a high order. Lastly the identification of the isolated fractions with the help of their chemical and physical properties and by the preparation of appropriate derivatives also necessarily mean high technical ability. In consideration of all these facts it would appear to be perfectly clear that although essential oils are really very interesting objects of chemical investigation of Indian Medicinal plants, yet on account of the highly skilled technique involved, they constitute one of the most difficult branches of organic chemical research, and so it is no wonder that very few workers are now in this field in India.

Industrial Organic Research:—

It has often been said that research in pure science has no utility and it is on that account that Universities in India are wasting their

time money and opportunity by devoting themselves to unutilitarian pursuits of knowledge But critics of this type lose sight of the fact that pure science is the fountain-head of all art, industry and manufacture and without research in pure or fundamental science no technical research is possible But it is also at the same time true that intensive research in applied science is also essential for the improvement and amelioration of industry, and should be taken up wherever facilities and resources permit Unfortunately research work dustrial nature requires organization and equipment of a highly complicated and expensive type and is often quite outside the scope and resources of a University or an educational institution In India there are a few educational institutions of a technical type in which industrial researches of a general nature are being carried on and amongst these the Harcourt Butler Technological Institute at Cawnpore, the University College of Chemical Technology in Bombay, the Department of Industrial Chemistry in the Benares and the Calcutta Universities and the Indian Institute of Science at Bangalore deserve special mention In these institutes various problems with regard to different industries are being tackled with promising results In Calcutta for example the hydrogenaton of oils the sweating and discoloration of soaps, vitamins from indigenous fish and fish liver oils, plastics and varnishes from polymerised vegetable oils, fermentation of molasses into oxalic and citric acids etc have been investigated In the Benaras Hindu University they have concentrated on the chemical examination of different fixed oils in connection with their suitability for the production of toilet and washing soaps They have also developed interesting technical methods for the detection and estimation of the adulteration in ghee or clarified butter In the Harcourt Butler Technological Institute at Cawnpore they have investigated various problems on oil industry such as bleaching and deodorisation of Indian vegetable oils and their economical conversion into different grades of soaps by the boiled, semi boiled and cold processes The drying of unsaturated oils and dehydrated castor oil have also been investigated in combination with various driers and antioxidants In the Imperial Institute of Sugar Technology at Cawnpore various problems in connection with the Sugar industry have been

are being systematically studied for their possible utilization in paper and rayon industries

The origin or cause of Beri beri or epidemic dropsy in this country has also been carefully investigated and has been tentatively ascribed to the abnormal proportion of allyl and other organic cyanides in ordinary and adulterated mustard oils They have been found to be produced by the enzymatic decomposition of the ' mustard oil essence " or allyl isothiocyanate often added to these oils by the manufacturers in order to increase their pungency—so much desired and liked by the consumers Rectified spirit as a motor fuel in ordinary internal combustion engines using petrol has also been tried in various types of engines with different compression ratios and the optimum conditions for getting the best performance from this fuel determined with the minimum amount of alteration of the engines themselves As the result of these investigations it was found that the best result with ordinary rectified spirit was obtained when the following conditions were satisfied (a) jet level of the fuel maintained within 2 mm of the jet orifice, (b) air in take of the carburettor reduced to two thirds of the original volume by a baffle gasket with spiral openings so as to increase the turbulence of the incoming air fuel mixture (c) compression ratio of the engine increased to 8 5 1, i e 125 lbs to the square inch These results were adopted by the Military Transport Department of the Government of India during the war time for their transport vehicles using alcohol fuel Some commercial concerns also employing buses and lorries for the transport of passengers and goods did the same when they were compelled to use rectified spirit as a motor fuel for want of petrol

General Organic Research —

The most commonly worked up problems of this type of research in India are condensations of organic compounds containing reactive groups This type of work has been carried on in different places in India but among them the following deserve special mention (a) formation of coumarins and phenanthrene derivatives by Chakravarty and Bardhan respectively in Calcutta (b) condensations of malonic acid

and hetero-ring formation by Dutt in Allahabad, (c) formation of Chromones, coumarins and phenol-ketones by Desai in Bombay, (d) heterocyclic compound by Guha in Bangalore, (e) halogenation in the aromatic series by Varma in Benares and (f) extension of the Friedel and Crafts reaction by Shah in Poona. There have been many other types of works also, but the description of all of them will be beyond the scope of this article.

Plan for the future:—

Chemical examination of Indian Medicinal plants with a view to the utilization of their active principles in medicine after careful pharmacological investigation is the main theme of research on which the present author plans to embark in near future. It is one of the most important problems of the Indian nation to evolve cheap and efficient remedies for the alleviation of disease and suffering to which its teeming millons are subject. And for this the regular and systematic chemical examination of its medicinal flora is of the greatest importance. There are still a large number of very active and famous Indian medicinal plants which have not yet been properly examined, and amongst them are: Tinospora cordifolia, Tribulus terrestris, Melia azadirachta, Fumaria officinalis, Saraca indica, Terminalia arjuna, Herpes tris monniera, Vernonia anthelmintica, Andrographis paniculata, Tricosanthes palmata, Alhagi camelorum ayapana, Ipomoea digitata, Blepharis edulis, Abroma augusta, Achyranthes aspera. Saxifraga ligulata, Oroxylum indicum, Argemone mexicana, Hydrocotyle asiatica, Cassia auriculata, Vitex negundu, Solanum migrum etc. They are great potential sources of valuable drugs. There are also many obscure plants of intensely toxic nature which are used by aboriginal tribes in various parts of India for poisoning their arrows either for purposes of warfare or for the sake of hunting. Examples of such plants are: Coptis teeta, Mishmee tetta, Toxicomania assamensis, Mamiran latifolia, Berberis manipuri etc. Undoubtedly if genuine samples of these are available in sufficiently large quantities, some highly interesting alkaloids or other very potent active principles could be isolated.

Apart from the work on the highly interesting field of Indian medicinal plants the present author has also set before him the plan of examination of other plant products, such as essential oils fixed oils, plant colouring matters glucosides and lactones and vegetable enzymes In addition to these on the synthetic side also there are the problems of getting synthetic alkaloids antimalarials and other chemotheraputic agents and dyestuffs They are sufficiently vast in scope and magnitude to engage a whole generation of chemists for at least a decade

Problems before the Nation —

Organic chemical problems before the Nation have also assumed tremendous proportions in widely varying fields in recent years They are chiefly in connection with Indian manufactures with indigenous raw materials the most important amongst them being cotton vegetable oils, sugar, jute shellac, skins and hides, coal, tar, food grains and starches, fruits and preserves raw essential oils, gums and resins and fuels In many of these subjects there are definite organizations sponsored by the Government of India for tackling problems—arising out of the industrial application of the particular raw material in question For example, for sugar, there is the Indian Central Sugar cane Committee, for Jute there is the Central Jute Committee, for shellac there is the Indian Lac Cess Committee, for soft coke there is the Soft Coke Cess Committee, for cotton there is the Central Cotton Committee, and so on They have their own laboratories and they are specially competent in view of their organization, equipment and personnel to handle their own problems But, nevertheless, in view of the great national importance of such problems, it is also desirable that they should be tackled by non official organizations and Universities also so as to bring in new ideas and conceptions into the field and to maintain a state of healthy competition which is an inevitable necessity of sure progress India's problems of efficient sugar production are some of the most pressing ones of the day in view of the great world shortage of this important article of food The problems facing the lac dustry which bring in nearly eight crores of rupees into India are also very serious on account of the phenomenal rise of the synthetic plastic

industry in Europe and America The jute industry also with its present nine figure income faces an accute problem due to the rapid development of synthetic fibres in America The synthetic plastic also are threatening the very existence of our paint varnish and enamel industries using Indian linseed oil, castor oil and turpentine Indian silk industries are gradually being ousted by the development of rayons, nylons and nynnos Button and comb industries in many parts of India which were hitherto having a flourishing business, using horns, nuts, leather, wood and cocoanut shells as raw materials are now facing extinction due to the advent of plastic comb and buttons Even cotton industry—the most ancient of Indian industries —is not without its fears due to the rapid development of synthetic fibres from paper and wood pulp in foreign countries There have also been many new and novel developments in the processing and finishing of cotton yarns and fabrics in recent years which give them durability, gloss and attractive appearance There have been processes evolved in which the actual weaving of cotton threads into fabric the most tedious and complicated of processes—has been rendered unnecessary by a chemical process of plasticising the warp yarns All these revolutionary processes that are appearing in Europe and America have their repercussions in India also, and if we are to remain in the forefront of nations, we have to pay the price of liberty, namely that of " eternal vigilence," the vigilence of intensive research for progress

TECHNICAL TRAINING

R B Krishna Lal Gupta, M A , LL B ,

Advocate Federal Court of India

[Shri R B Krishna Lal Gupta, Advocate, Supreme Court of India is a reputed social worker of Kanpur He has been connected with the Kuari Seva Samiti and has been in the managing committee of the B N S D and S D Colleges He was the recruiting officer of the technical personnel in the second world war He knows his subject well The article provides an illuminating reading]

With every passing day, modern science introduces more and more intricate equipments to meet Army requirements The inventive genius of world factories, world universities, world laboratories has already made substantial contribution to machines of war

Discovery of atomic energy and manufacture of atom bombs by United States of America and Soviet Russia have set other nations to their alertness in advancing their technical training and creation of

most favourable conditions for advanced science in their countries Atomic energy can be a source of production of death dealing weapons to cause terror and rape humanity, and if utilised otherwise for constructive work, it can serve as a mighty weapon of unprecedented technical progress and further speedy growth of the productive forces of any country to serve humanity

With the development of modern armaments from a gun to an atom bomb, demand of technicians has become very great and difficult Now, no country in the world can maintain an Army Navy or Air Force without expert technicians

Today there is no room for the illiterate uneducated man in any of the defence services The enemy may attack from under the sea, on the surface or from the air, trained men are required to fight him from whichever direction the attack may come

With the end of the second World War, it was thought that peace will reign supreme for ten or twenty years at least, but every country is making rapid progress with the aid and skill of technicians in manufacturing destructive weapons of war as deadly in their effects as modern science can help them with latest discoveries and inventions

Curiosity and the desire to discover and know are the natural instincts of man Bound fast by the links of courage and perseverance they have produced achievements which are glories for all time—Man no longer struggles against Nature, he has learnt to utilise her power, her resources, to harness her waters and her winds, to cherish her struggle to the end that he may no longer be at the mercy of her whims, but may live in comfort and security

Among the manifold list of achievements two stand out clearly—man s mastery of the sea and his conquest of the air Imagination and courage, sacrifice and death have wrought a bond of closeness and understanding between nations and people scattered throughout the world—a unity governed by speed, man-imagined and man controlled

Curiosity is predominantly a quality of youth, experience is the fruit of age Youth stands open mouthed with an eager longing to ride the waves or climb the air, to feel the pulse and throb of the engines, to command the hidden powers which give speed in motion, The urge to do

so is inherent and the desire to know will win, for youth will always like to learn.

Science is making huge experiments and new things are being brought to light every day regarding armoured warfare It has, therefore, become imperative that to the productive ingenuity must be allied high technical skill to maintain equipments in full fighting efficiency.

The job of these skilled tradesmen has become as vital as that of the men who fire the guns, drive the tanks and man the lorries This evolution has brought in its train the necessity of gathering all the technicians to the units in the front line—Upon these technicians rests the responsibility for ensuring that every single item of army's fighting equipment—tanks, armoured cars, lorries, guns, rifles, mortars, fire control instruments, predictors, radios, wireless, electrical machinery, searchlights—are maintained at the highest possible state of fighting efficiency.

It is a responsibility which can be discharged only if the personnel who staff the huge engineering base and mobile workshops comprises of the finest technicians. Just as an ordinary town needs skilled electricians to keep its lights in order, garages in which to repair its cars, painters, decorators, blacksmiths, carpenters, joiners, and many other tradesmen to keep life running smoothly, clerks for its office work, and shopkeepers to hold stocks of many things it will need from day to day, so does the army need all these things. A large force consisting of several divisions in the field is a very much larger community than many towns and it will need men to carry on all the services which in a town would be done by private shops or individual craftsmen.

In the present system of wars, a technican is indispensable. A technician is superior to a soldier in the army as he not only takes part in the great task of defending his country but discharges a very important part too—for upon his skill and efficiency depends the safety and security of the nation. As a soldier he learns military descipline and habits, does physical exercises to keep himself in good health enabling him to stand up to field service conditions, learns to handle weapons and gets settled down to army life in general. As a craftsman, he has the satisfaction of knowing that he is doing an important job of work and is

devoting to the service of his country the same conscientious workmanship which he would have shown in private life

Skilled workers are at any time an asset of great value to a nation and it is generally admitted that one of the most serious draw backs to the development of Indian Industries in the past has been and still continues to be the absence of trained workers

The vital importance which mechanised forces and mechanisation in general, assumed during the last Great World War, has established that it is the number and quality of the skilled workers which a nation or group of nations can produce, which can become key to victory or defeat

Production more than anything else today determines the outcome of war It was this ability to produce as much as the rest of the world that enabled America to win World War II and has made her the giant that she is today

Thus it is clear beyond doubt that technical training is of far greater importance and value today than university education Technical Training holds immense possibilities for youngmen in Defence Services and Industrialisation of the country A technician is needed not only for war purposes but also in peace times for development of industries On his skill depends the victory of his nation and the sound condition and wealth of his country

The imperative need of technicians during the last World War II led the Government of India to launch Technical Training Scheme in **1940** not only to produce in factories all the tanks, guns and munitions of war required by the services but also to repair, maintain and look after this equipment in the fields

The army of skilled workers, and technically qualified trainees who were enrolled for war purposes is now available in free progressive India, and with its help factories have been and can be turned over to peace time productions

Life in technical training centres offers an almost incredibly wide choice of occupations which will suit youngmen of widely different interests and training There are splendid opportunities for talented youth to lead and control the vital units of the army, to master the in

tricacies of the equipment of modern ships of war, to fly in air, to fight the enemy in air combat, to shoot and bomb There are opportunities for learning these in technical schools equipped with modern machinery and staffed by brilliant instructors in the latest advances of science and this affords opportunities to earn the highest pay in the defence services and to establish important careers in peace

Nearly 96 500 young men were trained in 300 training centres all over India as technicians under the Technical Training Scheme initiated by the Labour Department of Government of India in 1940 These have been supplied to the Armed Forces Ordnance and Munitions Factories civil industry, and for numerous other trades

To supplement Technical Training Scheme of India, a Bevin Training scheme was inaugurated in 1941 with the object of giving higher technical training to Indian Artizans in the United Kingdom at Government expenses Of 788 boys sent to the United Kingdom, 638 returned to India after completing their training They were mostly employed in Ordnance Factories and private engineering firms on decent salaries As many as 13 batches were sent to U K from India during the War period for Bevin Training Scheme

There is still immense scope today for young men to join the Army, Navy and Air Force Military training coupled with Technical training develops potential qualities in a young man, instils confidence and improves knowledge and outlook on life Every effort is made to bring out qualities of leadership in the young men and to make them feel their responsibilities towards their country and nation

United States of America, Soviet Russia United Kingdom maintain their supremacy among the United Nations of the World due to higher standard of technical skill their technicians possess These countries hold the key powers in their hands and other nations look towards them for help of technicians and products of their skill to relieve their economic distress and to meet needs of a high standard of life and the defence of their borders

It is, therefore, not too late even now to take lesson from such examples and aim at turning out better class of technicians not only for the betterment of their own individual future career but for the uplift

of their country Parents and guardians should encourage their children to go in for technical training in large numbers to enable them to stand on their legs and be earning members in much quicker time than otherwise With Technical training there would be no sad experience of knocking at doors for service or employment

Government of India is fully alive to the immense and urgent importance and value of Technical Training and is taking steps to set up big Technical Trainig Centres all over India and young men must not miss this splendid opportunity and course being made open to them to better their prospects and that of their country

Kanpur played an important part in recruitment of technicians and trainees for Technical Training Scheme of the Government of India during the last Great World War II It stood first in U P so far as the number of largest number of technicians supplied to various munition factories of India was concerned Kanpur beat the record of recruiting history of the First Great War when Meerut and other districts were looked upon and considered to be the best recruiting centres for the Army Kanpur supplied the largest number of trainees for the Technical Training Scheme for the Army, Navy and Air Force and earned a unique position in recruiting history for future Consequently the Government of India have given Kanpur prominent position in their new Technical Training Scheme and 200 acres of land is being acquired in Kanpur for starting Technical Training Centre Kanpur Development Board will allot 200 acres of land near Kalyanpur It will be one of the biggest Technical Training Centres of India Kanpur with its Mills and Factories in all branches of trade and industries affords grand opportunities to trainees for the technical training in various trades with technical atmosphere breathing all round The environments of Kanpur stand for, and give greater facilities and acceleration to the Technical Training Scheme

I can say with confidence on the strength of my 7 years' personal experience as Assistant Technical Recruiting Officer for Kanpur, Etawah, Farrukhabad and Unao districts during the last Great War II that young men of all educational qualifications will find no better door

to enter for bettering their prospects in life and for the more material prosperity of their own country than the Technical Training Centres which will readily absorb the largest number of physically fit young men reading in schools and colleges and will provide the best possible technical training in several trades of widest possible choice This Technical Training will help students to stand on their own legs as self supporting citizens following the most honourable and respectable profession of a technician—a class which has acquired very great importance, respect and value in all the countries of the world by their intrinsic worth and usefulness to their countries in times of peace and emergency. Need of technicians for all trades is so urgent, pressing and indispensable that it is difficult to supply them even in meagre quantity. The materialistic age is now in its full swing, and technicians are its main pillars on which the material prosperity of the World hangs. As such every young man must aspire to be a Technician, to increase production of his country which is the main cry of every country in the world today. It is no use to waste time money and energy for getting degrees in Universities to be a burden on the State ultimately for getting employment. With the Technical Training Scheme coming into full force there would be no room for Employment Exchanges. Every Young man will find enough material to work upon and enough pay and allowance to better his prospect and his country's production will depend upon his skill and craftsmanship. Material weath of his country will be the outcome of his labours and status of his country will be attained by the results of his talents and real responsibility will rest on his shoulders. A young technician will then be really discharging *the real functions of a full fledged citizen of a free and independent* sovereign republic of India and the United Nations of the World will feel the full weight of India's contribution to peace and happy life of mankind.
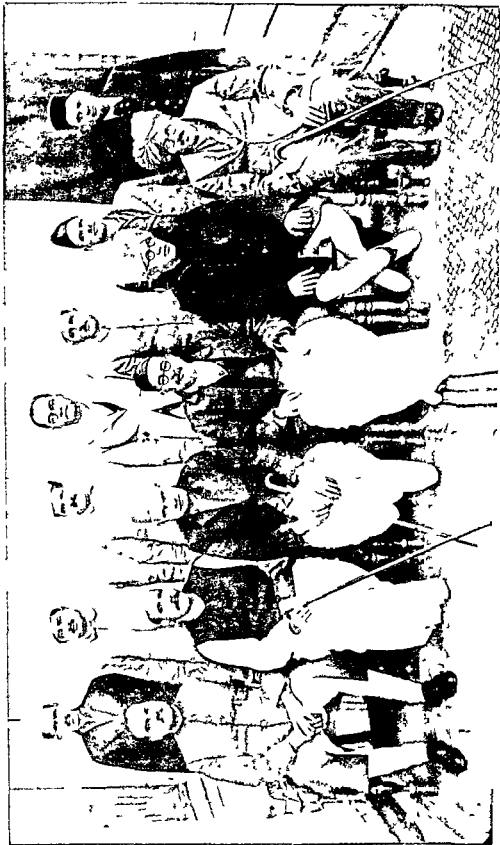
Khannaji as a Director of the Swadeshi Bima Company (1939)

खन्नाजी (१९५०) अपने कुछ अत्यन्त विश्वसनीय सहकारियों के साथ

MY COLLEAGUE—PRINCIPAL KHANNA

PRINCIPAL RAMAGYAN DWIVEDI, M A. HONS.

[Principal Ramagyan Dwivedi has been a fellow worker of Khannaji in the field of education. He is an eminent scholar and an educationist of repute His views regarding Khannāji shall interest the reader.]

When several years ago Messrs Khatry and Vishnu Swarup, the two veteran headmasters of Kanpur died, I wrote their memories which began my autobiographical series entitled TWO DECADES IN THE FIELD OF EDUCATION which is still being published in the EDUCATION, the fortnightly organ of the All-India Education Federation. In course of these reminiscences I mentioned my close association with principal Khanna who worked with me on the staff of the D A V College, Kanpur for full three years.

It is rather depressing to have to write things in memoriam, but it is equally delightful and refreshing to be asked to jot down reminiscences of a friend who has retired after a long course of devoted service, particularly at one single institution. I say this purposely as I have personally had to shift from place to place mostly on account of politics so rampant in private educational institutions now-a-days.

Principal Khanna has been much more fortunate though I did not know till only about a week back that in the beginning of his career as a teacher my esteemed friend had to work at a high school—C.A V. of Allahabad,—so that the total number of institutions served by him is four, a good small number indeed in comparison to the many more that I have had to knock during my 25 years of educational work.

When I joined the D.A V. College at Kanpur in 1924 it was my first job whereas Mr. Khanna had seen many years' service at the C.A V. High School of Allahabad and the St John's College of Agra. At the time of my joining as an Assistant Professor in the department of English with Professor Chakravarti as its head, Professor Khanna was already the Head of the Mathematics Department and had grown fully grey. Of course his grey hairs used to be dexterously hidden under the Bundelkhandi turban which Khannaji so fashionably and cleverly tied and flourished. Khannaji took pride in calling himself a Baghel-Khandi or Bundelkhandi—I do not remember which exactly—and his tur-

ban was in glowing contrast to the Punjabi pugree occasionally used by Professor Gobindram Seth of the History Department Professor Seth looked every inch an athlete that he actually was We remember how Professor Seth—God bless him, for he is now no more—used now and then to entertain us with big glass fuls of milk or lassi of which he himself was so fond

Khannaji's white hair might very well have been the sign of the classical Biblical wisdom, at least the worldly part of it which he undoubtly did possess indeed and in plently too but I have often imagined that his safe did not go well with his dhoti or even his pyjamas I did not really know why my friend did not take to an achakan or a band coat On the other hand, Professor Seth's bebagged salawars so well fitted his tall stature and his towering peshawari kulah, both adding considerably to his stalwart and sportsmanlike appearance

I myself took to the achakan and the churidar pyjama along with the safa on my departure to Central India where I spent as many as seven years This dress is no doubt much more dignified than the European one and this was the feeling I started when I looked upon the person of the late Professor Seshadri Khannaji's greyheadedness did not at all indicate his real age, for he was as enthusiastic and humorous as any of us youngsters then on the staff of the D A V We were indeed as such in comparison to Professor Khanna and among my youthful colleagues were Messrs Gaurishankar Chatterji of the history, Raghunathsahai Saxena of the Commerce, Dr R B Gupta of the Economics Department and the latest arrival on the science side Professor Shankarlal Jindal who is at present Principal of the Teachers' Training College, Agra Dr Gupta soon after joined Govt service where he still continues in the Labour Deptt For some time I and Dr Gupta shared the same house on the bank of the Ganges and in our vicinity also lived Prof Saxena Dr Gupta and myself lived bachelor style, keeping a cook and a servant and very soon our neighbourhood was occupied by Prof Munshiram of our Hindi Deptt

I was in 1925 organising an all India Poets' Gathering which was held along with the session of the Congress and inaugurated by Her late Excellency Dr Mrs Sarojini Naidu and in moments of humour our poet

friends used to tease Prof. Khanna by quotting the following famous couplet of the classical Hindi poet Kesava about unduly premature grey hair:— Kesava kesani as kari jas arihu na karahin
Chandra-badani mriglochani baba Kahi-kahi jahin

But our generous colleague was too good to take any offence and I have very pleasent memories of many dinners enjoyed at his residence while at Kanpur and even long after I had left that city

I have occasionally stayed with Khannaji at his house in Bagia Maniram and remember well how for several together the late Pandit Mahavir Prasad Dwivedi, the veteran Hindi writer and journalist came to live in his house as his gest. Dwivediji was ailing in those days and having treatment at the hands of some local physicians. I sometimes went to pay my respects to the sick pioneer writer and as he was a regular walker,at times I had to wait for him, which I generally did at Khannaji's place.

Khannaji used to live all alone with his only son Nando and a servant. He has been an old widower and I am told for years together he has been, privately and without the world's knowledge, helping a number of poor boys as well as widows One of these boys was a Khatri student of mine who used to be then at the D A.V and a brilliant student of Khannaji's subject He naturally became a favourite of Prof. Khanna and with his financial help went to England and is now full-fledged doctor of his subject and working at one of the universities of our province.

My intimacy with Khannaji was due to reasons which I have already stated in course of my autobiographical monographs published in the EDUCATION One of these was our common love for Hindi and the other (which was made much of in those fussy days of the D A V) our common love for Sanatan Dharma. And this latter had probably landed both of us into the bad books of the Aryasamajic management of the College. I have in that series already related how upset Lala Diwan Chand was by my great admiration for the Sanatanist poet Rai Deviprasad Poorna, whose famous book DHARADHARADHAWAN I then edited and in course of its introduction I had incidentally cast reflections on the typical Samajist mentality of those days.

Khannaji too enjoyed these published remarks and both of us left the D A V almost at the same time It was known in Kanpur that out of all professors of the D A V Messrs Khanna and Dwivedi were notoriously and uniformly absenting themselves from the semi-religious sunday meetings held in the Aryasamaj hall on the Meston Road, then known as the AB Road

On leaving the D A V I joined as Vice Principal at the K K College at Lucknow and Khannaji was taken as Principal of the B N S D On the eve of my departure from Kanpur I was presented a couple of addresses by the students of the college and I know it well that it was Khannaji who persuaded them to let one of the addresses be in Hindi He worked for the cause of the Hindi Sahitya Sammelan and the Nagari Pracharini Sabha and later on both of us served on the Sahitya Samiti or the standing committee of the Sammelan I have often imagined that if Khannaji had devoted less time to practical work for his college he should have been able to produce some valuable books in English or Hindi on his own subject of mathematics But for this he probably hardly found any time, busy as he was mostly been in raising funds for his institution all these years

I have myself been able to do such literary work inspite of my administrative work as Principal While at Kanpur I tried to revive the literary traditions established there by Poornaji and edited and published a quarterly Hindi journal called KADAMBARI On the other hand I have known Khannaji going to his college early in the morning and returning home quite late in the evening And that has been the secret of his having been able to raise the B N S D to the status of one of the *biggest of Intermediate Colleges of the province*

Khannaji very proudly tells us of his humble and poor beginnings as a student who had none to look after him except an old mother who had to face grinding poverty in order to support her promising son That has been the secret of Khannaji's hard work and concentration on duty May he long be spared to see his favourite B N S D being raised to the status of a full fledged first grade college now that Kanpur is going to have a University of her own!

WITH KHANNAJI AT COLLEGE

SHRI V SHANKER, I C S

Private Secretary to Sardar Patel

[Shri Vidyashanker M A I C S is a distinguished old pupil of Khannaji He was born in Avadh in 1910 His father Rai Bahadur Avadh Behari Lal Advocate Government Pleader and Chairman Municipal Board gave him the best possible edu cation After a very brilliant educa tional career at school college and university Shri Vidyashankar sat for the I C S Examination and passed it creditably in 1933 Since then he has seen much administrative work in the Presidency of Bombay whence he came to the Government of India in the Home Department in 1941 His meritorious work in this department was so appreciated by the Hon ble Sardar Vallagh Bhai Patel Deputy Prime Minister of the Indian Union that he reposed his fullest con fidence in him and made him his private Secretary in 1947 Principal Khanna is proud of such pupils of his and the pupil also pays a warm tribute to his guru The first impression that Shri Vidyashanker formed of this illustrious educationist was that of affection and respect and in the words of the writer these two have abided ever since How eloquently does the portion within the quotation marks speak of the feelings of the writer]

When I first joined the D A V College I had the advantage of my elder brother having been there three years previously He was a student of Professor Khanna or Khannaji as we used to call him and always spoke of him with reverence affection and some awe He gave me to understand that Khannaji was a strong diciplinarian and behind his innocent looking glasses there moved eye balls which could emit some

sparks as occasion arose. Being interested in mathematics, like my brother, I also offered it as my subject

I remember my first interview with Khannaji My brother ushered me into his presence. He was reclining on his cot in his room, he was surrounded by a few students among whom was Brij Mohan Mehrotra who had distinguised himself the same year by standing first in the Province and securing distinction in mathematics For Khannaji that was a double triumph! Brij Mohan was his prize student and mathematics was the subject which he taught him I entered the room rather sheepishly, trying to take the farthest seat possible Khannaji, probably detecting the shyness and hesitation of a novice in me,, affectionately called and seated me near himself It became, so far as I am concerned, a question of respect and affection at first meeting and these have abided ever since.

Almost from the very first day of my class with Khannaji, I was lucky enough to have been "spotted" by him. In the first year, he taught me Trigonometry and in the second "Co-ordinate Geometry". After about two months with him, I was proud to receive from him the compliment, conveyed to me by brother, that I was not a bit inferior to Brij Mohan. I was elated, but at the same time modest enough to regard it as very generous of him. His interest in my student career never flagged He had most winning manners; he always put the students at ease and generally talked to them with one of his hands on their shoulders, displaying an unusual familiarity between the teacher and the taught

Whenever any of us got ill, he always used to attribute it to our breaking the laws of nature. He, was a confirmed believer in natural living and nature cure I remember how, when he fell ill once, we had our own back by charging him with having broken the laws of nature His reply was, however, a disarming affirmative

As a teacher, Khannaji was by no means brilliant, he was clear-headed and his knowledge and method of solving problems in co-ordinate geometry were uncanny. He ran his class as a benevolent despot—I use the word not in the usual authoritarian sense, but as merely the opposite of constitutional monarchy. There was authority in his class which we all respected and benevolence which we all felt grateful for.

He also had the unique way of getting the answer out of the students themselves I recall how it used to be my lot to pay frequent visits to the blackboard to explain the problems to the rest of the class As I progressed in the solution, he would follow me with affectionate interest and when the answer was reached, he always greeted me with enthusiasm I remember once he himself had to go to the blackboard because none of us could solve the problem, he did solve it, but by a method which I thought was longer than necessary I put forward my alternative method, unlike many others he did not frown upon me but accepted my suggestion In my boyishness I regarded it as a triumph, but now when I come to think of it the triumph was his, he had stooped to conquer

I have already mentioned that he was a strict disciplinarian but that was without creating an awful dread in us of his presence or personality I remember two instances of the effectiveness of his authority One of my teachers was too kind hearted for us Unfortunately, we felt he was rather monotonous His speed was that of the mail train, stopping only at very select stations While the front benchers had to pay the penalty of being all attention the back benchers talked while the mail train went on Once there was such a noise that Khannaji passing by heard it He paused in a corner but the noise persisted He came into our class quite annoyed, the slanting eye brows and the sparks from the eyes were sufficient to throw the whole class into a contrasting silence Another occasion came when while Khannaji was taking our class, the adjoining class was celebrating the occasion of their teacher s absence We were all envious and wished Khannaji had broken a trifling law of nature, we were rather unattentive Khannaji detected it Rather than take us to task, he immediately made his way into the adjoining class and silence was the immediate effect of his entry The class quietly dispersed and we relapsed into our studious attention

Thus during my two years at Kanpur, learning at Khannaji s feet, I developed a devotion to Khannaji which has stood the test of years It was said of a teacher, "like a true and affectionate mother he nursed and nourished, strengthened and instructed the eternal child that is in

us" Khannaji very nearly fits in with this description I say "very nearly" for there is no reference in it to the disciplinary aspect of a mother's role His class was a family of which he was the patriarch, his manner was soft without being weak, his learning useful without being flashy his teaching steady without being too scholarly He inspired among his students affection and respect he was businesslike and painstaking He was their guide friend and philosopher Even to day he meets his old students as if the same family tradition continues Today when we are commemorating his services to a generation of students who are now fighting life s battle in every walk of life, we do so with a reverential attitude and a grateful heart, May God give him full recompense for all that he has done for them !

THE SCHOOL SYSTEM IN INDIA

Dr. P D. Shukla M.A., P hd.

[Dr. P. D Shukla, M A, P hd is a distinguished student of Prinpical Khanna After serving the Mathematics Department of the Lucknow University with distinction for several years his services have been requisitioned by the Ministry of Education, Government of India as the officer in charge of the Statistics Section In this capacity he is responsible for bringing out a number of useful publications In the present article Dr Shukla, in his usual lucid manner, talks of the school system in India His article is very illuminating.

I have been approached to contribute an article on some topic for the proposed Commemoration Volume to be presented to Shri Hira Lal Khanna on the eve of his retirement from the principalship of the B N.S D College, Kanpur.

Khanna Jee has left an abiding memory in the minds of his students and I consider it to be both a pleasure and honour to associate myself with the proposed scheme The New India is very keen to re-organise its educational system and determined efforts are being made to introduce as many educational development plans as possible within the limited resources of the country. Since a proper understanding of educational system of the country constitutes a basic principle of any educational reorganization, I have considered it to be in the fitness of things that in the Commemoration Volume for an educationist of the importance of Shri H. L. Khanna I should give a brief account of the school system in India

The school system in India can be conveniently broken into 4 stages: Nursery, Primary, Middle and High. The Middle and the

High Stages combined constitute what is known as the Secondary Education The Nursery Stage in this country is called by different designation namely, Nursery, Pre Primary, Infant Kindergarten, etc Although this is in many ways the most important stage in a child's educational career, yet because of serious educational backwardness in the country both the supply and the demand of the facilities for this stage of education have been rather meagre The Primary Stage therefore, constitutes the first well organised step to the educational staircase

Primary Education —

Primary Schools in India are of several varieties Some of them are independent schools having a couple of teachers and a Head teacher Some of them constitute the lower classes of Middle Schools or some times even of High Schools Some of the Primary Schools constitute very small units These are called Single Teacher Primary Schools, and, as the name implies, all the classes in these Schools are taught by only one teacher During the year 1947 48 (1st April 1947 to 31st March 1948) there were in India (excluding States) 1 40,794 Primary Schools which included 38 466 (i e 27 3 per cent) Single Teacher Primary Schools It may be worth mentioning here that of the total number of educational institutions (schools colleges and other institutions) in that year, 82 4 per cent constituted only Primary Schools Most of the Primary Schools in the country are located in rural areas It is observed that 80 4 per cent of the Primary Schools in 1947 48 were situated in villages and only 19 6 per cent in cities and towns

- A detailed information about the scheme of school classes as it existed on 31st March, 1949, in the different Provinces and Centrally Administered Areas of the country is given at page 279 In Assam the Primary Stage spreads over a period of 5 years and the different classes are named A, B I, II, and III Children who pass class II of the Primary Stage are free either to continue their study in class III of the same Stage or join the English School in class III In West Bengal the Primary Stage is of two kinds the Vernacular and the English In both of them the period of instruction is 4 years and the classes are numbered as I II III, and IV In the English Primary stage, teaching of

English begins in class III. The Primary Stage in Bihar spreads over 6 years and the classes are known as Infant I, II, III, IV, and V. In Bombay this Stage is of 7 years and the classes are known as Standards I, II, III, IV, V, VI, and VII. In C P & Berar the Primary Stage consists of classes I, II, III, and IV and has been designated as the Junior Basic Stage. A student after passing class IV of this stage can enter class V either of the Senior Basic Stage or the same class of the middle stage of an English High School. In Madras again the Primary schools are of two kinds the Elementary or the Vernacular Schools and the English Schools. The former consists of classes I, II, III, IV, V, VI, VII, and VIII and the teaching of English as an optional subject commences from class VI. In the English schools, however, this stage consists of classes I, II, III, IV, and V and no English is taught in any class. In Orissa although the Primary Schools are again of the Vernacular and the English type, yet the Primary Stage in both types spreads over a period of 5 years and consists of classes Infant, I, II, III, IV, and V. In East Punjab the Stage is of 4 years duration and the classes are numbered as I, II, III and IV. A student after passing class IV is free to enter class V either of the Vernacular School or of the English School. In United Provinces the scheme of school classes has recently been revised materially and the Primary Stage now covers 5 years and is designated as the Basic Primary Stage. The corresponding classes are numbered as I, II, III, IV and V. In the Centrally Administered Area of Ajmer Merwara the Primary Schools are again of the Vernacular and the English type, but in both of them the Primary Stage consists of classes I, II, III, and IV. A student after passing class II of any school is free to continue in the same school or go over to that of the other variety. Teaching of English begins in class III of English Schools. In Coorg, which also is a Centrally Administered Area, the Primary Stage of both the Vernacular and English Schools covers 5 years and consists of classes I, II, III, IV and V. The teaching of English commences in class III. In Delhi, still another Centrally Administered Area the children are first admitted in a Pre Primary Class called the Nursery class. After passing this they enter the Primary Stage which consists of 4 classes I, II, III, and IV.

The period of instruction in each class of the Primary Stage is every where one year, but in the case of exceptionally brilliant children who enter the Primary Stage after receiving some home education promotion may be given even more than once during the same academic year The different annual examinations in this stage are school examinations in which promotion is given by the teachers concerned under the supervision of the Head teacher, if there is any But the examination at the end of the full primary course is held under the supervision of the Inspector of Schools of that locality, and those pupils who pass that examination are generally given the Primary School Certificate which entitles them to be admitted in the middle classes

The medium of instruction in all the Primary Schools or stages in the country is the mother tongue of the child or the regional language In the case of children whose mother tongue is different from the regional or the provincial language, it is being emphasized that arrangements should be made, as far as possible, to provide primary education to these children in their own mother tongue by opening different schools for such minority groups or by attaching for them special classes to the existing Primary Schools

As has been stated before, the instruction provided in each class of the Primary School runs over a period of 12 months with a vacation of about 2 months at the end of each session The subjects taught are Reading, Writing, Arithematic Elements of Local Geography, and some rudiments of Hygiene and Civics Physical exercise and outdoor games for about an hour are compulsory parts of the daily instructional routine of these schools In most of the Primary Schools arrangements exist also for periodic medical inspection of the children Occasionally, these children are taken out on short excursions and some times they are provided audo visual education as well

Co education in the Primary Stage in this country has been more common in the girls' schools than in the boys' Of the total number of students receiving instruction in Primary Schools, 80,64 883 were boys and 29 92,422 girls Of the former, 79 74 472 were reading in Schools meant for boys and only 90,411 in those for girls But of the girls under

instruction, 11,72,794 were reading in schools meant for girls and 18,19,628 in those for boys.

Education in India is the responsibility of Provincial Governments, but in the management of Primary Schools even the Provincial Governments have not taken a big share. Most of the Primary Schools in the country are managed by Local Boards (Municipal, District, Cantonment, etc.). An almost equivalent responsibilty in the management of these schools has been shared by private bodies as well. It is seen that in 1947-48, the percentage of the Primary Schools managed by the Government, the Local Boards, and other private bodies worked out to be 5.3, 53.0, 41.7, respectively. It must be mentioned in this connection that most of the institutions which are not managed by the Government are helped by them financially. The total direct expenditure incurred on Primary Schools during the year 1947-48 was Rs. 18,90,00,337/. Of this Rs. 11,22,94,151/ (i.e. 59.4 per cent) was met from Government funds, Rs. 5,96,88,793/- (i.e. 31.6 per cent) came from Local Board revenues, Rs. 65,70,263/- (i.e. 3.5 per cent) was received in the form of fees from students, and Rs. 1,04,47,130/- (i.e. 5.5 per cent) was met from endowments, subscriptions, etc.

Primary Education in India has been fairly cheap. The amount charged has been only nominal running in most cases into only a couple of annas per month. Exact figures of the distribution of fees charged from the Primary School children is difficult to be given in the present account. An idea however, can be formed from the fact that of the total direct expenditure on Primary Schools during the year 1947-48, only 3.5 per cent was met from fees. The latter included not only tuition fees, but other fees like the ink-fee, games fee, hygiene fee, etc., and it works on an average to be less than -/1/ per pupil per month.

The average age of children in the Primary Stage in India varies from place to place. An all-India figure, however, during the year 1946-47 for the 1st year and the last year of this stage was 7.4 and 10.6 years, respectively, while that for the whole of the stage was 8.6 years. The maximum age of any pupil receiving instruction in the Primary Stage in that year exceeded even 20 years.

The period of instruction in each class of the Primary Stage is everywhere one year, but in the case of exceptionally brilliant children who enter the Primary Stage after receiving some home education promotion may be given even more than once during the same academic year. The different annual examinations in this stage are school examinations in which promotion is given by the teachers concerned under the supervision of the Head teacher if there is any. But the examination at the end of the full primary course is held under the supervision of the Inspector of Schools of that locality and those pupils who pass that examination are generally given the Primary School Certificate which entitles them to be admitted in the middle classes.

The medium of instruction in all the Primary Schools or stages in the country is the mother tongue of the child or the regional language. In the case of children whose mother tongue is different from the regional or the provincial language, it is being emphasized that arrangements should be made, as far as possible, to provide primary education to these children in their own mother tongue by opening different schools for such minority groups or by attaching for them special classes to the existing Primary Schools.

As has been stated before, the instruction provided in each class of the Primary School runs over a period of 12 months with a vacation of about 2 months at the end of each session. The subjects taught are Reading Writing, Arithematic Elements of Local Geography, and some rudiments of Hygiene and Civics. Physical exercise and outdoor games for about an hour are compulsory parts of the daily instructional routine of these schools. In most of the Primary Schools arrangements exist also for periodic medical inspection of the children. Occasionally, these children are taken out on short excursions and some times they are provided audo visual education as well.

Co education in the Primary Stage in this country has been more common in the girls' schools than in the boys. Of the total number of students receiving instruction in Primary Schools, 80 64 883 were boys and 29 92,422 girls. Of the former 79 74 472 were reading in Schools meant for boys and only 90 411 in those for girls. But of the girls under,

instruction, 11,72,794 were reading in schools meant for girls and 18,19, 628 in those for boys

Education in India is the responsibility of Provincial Governments, but in the management of Primary Schools even the Provincial Governments have not taken a big share Most of the Primary Schools in the country are managed by Local Boards (Municipal District Cantonment, etc) An almost equivalent responsibilty in the management of these schools has been shared by private bodies as well It is seen that in 1947 48, the percentage of the Primary Schools managed by the Government, the Local Boards, and other private bodies worked out to be 5 3, 53 0, 41 7, respectively It must be mentioned in this connection that most of the institutions which are not managed by the Government are helped by them financially The total direct expenditure incurred on Primary Schools during the year 1947 48 was Rs 18,90,00,337/- Of this Rs 11,22,94,151/ (i e 59 4 per cent) was met from Government funds, Rs 5,96 88,793/- (i e 31 6 per cent) came from Local Board revenues Rs 65,70,263/- (i e 3 5 per cent) was received in the form of fees from students and Rs 1,04,47,130/- (i e 5 5 per cent) was met from endowments, subscriptions, etc

Primary Education in India has been fairly cheap The amount charged has been only nominal running in most cases into only a couple of annas per month Exact figures of the distribution of fees charged from the Primary School children is difficult to be given in the present account An idea however, can be formed from the fact that of the total direct expenditure on Primary Schools during the year *1947-48, only 3 5 per cent was met from fees The latter included not* only tuition fees but other fees like the ink-fee, games fee, hygiene fee, etc , and it works on an average to be less than /1/- per pupil per month

The average age of children in the Primary Stage in India varies from place to place An all India figure, however, during the year 1946 47 for the 1st year and the last year of this stage was 7 4 and 10 6 years respectively, while that for the whole of the stage was 8 6 years The maximum age of any pupil receiving instruction in the Primary Stage in that year exceeded even 20 years

During British regime in India attempts were being made since a long time to increase the Primary Education in the country, but because of various reasons not much success could be achieved and no enthusiasm could be instilled in the people to educate their children The masses used to send their children to Primary Schools reluctantly and would withdraw them at the slightest pretext In 1947 48 the population of 6 -11 age-group children in Indian Union (less States) was 3,33,75,187, and the classwise distribution of pupils receiving primary education was 40,63,041 in class I 19,72 628 in class II 16 62 060 in class III, 13,67,464 in class IV, and 9,57,625 in class V (Here Class I means the 1st year of entry in the Primary Stage irrespective of what the name of that class be Similarly, the successive classes) Attendance was observed, of course, to be better in some areas than in others, but in regard to India (less States) as a whole, these figures meant that about 1 out of every 3 children studied long enough at school to reach the earliest stage, i e , Class IV, at which permanent literacy is likely to be attained The result is that money spent on other students (nearly 65 per cent) may be regarded as large ly wasted There is only one way to stop this wastage and that is to make the primary education compulsory This idea was accepted in India as early as the year 1920 Since then the various Provincial Governments have been trying to introduce compulsion as experimental measures in some areas within their jurisdiction In 1947 48 there were 225 towns and cities and 10, 917 villages in Indian Provinces and Cen trally Administered Areas where compulsion had been introduced and under which 22,55,923 children (14,91,336 boys and 7,64,537 girls) were receiving education in different classes of the Primary Stage But even here experience has shown that in addition to Attendance Officers, who know their duty, and courts, which are ready to do theirs, educa- tional propaganda on an intensive scale will have to be carried out if parents are made to realize that education during childhood through the early years of adolescence is a paramount necessity in the interests of their children and the nation This gives rise to the concept of an all India scheme of national education which in the earliest stage should not only be compulsory, but also free (at Government Expense)

Middle Education

. The Middle Schools in India have in the past been of two types—Vernacular Middle Schools and English Middle Schools But during the post-war period most of the Vernacular Schools were being converted into Anglo-Vernacular ones Middle Schools containing only Middle Classes are few in number Generally they have the Primary Stage prefixed to it Similarly, the Middle Stage constitutes the lower sections of most of the High Schools

A detailed account of the scheme of school classes in the Middle Stage of Education in the different Provinces in the country has already been given in a diagram It will be seen that in Assam the Middle Stage in the Vernacular Schools consists of classes IV, V and VI and that in the English Schooools of classes III, IV, V, and VI English is taught as a subject throughout the English Middle Stage In Bengal the Middle Stage covers only 2 years and consists of classes V and VI both in the Vernacular and the English Schools Students passing the Vernacular Middle Examination may be admitted either in class V or VI of the English Middle Schools according to their proficiency specially in English In Bihar also this stage spreads over 2 years, but here the classes are numbered as VI and VII The teaching of English begins in class VII and from the year 1949-50 it will commence from class VIII In Bombay the position is quite different The Middle Satge exists only in the English Schools and the classes are numbered as I, II, and III Students passing the Vernacular Middle Examination are considered for admission in any *class of the English Middle School depending upon their proficiency* In C P and Berar also (as in Bombay) the Middle Stage exists only in the English Schools, the corresponding stage in the Vernacular Schools being called the Senior Basic Stage But while in the former the course of instruction spreads over 4 years, in the latter it covers only 3 The corresponding classes, however, in both kinds of schools commence with class V Teaching of English begins in class V of the English Schools, and the students passing class V of the Vernacular Schools can be admitted either in class V or VI of the English School. depending upon their attainment In Madras also the Middle Stage

exists only in the English Schools and the classes are numbered as I, II, III. Teaching of English and Hindi or any other second language begins in class I. In Orissa the Middle Stage in both the Vernacular and the English Schools spreads over two years and the classes are numbered as VI and VII. Teaching of English as a subject begins in class VI, and the students passing Vernacular Middle Examination are admitted in some class from IV to VII of the English School depending upon their proficiency The Middle Stage in Punjab spreads over 4 years, and in both the Vernacular and the English Schools the classes are numbered as V, VI, VII, and VIII. Teaching of English begins from class V of the English Schools. Students passing the Vernacular Middle Examination and wishing to study in the English Schools are admitted in that school in a new class called the Special Class where the instruction provided for two years (Special 1st year and Special 2nd year) is mostly in English as a subject. These special classes are considered equivalent to classes VII and VIII of the English Middle Stages, so that after passing the Special 2nd year class the candidates are admitted in the High Stage. In U. P. the distinction between the Vernacular and the English Schools has been abolished. The Middle Stage spreads over 3 years and the classes are VI, VII, and VIII. Teaching of English as a subject begins in class VI. In Ajmer-Merwara the position is very much different While in the Vernacular Schools the Middle Stage spreads over 3 years, in the English Schools it covers 4 years. But in both, the classes commence with class V. Students who pass the Vernacular Middle Examination are admitted in any one of the upper three classes of the English Middle Stage depending upon their proficiency. In Coorg the Middle Stage spreads over 3 years, but while in the Vernacular Schools the classes are numbered as VI, VII, and VIII, those in the English Schools are numbered as I, II, and III. In Delhi the Middle Stage is identical with that in the Punjab and need not be described separately.

The medium of instruction in all the Middle Schools in India is the regional language or the mother-tongue, but English is also taught

as a compulsory or optional subject Other subjects taught are Mathematics Modern Indian Languages, Geography of India, History of India, Hygiene, Nature Study, Classics, Drawing Music, etc Of these the earlier ones are compulsory and the last few optional The Middle School Examinations in the Vernacular Schools are generally conducted by a Provincial Board and this is the first public examination for these children This is, however, not true of the children who join the English School and in which the middle classes constitute an earlier part For them this is only a home examination and the first public examination which they take is that at the end of the High Stage The standard of attainment of the children who pass out of Middle School Stage is higher than the Primary School Certificate Examination and lower than the High School Examination

The average age of children in the Middle Stage as in the Primary Stage, varies from place to place An all India figure, however, during the year 1946 47 comes to be 12 8 years, although there were children who were studying in the Middle Stage and were as young as 6 years and as old as 20 years and even more

Detailed information about the fees charged from the Middle Stage children is not available but on an average the income from tuition fees which accrued to the Middle Schools during the year 1947 48 came to about As 13 per student per mensem Other sources of income of the Middle Schools have been the Government funds Local Board (Municipal District and Cantonment) funds and endowments and subscriptions from the public During the year 1947 48 the total direct expenditure on Middle Schools was Rs 3 61 05 873/ The source wise distribution of this expenditure was Government grant—Rs 1 25 57 309/ (34 8%) Local Board funds—Rs 67 99 666/ (18 8 %) fee—Rs 1 17 40 325/ (32 5 per cent) and endowments etc —Rs 50 08 573/ (13 9)

As in the case of Primary Schools the management of the Middle Schools in India is mostly the responsibility of the Local Boards and Private Bodies the Provincial Governments concerned having very small share It is found that in the year 1947 48, of the total number of Middle Schools 47 3 per cent were managed by the Local Boards

46 8 percent by private bodies, and only 5 9 per cent by Provincial Governments

Co education is not much in vogue in the Middle Stage Of the total number of students receiving instruction in the Middle Schools during the year 1947 48, there were 9 65 685 boys and 2 28 929 girls Among the former 9 58,914 were reading in schools meant for boys and 6,771 in those for girls Similarly among the girls under instruction, 1 78,937 were reading in schools meant for girls and 49 992 in those for boys

High Education

The High Stage in India is the closing stage of school education Because of this and a few other reasons this is one of the most important stages in the educational system A large majority of the students after passing out of this stage discontinues their studies and enters into life Its importance also lies in the fact that others who want to prosecute their studies further go over from this stage into the University or the Higher Stage of Education In the 1947 48 High School and equivalent examinations 1,29,958 persons passed In the same year the enrolment figure in Intermediate 1st year was 68,049 This shows that approximately 50 per cent of the children after passing the High Stage leave their educational career

A detailed account of the scheme of school classes in this stage of education is included in the chart given elsewhere It will be seen that in the Provinces of Assam and Bengal High Stage covers 4 years and the classes are numbered VII, VIII, IX, and X Medium of instruction in this stage is Vernacular and English is taught as a subject In Bihar also this period spreads over 4 years but the classes are numbered as VIII IX, X and XI The medium of instruction is again Vernacular and English as a compulsory subject is taught throughout the High Stage In Bombay although the period covered is 4 years yet the classes are numbered as IV, V, VI, and VII, and the medium of instruction in some subjects is English In C P and Berar the High Stage spreads over 3 years and the classes are numbered as IX, X and XI There are two types of High Stages in this

Province in some the medium of instruction is English, while in others it is Vernacular In the Province of Madras the High Stage again is of two types Academic and Bifurcated In both these the course of instruction spreads over 3 years and the classes are numbered as IV, V, and VI The instruction provided in the academic type leads to the university course, while the bifurcated type provides instruction in the secretariat, commercial, pre-technological, aesthetic, and domestic subjects so that the students after passing it may seek employment in some line The position in Orissa is exactly similar to that in Bihar In East Punjab the High Stage covers only 2 years and the classes are numbered as IX and X Here the medium of instruction in some subjects is English The position in U P is unique There are 4 kinds of High Stages Literary, Scientific, Constructive, and Aesthetic The period of instruction in all these is 4 years and the classes in each are numbered as IX, X, XI, and XII English is taught as a compulsory subject in the first two types, and as optional in the last two [1] The [2]medium of instruction in the earlier half stage of the literary and scientific types is Vernacular, while in the remaining half it is English, but in the constructive and aesthetic types the medium of instruction is all along Vernacular The High Stage is this Province has recently been designed as the Higher Secondary Stage The position in Ajmer-Merwara as far as High Stage is concerned is identical with that in East Punjab In Coorg the High Stage covers 3 years with IV, V, and VI, and English is the medium of instruction In Delhi the High Stage is again of two types (a) High Stage—that in which the period of instruction is 2 years with classes IX and X with Vernacular as the medium of instruction, and (b) Higher Secondary State—that in which the period of instruction is 3 years with classes IX, X, and XI, and with Vernacular as the medium of instruction

It will be seen that the High Stage, unlike the Primary and Middle Stages has different designations in the different Provinces They are High School, Matriculation, School Final, School Leaving,

---

[1] English has again been made compulsory for the Inter Examination of 1950
Editor.

[2] The medium of Instruction is Hindi everywhere up to the Inter Classes

and Higher Secondary The standard of attainment in all these nomenclatures, except the Higher Secondary, is roughly the same but in the latter it is superior by about one year s further instruction The students after passing the Higher Secondary Stage are admitted into the Degree Classes of those Universities where the course of instruction for a pass degree is scheduled to cover 3 years Everywhere else where the rest of nomenclatures for the High Stage exist the students have to receive two years further instruction in the pre graduate classes called the Undergraduate or the Intermediate classes At most places in the country the Intermediate Stage is a part of the University, but in some of them it is administered by a Provincial Board

There is some variation in the subjects taught and the courses covered in the High Stages of different Provinces On an average, however, instruction is provided in English, Mathematics Modern Indian Languages, Geography of India and other continents History of India and England Classics, Physical Sciences Drawing Music, etc The subjects given in the beginning of this list are compulsory and those at the end are optional with slight variations according to Provinces and Universities It will be noted that in the High Stage so far English has been taught as a compulsory subject but the medium of instruction in all other subjects has generally been the regional language This practice is considered desirable and may continue even after the post war educational reconstruction in the country

For all children receiving English education the High School or its equivalent examination is the first public examination and the nomenclature attached to the certificate awarded to them is High School Certificate, Matriculation Certificate, etc according as they have taken the High School Examination the Matriculation Examination etc, respectively

The pass percentage in the 1947-48 High School Examination was 66 6 per cent It may be mentioned that this percentage remains almost stationary from year to year During the year 1947 48, 1 95 167 students (1,72 432 boys and 22 735 girls) took this or its equivalent examination and of these 1 29 958 students (1,15,008 boys and 14 950 girls) passed It will be seen that the pass percen

tage in boys (66 7 per cent) is hardly different from that in girls (65 8 per cent)

The candidates who take the High School Examination are of two kinds Regular and Private A regular examinee is one who receives regular instruction in the High Stage and then takes the examination, and a private examinee is one who takes the examination without having received regular instruction in the high stage of any recognised High School Among the private examinees there are some who appeared earlier as regular candidates and failed The number of private candidates compared with the regular ones is small but not insignificant It is reported that in 1947-48 in the High School and its equivalent examinations there were 48 622 private candidates which works out to be 24 9 per cent of all the candidates (regular and private) who took this examination It is also found that among the private candidates the pass percentage was only 47 0 while that in the regular it was 73 2

Co education has not been very popular in the High Schools During the year 1947-48 there were 18 26,008 students on rolls in High Schools of Indian Provinces and Centrally Administered Areas This comprised of 15 058 boys (86 3 per cent) and 2 49 950 girls (13 7 per cent) Of the former, 7265 (0 5 per cent) were reading in institutions for girls, while in the latter there were 57 772 (23 1 per cent) who were reading in schools for boys

Exact figures about the tuition-fee charged from the students of the High Stage are not available During the year 1947-48 there were 18,26 008 students receiving instruction in the High Schools (these may include the Middle Stages and in some cases even the Primary Sages as parts of the High School) Income to High Schools from fees alone was during that year Rs 5 78 38 382/ so that the average amount of fees (including tuition fee examination fee any other kind of fee) per student per mensem was Rs 2 6 It may be concluded therefore, that the average fee charged from a student in the High Stage is not less than Rs 2/8 - per mensem

As in the case of Primary and Middle Schools the High Schools are also managed by the Government the Local Boards, and

the private bodies. Although a very high percentage of the High Schools is under the administration of private agencies, yet unlike the Primary and the Middle Schools, an equivalent responsibility is not shouldered by the Local Boards It was observed that in the year 1947-48 there were 4076 High Schools in India (less States) Among these there were 3257 (79 9 per cent) which were under the management of private agencies, and 443 and 376 (10 9 per cent and 9 2 per cent) which were managed by Local Boards and Provincial Governments respectively

No account of the High Stage in India can be complete without a reference being made to the Cambridge System of Instruction This system was started in India several years back and was the more anglisized system. The syllabus prescribed in these schools was generally similar in content to that prescribed for the Middle and High Schools, but with more emphasis on English and lesser on other subjects The Junior Cambridge and the Senior Cambridge were the two examinations after passing which the candidates were awarded the Junior Cambridge Certificate and the Senior Cambridge Certificate respectively. Although neither of these two certificates can be measured in terms of either the High School or any of its equivalent examinations, yet at some places it was the practice to admit a Junior Cambridge pass student in the highest class of the High Stage, so that after one year's further instruction he could take up the High School Examination. Similarly, those who passed the Senior Cambridge Examination were generally admitted in the 2nd year class of the Intermediate stage and they also after one year's further instruction could appear in the Intermediate Examination. But the popularity of this system of examination is waning now.

Compulsory Basic Education:

Since some time past it is being felt with increasing clarity that the present system of school education is defective in many ways There is very little relation between this system and the life and reality around, so that it has very little to do with practical knowledge. Mahatma Gandhi, the father of the nation, was the first to complain

School System in India.

that the existing system had failed to meet the most urgent and pressing needs of national life. He realized that the education received by the so caleld 'educated' men did not train them to become useful and productive members of society able to pull their own weight and participate effectively in the struggle of life. In July 1937 issue of the Harijan therefore, he published very briefly his scheme of Basic Education. At the Wardha National Conference held in October 1937, resolutions were passed to the effect that free and compulsory education be provided on a nation wide scale. Subsequently both the theoretical and the practical aspects of this type of education were thought over, discussed, and thrashed out by the educationists in the country. The Central Advisory Board of Education also recognised and recommended that 8 *years compulsory and free basic education* was the minimum amount of instruction which must be given to every child in order to make him the right citizen and a useful member of society.

The basic system of education is based on the principal of "Learning through activity". Some creative craft should become the centre of all education. The whole course is divided into two stages, the Junior Basic and the Senior Basic—the former spreading over 5 years and the latter over 3. It has been recommended that the Junior Basic Schools should provide for appropriate 'activities' leading to the craft or crafts in the Senior Basic Schools. Thus Gardening leading to the craft of Agriculture, Spinning to the craft of Spinning and Weaving, Clay Modelling leading to the art of pottery and wood work, etc. This system of education not only makes the lesson more practical, but also enables the child to pick up one or two crafts during the school period. By selling the produce of the pupils the schools can raise a little fund to help them in meeting their expenditure. In these days of financial stringency this productive aspect of the system is fairly important.

There have so far been two serious difficulties in carrying out the recommendations about introducing the basic system of education. This education being free for all children, the expenses which are involved in it are too high for the State to bear at the present moment

so that the progress has got to be slow The second difficulty is the scarcity of teachers specially trained on basic lines

It is gratifying to find that in spite of these difficulties all the Provincial Governments in the country are trying their best to introduce this system as quickly as they possibly can Through the advice and financial help of the Central Government they are all trying their level best to provide facilities for free and compulsory basic education partly by opening new basic schools and partly by converting the existing primary schools into those of the basic type Almost everywhere special steps are being taken to increase the output of basic trained teachers partly by training new recruits and partly by giving refresher and short term courses to the existing primary school teachers It may be hoped, therefore, that within the course of a few years all the children of scool-going age in the country would be receiving the benefit of this national system of compulsory and free basic education

NOTES

Assam

The Basic school system has not yet been introduced in Assam English is taught as an optional subject in Middle Vernacular Schools

West Bengal

Pupils, who have studied English as an optional subject in a Vernacular School are admitted in class VII of an English School, after passing class VI of a Vernacular School while others will be admitted in class V

Bihar

The distinction of Middle and Vernacular Schools has been abolished Teaching of English during 1949-50 will start from class VIII instead of class VII The medium of instruction is the mother tongue rather the regional language—Hindi, Oriya, Bengali & Urdu upto class V, and thereafter Hindi becomes the medium of instruction except for the non-language subjects If in any school under special circumstances, the concerned regional language is kept as the medium of instruction, then Hindi is also taught as a compulsory subject

Bombay

The Basic course runs concurrently with the primary course After attending special classes known as 'English Classes' in standards V to VII of the Vernacular school or after one year of special and intensive course of study in English after passing the Primary school certificate Examination students can enter standard IV of an English Secondary School Teaching of English in standard I of Secondary English Schools has been discontinued during this year as a first step in accordance with the Government's policy of abolishing English from the first three Standards of Secondary school progressively

C P and Berar

In Vernacular schools the Primary and Middle stages are now known as Junior and Senior Basic stages respectively As the provincial Government have sanctioned the abolition of English as medium of instruction in High School classes, it has been given effect to in some High Schools this year, and in the rest it will be introduced during the next year

Madras

English is taught as an optional subject from standard VI in Elementary (Vernacular) schools whereas it is a compulsory subject in Secondary (English) schools Under the existing system, a pupil from either an Elementary (Vernacular) school or from private study can be admitted to any of the classes upto Form III of a Secondary (English) School, for which he is found fit Under the reorganised Secondary School course a pupil has to study 3 languages from the Middle stage, viz , (i) the Regional language, (ii) Hindi or any other language specified under the 2nd languages group and (iii) English At the commencement of High School stage i e from IV Form there are 2 courses—one called Academic, which leads to the University Courses of study and the other called Bifurcated Course of the following kinds —(a) Secretarial (b) Pre Technological, and (c) Aesthetic and Domestic These bifurcated courses are intended to provide different opportunities for such pupils, as may seek employment after they leave schools A

pupil, after completing a bifurcated course, is also permitted to go to the University courses of study, if he so desires, subject to certain conditions in the case of Secretarial, Aesthetic and Domestic Science pupils.

Orissa :

The knowledge of English of a student studying in Vernacular school determines the class in which he may be admitted in an English School. Study of English in classes IV and V has been abolished during the year, and teaching of Hindustani has been made compulsory in classes VI and VII, and optional in other classes of the secondary schools.

East Punjab :

Though the scheme shown in the diagram is totally applicable for Boys' schools, it is slightly different in the case of girls. In the girls' schools there are five classes in the Primary Stage and three classes in the Middle Stage and others remaining unaltered

U.P.

The difference between Vernacular and English schools now no longer exists Former Primary and Middle stages are now known as Basic and Junior High School stages respectively

Ajmer Merwara.

Pupils, after completion of Vernacular course, may be admitted to their class VI, VII or VIII of an English school according to their proficiency especially in English .

Coorg :

In Secondary schools the first five classes are known as "Standards", and the remaining six classes as "Forms", whereas in Elementary schools they go by the name of Standards similar to the system prevalent in Madras. Promotion to Form IV is regulated by the results of a Common Entrance Examination, and to Form I or the equivalent Standard VI by the results of an Admission Test

REMINISCENCES.

SHRI S. L. JINDAL, *Principal Training College, Agra*

[Shri S. L. Jindal, Principal Training College Agra, is an eminent educationist of these Provinces. He sat at the feet of Khannaji. He has been a fellow worker also of Khannaji. His views shall be read with interest.]

I met Shri H. L Khanna for the first time in 1917 when I joined St. John's College, Agra, after passing the Matriculation Examination. He was then Professor of Mathematics in the College. By his magnetic personality, charming manners and affectionate regard for his students, he won the hearts of all those who came in contact with him. He had his own method of teaching, in as much as he infused enthusiasm in his students for work and inspired them to pursue high ideals of self-sacrifice, patriotism and brotherhood.

As a result of this, his students not only secured high positions in the University Examination but also became good citizens His personality has left *indelible impression on my mind, and I always try to follow in* my life his high ideals of truth, justice, and love for humanity May he be spared for long to serve mankind !

THE INDIAN CULTURE AS IT IS TODAY

Shri B A Siddiqi *Principal, Shibli College Azamgarh*

[Shri Bashir Ahmad Siddiqi is the Principal of the Shibli National College, Azamgarh He is an eminent educationist and consequently whatever comes from his pen is worthy of attention

In this short contribution (Indian culture as it is today) he has described it as a rainbow culture He emphasises the point that the unity of the Indian culture educationist and consequently whatever comes from his pen is worthy of attention

By coming into contact, different cultures assimilate each other's catching characteristics This leads to such a fusion of culture such that a culture comes into being It is an improvement on the cultures it is built upon It is richer It is colourfully balanced It is a rainbow culture

In their social and cultural contacts the Hindus and the Muslims adopted each others' many customs A fusion of all that was naturally attractive and appealing to them took place This process proved a synthesis of their cultural characteristics This led to the evolution of another culture which, strictly speaking, was neither a purely Hindu nor Muslim culture It became the true Indian culture

In the evolution of this culture the Hindus and the Muslims played an equally important part The Muslims, feeling the call of the festivals took part in the Hindu festivals and adopted many Hindu customs in respect of marriage, death and child birth tomb and tazia worship,

Urs and their celebrations in their many details were purely Hindu in conception and practice.

The Hindus on their part adopted some of the Muslim customs. They visited Muslim Pirs, Saints and shrines for spiritual consolation and blessing The great Hindu religious reformers felt the force of the Unity of God, the quientessence of Islam In the Sikhism, the Arya Samaj and the Brahmo Samaj, the oneness of God has had its place The abolition of Sati System and Untouchability, sanction of widow remarriage, the reform of the inheritance law and the observance of pardah are some of the high-lights of reforms directly traceable to the contact and the contribution of Islam towards the evolution of the Indian culture.

The unity of Indian culture consists in the balanced diversity of many cultures that flourished in this ancient land. As the European culture is the high flower of European civilization so is the Indian culture crown and glory of *Indian civilization*

PLANNING OF PHYSICS LABORATORIES FOR JUNIOR COLLEGES

SHRI KRISHNA GOPAL SRIVASTAVA, *University of Allahabad*

[Shri Krishna Gopal Srivastava is a distinguished student of the B N S D College and is not only a pupil but an ardent admirer of Khannaji The article deals with an important subject of the day and shall be read with interest and advantage]

The data collected by the scientific manpower committee show that India is starving of scientists. In the present state of civilization no country can afford to neglect this power. A student of economics knows very well that if we go back to the old days of bullock cart we are sure to lose our political freedom which we have acquired only recently We will have to produce a certain quota of technicians for this purpose. Besides we cannot lose pursuit of pure science for that will cripple the scientific faculties of the nation and we shall not be able to compete with other countries This is the age of atomic energy and anti-bombs. These involve great technical capacity and a thorough knowledge of pure sciences. Statistics show that our main sources of energy—coal and petroleum—are deteriorating fast. Many problems are involved in other sources of energy like water power, solar energy, etc. As Prof. N. R. Dhar once pointed out in one of his illuminating lectures, even such scientifically and technically advanced countries like U. S. A. could pass Tennessee Valley act after 100 years of regular and intense scientific study of soil. It is needless to further stress that we have to develop

scientific manpower for multifold purposes But this cannot be done by simply starting laboratories Definite planning is essential if any results are to be expected To develop this class of people, a minimum basic knowledge of science will have to be imparted before they are allowed to specialise in their respective branches The school which will impart this knowledge has a great responsibility to the nation If the training is faulty here, our science students will be short-sighted and will lack originality At present in India this education is being given in the intermediate classes and we have to form its syllabus very carefully and make arrangements for its being carried out faithfully In the study of science, experimental part plays a very important role Obstruse ideas which are difficult to retain in mind are very easily fixed up in the minds of the students if they perform experiments relating to that subject As such while designing laboratories we have to be very careful in sorting and grouping the experiments It is the purpose of this article written in the memory of my revered teacher and guide Shree Hira Lal Khanna who is now retiring from the institution which owes its present status to him and his strenuous and untiring efforts, to suggest a definite plan for laboratory design in one of the science subjects —'Physics'—in which I have specialised and which is my profession, for intermediate colleges Importance of Physics is very well realised We need not lay stress on it here Mathematics and Physics are fundamental sciences which have been developed most Next come chemistry and biology and then social sciences like economics, sociology, philsophy etc, which have been least developed Knowledge of Physics has application to each and every scientific usage

The pratical work needed for the students can be placed in two distinct groups—Demonstration experiments to be shown collectively to the whole class, and student's experiments to be done by individual students separately Unfortunately the first type of experiments is almost completely neglected in most of the intermediate and degree colleges in U P at least, and the present article is devoted to their consideration alone I will like to encroach upon authorities concerned of committee of courses to pay definite attention towards this point and frame a separate clause for the number and list of demonstration experiments to be

included in regular syllabus of the intermediate examination and insist on them. The absence of these experiments is one of the important reasons of the bitter fact that most of our degree students are not clear in their fundamental concepts. They are all the more important for a subject like 'Physics' There are six main branches of physics—General properties of matter, heat, light, sound, electricity and magnetism and at least 10 demonstration-experiments are necessary for each branch. This means that 60 demonstration-experiments will be necessary. I have calculated their cost on the present day price level It comes out to be Rs 2000/- only This is not a very big sum for a physics laboratory and the money will be very well spent One thing I will like to point out in this connection that these demonstration-experiments should be such that they can be assembled from their parts before students This will create confidence amongst students and a greater insight in the subject. In the present article I propose to give an illustrative list of experiments subjectwise The list given here is simply to illustrate the method of sorting the experiments The laboratory incharge should always make a list of his own.

Here is the list now.

GENERAL PROPERTIES OF MATTER

(1) An experiment to demonstrate the flying of a toy-aeroplane Various parts should be assembled before students and their function explained. The various forces involved should be clearly understood by the students This experiment is ideal for mechanics and will be of interest to students as well.

(2) (a) Reaction caused to gun in firing a shot (Verification of Newton's III law of motion) can be demonstrated by optical lever arrangements. The explosion can be started electrically from a distance and by the movement of a spot of light, the movement of the gun can be demonstrated

(b) Bending in circular motion. This is very common and can be simply demonstrated.

(c) Centrifugal Force by Watt's speed Governor.

(3) Friction—(a) Horizontal plane experiment
(b) Inclined plane experiment.

(4) Levers.

(5) (a) Defects of balances and their cure.
(b) Balance without weight.
(c) Weighing by oscillation.
(d) Gyinea-feather experiment.

(6) Surface Tension—(a) Soap film in an iron ring.
(b) Rise of water in cappilary tube.

(7) Water seeks its own level :—
(a) A complicated glass apparatus can be designed.
(b) Pressure of fluid is perpendicular to the walls of vessel.
(c) Hydrostatic Paradox—Fluid pressure depends on depth alone and not on the shape of the vessel
(d) Pascal's well known experiment

(8) Principle of multiplication of force —
(a) Simple experiment.
(b) Hydrostatic bellows.
(c) Bramah's press.
(d) Submarine and Cartesian Driver.

(9) Experiments to illustrate that air exerts pressure:—
(a) Torricelli's experiment.
(b) Aneroid barometer—to be assembled before students.

(10) (a) Valve action.
(b) Filter pump.
(c) Intermittent Siphon and its application in automatic flushes.
(d) Diving bell.

Demonstration experiments of this branch of Physics are neglected most though it is basically important.

HEAT.

(1) Construction and caliberation of mercury thermometer. Maximum and minimum thermometre—actual demonstration by placing it in ice and boiling water should be done.

(2) Expansion Experiments:—(a) Ball and ring experiment.

(b) Liquid expansion.—Optically magnified image of the liquid level in a long necked vessel should be demonstrated.

(3) Experiment to demonstrate the variation of specific heats—Place a number of balls of different metals of same mass in a vessel of boiling water and place them on a thick slab of paraffin wax The balls absorbing greater heat will sink farthest.

(4) Ice calorimeters :—Black's and Bunsen's

(5) Regelation Phenomenon :—(a) Bottomley's experiment

(b) Mousson's experiment.

(6) (a) Cryophorus, (b) Boiling of water by bumping, (c) Boiling under reudced pressure—Franklin's experiment.

(7) (a) Daniell's Hygrometer.

(b) Dry and wet bulb hygrometer.

(8) (a) Conduction of heat by wire gauze placed in burner and flame over wire gauze present and absent.

(b) Ingen-Housz's experiment.

(9) (a) Bad conductivity of water—water boils at the top and ice does not melt at the bottom

(b) Convection currents in liquids

(c) Experiment to illustrate that ventilation of a room depends on merely convection currents between outside air and that in the room Lamp-chimney and cardboard experiment.

(10) (a) Experiments to illustrate that radiation obeys laws of optics.

(b) Heat Engines.

SOUND

(1) Medium is necessary for sound to travel.

(2) Mechanical models for demonstrating longitudinal and transverse waves.

(3) Models for progressive and stationary waves..

(4) Sound ranging experiment—3 sound stations.

(5) Location of dummy ships by sound waves.

(6) Verification of laws of reflection, refraction and interference of sound waves.

(7) (a) Resonance tube, (b) Forced Vibration.

(8) Kundt's tube experiment

(9) Musical instruments, microphones and loud speaker.

(10) Sound recording and gramophone equipment.

LIGHT

(1) Eclipses (Solar and Lunar)—small models.

(2) Pin hole camera, Photometer.

(3) Reflection, refraction and total reflection of light.

(4) Images by mirrors and lenses.

(5) Microscopes, telescopes and binoculars—assembled before students.

(6) Magic lantern and camera (Home made).

(7) Eye model of clay.

(8) Spectrum and synthesis of white light by Newton's Disc

(9) Spectrometer.

MAGNETISM

(1) Magnetic needle experiments.

(2) Experiments with magnets:
- (a) Attraction of iron, nickel filings.
- (b) Like poles repels and unlike attract.
- (c) Magnetisation artificially.

(3) Magnetic lines of force by iron filings for different combinations of magnets.

(4) Magnetometers—Deflection and vibration.

(5) Terrestrial Magnetism:—
- (a) Dip circle.
- (b) Magnetic maps.
- (c) Mariner's Compass.

ELECTRICITY

(1) Electrification Experiments.

(2) Pith ball electroscope, Gold leaf electroscope.

(3) Electrophorus, Wimshurst Machine

(4) Faraday's ice-pail experiment and butterfly net experiment

(5) Condensers and experiments with them

(6) Leyden's Jar.

(7) Electrical cells.

(8) Magnetic field due to current and solenoid, tangent Galvanometer, Barlow's wheel, Roget's vibrating spiral.

(9) Ohm's law verification, measurement and verification of laws of resistance and their combinations.

(10) Shunts and universal shunt for galvanometers.

(11) Meter bridge and electrical accessories.

(12) Voltmeters and ammeters.

(13) Thermo-e.m.f. experiment.

(14) Electrolysis of water and copper voltameter Electroplating

(15) Induced current and induction coil.

(16) Bulbs, Carbon arc, mercury arc, welding, house wiring.

(17) Electric bell, telegraph, telephone.

(18) Dynamo, earth inductor, motor.

(19) Properties of cathode rays in discharge tube experiment.

(20) Simple A. C. Experiments

I am very hopeful that a student who has seen the above demonstration experiments will have a very good background when he enters the university or other technical institution I herewith urge the Board of Education to include them in the syllabus and insist on them.

PLANNING OF TECHNOLOGICAL EDUCATION AT SCHOOL STAGE.

Dr. SADGOPAL, B.Sc., F.R.I.C., F.R.H.S., F.R C. (London)
College of Technology, Banaras Hindu University.

[Dr. Sadgopal is a professor in the college of Technology, Banaras Hindu University. He is a colleague of Principal Khanna on the academic bodies of the Hindu University. As a recognized authority on the useful and expanding subject of technology he holds a position of his own in the country. The article is written in a bold style *and depicts the subject very lucidly.*]

The latest political changes that have enveloped Bharat with a cyclonic speed have had their serious repercussions in every walk of life of the people. From its age old slumber, lethargic pessimism and deep-rooted inertia, the country has been rudely shaken up from one end to another, from the far-off hamlets of the peasants to the most thickly populated towns We are at the verge of witnessing the long-cherished vision for the sake of which the bravest and the noblest sons and daughters of this land have carried on their ceaseless fight at the altar of the Freedom of Motherland. The centuries—old foreign—dominated India is going to resurge itself on the 26th of January, 1950 as Free Republic of Bharat. With this great revolution coming alround, the people are getting impatient for a constructive and nation-building programme to be adopted in every sphere of life.

Unfortunately, in India, our present-day leaders have inherited a pattern of administrative machinery, the various component parts of which rarely consider that time is the most important factor in the life

of a nation bubbling with impatient enthusiasm. The tragedy is further heightened by another fact that most of the leaders who have now been put on the saddle of this administrative machine, could not have had any time or experience to have their ideas properly developed in relation to their ideology so as to plan the future of the country on sound and scientific lines. The result is obviously disastrous The last few months covering a period of more than two years in making and unmaking plans and programmes, have put the entire nation on its horns of dilemma as to the future development and security of the land For lack of scope, of suitable utilisation of youthful energy let loose alround and of dynamic and at the same time constructive leadership, the impatient enthusiasm in the country is being led into destructive channels.

The pressing and urgent need for stepping up industrial production in the country is admitted on all hands. Technological education has got to play a very important role in this process of industrialisation. It is a suitable technical personnel which alone will solve the question of increasing industrial production and exportable surplus to build an ever-increasing balance of trade in favour of Bharat. The question of re-modelling technological education on proper lines to meet the demands for scientifically trained technical personnel is, therefore, imperative. Students, young and adult, are the human raw material with which alone the new type of technical personnel can be properly built up

Selection of a career is the greatest factor in the life of a student and it explains to a great extent the failure or success in life A career is not a thing to be thrust upon a student as is, unfortunately, the case in this country. The educational system now holding the entire nation in its grip has been so wooden and stereo-typed that the students at their impressionable young ages are simply made to work like a cramming machine without any creative outlook Later on, at the College and University stages, the students are pushed on to undergo technological training for which they may not have at all the requisite imagination, enthusiasm, ambition and faith The present day educational set-up in the country has, therefore, met with disastrous failure and has prov-

ed to be utterly incapable of producing the correct type of leadership to man the industries of the country. There cannot be two opinions about the fact that educationally this state of affairs is not only undesirable but also highly criminal against the national interest.

The basis for any planning must be precise, crystal-clear and well defined by stating the objective aimed at. The educational system, as it stands at present, has always been lacking in this all-important aspect. The case is still worse with technological education on which this poor country is now going to spend colossal amounts. Without defining the objectives for any programme of technological education, we are simply trying to turn the hands of the clock of industrial progress of the country backward by atleast another quarter of a century. The present generation under technological training will naturally shape the things to come for another 25 years. It will easily take another quarter of a century before the next generation to come will at all be in a position to right the wrong done so far and revitalise the industries and trade of the country. Are we in a position today to enjoy this luxury of setting back the country's progress by half a century and will the international factors ever allow us to enjoy the fruits of this still born freedom of the country—the entire resources of which are rapidly going to dry up and exhaust?

The first and foremost need of the day is, therefore, a planned system of technological education and training with clear and well-defined objective.

In any industrial recovery of a nation, the technological education must provide for a regular supply of the following three important classes of youngmen:

1. Highly skilled and experienced technologists able to design, organise and man the industries.

2. Supervisory staff.

3. Skilled technicians and tradesmen.

With this end in view, it is clear that the leaders of the country should be in possession of actual facts and figures so as to decide *what type* and *what volume* of technical personnel of each of the three

categories are required to meet the present and the future requirements of the country.

Planning in advance as to the type, extent and speed of industrialisation must precede all other considerations The present existing industries will have to be scientifically scrutinised and re-grouped, put on a march towards better and more production at cheaper cost, *the un-productive or ill-balanced units scraped off mercilessly* giving place to healthier ones in their stead and new and more important industries allowed to spring up with necessary protection, guarantee and positive encouragement from the Government If ever Bharat is to dream of being self-sufficient in future with proper balance between Agriculture and industry, it will require a Himalayan effort and foresight *The country will have to plan, plan systematically and scientifically and plan for several years ahead with a national will to achieve the target within stipulated time and at any cost.*

It is desirable, therefore, that statistics should be collected as to the annual requirements of technical personnel of different categories needed by various industries all over the country The technological institutes should then undertake to turn out the requisite number of trained men with necessary margin to make good the unavoidable losses due to unforeseen casualities, wastages and diversions in other channels. The output of technical personnel must be so regulated as to keep pace with progress of industrialisation in various spheres The supply should be closely co-related with the demand, leaving no scope of much shortages or wastages

This two pronged policy of progressive industrial planning and supply of requisite technical personnel alone will be able to cut ice and put the entire nation on a positive march towards industrial recovery. Such a sound programme will prevent unemployment now on an alarming and every-day increase and ensure at the same time steady and regular supply of a fresh stream of technical services

If we carefully analyse the existing facilities for technological education in this country, it is highly regrettable to note its deficiencies, in respect of giving proper training to turn out highly skilled technologists, supervisory staff and skilled technicians The Universities put

the blame off their shoulders on the Colleges turning out the large number of undergraduates going in for technological studies The Colleges, on their part, throw the blame on the High Schools holding them responsible for turning out the "human raw material" so raw in its very character and basic knowledge The High Schools turn their heads to say that they do not have any responsibilities to discharge in respect of equipping the young boys and girls for technical careers Thus the visious circle is complete and the country is made to stand today at the cross roads of industrial regeneration with a big Question mark

OBVIOUSLY, THERE IS SOMETHING SERIOUSLY WRONG SOMEWHERE

The country has started with technological education on a wrong end *The beginning should not have been made from the top, rather it should have been from below* The class of young students of highly impressionable ages, which is placed at the disposal of technological institutes, lacks all that make up and frame of mind which go to make successful technologists The present day educational curriculum is such that it kills all initiative, imagination and ambition in young students Experience in all progressive countries has established beyond any doubt that *a young student may with advantage be initiated into technological studies at an age near about* 13 14 *years approximating to class* 8th *of our present day academic High Schools* The saying that 'Best preparation for technical study is a good modern Secondary School" has now come to be an established fact It has been considered advisable that beyond the age of 11, all education should be secondary and students should be classified after most careful scrutiny *on the basis of three* " A's i e *Age Ability and Aptitude.* The first kick to be given in the field of present educational system should go in favour of competitive tests of memorising and cramming which, unfortunately, form today the very foundation of the entire educational structure in the country *The excessive stress on memorising and cramming up a large number of diversified facts is Enemy No 1 to kill any march of sound progress in technological studies* The rate of progress in Science and Technology is so rapid and vast that it has become well nigh impos

sible to digest all the diversified facts discovered from day to day True education should positively be more than a simple catalogue of useful facts Proper development of intense and innate enthusiasm for the subject and a scientific attitude towards its study are the two primary requisites of a sound technological education programme The following remarks of Prof Karl Pearson are worth noting in this connection 'I have been engaged for sixteen years in helping to train engineers and my old pupils who are now coming to the front in life are not those who stuck to facts and formulae and sought only for what they thought would be 'useful to them in their profession On the contrary the lads who paid attention to *method* who thought *more of proofs than of formulae* who accepted even the specialised branches of their training as a *means of developing* habits of observation rather than of collecting " usual " facts, these lads have developed into men who are succeeding in life And the reason for this seems to be when considering their individual cases that they could adapt themselves to an environment more or less different from that of the existing profession they could go beyond its processes its formulae and its acts and develop new ones Their knowledge of method and their powers of observation enabled them to supply new needs to answer to the call when there was a demand, not for old knowledge but for trained brains The only sort of technical education the nation ought to trouble about is teaching people to see and think What we want are trained brains scouts in all fields and not a knowledge of facts and processes crammed into a wider range of untrained minds

The background for any efficient technological training therefore should be based more or less on the power of imagination, originality, initiative and designing In the words of Principal Lt Col W E J Beeching of Hyderabad (Dn) Growth depends not upon a mass pursuit of a common object not in standardisation and attempting to find a universal prescription for better industrial relationship or educational facilities but upon inspired individual efforts and hard imaginative technical education ' The first crying need of the hour to remove the extraordinary stress laid on memorisation of facts figures and processes is, therefore, vital The classification of the aims and objects for

the expansion of Secondary Schools can then be properly harnessed to a proper and scientific balance between the subjects of Art and Humanities on the one hand and Applied Sciences and Technology on the other

Technological education should be kept fundamental and widely available The Secondary Schools should not limit their aims to preparing the young students for professional practice and careers only but their curriculum should be so modelled as to make the technological studies more fundamental and practical through increased emphasis on the principles and their application to the development of industrial operations and processes

Any progressive secondary education with a positive bias in favour of technological studies must make proper accomodation for studies of important subjects of Humanities Arts and Crafts as well It has not yet been realised that lack of aesthetic appreciation and culture in the present generation of our Engineers and Technologists has already rendered their creation dull and uninteresting Each and every achievement and construction in the domain of technological developments, from the tiniest to the bulkiest and awe-inspiring achievements in modern engineering and technology which we see around us appeal to us not merely for their utility or technical perfection of details but also for their perfection in designing, shape and general make up Utility combined with perfection of designing and make up together make up an object popular, impressive and interesting The principle guiding the secondary schools should, therefore, be to impart education in subjects of Languages, Literature, Humanities, Arts and Crafts along with Sciences with an option to the students to gradually divert more and more, according to their development and aptitude towards either advanced studies in Arts, Commerce, Literature Science or Technology A clear cut policy favouring "No adequate technical education which is not liberal and no liberal education which is not technical" is needed in present day secondary schools

The next important question facing an effort to remodel our secondary educational system is 'How far to go with technological studies?' The objective being to prepare the young students with primary and basic knowledge of subjects of Art and Sciences with an alround liberal

outlook and able to be switched over in their ultimate stage of careers to technological fields, the actual dosage of technological studies to be given at the secondary school stage cannot be extra strong The burden of studies at this tender age of the blooming youths of the country will be too severe if an attempt is made simply to load them further with more facts, formulae and figures of diversified nature The whole system under such a strain will crash and industrial and economic development of the country will soon be sealed for a long time to come No doubt, we need a dash forward in remodelling the secondary school education with a positive bias for technological studies *but with a proper balance of vision, caution and steadfastness* It is against this bedrock that the present day leadership in education has not only failed the present generation but is also playing fun with the next quarter of a century of country's progress and prosperity

The secondary educational system in the country lacks an organisation on these sound principles The young boys and girls are being tossed over from one end to another between the various fads of basic education and 'learn while you earn' etc To this list of race horses, has been added the over enthusiastic zeal of the authorities of the U P Board of High School and Intermediate Education who are thrusting courses in Industrial Chemistry and Ceramics among the main (compulsory) subjects under Group C (Constructive for boys) for classes IXth and Xth of the High School and XIth and XIIth of the Intermediate The present writer has been associated with the framing of courses in these subjects from the very beginning and fully appreciates the enthusiasm and sincerity of purpose behind this hasty move So far so good But one fails to understand the zeal to load the proposed courses to the extent of making them impracticable and difficult Nobody has ever thought as to the ultimate careers open to such boys The present higher courses in Mechanical Electrical, Aeronautical, Automobile, Naval, Mining & Metallurgical and Chemical Engineering and Technology are being modelled on lines which will not allow these boys to be absorbed by them The result is obvious These youngmen will be made to stand at the cross roads of their careers with utter frustration and devastation staring at them All doors of higher studies in subjects of pure Arts, Sciences, Commerce and Technological studies banged

against them, these young and unemployed youth will soon burst out with volcanic fury and velocity For any responsible post in the industry these young boys will lack the requisite frame of mind and intellect To start their own cottage industries, they will lack the faith enthusiasm and experience These frustrated careers will make the country face a flood of chaos and disorder the very impact of which will shake up the very foundations of still born freedom of Bharat

It is, therefore, abundantly clear that a comprehensive, coherent and all embracing policy for reorganising the secondary educational system with a positive bias for technology all over the country should be the primary objective aimed at The imperative need for introducing, strengthening, broadening, and liberalising technological studies in secondary schooling under competent and experienced guidance should be fully realised

The rapid advance of scientific discoveries, their large technological applications and tremendous expansion in industrial planning and production techniques should urgently impel the educationists in India to bring the full weight of their deep and serious thinking for so modelling the courses at Secondary and High School stages as to turn out a better and more efficient class of technologists contributing their mite to raise the standard of living of people and status of the country, Child is said to be the Father of man The present generation, given the privilege of laying the foundation of Free Republic of Bharat, is equally surcharged with the sacred trust to mould the educational system for its children on sound and scientific lines May the leaders guiding the nation's destiny be granted with clear vision to rise above their personal and class interests and to grasp the opportunity offered to them and lay the proper foundation of national education for the sons and daughters of the soil

THE POETICS AND SCIENCE

SHRI RAMESH CHANDRAJI SHASTRI, M A.

[Sastriji is a Snataka of Gurukul Brindaban His study of Sanskrit literature has been deep and thorough Poetics has been his favourite study In this piece he presents a new viewpoint He admits that the field of art is limitless, and it refuses to be bound by water tight principles and dogmas At the same time he maintains that for the fullest enjoyment of aesthetic pleasure, it is absolutely essential that the emotional aspect of our consciousness should work as recepticle to the external beauties of the world "For this reason," he concludes saying, "poetics which is the normative type of science has been originated simply for the purpose of adding beauty to the art of poetry and it also tries to codify the different dogmas for the use of the same."

The world of science is a world of intellect. It is on human intellect that this cognizable world of ours is based. It is but natural for the external worldly pehnomena to cast an imprint on the mental tendencies of mankind. Man's mind is so shaped that it constantly reflects the external phenomena of nature. The same has been very philosophically expressed in the *Sankhya*. There is a double reflection—that of '*Purusha*' on '*Buddhi*' intelligence stuff (or internal organ), and that of '*Buddhi*' *on* '*Purusha*' with the effect that while nature '*Prakriti*' assumes a psychical aspect, '*Purusha*' begins to identify itself with the intelligized phenomena of '*Buddhi*'. This constellation of '*Purusha*' and '*Buddhi*' is known as '*Sakrichdarpana*' a specious sentiment mirror in which the whole mental phenomena reflect like the trees reflecting in water on the banks of rivers The sentient group, a hypothetical background of *Sankhya* philosophy assumed as a recepticle for the apprehension of the knowledge of the material-phenomena is named as consciousness with all its three modes of cognition, affection and conation in the empirical psychology. Hearing and seeing etc. are simply the means of experience for the consciousness and they ever carry impressions of material phenomena on the mental faculties. But how did this mechanism of knowledge come into its being? Was there any reservoir for its sudden spring or it has its own

way for its gradual evolution! So far as our experience goes, we see that there is easily no end to man's ambitions. Just as his daily needs, he is constantly trying for the development of his intelligence and the means thereof. On having fulfilled one desire through intellect, there begins to crop up a desire in him to know about other things. Thus, there is an endless chain of desires and ambitions in a man who satisfies his needs with the intelligence got thereof. The accomplishment of one desire and the origin of the new one are the root causes of the development of all civilization. Gradually memory, ambition and the power of imagination were born—after that came the faculty of discrimination by virtue of which man cultivated the power of imagination whereby he could make speculation about unseen objects from things seen and experienced. Thence sprang up the desire for knowledge and later ambition, with the advent of the faculty of discrimination between the beautiful and the ugly, the proper and the improper, together with the growth of the faculty of retentive memory, therecame a gradual development of the sense of perception in the field of classification and arrangement of category of the material phenomena. The cumulative reaction of all these was the progress of the society. The impetus, thus, given to experience by the gradual influx of the reaction of material phenomena on mind led to the birth of the expression of the same which thus became a natural concomittant of our culture. Further, inorder that these impressions of the brain may be given an outward manifestation rightly, a need was felt for their right interpretation, classification, and codification, of theories and *settled doctrines. Thus with the progress made in the field of outward* expression new laws were set up governing its philosophy, science, art, classification and the allied matters, which are the means of our further intensifying knowledge. A group of established dogmas and doctrines of philosophy and sciences was formulated; there were formations of sections in '*Nyaya*' and classifications among various arts were instituted for the field of art is limitless, and it refuses to be bound by watertight principles and dogmas. Similar is the case with the material phenomena and they too are endless in their scope. One external form of art is only the manifestation of the beauties of the

material world. The beauty of art is endless like the endless material phenomena. Art is deeply associated with the variety of impresion created by the external phenomena on the heart-mirror All art is the product of imagination. To try to confine are to dogmas and principles will be a vain attempt like limiting the numbers of the jewels of the sea or the stars of the sky Of the two categories of art-utilitarian and fine, poetry belongs to fine art It is the treasure house of imagination and feeling emotions Like Psychology, poetics deals with extreme objects as related to the mind But psychology deals with them as objects of consciousness, while other sciences ignore the mind's experience of external objects Psychology deals with extreme objects as experienced by the mind and in this sense, says Ward, " the choir of heaven and furniture of earth may belong to psychology, but otherwise they are beyond its scope." The difference between the two is this that psychology is a positive science dealing with the mental processes as they actually occur, while poetics is a normative science and leads to the world of fine arts resulting in aesthetic pleasure. Poetry may be defined as layman's *Yoga* for like the yogic concentration, it also affords an escape from the realm of the mundane-multiformity. Greek artists attain such detachment directly through the impulse they receive from nature—from woods and vills, the silence that is in the starry sky, steep that is among the lovely hills. But that is not so, to any conspicuous extent as regards ordinary man, yet even they can rise to that level with the help of the artistic creations of a genius In either case we must note the stimulus comes from outside although response to it is impossible without a certain aptitude in the individual. The impersonal attitude comes of itself, it is not sought deliberately and found. Speaking of this distinction between the artists' success and the saints, Bhatta Nayak who is known to have developed a theory of art on the basis of Sankhya School of thought, but with particular reference to poetry, says somewhat exultingly—that the bliss of peace, which the yogin strains himself to win, is no match for that with which the poetic muse spontaneously requites her votaries.

An attempt was made to fix a goal even for such an all embracing art as poetry. Natya shastra is the first attempt in the province of Sans-

krit poetics which states that the aesthetic pleasure results from the combination of determinants, the consequents and the secondary moods. The 'Ras' school of Bhartiya Natya Shastra made the soul of poetry while the school of Anand Vraddhana known as ' Dhwani' school extended the conception underlying the ' Ras ' theory and laid down that ' Vyanga ' is the soul of poetry. Shuddhodevi in Alankar Shekhar and Vishwanath in 'Sahitya Darpana' also similarly advance the definition of Kavya Kala. Briefly speaking, for the fullest enjoyment of aesthetic pleasure, it is absolutely essential that the emotional aspect of our consciousness should work as a recepticle to the external beauties of the world. The 'Natya Shastra' says that the dramatic art was promulgated by Bharata as a pleasure-giving device for all people. The most important and essential of functions in poetry is the 'Anand ' pleasure resulted from the taste of the essence and the negation of all the other objects of knowledge. Then again the Natya Shastra says that the science of Kavya Kala would bring relief and solace to minds that are afflicted by sorrows and worries of the world. Poetry seeks to express itself through gestures and figures valid to the ' Drasya ' and ' Shravya ' variety of 'Kavya'. The same experience is carried to the mind through the eyes and the ears. Whatever images of the material phenomena are carned by the five senses of organs to the mind, go to form sentiments and thus the sentiments or 'Sthaniya Bhava' or the mental image is the only means by which a critic of poetry seeks to identify himself with other people's minds. ' Drasya Kavya ' offers us two means for this self identification—bodily gestures and language while in Shravya Kavya it is only one viz. language that the poet uses. Thus poeties which is the normative type of science has been originated simply for the purpose of adding beauty to the art of poetry and it also tries to codify the different dogmas for the use of the same.

PRINCIPAL HIRALAL KHANNA

SHRI SALIGRAM BHARGAVA
Ex-Professor, Allahabad University

[Shri Saligram Bhargava, ex-Professor and Head of the Physics Department of the Allahabad University, is an intimate friend of Khannaji. He has been a fellow worker on various academic bodies. His association has been very long. His article contains many a minor event of Khannaji's life and shall provide delightful reading.]

It was in the year 1910 when Principal Hiralal Khanna and I first came in contact with each other. Both of us were inmates of MacDonnell University Hindu Boarding and students of Muir Central College, Allahabad, though he was a year junior to me in the College. During this space of nearly forty years I have seen him as a student, professor, Principal of B. N. S. D. College and a member of various bodies of Allahabad University.

Even as a student he was outspoken to a fault, fearless and ready to fight for what he considered right. On a 'sports' day of Muir Central College when all students and teachers had assembled on playgrounds to witness the sports, Principal Khanna, finding a European professor looking after the sports doing things, in his own way, and caring little for right and wrong and unmindful of what others said, was about to deliver a blow when arguments proved of no avail. Fortunately others intervened and the ugly situation was averted. I have mentioned this incident simply to show how far he could go even as a student and in

those days particularly when all senior posts in the college were held by Europeans who were looked upon with awe not only in the college but also in every other walk of life and who could hardly brook any opposition or criticism form an Indian however highly placed he was The European professor, after the incident, presumably on the advice of his friends went away from the college but continued for a long time as a member of Education Deptt where he enjoyed considerable influence Principal Khanna also joined an educational institution under the jurisdiction of the same Education Deptt I do not know whether he fell out with the European Officer on any subsequent occasion

The progress, which B N S D College, Kanpur, made during the last 22 years of his stewardship, leaves eloquent testimony to his devotion to duty No body can deny the fact that the College owes its present position to his watchful care and unstinted labour in its interests

His students will bear me out when I say that his enthusiasm for their well-being knew no bounds One could easily discern joy lurking in his mind when he heard of his students wining distinction and laurels

As a member of various bodies he could hardly remain silent whenever occasion demanded his intervention His opinion was always appreciated as he could speak with confidence and experience

He now retires after having earned well- deserved rest but I have no doubt he will continue to watch with considerable interest the progress of the Institution over which he presided and of education in the province

On the eve of his retirement through this token I wish him long and useful life and happiness in his retirement

MARINE CHEMICALS

Shri N A Yajnik M A D Sc A R I C F N I

[Dr Yajnik associates himself whole heartedly with the appreciation of the saintly life of Khannaji He and Khannaji were together on the St John College Staff and have ever been on very intimate terms He has contributed an illuminating article on Marine Chemicals The sea has been valued ever since the dawn of life for its easy and abundant supply of marine life which has served for food Salt is the main production It may also be mentioned that a very large and important chemical industry is based on salt as one of its essential raw materials Dr Yajnik has revealed the treasurers that lie concealed under the water of the sea]

It gave me great satisfaction and sincere pleasure to know that it was proposed to present a memorial volume, containing reminiscences and articles of educational and cultural value contributed by old students, friends and admirers of Principal Hira Lalji Khanna on the occasion of his retirement, as a small token of appreciation and regard for his valuable services to the cause of educational and social life of the Uttar Pradesh The prominent position occupied by the B N S D Intermediate College, Kanpur amongst the educational institutions of the Uttar Pradesh has been entirely due to the self-less and untiring work of Hira Lalji and his many contributions to the academic and cultural life of the province, as a whole, will always be remembered with deep gratitude I am sure Principal Hira Lalji will not remain idle even after retirement from active life but will devote all his time to the various social and educational activities of the province and I pray to the Almighty to grant him long and happy life of useful service

Principal Hira Lalji is one of my best and most valuable friends and our life long friendship dates back to the time, we were together on the staff of St John's College, Agra in 1916 Even in those early days of his career, he was highly respected by his students and his colleagues and he had gained the reputation of being one of the ablest and most popular teachers in Agra His simple habits and his frank

and loving nature won universal friendship and admiration from all who came in contact with him and there are very few persons, who have such great and sincere devotion to duty as he has. I am sure many well deserved tributes will be paid to him for his many qualities of head and heart, in the various articles that will be contributed to this. volume by his old students and other friends and I, therefore, do not wish to take up much space but would like to associate myself whole heartedly with all that may be said in appreciation of his saintly life and the great and good things he has accomplished, during his active life of useful service.

I highly appreciate the honour of being invited to contribute an article to the memorial volume and it was suggested to me that I should write an article on the applications of Chemistry to Industry. I, however, felt that it would not be possible to do sufficient justice to a subject of such very wide scope in the limited space that would be available, and I, therefore, decided to select only a small and limited topic from the vast field of chemical industries as the theme of my short article.

The sea is an immense expanse of water, covering as it does three fourths the surface of our earth and has been valued ever since the dawn of life for its easy and abundant supply of marine life, which has served for food. Many other marine products of the sea, besides its living matter, have also been made use of by mankind from the earliest time but in this article we are only concerned with the mineral matter present in sea water. The sea is a vast sink into which have poured the rivers of the earth for millions of years, bringing soluble matter extracted from the soil and rocks The steady cycle of evaporation of the sea water and rainfall has built up the salinity of the sea water to about 35 grams per litre and the enormous stores of salts thus accumulated in the seas and oceans represent the net result of the lixiviation of land for many geological ages. The salinity of sea water varies from place to place depending upon its situation and climatic conditions but the following figures may be taken to represent the average percentages of the principal constituents present in sea water:—

		Percent.
Sodium Chloride	...	2.723
Magnesium Chloride	...	0.334
,, Sulphate	...	0 225
Calcium ,,	...	0 126
Potassium Chloride	...	0 077
Magnesium Bromide	...	0 008
Calcium Carbonate	...	0.012

Manufacture of Solar salt:—In countries, which have a hot dry season, solar evaporation is generally employed for the recovery of salt from sea water. It may, however, be *mentioned, that* in the total world production of common salt, the production of rock salt and artificially evaporated salt far exceeds that of solar salt to day Nevertheless solar evaporation is still an important industry in many countries and is extensively used in India, China, Japan, Philippine Islands and in many parts of Europe, notably France, Spain, Portugal and Italy and also in South America and the West Indies Production methods are all very much the same but vary in such details as the rate of evaporation, the length of the season and the method of harvesting. Harvesting may be crude where labour is cheap or highly mechanised where labour is expensive.

In huge salt works, sea water of generally 3° 5 to 4°Be′ flows by gravity from the sea during tidal times into large marine lakes and then passes on to condensers and by gradual solar evaporation its density reaches 10° Be′ Upto this stage, the first salt that is thrown out from the solution is calcium carbonate After this separation of Calcium Carbonate, the liquid gets further concentrated by evaporation and some gypsum and the remaining Calcium Carbonate and sometimes also magnesium carbonate separate out at 12°Be′ when the concentration has reached 17°Be′, more calcium sulphate separates out as $CaSO_4$, $2H_2O$ (Gypsum). The separated gypsum at first floats on the surface of the liquid as a thin grey film and gradually settles down to the bottom. The separation of gypsum continues upto 25°Be′ and even then about 84 percent of it separates out, while the remainder is thrown out in the crystallising pans,

As the evaporation proceeds, the salt begins to separate out at 24° 5 to 25°Be' and as the concentration goes on increasing, more and more salt is thrown out of the solution till the brine reaches a density of 28° 5 to 29°Be' The concentration is not carried further as the salt *that separates out at this higher concentration is impure and difficult* to separate from the adhering bitterns When the salt is ready, the crop is lifted from the *Kyars* and taken to a plant where it is mechanically *washed and then stacked for draining When the salt is quite* dry it is sent to the crushing mill for fine crushing

Besides the large quantities of salt used for culinary and domestic purposes, there are literally hundreds of miscellaneous uses for salt It may also be mentioned that a very large and important chemical industry is based on salt as one of its essential raw materials and large quantities of salt are required for the manufacture of washing soda (soda ash), baking soda (Bicarbonate of soda), various kinds of modified sodas available in the market, caustic soda chlorine and chlorine products, metallic sodium hydrogen, hydrochloric acid salt cake (sodium sulphate) and some other products of chemical industry

Epsom Salt —The bitterns discharge from salt works after the recovery of common salt contains several important salts of great commercial value but it is a general practice in most of the sea salt works to treat the bitterns as a waste product Satisfactory methods have been however, worked out for the successful and economic recovery of all the important bye products and modern salt works are so designed as to collect the bitterns left after the gathering of salt and to utilise the discharged bitterns from the salt *Kyars* at 29°Be', after further concentration to 35°Be', for the recovery of these important bye-products of salt industry The first in order of separation is magnesium sulphate or Epsom salt, which is largely *used in pharmacy and as a* mordant in dyeing and for weighting paper, silk and leather The process of its recovery consists of concentrating the bitterns to a very high specific gravity and then suddenly chilling, when crude epsom separates out The crude product is dissolved in hot water and when recrystallised gives epsom salt of a high degree of purity

Bromine —Of the total solids dissolved in sea water bromine constitutes about 0 19 percent or in other words, expressed as sodium bromide forms 0 008 to 0 009 percent of sea water In the concentrated bitterns, the percentage is much higher and the average yield of bromine is 45 lbs from 1000 gallons of bitterns having a strength of 35°Be′ Bitterns discharged from the Epsom Plant are heated to about 60°C and are sent to the top of a granite tower Steam is introduced at the bottom of the tower and chlorine is introduced part of the way of the tower The chlorine and steam rise in the tower countercurrent to the descending bitterns and the bromine vapours thus liberated are condensed in stoneware coils Bromine is used fairly largely in the colour industry and other branches of synthetic organic chemistry It is also used in metallurgy, photography and in the manufacture of medicine, where bromides and other derivatives of bromine are of considerable value

Potassium Chloride —The tail liquor from the Epsom and Bromine plants, after evaporation in a triple effect evaporator, is allowed to settle in stages for the separation of Kieserite and Carnallite The carnallite ($MgCl_2$, KCl, $6H_2O$) thus obtained is split up for the recovery of potassium chloride The recovery of Potassium chloride from carnallite is complicated but in general the process consists of extracting the material with hot water, settling to remove insoluble salts and then cooling, when 80 percent of the potassium chloride separates out A portion of the mother liquor together with the wash water is used to extract next batch of salts The remaining mother liquor is again evaporated and when this is cooled practically all the remaining potassium chloride separates as carnallite This is added to the next batch of raw materials The final liquor contains principally magnesium chloride About 80 per cent of all the potassium salts produced are used as fertilisers The remainder goes into the manufacture of a wide variety of miscellaneous chemicals Magnesium Chloride —The tail liquor left behind after the recovery of Epsom bromine and potassium chloride contains a large amount of magnesium chloride, a considerable amount of colloidal organic matter and a little sulphate For example, a 37 5°Be′ treated bitterns may contain 30 27

percent magnesium chloride 4 76 percent magnesium sulphate and 0 46 percent potassium chloride Such a liquid must be evaporated further in order to recover magnesium chloride as $MgCl_2, 6H_2O$ During the evaporation, the temperature rises considerably charring the organic matter and strongly darkening the magnesium chloride which separates, on cooling To destroy the organic impurities, preliminary treatment with a strong oxidising agent is *desirable and the magnesium chloride then obtained is a* snow-white fused product, which is sent to the market packed in drums It may also be supplied in the form of flakes Magnesium chloride is one of the five most important substances used in size mixing in the textile industry

It makes a good filler for cotton and woollen goods and is a constituent of magnesia cements Magnesium chloride is also the best raw material from which to make metallic magnesium Highly successful *and economic methods have been worked out, during the last few years*, for the production of magnesium from sea water and bitterns to meet its manifold increased demand for light metal alloys used in aerial transportation and for making incendiary bombs

Magnesium oxide —Magnesium oxide is also obtained from sea water bitterns and other brines Part of the tail liquor obtained after the recovery of epsom, bromine and potassium chloride is stored in huge concrete reservoirs, and dosed with a calculated amount of calcium chloride liquor to precipitate the sulphate present in it After the removal of calcium sulphate thus precipitated in thickeners, the treated bitterns are allowed to react with quicklime in a rotary slaker and by double decomposition, magnesium hydroxide and calcium chloride are produced The slurry is separated into the components and the magnesium hydroxide is thoroughly washed by counter current decantation method in a series of thickeners of huge proportions The purified slurry is dosed with the requisite substances in mixing tanks and then filtered through a rotary filter The filtered sludge is fed into a rotary calciner fired by oil and raised to a high temperature Dead burnt magnesia or periclase comes out of the calciner continuously and after cooling in a rotary cooler is pulverized, if necessary and used for

refractories Other useful products from the sea water bitterns in clude magnesia insulation, milk of magnesia and magnesium carbonate Magnesia products find use as pigments in foods dental formulas, medicine, oil refining and in the treatment of acid soils in agriculture

Iodine —Iodine also is a constituent of sea water and may be reco vered from concentrated sea water bitterns or from the ashes of sea weed (Kelp) Various types of seaweed are collected at ebb tide dried and then burnt in long low kilns of rock The ash of the kelp is lixi vated in vats with hot water and when the solution is evaporated in open boiling pans, potassium salts are crystallised out

In the modern French process the kelp liquor is neutralised with sulphuric acid, which releases carbon dioxide, hydrogen sulphide and sulphur When the solution is freed of these substances, it is treated with copper sulphate, which precipitates iodine from the solution as cuprous iodide, which is filtered and washed with water

Iodine is obtained from cuprous iodide by heating it with manganese dioxide, when the iodine sublimes off Iodine and Iodide compounds have very valuable therapeutic properties Iodine is used in the ani line dye industry, in the manufacture of iodoform and in the produc tion of pure potassium iodide which is extensively used in medicine and photography

PRINCIPAL KHANNA AND SHRI BALDEVA RAM DAVE

SHRI R K DAVE

[Shri Hira Lal Khanna became associated with the late Pandit Baldev Ram Dave who was one of the eminent educationists of this province. Their acquaintance developed into a life long association. His son Shri R K. Dave has written the reminiscence and anecdotes of his father's association with Khannaji. These sheaves of memory bring before our mind's eyes the young Khanna who was forcing himself to the notice of his superiors

It was few years before 1914 that Sri Hira Lal Khanna became associated with the Late Pandit Baldev Ram Dave who was one of the eminent educationists of this province. Their acquaintance developed into a life-long association, though Pandit Baldev Ram Dave was senior to Sri Khannaji by over 25 years or so. Their association had a very interesting beginning. Sri Khannaji was a student of the Muir Central College. He was also an inmate of the Hindu Boarding House of *which Pandit Baldev Ram Dave was the Secretary. Once Shri Khannaji* incurred the displeasure of the European Authorities of the Muir Central College The cause is somewhat obscure But, his strong nationalist views had something to do with it By his out-spoken views he incurred the displeasure of one Professor Cox (We must not forget that in those days it was a semi-crime to be patriotic). Sri Khannaji would have been victimised, but for support of Pt Baldev Ram Dave As Secretary of the Hindu Boarding House, he refused to take any special action against young Khanna Ultimately Professor Cox left the Muir College as a result.

But the incident had one good result it brought young Khannaji to the notice of Panditji So in 1914 Panditji appointed him as a teacher in the City-Anglo Vernacular High School Allahabad and which had its small beginning as Shivarakhan Pathshala in 1869 and later affiliated to Calcutta University (1875—1889) and thence to Allahabad University (1889—1895) and now an Intermediate College situated on the Canning Road where it shifted in 1913 It was here and when science-laboratory was being fitted that Shri Khannaji saw Panditji, the Secretary and his Boss doing all type of work himself and giving lead He never felt shy of doing his work himself and this fact impressed Khannaji most

As a Guru and as my teacher, I can say that Sri Khannaji inspired his students and treated them with love and affection

Shri Khannaji did not stay in this school for more than two to three years, for in 1916 he accepted a better job elsewhere and later became the Principal of the B N S D College Kanpur which post he held till last year when he retired

But during these initial two years or more of his educational career and after his academical career, Sri Khannaji became very closely asso ciated with Pt Beldev Ram Rave and had occasion to watch the latter s selfless efforts in the cause of Banaras Hindu University Even after he had left the C A V High School Sri Khannaji frequently met Pt Baldev Ram Dave and consulted him in many matters During these thirty years, he paid many visits to Allahabad specially to meet Pandit ji for whose character and talents he had the highest regards In fact, Shri Khannaji has always acknowledged the debt which he owed to Panditji Many observers have found in Sri Khannaji the same qualities, the same thoroughness and systematic approach to problems the same capacity for hard work and deep study and the same instinct for quiet unassuming and self less work for which Pt Baldev Ram Dave was known

Sri Khannaji is "HIRA" and "LAL" both in one real jewel and those who know him respect him profoundly The two words prove his worth

SCIENTIFIC PRAYER

Rai Bahadur Shri P L Vidyarthi, I R A S (Retired)

Late of the Government of India, Finance Department
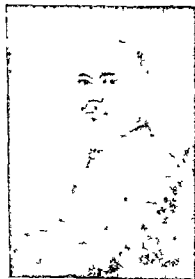
[Every right thinking person will clasp this scientific prayer to his heart with hooks of steel It is the only cure for the present deadly malady of this world torn by war, discord dissension jealousy and hatred Let us pray sincerely properly and devotedly for all and leave the rest to the Almighty

The author Mr P L Vidyarthi, is a retired Government servant having served in the Government of India's Finance Department He is a friend of Mr Khanna]

And then the contributions made by the individuals may be of ephemeral nature or of lasting value Hira Lalji's contribution is of the latter variety The knowledge he has given and the discipline that he has inculcated will prove of inestimable and lasting value to those who have had the good fortune to profit by them

How may we follow the good example? All cannot be educationists and good ones at that Some produce utilities and some distribute them, others help in keeping the Society organised, yet others improve it—among this last are educationists and preachers and other public workers

But can we not find something which every body may do? Yes it is the use of our thought power for the general good Only two things are required, (i) to be able to concentrate, which will give force to our thought, and (ii) to know what thought will be useful, and then be definite *Unless thought is based on knowledge and is definite,* it does not produce much result

For concentration we should choose a quiet time, preferably before dawn Most people are sleeping at that time and not only no body comes to disturb us, but there are no noises to cause distraction One should sit comfortably, so that physical inconvenience may not affect mental work Then shun all thought of the self Nothing concerning our body or circumstances should interfere in this public work Thus clear the deck for action

The next step is to think that rosy light is emanating from the self and is gradually spreading out in ever increasing concentric circles, as happens when something is thrown in water

Now comes the most important portion of all—We have laid down that our thought should be for general good and good is that which fulfils a want, fills a gap and meets some requirement

The world is suffering from poverty—Daridrata Poverty is not necessarily the actual want of material things but non fulfilment of our desires for things In this sense most of us are poor Even a multi millionaire cannot get all that he wants So we pray, think concentratedly, that every body, to whom our thought reaches and our thought should spread as widely as possible and embrace all

in its scope without distinction of caste, creed sex or colour should receive as much as will satisfy him But is this not unscientific? How can the world give to every body what he wants? Where are the things to come from? Right our prayer should therefore be that all should be prosperous as much prosperous as they desire but their desire should be limited by their own discrimination Vivek Vivek to their own contribution to the public good We must have good sense to perceive that it is not possible to deceive God or His World (We can only deceive ourselves No body can draw from a bank more than what he has put in So it follows that our prayer should be that every body should be prosperous sampanna, and he should at the same time be *equally* useful upayogi

Mere prosperity will not make a man happy *If a person is ill, no* amount of wealth will make him as happy as a poor man in good health So our prayer should also be that all should be without disease Niramaya Here again, people cannot avoid disease, if they do not live a controlled life—Therefore our prayer is that all should live controlled Samyami lives and be without disease

Wealth and health are good things very desirable things but society cannot exist if all people live according to the laws taught by Economics and Hygiene They should *not* be *ignorant—Ignorance* leads to social evils Modern society is so complicated that correct knowlegde has come to be almost as necessary as good and sufficient food Take the Kashmir question I venture to think that many Pakistanis are sincerely of opinion that they have a right to that beautiful tract and are also right in taking forceful possession thereof While many Indians, led by Pt Nehru have no doubt that Pakistan is a robber and that the Indian Army is there as a saviour What is the lesson we learn? Every body should be rightly educated and be able to *perceive* what is good for all So that is the next item in our prayer

Finally, we must not forget that there is no effect without an adequate cause, so that to produce a certain effect we must produce arrange for the cause to appear first And a prosperous and happy society can only be based on moral foundations of Truth and Non violence *Truth must be seen and be propagated by non violent means*

These two principles are as old as the Vedas, we find them as the very first steps of Raja yoga scientifically expounded by PATANJALI And since the advent of Mahatma Gandhi, the country, and even the world, has been hearing of them though, it must be stated with regret, without much effect When a commodity is necessary but rare the need for its production becomes pressing Such is the case with Truth and Non violence Read the proceedings of the U N O meetings Diametrically opposite ideas are being expressed There are two mutually exclusive versions of almost all facts and events Where is the Truth? A layman even a student is confused And there is a constant threat of violence and open preparation thereof And yet, every body says that the next inter-national war will be the end of civilization Do we not need Truth and Non-Violence almost as much as food grains? The world is short of both So our prayer is that all should become sincere votaries of Truth and Non-Violence

And the prayer should be wound up by a desire, intense desire, that no body should be unhappy

Prayer is a service that young and old, strong and weak, all can render and it will be efficacious to the extent we can put pure, concentrated and one-pointed thought in it Pray, latin precari, is to ask earnestly *for something from somebody* But why should we ask for anything from any body? That is not the way of a strong and a good man, because it denotes lack of faith in Truth and the Law, that is God, If one has done something for which some return is deserved, *it will come*, as day follows night All laws of Nature, and for this purpose at least Nature may be regarded as God, are exact and certain Cause *must produce effect* In the Sankhya philosophy of the Hindus, effect is said to be contained in the cause, it is the cause itself in another form So our action cannot but produce the result, good, bad or indifferent *not much affected by what we desire* It should not, however, be forgotten that desire itself is an action and as such it has an effect of its own If a certain act is performed with a certain desire, it will produce one result, *if the same act is performed with a different desire, its result* will be different and the difference in the result will be related to the difference in the desire

It is clear that a request or a prayer cannot be effective unless favourable conditions exist, and it follows that if we want something, we should create or bring about circumstances, environment, that will give the desired result. A hot-house plant cannot be grown without a hot-house, if other conditions remain unaltered

Any body who wants happiness, must give happiness, and as happiness is of infinite variety, the giving of happiness may be done in many many ways It is the noblest ambition to be happy in the right way and the infallible method is to make others happy. One who restricts the giving of happiness to his relatives or caste people can get happiness only out of these persons. But one who gives happiness to all, irrespective of their caste, creed, sex or colour, gets happiness from all.

Scientific prayer is, therefore, the broad-casting of general good *through the most powerful transmitter of thought power along* the universal wave length The person performing the act of prayer is making a request only in a popular sense; actually he is creating conditions by which all may, (not, must) profit. He is a super-educationist, whose influence is not confined to his own institution or even his own province or country, but his silent voice of mind speaks to the whole world. It blesses all.

AN APPRECIATION

SHRI MADAN MOHAN, M A

[Shri Madan Mohan is an eminent educationist and has been a colleague of Khannaji on various academic bodies His appreciation shall interest the reader]

I consider it a great privilege to be called upon to write an appreciation of my old and revered friend Shri Hira Lal Khanna whom I have had the privilege of knowing for about 20 years now

I first came into contact with him in the early thirties in the Agra University bodies where his sturdy independence and charm of manner attracted me towards him I will not bore the reader with the recital of many a battle that we fought and lost together on the floor of the Agra University Senate I may only mention that in an atmosphere where highly educated persons kept on manoeuvring for power and demeaning themselves for petty personal gains, he set an example of a fearless stand for what he considered right, irrespective of personal considerations Flattery couldnot win him over, temptations could not purhcase him and defeat did not deter him It was indeed an inspiration to work with him A profound scholar a popular teacher a valiant fighter for the dignity of the teaching profession, a sincere friend of the student community, a sympathetic but strong administrator, a devoted public worker, an affectionate friend and a generous foe Khannaji's towering personality will ever be remembered by all who have come into contact with him May he continue for a long long time to come the useful public work to which he is devoting himself after his retirement

THE NEWS PAPER OF TOMORROW

By A Journalist

[The importance of newspaper can not be over emphasised In modern world newspaper is acquiring a significance which places it as a potential weapon in the field of life The author traces the line of its importance He also expresses his concern about the future of Newspaper which has to face a rival in radio and television but assures us that it will hold its own because of its cheapness and availability in our leisure He emphasises the fact that the newspaper will become the grand accelerator of human progress—the means b which ever increasing number of thinking people can add their ideas to the common fund]

The quickened tempo of modern life is transforming all our activities We are living in a forward looking age when change is welcomed rather than viewd with suspicion and distaste, and when the mental horizon of every class is being steadily broadened Attainment of independence, spread of education, popular journalism political emancipation, swift transport and other inventions and discoveries have speeded up life and revolutionised ideas and tastes within a very short time The newspaper which records and clarifies for us day by day the story of human progress has itself passed through an era of accelerated development and it is probably on the verge of even greater changes

The Press has usually reflected fairly accurately the spirit of its age The solidity and conservatism of the earlier part of the century were faithfully reflected in the newspapers of the time, one has only to compare them with modern journals to realise how much ideas have *changed socially, politically and journalistically The newspaper of* today mirrors the restlessness, frankness eagerness and heart-searching of the age The newspaper of tomorrow will as surely reflect the spirit of the post-war world, and its epilogue of disillusionment

Because its primary purpose is to report the newest things the newspaper is more sensitive than any other institution to the changing conditions of life It is customary at the present day for critics of the Press to take a gloomy view of its future and to predict increasing domination by financiers and a corresponding decline in real influence I do not agree with this view and believe that the newspaper will steadily

gain in quality, and that it will play a growing part in our national life. I am not on the side of pessimists because they take no account of the spread of education and the rising standard of public taste A more critical reading public will demand—and get—better and better newspapers and magazines.

The dream of world unity will appear more capable of realisation, say 50 years from now, and if it is to be achieved the major role will be played by the Press. The growth of new international consciousness will be seen in more liberal interchange of ideas. News of other countries and a digest of the views of the world's Press will occupy increasing space in the great journals of all nations. There will be a genuine and sustained effort to comprehend the outlook of other people. The newspapers of the future may therefore be considered incomplete without a world page, which will be exclusively devoted to articles on world tendencies and interesting developments and notable achievements in other countries. There will be a growing and more generous recognition of the contributions made by other countries to the common cause of humanity.

It is believed in certain quarters that the radio will soon prove a serious rival to the newspaper and in time oust it. The radio can never be more than an auxiliary news service, and must avoid political, economic and social controversies—apart from occasional debates. It is unlikely to attempt a serious extension of its present activities. Wider possibilities are no doubt opened up by Television. When it is perfected it may be practicable to have a large screen in every home on which a one-page summary of news can be thrown in the form of a newspaper every hour or every few hours. The time factor, however, would impose a limitation, since the looker-in equally with the lister-in would miss the news if he were not at home. Convenience is an important part of the service offered by the morning newspaper. We buy it when it is convenient and receive for two annas a complete service of news articles, pictures and advertisements interestingly arranged and easy to read If we are unable to finish reading the newspaper in the morning, it is available in the evening when we return from work It is idle to suppose, therefore, that the Radio and the television will succeed in ousting the newspaper

Of course newspaper will undergo numerous changes, such as improvements in the "dress" of newspapers, whiter newsprint, clearer printing, better type faces for headings etc. These will give our newspapers a pleasing appearance. Illustrations and advertisements in colour will become a common place. More developments are to be expected in the pictorial field.

The rising of the average educational standard and the consequent demand for more solid and varied literary fare will give a great impetus to development in the periodical field. Every year will see new and better magazines, and the wider interest in science, literature and the arts generally will give birth to original types of periodicals. All the time fresh interests are springing up and creating large and special classes of readers. No limit can be set to the possibilities of the women's magazines. Already there are quite a few and the best of them have reached a high level. They promise to grow in quantity and they attract further rivals. The magazine field holds many interesting possibilities.

The age of leisure would be the golden age of journalism. The Press will have an opportunity of satisfying the needs of thousands of people eager for culture and possessing both time and means to gratify their tastes. There will be a stimulus to the production of new types of newspapers and magazines surpassing in number and variety even the feverish developments of the era of popular journalism. Lavishly illustrated reviews and magazines will reach circulations inconceivable at the present day. Magazines featuring articles on travel adventure, sport and so on will be in enormous demand. Clearly there will have to be a fresh scale of journalistic values. News will at last reach the ideal of treating the significant things of life instead of the trivial.

The journalist will have the most responsive and critical readers—genuinely adult-minded and with a real desire to exercise their intelligence. He will not be nervous about touching on sharply controversial issues or serious social problems. The open minded citizen will shed a good many prejudices that now clog free and searching discussions of vital matters. The spirit of the age will demand newspapers that give swift and reliable survey of what is going on in the world—and make a real contribution to human progress by giving great prominence to

movements, projects and inventions that will add to the welfare of the community. All newspapers will devote an increasing amount of space to arts and sciences. But this tendency is not likely to be accompanied by a parallel diminution of the space given to sport and other things. The newspaper, in short, will become the grand accelerator of human progress—the means by which ever increasing numbers of thinking people can add their ideas to the common fund.
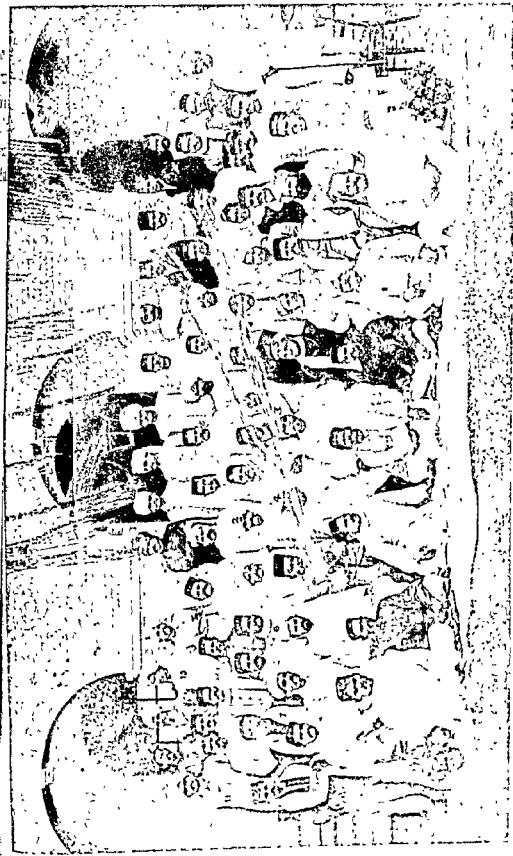
द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

(१) मालवीजी, (२) राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, (३) श्री गोविन्दनारायण मिश्र (सभापति), (४) श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (५) श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, (६) श्री कृष्णकान्तजी मालवीय, (७) श्री गिरजाकुमार घोष, (८) अवधवासी श्री लाला सीताराम, (९) श्री आसोड़ी भोलानाथजी—आदि।

movements projects and inventions that will add to the welfare of the community All newspapers will devote an increasing amount of space to arts and sciences But this tendency is not likely to be accompanied by a parallel diminution of the space given to sport and other things The newspaper in short will become the grand accelerator of human progress—the means by which ever increasing numbers of thinking people can add their ideas to the common fund

TECHNICAL EDUCATION

By Captain M P Sharma

[The author Captain M P Sharma, expresses here that from his experience of organising the first Technical Training Centre in U P for the Army, he can safely assert that our village folk have as great aptitude for technical industrial training as for the plough What is needed urgently is work, hard work not tall talk and idle criticism of the Government

The author, Captain Rai Bahadur M P Sharma is at present Managing Director, The Universal Engineering Co Ltd Allahabad and is an old pet pupil of Khannaji]

A great impetus was given to technical training in the United Provinces during the last War as technical men were required for the army

I had the proud privilege of starting the first Technical Training Centre in U P in the year 1940 which was afterwards named as the Government Technical Training Centre Allahabad and of which I was appointed Principal Besides the above I also organised six other training centres in U P and Bundelkhand

All these training centres were run by the Labour Department Government of India

What wonderful work was done by these training centres and many other hundreds of training centres like these throughout the country can hardly be realised by those who were not connected with the Technical branches of the Army

These training centres were an eye opener to those who had been interested in the technical training of the youth of the country

There are three classes of technical men required for the Industrialisation of the Country, i e —

1 Engineers 2 Foremen 3 Technical men

In this paper I am dealing with only with the third category

The following outstanding facts were revealed during the war –

1 Our village youngmen as readily take to the technical training as to the plough They have a great aptitude for it

2 Education upto the VI to VII class of the Vernacular Schools is sufficient to make them grasp the technical terms, drawing and writing of notes etc

3 They can easily stand 7 to 8 hours' continuous hard work daily and are quite happy with about 15 days leave in the year besides Sundays

I am afraid the Government did not take advantage of the above facts and to my great disappointment, I find that even today higher educational standards and long terms of courses are prescribed in our technical training institutions by the present Government

It is true that during the War the men trained were meant for specific purposes and after their demobilisation they could not be assimilated in the Industries of the Country The reason is simple

No one cared for them The simple thing was that they required a little brushing up and a little more specialised knowledge for the Industries I am definitely of opinion that a course of 3 months' intensive training as during the War would have made them fit enough for the Industries

What valuable and technical man power is being lost, how many of us realise?

I am saying all this as I had a hand in training about 2000 technical men in about 6 years who were fresh from the villages and every batch trained within 6 to 8 months was fit enough to be taken in the Army as technical men in grade III

The Labour Department has again tried to train men on the old lines, which is a move in the wrong direction as the syllabous required during the War is aboslutely useless for the present day needs of the Industry

It may sound foolish, as it also did, when I said the same thing in 1940, but it has been proved to the hilt that if organised on the right lines an *intensive training* of 8 months will supply enough technical hands for the Industries

It may sound unreal but my experience has shown me that with an intensive training of $1\frac{1}{2}$ years the personnel for the Foremen class can also be produced There are enough men available for the purpose but who is to bell the cat?

Unfortunately we are a Nation who are out to criticize the present National Government, which is in fact ourselves, deliver speeches, write articles but very few of us are prepared to put our shoulders to the wheel of the Industry

The Country will always be in want till we are industrially prosperous and produce more and we can produce more if we make the parents feel that they should educate their children for Technical work rather than for a clerk's job

There is no dearth of Raw materials in India and as stated above, Technical persons can be produced in a comparatively short period The question of Capital goods i e Machineries etc may be a difficult problem but to my mind it is not insurmountable if a Country wide campaign to Industrialise the Country is put into practice by helping Cottage Industries immediately

LETTER OF APPRECIATION

Shri C N Sen, Deputy Director A I R

[Shri C N Sen the illustrious Deputy Director General All India Radio is an old pupil of Khannaji How devotedly he speaks of his Guru shall be read with interest and advantage in the article that follows]

Professor Khanna taught me Mathematics in 1918 and 1919 in St John's College, Agra He was a quiet serious young man who *attracted our devotion by his sympathetic nature and the quality* of appreciating a student's difficulties Mathematics as one knows, comes naturally to some and is difficult for those not gifted with the talent Professor Khanna told us one day that nobody would fail in Mathematics if he paid sufficient attention to the subject Naturally we asked him what he meant by "sufficient" Professor Sahib said "Four hours a day throughout the year We laughed at what we thought an absurd proposition But some of us understood what he meant There is nothing in the world so difficult that it cannot be conquered by hard, consistent work This lesson has been of considerable benefit to me Professor Khanna also taught me to read without pronouncing the words—a habit which saved me many valuable hours

TEACHER VERSUS SOCIETY

SHRI MADAN MOHAN M A

[Here is some food for thought for those who are interested in education There should be noble reciprocity between teachers and society as far as their duty to each other is concerned If society neglects the teachers by denying them proper respect consideration and freedom they in their turn will work irresponsibly perfunctorily and inefficiently Similarly if the teachers do not render their duty society will look upon them as parasites and idlers Unfortunately a vicious circle of this sort has already started To stem the tide of this mutual delinquency it is imperative that society and *the teaching personnel should play their role* properly

The author Mr Madan Mohan M A is Director of Education United States of Rajasthan Bikaner]

The aim of education is to train a citizen to be a good and useful member of society—'so to educate the body that it may be fit to house an educated mind so to educate the mind that it may be fit to inhabit and to use an educated body and so to educate both together that they may be fit to cooperate in the creation of real values

Proper training of youth is the foundation on which the superstructure of society is built If this foundation is not well and truly laid the superstructure is bound to be unstable and shaky Therefore the person who is entrusted with this task of training i e the teacher is the key man of any scheme of education To enable this keyman to go about his responsible task there are certain prerequisites Firstly he should possess the proper mental and moral equipment for the purpose Secondly he should be zealous and enthusiastic about his work, and thirdly he should be given working conditions under which he can wholeheartedly and efficiently apply himself to his task

While it is true that a large number of persons who join the profession of teaching in our country at present simply drift into it

because they cannot find better employment elsewhere, and so are misfits in the profession, it is equally true that the number of those who felt attracted to the profession by their idealism and spirit of service, and who are quite capable of functioning as good teachers is not small. Notwithstanding this, it has to be admitted that the average teacher of to-day does not take any real living interest in his avocation but just carries on. He has no urge to advance his own knowledge In the matter of intellectual development of the students committed to his charge he is interested only to the extent of their passing the prescribed examinations Their physical or moral development does not appear to be of any consequence to him. In fact any work besides the routine class room teaching is looked upon by him as an infliction. How this attitude affects the training of the future citizen can well be imagined; and if today, with the advent of freedom and responsibility to run our own affairs, we find a woeful lack of suitable personnel in every sphere of national work, the reason is not far to seek. Unless the teacher can be persuaded to change his attitude all efforts at nation-building will be seriously marred.

The diagnosis of a disease is a prerequisite to its treatment. It should not be forgotten that the conditions under which most of the teachers have to work today are so depressing that the idealism of the stoutest among them fades away, and their sense of pride in their work is rudely shaken. The rigidity of the curricula kills all initiative and spirit of research There is no freedom of thought or expression. Emoluments are not enough to provide them with even the bare necessaries of life and there is no security of tenure Housing conditions are not conducive to intellectual work. They are bossed over by people who are generally both intellectually and morally inferior to them, and they are at times called upon to do things against which their conscience revolts. Not only are they scrupulously excluded from the management of the educational institutions but even in matters dealing with the content of education they have no say. In short they are looked upon as mere mercenaries whose services can be requisitioned, utilised and dispensed with at will. This treatment has naturally affected the teacher's status in society very vitally and has led to the

development of an inferiority complex and cynicism in him, which vitiate his outlook and attitude towards his work and are reflected in the training of youth committed to his charge. So, not out of any feeling of generosity for him but on grounds of sheer self interest, it is incumbent on the society to treat him well and give him all reasonable facilities for his work.

The unenviable conditions, however, under which the present-day teacher has to work do not absolve him from the responsibility of doing his duty by the young ones entrusted to his care The child of today is the citizen of tomorrow and the impressions of his childhood are bound to play a great part in his future mental make up. If he has met teachers who have inspired him with regard and respect, his attitude to the teaching profession in his later life cannot but be very different from the one he would have if he has met indifferent, sulky and disgruntled teachers. So the manner in which the teachers of today conduct themselves will be a very vital factor in determining the attitude of the Society of to-morrow towards them Thus, here again sheer self-interest, even if higher consideration are ignored, demands that the teacher should play his part nobly and well irrespective of the conditions under which he has to work.

It is regrettable but nevertheless true that in the field of education we are moving in a vicious circle. The conditions under which a teacher has to work are not conducive to efficiency and conscientious work and make a vast majority of teachers indifferent to their task. This indifference has a natural reaction upon Society and hampers the work of bettering the conditions of work for the teacher. This in its turn further affects the outlook of the teacher and so the process goes on. To break this vicious circle deliberate and energetic efforts are urgently called for on both sides The disease has to be treated with sympathy and understanding.

KHANNAJI—THE GREAT

PRINCIPAL A SHAKOOR Raza College Rampur

[Principal A Shakoor has been the Principal of the local Halim Muslim Inter College Kanpur and has had ample opportunities of watching the activities of Principal Khanna at close quarters His informing article about the various aspects of Khannaji's life shall be read with interest]

I was in Kanpur as Principal of Halim Muslim College for a little over 6 years and had many opportunities of coming into contact with Mr Hira Lal Khanna whom I always called, not without reason Khannaji the Great It does not take long to be impressed by his dynamic personality Inspite of his old age and gray hair he is full of life and vigour His remarkable intelligence strong common sense mellowed with ripe experience and the sparkling self confidence with which he tackled difficult problems are by themselves lessons to be followed by less gifted human beings

That Khannaji is a master architect can easily be known by going over the famous B N S D College one of the best educational institutions of this province I have seen the college more than once and was always impressed with the atmosphere that obtains there and the tone which the college possesses That the college has shown remarkably good results year after year is known to every body but few of us know the pains which Khannaji takes in being able to achieve these results His great organising power and the tact and tenderness with which he succeeds in making his teachers give their best to their pupils can hardly be surpassed

During my stay in Kanpur the population of the town grew enormously owing to the War and the number of the Educational institutions were found to be too few This state of affairs grew acute after sometime when one bright morning Khannaji took it into his head to found a new High School The Summer vacation was perhaps more than enough for him and when in July we reopened the new High School had come into existence—building sources of income staff and recognition everything down to the minutest detail—had been duly

completed, and I hope now it is a full fledged and a well conducted Higher Secondary School I am sure Khannaji is still the founder-manager of that institution

Khannaji, besides being an excellent Principal, and a great organiser, possesses a warm heart for his friends Whenever I met him I came back refreshed, and buoyant I always found him cheerful, hale and hearty, and prepared to help his friends out of difficulty I approached him more than once with problems of my own, and I remember vividly that he has invariably gave me sound advice, and his best help

Khannaji s dress is always typical He seems to be enamoured of the white colour With his white turban white Parsee coat and the eternal canvas shoes he may be easily distinguished in a big gathering And similarly in the long galaxy of Principals of Colleges in U P he towers high, and is known all over the Province for his wonderful achievements in the field of education For Kanpur he is also a distinguished citizen whose meritorious services will be remembered with gratitude by future generations

IN APPRECIATION OF SHRI HIRA LAL KHANNA

DR KRISHNA KUMAR SHARMA

[Dr Krishna Kumar Sharma, Head of the Commerce Department, Meerut College is one of the stalwarts of education in these provinces His article shall provide delightful reading]

Principal Hira Lal Khanna, M.Sc , is retiring from the Principalship of B N. S. D. College, Kanpur in March, 1950. It is in the fitness of things that a memorial volume is to be presented to him on the eve of his retirement. Khannaji has been connected with various educational institutions in these provinces for the last three decades. He has been a member of the bodies of Agra, Allahabad and Banaras Universities at one time or the other. Till recently, he was also a member of the Board of High School and Intermediate Education, U. P., Allahabad. In these capacities, he made his contribution to the cause of education in these provinces. During the last quarter of a century, he has been intimately connected with several important educational institutions of Kanpur in one capacity or the other Since the inception of the V. S. S. D. College, (S. D College formerly), Shri Hira Lal Khanna has been on its management He has been the Principal of B N. S. D College, Kanpur and that institution owes its all, almost entirely, to the unflagging energy and devotion of Khannaji.

A strict disciplinarian and a hard task master, Khannaji could maintain the results of the High School and Intermediate Examinations of his institution at the top almost by sheer dint of devotion to duty and hard work. He maintained that personal contact with the students of his institution, which won him the affection and respect of students and which made him an ideal teacher. He has left the impress of his personality on the educational and social life of Kanpur. He has done things which mark him out as a man of sturdy independence, originality and persuasive nature. I have known Khannaji for the last 25 years since the beginning of my career as teacher at Kanpur and I have respect and admiration for his sterling qualities. I hope and pray that even after he retires from the principalship of B. N. S. D. College, Kanpur, he will continue to render service to the cause of education. India needs men of his calibre, who devote themselves to the cause they have at heart.

THE NEW CHILD AND THE NEW AGE

S L JINDAL

Principal Training College Agra

[The writer pleads here for inclusion in the curriculum for the new child of new things to suit the changed context and environment Children of today are not the docile things of the past and so they require a different handling

The author Mr S L Jindal is Principal Government Training College Agra and an old pupil of Khannaj]

We live in the Atomic Age The discovery of a new source of energy in atomic fission heralds a new age It is fraught with dangers to the very existence of humanity yet at the same time if discretion prevails it might well become a boon too revolutionising industry and changing the very face of our earth making it a veritable paradise on earth Yet the new changes need time to work themselves out fully We have to watch the influence of these scientific discoveries on the new child that is to come

People will be surprised to hear the term the new child yet it is true Theosophists say that during the period of evolution of humanity there will be seven great race types called Root races So far in the evolution of men only five of the seven races have appeared of them the First and the Second appeared so long ago that they have left no direct descendants Each Root race has seven modifications called sub races We at present are the descendants of the Fifth Root Race Five sub races of the Fifth Root race are already inhabiting different parts of the earth By an intermingling of the existing sub races the sixth sub race Austral American in origin is coming It is in process of formation in the United States Australia and New Zealand Ours at present is the fifth sub race of the fifth Root race which is predominantly scientific and individualistic in its outlook The sixth sub race will be fraternal and intuitive in its outlook Hence the type of education for the new child is to be quite different from what it is now requiring more freedom of movement enough of sunshine more sympathy and understanding

The child had been neglected in the past as revealed in the art of different countries The Greeks loved beauty and depicted perfection of bodily grace in the shape of youthful forms but neglected the child altogether We hardly come across the figure of a child in their art In the cult of Christianity and Renaissance Art we do come across the

child—Christ painted in an idealised form As such there is little of the child in it It is merely a dull and wooden figure In Hindu Art also the absence of the Child is a note worthy feature In Ajanta frescoes we see the child Buddha with a halo of glory around as in the Child-Christ Later on in the Bhakti Age Balkrishna plays an important part and the child does come into Art with its natural sportiveness and bubbling energy

In the 19th century a sudden change appeared especially in the West Wordsworth struck a new note His famous line 'Child is father of the man summed up his attitude towards the child His natural piety, belief in the immortality of the soul, brought about a revolutionary change in the attitude of the people Rousseau also pleaded for the child This was reflected in the educational scheme evolved by Pestalozzi He psychologised education, emphasised the role of the child and pointed out that if the face of the child does not shine with joy, it means that there is something wrong with the method of teaching Froebel in his Kindergarten and Montessori in her own system laid stress on the fact that the child should have full opportunity of unfolding his inborn capacities through more freedom Both believed in the immense possibilities of a healthy environment and tried to create idealised surroundings The new child is born with a richer experience, if we believe in the theory of 'engrams and the continuance of acquired characteristics Already even to a casual observer it is apparent that our children want more freedom have a keener sense of beauty and revel in social activities They do not easily bow themselves to parental subordination, and show their inclinations towards one group organisation or another They believe in equality and fraternity and it is a happy augury that a democratic type of society is to be evolved on these characteristics of the new child This social instinct if developed on right lines, will grow into an international out-look so much needed for the new world order

SHREE HIRALAL KHANNA—AN IDEAL PRINCIPAL

SHRI A P SRIVASTAVA M A

[Shri A P Srivastava has been on the staff of the B N S D College and has had the proud privilege of watching Principal Khanna at very close quarters His remark The B N S D is not only the shadow but also the substance of Mr Khanna not only amply illustrates the working of the institution but also gives us an insight into the personal traits of Khannaji The article provides interesting reading]

Emerson (The great American essayist) once observed 'an institution is the lengthened shadow of one man', and I can say without the least hesitation that B N S D College is not only the shadow but also the substance of one man—Mr Khanna Having been on the staff of the College for six long years, I had the opportunity to know Mr Khanna quite intimately, Mr Khanna—the Principal and Mr Khanna—the Man—though very often both overlapped each other and became identical Mr Khanna possessed all those qualities which at once single out a person from the common herd of people—independent dispassionate thinking, executive ability, talent, nobility of aims, lofty aspirations retentive memory, love for his pupils and last but not least 'the two o'clock in the morning courage' He thought out everything for himself His convictions were his own clear and coherent He was never positive opinionated, he pondered and hesitated long before he decided on his course He paused and reconsidered, but it was not his way either to go back upon a decision once made or to waste time in vain regrets that all he had expected could not be attained Without vanity or osten-

tation he was always independent, self contained, prepared to take full responsibility for his acts which very few indeed would do, for do we not often find men of mediocre calibre shifting responsibilities upon other shoulders particularly when the consequences of an action be of some moment? His executive ability showed itself not in sudden and startling strokes, but in the calm serenity with which he formed his judgments and laid his plans, in the unshakeable firmness with which he adhered to them in the face of popular clamour and criticisms, of conflicting counsels from his advisers and members of the staff, some times, even, of what others deemed all but hopeless failure

Mr Khanna, no doubt sometimes appeared to be rather too rough, hard even callous, but those who had the eyes to look into him carefully and dispassionately later on discovered that behind this rough exterior he carried a very soft heart brimming with the milk of kindness He was always very loving to his pupils and equally solicitous about the well being of the members of the staff He often vehemently criticised the actions of the professors and teachers with a view to correct them but he simply could not tolerate them being maligned or spoken of disrespectfully outside the college premises There he would raise his quills like an irate porcupine and fortify them against all the winds that blew Numerous instances could be cited in support of my statement but it would not be possible to do so within the short span of this article Many of us who are now not in that college remember well the infinite pains he had taken to accommodate himself to us and us to him Approach to him has always been easy—the help he gave us has been both ready and generous He showed us how to be patient and courteous without being lax, how to be strict and severe without being mechanical and formal He demonstrated how gentleness can rule and how persuasiveness can subdue By his love and kindness he warmed those that were in the chill of malice and wickedness and by his tenderness he softened the hard and the unbending for just as men grow bitter and harsh by unkindness and ill treatment they grow sweet by good and gentle treatment

True education according to Plato is that which makes a man gladly pursue the ideal of perfection of citizenship and teaches him how

rightly to rule and how to obey This is the only education which upon our view deserves the name And yet again according to H G Wells the chief end of education is to subjugate and sublimate for the collective purposes of our kind of the savage egotism we inherit And I found by personal experience that Mr Khanna as an educationist bore all these points in view and tried to inculcate them both in the teachers and the taught and observed them himself first He laid very great stress on Punctuality and Health and practised them himself before preaching them to others I never found him late anywhere or falling ill even for a day He believed with Sir W Arbuthnot that ' people have no more right to be ill than they have to be criminals ' He often remarked humorously that were he the dictator of a country he would punish all those—particularly the youngmen—who fell ill And is it not a fact that most of us fall ill because we do not observe the laws of health and foolishly flout and neglect them?

Mr Khanna always revelled in facts and figures analysing in detail the marks obtained by students and kept a most vigilant eye on them Once while I was travelling with him he asked me—what percentage of students should get a first class which may really be called a creditable result? I quickly replied, ' Twenty five percent ' And at once he retorted 'No, it should be cent per cent' And last year actually almost every student of the High School that appeared from B N S D College got a first class Very creditable indeed!

spirit of the necessity of national conservation of our resources through development of industries in a co ordinated and scientific manner of planning The absence of a co ordinated and coherent national mineral policy is a sad fact The introduction of such a policy is the imme diate and imperative need of our mineral industry

India in vastness, approximates to a sub continent but its mineral resources are hardly in proportion to its extensive dimension The vast stretches of the Indo-Gangetic plains are singularly barren of any mineral occurrence Further the distribution of most of the minerals is scattered making co ordination and distribution rather difficult Many of the best iron ore reserves are lying untouched for want of suitable quality of coal in the vicinity The beneficiation of inferior coals, which is essential to the development of the metallurgical industry has not yet been pursued actively

India has a very favourable position in respect of certain minerals Her reserves in good quality of iron ore are the greatest in the world, her position in coal is satisfactory India leads the world in the production of magnesite, exports 80 per cent of the world s mica and is the largest producer of ilmenite She is second only to Russia in the export of Manganese ore which amounts to 35 per cent of the world's total out put She exports large quantities of chromite, kyanite and monazite

India is only partly self-sufficient in minerals of strategic and defence importance There is a serious deficiency in munition metals like tungsten, tin, lead, zinc and also in graphite and liquid fuels Her most serious deficiency is in oil, the production of the same being only a fraction of one per cent of the world's output

Classification

Economically the mineral resources of our country fall into four classes —

(a) Minerals of which the exportable surplus can dominate the world market, viz ,

1 Iron Ore
2 Ilmenite, and
3 Mica

(b) Minerals important as export commodities, viz,

1 Manganese ores
2 Bauxite
3 Magnesite
4 Silica
5 Abrasive minerals
6 Gypsum
7 Granites
8 Monazite
9 Chromite, and
10 Corundum

(c) Minerals in which the country is self-sufficient, viz,

1 Coal
2 Sodium salts
3 Salts of alkalies
4 Rare earths
5 Sand
6 Nitrates
7 Zircon
8 Phosphates

(d) Minerals which India lacks and has consequently to depend upon imports from foreign countries, of their finished products to meet her requirements, viz,

1 Copper
2 Silver
3 Nickel
4 Petroleum
5 Sulphur
6 Lead
7 Zinc
8 Tin
9 Tungsten
10 Mercury
11 Molybdenum
12 Platinum
13 Graphite etc

Mining Industries of India
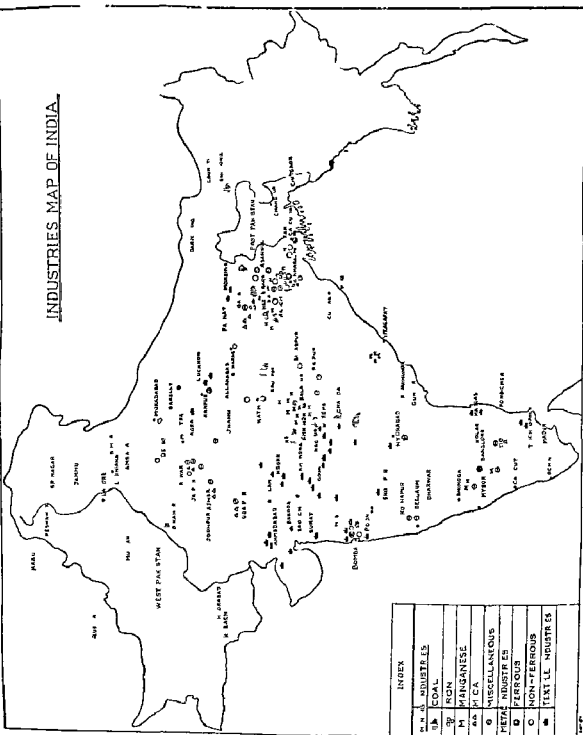
Distribution

The accompanying map of India show the distribution of the important minerals and the chief industries of the country

Coal —India's total reserves in coal are estimated at 60,000 million tons of which only 5,000 million tons are valued as good quality accessible coal Of this, about 1,600 million tons are of the coking variety The coal industry has made considerable progress during the last four decades and the annual output now is about 30 million tons which is also the annual consumption including exports to Ceylon, Burma and Pakistan Thus, taking into account the increased consumption of fuel in future years to provide for the industrial development of the nation, our coal resources would last only a century Of the total output, the coalfields of Bihar and Bengal contribute 85 per cent, 6 per cent comes from Singareni State, 6 per cent from the Pench Valley in Central Provinces and 1 per cent from Umaria Fields Geologically all this coal (98 per cent of the total output) belongs to the Lower Gondwana System The rest 2 per cent comes from the Lower Tertiary and Eocene rocks of the Extra-Peninsula in Assam Large reserves of younger coal, peat and lignite are said to occur in Kashmir Nearly all the metallurgical coal comes from Bihar and Bengal fields

MINERAL MAP OF INDIA

Mineral wealth of India
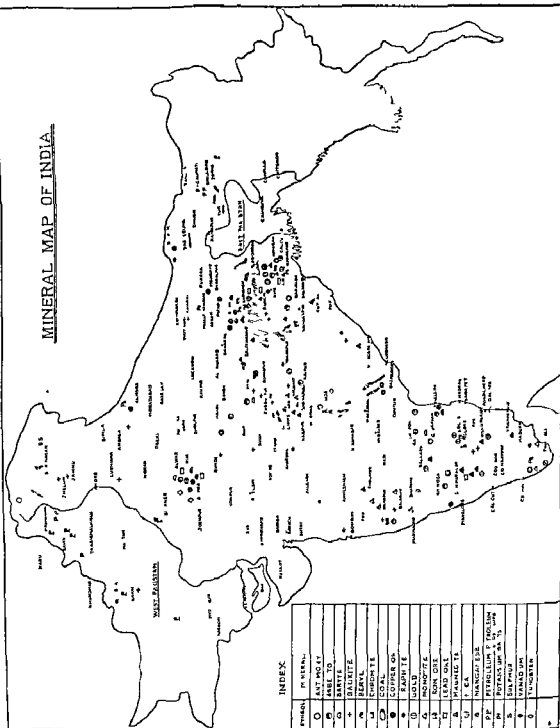
Important deposits in Madras province are at Salem, Madura, Bababudan Hills of Mysore, Cudappah and Kurnool. In Assam also iron occurs with coal. In Central Provinces, the most remarkable deposits are the Khandeshwar Hills, 250 feet high and entirely built of acid iron-ore. Other haematitic deposits of Central Provinces are at Jubbulpore, Drug. Raipur and Bilaspur. Important reserves also occur in Goa, Ratnagiri Kumaon Region and the Jammu Hills. Most of these ores are of the Upper Dharwar age and of metasomatic origin. There are other various localized valuable deposits which could be worked with advantage as soon as cheap power becomes available. India could easily become the world's greatest producer in iron and steel only if its resources in the raw minerals were more scientifically harnessed.

Manganese.—With the exception of Russia, India is the largest producer of Manganese ore in the world The major portion of the output of about 900,000 tons of manganese is exported as mined. A small portion is used in the manufacture of ferro-manganese.

The chief centres of manganese quarrying are at Balaghat, Bhandara, Chindwara and Jubbulpur districts of the Central Provinces which yield 55 per cent of the total output. Next in order comes the Sandur and Vizagapatam districts of Madras, Panchmahal and Belgaum of Bombay, Singhbhum and Ganjpur of Bihar and Chitaldrug and Shimoga of Mysore.

The Manganese deposits geologically and genetically belong to the Dharwar System of India.

The important uses of manganese ores are in the steel industry, as oxidisers in several chemical industries and as colouring material for glass and pottery ware

Gold and Silver.—Gold occurs in India. both in association with quartz-reefs and as alluvial gold in the sands of some rivers. The principal source is the former mode of occurrence. Four auriferous lodes run parallel North-South in a belt of hornblende-schists of the Dharwar rocks in the Kolar District of Mysore State. Mining operations here have reached a depth of almost 10,000 feet being second deepest in the world. The annual yield is about 320,000 ozs. per year. Lodes also occur in Hutti (Nizam) and Anantpur (Madras), but are not being

worked at present Alluvial gold is not worked on any large scale

Although India is the largest consumer of Silver in the world importing Rs 13,50 00 000 worth of the metal only about 25 000 ozs worth about rupees one crore is produced in Kalor as a bye product

Lead Zinc and Tin —Ores of lead occur in the Himalayan region and also at places in Madras Rajputana and Bihar Although some deposits are fairly large and argentiferous they are at present lying unworked for want of enterprise and because of the cheap price of imported lead

Workable deposits of zinc blende occur in lenticular pockets in the Raisi district of Kashmir, but are not being worked

Tin ores on commercial scales have not yet been discovered in India

Copper —Deposits of copper are known to occur in Singhbhum Chota-Nagpur Alwar and Udaipur districts in the Rajputana and in Sikkim and Garhwal of the Himalayas At present only the Mosaboni deposits of Singhbhum are being worked out producing annually about 300 000 tons of ore from which 6,600 tons of copper are smelted The ores assay 2 4 per cent of copper Richer veins have been discovered in the vicinity Previously a rich copper smelting industry flourished in Rajputana

Native copper occurs in South India and Kashmir Good disseminations occur in a number of places but cannot be worked because the occurrences are scattered Copper ores of Sikkim attracted much attention once but could not be commercially worked for want of adequate transport facilities

Aluminium —Aluminium is the only non-ferrous metal of which India possesses large deposits The chief rich ore is Bauxite—the hydrated alumina and is widely spread in the laterite cap of the Peninsula and in Assam Rich bauxite averaging more than 50 per cent aluminium occurs in Katni, Balaghat, Mandla and Seoni districts of Central Provinces and other deposits occur in Kalahandi Sarguja Mahabaleshwar Palni Hills Ranchi of Bihar Shevaroy hills of Salem and Kaira Kolaba and Belgaum districts of Bombay Richer and extensive deposits analysing 60—80 per cent Aluminium have been discovered at

Jammu and Poonch In spite of deposits of such richness and magnitude, very scanty enterprise has been shown to develop the Aluminium Industry, and India still depends largely on imports from Canada and other countries for its aluminium requirements Some reduction plants have recently started work and others are under contemplation Aluminium industry has a bright future in India

Tungsten —India is poor in deposits of tungsten which is chiefly used as an alloying element in steel to obtain wide range of desirable physical properties The great ductility of tungsten makes it suitable for electric lamp wires The annual output averages 10 tons of wolfram from Dagana deposits of Jodhpur State Some deposits occur in Trichinopoly, and Baria State of Bombay

Vanadium Ore —8,000 tons of vanadium bearing titaniferous magnesite have been located in Singhbhum district of Bihar In Travancore, a lignite deposit yields ash assaying 2 per cent of Vanadium Oxide Some vanadium occurs also in Bhandara district of Central Provinces Vanadium when alloyed in steel greatly improves its toughening properties and this is its main field of use So far no effort has been made to extract vanadium in India

Magnesite —Magnesite occurs as an alteration product of dunites in association with dolomites and serpentines The magnesite of Salem is of high degree of purity and the annual output exceeds 10 000 tons mainly consumed in the manufacture of refractories Magnesite veins also traverse Coimbatore, Mysore, and Trichinopoly districts of South India

Ilmenite and Monazite —India is the world exporter of ilmenite which is widely distributed in Peninsular and Rajputana gneisses It occurs plentifully on the Travancore coast as black sand along with monazite sand Monazite is a phosphate of the rare earths and contains thorium oxide, 8—10 per cent as an impurity which raises its value considerably as an atomic mineral Monazite is finding various uses in modern industry, viz , manufacture of mantles and filaments The present annual production of monazite sands is 200 000 tons

Antimony —Good deposits in lodes occur in the Lahoul Province of Kashmir, but are inaccessible Stibnite also occurs in Vizaga-

patam and Hazaribagh but the deposits do not promise any commercial venture.

Arsenic.—Important deposits of orpiment and realgar occur in Chitral and Kumaon Arseno-pyrite is known to occur in the Kalimpong area of Darjeeling district Production, however, is quite meagre

Chromite.—Chromite has important uses in the manufacture of neutral refractories and chromium is an important constituent of some special steels At present, Mysore is the greatest producer of Chromite, the reserves being 500,000 tons assaying 40 to 48 per cent Cr_2O_3 Deposits of Singhbhum districts and Keonjhar State come next as producers, the reserves standing at 45,000 tons. About 70,000 tons of the ore occur near Ratnagiri district of Bombay 200,000 tons of ore is reserved in the thin veins through the magnesite of Salem district and large deposits have also been discovered in the Dras valley of Kashmir.

Sulphur.—The partition of India has made it very poor in its sulphur resources. Sulphur deposits have been cut off into Pakistan. Some sulphur occurs in the Puga valley of Kashmir, but the deposits are insignificant and the needs are mostly met by imports.

Mica.—India exports about 80 per cent of the total world's mica. Indian mica sheets are the largest in size and purest and whitest in quality. Nearly all the produce is exported, India having little use for it Commercial deposits in large perfect crystals occurs in pegmatite veins through Dharwar Schists of the Hazaribagh, Gaya and Monghyr districts of Bihar Bihar contributes 80 per cent of the Indian output; next comes the Nellore District of Madras with 16 per cent and then Rajputana with 4 per cent of the produce.

The chief use of mica is as the electric insulation material and a substitute for glass in glazing Scrap-mica is now used in the manufacture of micanite.

Petroleum.—Petroleum occurs in anticlinal structures of the tertiary rocks of the extra-peninsula in Assam, at Digboi The oil-belt stretches through the Surma valley to the Arakan coast. About 66 million gallons of oil are produced at Digboi. Further exploratory drilling is being continued to locate more productive structures. The

Indian produce falls far short of the country's needs which are met by imports.

Asbestos.—Both the tremolite and chrysotile varieties occur at many places in India. Deposits of commercial value are found at Pulivendla (Cudappah) of the Chrysotile type. Tremolite occurs near the Hassan district of Mysore and the Singhbhum district of Bihar. 300 tons of tremolite and 30 tons of chrysotile are produced annually. India is self-sustaining in supplies of this mineral which has a variety of industrial uses, e.g., manufacture of fire-proof cloth, rope, paper, millboard, sheeting, plant insulators, lubricants etc.

Gypsum.—Deposits of gypsum are associated with a number of geological formations. Large deposits occur in the cretaceous beds of Trichinopoly, Tertiary clays of Cutch and in the lacustrine deposits of Jodhpur and Bikaner. Millions of tons of gypsum are laid bare in the Uri district of Kashmir. The annual production is about 80,000 tons, *most of which is used in the manufacture of cement and fertilizers.*

Steatite.—Also known as soapstone and potstone, Steatite is of wide occurrence in India. Workable deposits occur in Bihar, Salem, Jaipur and Jubbulpore. The annual production is about 16,000 tons. The various uses are in soap-making, paper industry, as a special refractory resistant to corrosive slags and in the manufacture of jets for gas burners.

Barytes.—Of the annual production of 22,000 tons, the major part comes from the Cudappah and Kurnool districts. Other commercial deposits occur near Alwar State, Salem and Sleemnabad (Jubbulpore Dist.). *It is used as a pigment, and in paper and textile manufacture.*

Refractories.—(a) SILICA, for the manufacture of refractory bricks is obtained from the Singhbhum district of Bihar.

(b) *Fire-Clay.*—occurs near Rajmahal Hills and near Kolar. It also occurs *as underclays in the Gondwanas and is mined at Barakar.* Other large deposits occur in the Central Provinces and Bengal and Jodhpur State.

(c) *Sillimanite and Kyanite.*—Kyanite in large deposits occurs in Singhbhum; Sillimanite occur largely in Rewa State and

Khasi plateau of Assam Some sillimanite sand also comes from Travancore

(d) *Graphite* —Though commonly disseminated in many veins in Peninsular India, graphite does not reach any workable dimensions Low grade graphite has been worked in Rajputana Travancore used to produce some graphite, but the mining operations were stopped owing to prohibitive depths

(e) *Zircon* —The chief source of this mineral is the monazite sand of Travancore

Salt —Salt in India is obtained by the evaporation of sea-water in some coastal towns Other sources are the dried up lakes of Rajputana Large deposits of rock salt in the Salt Range have passed off to Pakistan after the partition of India

Phosphatic Deposits, are useful as artificial fertilizers especially in an agricultural country like India Unfortunately, our reserves in these deposits are not large Good deposits of phosphates of lime are associated with the Cretaceous Beds of Trichinopoly where the reserves are estimated at 8 million tons More deposits occur near Mussoorie Massive apapite occurs near Hazaribagh and in the schistoses of Bombay and Madras Deposits of the order of a quarter million tons occur at Singhbhum

Lime Stone —Enormous masses of limestone occur in various geological formations in the Punjab Central Provinces, Rajputana, Central India and Assam Limestone is mostly mined by quarrying

Building Stones

(a) *Granites* in wide range of colours and appearance are mined from Charnockites of Madras the Arcot Gneiss and the Bangalore gneiss The archean gneisses are ideal building-stones and occur in inexhaustible reserves

(b) *Limestones* —Suitable limestones for building purposes come from Cudappah, Bijawar and Aravalli

(c) *Marbles* —The principal source of marbles in India is the Aravalli series of Rajputana Marble quarries are worked at Mekrana (Jodhpur), Kharwa (Ajmer) Manodla and Bhainslana (Jaipur), Dadikar (Alwar), and Jubbulpore

(d) *The Vindhyan Sandstones* are widely quarried for building purposes and are admirably suited for the same

Among other building stones are the Gondwana sandstones, the quartzites, Laterite, Slates and Deccan Traps

Precious Stones—Upto the 18th century, India enjoyed the fame of being a major producer of precious and semi precious stones The production has now fallen very low Diamond is obtained chiefly from Panna and Golkunda (Dn)

India is poor in rubies Saphires are chiefly obtained from the Padar District of Kashmir

Beryl (Acquamarine) suitable for use as gems is obtained from the mica pegmatite veins in Hazaribagh and Nellore and also from Coimbatore and Kishengarh districts A new and productive locality has been discovered in the Shingar valley of Kashmir Chrysoberyl is obtained from Kishengarh in Rajputana Gem garnets are derived from Purana mica schist and are worked at Jaipur, Delhi and Kishengarh Gem agate is chiefly supplied from Ratanpur in the Rajpipla State Rose quartz and amethyst are found in Chindwara and Jabalpur districts of Central Provinces respectively

Atomic Minerals—These are minerals of Uranium and other radioactive elements The only deposits of any workable dimensions in India are those of Gaya, Uraninite (Pitchblende) occurs in nodular aggregates, segregated in patches in a pegmatite vein Other associated uranium minerals are Uraniumochre and torbernite This mineral contains a small proportion of radium which adds to its value and utility *A mineral, Samarskite—complex niobate and tantalate—is found* in the mica pegmatite of Nellore

MONOGRAPH

SHRI A P PANDE

[Shri A P Pande Advocate, Allahabad has been a class fellow of Khannaji He has been very intimate He has lived with Khannaji in the same Boarding House He has had the oppor tunity of watching the young Khanna budding into manhood The various qualities then pre sent in the young man have developed with age and have stood in good stead for the man in later life The article dealing with the college life of Khannaji is very informing and provides us a clue into the greatness of the man]

It is always a pleasant exercise of one's power of recollection to re call the pleasant events of one s career at school and college This means *an intellectual enjoyment of those events over again resulting in great* mental relaxation To reassess the characteristics and general merits of one s contemporaries at the University at a later stage of one s life offers an intellectual treat In recalling those events, about four decades after, I find myself transported to those days in the year 1909 and 1910 when I passed my days in the company of Shri Hira Lal Khanna and Shri Narendra Deva now known as Acharya Narendra Deva—the great socialist Leader—living in the same block of the Hindu Boarding House on the first floor and almost in sister rooms Shri Hira Lal Khanna was my contemporary at the Muir Central College—The Muir Central College of those days was entirely different from what it has been reducted to now as a result of drastic changes. Narendra Deva was our senior by a few years But Hira Lal Khanna—popularly known as Khanna was very intimate with Narendra Deva—indeed they lived in the same room mostly and used to lie down on the floor as a matter of *principal If my memory—I have never been* proud of my memory—*does*

not forsake me the two had taken a vow that they would not use bed Khanna was also very intimate with another common friend of ours but *his name I am unable to recall at this distance of time*

This I am thinking of the time when I was in B Sc and Khanna was in B A Khanna was looked upon among his contemporaries as a synonymn for inflexible principles Once he decided upon a certain principle which would regulate his affairs, he never departed from the same I remember distinctly that Khanna along with Narendra Deva decided to carry on their correspondence in Hindi and they did so *They further asked me as well to write the address on post cards and* envelopes in Hindi at *least* so that the facts and figures of correspondence in Hindi might multiply This happened at a time when supporters of Hindi were not more numerous than one s fingers This is the important feature to note

There appeared an epoch making article in the Modern Review—I am unable to recall the particular number—edited by Shri Rama Nand Chatterji, under the caption of social conquest by *Shri Lala Hardyal* Mathur To the best of my recollection Shri Mathur was in Germany those days The article was read and reread by Khanna and Narendra Deva and Khanna pursuaded me to read the article It was a clarion call to Indians and Hindus especially to assess the situation and rise against the slow imperceptible gradual but steady conquest of their social habits intellectual faculties social institutions *modes of living, matrimonial homes following in the wake of political* conquest This slow and unconscious conquest was tending towards the annihilation of the nation I remember the degree of impression created by the said article upon Khanna and Narendra Deva For aught I know Khanna chose for himself the educational career as a result of the influence of the said article He decided to take to education in order to fight out the forces that were calculated to work at the annihilation of all those characteristics which make up the Indian Nation This is my impression He may not agree To the best of my recollection Khanna and Narendra Deva used to read books on general politics and literature together even in those parts of the day when most of us used to be on the playgrounds and politics had not permeated

Colleges and Schools. The extensive and intensive study carried in his College days must, I am sure, have stood him in good stead when he took to education

Khanna was known for the courage of his convictions This characteristic of his was reflected in every phase of his life By way of illustration, when we were dazzled either by hats or felt caps as our head dress, Khanna decided to put on the turban and he stuck to it, in season and out of season Howsoever oppressive the heat may be on account of the ferocious sun, howsoever copious the perspiration, Khanna's turban must be on his head if he goes out and leaves his room. The law of nature could never subdue him, he always had had the better of the vagaries of the weather To his head-dress Khanna had been sticking on. Whenever Khanna called on me here at Allahabad I found his pugree on his head I was the recipient of his election notes whenever he sought election to the Court of the University I was always reminded of Khanna as Pugreewala. I need not say that I always cast my vote for him not in discharge of intimate relations with him but in discharge of the duty which I owed to the Court by voting for the best man.

Khanna and myself are poles apart in our vocations Khanna's work has been formative and educative. I have not met him for the last few years, but I am sure he must be full of energy, hale and hearty. His mode of habits and life have been an unbroken continuous preservation of energy. He is retiring not because he is physically and mentally unfit but because of the artificial superannuation age rule As I have said he always defied the law of nature and, therefore, he has been defying the arrival of old age.

The only common element in our professions has been that both of us have been using our tongue—Khanna used his tongue before the audience of his students while I have been using my tongue before judges and jurors I wish Khanna a happy, prosperous and cheerful enjoyment of the well earned rest on his retirement

THE PHILOSOPHY OF MAHATMA GANDHI

Dr G N Dhawan Lucknow University

[Dr G N Dhawan has been on the staff of the B N S D College and as such is very intimately connected with Khannaji He is an authority on the Philosophy of Mahatma Gandhi because it has been the subject for his thesis]

Gandhiji was not only one of the greatest revolutionary leaders of all times who enabled his country to win her freedom he was also the apostle of non violence in the modern world and as such had a philosophy of life

parcel of his life process of realizing truth He read not for the sake of reading but because he expected from books light on the way of solving the problems of life If he accepted a theory or a point of view he took little time in moulding his life according to it The story of how Ruskin's "Unto this Last' and Tolstoy's 'The Kingdom of God is within You" had transforming effect on him is too well known to need any repetition

Just as he read only that which would help in living better so he taught by the spoken and written word only that which he had actually lived This uncommon characteristic the steadfast pursuit of truth as he knew it raises his philosophy to the level of the teachings of the great prophets of the world

The term "Sarvodaya is often used to indicate the quintescence of his message He himself used this term in the sense of the "the greatest good of all Gandhiji's philosophy of Sarvodaya may be characterised as the philosophy of integral man The philosophy takes into account all aspects of human life in their organic inter relatedness even as Gandhiji worked for the regeneration of the totality of life around him —religious social political and economic individual and collective He rejected the distinction between religions and worldly Religion he identified not with any particular creed much less with narrow beliefs of the superstitious and the unthinking but with belief in the ordered government of universe, with the moral law of universe, truth being the substance of this law Religion instead of being an isolated cloistered affair should be in close contact with life should prove itself here and now in every little bit of life's affairs Conversely any, aspect of life, bereft of business or politics, when bereft of religion is a trap to kill the soul Thus Gandhiji's religious i e metaphysical and ethical ideas form the foundation of the social, economic and political aspects of his philosophy the latter are an inference from his basic convictions

The core of his religious ideas is the belief in the ultimacy of spirit or 'satya' Satya etymologically means "that which is" Gandhiji identifies it with God, soul force, moral law etc This ultimate reality can be apprehended, Gandhiji held like many other thinkers of the world

through intuition in the sense of synoptic vision or the activity of the entire mind, and not through unaided reason or sense perception. All the same reason has its place in the economy of life in that it enables one to scrutinise the validity of intuitions.

The *ultimate object of man's life is realization of Satya*, that is self-realization. The greatest truth being unity of all life, self-realization consists in striving after the greatest good of all. This can be achieved only through non-violence, that is through loving and serving all. Non-violence implies negatively avoidance of intentional injury to others and positively the service of all. Non-violence alone is the way to realisation because violence is basically denial of the truth of the spiritual unity. The use of the non-violent means requires the cultivation of other allied values: control over senses, fearlessness, weakening of acquisitive and power impulses, developing an equalitarian sense of proportion in regard to all religions, peoples etc. and Swadeshi. Swadeshi may be defined as attending to duties immediate in matter of time and space as against the remote ones. In his effort to realise the goal of life man is subject to the twin laws of Karma and rebirth. Together they mean that there is implicit in life a law of moral causation and continuity *and that death does not put an end to opportunities of growth*. Karma does not mean determinism, though it means regulation of the range for the free will, evil being the result of the abuse of free-will. Like many other thinkers of the West, Gandhiji was a believer in futurism and inevitability of progress, the reason being the conviction that man is above all soul, and has immense possibilities of growth.

The philosophy of sarvodaya does not ignore collective life though it lays greater stress on the individual. The reason is that the individual is above all the soul and the basic unit, the society being the derivative.

The regeneration of the individual also implies the solution of the social problem but this integral individualism is altogether free from the hedonistic bias. For the greatest happiness of the greater number it substitutes the greatest good of all. For the regeneration of collective life the requirements are minimising of violence and exploitation through the technique of non-violence and achievement of a co-operative decentralised social order.

In this non violent social order every occupation is equally dignified when the motive of social service is substituted for the profit motive occupations are related to the potentialities of the individual people earn their living through physical labour intellectual labour being merely for the service of others and people are animated by the ethics of non possession that is they try to shed whatever they do not require for the immediate present This social system rules out love of power personal ambitions economic equality senseless multiplication of material goods wages slavery etc

An equitable economic order is inconsistent with centralised production and complicated machinery centralization of economic as well as political life means concentration of power and diminution of opportunities of self government It also leads to depersonalization and insensibility to moral considerations and improves the capacity of the people to resist injustice Gandhiji was not against scientific and technological researches and machines but machines should be tools and not masters The right type of machines are those which lighten the burden of the people, do not displace the necessary human labour and are consistent with the economic self sufficiency of small areas Similarly scientific and technological research should be utilised not for mass production but for the autonomy of rural co operative groups Thus agriculture and cottage industries and not centralized production can be the economic basis of a non violent social order

In politics non violence stands for statelessness The state is compulsive and exploitive in nature In its long history it has never befriended the poor In compelling the individual it restricts the scope of moral action and is thus destructive of individualty It was born of violence, it lives by violence and it can never be weaned away from violence With the state has always gone the class system To achieve classlessness and statelessness we have to evolve internal and non coercive external sanctions as adequate means of reconciling individual freedom and social cohesion The stateless democracy will be the state of enlightened anarchy consisting of self sufficient non violent village communities co-operating on a voluntary basis In these communities social life will have so developed as to be self regulated

The internal and non-coercive external sanctions have on the evidence of history and anthropology often been adequate to maintain social life. The instances of these sanctions are being ashamed of sense of guilt, force of habit, suggestion, pressure of public opinion, fear of reciprocal religion, social valuation etc. In ancient times the Jewish community was held together by non-coercive sanctions Another instance is Pennsylvania during the first seventy years after its foundation. According to some anthropologists many primitive tribes lack political forms necessary for group action. The way to advance towards the social ideal is negatively the use of non-violent resistance to fight injustice and positively constructive non-violence that is building upon a voluntary co-operative basis a regenerate society. Both these demand from the average individual cultivation of non-violence as the way of life.

Statelessness is an ideal and it is of the very essence of the ideals to remain unrealizable in their entirety. The state, therefore, may not be completely eliminated but the less of it is there the more there will be of democracy. For the basic implication of democracy is belief in the infinite worth of all individuals. This is also the core of non-violence. The minimising of the state demands that the state should reduce its functions transferring them to voluntary associations and meeting foreign aggression and internal disturbances as far as possible non-violently The progress of a society towards minimising the state will depend on the quality of non-violence evolved by the average man. The pace of progress must not be forced because it cannot be forced.

Lack of space forbids even the briefest discussion of the practibility of the non-violent way but it is the only way out of the impending atomic doom.

ECONOMIC CONDITIONS IN INDEPENDENT INDIA

PROF KRISHNA KUMAR,

Head of the Commerce department, Meerut College

[Prof Krishna Kumar, Head of the Commerce Dept., Meerut College, has been an old student of Khannaji He is an erudite scholar of Economics and is a writer of repute on this subject. His article on 'Economic Conditions in Independent India' deals with the burning topic of the day, and shall be read with advantage and interest.

India has achieved independence, but the economic condition of the masses has not improved. The greatest need of the day is the reorganisation of Indian economy so as to bring freedom from want within the reach of the people of the country. The real objective of independence cannot be said to be fulfilled till an effective improvement takes place in the living standards of the people of the country.

Political emancipation from foreign yoke was necessary to enable us to improve our economic condition and to help us utilise our natural resources for our benefit in consonance with the needs of justice and fair play. A long period of foreign domination and colonialism under which our economic resources were exploited and drained away not for the benefit of the masses of our country but for the benefit of the ruling power has ended, and with the termination of foreign domination, we are the masters and architects of our own economic destiny.

The achievement of independence has, however, been accompanied by serious difficulties, which must be solved before any economic improvement is possible. One of the greatest handicaps is the strain of a

long and costly War and its after effects, which put almost an unbearable strain on our unbalanced economy. Independence was accompanied by partition of the country, which brought in its wake the uprooting of millions of people in the country and created unprecedented and unparalleled problems for the solution of which all the resources of the country have had to be applied, which should ordinarily have been applied as an improvement in the economy of our country.

Besides these, the economic legacy left by the British of inadequate production, depressed cottage industries and undeveloped large scale industry and transport has to be set right in order to improve the living standards of the masses. High war-time taxation, food shortage due to neglected agriculture, inflationary tendencies caused by defective and faulty methods of war finance, and mass illiteracy inherited from the past are some of the main problems to be tackled in our country.

Military expenditure which has always been high in our country absorbs about 50 per cent. of the revenues of the country. In view of the international situation and the strained Indo-Pakistan relations and the Kashmir tangle as well as the helplessness of the U. N. O. in solving satisfactorily international disputes, so far, our country cannot afford to take risks in respect of reducing the military expenditure.

These are the handicaps in our way in improving our economy. Improved living standards require increased production and improved distribution. That means that we must have before us economic targets to be achieved within a set period of time. Such economic targets have already been laid down in the Bombay Plan and the economic ills of the country have received a masterly analysis in the Reports of the National Planning Committee.

At the present time, the country lacks facilities for capital formation. Hence investment mentality is lacking and capital is not available for industry at reasonable rates *The Statement on Industrial* Policy issued by the Government in April, 1948 was mainly directed to create confidence in the business community. The reduction in taxation, the liberalisation of depreciation allowance, the removal of the limit on dividends, and the abolition of the capital gains and business profits taxes are, inter alia, measures taken by the Government to

induce investment and private enterprise and to create confidence in the business community so that production may increase A wide measure of tenancy reforms and zemindari abolition schemes ought to go long way to augment agricultural production in course of time

The setting up of the Indian Fiscal Commission, the Planning Commission and of a statistical organisation at the centre, are all efforts, indicating that the Government are making serious efforts at improving economic conditions in the country

The over-all Planning Commission should be a statutory body to take decisions and to give effect to them The statistical bureau is to provide accurate statistical information in order to make the economic plan successful. A tax investigation commission should also be appointed to examine the tax structure of the country and to judge the incidence of taxation in relation to production

Government expenditure both at the Centre and in the states should be curtailed within limits For this purpose, there should be a Ministry of Economic Affairs at the Centre and in the Federal Units with a top ranking Minister in charge to keep the expenditure within limits. The efforts at getting more and more funds for every department must be put under strict check to keep expenditure under control to prevent inflationary trends.

The system of budgeting should be thoroughly overhauled, In a planned system of economy, the annual budget system should have no place. That unspent grant should lapse in March makes economy in expenditure by Government almost an impossibility at times, with the result that the desire to spend the allotted amount in time to establish a claim for the ensuing year leads to great waste The five-year budget system should be adopted, which will avoid the defect mentioned above, and which will, at the same time, ensure finance to an adequate extent under a planned system of economy.

A rigid system of control is operating in the country. A controlled economic system may be necessary under certain conditions. It will be necessary under a system of planned economy There is no planning today in the real sense and the machinery of controls itself appears to be throughly imperfect and inefficient.

In many cases, controls should disappear forthwith. Even in the case of foodgrains, experiments at gradual decontrol must be tried. There does not appear to be any serious shortage of food at rationing standards. Controls may be retained in big towns in the case of food grains but elsewhere they should be withdrawn. Only controls over house rents should continue.

Housing in towns for middle class people seems to be another big economic problem which requires as great an attention as the food problem, if not more. The conditions in which middle class people and the masses live in towns are simply abominable. Neither the Government nor the local authorities seem to realise their responsibility in the matter. Bad housing is slowly but steadily undermining the health and vitality of the people. There should be town development trusts in towns with a population of more than 1½ lakh of people. Government should expedite land acquisition for housing in urban areas and grant loans for house construction for development associations. Instances of supreme government or official supineness are not wanting where land acquisition procedure has taken several years and still acquisition is not in sight. This red tapism seems to have become a part of office machinery and serious efforts must be made to introduce reforms in this connection.

There has been a serious strain on our economy in the post war years as is evident from the dwindling amount of our hard-earned sterling balances. Not only their dissipation must be safeguarded but their sealing down must be prevented and their proper utilisation ensured. They should be pledged with the *Bank for Reconstruction and Development* to obtain capital goods for the country.

The above are some of the main economic problems before the country today. Upon their proper solution will depend increased production and improved distribution. Co-ordinated efforts must be made to solve them. Independence for the masses will be real only when they get freedom from want and when their living standards rise to levels consistent with their dignity as human beings.

PRINCIPAL HIRA LAL KHANNA

SHRI S DUTT

Professor of Chemistry, Delhi University.

Shri S Dutt Professor of Chemistry Delhi University is an educationist of repute He has had long associations with Khannaji His warm tribute and keen appreciation of the illustrious man shall be read with attention and delight

My acquaintence with Principal Hira Lal Khanna of Kanpur dates from the year 1926, in which year I joined the Allahabad University as Reader in Chemistry Principal Khanna was a member of the Academic Council and the Court of the University and in that capacity he used to visit the University atleast twice a year, apart from his other engagements in the city from time to time The charm and magnetism of his lovable personality made friends wherever he went and I remember to have developed an affectionate regard for him like an elder brother from the time of my first acquaintence with him Since then I have seen him times without number with the same genial smile and warmth of affection as ready to give kindly help and advice as before Time and tide of life have brought silver hairs on the head of Principal Khanna but other wise the years have scarcely touched him he looks just the same dear old Khanna Sahib as I used to know quarter of century ago

Principal Khanna who has devoted his whole life to the cause of education, is almost an institution by himself, for what with his erudition and scholarship, the versatility of his knowledge and culture, his kindly sympthetic understanding of the cause of the students, his charming personality and his wholehearted devotion to duty, he has been one of the most outstanding figures in the field of education in our country, particularly in the United Provinces. He is now retiring from the strenuous and exacting duty of the Principal of one of the biggest colleges in Kanpur where he has been familiar figure for nearly three decades. In his well-earned rest we offer him our most affectionate and respectful regards and the very best of wishes for his health and happiness.

NEED OF COMMERCIAL EDUCATION

SHRI K. L. GOVIL,
Allahabad University

Here is a vigorous plea for commercial education in our country. Commercial education hand in glove with scientific research conducted in our Universities and research institutes will deliver the goods for us, as nothing else can. It is impossible to nationalise and broad base our industry and commerce without a trained personnel. In the present conditon we cannot dispense with our able and experienced industrialist. The common man should know quite a great deal about economic and commercial problems in order to be able to increase his standard of life.

The writer Prof. K. L. Govil, M.A., is Reader in Commerce Department, Alla
and commercial problems in order to be able to increase his standard of life.

India is in renaissance. One can discern its tendency everywhere in politics, economics, education, social organization and religious concepts. The western institutions are grafted or superimposed on the indigenous system in all spheres of life. There is no evolution or spontaneous growth of the indigenous forms. I believe Mahatma Gandhi, by his example and precepts, offered us the best synthesis of the East and the West, the Old and the New.

This country has vast and varied resources. She is essentially one of the greatest agricultural and industrial regions of the world. She has almost a world monopoly in jute manufactures. She is the world's leading producer of tea and tobacco, and the second largest producer of cotton. She has the largest cattle population in the world and is the biggest producer of raw as well as tanned hides and skins. India's forests are a store—house of almost inexhaustible raw materials. She is very rich in iron ores and some other minerals, like manganese and mica.

As regards the human factor even after partition our population is estimated to be about 32 crores. If properly trained and utilized they can work wonders. They are no less capable and intelligent than any people in the world. Our businessmen are as cunning and clever as those of the advanced countries. They are no less enterprising too. Our scientists are also giving a good account of themselves and if proper

facilities for research work are provided, we are sure our universities and and other institutions can turn out really capable men It is our firm belief that if at present India lacks in any thing particularly, it is in regard to the trained personnel for managing large scale enterprises. Howsoever we may accuse Tata, Birla and others of exploitation, their services to the country are simply praiseworthy Unless we broadbase this class, company management will be restricted only to a few families

How to achieve this end? At present our best students compete for government posts Only a few of them succeed, the rest lead disgruntled lives Every effort must be made, by propaganda and otherwise to divert the intellect of the country to industry, trade and agriculture The status of a government official is supposed to be higher than that of an industrialist, businessman, or farmer in the social hierarchy This outlook should change We hope it will change under the new dispensation *Brains are cheap for any price in industry*

While we do not minimise the importance of a sound general education for all, we believe that for purposes of industrialization of the country the best form of education will be scientific cum commercial So far scientific education has received the attention of our youngmen Not because they are interested in the industrialization of the land but because they could get jobs in government departments through competitive examinations But the fact is that in the modern world even inventions are useful to society only when they are converted into commercial propositions The magic wand of the entrepreneur turns sand into gold That is why the principle of limited liability has been characterised as one of the most important inventions of the last hundred and fifty years—the other being the steam engine Modern industry is dependent on the joint stock principle

Some of our business magnates think that there is no need for vocational training in schools or colleges for commercial life, and that the proper way to learn business is to do so by entering business and starting at the bottom They hold that a scholastic education beyond the elementary course makes a man unfit for participation in industrial wealth, and in support of their contention they cite the examples of

self-made men—men of limited education or none at all An analysis of these examples will show that these self-made men, who are an exception rather than the rule, have succeeded not because of their lack of scholarship, but because they made up for that lack by self-education—a course which developed not only their practical qualities, but trained their power of observation, judgement, imagination and reasoning Some of these self-made men possessed that genius for business which could over-come all obstacles Others of that class might have done better with school education Here it will not be out of place to quote an extract from the address of Lord Linlithgow on the subject of "The University Graduates in Commerce and Industry" at the fourth Congress of the Universities of the Empire, 1931.

"I deal then with the average boy, and it appears to me that the problem may usually be stated in this fashion. If he goes to a University, will he gain more in terms of general intellectual equipment, in outlook, poise and power of leadership than he may loose in seniority in his business, or by some postponement of the time of his learning the technique of his profession? In a majority of cases I am inclined to think that the appropriate answer to the question is that the youngman will seem in the earlier stages of his business career, to have forfeited something of professional advantage by the fact of his having taken a University course, for he will join his firm two or three years older than those of his fellows who have passed direct from school to their professional career, but that this handicap—assuming the man means business and has in him the roots of the matter—is eliminated by about the age of thirty and that by the middle thirties and onwards to the peak of the earning life, the University experience should prove an important, and in many cases a decisive, advantage. When the man enters that period of his career in which he is called upon to exercise independent judgment, reliance upon his own opinions and executive power and leadership, he should, if his reactions to the complex of University life have been normal, prove himself a better man by reason of such experience.

Nowadays the role of the state in the economic field is ever increasing. The country is faced with so many problems that their solution baffles even the best brains. The situation is complicated by conflicting

ideologies Take for example, the question of Devaluation of currencies or of inflation Their effects are far reaching Every educated man ought to possess some knowledge of the basic principles of economics to understand them We should be able to decide whether controls are desirable and necessary in the best interests of the people Should we participate in the International economic organizations, and if we do what should be our attitude as regards tariffs or currency valuations, etc Should we employ foreign capital, and if so, on what terms and conditions? The world is divided into two or three blocks not only politically but economically as well We must be able to judge what suits our interests best To raise the standard of living of the common man it is necessary that we devote more and more attention to commercial and economic subjects

It is a happy augury that of late our graduates are in request in Indian business houses and industrial concerns The old opinion of them as demanding more pay with less work is dying out It is up to us to train the young men in commercial and economic subjects thoroughly They should be taught company accounts, company administration and management, cost control, trade, tariffs and transport and numerous other allied subjects They should have a thorough grounding before they are called upon to assume any responsible duties of practical nature in business At the same time we expect that our industrialists will treat these youngmen as social capital deserving of their sympathy and encouragement With a little practical training these men can be very useful in every economic field In fact they are the future captains of industry All talks of nationalisation of industry is simply meaningless and absurd until we broad base higher type of commercial and economic education The Government has become conscious of the need of scientifically trained men, and our Prime Minister has announced the establishment of several Scientific Institutes But we appeal to him that he should organize one or two Schools of Business Administration on the American lines that can supply an army of trained personnel It may then be possible to bring about a welfare state

REMINESCENCES

SHRI D N SHARMA, M A , LL B , Vice -Principal Govt College Ajmer

Shri D N Sharma Vice Principal, Govt College Ajmer has been an old pupil of Khannaji How devotedly he speaks of his guru shall be read with interest in the following article

I deem it a privilege to be asked to write a note on my reminescences of Principal Hiralal Khanna More than three decades have passed since I first saw him at St John's College, Agra I was rather impressed then by his simple, yet dignified appearance There was something indescribable in his personality which drew us towards him, so much so, that when he left Agra to join the post of the Vice-Principal, D A V College, Kanpur, many of us persuaded ourselves to join his new College

Kanpur provided an intimate insight into Khannaji's personality An efficient teacher, a great disciplinarian, simple of habits, yet stern of temperament Khannaji was the main-stay of the students in need of help He actually secured me a tuition of Shri Shiva Narain Tandon who has grown so high in popular esteem and with whom I have since claimed a warm friendship But it was not a student or two Khannaji has helped like this

With an impressive exterior, a dignified twist in his white turban—a symbol of 'plain living and high thinking'—the quite essence of anci-

ent Indian culture hating bigotry and intolerance whether it be in Arya Samaj or in Sanatan Dharma he exemplified in his life the fundamentals of rational Hinduism

Khannaji left the D A V College to become Principal of the B N S D Intermediate College which owes its present prestige mainly to the devoted service of Khannaji Such was the intensity of his love for this institution that he endeavoured to exploit all his resources to strengthen the institution of his adoption I once asked him to visit Ajmer He said " If you promise me a handsome donation for my college, I would do it gladly Those were the days of economic depression and I could not promise and Khannaji did not visit Ajmer

So sharp is his intellect that for a short time he applied it partially to acquisitive ends and he built up a very good business The death of his beloved wife, however, tried him sorely and he put his life to such a rigorous discipline that is indeed a rare phenomenon these days I remember what a force he was once in the politics of the Agra University and the Allahabad Board His name was invariably at the top of the successful candidates returned by the constituency of the registered graduates But eventually he got tired of the hypocrisy of the party politics and gave them a good bye

I cannot conclude without mentioning one incident which at once places Khannaji as an ideal teacher having a very strong hold on his students and a man of strong convictions and determination During the non-co-operation movement of 1920—21, when most of the college-students, drunk deep with the intoxicating idealism of Mahatma Gandhi were impatient to leave the college and when the Christ Church College, a sister institution had already gone on strike there were two personalities—Lala Diwan Chand and Khannaji, whose cool reason enabled us to maintain our contact with the ground A nationalist to the core and following in the footsteps of Malviyaji he was against students leaving the colleges *en masse* Such was the magnetic influence of their personalities that the D A V Collegians were not prepared to leave their studies without their blessings The Congress invited leaders of the eminence of Pt Jawahar Lal Nehru Shri Purushottam Das Tandon Shri Kapil Deo Malviya and others to tear away the bulk of College

Students from the hypnotising effect of these two intellectual leaders of the D A V College students Undaunted Shri Khannaji and Lala Diwan Chand marched with their students to the meeting and gave a battle royal to Pt Nehru and Shri Tandonji In spite of the magic halo which surrounds our illustrious leaders and their arguments most of us felt that our educationist leaders were on the whole leading us in the right direction

Cool and collected as grim in appearance as in determination, yet holding underneath a kindly disposition and a sensitive heart, Khannaji virtually embodies all that is noble in a teacher and a patriot May he be spared long to serve the cause of education in this country!

THE BLESSING OF LOVE

SHRI RAJENDRA BEHARI LAL

Shri Rajendra Behari Lal carries love of literature with his official duties as Divisional Superintendent, East Indian Railway. He regards love as the foundation of all family life and true friendship. He points out the obvious fact that the structure of social life is largely based on love. Love plays a great part in many other spheres of life. According to him Love should not be treated as a mere empty sentiment but should be translated into action, into words and deeds of kindness. The key to happiness is to love others and to be loved by them. Psychologists say that interest is the biggest aid to concentration, memory and imagination. In this way the author proves that love is the best way of mobilising the vast hidden resources of the sub-conscious mind.

Literature is full of great examples of love. The Ramayana depicts ideal love between husband and wife, father and son, between brothers, between master and servant, between a king and his subjects. Love is the foundation of all family life and true friendship. It is obvious that the structure of social life is largely based on love. Not so obvious, perhaps, is the great part that love plays in many other spheres of human life.

An ancient Indian Rishi has enjoined that

> With everything, whether it is above or below, remote or near, visible or invisible, thou shalt preserve a relation of unlimited love without any animosity or without a desire to kill. To live in such a consciousness while standing or walking, sitting or lying down till you are asleep, is Brahma Vihara, or in other words is living, moving and having your joy in the spirit of Brahma.

> He prayeth well who loveth well
> Both man and bird and beast
> All things both great and small.
> For the dear God who loveth us,
> He made and loveth all.

Are you in search of happiness? Who is not? Then the best and perhaps the only way to true and lasting happiness is to give happiness to others, and this is only possible if you love the people with whom you live and work. Love, however, should not be treated as a mere empty sentiment, but should be translated into action into words and deeds of kindness. Are you prone to frowns and grumbling, nagging and fault finding, bossing over people, contradicting them and trying to make them do things your own way? If so, replace frowns with smiles and fits of temper with words of kindness, encouragement and praise. Employ a soft, kindly tone for a harsh, sharp or frictional tone of speaking may hurt as much as the words used. Learn to see goodness, usefulness and beauty in others, love them as yourself. Put yourself in their position and try to feel about things as they do. This will give you a new vision whereby the faults and follies of men will be seen by you in a truer light. There are many little acts of courtesy and kindness which will help to lighten other peoples' burdens and illumine the gloom of their lives with a little cheer and happiness. Do not reserve your smiles, kind words and deeds, colour and charm for special occasions or for strangers only, but distribute them freely to your friends, to your family, to the poor and sorrowful, to the joyous and prosperous, and to every one you meet.

Love is twice blest; it blesses him that loves and him that is loved. Love is a fountain of joy and there is no happiness like that of being loved by others. The key to happiness is to love others and to be loved by them. Love will bring sunshine and hope even in those lives which are darkened by poverty, sorrow or suffering. "Thou shalt gain by giving away", says the Upanishad, so even if you have not much of material wealth to be given away, give lavishly of kind thoughts, sweet smiles, words of appreciation, sympathy and encouragement. Scatter flowers of love as you go along the road of life, and abiding happiness cannot fail to be yours.

Psychologists say that interest is the biggest aid to concentration, memory and imagination. It is also the best way of mobilising the vast hidden resources of the sub-conscious mind. But what is interest? Nothing but love of a topic or branch of study. If you love Mathematics, if you take a keen interest in it, your mind will concentrate naturally and without much effort on Mathematical problems. The concentration, created and sustained by love, will mean that all the powers of your mind will be brought to bear, in a unified form, upon the subject of study and will illumine it as nothing else could and will bring to light details and aspects of it which would have otherwise remained unnoticed. Intense love of a subject is the secret not only of memory but also of originality. Psychology has not yet been able to discover all the conditions which are necessary and sufficient for the creation of new ideas but this much is definitely known that deep interest in a problem stimulates originality, for it enables a man to keep the problem revolving in his head whereby it is soon driven into his subconscious mind, where it lies dormant for some time, until one day, perhaps all of a sudden, a new idea, the much wanted solution, emerges into the working mind like a flash. *Therefore, to the student or brain worker, who is desirous of mastering his studies or solving his problems, the advice is:* love your studies or problems intensely, take deep interest in them, give them plenty of thought. Love, in the form commonly known as interest, is undoubtedly one of the secrets of mental efficiency.

Are you aspiring for success and advancement in your vocation? If so you must love your job, you must love the place where you work,

you must love your fellow workers and also those placed above and below you in the organisation Instead of always complaining against your station, concentrate your thoughts on its good points and look upon it as an optimist If your work is hard and troublesome then too you must like it, for love will not only take the drudgery out of it and transform it into a joy, but will also pave the way to your getting a more congenial job, for when you love your work you are likely to do it better and, therefore, likely to get promoted sooner than if you did not take an interest in your work Difficulties should be looked upon as opportunities for they toughen your fibre and call forth your hidden reserves of power, therefore, the more difficult your job, the more magnificent the opportunity for developing your manhood or womanhood Perhaps your function is to enforce discipline in an organisation and get work out of large numbers of people If so, the best way, again, is through love, for as an old poet has sung, "It is better far to rule by love than fear Loyalty and discipline based on love will increase your powers and output manifold On the contrary, unpleasant relations with fellow workers, friction in your organisation, will wear down the human machine faster than actual hard work Tact, which avoids giving pain to others, keeps the machinery well oiled but love is the electricity which can actually drive the machinery for you There is no force so potent as love for generating enthusiasm and harnessing the energies of men

The principle of love is of universal application Among heavenly bodies it manifests itself as gravitation, which makes them attract one another and helps them to continue their celestial movements

Poets have sung of love at first sight But both psychology and every day life tell us of another kind of love which does not spring up at first sight, but develops in course of time, with difficulty and efforts While some objects naturally arouse our love, there are many others, for which our love has to be cultivated assiduously In fact most of the objects worthy of our love belong to the latter category, and it is just as well to know that things which are uninteresting and unattractive by themselves can be made pleasant and charming if we keep pegging away at them for sometime In life such acquired love is no less valuable than spontaneous love

Another important thing worth remembering about love is that to be of any practical use it must be focussed on selected objects. It cannot be that you will love everything in general and nothing in particular. If your love is to bear fruit, it should be concentrated on a few wisely chosen objects, whose pursuit will develop your faculties, give you pleasure and at the same time benefit mankind.

You may make the circle of your love as wide as you like, but at its centre there must be a few objects on which all the depth and intensity of your love will be gathered, whether they be the acquisition of knowledge or skill, pursuit of the fine arts or science, service of your country or deeds of philanthropy.

In short, from the moment a man wakes up in the morning until he goes to bed at night, the supreme secret of happiness, success and godliness is to love unceasingly—love the dawn that ushers in another day, love the family, the old parents and little children not excluded, love the work, love the fellow-workers, love the neighbours and friends, love the fresh air and love the sweet rest of the evening. There can be no higher religion than love as manifestations of God to the human beings who come in contact with you, the work you are required to do and the environment in which you are placed. There can be no higher duty than to love your countrymen—if not all humanity—and serve them with every ounce of your energy. Let us build a better and happier world by infusing more of love in our homes and schools, offices and factories and in every sphere of our work.

A MAN OF HEAD AND HEART

SHRI SANTI SWARUP AGARWAL Principal C I School and Ag College

Shri Shanti Swarup Agarwala Principal of C & I High School and Agricultural College has been a colleague of Khannaji on the U P S L A His remark Khannaji is a First Rank Educationist of the Province is amply borne out in the following article

I feel honoured in being given an opportunity to express my impressions about B Hira Lal Ji Khanna M Sc the retiring principal of the B N S D Inter College Kanpur I have had the privilege of being known to him for over ten years Khannaji is a First Rank Educationist of the Province and has been occupying an important place amongst the educationists of the country The said B N S D College is entirely the result of his nursing and feeding

Shri Hira Lalji Khanna is a man of head and heart He possesses an insight and foresight which can be found in only First Grade Men His qualities of heart have made him so dear and popular, equally to his youngers equals and elders His physique at even his present age of 61 is far better than that of many a youngmen fresh from the college He is a living personification of " Plain Living and High Thinking "

His smiling face, his attractive physique, his plain dress, his few physical wants, his mental capacity, his moral strength and character and his zeal for service and sacrifice for the cause of the young and future hopes of the country are the qualities which can be rarely found *in anyone teacher or Principal Had he taken to any commercial or* Industrial or political or spiritual career, I feel confident he must have easily distinguished his name far more than any commercial or industrial magnate and political or spiritual leader of the province

My humble good wishes and prayers for Active Peace in his life of retirement are my only humble offerings to this Great Life of Service and Sacrifice at the Altar of the Goddess of Education

ELECTRON MICROSCOPY IN RESEARCH AND INDUSTRY

Dr A Pande All India Radio Lucknow

Dr A Pandey had a brilliant career He has a fine record of research work in India and abroad in the working of the radio At present he is working as Assistant Station Engineer All India Radio Lucknow

In the following lines he describes the function and place of Electron Microscope It is a very powerful *tool for examining the sub* Microscopic world The author shows that the operations and maintenance of the Electro Microscope is a very specialised work and the preparation of suitable specimens has tackled the ingenuity and resourcefulness of a large number of research workers

The reason for using electron beams is to remove the limitation on the resolving power of the optical microscope. The resolving power of an optical instrument is the ability of the instrument to show detail. For a microscope resolving power may be defined as the smallest distance by which two points in an object may be separated and yet appear as two points in the image.

Mathematically expressed the resolving power is given as

$$d = \frac{.61\lambda}{N.A.}$$

where λ is the wavelength of the illumination and N.A. is the numerical aperture of the lens system.

Visible light consists of radiations of the order of 0.0004 to 0.0008 m.m. Hence details finer than this cannot be observed distinctly. Hence the resolving power of the optical microscope is limited not by the mechanical perfection but by the fact that light is used to examine the specimen. The useful magnification is about 1000 diameters. This limitation does not come in the electron microscope because it uses a beam of electrons which under certain circumstances behave as waves, the theoretical resolution being unlimited down to subatomic dimensions.

According to Dr. Broglie's theory every particle (electron) travelling with a velocity V has associated with it with a particular wave length λ.

Hence if an electron is accelerated through 150 volts, it has a wave length of 0.00000001 cms.

Such a small wave length gives a very high resolving power. Modern electron microscope are able to take pictures in which the resolution can be pushed down to 20×10^{8} cm and can take pictures of a string of molecules of dextran.

The beam of electrons is focussed by electrostatic or magnetic lenses in a manner similar to the focussing action of a glass lens. The electrons which irradiate the specimen and form the magnified image are scattered and stopped in an in fraction of an inch, so in order to allow the electrons to reach the specimen the entire instrument is highly evacuated to the pressure of 10^{-5} to 10^{-6} m.m. of mercury. The modern high power electron microscope made by the Radio Corporation of America is physically a vacum tube but optically a compound microscope. One

of the most important innovations in the design of this microscope is the introduction of radio frequency power supply which has enabled the stability of the high tension one in 50,000 volts The importance of this feature cannot be over emphasized as the fluctuations more than this are likely to introduce Chromatic aberrations leading to fussy electron micrograms and loss of detail

The operation and maintenance of the electron-microscope is a very specialised work and the preparation of suitable specimens has tackled the *ingenuity and resourcefulness of a large number of research* workers. It is essential that the specimen be very thin about 0 1 micron (one micron is 10^{-3}). The specimens are mounted on very thin collodion membrames and ultra thin sections of the specimens are prepared by high speed microtome. Also replica and staining techniques are employed in the case of metals and similar specimens.

Size, shape and density variations of specimens are easily determined with the electron microscope and with a little effort the atomic structre of the specimen can be studied The electron microscope has also facilities for taking diffraction pictures To use the electron microscope as a diffraction camera, the electron beam is allowed to strike the specimen but is not focussed to produce an image of the specimen Instead, the source of electron is focussed on the photographic plate and electrons diffracted by the various crystalline planes of the specimen strike the plate at different points and give a diffraction pattern By *working back from the pattern, it* is *possible to determine* the atomic structure of the specimen

There are *about 300 electron microscopes in use all over the world* in research and industry With the development of the new instruments, new techniques of specimen preparation and experience of interpreting the electron micrographs electron microscopy has become one of the most powerful tools for fundamental research and production control.
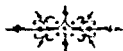
PRINCIPAL HIRA LAL KHANNA

Dr P. L Srivastava, M.A , D Phil. (Oxon)

Dr P L Srivastava of the Allahabad University has been a colleague of Khannaji on various academic bodies Himself a scholar and educationist of repute, Dr Srivastava has fittingly appreciated the services of Khannaji in the field of education, in the following article

A kind friend has asked me to contribute a few lines to the commemoration Volume which is being brought out in honour of Principal Hira Lal Khanna on his retirement from the Principalship of the B.N.S.D. College, Kanpur. I have welcomed this opportunity of paying my humble and respectful tribute to the long and distinguished services rendered by my very esteemed friend Principal Khanna to the cause of the country in general and to that of education in particular

My first acquaintance with Principal Khanna dates back to 1923 when he and I met in the Committee of courses for Mathematics under the Chairmanship of my respected teacher Prof R H. Moody, Head of the Department of Mathematics in the University of Allahabad in those days. On the very first occasion we differed on some fundamental question, but I immediately recognized in him as one who was absolutely clear in his mind as to his objective, and who had certain well-defined principles in life to which he would stick at all costs Since then I have had the privilege of working with him on the Board of High School and Intermediate Education, U.P., and its various Committees, and the

Academic Council and the Court of the Allahabad University Besides this official association, we have had other affinities between us Both of us have spent the best part of our lives in the pursuit of Mathematics and have consequently acquired all those habits, good or bad which are common to mathematicians Many of Principal Khanna's pupils became later my pupils too, and they constituted an ever growing bond of friendship between us Then both of us are old alumni of the Kayastha Pathshala, Allahabad, and in that capacity Principal Khanna has always shared my anxieties and hopes for the welfare and progress of that institution

At the time the reorganized Allahabad University came into existence in 1922, Principal Khanna was the Professor of Mathematics in the D A V College, Kanpur and an esteemed colleague and co worker of that selfless educationist Lala Diwan Chand Soon after that he became Principal of the B N S D College in the founding of which he had played a leading part It is difficult to assess Principal Khanna's devoted services to this institution All these years he has been its guiding spirit and master architect It is entirely due to his efforts that this College grew from strength to strength He selected an enthusiastic and capable band of co-workers, and organized the teaching on such efficient lines that very soon all the best students of Kanpur flocked to it for admission In a few years time this College came to occupy the foremost position in these provinces in respect of the brilliant results which it showed year after year in the Intermediate and High School Examinations of the Board Many alumni of this institution successfully competed for entry into the Public Services of the country and many others made their mark in various fields of national life In appreciation of the good work done by the institution the Government was pleased to give it a most handsome annual grant I do not know of any other institution which has retained its top position for such a length of time as this institution has done all these years, and Principal Khanna's successor cannot do better than follow in his foot steps to maintain the glory and traditions of this magnificent College

As a teacher and Principal, Shri Khanna has proved a great success His pupils look upto him as their friend philosopher and guide, and he,

on his part, loves them with unbounded affection He not only knows each pupil individually, but also knows all about him and his family He has endeared himself to his pupils so much that he is reckoned by them in their post college life as their pater It is no wonder then that the circle of his friends is very wide and there is hardly any person of importance in these provinces who does not look upon Principal Khanna as his personal friend

Principal Khanna has been throughout his life an ardent nationalist He has supported swadeshi movement with all his might and has always put on Khaddar and Swadeshi cloth His dress is simple and so is his mode of life as he seems to believe in plain living and high thinking He has always supported the cause of Hindi language with his characteristic zeal and vehemence He is singularly free from any trait of communal bias

Principal Khanna is a man of character and principles Throughout his life he kept to his ideals without counting the cost When he found that he could not continue to serve the Agra University without giving up his cherished principles, he left that University and did not seek re election to its Senate When he had served on the Intermediate Board for a number of years, he withdrew from it to give chance to others There are very few persons who gladly withdraw from positions of influence and patronage to make room for others

As a skilled debator and parliamentarian Principal Khanna is a formidable personality In any committee or body in which he sits he makes his position felt and more often than not, dominates the show In the meetings of the Board of High School and Intermediate Education, there were occasions when I found pleasure in crossing swords with him But these differences of views did not in the least affect our personal regard for each other, for Principal Khanna, while so kind and affectionate to his friends, is equally generous to those who cannot see eye to eye with him on any particular question

In this short compass it is impossible for me to recount Principal Khanna s manifold services to the cause of education in these provinces Suffice it to say that he has lived a most useful life and devoted himself heart and soul to advance all those causes in which he believed I am

sure he will rank among his contemporaries as one of the greatest educationists and one of the most capable and efficient principals of Intermediate Colleges of these provinces. He has retired from 'active service', but I join other friends in wishing him many more years of useful life in the service of his city and country. His ripe experience and wise Counsel are most valuable assets of which we should take the fullest advantage.
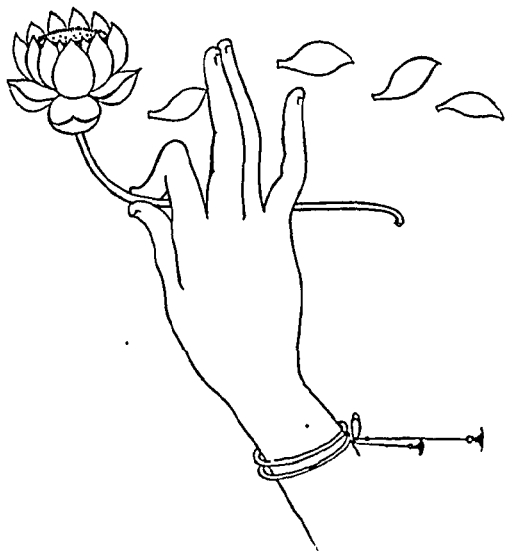
THE CONSTRUCTION AND STANDARDISATION OF A VERBAL GROUP INTELLIGENCE TEST FOR 12 YEARS OLD CHILDREN OF THE ANGLO HINDUSTANI SCHOOLS OF U P

SRIMATI RADHA KAKKAR M A M Ed

Shrimati Radha Kakkar M A M Ed has made a special study of Pedagogics and Child Psychology She is very much interested in these two subjects The present article is very illuminating and will be read with interest

The topic of this paper is The Construction and Standardisation of a Verbal Group Intelligence Test for 12 year old children of the Anglo Hindustani Schools of U P This test had been constructed and standardised in the Education Department of the Allahabad University in the session 1943 44 under the guidance and supervision of the Head of the Department—Dr Sohan Lall

Reasos To start with let me state in brief my reasons for having selected this topic for the dissertation

The study of the human mind is a fascinating subject Of all the aspects of a person s mind Intelligence appeared to me the most important A study of Child s intelligence is of great practical importance for the teacher We have to know how much mental capacity a child has before we can decide how much to expect of him A child might be quite poor in intelligence and yet may be making up some of

the handicaps by hard work. On the other hand a child may be doing well in the class but still be below the level of achievement commensurate with his mental powers. To decide these questions is the teachers' job. Nothing will help him more than a scale by which to measure child intelligence. Keeping this fundamental need of the teacher this study was undertaken. Our teachers are not in the habit of keeping abreast with scientific progress. Majority of them do not know that the present century has seen extensive developments in the methods of measuring intelligence scientifically Experimental Psychology is of recent origin. It was only in the year 1879 that Wundt opened the first Psychological laboratory; yet we find that the Western Countries have taken great strides. There we find psychological bureaus, vocational guidance centres and psychological clinics working in full swing. Tests to measure the mental abilities—intelligence, special aptitudes and interests are devised. Attempts are being made to test the various characteristics of that illusive thing called 'Personality.' Vocational Centres with the help of Intelligence and Aptitude tests, direct the energies of the youth into right channels and solve the problem of the parents. But we do not find in our country any thing to compare with this. The result is that everyone who can afford to pay the dues and enter the University does so. It does not matter to any one if he stays in one class for a number of years or if he so over works himself as to come out a physical wreck. In our temples of learning the old gods have still their stronghold. Essay-type of examinations with small number of long questions is the rule.. Standardization, 'New type tests', 'Norms'. 'Age performence' etc. have no meaning for a majority of our teachers. Even a good many of our learned Professors of the University fall in this category, what to say of their subordinates who have neither the money nor the time. Knowledge and interest are closely allied. If we know a subject we become interested in it and when we become interested in it we try to know more of it. Our teachers who are in schools get so little by way of remuneration that they are forced to take up some other work viz. tuition and so can neither afford to spend time nor money in the pursuit of learning. It is for the Heads of institutions to show them the light, to make them interested, to make them curious and to provide

means of satisfying their curiosity in the shape of latest journals and publications. But the heads of our institutions do not regard this to be their duty and responsibility. The result is an appaling darkness in the intellectual sphere in our country If one of our ministers of learning were to find himself, one fine morning getting up from sleep in some advanced country like U S. A. he or she will certainly feel more bewildered than Rip Van Winkle did, for we are more than 20 years behind the World

Leave aside education, in other spheres of life we find the same condition. Ignorance and superstition pervade the masses. Even people who are supposed to decide the fate of the nation believed in using antidated measures. The members of the highly responsible appointing bodies like the P. S. C. employ only crude measures like the essay type examination, verdict of the associates, and a personal interview lasting for a few minutes only. Very often the wrong man is selected and the right one left out.

The stern necessity of war forced the hands of the Central Government as a result of which the Directorate for the selection of Army Personnel attached to G.H.Q. came into existence. The plea of 'Deficit Budget' no more proved an obstacle and Psychologists were imported from outside. U. S. A.'s entry into the first Great War marked an epoch in the history of group testing movement of the world. Leading American Psychologists sat together and constructed tests which were tried on nearly one and three quarter million people. This large scale testing had supplied tremendous amount of data over which they worked later and devised a large number of extremely reliable and highly valid tests. Let us expect the same results from the S. P. Directorate, the newly established selection board. England and America before the great war were not very optimistic about the results of intelligence testing. But the laurels won by the American Psychologists during the war earned for them the respect of the critics and washed a considerable amount of the prevailing prejudice. We expect the same results from our Psychologists holding highly responsible posts It is for them to give to the sceptics concrete proof of the usefulness of the scientific measures and to dispel the dark clouds of intellectual conservation We

must have enough standardised tests ere we begin our battle against this conservation. Very few have attempted to construct these scientific tools in our country. The paucity of this type of work was one of the incentives that made me take up the problem.

Construction and standardization of a group verbal test of Intelligence for 12 year old children of the Anglo Hindustani Schools of U. P. studying in classes VI and above:

Sample:—Before I state the process of construction and standardization let me describe the group of subjects on which the test had been standardized. By standardization of results I mean the establishment of adequate standards or modes by means of which the results of testing an individual's case can be properly interpreted. In order to make the standardization of my test perfect I should really have given it to every child of 12 who was on the roll of the A. H. Schools of U. P. But it is well nigh impossible to touch such a large scale experiment single handed. Such experiments require a team of workers and a heavy bank balance. Moreover as I had to complete my dissertation within a short period of eight months I selected a smaller group to standardize the test. I endeavoured to make it as representative as I could with the handicap of time.

The sample used by me consisted of 1000 (a Thousand) 12 year old students of class VI and above, from 34 (Thirty-four) Anglo-Hindustani Schools of Lucknow, Kanpur, and Allahabad. To be a fair sample the 'smaller select group' should possess all the elements found in the larger group. I ought to have included small towns like Unnao, Sitapore, Barabanki, Etawah, etc., but I selected only these densely populated towns for I hoped to find in these a larger number of A. H. Schools for boys and girls Though I had chosen select towns but in the construction of the test full care was taken to avoid items that call for knowledge which is peculiar to children living in these—my intention being to include the schools from smaller towns later on.

U. P. is inhabited by all religions and castes. In the sample, too, all the religions and castes and nearly all the professions were included Both the sexes were represented in the sample but the number of girls as compared with boys was small There were 903 boys and 97 girls. Girls

education is of recent growth and A. H. Schools for them are not many Moreover, I had selected, as stated before, only those 12 year old children who were studying in classes VI and above I shall give you my reasons for it later. Because of this clause I could get very few girls from each institution I was surprised to find that majority of the schools had not more than 8 to 10 subjects to offer Girls start education late and so many of them, 12 years old, were in classes below VI

Now I come to another point—Why this particular age group? Vernon in his book 'Measurement of Ability' considers 10 as the suitable age to begin verbal tests But we must not lose sight of the fact that Vernon arrived at this conclusion in a country where compulsory education begins at the age of 6 (Six). In India it is not so, hence I could not have selected a group younger than 11 (Eleven). The intelligence test for 11 year old children of our schools, though not published at the time, had already been standardized by Dr. Sohan Lall This is why I took up the next age group viz. 12 (Twelve).

Another point that needs clarification is as to why did I exclude the classes lower than VI. Fancy or whim had no part in it Dr. Lall had given out his tests to all the 11 year old. The distribution of the raw-scores showed piling of cases at the lower end and the scores when plotted on the graph gave a bimodal curve. Dr. Lall attributed this bimodality of the curve to the lack of reading ability in lower grades He excluded the junior grades and after the elimination the distribution approximated to normal. (Refer to the two histograms of Dr. Lall). I took advantage of his experience and eliminated grades below VI.

Coming to the construction, the first stage in the construction of any test ought to be the statement of what the test intends to measure. My object was to measure 'Intelligence' but then the question is What is Intelligence Varied opinions have been expressed on the nature of intelligence I have no time to quote the definitions given by Binet, Terman, Stern, Spearman and others. One thing is certain that though these definitions differ greatly they are not contradictory Ballard's definition appealed to me the most. He proposes 'Intelligence' as 'the relative general efficiency of minds, measured under similar conditions of knowledge, interest, and habituation.' Intelligence is general mental

energy and the tester who is out to measure intelligence must measure this energy Energy be it mental or physical cannot be measured directly Take the case of measurement of heat In a thermometer we do not measure heat but the rise of mercury against spatial divisions which is due to heat Similarly in the testing of Intelligence we generally measure knowledge which has been acquired due to intelligence viz in testing the child of two by the Binet test we ask him 'Show me the Pussy or 'Where is the Pussy I hope I have carried you with me in my contention that intelligence can be measured only through knowledge But what is the nature of this knowledge? Ballard while answering this question says 'The knowledge that the tester tests is knowledge, which the subject of ordinary intelligence cannot possibly avoid He does not seek it, it comes to him It thrusts itself upon him in the common intercourse of life' This shows that the knowledge that one tests will have to be peculiar to the country, people and time In the framing of my test, therefore, I have made an attempt to include the use of only such knowledge which is within the range of children of A H Schools of U P

Type of the Test

So far as the form of the test was concerned there could have been either true false type or the multiple choice type The chances of guessing the right response are 50 per cent in the true false type as the testee is expected to say 'Yes' or 'No' only In order to reduce the influence of guessing a different method of recording in which the wrong number of responses are deducted from the right ones is adopted But it is a cumbersome method

Multiple choice as is suggested by the name is a number of responses from which the correct one is to be singled out Guessing is reduced to a minimum Weighing the advantages and disadvantages of both I decided for the test to appear in the multiple choice type Effort was made to put along with the correct response, those responses which though incorrect appeared to be plausible alternatives Let me illustrate the point by taking the following item —

1 Grass-green sea (water blue, ship boat, fish) all the responses

here are associated to sea and therefore the testee must to a certain extent exert his brains to get at the right answer

A dice was employed to distribute the correct answer at random

Type of Items —The type of items that are generally found in Verbal Intelligence Tests fall mainly under the following heads — analogies, opposites, number series letter series, proverb inferences, directions, classifications, jumbled words, jumbled sentences, essentials, geometric figures, code words and sentence completions Most of these have a high correlation with 'g' as can be seen from the following table of Spearman —

Nature of Test		Correlation with 'g'
Opposites	...	·89
Classification	...	·77
Inferences	...	·74
Analogies	...	·79
Completion of sentences	...	·86
Geometric Tests	...	·79

Two hundred questions were framed under all the above mentioned heads for the initial try out except the jumbled sentences These two hundred items were divided into two drafts called Draft 'A' and Draft 'B' Each of these two was tried over 100 children on two different days Unlimited time was given The scripts were marked and difficulty value of each question was found out Final selection of items was based on the principle that mental ability in general and intelligence in particular follows the normal probability curve The items of the final test were arranged in real order of difficulty

Administration —A flat system of scoring, employed in the marking of drafts of the initial try out, was used, also, in the marking of the final test Attempt had been made to make the test objective or foolproof, as Ballard pleases to call it.

After scoring the next step was that of tabulating the scores under the following heads —

Serial Number
Name

Class
Religion
Caste
Age
Score
I. Q. (This was put down later on).

Standardization.

1. Standardization of procedure.—As already described, the procedure or the method of giving the test had been standardized—that is the same words were used in giving out the instructions. This is very necessary, for, otherwise differences in performance may crop up.

2. Standardization of Results:—It can be done in many ways by applying various statistical devices to the results obtained by the applications of tests over a fairly large sample. I shall go into the details of only the one I had used. The first step after tabulating the raw score was to make an age-wise frequency distribution. Then the 95th, 84th, 50th, 16th, and 5th percentile were calculated for each of the 12 year age groups. Why had I selected these five percentiles? Let us go back to QUETLET'S discovery that many of the mental and social traits follow the Normal Probability Curve. In the case of the Normal Probability Curve the mean, medium, and the mode all fall exactly at the *midpoint*. It is a bell shaped curve and bilaterally symmetrical. The measure of variability 'O' includes certain constant fractions of the total area of the normal curve. (See figure below)

If we take (one) 1 above the mean 84 per cent of cases are included upto this limit. If we take 3 (three) above the mean we have 95 per cent cases. Similarly 16 per cent is one below the mean and 5th percentile is 1 2/3 below mean.

As told before 95th, 84th, 50th, 16th, and 5th percentile for all the age groups were calculated and we had 12 of each one of these percentiles. Now if we had plotted each one of these percentiles a zig-zag line would have been the result. To avoid this zig-zag, lines of best fit were found out for each percentile We had 5 (five) such lines.

Each one of these lines was identified with a particular I Q e g 50th per cent with 100 I Q

These lines were drawn on a big graph paper The other lines for other I Q were obtained on the graph by interpolation and contiopolation The corresponding quotients for a particular score for a particular age group were read out from the graph and a table of norms was prepared

श्री हीरालाल शर्मा का वर्तमान संक्षिप्त परिवार

(१) श्रीमती पुष्पा शर्मा (पुत्रवधू), (२) श्री नन्दलाल शर्मा बी० ए० (पुत्र)

(३) श्री हीरालालजी शर्मा दो पौत्रियों को गोद में लिए हुए।

Shri Rajendra Kumarji

[Shri Rajendra Kumarji of the Air Transport Enquiry Commission is an old student of Khannaji. The personality of Khannaji has amply influenced the writer. The close personal touches of the illustrious principal have one a great way towards the making up of the writer. The sense of gratitude felt by the writer is amply borne out in the following article.

The two years which I spent at Kanpur remain typified in my mind by my contact with a personage well known in the educational world of Uttar Pradesh for his energy and for his ideals. I went to Kanpur not because I expected to find a college with extensive buildings and long traditions, but just because I learnt from an old friend that the simple-minded Principal there took pains to know each of his boys personally. And when I did reach Kanpur, another old friend actually left the college he had joined in Allahabad, to come to mine. And both of us for ever cherish the memory of these two almost the best of our early impressionable years. For this time was our precious opportunity to watch intimately from day to day and from hour to hour, the career of an individual at once so common and yet so unusual. With a single unitary purpose in life, by patient whole-hearted devotion, building up an institution out of the difficulties common to his time, collecting all the best material available to him as students and teachers for his college and books and instruments for his library and laboratories—and yet taking care to see that each one of his young charges imbibed all the best that society had to give to its members.

2. It is almost 20 years since but whenever I see a college or come across an educational man, I am reminded of my own Principal, who after a hard day's work at his desk and in the classrooms would care to have a peep into each boy's room in the hostel, exhort the downhearted to rise above little physical inconveniences, admonish the recalcitrant to the right form of social conduct and encourage the ambitious to scale the heights that our forbears had daunted and to greet each with a slap full of affection. I still wonder how it was possible for one person to go the round of the routine duties of the Principal—to sit down with the college

Accountant and burrow into the difficulties and harrassments of an unbalanced financial position, to lecture to big classes on Trigonometry and progressive living, to fight the battles of his *college* with the Education Department, to tutor the Managing Committee and carry it along with him—and still have energy enough to enquire personally into the welfare of each hostel boy, going to doctor and returning home late at night with a sick boy in his tonga

3 This habit of personal care for the smallest unit of the college community and the brazen simplicity in physical outfit, had its own influence on the minds and lives of all the boys I remember how many of the boys hailing from rich and comfortable environments, in some cases bearing the hall mark of eminent prosperity and gentility, slowly got used to loving the life in this college where building and laboratories were still under construction where the hostel was improvised out of hired bungalows and where the playground was just a gravel field miles away Immediately on joining, such boys did chafe at finding themeslves up against petty inconveniences having to go in the dark to temporary enclosures set up 100 yards away in the field for latrines, or to a tap in the open for bath But slowly and imperceptibly, these boys got absorbed in the new atmosphere and simple life of the College and came to develop an affection for their college and loyalty to their teacher who at first appeared to them to have landed them into a sorry plight One of the boys used to wander in our corridors long after he had passed out into the elder institution in Nawabganj No body knew better than this teacher what was passing through the minds of his new boys

4 The intermediate stage marks a turning point in the life and experience of a young student Freed from the protection and restrictions of home and of parents, the young minds find the first impact of a supposed liberty to be full of thrills It is just this time when it is of the utmost importance that the leisure and the energies of the boys and the resources which parental affection liberates and places at their disposal, should be canalised into healthy directions and harnessed and sublimated for the best development of personality My impression is that the authorities and atmosphere in my college managed to succeed in this in an ample measure

In a busy city like Kanpur, with half a dozen big colleges and a none too dull civic life, there were opportunities almost every evening to run to public meetings and student gatherings and listen to lectures, debates and discourses on subjects ranging from entirely academic and scientific to very controversial and political. The thumping periods of an address by President Patel standing high up like a tower in the Phool Bagh, the epic meters of the songs recited at the dead Mahatma's prayer meeting on a cold Monday morning on Dr. Jawahar Lal's lawns, the pathetic speeches made on the Jalyanwala Bagh day in the Shraddhanand Park—these are just a few of the occasions which could not but have made an indelible mark on the receptive mind These have come down in memory all through these years

These two years were of great unrest and political ferment throughout the country—of the Bardoli Satyagraha and the Dandi March. Leaders among the boys and in the city had joined in frantic challenges to the cream of the community not to stay inside college walls while the country was on fire Whether students should take part in politics was the common subject of debates in colleges and public lectures in parks, and I remember having disinterred from the Gaya Prasad Library a discourse on this subject by Dr Arundale It was a time of trial, of great heartsearching and of delicate adjustments for those charged with the administration of educational institutions anywhere They had to look to the boys for running the schools and the British manned Education Department for the grants which enabled them to make both ends meet The streets in the city and the columns of the nationalist press used to be full of exaggerated talk of picketing girls being trampled under foot by overzealous Principals in Kanpur, of "toddy" boys throwing volunteers down the college roof Even Pandit Malaviya and authorities of the university of which he was the builder and the idol, were not free from such embarrassments at the hands of the boys, and the zealots The music of the national anthem was drowning the morning prayer in the college hall and the dutiful voice of the teacher struggling to carry on the semblance of a lesson How vividly I remember to this day, my Principal sitting up late in the middle of the night or early before the break of day, grappling with the difficult problems thrown up by the

tumult and the upsurge of this time, of the English D. P. I. threatening to suspend the college grant because one of my class-fellows led the flag-hoisting at a neighbouring school and of an unthinking Committee member asking to reject and disown that boy My timid mind would marvel at the strength and dexterity with which these problems were handled and very many difficult situations which in other local institutions developed into and passed as pretty interesting incidents, were smoothed out without any loss of face even to the overenthusiastic boys who had helped to create them There was almost no incident or ugly situation in my college in this difficult period. The greatness of mind and heart unfolded by our Principal under fierce threat and sometimes rude provocation, could hardly be fully comprehended, then, by us his boys. Actually, hardly any action of the Principal during that difficult period could be exempt from controversy. But now in retrospect, with a mature mind, we can make a more reliable assessment of the serength of character and obstinate determination, which he united with extreme gentleness of disposition and with absolute tenderness and understanding sympathy towards all about him. It was apparent to us that there were no rigid perfections about him at all. Indeed the weakness of some parts of his conduct, at times, appeared altogether so unlike what seemed even to us to be required of a successful administration of young persons, that it looked as if some almost unexampled quality of the heart went to the doing of what he actually did.

But my college had its own episode. The unruly picketing at the gate and the chorus of slogans and songs in the classrooms by the volunteers had their own effect on the morale of the boys Suddenly we saw on the notice board a farewell note from the Principal laying down his office because his boys had started "looking up to others for guidance" The pathos of those too brief sentences still rings in my ears. I remember how the whole college to a boy rose in respect and in consternation to condemn the behaviour which had driven its beloved Principal to think of leaving it. Each classroom became a meeting and the prayer-hall a pulpit for appealing to him not to forsake the boys and the college which he had been doing so much to nurture from its very tenderness. For two weeks or three, the college and its work continued in a way but

the half-completed building which had been slowly struggling up against financial difficulties, showed as if the soul had forsaken its body. I remember how so many of my class-fellows, who, never in all their years, could face an audience, mounted the platform and spoke with indignation and with tears on this occasion and wept with joy when, overawed by the unanimous and sustained appeals of the boys, the teachers and the Committee, the grand teacher of their love, eventually gave in. The white-turbaned veracity of the man who had sat at the feet of Mahamana Pandit Malaviya, triumphed in forgiveness

PRINCIPAL HIRA LAL KHANNA

PROF. KALI SHANKAR BHATNAGAR M.A

[Prof Kali Shankar Bhatnagar is an erudite scholar of History. He has been a close friend of Khannaji for over thirty years Prof. Bhatnagar is a shrewd judge of men and things His views shall be profitably read]

Principal Hira Lal Khanna's retirement from the B. N. S D. College is not only an outstanding landmark in the life of the institution that he has built up into one of the biggest and best of our Intermediate Colleges, but also a notable event in the educational life of the Province. He richly deserves the comparative rest from ceaseless and unremitting activity that the active control and administration of a great institution involves and that retirement shall bring him. But all his friends know full well that Mr Khanna is not the man to call it a day to have built up the B. N. S. D. College and his two other High Schools besides a share in the active management of half a dozen other local schools and colleges. He has long had a noble scheme in his mind for equipping this city with a number of Higher Secondary Schools for girls and boys on a local regional basis. It is to be hoped that, with greater leisure at his disposal now, Mr. Khanna will be able to mature these schemes now rapidly and the schools of his dreams will flourish like the one in Ramakrishnanagar under his fostering care and selfless devotion.

Mr. Khanna has never been one of those colorless mediocrities that flit across the stage of life in such multitudinous and feckless inutility. He has always had, as an old friend of his used to say with humourous affection, "bee in his bonnet". Probably, he has never indulged in the luxury of an idle moment, and as he so frequently says himself, has "no time to fall ill" even. He has with evident abandon turned over that luxury to vakils and University teachers and "other big men". And yet, no sickness comes to any of his friends or acquaintances but will find Mr. Khanna at the sick man's bedside, and no crisis in life comes to them but will find the good Samaritan in Mr. Khanna at his side to encourage and guide and help the stricken man.

Basically however, Mr. Khanna is a "go-getter" and fighter, an Indian counterpart of what the Americans call an "executive." Fool-proof planning, mobilisation of all necessary resources and aids, determined drive which no failure and no counter point can for the moment assail, and a cool calculation of the results of the effort—these are his forte. Humbug, inefficiency, injustice, and in his favourite phase, "goodiness" always excite his active condemnation and contempt. Conversely, no good cause—down to chromopathy, Couéism, and gaurakshak shoes—has ever found in him an indifferent spectator or tepid friend. Whenever Mr. Khanna takes up a cause, all his resources of mind, body, and purse are placed at its disposal with all merely prudential and worldly-wise considerations flung aside. And in most cases, during the thirty years that I have had the privilege of knowing him. Fortune has always triumphantly brought his bark to harbour with fluttering penants like a proud galleon after a victory!

idiosyncracy of his, none but the select are allowed to borrow lest any of the veterans in print should get damaged or astray and not be at Mr Khanna's elbow when wanted for advice or amusement His own speciality apart, a peep at the library, will disclose patriarchs like Webster and the Encyclopaedia cheek by jowl with the latest debutantes in Hindi and Urdu literature, academic works, and exotics on Nature Cure, Homoeopathy and what not!

In his own special sphere, Mr Khanna has few equals. The sleepless planning and labour, the untiring zeal and drive, and the essential idealism and vision that have built up his College to what it is today can be properly appreciated only by those who may have watched Mr. Khanna at work during the last 15 years from a distance None but Mr. Khanna could have set up, within three months of the start and under a regime of war-time controls, a ful-fledged High School complete with buildings, furniture and equipment. It was his devotion, personal charm and individual influence that have won for his institutions the support of prominent officials, donors, scholars and public men.

No appreciation of Mr. Khanna's life and work can do full justice to the subject, however, if it ignores Mr. Khanna as a "friend" to his pupils, subordinates, and men in general. Like his own benefactors of an earlier day, Mr. Khanna considers it almost a religious obligation to help all who seek his assistance, and in these labours of love too, he exhibits the same thoroughness, consuming zeal and versatile resourcefulness that he shows in his work and duty, grudging no time or worry or expense. Many are the poor students, of his own college and elsewhere, who have throughout their student career, found their mainstay in his generosity, and those who have benefited from the exercise of his public influence in their behalf cannot be counted except by the legion You have only to watch Mr. Khanna fighting the battles of others to appreciate what an enormous fund of generous gallantry and unselfishness his khadi clad figure conceals in its bosom behind a mask of bantering censoriousness. Men like Mr. Khanna who are absorbed in public service all the time and whose sphere of activities is so wide and multifarious are bound to have critics—and even

bitter and unremitting ones; and of these too Mr. Khanna has enough and to spare. But to few is it vouchsafed to enjoy simultaneously and in such generous measure the love and devotion of his old and new pupils, the trust and confidence of his trustees and the public in general and the friendship and appreciation of some of the best and biggest men in the land as Mr. Khanna enjoys today Most certainly, this is a very rare thing in the case of educationists We *do* need many more men of Mr. Khanna's character and calibre to place our educational system on its legs.

His own College will, let us hope, continue to bear the impress of Mr. Khanna's personality for many years to come, and that his life's work which the College represents will continue to prosper Let us also hope that, now that Mr. Khanna is freed from identification with one College, he will give the benefit of his magnificent vitality, mature experience and ever-youthful zeal to the cause of education in the country at large, and cease to be a monopoly of Kanpur

STATISTICS IN MODERN AGE

DR. PRAN NATH, *Banaras Hindu University*

[Dr Pran Nath, M Sc, D I C (Lond), D Sc (Paris), F S S (Lond) is a distinguished member of the Department of Mathematics of the Banaras Hindu University He has been intimately connected with education and is an ardent admirer of Khannaji In the present illuminating article on 'Statistics in modern age' the learned writer presents in a lucid manner the history of Statistics, its various canotations in different centuries as also its gradual growth The article will be read with advantage by the young students of the subject.]

It was about this time last year. I was in Paris then The French academic world was busy celebrating the bi-centenary of one of their greatest mathematicians P. S. Laplace (1749—1827) The contributions that this great genius has made to celestial mechanics are well known and have assured him everlasting fame in the history of astronomy. But perhaps it is not so widely known that Laplace was also very much interested in the theory of probability from the very beginning of his scientific career. And his great works "*Théorie analytique des probabilités*" (1812) followed by the popular exposition "*Essai philosophique sur les probabilités*" (1814) are again outstanding contributions to mathematical literature. This work has greatly influenced later writers on probability in Europe whose work chiefly consisted in elucidation and development of topics contained in his book.

The reason why Laplace's work on probability did not attract equal attention till late as his work on celestial mechanics is not far to seek. The theory of probability which had its beginnings in games of dice, etc, had not found many useful applications. And a study of the subject

whenever made was more or less for its own sake. But with the rapid growth of the science of statistics with which the theory of probability is intimately connected interest in the theory of probability is revived everywhere. And in France which is the proud place of birth of this science it is again engaging the best brains of the country. This was an additional reason for greater enthusiasm amongst French people for the celebration of Laplace's bi-centenary last year.

In trying to trace the beginnings of 'statistics' one may for a moment be puzzled by the curious change of names which has taken place. One will for example find in the libraries number of old books which on their title-pages are called statistical but which judging by their contents, have little or nothing in common with 'statistics' in the modern sense of the word.

The name 'statistics' was in former days applied to the comparative description of states. This system can be traced as far back as Aristotle. The root of the word ' statistics ' may be found in the Latin word '*status*' (Italian '*stato*') meaning a political state. Thus 'statistics' (German '*statistik*') upto the 18th century meant simply the exposition of noteworthy characteristics of a state—the mode of exposition being mostly verbal.

begin to flourish until the last quarter of the 19th century. Remarkable progress was made under the influence of Galton and Karl Pearson and the next three decades which followed resulted in effectively securing the foundations of this science. It must however be mentioned that the edifice of this subject, which is finding new applications everyday, is yet in the process of quick erection. Research work, particularly into the mathematical theory of statistics, is rapidly proceeding and fresh discoveries are being made with such rapidity that it is even difficult to keep pace with all of them.

Such is the interesting story of the growth of this subject. Simultaneously the uses of statistics have also rapidly multiplied. The subject is finding applications in an increasing number of spheres of human knowledge and activities. In a short survey like this we could only mention briefly a few of them.

By way of illustration we will take two simple example, one of them to illustrate the use of numerical data which we term 'statistics' and the other to illustrate the technique of statistical analysis which too is referred to as 'statistics'. The latter is essentially a branch of mathematics and many, perhaps most expert statisticians are mathematicians by training or adoption. The former namely collection of statistics (numerical data) too calls for much more than mere ability to count as might at first appear. Persons who are entrusted with this job should know what practical difficulties they are likely to encounter and how to overcome them. Then comes the important question of classifying, arranging and presenting the data collected. Sometimes it may be impossible or impracticable to approach each individual for a particular investigation. In such cases we might take a randomly selected sample of few individuals and base our inference on it—'sample survey' as this is termed. How to take the sample so that it may be as far as possible true representative of the whole population, how big should this sample be and what is the amount of error we are likely to make, are questions which need a trained statistician to handle them

As for the necessity and use of statistical data suppose the finance minister contemplates giving relief to middle class people by reducing the rate of incometax upto a certain maximum income. Then unless he

knows how many people are there in the country in a certain income group he will not know how much allowance in the budget he must make for the fall in revenue receipts and what percentage in the country are likely to benefit from such a measure As a matter of fact every measure the finance minister proposes in his new budget has to be weighed on the basis of statistical data which he must necessarily have by his side And what is true of the finance minister is true of other responsible ministers as well No civilized government can hope to run efficiently without possessing proper and reliable statistical data

Here Karl Pearson who had a great hand in the development of this laboratory first applied statistics to the study of *anthropology* to answer the question whether certain prehistoric skulls belonged to a single race or two different races of men

In the realm of *psychology* and *education* the study of human mind as regards intelligence special ability aptitude etc for vocational training is conducted by the help of special statistical techniques It is being largely used in modern organization of the army for determining the aptitude of individuals for different types of jobs

Astronomy, *insurance* and *meteorology* are other fields where statistics finds very useful applications Occassional use has been made in the study of subjects like literature as well

While statistics was being usefully employed in so many fields, *physics*, *chemistry* or *engineering* were generally regarded as not needing statistical methods And indeed a revolution took place when statistical ideas were imported into these sciences

The recent technique of 'statistical quality control' which has been mainly developed by Dr W A Shewhart and his band of workers at Bell Telephone Laboratories, New York is capable of application to all branches of *production engineering* By this method we can reduce the cost of manufacture and at the same time improve product quality During war this method had many a time saved critical man power and material Many aspects of this wonderful technique were, therefore, developed during war which gave an impetus to researches in this field These methods are being largely used in U S A and to some extent in England and continental countries I had occassion to make a special study of this new branch of statistics during my two years' stay abroad had opportunities to see the actual applications of these methods in certain manufacturing concerns of England, France and Switzerland It was time that India took to the application of these methods whose usefulness the engineers are now beginning to realize

In the field of *civil engineering* problems such as flood control, road safety etc are being successfully tackled by statistical methods Problems such as the possibility of an air attack on a particular night during the well known periods of Blitz on London, were to some extent satis-

factorily tackled by British statisticians during the last war In *geology geophysics*, *metallurgy*, mining and *industrial chemistry* scientists are beginning to see the usefulness of these methods and are now using them in an increasing measure

Thus statistics has a vast scope infront For some subjects it provides ideas of basic importance for others it gives powerful methods of investigation It could be said without any fear of contradiction that "*statistics is becoming an all pervading subject* Be it commerce or industry, scientific research or social survey statistics comes forward to our aid Statistical approach is so fundamental to the modern way of looking at things—the affairs of every day life as well as scientific theories and experiments—that in the opinion of the Council of the Royal Statistical Society it should *form part of the mental equipment* of the educated man, which it is not at present During the last war statistics played a very important role and now that peace has come it is needed all the more to reconstruct the war shattered world

sciences it has always had its chief source of inspiration in problems of *human* welfare

The need for qualified statisticians could not therefore be over emphasised Even in a country like Great Britain which has contribut ed so richly to the growth of this science the Committee on the Provision for Social and Economic Research under the chairmanship of late Sir John Clapham stated recently (1946) the importance of, and the unsatis fied need for statistics in no uncertain terms

"We cannot leave this part of our report without some comment on the quite inadequate provision which at present prevails in universities in the United Kingdom for posts in statistics An adequate supply of statistical competence is quite fundamental to the advancement of knowledge of social and economic questions It is no less essential in *public administration* Yet the number of chairs in statistics throughout the country could be counted on the figures of one hand It is small wonder that, *during the war statisticians were probably the scarcest of scarce commodities*, and that, now the war is over, a chronic struggle is going on between the universities, business and the public service for the services of a supply of statisticians which is in the aggregate equal to only a tiny fraction of the demands immediately manifesting themselves, and still less of the demands which are certain to accrue as current policies develop and projected institutions are brought into being *There are few urgent needs to day than the increase of the supply of first class statisticians* But this need will not be met if further provision is not forthcoming at the universities" The committee said the provision in the universities in U K for teaching of statistics was very inadequate In India, excepting at a place or two it hardly exists The need, there fore, in our country is all the more pressing

After the attainment of independence our front rank leaders who have in their hands the destiny of our nation are becoming alive to this crying need of the day, as is evinced by their recent speeches It is also a hopeful sign that India's pioneer statistician Prof P C Mahalanobis has been called at the centre in advisory capacity Our government is beginning to realize how very necessary it is to increase the statistical competence in the country And to do that the first essential step is

to make adequate provision for the teaching of this subject at the universities and technical institutions. The universities should give due status to this subject and promptly and efficiently encourage its study in all its aspects. There should be full-time courses as well as part time and vacation courses, at different levels. People who are already in the employ of government or business concerns be encouraged to take advantage of the latter. The government should also think of creating specifically statistical posts at administrative level and fill them with suitably qualified persons.

It is a matter of supreme satisfaction that our popular premier Pandit Nehru, who is a scientist by training, has taken upon himself to guide the recently formed planning committee. It is therefore reasonable to expect that statistics, which as we have seen is one of the most important things of this age, will get its due attention.

PRINCIPAL HIRA LAL KHANNA

SHRI SURENDRA NATH VERMA, M A , LL.B

[Shri Surendra Nath Verma, M A, LL B, a leading advocate of the High Court, Allahabad was a few years junior to Khannaji He gives a glimpse into the early student life of Khannaji who is remembered by him as a simple, unassuming student devoted to his studies though he was even then conspicuous by his fair handsome appearance and the white turban Mr. Verma specially mentions a heroic performance in a hockey match when Khannaji showed his daring by giving a good beating to the Anglo Indian players and chased them out of the Muir College compound It was the national self respect within himself that had asserted itself]

To the many glowing tributes that have been paid to Principal Hira Lal Khanna by his numerous friends, colleagues, admirers and pupils, I hereby add my humble one It has been at once my privilege and pleasure to have known Hira Lalji since 1911 when I joined the Muir Central College, Allahabad, as a student, of the First Year Intermediate Class He was my senior by two years, being a student of the B Sc (then known as Third year Class). Though we were living in different hostels, I in the Oxford and Cambridge Hostel (now Holland Hall) and he in the Hindu Boarding House, we used to meet frequently on the Muir College grounds during foot-ball or hockey practice.

Life in hostels those days used to be self-sufficient and the students of one hostel were not quite intimate with those of another Therefore my impression of him was only this that he was a simple, quiet unassuming student devoted to his studies though he was even then conspicuous by his fair handsome appearance and the white turban. But one day he

gave a surprise to everybody by a really daring act. At the end of a hockey match one evening the players of the visiting team, which consisted of Anglo-Indians, unnecessarily lingered on. Most of the spectators had left and the home team was also disappearing. The Anglo-Indians who had lost the match did not take their defeat gracefully and finding the gathering thin started muttering abusive language. While others among us contented ourselves, by paying them back in the same coin, Hiralalji, who was at some distance, leaped upon the most insolent fellow like a tiger upon his prey and in the melee that followed he not only gave a good beating to a few of them with a hockey stick snatched from some player, but even chased them out of the Muir College Compound. It was the national self-respect within him that had asserted itself. I have never been able to think of Hira Lalji without being reminded of this heroic performance of his.

Although we took to different vocations in life, yet happily we have been meeting quite often. Hira Lalji has always favoured Allahabad, with frequent visits in connection with numerous committees and institutions, with which he has been associated, particularly the Allahabad University Court of which I also happened to be a member for about two decades.

volume is being presented to him He richly deserves all this and much more

No man made rule can be perfect and the rule of superannuation is no exception There can be no greater proof of its imperfection than the retirement of Shri Hira Lalji Khanna while he is by God s blessings still hale and hearty and full of life and energy as ever It is only in December last that we were together at the annual General Meeting of the shareholders of the Newspapers Ltd (which owns the Leader) As a Director, I was presiding at this Meeting and I was surprised to find that Shri Hira Lalji was not only an educationist but was also a good business man I do not mind confessing that but for his most valuable and sound suggestions and guidance it would not have been possible for me to get through the business of that afternoon so quickly and satisfactorily I was rather disappointed to learn that he was retiring from the institution which was the field of his labour and attention for several decades At second thought, however, my feeling changed and I feel great consolation in the thought that the loss to the B N S D Intermediate College will be a distinct gain to the people and institutions outside this College I have not the least doubt that Shri Hira Lalji Khanna will devote the rest of his life —and I pray for his very long life —to the service of his Country and Countrymen in various spheres I wish him all success and happiness

SHIKSHAKASHIROMANI,

PROF. A. C. BANERJI

[Prof. A. C. Banerji, M.A., I.E.S., Dean of the Faculty of Science Allahabad University is an erudite scholar and an educationist of repute. He has been associated with Khannaji on the various academic bodies for over twenty seven years. He has had an occasion of watching Principal Khanna's educational activities at close quarters. That "Appearances are deceptive" is fully brought out in the following few lines.]

Bravo the veteran teacher and the ideal Guru! Well done. You deserve a well-earned rest, after a most strenuous and devoted life of a teacher of rare insight and understanding, for more than thirty-five years. But there is no rest for you—the country calls you again. Go and serve your motherland with all your might and with untiring and selfless effort that has characterised all your work throughout your life. Mother India has achieved her freedom, and her shackles have been broken. She needs you to banish illiteracy, to train up and educate the younger generation, and to set up proper standards in planning different types of education.

MY REMINISCENCES

Shri K L Govil

[Shri K L Govil Reader Commerce Department Allahabad University has been an intimate friend of Khannaji for over thirty five years He has been his colleague at the St Johns College Agra How Khannaji treats his assistants is amply brought out in the article It provides a delightful reading and gives us an insight into the character of the illustrious man]

Khannaji has a very wide circle of friends and admirers and I am sure many of them will regard it a privilege to contribute their reminiscences to his commemoration volume

I have known Khannaji for more than three decades We were colleagues at St John s College Agra for some years when Canon Davies was the Principal of the College From St John s Khannaji came to D A V College Kanpur and I joined S D College Kanpur a little later I can therefore claim a fairly long and I must say a close association and friendship with him But I find it difficult to write my reminiscences of him because they are too many and of too varied a character—from small trifles to serious subjects and from pleasant discussions to hot exchange of words However I attempt to jot down a few that are uppermost in my mind at present

Though elder to me in age Khannaji was quite young when he joined the St Johns College Agra He worked very hard with his post graduate class so much so that all the students did exceedingly well at the University Examination Canon Davies was highly pleased with him and as a recognition of his work gave him a special increment Khannaji pleaded earnestly for his Assistants but the Principal was not inclined to consider their cases He was very sad and disappointed and in anger he returned his salary cheque to the Principal The Principal appreciated his conduct and gave increments to his Assistants as well

Khannaji was a member of the Board of Management of the S D College and the late Rai Bahadur Vikramajit Singh was the Secretary

The Late Dr Beni Prasad used to remark 'When I have voted for Khannaji I feel I have done a public duty' This was the admiration and esteem in which he held Khannaji His contribution to the discussions of our University academic bodies has always been wholesome, and I can say from personal experience that he always commands the respect and attention of the house

Khannaji has a special knack of getting things done He has a strong and rugged character that can brook no opposition He is outspoken almost to a fault He shall not spare any body—friend or foe. But that phase is only passing and momentary He stands by you like a rock in hours of your need and difficulties I know of numerous occasions when we approached him for his sagacious advice, mature judgment and wise counsel. When I think of his energy and enthusiasm I feel that when the Almighty distributed this gift, probably he was in the forefront, closely followed by Shri Kedarnath Gupta, Principal, Agarwal Vidyalya College, Allahabad. If Khannaji's turban is high Mr. Gupta's moustaches are also erect! Both of them have some common features Khannaji has tremendous energy and sturdy commonsense. I hope his services will be fully utilised in the cause of education and social reform for which he is eminently fitted. May he live long!

and speaks for the million of Chinese common men, and therefore deserves a rightful place in the committee of nations

Now who are these communists who have gained such a marvellous success; who have changed the whole pattern of life in China, who have set up regional Governments, who maintain their own armies, who proclaim a "new democracy" a new "Capitalism" and yet call themselves "Communists" To understand it let us go into their history and study their struggle and strifes

The Chinese Communist party *began in the revolutionary* upheavals that swept the world at the close of the first world war. They distinguish three periods in their history the great revolution begun by united Kuomintang and communist forces but broken by the split in 1927; the *agrarian revolution and civil war which ended with the Sian incident* December 12, 1936; and the period of Anti Japanese resistance during which there was a national united front This was disturbed by armed clashes from 1939 onwards but was not officially broken until March 1947, with the expulsion of communist diplomatic representatives from Nanking.

Leadership, ideas and policies changed during these periods The communist party was always herioc, but many mistakes were made by the leadership in getting experience. The first six years of Chinese comnunist party were guided by Chen Tu-hsiu a brilliant Peiping professor who was one of the two leaders of the Renaissance. He was one of the party founders.

The first congress met in 1921 in Shanghai, with 12 delegates only representing a few score of members Mao-Tse-tung attended from the Hunan. *Almost at the same time a Chinese communist group* was formed in Paris, among Chinese who had gone to France as allies in the world war. Chou En-lai was one of this group; his knowledge of languages and foreign affairs was to make him the party specialist in foreign affairs A little later a group was formed in Berlin with Chu Teh an officer who had gone abroad to study military technique. All three groups had combined by 1923 when the party held its 3rd congress. There were also many new members from the working class; stirred by the great seamen's strike the year before. This congress proposed to set

up a united front to the Kuomintang and they became an integral part of the kuomintang at its first congress in 1924. Dr. Sun Yat-sen agreed to the combination because he had finally become convinced that his party of patriotic businessmen and intellectuals could not create a modern democratic China without the help of large masses of farmers and workers The communist agreed to it because they held that the first job in China was to smash feudalism and war-lord-rule and that co operation with the progressive capitalists and intellectuals was needed

The famous "Three People's Principles" earlier orginated by Dr. Sun were given a new and clearer definition. Peoples' nationalism was declared to mean both independence from foreign control, and equally of nationalities—Mongols, Muslims, Manchuas—within China "Peoples' Democracy," which had been a vague reference to voting rights, was defined to include free speech, press and assembly and the right to organise. "Peoples livelihood" was expanded into a social programme *that included the famous slogan "LAND TO THE TILLER" and most* of the other reforms now promoted by the communist.

In 1926 under general Chaing Ki Shek united nationalist armies began their northward march. Success was terrific as long as the combination held together. Farmers' unions and labour unions grew with incredible speed. When the revolutionary armies marched northward their way was smoothed by the underground organisations set up by the communists

made up of the sons of landlords The farmers revolution therefore, precipitated the split between the communists and the Kuomintang

The capture of Shanghai centre both of international capital of the biggest chinese capitalists and of the strongest organisations of workers brought to a head all the class frictions that smouldered under the united front Dr Sunyat Sen and Kuomintang central committee in order to avoid this class conflict and also the conflict with foreign imperialism, had advised not to drive on Shanghai until they had a stable hinterland But Chiang as commander in chief changed the plans Shanghai was rich booty whose control could make him independant of any party and pave the way for his dictatorship His taking it made a show down necessary between the revolutionary forces and the big capitalists of the port Chiang choose this side, approached the capitalists for support and paid for it by a blood purge of innocent farmers, communists and trade union leaders There was a bloodly masacre in Shanghai and it is estimated that more than 5000 were killed

The great revolution was broken The game of power politics was resumed Chiang took power in Nanking with the money of Shanghai capitalists while two thirds of the Kuomintang executive still awaited him in the original rendezvous at Kankow He reorganised the party around his personal dictatorship Buttressed by capital and by quick recognition the new Nanking Government began to dream of a unified China under its own sway But this was not to be so could not be so for this would have taken the Chinese people back to the great times of monarchy and would have meant putting the clock behind for this would have meant the crushing of the peoples of China

The mistake of the "Peoples power " in 1924 26, as the communists now see it, was its semi submission to the bourgeoisie that is to Chiang As one of the Chinese communist leaders has candidly put it "One must know how to unite with the Bourgeosie on some points and struggle with them on others To day we unite with capitalists against feudalism and against foreign imperialism, but we struggle against capitalists to exploit workers and against their tendency to appease feudalism In 1926 we only united but did not struggle and so the Bourgeosie gained its aim through us and thwarted ours

The people of China again showed their determination and will to fight for their freedom when in the spring of 1928, an armed force called the "farmers' self defence corps" under the leadership of Mao Tsetung was formed It tried to integrate all the progressive and revolutionary forces present at the time A resurrection took place and they developed what was called a Soviet border District of 7 countries with a military training school and an arsenal at the border of Hunan and Kiangsi In 1930 there were similar soviet districts on the edges of more than 10 provinces But then the foreign Governments provoked Chiang Ki Shek to annihilate the communists if he wanted to be considered the ruler of all China They gave him the money the weapons and the military advices *They made much of Chiang to keep him as their* campdog And Chiang was not averse Within an year from 1930 to 31 he launched three extermination campaigns against the communists who had collected under the leadership of Mao and Chu Teh Each campaign was larger than the other Chiang led the third in person with 3½ lacs of men But all these campaigns failed ingloriously The farmers had already learned to love their freedom and suffer for it Thus this new communism which gave the land a democratic government means of defence and free enterprise to the common man got rooted into the very soil of China

to the national interest, the communists helped the war against Japan. During these years of war Mao Tse-tung's stature steadily grew. During this period he wrote several remarkable and learned books which gave lead, inspiration to the Chinese people His first book on "protracted war" (July' 38) was a political and military analysis of China's war against Japan It charted the war so accourately that to-day it reads less like fiction than history The next "new stage" (1938 October) contained further analysis of war

In 1939, when pessimism was growing in China, Mao gave a clarion call of new hope and a new creed in his book entitled "NEW DEMOCRACY". In it he advocated not the Kuomintang dictatorship, not a socialist government by communists, not the forms of democracy borrowed from the west, but a new democracy, a coalition government by all revolutionary classes i e, workers, farmers, petty-bourgeosie and even such capitalists as opposed fuedalism and foreign imperialism. This marked the turning point in China and in the revolutionary thought of the world. For the chinese communists it has been the basis of all policies in recent years.

The New Capitalism In China.

According to the new mainifesto of the Chinese reds, "A new capitalism must be sought to develop industrial production rapidly. Every form of productive enterprise, private, co-operative and public should be encouraged. There should be co-operation between labour and capital, to make profit for private enterprise and to raise the living standards of the workers. Private Monopoly Capital should not be allowed. Because of the general decay of world capitalism and the Chinese capitalists especially there is no fear that this new capitalism will develop beyond the power of Chinese people's control".

So in New China at present there is free enterprise Their capitalism is young fighting its way out of feudalism Her Industry is not taxed and prices are not strictly controlled. As the finance minister of liberated areas declared at Kalgan "Theoretically we intend to tax industry, but at present we give exemption for a varying length of years depending on how much we need the given industry. If any one will

start such industries as glass, textiles, steel, tools, electric appliances &c, we will not only give tax exemption but loans and other help.

Through new Socialistic economy, planned effort and increased inspiration the liberated areas are producing surplus raw materials such as wool, furs, cotton, wheat, and other grains in great quantities The Government has solid financial stability and is anxious to trade with outside. The people are much better off than before

However this new Chinese capitalism should not be mistaken for the American or the English variety. The best will in the world cannot create much capitalism in a cave dwelling community on marginal lands Moreover the workers' unions are very well organised in New China The workers share in making the production plans, they have collective bargaining everywhere Every worker is getting proper education So here is a different type of capitalism which does not, at least so far go against the interests of either the nation or the peoples

struggles for a better life follow a common pattern in China, Indo-China, Indonesia, India, Korea and the Phillipines. All Asia has to and will profit from this struggle

I *do not* mean to say that all is *or can* be well with new China all atonce. The people are still backward illiterate, superstisious They have only taken one step on the road to a good life But now the common man is free, the peasant is free where formerly he was a slave, hungry, poor, in debt, manhandled by the landlords.

and colleagues. His success as a teacher is so evident from the St Johns' College magazine—College note ' The Homersham Cox Medal comes again, won by Faiz Baksh. To have won this medal twice in three years is an event of which the college may justly be proud and the winners and Professor Hiralal Khanna deserve our heartiest congratulations.'

In 1920, he resigned from his post in St Johns' College, Agra and joined D.A.V. College, Kanpur. His absence was very much felt by the St. John's staff and students as is obvious from the college note

We have also to deplore the resignation of Mr. Hiralal Khanna . . . . . Mr. Khana had endeared himself by his devotion and sterling character to all of us. With no merely conventional expressions we wish Mr. Khanna all success in his new college. We are proud to think that the Department for the time at any rate, can thus be left in the hands of three men whom he has had a share in training himself '

As a colleague I have happy memories of Shri Khanna. One incident is worth recording here.

There was a time when the Mathematics Staff was short of one man and we had to take extra periods. The Principal sent a cheque to Mr Khanna as an allowance for the extra work he had put in It was just like him to have refused the cheque because his colleagues were not given any allowance for their share of work. The result was that we received similar allowances from the Principal.

These are the qualities which inspire the colleagues to work in loyal co-operation with him.

While at Kanpur, Shri Hiralal Khanna did not confine his activities to his institution alone. He was a member of the U. P. Board as well as a member of executive committee for other important bodies for many years. He was one of the two very powerful and influential members of the Board. He had no doubt attained that deserving position through selfless work and devotion to duty. I was in close association with him for many years as a member of the Board of studies in Mathematics and for three years as a member of U. P. Board. Shri Khanna was always esteemed high by his friends and acquaintances. There was more justice and fair-play in those days and the Board was run more or less on

Democratic principles The outstanding quality which I specially marked in Shri Hiralal Khanna was that he would not desert his friends for his personal gain.

In the Agra University too he wielded a considerable influence for quite a long period; in fact upto a few years back when he decided to devote his whole time to B.N.S.D. College. It was not possible to bring him back once he had made this decision In spite of my strong persuations and requests from friends he did not agree to stand for election in the Agra University. He knew that he had the support of almost every body that counted but he was adamant and all our efforts to make him stand proved futile. During the period of his membership of the University Bodies he was famous for his independent views He has always been against party system in the educational sphere. He has a soft corner for his almamater, Allahabad University which he continues to serve with distinction till today.

It has been said

" As a group the great Mathematicians have been men of all round ability, vigorous, alert, keenly interested in many things outside mathematics and in a fight, men with their full share of backbone As a rule mathematicians have been bad customers to prosecute, they have usually been capable of returning what they received with compound interest.—E. T. Bell.

Shri Hiralal Khanna amply fulfils the description

MY IMPRESSIONS

SHRI M. P. SHARMA

[Captain M P Sharma is an old student of Khannaji In his illuminating impressions the captain tells us how patriotic Khannaji himself was and how he imbued his students with patriotism in the good old days "when few could think loudly about it" The article deals with various other aspects of Khannaji's life and shall provide an interesting reading]

I have great pleasure in paying my humble and respectful tribute to the great qualities of Principal Hira Lal Khanna. I had the good fortune of being his student at St. Jhon's College, Agra. He even at that young age impressed me as an ideal teacher who practised simple living with high thinking.

He has always been easy to approach and we, his students, always received his sympathies in our troubles and encouragement in our aspirations.

He taught us to be patriotic in those days (1919) when few could loudly thing about it He by his behaviour imbued in us National feelings.

After our leaving the College, he has always taken a personal interest in our activities and others like me who have been his students, have not only benefitted by it but have also respected and admired his paternal affection.

The interest he took in his students, his devotion to his duties, his untirng hard work and the high ethical ideals he always practised; have always greatly impressed those who had the good fortune to come in contact with Principal Hira Lal Khanna. I wish him a very long lease of useful life. May God Bless him, is my earnest prayer.

APPRECIATION

Shri Moolchand Malvya

[Shri Mool Chand Malviya is a well known Public worker of the Province. As the officer-in charge of the office of the old Muir Central College, he has had ample opportunities of knowing Khannaji from his youth. His article provides delightful reading.]

It is a matter of great privilege to know Shri Hira Lal Khanna I have known him since 1910 when he was a student of Muir Central College, Allahabad. A very sympathetic, selfless public servant, he has a record of service especially in the field of education which can be rivalled by few. As a teacher of students, he has inspired many to great heights of service and sacrifice. Indeed, his life is a sermon on the Mount Though his retirement from the principalship of the B.N.S.D College will be a great loss to the institution, I have every hope that, free from the trammels of office, he will now devote himself to the greater good of Free India.

SHRI HIRALAL KHANNA

Principal P D GUPTA

[Principal P D Gupta of the N. R. E. C College Khurja, an eminent educationist of this state has been an old student of Khannaji How lovingly he speaks of the high qualities of this illustrious educationist, is amply borne out by this article.]

It gives me very pleasure indeed to accede to the request made to me to contribute to the volume to be presented to Shri Hira Lal Khanna on the occasion of his retirement from Principalship. My contact with Principal Khanna dates back to July 1914, when he came to the C A.V. High School, Allahabad as Science Teacher. I was then in the 7th class of the School and a beginner in Science. I still remember the impression which Khannaji made on us, youngsters, by the very interesting manner of his teaching and by his loving treatment of us I left the School a few weeks after but my mind often wandered back to this teacher of mine in whose class I had sat for only a few weeks and yet who had impressed me so much. When I joined the St. John's College several years later as a student, I heard of an ex-professor of Mathemetics, Shri Hira Lal Khanna, who was remembered by his ex-students and erstwhile colleagues in that College as a fine teacher and a man of sturdy independence and principles and I wondered whether he was the same Hira Lal Khanna who had been my Science teacher for a while at Allabad. From Agra he had gone to Kanpur as Professor in the newly established D.A.V. College and there he soon made a name in the academic world. When I went to Kanpur in 1926 as a Lecturer in the Christ Church College, I paid my respects to him at his abode in Bagia Maniram for which he seems to have entertained a curious fascination and I at once discovered that I was meeting my old teacher. I remained in Kanpur for eight years during which Shri Hira Lal Khanna changed over to the B.N.S.D. College As Principal of that College he made a name for himself as one of the first rate educational administrators of the Province. To take over charge of an institution without build-

ing, and equipment, without adequate Staff and finance and to develop it into one of the finest Secondary Colleges in the Province seemed an almost impossible task and yet Shri Hira Lal Khanna with his great ability, gift and capacity to get the best out of his colleagues achieved it. He is leaving the B.N.S.D College with its reputation well-established, its buildings a challange to sceptics and its results one of the best in the Province.

This alone would give Shri Hira Lal Khanna an abiding place on the list of educational builders. But this is not all For having put the B.N.S.D. College on a sound footing, he turned his attention to the development of educational facilities in Kanpur and built up a number of other High Schools to provide education for boys and girls He has been on the Managing Bodies of a number of other institutions and his advice and guidance has always been sought and respected

To admire Shri Hira Lal Khanna is not to say that one would always agree with him. For during his long and fruitful career his activities have been subjected to much controversy and he has been a subject of criticism, very often born of prejudice and misinformation It has been my privilege often to differ from him and even to take opposite sides with him in educational matters but this never lessened my regard for him For I have always admired his preseverance and doggedness for all causes at which he sets his heart His loyalty to his friends and co workers and his opposition to all that he may regard as unseemly or unworthy is well-known and if he is at times uncharitable to his opponents it is only to say that he is not free from human failings and

THE ARCHITECT

SHRI YADUPATI SAHAI, M A , *Allahabad University*

[Mr Yadupati Sahai is at present on the staff of the Allahabad University with his brother Mr Raghupati Sahai who also happened to work in the B N S D College for some time Mr Yadupati Sahai remembers his school days when he saw the beginning of the making of the structure of fame of the institution He remembers Khannaji as the symbol of the very spirit of the college where he brought to his work as Principal a creative joy and a missionary ardour He appreciates his methods and writes in course of his balanced appreciation Whatever new fangled theories of education modern psychology may have produced Khannaji s ideas about the role of an educationist were essentially sound and practical and based on a robust commonsense]

One July day, twenty years ago I found myself in the B N S D College The College building was still under construction Half finished jagged structures rose among poles of bricks and stones the ground yawned in several places to supply mortar and the whole place buzzed with activity Workmen mingled with eager and excited students seeking admission —both as it were intent on the work of construction of a brick structure, and of the mind and character While bricks piled layer on layer within the walls, knowledge grew from more to more

And all this under the able and zealous guidance of the chief architect In the distinctive long coat always unbuttoned the white ample turban with a face at once soft and stern the ubiquitous presence of Khannaji symbolised the very spirit of the place He brought to his work as Principal a creative joy and a missionary ardour which are rare indeed His combative and resourceful personality, one suspects would hardly feel happy in the charge of any institution which

individual student Though this realization might have been slow and grudging, it did assuage the grief of punishment and turn protest into something very like gratitude Lest it should be imagined that I do not know what I am talking about, I hasten to mention that I did not escape my share of punishment naturally having perhaps more than my share of mischief But though a deep mortification blotted out all other feelings at the moment one outgrew it surprisingly soon to become conscious only of a loving solicitude If one basks in the glow and warmth of the sun, one can hardly complain that sometimes it becomes hot and uncomfortable

Khannaji was considered mournfully as a disciplinarian by a generation to which all discipline, including self discipline is anathema, all forms of regulation and restraint irksome His demands appeared exorbitant because we were stingy in our efforts But he never asked for more than he could or would give himself Not sparing himself he spared none Restless and ever active intent on his purpose with single minded devotion, he was naturally impatient of laziness and shirking Placid yet scintillating with energy, a man for whom no detail was too trifling and no problem too baffling, whose all embracing interest was matched by his initiative and resourcefulness, Khannaji felt cramped and restive if those with and for, whom he worked did not catch up his enthusiasm But more often than not, before his sincerety, fervour and domineering passion for efficiency and diligence, lethargy and sloveliness slunk away "like guilty things surprised ", and those who came to scoff remained to bless

MY GURU

SHRI HARISH CHANDRA, D Sc

[Shri Harish Chandra is a product of the B N S D College and is an old pupil of Khannaji He has not only distinguished himself as a scientist in India but also in England and America

His views about his 'guru' shall be read with advantage.]

Principal Hiralal Khanna will always be a memorable figure in the minds of all those who had ever anything to do with the B N.S.D. College. I can picturre him before me dressed in the white simplicity of a long coat buttoned up to the neck and wearing the familiar turban making a somewhat incongruous contrast with the agility of his frame and the obvious vigour of his manner and appearance. Nothing in the college could miss his notice. Sometimes we would see him boxing a boy's ear in admonition or patting another's cheek in approval. But his main task besides running the institution was to get enough money for it. The ever-current rumour said that his frequent absences of several days were due to his indefatigable tours round the province hunting for donations. It is indeed remarkable how a college as big as this was run almost entirely by the efforts and devotion of one man.

It was rather by a happy coincidence that I met Khannaji at the Allahabad railway station when I was leaving from there to Calcutta to catch my boat to England. He was just coming to Allahabad on the same train as I was to take. I shall always remember his kindness and warmth of feeling and above all his vigorous human interest in everything around him I wish him a happy and peaceful retirement.

much change in his exterior in all these thirty and odd years except of course that the inevitable white has replaced the black hair on the face and on the head The greatest shock of his lif might have been the very premature death of his wife I wonder if he had ther shocks because to all appearances the waters of his life flowed placidly and calmly

In the Educational Field he has chosen a work that called for high qualities of administration rather than those of a great teacher or of that of a scholar wedded to some scholarly pursuits I think he gave much strength to the New D A V College of Kanpur and has been the maker of the Sanatan Dharam Intermediate College He must have had his own struggles and even setbacks but they have not damped his spirit of optimism and have certainly not *dominated* him The pleasant and friendly smile the occasional glitter in his eys when he was animated his argumentations which are as determined as ever though they may have become more tactful the characteristic expression of one that knew what he wanted and above all his cheerful and friendly social behaviour—all these are still as of old

Soon we discovered that Khanna had also a newly married wife with him The first contacts were naturally slow and superficial I shall certainly not forget the great stir her first visits caused in our household A newly married Khattri bride! servants flew from windows to doors closing all those that would let in the vulgar male gaze and repeating peremptory instructions that certain doors were to be kept close certain rooms were to be too sacred for any male to set his foot in and that occasionally I was to remain confined to a certain room till this visit was over All this was comic and even amusing to us who were not initiated into the rites and the mysteries of the U P *Pardah* I soon found that the Bengal brand of the *Pardah* was even more exacting more amusing no doubt but also more intriguing and irritating at times But as the ladies seemed to like this change we accomodated as best as we could Other Gujrati Ladies joined later The strictness of the *Purdah* was gradually relaxed (I understood my friend Mr Khanna did not very much approve of the *Purdah*) The meetings of the ladies ripened into greater acquaintship and friendly companion

BUT HE WAS ABLE TO PASS TO THE SURPRISE OF US ALL

The Hon'ble Justice Harish Chandra I C S

[The Hon ble Justice Harish Chandra I C S, is an old friend and classfellow of Khannaji Posses sing a keen insight as a Judge he has watched the minutest details of the traits of Khannaji s charac ter A description of Khannaji s student life from his pen shall be read with delight and interest]

I have had the good fortune of knowing Khannaji since as far back as the year 1915 when we were both reading in the M Sc class in the then Muir Central College at Allahabad He is a self-made man and is a living example of what a man can achieve by his own perseverence and strength of purpose In those days while he was studying for his M Sc degree he had also taken up service as a teacher in a local school in order to pay for his education His work as a teacher, however, left him no time for his studies and he hoped to sit for the examination as a private candidate later But I and his other friends in the class advised him to try his luck and sit for the examination after preparing as best as he could only a part of each paper He agreed and his mental capacity was such that even with such meagre and incomplete preparation he was able to pass the examination to this surprise of us all

He is simple in his habits and his simplicity has remained unaffect

ed by the successes and the honours that came his way in later life. He is a sincere friend and has the rare genius of maintaining his friendships ever fresh and green. As one of his friends, I have watched with interest his successful career as an educationist and as a teacher and a guru in the truest sense and join his many friends, admirers and grateful pupils, past and present, in wishing him peace and happiness after his retirement.

NEVER GIVES UP HIS FRIEND

The Hon'ble Justice P N SAPRU Allahabad High Court

[This is an article from the facile pen of the Hon'ble Justice P N Sapru, an old friend of Khannaji The article throws a flood of light on the achievement of Principal Hira Lalji Khanna as an educationist in particular and as a patriot in general.]

For very nearly 35 years it has been my privilege to enjoy the friendship of Hira Lalji Khanna Since 1922 we have been connected with the Allahabad University and have had many opportunities of coming into close contact in public life The thing that has impressed me most about Hira Lalji is his utter sincerity To his ideals he is completely loyal. With Truth, as he sees it, he will not compromise. He has no horror of being in a minority of one. He fights for his point of view and gives credit for honesty to the other fellow.

Hira Lalji has a tolerant mind. Though a man of strong convictions, he is always prepared to give to his opponents credit for equal honesty of purpose. His approach to public questions is an objective one. He has a passion for service and he is ever ready to give his support to all good causes.

Education has been the main sphere of Hira Lalji's activities Hundreds of young men have looked up to him as their Guru and he has, through his work, moulded their lives; for he has a gift of winning the confidence of youth His pupils know that their welfare is very dear to him. They trust him and he has confidence in them That is why he has been able to acquire a hold over their affections

To Hira Lalji, the Hindi language is very dear He has rendered distinguished services to that language. Often he has pleaded its cause in the University and educational conferences and gatherings with an earnestness which elicits admiration even from those who do not see completely eye to eye with him His services to Hindi language are too well known to need any detailed recital.

Hira Lalji has a very simple nature. He has no sides about him. He is completely free from intellectual pride and meets all on equal terms. He knows how to call a spade a spade. In debate he does not beat about the bush. He goes straight to the point, puts his point of view in a good humoured manner and wins the respect, by his presentation, of friends and foes alike.

Of the Allahabad University Court and Academic Council, Hira Lalji has been one of the most valued members. He has taken a keen interest in the welfare of his *alma mater*. I have never known him miss a single meeting and every time that he gets up to speak one may be certain that he has something sensible to say, something worth listening to. For he has a complete knowledge and understanding of educational questions. Naturally those of us who were associated with him in University bodies have always looked up to him as an indispensable person in the educational life of our province.

with almost every other university and many other educational institutions besides

Hira Lalji is a man of strong loyalties I have never known him give up his friends His transparent honesty of purpose his earnestness and his desire to do the right thing make a very powerful impression upon all those who come into contact with him They know that in him the can rely upon a man who will take the right line in a difficult sitaution, for Hira Lalji has a balanced mind

Educationists have to face very difficult problems today Youth is impatient with things as they are It wants to have a big say in determining its own destiny Often it fails to appreciate that it lacks maturity of judgment Consequently there is a frequent complaint of indiscipline in our institutions Now you can imbue a sense of discipline among the young either by dealing with them in an autocratic *manner or by enlisting their cooperation and appealing to their better* nature The later method has always appealed to Hira Lalji Who that has a *modern mind* will say *that he is wrong in this*? The best discipline is that which comes from an inner conviction that one's duty is to be disciplined in one's life Hira Lalji's constant endeavour has been to instill this ideal among the young

Naure has endowed Hira Lalji with a constitution which is full of vitality, energy and spirit He has a lucid mind enriched by study and reflection In the India of today there is need for such men It is they who must supply leadership in our educational institutions It has been one of the joys of my life to enjoy the friendship of Hira Lalji and I can only conclude this article by wishing my old esteemed and dear friend many happy years of useful life

AS YOUTHFUL AS EVER

Dr. R. U. Singh, Lucknow University

[The writer of this article Shri R. U. Singh is the Dean of the Faculty of Law, Lucknow University. He is an authority on constitution and International Law. He is an intimate friend of Shri Hira Lal Khanna He gives his own impressions about the personality of Khannaji as also about his achievements. The article shall be *read with interest.*]

As youthful as ever, as genial and kindly a friend today as when I met him for the first time in 1932, is briefly the best and most affectionate tribute I can give to Shri Hira Lal Khanna on the termination of his long and distinguished career of devoted service as Principal, B.N.S.D. College Kanpur

and lively to day as ever in the past Age has indeed not withered him, nor shrivelled his infinite store of goodwill, nor ' Custom ' staled his endless charm A vein of iron runs through him which I am confi dent, will weather all storms of age and will initiate a long and glorious period of retirement

It will not be much to say that any institution could be proud to have at the helm such a man, and any man feel gratified to have come in contact with him

I deem it a great privilege that I enjoy Shri Khanna s friendship I am grateful to him for many long years of good friendship and I believe no words can sufficiently express my deep appreciation of him I am glad I am fulfilling, howsoever unsatisfactorily a pleasant duty by offering to Shri Hira Lal Khanna this brief tribute to his extraordinary charm and personality

emerged from somewhere, one of whom caught hold of the hand of Hiralal and in no very respectful manner asked him as to where he was going "To see the High Court" was Hiralal's reply Very unceremoniously the constable showed us the way down and out saying that the stair case was reserved for the exclusive use of the Hon'ble Judges of the High Court for then there were no electric lifts for their use as there are now As soon as we were out of the door of the staircase Avadhesh was in a fit of ecstacy and sent out peals of laughter ridiculing Hiralal for his leadership Very calmly Hiralal replied that it was his mistake that he went by that way and that there was no occassion for ridicule By the staircase meant for the public we then went upstairs and saw the Judges and eminent advocates arguing their cases At that time there were not many Judges in the High Court perhaps they were four or five in all and not about two dozen (19) as now We admired the figure of an old Judge with a big flowing white beard and a particular big nose, dozing off in the chair (Sir George Knox) Particularly striking were the advocates or barristers and Vakils as they were called The tall figure of Mr G P Boys stood in strange contrast with the small and spare built figure of Mr Ross Alston, as they were arrayed against each other arguing some criminal case There was the portly figure of Pandit Sunderlal opposing the plump but rather dwarfish Mr O'Conor in some civil case Other impressive figures the sedate Dr Satish Chandra Banerji, the immaculate Pandit Madan Mohan Malviya, and the faultlessly attired Pandit Motilal Nehru, all interested us a good deal

After finishing his student's career Hiralal took to the teaching line, and in my mind the B N S D College at Kanpur and Hiralal are synonymous terms Whenever Hiralal and myself were out together what struck me most was his wonderful memory Of the youngsters we came across more than 50 per cent to be sure were his former pupils and this need not surprise us as the whole of his life has been a dedicated one for them But what surprised me most was the circumstance that he would call each one by his family pet name and would name their fathers too He had a word to speak to every old student of his he met, even on the road and while driving in a Tonga or car After

physics on 'Dirac's Matrices and Motion of points particles in the proceedings of Royal Society of London He also took his Ph D Degree from Cambridge

Having earned the Ph D degree from Cambridge Harish Chandra wanted to continue his work in America Towards the end of 1947 P A M Dirac was going to America and the American Universities wrote to Harish Chandra that he might come as Dirac s assistant He did not like to go as Dirac s assistant, but when Dirac promised that he shall do his own independent work and be only formally his assistant, Harish Chandra went to America and joined the Institute of Advanced study atPrinceton He was attracted by the opportunity of working side by side with the foremost physicists at Princeton including the great Prof Einstein

In 1949 he was awarded the Jewett's fellowship, an honour which is the reward of great merit as a scientist Following the award of the Jewett's Fellowship, worth 4500/- dollars on a trip of about three months to various European countries he met the foremost scientists On his return to America in October 1949, he chose Harvard to be the new place of his work and joined the Department of Mathematics at the Harvard University

His intellectual brilliance and painstaking zeal have won him the affection, regard and esteem of great and celebrated men in the domain of Physics and Mathematics including Einstein Dirac Pauli Bhabha, Raman and Krishnan and many others Since his childhood he often used to express his wish to become a scientist and his dream has been fully realised

To have an estimate of his original contribution towards Physics and Mathematics, a list of his papers published in various proceedings has been given below in their chronological order

(1) On the Scatterin of scalor mesons Proc Ind Acad 1945
(2) Algebra of the Dirac Matrices '
(3) A note on the symbols 1946
(4) The correspondance between the particle and the wave aspects of the meson and the photon P R S 1946
(5) On relativistics wave equation Phy Rev 1947

(6) Infinite irreducible representations of the Lorentz group P. R. S. 1947.

(7) Equations for particles of Higher spin Proc. Phy. Soc Camb. 1947.

(8) Relativistic Equations for elementary particles Proc Roy. Soc. 1948.

(9) Motion of an electron in the field of a Magnetic Pole Phy. Rev. 1948.

(10) Faithful Representations of Lie Algebras Annals of Math (U. S. A) 1949.
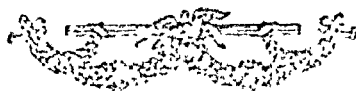
MECHANISMS OF MORAL PROGRESS

DR. RADHA KAMAL MUKERJEE Lucknow University

[Dr Radha Kamal Mukerjee, Head of the Economics Department, Lucknow University is too well known to require any introduction Dr Kamal's article on Mechanism of Moral Progress will surely throw a flood of light and provide delightful and profitable reading]

Moral Progress as a Total Configuration

Moral progress can be neither defined nor understood from the viewpoint only of the ethicist or the sociologist. Like the myriad-faceted structure of the human personality that yet shows coherence and integrity, moral progress exhibits several distinct phases. It implies an enrichment of personality, an increase of social integration and a qualitative improvement of the values of life These trends underlie the total configuration of the progressive adaptation and ordering of life, mind and society. The progress is of the whole configuration or system. Moral progress is, therefore, to be looked at from the synoptic viewpoints of social psychology, sociology and ethics by which alone we can achieve the functional, inclusive meaning of the entire process.

Moral progress is obviously directed by social symbols as it has begun in the human community with language and communication. Not before man perfected the use of language and developed his mythology, religion, literature and the fine arts that he could add a new dimension to the social reality and make of collective responses of adaptation to his environment moral aspirations of progress The French sociologist, Mauss, remarks, "the activity of the collective mind is still more symbolic than that of the individual mind but in the same direction." Thus the special evocative agencies of religion, art, education, law and ethics disseminate through a variety of symbols, myths and rituals the ethical command, legal and social regulation and acquiescence of the community. All such imperatives are developed and understood by man not as physical but as symbolic notions. The world of law and and morals is not the actual world but an ideal, symbolic world.

aggression, aroused by frequent and inevitable frustration of his desires.[1] The parents' taboos and injunctions are distorted in the child's mind due to the inward hate and aggression, the sense of guilt and anxiety becomes at the same time grossly exaggerated, and the "imago" of the introjected parent becomes too severe and cruel and hardly resembles the real parent It is the child's fantasy that indeed completely transforms, and introduces an intense emotional tone into, both the actual personality of the parent and his standards and prohibitions On the other hand a parent, who is actually severe and unreasonable in his treatment of the child, induces an exaggerated guilt reaction that is sought to be dealt with by the latter through defiance, hostility and aggression Another factor contributing towards the harsh and tyrannical morality of childhood is the employment of symbols and fantasies of parental restriction, coercion and punishment that have to be disproportionately severe because the mere image or symbolical envisagement of the punishment has to serve as an adequate deterrent. If the symbolical threat does not suffice to prevent deviation, the threat has to be carried out in actual life. The tyrannical character of the super-ego is strikingly manifest in the case of the melancholic who gives himself up to self-censure and self-torture, the super-ego- holding the ego completely in its mercy. With return to normality the ego would sometimes indulge in the pleasures of the senses with redoubled zeal. Recent workers in anthropology and psychoanalysis now find that the purely instinctive and biological approach of Freud cannot adequately explain all the elements in the establishment of the super-ego. K. Horney in particular emphasises the role of culture and the social environment in the acquisition of conscience and of moral standards and values, referring particularly to social expectation. Kardiner, an anthropologist, observes, "In his orientation on instinct, Freud left little room for the operation of societal influences. If we see the super-ego as a mental function we tend to lose sight of the fact that it represents an habitual and automatic method of reacting to other individuals to the end of being loved and escaping punishment. Fully recognizing the important role of helplessness of

[1] See Flugel: *Man, Morals and Society*, p. 87.

a distrustful or spiteful attitude towards everyone The neurotic is rightly called "a step child of culture" The normal projection of the ambivalent desires of love and hate to the mother and the child's burden of unconscious guilt, which is repressed by the tyrannical primitive super-ego, are the necessary conditions of his acquisition of the core of moral sense without which he becomes a misfit in society

Man's Acquisition of the Sense of Absoluteness and Completeness of Moral Laws

The child's relatively definite core of moral sense and perfection, partly inherited and partly acquired, both hardens and expands as he grows, and becomes the permanent central nucleus of his ethical attitudes and sentiments The sense of guilt, shame, self censure, honour and perfection are all built up into this primal moral structure that assimilates into itself allegiance to the group and institution, to the deity, to the law and the moral code and to the abstract ideal or symbol Such fealty or obedience to "society" is the outgrowth of primal attitudes towards the parents, but is now extended to any object, institution, deity, symbol or abstract concept that is stronger and wiser The super-ego relationship continually expands and amplifies itself Man thus learns to make automatically subtle distinctions between right and worng, good and bad, although hereditary endowment determines in some measure what kind of conscience he develops Of course the verbalized concepts and approving and disapproving gestures in the institutional situations assist the individual in shaping and remoulding his inherited conscience Thus conscience becomes the focus and carrier of the moral legacy of the community, whose threat of expulsion and ostracism has the same compulsiveness as it is derived from the child's primal anxiety not to lose his mother's love and care Conscience comes as much from parents and other commanding persons as from dominant groups and institutions, moral and legal codes and abstract ideals and symbols Like the parental prohibitions and injunctions, the self interiorises manners, laws and moral principles and the commandments of religion and meta physics Such interiorisation is accompanied in every case with a feeling of guilt and anxiety and other irrational reactions rooted in the unconscious, and

think in absolute terms but to feel in them The inhibiting influences of the super ego tend to produce an intolerant assurance of being right, because only through such an assurance could they have succeeded in repressing their opponents into the unconscious In so far as they succeed they acquire emotional certitude and that emotional certitude given the construction of the human mind inevitably tends to rationalize itself by claiming absolute value The absolute values are taken over by language and ethical and religious symbolism that significantly contribute to the interiorisation of the inviolability and completeness of moral principles and imperatives Even those primitive people whose speech does not express causality or the telic relationship have the words 'good and "bad,' that are not relational attributes but ingredient parts of delimited objects Among the Trobrianders whose speech has been studied by D D Lee, goodness like magical potency is an ingredient element of an object which is sought not because it is of use but because it embodies certain supreme values [6] In this manner even without use of adjectival concepts as attribute the supreme values are yearned for The lack of interest in extraneous goals is not incompatible with hard work

This is the super ego aspect of conscience which provides the compulsive force to folkways mores taboos and injunctions as well as to rituals, moral and religious commands In other words, man's primitive emotional and irrational elements in conduct are principally due to the influence of the super ego The role of man s normal primitive super ego in the evolution of his morality and culture can hardly be overestimated Conflict torn man would not have the energy for any higher urgings and fulfilments of life or develop into the evaluating symbolising responsible being as he is Without the harnessing of the unconscious forces of the mind and acquisition of feelings of certitude and completeness in respect of social prohibitions and injunctions, his social adjustment also would have been considerably more difficult

---

[5] *On Living in a Revolution* p 55 also *Touchstone for Ethics* p, 120, see also *Science and Ethics* edited by Waddington

[6] *Lee* A Primitive System of Values, *Philosophy of Science*, 1940 pp 355 365

chequered and uncertain Moral progress is grounded on both the psychobiological features of man's evolution.

Man exhibits another aspect of conscience that is rational, creative and venturesome, and that appeals especially in a crisis to his reason and faith in values ideals norms Such conscience has been through the ages the main lever of his moral progress Here he is not the creature but the creator of moral laws and norms, experiencing the highest self and social consciousness as well as self-status and esteem with associated emotional feelings of competence, completeness and joy that are the perennial springs of moral adventure The moral man is a man of moral habits The 'super-ego' or the irrational and tyrannical aspect of conscience establishes this He is also the critic and judge of morality The rational, creative, unique aspect of conscience representing the acme of self consciousness safeguards this distinctive feature of ethical conduct In every individual the respective strength of the two aspects of conscience varies, *resulting in differences in moral responsibility* and initiative The rational aspect of conscience always influences the dogmatic irrational harsh aspect of conscience, the internalised replica of the injunctions and prohibitions of overawing external authorities and models

MY GURU, GUIDE AND PHILOSOPHER

SHRI RAMESHWAR NATH TANDON

Sometimes seeing is not believing No one who sees Mr Rameshwar Nath Tandon can take him for a student of Khannaji who looks decidedly younger Mr Rameshwar Nath has worked with him in various institutions He always found him very helpful, broad minded charitable on the side of directors and strong critic in the larger interest of share holders whose cause he fearlessly pleaded He testifies to Khannaji s generous and noble qualities He remembers him as a tower of strength to those who feel dejected and as an embodiment of selfless devotion to the cause which he considers to be right

Shrijut Hiralal Khanna has been my Guru, guide and philosopher As a teacher he maintained strong discipline tempered with love and affection As a colleague in the Board of Directors of the Swadeshi Bima Co Ltd , and other institutions where I had the privilege to work with him I found him to be very helpful and broad minded charitable on our side and strong critic in the larger interest of the shareholders whose cause he fearlessly pleaded One who knows him intimately can testify to his generous and noble qualities His doors are always open to his students, his advice is always available to them and his purse is ready to help in time of emergency He is a tower of strength to those who feel dejected and is an embodiment of selfless devotion to the cause which he considers to be right

May God grant him a long life